वायु महापुराण

अनुवादक
श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री

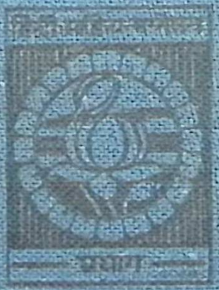
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

संवत् २००७
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

2

Funding by IKS-MoE

846

140.C
SHA

4 212

वायु महापुराण

अनुवादक
श्री रामप्रताप त्रिपाठी, शास्त्री, काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
प्रयाग

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
Bharatiya Vidya
५५१

संवत् २००७
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

Funding by IKS-MoE

प्रथम संस्करण १०००

मूल्य १२) रुपये

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidya
atiya Vidya
६५५

मुद्रक
श्री देवीप्रसाद मैनी, हिन्दी साहित्य प्रेस, प्रयाग
केवल भूमिका तथा प्रकाशकीय-- सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

Funding by IKS-MoE

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा संस्कृत के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित कराने की योजना सात आठ वर्षों से चल रही है। आरंभ में केवल एक अनुवादक रखे गये थे। लोकप्रियता तथा उपयोगिता के कारण सर्वप्रथम पुराणों के अनुवाद का कार्य हाथ में लिया गया था, अब तो इस कार्य के लिए तीन विद्वानों की नियुक्ति कर दी गई है। मत्स्य महापुराण ४ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है, वायु पुराण का यह अनुवाद आपके सामने है।

ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीति विषयक तथ्यों के कारण वायु पुराण की प्रतिष्ठा सर्वमान्य है। इसमें ऐसे अनेक विषयों की चर्चा की गई है, जो इतने दिनों बाद भी नवीन हैं। न केवल धार्मिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से ही वरन् शुद्ध जिज्ञासा एवं तत्त्व-पिपासा की दृष्टि से भी इसका अध्ययन विशेष मनोरंजक होगा। आशा है, हिन्दी-प्रेमी जनता उसे उचित समादर देगी।

स्वभावतः अपने कार्यकाल में वायुपुराण के प्रकाशन से हमें विशेष प्रसन्नता हो रही है। हमें आशा है, हम अन्यान्य पुराणों को भी, शीघ्र ही, आपके सम्मुख उपस्थित कर सकेंगे।

दयाशंकर दुबे
एम० ए०, एल-एल० बी०
साहित्य मन्त्री

सौर माघ १०, २००७

आमुख

भारतीय जीवन-साहित्य के श्रृंगार 'पुराण' अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ने वाली स्वर्णिम श्रृंखला हैं। विश्व साहित्य की अक्षय निधि में अठारह पुराण सर्वश्रेष्ठ अठारह रत्न हैं प्रतीकवाद, परोक्षवाद और रहस्यवाद से अनुप्राणित ये पुराण हमारे राष्ट्रीय और सामाजिक जीवन के दर्पण हैं। अपनी सरल सुबोध भाषा और प्रबुद्ध कथानक शैली के कारण अतिप्राचीन होते हुए भी नवीनता और स्फूर्ति उत्पन्न करते हैं।

'पुराण' यह एक पारिभाषिक शब्द है जिससे यह सहज ही व्यक्त होता है कि पुराण उन ग्रंथों को कहते हैं, जिनमें सर्ग (ईश्वरीय कृति) प्रतिसर्ग (सृष्टि और प्रलय) वंश, मन्वन्तर, वंश्यानुचरित इन पाँच विषयों का समावेश रहता है। पुराणों में परस्पर शैली और भाषा का सामंजस्य होते हुए भी वर्ण्यविषयों की विशेषता से वैषम्य भी है। इन्हीं विशेषताओं के कारण पुराण, उपपुराण और महापुराण संज्ञाओं से स्वयं विभाजित हैं।

पुराणों की प्राचीनता : इतिहास के आलोक में

हमारी भारतीय मान्यता पुराणों को वेदों की प्रतिच्छाया सिद्ध करती हुई उन्हें अति प्राचीन मानती है। अथर्ववेद (७१।७।२४) के अनुसार यजुर्वेद के साथ ऋक्, साम, छन्द और पुराण उत्पन्न हुए हैं। वृहदारण्यक (२।४।१०) का मत है कि गीली लकड़ी के संयोग से जलती हुई आग में से जैसे अलग-अलग धुँआ निकलता रहता है उसी प्रकार इस महाभूत के निःश्वास ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वांगिरस, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, व्याख्यान और अनुव्यान निकले हैं। छान्दोग्योपनिषद् के मत से इतिहास और पुराण वेद निकाय में पाँचवें वेद हैं।

पुराणों के पूर्व रूप

पुराणों की कहानी स्वयं पुराण ही कहते हैं। प्रायः सभी पुराण यह स्वीकार करते हैं कि "पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतं, अनंतरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः"। अर्थात् पुराण सभी शास्त्रों से पूर्व थे पश्चात् ब्रह्मा के मुख से वेद निकले। इसका मूल तात्पर्य बृद्ध जनों से, श्रुत कथाओं और मनोरंजक कहानियों से है।

पुराणों के अध्ययन से भी यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि पुराण वस्तुतः वैदिक कथाओं, जनश्रुतियों एवं सृष्टि, विसृष्टि, प्रलय, मन्वन्तर, आचरवर्णन, राजवंश वर्णन के प्रतीक हैं। पौराणिक सूतों के कथनानुसार पुराण तत्त्वज्ञ भगवान् वेदव्यास ने आख्यान, उपाख्यान, गाथा, कल्पशुद्धि के साथ पुराण संहिताओं की रचना की। पुराणों की इस स्वीकृति से सिद्ध होता है कि वेदों की भांति इतस्ततः बिखरे हुये पुराणों को भी संग्रह करके व्यास जी ने अपनी मान्यता के अनुसार उनका संपादन किया। वेद की भाँति आदिकाल में 'पुराणमेकमेवासीत्' अर्थात् पुराण एक ही था। कालान्तर में पुराणों का विभाजन सूतों द्वारा हुआ।

पुराणों में पाठान्तर और प्रक्षेप

वेदव्यास द्वारा संपादित पुराण की कथाओं का प्रचार तात्कालिक सूतों द्वारा हुआ। सूत एक जाति या संप्रदाय था जो वंश परम्परा के अनुसार घूमघूम कर कथाओं द्वारा समाज का संशोधन एवं मनोरंजन करता

Funding by IKS-MoE

था। विभिन्न सूतों के मुख से उद्‌गीर्ण पौराणिक कथाओं में कालक्रमानुसार पाठांतर और प्रक्षेप का होना स्वतः सिद्ध है। कालांतर में स्वार्थ निरत व्यासों और सूतों ने अपनी अपनी मान्यता का समावेश किया। धीरे धीरे पुराण तिल के ताड़ बनाये गए। उनकी शाखायें प्रशाखायें उत्पन्न हुईं। राजवंशों के वर्णन में क्रमभंग-दोष और वर्णनात्मक विवर्तन उत्पन्न हुए। सांप्रदायिक घृणा, द्वेष की प्रवृत्तियाँ समाविष्ट हुईं। पाठांतर और प्रक्षेप उत्तरोत्तर बढ़ते ही गए फिर भी पुराणों की मौलिकता और वास्तविकता समूल नष्ट न हुई, हाँ असमीक्ष्यकारी पाठकों के लिए भ्रम और विवाद का हेतु उत्पन्न हो गया।

पुराणों का निर्माण काल

भावनामूलक शोध प्रणाली से व्यतिरिक्त यदि हम तर्क और बुद्धिवाद का सहारा लेकर पुराण रचना-काल पर विचार करते हैं तो प्रथम हमें यह स्वीकार करना पड़ता है, कि पुराणों की रचना विभिन्न समय और वातावरण में हुई है। आधुनिक आलोचक और इतिहासकार पुराणों की रचना का समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी भी मानने में संकोच करते हैं। कुछ पुराणों को तो एकदम अर्वाचीन भी मानते हैं। यह निर्णय स्थूलतया उन घटनाओं को पढ़कर किया जाता है जो वैदिक काल से लेकर यवनकाल किम्बा मरहठा काल और अंग्रेजी राज से संबद्ध हैं। पुराणों की विश्रृंखलता और अनैतिहासिकता प्रकट करने में दूसरा प्रमाण वंश वर्णन में परस्पर अनुक्रम-भेद है।

इसमें संदेह नहीं कि पुराणों में कथानकों का परस्पर सामंजस्य और वैषम्य विचित्र रूप से है, साथ ही काल भेद भी पाया जाता है। किंतु जब तर्क की कसौटी पर अन्वीक्षणशक्ति से विचार करते हैं तो इन कारणों से पुराणों की प्राचीनता और ऐतिहासिकता कलंकित इसलिये नहीं होती कि बिखरे हुए पुराण-कथानकों को व्यासजी ने मूलसंहिता का रूप दिया फिर उसे अपने शिष्य रोमहर्षण को पढ़ाया। रोहमर्षण से उनके शिष्य शांशपायन आदि ने अपनी अपनी सुविधा के अनुसार विभाजन किया और फिर सूतों द्वारा उन कथाओं का प्रचार मनमाने ढंग से होने लगा। शिष्य प्रशिष्य की इस परम्परा ने पुराण कथाओं को अनियन्त्रित और अमर्यादित बना दिया। भविष्यत् की कथाओं के वर्णन में आपततः संदेह करना निर्मूल है यह सही हो सकता है कि भविष्य की सांकेतिक घटनाओं को अतिरंजित और विकसित बाद में बना दिया गया हो किंतु भविष्यत् की कथाओं पर पुराणों की प्राचीनता पर आक्षेप उचित नहीं है। भविष्य में होनेवाले कल्कि अवतार और उससे पूर्व होने वाली समाज की स्थिति के वर्णन की सत्यता से सहसा इनकार इसलिये नहीं किया जा सकता कि घटनाओं की सत्यता उत्तरोत्तर प्रमाणित होती जा रही है।

कुछ भी हो वायुपुराण, मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण और ब्राह्मपुराण का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद उन्हें महाभारतकालीन मानना अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

पुराणों की उपयोगिता

मानवजीवन को हर पहलू से सँवारने में पुराणों ने बहुत बड़ा योग दिया है। राष्ट्रीय, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना के प्रतीक पुराण, मुमूर्षु समाज को प्रेरणा शक्ति, शिथिल एवं असंयत राष्ट्र को जागृति प्रदान करनेवाले सतत प्रीतिशिखावाही स्रोत हैं। इनमें हमारे जातीय जीवन का जीवित अभिमान एवं राष्ट्रीय जीवन का उदन्त उत्साह निहित है।

लोक चेतना, लोकरुचि और लोकहित की भावना से प्रेरित होकर ही पुराणों का प्रचलन किया गया है। पुराण हमारे लौकिक और पारलौकिक जीवन के लिये एक अनुपम देन हैं। पौराणिक आदर्शों को अपनाकर चलने वाला समाज सदैव प्रशस्त और जागरूक रहा है। ऐसे समाज के समक्ष उसका आत्मगौरव और देश सबसे

Funding by IKS-MoE

महान् सिद्ध हुआ है । समाज के अन्तर्बाह्य कलेवर को शुद्ध बनाकर सत्यं शिवम् सुन्दरम् के निकट पहुँचाने का सामर्थ्य पुराणों में अब भी है । किन्तु उनके उपयोग की कला सीखनी चाहिए ।

प्राचीन और अर्वाचीन को एक ही धरातल पर रखते हुए पुराण समाज के अन्तःकरण के अभावों को समझने और उन्हें दूर करने में बहुत सफल हुए हैं । भारतीय संस्कृति में श्रुतियों, स्मृतियों की भाँति पुराणों की उपादेयता बनी हुई है । वेदों के मर्म समझने के लिए पूर्वाचार्यों ने इतिहास पुराण पढ़ने की सलाह दी है । सारांश यह कि जब तक पुराणों का अध्ययन नहीं किया जाता तब तक भारतीय अध्ययन अधूरा ही माना जाता है।

वायुपुराण

पुराणों को राष्ट्रीय जीवन का आधार और सांस्कृतिक इतिहास की शृंखला समझकर हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उनके अनुवाद की जो स्तुत्य योजना बनाई है उसी के अन्तर्गत वायुपुराण का यह हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया गया है।

वायुपुराण भारतीय जीवन और सभ्यता के क्रमिक विकास की कहानी है । अन्य पुराणों की भाँति इसमें भावुकता की प्रधानता न होकर तर्क का प्राधान्य है । इस पुराण की मुखर वाणी और वर्णन शैली में वैदिक काल से लेकर बौद्धकाल तक के भारतीय राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उत्कर्ष का अभिमान एवं गौरव निहित है ।

वायुपुराण की प्राचीनता

वायुपुराण के राजवंश-वर्णन प्रसंग में अध्याय ९९ श्लोक २५८ में शांशपायन जी ने अपने समकालीन राजा अधिसामकृष्ण का उल्लेख किया है, जो जनमेजय के पौत्र थे और जिनका समय महाभारत युद्ध से दो सौ वर्ष बाद प्रायः माना जाता है । इस मान्यता के अनुसार वायुपुराण का समय महाभारत काल से दो सौ वर्ष बाद का निश्चित होता है । इसके अतिरिक्त वायुपुराण की शैली भी प्राचीनता का साक्ष्य दे रही है। जो अंश बाद में प्रक्षिप्त हुए हैं उनकी शैली और अध्ययनपाठ से स्पष्टतया नवीनता प्रकट होती है ।

नाम, संख्या-क्रम-निरूपण

पुराणों के नाम, संख्या और क्रम में मतभेद है। नाम संख्या आदि प्रतिपादक पुराण ही इस संबंध में एक दूसरे से असंगति रखते हैं । विष्णुपुराण में दिए गए पुराणों के नामक्रम के अनुसार ब्राह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कंडेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, बराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड ऐसा क्रम है। किन्तु इस नामक्रम में वायुपुराण का कहीं भी निर्देश नहीं है । समालोचकों की दृष्टि से वायुपुराण शिवपुराण के अन्तर्गत है या उसी का विकल्प रूप है। बंगला-विश्वकोषकार ने दोनों नाम से एक ही शिवपुराण की विषयसूची दी है । किंतु आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावली में छपे हुए वायुपुराण की विषयसूची शिवपुराण के अन्तर्गत दी हुई वायवीय संहिता की विषयसूची से भिन्न है । इसलिए शिवपुराण के अन्तर्गत वायुपुराण को मानना ठीक नहीं । हाँ शिवपुराण का विकल्प रूप मानने से वायुपुराण की गणना अष्टादश पुराणों की क्रम संख्या सूची में की जा सकती है ।

मत्स्यपुराण में दी हुई पुराणों की उपक्रमणिका में शिवपुराण के स्थान पर वायुपुराण का जो उल्लेख है, उससे वायुपुराण के नाम पड़ने का कारण स्पष्ट होने के साथ ही उसका पुराण होना भी सिद्ध होता है ।

पुराणों के आन्तरिक रहस्य

पुराणों को वेदों के साथ प्रादुर्भूत ईश्वरीय निःश्वास तर्कहीन श्रद्धा अवश्य स्वीकार करती है। किन्तु बुद्धिवादी तार्किक अपनी अन्वीक्षण शक्ति द्वारा जब वेद और पुराण का तुलनात्मक अध्ययन करता है तो उसे भी पुराणों के आन्तरिक रहस्य और वेदों के साथ पुराणों के सम्बन्ध स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं। श्रीमद्भागवत (१।४।२८) में लिखा है कि "भारत

व्यपदेशेन ह्याम्नायर्थश्च दर्शितः" अर्थात् पुराणों में भारत के इतिहास के व्याज से वेदों का रहस्य खोला गया है। इसी आशय को स्वीकार करते हुए महाभारत में भी स्पष्ट कर दिया गया है कि "इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपवृंहयेत्" अर्थात् इतिहास पुराणों से वेदों का मर्म जाना जाता है।

यदि हम वेदों का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं, तो सचमुच उनमें ऐतिहासिक सामग्री के स्थान पर भूगोल और खगोल का ही प्रमुख वर्णन है। वेदों में जो ऐतिहासिक सामग्री बतायी जाती है वह अधिकतर पुराणों के कारण ही वस्तुतः वेदों के चमत्कारपूर्ण आलंकारिक वर्णनों को पुराणकारों ने ऐतिहासिक पुरुषों और घटनाओं के साथ मिलाकर उनका रहस्य उस साधारण जनता तक पहुँचाया जो वेदों की सूक्ष्म, गंभीर, रहस्यमयी बातें नहीं समझ सकती थीं और जो "स्त्री शूद्र द्विजवन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचराः" की व्यवस्था से वेद पढ़ने और सुनने के अधिकारी नहीं थे।

इस चातुर्य का परिणाम वेदों के हक में बुरा सिद्ध हुआ। लोगों में यह भ्रांत धारणा समा गयी कि वेदों में पुरूवा नहुष, ययाति, गंगा, यमुना, व्रज, अयोध्या आदि वंशों नदियों, स्थानों और युद्धों का वर्णन है। उदाहरण के लिए विश्वामित्र और मेनका वेद के चमत्कारिक पदार्थ हैं। इधर दुष्यन्त और शकुन्तला पौराणिक मनुष्य हैं। पर दोनों को मिलाने से भरत को इन्द्र के यहाँ जाना पड़ा। इन्द्र भी आकाशीय चमत्कारिक पदार्थ है। ऐसी स्थिति में भरत और दुष्यन्त को, मेनका और विश्वामित्र के साथ जोड़ कर यह भ्रम उत्पन्न करा दिया गया कि वेदों में भरत वंश का वर्णन है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन वैदिक ऋचाओं का यदि विश्लेषण किया जाता है तो लेशमात्र भी मानुषी वर्णन नहीं मिलता।

पुराणों की वंशावली

अठारहों पुराणों में जो वंश वर्णन है वह दो विभागों में विभक्त है। एक वंश वर्णन महाभारत काल से पूर्व का है और दूसरा महाभारत के पश्चात् का है। यदि हम सभी पुराणों की वंशावलियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तो द्यावा-पृथिवी का सा परस्पर अन्तर प्राप्त होता है। जैसे विष्णुपुराण में मनु से लेकर महाभारतकालीन बृहद्वल तक ९२ पीढ़ी, वायुपुराण में ८२ पीढ़ी, भविष्य पुराण में ९१ पीढ़ी और भागवत में ८८ पीढ़ी लिखी हैं। इससे हम निःसंकोच यह कह सकते हैं कि प्रत्येक पुराण में जो वंश वर्णन है वह वंशानुक्रम नहीं बल्कि प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजाओं की नामावली मात्र है।

वंशावली को नामावली मानने के लिए हमारे सामने तर्क के अतिरिक्त प्रत्यक्ष प्रमाण और विश्वस्त सूत्र भी हैं। किसी भी पुराण की वंशावली को बिना किसी दूसरे से तुलना किए हुए यदि हम क्रमशः देखते हैं। तो उसमें भी भ्रम और सन्देह की गुंजाइश होती है। एक ही वंशावली में पिता और पुत्रों के नामों का ठीक ठीक निराकरण नहीं होता। जैसे महाभारत के प्रथम अध्याय में सूक्ष्म और विस्तार से दो वंशावलियाँ एक ही जगह दी गयी हैं पर एक में ३० पीढ़ी और दूसरी में ४३ पीढ़ी के नाम हैं। इससे यह अनुमान सहज किया जा सकता है कि ये वंशावली नहीं नामावली हैं। इसके अतिरिक्त महाभारत में नहुष और ययाति वंश चन्द्र वंश के अन्तर्गत हैं पर वाल्मीकीय रामायण में (७०।३६) लिखा है कि सूर्यवंशी अम्बरीष के नहुष, नहुष के ययाति और ययाति के नाभाग हुए। कालिदास के रघुवंश और वाल्मीकि-रामायण के रघुवंश में बहुत ही व्यत्यन्तर है। वाल्मीकि के अनुसार रघु दिलीप के प्रपौत्र ठहरते हैं किन्तु रघुवंशकार कालिदास ने रघु को दिलीप का पुत्र माना है।

इस प्रकार इन नामावलियों को वंशावली की संज्ञा देकर सूतों ने पुराणों में एक गम्भीर भ्रम उत्पन्न किया; जो पाठकों और श्रोताओं में आशंका और अविश्वास उत्पन्न किया करता है।

वायुपुराण के वर्ण्यविषय

अन्य पुराणों की भाँति वायुपुराण के भी वर्ण्य विषय, सर्ग, प्रति सर्ग, मन्वन्तर आदि से समन्वित हैं। वंशानुचरित इस पुराण में अन्य पुराणों की भाँति न्यून है। वायुपुराण के वंशानुक्रम और अन्य वर्ण्य विषयों में स्पष्टतः परोक्षवाद, प्रतीकवाद और रहस्यवाद निहित है। वायुपुराण पढ़ते समय दो दृष्टिकोण वैज्ञानिक और व्यावहारिक जब तक नहीं

Funding by IKS-MoE

अपनाये जायंगे तब तक वास्तविक रहस्य नहीं खुल सकता। क्योंकि पुराण वेदों की छाया की भाँति हैं। वेदों के रहस्यवाद और चमत्कार पूर्ण वर्णन पुराणों में बहुत ही कौशल के साथ रोचक कथाशैली में लिखे गए हैं। उदाहरण के लिए वायुपुराण के अन्तर्गत नहुष ययाति, तुर्वश आदि राजाओं के वर्णन दोनों पक्ष में अपना रहस्यपूर्ण स्थान रखते हैं। जब हम इन राजाओं की कथाओं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार करते हुए वैदिक वर्णन से तुलना करते हैं तो हमें राजा के वजाय आकाशीय पदार्थ ही जान पड़ते हैं। वायुपुराण में नहुष के लड़के का नाम ययाति था उसकी रानी शुक्र की कन्या थी। दूसरी रानी का नाम वृषपर्वा था। वैदिक आख्यान से संगति मिलाते हुए जब हम इस पौराणिक आख्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं तो ययाति, शुक्र की कन्या और वृषपर्वा सभी आकाशीय पदार्थ ही सिद्ध होते हैं। पुराणों में ययाति को नहुष का पुत्र माना गया है और नहुष के पिता का नाम आयु था। यजुर्वेद (५।२) में लिखा है कि “अग्ने आयुरसि” अर्थात् हे अग्नि तू ‘आयु’ है। यही आयु पुराणों में उर्वशी और पुरूरवा का पुत्र माना गया है। वेदों के वर्णन के अनुसार उर्वशी और पुरूरवा अग्नि निर्मित सूर्य और रश्मि हैं। अतएव उनके पुत्र आयु को अग्नि होना ही चाहिए। इसका साक्ष्य ऋग्वेद (१।३१।११) में इस प्रकार है--

“त्वमग्ने प्रथमं आयुं आयवे देवाः अकृण्वन्” अर्थात् हे अग्नि, पहले तूने आयु को बनाया और आयु से देवताओं को। इस उदाहरण से सिद्ध होता है कि आयु नामक अग्नि से सूर्य रश्मि--उषा आदि देवता बने।

आयु के पुत्र नहुष को आकाशीय पदार्थ सिद्ध करते हुए ऋग्वेद (८।८।३) कहता है--

“आयातं नहुस्पर्यन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः पिबाथो अश्विना मधु।” अर्थात् नहुष के ऊपर अन्तरिक्ष से कोई आते हैं। आगे चल कर ऋग्वेद (१०।९२।१२) में लिखा है कि सूर्यों के मास दिवि में विचरते हैं जिन्हें नाहुषी समझना चाहिए। नहुष के पुत्र ययाति के सम्बन्ध में ऋग्वेद (१।३१।१७) में लिखता है कि “अग्ने अंगिरस्वत् अंगिरः ययातिवत्” अर्थात् हे अग्नि, तुम अंगिरस् की भाँति हो और अंगिरस् ययाति की भाँति है। ऐतरेय ब्राह्मण (३।३४) में लिखा है कि ‘ये अंगारा आसन् ये आंगिरसोभवन्’ अर्थात् अंगार ही आंगिरस हैं। ऊपर के वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि ययाति अंगार की तरह है। ययाति की पत्नी शुक्र की कन्या है। शुक्र आकाशीय पदार्थ है ही। इससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि ययाति शुक्र की भाँति कोई नक्षत्र है। ययाति की दूसरी रानी वृषपर्वा वादलों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

वायुपुराण के अनुसार यदु, तुर्वसु, पुरु, द्रुह्यु और अनु ये पाँच पुत्र ययाति के हैं। इन पाँचों को आकाशीय पदार्थ के रूप में ऋग्वेद की विभिन्न बारह ऋचाओं ने स्वीकार किया है जिनके संक्षिप्त आशय इस प्रकार हैं--

१--जो विद्युत तुर्वश में है वह सूर्य की किरणों से आयी है। (१।४७।७)
२--अग्नि से तुर्वश यदु को दूर करते हैं। (ऋ० १।३६।१८)
३--प्रकाश से तुर्वश यदु को पार करो। (ऋ० १।७४।९)
४--अन्तरिक्ष का मार्ग पुरु है। (ऋ० ८।१०।६)
५--यदु सूर्य के द्वारा जाते हैं। (ऋ० ८।९।१८)
६--हुत पदार्थों को ले जाने वाले पुरु। (ऋ० १।१२।१२)
७--अनु का घर द्युलोक है। (ऋ० ८।६९।१८)
८--पुरु सूर्य के आश्रित हैं। (ऋ० १०।९४।५)
९--इन्द्र माया कर के पुरु बन जाता है। (ऋ० ६।४७।१८)
१०--तुर्वश यदु को शचीपति इन्द्र पार कर देगा। (ऋ० ४।३०।१७)
११--जो इन्द्र और अग्नि यदु तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पुरु में है। (ऋ० १।१०८।८)
१२--प्रातःकाल का दृश्य पुरु को प्रिय है। (ऋ० ५।१८।१)

सूर्य सिद्धांत में तारा और ग्रहों के परस्पर योग का नाम युद्ध है। और ययाति एक तारा का नाम है।

Funding by IKS-MoE

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आलोचना करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि वैदिक नक्षत्रवंश को पुराणों में राजवंश का रूप दिया गया है। अथवा नक्षत्रवंशों के अभिधानों का अनुकरण राजवंश की नामावली में किया गया है।

मत्स्य पुराण के ९९ वें अध्याय में महाराज शन्तनु का वर्णन है। शन्तनु के दो भाई देवापि और वाह्लीक और थे। शन्तनु का विवाह गंगा नदी से हुआ था। तर्कवादी की दृष्टि में मानव का नदी से समागम और विवाह किसी भी सूरत में ग्राहय नहीं वरं हास्यास्पद होता है। किन्तु जब हम प्रतीकवाद से प्रभावित रहस्यवादी पुराणों के भावार्थ वैदिक अलंकारों से समन्वित कर वैज्ञानिक दृष्टिकोण से करते हैं तो हमें स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक आकाशीय पदार्थों के अलंकारिक वर्णनों के रहस्य पुराणों द्वारा किस चातुर्य से व्यक्त किए गए हैं।

ऋग्वेद (१०।९८) में शन्तनु शब्द आया है। उनके दोनों भाई देवापि और बाह्लीक का भी नाम है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ९८ वां सूक्त वर्षा वर्णन का है। इस वर्णन में शन्तनु और उनके भाइयों का रहस्य खुल जाता है।

गंगा के साथ शन्तनु के विवाह का रहस्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत ही संभव और सन्देहहीन है। गंगा नदी का दूसरा नाम त्रिपथगा भी है। जो जल आकाश से गिरता है उसका नाम गंगा है––जो जमीन पर बहता है वह भी गंगा है और जो पाताल पर है वह भी गंगा नाम से विख्यात है।

भावप्रकाश में लिखा है––"गांगमासयुजे प्रायो वर्षति वारिदः। सर्वथा तज्जलं ज्ञेयं तथैव चरकेवचः।" अर्थात् आश्विन के महीने में जो पानी ऊपर से बरसता है उसे 'गांगेय' कहते हैं। आकाश में जब बिजली चमकती है तो जल चक्र में एक प्रकार की हरकत उत्पन्न होती है। तब आकाशगंगा पानी के रूप में नीचे बरसती है।

सुश्रुत (४६।२१) में शन्तनु एक अनाज का नाम है। इस धान्य का मुख्य जीवन वर्षा है। आश्विन मास में इस धान्य को विशेष जल की आवश्यकता पड़ती है। उपर्यक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो चुका कि आश्विन की वर्षा का नाम गंगा है। यह गंगा जब शन्तनु से समागम करती है तभी इसका तप्त हृदय शान्त होता है। उक्त गंगा को देवापि और आर्ष्टिषेण (शन्तनु के भाई) नामी विद्युत और जल शक्तियाँ प्रेरित कर के नीचे लाया करती हैं। यही शन्तनु और गंगा के विवाह का रहस्य है।

इसी प्रकार वायु पुराण में ऋषियों का जो वंशानुकीर्तन किया गया है वह भी वैज्ञानिक है। ७० वें अध्याय के प्रारम्भ ही में लिखा है कि––

"......प्रजापति ब्रह्मा ने सब के आधिपत्य पर क्रमशः भिन्न भिन्न को नियुक्त करने का उपक्रम किया। समस्त द्विजातियों, वीरुधों, नक्षत्रों, ग्रहों, यक्षों एवं तपस्याओं के राजा के पद पर सोम को अभिषिक्त किया। सभी अंगिरा के वंश में उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का राज्यपद बृहस्पति को दिया। भृगु गोत्र में उत्पन्न होने वाली प्रजाओं का राज्य पद काव्य (शुक्र) को दिया। इसी प्रकार आदित्यों का राज्यपद विष्णु को, मरुतों का वासव को दिया............।"

यही बात ऋग्वेद (८।३।४) भी स्वीकार करते हुए कहता है कि––

अयं सहस्रं ऋषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे। सत्यः सो अस्य महिमा गृणेशवो यज्ञेषु विप्रराज्ये।

यहाँ हजारों ऋषियों को विप्रराज्य अर्थात् चन्द्रमा क राज्य में बसने वाला कहा गया है। चन्द्रमा विप्र और द्विजराज भी कहलाता है। चन्द्रमा की चन्द्रिका से समस्त ओषधियाँ बनस्पतियाँ बढ़ती हैं। चन्द्रोदय से नक्षत्र उद्भासित होते हैं इसलिए चन्द्रमा सब का राजा माना गया है। अधिक शीतल होने से विप्र भी कहा जाता है।

वैदिक निघण्टु के अनुसार ऋषि शब्द का अर्थ नक्षत्र, किरण, आकाशीय चमत्कारिक पदार्थ और मनुष्य के शरीर में स्थित इन्द्रियों का वाचक है। अरुन्धती के सहित सप्तर्षि और ध्रुव तो आकाशीय ग्रह विख्यात ही हैं। ऋग्वेद में ध्रव के पिता उत्तानपाद का भी वर्णन है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में पितृयानोऽजवीथ्याश्च यदगस्त्यस्थ चान्तरम् आदि श्लोक द्वारा यह स्वीकार किया गया है कि आकाश एक संसार है वहाँ गली, ग्राम, नगर, युद्ध, ऋषि आदि सभी कुछ हैं। इसी सिद्धान्त के अनुसार भाव यही

Funding by IKS-MoE

है कि उत्तरी गोलार्ध में नामवीथी के अन्त में सप्तर्षि हैं और दक्षिणी गोलार्ध में अगस्त्य तारा के पास अजवीथी है। वहाँ ८८००० मुनि निवास करते हैं।

याज्ञबल्क्य स्मृति के इस साक्ष्य से यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि यह वही ८८००० ऋषि हैं जो नैमिषारण्य में एकत्र सूत जी से पुराणों की कथा सुना करते थे।

इसी प्रकार पुराणों में वर्णित अयोध्या, मिथिला, अंग, वंग, कलिंग, कीकट के भी भाव वैदिक विज्ञान और रहस्य से भरे हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के इस विवेचन से यह स्पष्ट ज्ञात हो गया कि शास्त्रकारों ने पुराणों के सम्बन्ध में जो लिखा है कि पुराण वेदों के साथ ईश्वर के निःश्वास के रूप में प्रकट हुए हैं और बिना पुराणों के अध्ययन मनन के वेदों का अध्ययन अधूरा होता है बिलकुल सही है। वैदिक संज्ञाओं, और परिभाषाओं तथा चमत्कारिक वर्णनों को अपने समय के राजाओं और घटनाओं से सामंजस्य मिला कर पुराणों की जो रचना की गयी है वह निःसन्देह स्तुत्य है।

सामान्य निरूपण

पौराणिक वंशावलियों पर विचार करते हुए हमने पीछे लिखा है कि ये वंशावलियाँ दो प्रकार के काल में विभक्त हैं। एक तो महाभारत काल से पूर्व की है और दूसरी महाभारत के बाद की है। प्रथम श्रेणी की वंशावलियों में वेदों के चमत्कारिक वर्णनों के अधिक अंश तत्कालीन इतिहास लिखने में ग्राहृय हुआ है। दूसरे प्रकार की वंशावलियों में वैदिक आख्यानों और चमत्कारों के बहुत कम अंश ग्रहण कर व्यक्तियों के इतिहास लिखे गए हैं। जो आगे चल कर धीरे धीरे एक में मिला दिये गए और आज हमारे लिए एक गोरखधंधा बन रहे हैं।

सृष्टि प्रक्रिया में ब्रह्माण्ड और विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन युक्ति-युक्त ढंग से किया गया है। तर्क और कल्पनाओं को भी प्रश्रय प्रदान किया गया है। भुवन विन्यास में तत्कालीन भूगोल का समीक्ष्यकारी वर्णन है। पाशुपतयोग, परमाश्रम विधि, योग निरूपण आदि अध्यायों द्वारा तत्कालीन प्रचलित और ग्राहृय योग क्रियाओं, रूढ़ियों और सिद्धियों को व्यक्त किया गया है।

नाथ पंथियों द्वारा स्वीकृत योग-मार्ग का प्रकृत स्वरूप उस समय था ऐसा ज्ञात होता है। सम्भवतः बौद्ध परम्परा ने उसी को अपनाकर उसको भ्रष्ट बना दिया था जिसका परिष्कृत रूप पुनः नाथपंथ में देखने को मिला। छियासी और सतासी अध्याय में गीतालंकार का वर्णन कर संगीतशास्त्र के स्वर, राग, मूर्च्छना आदि का सामान्य परिचय दिया गया है। शैव पुराण होते हुए भी तीन अध्यायों में (९६, ९७, ९८) विष्णु माहात्म्य का वर्णन कर इस पुराण ने अपनी पक्षपातहीनता का परिचय दिया है। इसी व्याज से श्रीकृष्ण चरित्र और रामचरित्र का भी वर्णन हो गया है। श्राद्ध, श्राद्ध माहात्म्य, श्राद्धकाल, श्राद्धीय सामग्री और विधियों का वर्णन भी किया गया है। प्रायः प्रत्येक पुराणों में श्राद्ध का वर्णन है, क्योंकि श्राद्ध हिन्दू धर्म का अनिवार्य अंग है। इस श्राद्ध वर्णन के कतिपय अध्याय मत्स्यपुराण के श्राद्ध वर्णन से मिलते जुलते हैं। केवल श्लोकों में थोड़ा सा परिवर्तन किया गया है। आचार, आश्रम और वर्ण व्यवस्था का भी संक्षेप म वर्णन है। गयाश्राद्ध महिमा ग्रन्थमध्य और ग्रन्थान्त में दो बार दी गई है। राजवंश वर्णन अधिक प्रामाणिक है केवल निन्यानवे अध्याय अधिक लम्बा है जो कि प्रक्षिप्त जान पड़ता है।

मत्स्यपुराण में इसके सम्पूर्ण श्लोकों की संख्या चौबीस हजार कही गई है परन्तु इसके एक सौ बारह अध्यायों के श्लोक गणना में नव कम ग्यारह हजार हैं। अतः मत्स्य पुराण के अनुसार तेरह हजार और इस पुराण के अनुसार बारह हजार श्लोकों का पता नहीं चलता। इसके चौथे अध्याय में जहाँ पुराणों की संख्या या नामावली दी गई है वहाँ 'एवमष्टादशोक्तानि पुराणानि वृहन्ति च। पुराणेष्वेषु बह्वो धर्मास्ते निरूपिताः (अ० १०४ श्लोक ११) अष्टादश पुराण तो कहा गया परन्तु गणना में सोलह ही होते हैं। अतः जान पड़ता है कि बीच में दो श्लोक छूट गए हैं

Funding by IKS-MoE

जिनमें दो पुराणों का उल्लेख रहा होगा। यहाँ यह विचारणीय है कि एक सौ चार अध्याय में ग्रन्थ समाप्त सा जान पड़ता है, क्योंकि उसमें ग्रन्थ माहात्म्य दिखा कर उपसंहार किया गया है। उसके बाद के गया माहात्म्य के आठ अध्याय अलग से जोड़े गये-से जान पड़ते हैं। इन आठ अध्यायों को प्रक्षिप्त कहा जाता है क्योंकि बीच में भी गया का माहात्म्य लिखा गया है।

भौगोलिक और ऐतिहासिक तथ्य

प्रत्येक पुराणों में सर्ग का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में पृथ्वी, ग्रहों, उपग्रहों, नक्षत्र और ब्रह्माण्ड निर्माण का जो क्रम है वह प्रायः सम्पूर्ण पुराणों में एक सा है। सप्तद्वीपा और सप्त समुद्रा पृथ्वी का वर्णन भी सब में पाया जाता है। द्वीपान्तर्गत वर्षों का वर्णन, उनकी सीमा और विस्तार प्रमाण के विषय में यही कहा जा सकता है कि ये आधुनिक परिमाणों से मेल नहीं रखते। जम्बू द्वीप, प्लक्ष द्वीप आदि द्वीपों का नामकरण आज के भौगोलिक नामों के प्रतिकूल है। यद्यपि उस समय के ऋषि मुनि अधिकतर अरण्यवासी थे, पृथ्वी परिक्रमा के भी आख्यान पुराणों में आये हैं तो भी जो वर्णन दिया गया है वह काल्पनिक जान पड़ता है। जो ऋषि दिव्यदृष्टि संपन्न थे, चन्द्रलोक तक यात्रा करते थे, उनके मुख से भूमण्डल का यह परिमाण या द्वीपों का ऐसा वर्णन कैसे हो सकता है? सम्भव है ऐसा वर्णन जनश्रुति के आधार पर किया गया हो। अथवा उस समय की भौगोलिक सीमा कुछ दूसरी रही हो। योजन परिमाण के विषय में तो यही कहना पड़ता है कि पुराणों के योजन या तो कोई छोटे परिमाण थे या ये वर्णन अतिरंजित हैं।

इस पुराण में समग्र भूवलय पर स्थित देशों का वर्णन किया गया है। वहाँ के निवासियों के आचार विचार, स्वभाव, सभ्यता, रुचि और भौगोलिक स्थिति (पर्वत, नदी) आदि का वर्णन भी है भारतवर्ष से अन्य देशों के नामों के अप्रचलित होने के कारण उनके विषय में कुछ कहना असंगत है। यहाँ केवल भारतवर्ष और इसके सीमावर्ती देशों के विषय में ही कहा जा सकता है। यह पुराण भारतवर्ष को जम्बू द्वीप का मध्य स्थान मानता है। जम्बू द्वीप सम्भवतः एशिया का प्राचीन नाम जान पड़ता है। भारत की सीमा पर स्थित देशों के प्राकृतिक वर्णन में सूत जी अपना हृदय खोल कर रख देते हैं, परन्तु वहाँ के निवासियों के आचार विचार को देख कर क्षुब्ध हो जाते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि प्राकृतिक असुविधाओं और अनेक प्रकार के अभावों के कारण सभ्यता और रहन-सहन का स्वरूप भिन्न भिन्न हो जाता है। इसके बाद जब वे पूरब से पश्चिम लम्बायमान हिमालय पर्वत के दक्षिण स्थित भारतवर्ष का वर्णन करने लगते हैं तब उनके हृदय में देशप्रेम और देशाभिमान इस प्रकार जाग्रत हो जाता है कि 'यह देश विचित्र है, कर्म भूमि है, यहीं से स्वर्ग मोक्ष आदि गति प्राप्त होती है।' भारतवर्ष, नामकरण का कारण भी विचित्र ढंग से बतलाते हैं। पैतालीसवें अध्याय में वह कहते हैं कि यहाँ भारती प्रजा रहती है, प्रजाओं के भरण पोषण के कारण यहाँ के मनु भरत (विश्व भरण पोषण कर जोई ताकर नाम भरत अस होई––तुलसी) कहलाते हैं। भरत नाम की इस व्याख्या (निर्वचन) के कारण ऐसे मनु की निवास भूमि भारत या भारतवर्ष कहलाई। प्राकृतिक सुविधाओं को देख कर वह पुनः कहते हैं कि इस देश को छोड़ कर कहीं अन्यत्र कर्म व्यवस्था नहींहै––

"नखल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते।"

× × ×

आगे 'भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदाः प्रकीर्तिताः'
समुद्रान्तरिताः ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम्।
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीप सागर संवृतः
आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गा प्रभवाच्चवै।

(वायु पु० अ० ४५ श्लो० ७८–८१)

Funding by IKS-MoE

'इस भारतवर्ष के नव भेद हैं जो समुद्र से घिरे हुय और परस्पर अगम्य हैं। उनमें यह भारतवर्ष जो कुमारी अन्तरीप से लेकर गंगोत्री तक फैला हुआ है नवाँ है, यह कह कर पुराणकार भारतवर्ष के अन्य आठ विभाग और वतलाते हैं। पता नहीं उन आठों की सीमा क्या थी। इस समय भी वहुत से भूगोलविद् कहा करते हैं कि प्राचीन काल में भारत की सीमा और भौगोलिक स्थिति आज से कुछ भिन्न थी। जान पड़ता है कि इस प्रकार की जनश्रुति उस समय भी थी। भारतवर्ष की नदियों, पर्वतों और प्रान्तों के वर्णन को देखकर उनके समग्र भारतवर्ष के भौगोलिक ज्ञान का पता चलता है। हिमालय से लेकर दक्षिण के सह्याद्रि, मलय, नीलगिरि, मध्य के विन्ध्य, श्रीशैल आदि पर्वतों सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु , विपाशा, वितस्ता, गंगा, यमुना, सरयू, गंडकी, इरावती, कौशिकी (कोसी), इक्षु, लोहित (ब्रह्मपुत्र) आदि उत्तर की (हिमवत्पाद् विनिःसृताः) हिमालय से निकलने वाली नदियों और विदिशा, वेत्रवती (वेतवा), महानद शोण (सोन) आदि विन्ध्य से निकलने वाली नदियों, गोदावरी, कृष्णा, तुंगभद्रा, भीमरथी, सुप्रयोगा, कावेरी आदि दक्षिणा-पथ की सह्य (पश्चिमी घाट) पाद से निकली नदियों का वर्णन कर विशाल भारत के भौगोलिक और सांस्कृतिक ऐक्य का परिचय दिया है। इन नदियों को विश्वस्य मातरः सर्वाः जगतपापहरा स्मृताः, कह कर सूत जी ने प्राचीन भारतीयों की प्रकृति के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम का मुग्धकारी वर्णन किया है। प्रान्तों के वर्णन प्रसंग में कुरु, पांचाल, शाल्व, सजांगल, भद्रकार, वत्स, किसष्णा, कुल्य, कुन्तल, काशी, कोशल, तिलंग, मगध, आदि देशों को मध्य देश कहा है। उदीच्य (उत्तर) देशों की नामावली में वाह्लीक, बाटधान, आभीर, तोयक, पल्हव, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, शक्र, सृद, केकय, ज्ञातमानिक (ये क्षत्रिय उपनिवेश थे) काम्बोज, दरद, वर्बर, पीन (चीनाश्च) तुषार, काश्मीर, तंगण आदि देशों का नाम आया है। इससे पता चलता है कि उस समय तक अफगानिस्तान, फारस, तुर्किस्तान, बुखारा आदि देशों में क्षत्रियों का राज्य था और ये भारतवर्ष के उपनिवेश थे। प्राच्य देश आन्ध्रवाक, सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवंग, वंगेय, मालद, प्राग्ज्योतिष (आसाम) मुण्ड (छोटा नागपुर के पास के पहाड़ी जिले) विदेह (मिथिला) ताम्रलिप्तक, माल मगध, गोविन्द आदि कहलाते थे। दक्षिणापथवासी जनपद पाण्डय, चोल, केरल, कुल्या सेतुमा, मूषिका, कुमुना, वनवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, अभीर, इषीक, आटवी, पुलिन्द, विदर्भ, दण्डक, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्धन नैर्णिक, कुन्तल, आन्ध्र, उद्भिद् नलमालिक आदि कहलाते थे। विन्ध्य के समीपवाले जनपदों में भानुकच्छ, कच्छ, सुराष्ट्र, आनर्त, मालव, करुष, तुमुर, तुम्बुरु, निषध, अवन्ति, बीतिहोत्र आदि थे । इनके अतिरिक्त पर्वताश्रयी जनपद भी थे जिनमें हंसमार्ग, क्षुपण, तंगण, खस, त्रिगर्त आदि मुख्य थे । इन जनपदों की नामावली देखकर यह सिद्ध होता है कि पुराणकाल में या उसके पूर्व भारत छोटे-छोटे जनपदों में विभक्त था । जिनका विभाग, प्राकृतिक सीमाओं, बोलियों, जातिविशेष (खस, पुलिन्द) के आधार पर किया जाता था । उस समय बृहत्तर भारत का विस्तार पूरब में प्राग्ज्योतिष (आसाम) से लेकर पश्चिम में ईरान तक और दक्षिण में कन्याकुमारी से लेकर उत्तर में रूसी तुर्किस्तान तक था। इतने विशाल भूभाग में भारतीय संस्कृति का प्रसार था । सब पुराणों के पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि वैदिक काल में जिस प्रकार सप्त सिन्धु और गंगा यमुना का महत्व था उसी प्रकार पुराणकाल में गोदावरी का महत्व था[1] उसके प्राकृतिक सौन्दर्य पर लोग मुग्ध थे ।

जिस प्रकार भुवनविन्यास प्रकरण को पढ़कर तत्कालीन भौगोलिक रहस्यों का पता चलता है उसी प्रकार इस पुराण के राजवंश वर्णन के प्रसंग में बहुत से ऐतिहासिक तथ्यों का पता चलता है । मन्वन्तर और राजवंश वर्णन पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि पूर्व काल के सप्तसिन्धु के निवासी आर्य किस प्रकार पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण जाकर अपना राज्य स्थापन, संस्कृति विस्तार और अपने नाम पर उन नवीन राज्यों और नगरों का नामकरण करते थे । निन्यानबे अध्याय में तुर्वसुवंश वर्णन में यह दिखाया गया है कि

---

[1] सहस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदावरी नदी, पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ।

Funding by IKS-MoE

ययाति पुत्र तुर्वसु के वंशलोप होने पर पुरुवंशी कुमार दत्तक पुत्र स्वीकार किया गया । उसी दत्तक पुत्र की अगली पीढ़ी में जनापीड़ उत्पन्न हुये जिनके पांड्य, केरल, चोल और कुल्य हुए, जिन्होंने सुदूर दक्षिण जाकर पांड्य ,केरल, चोल और कुल्य राज्यों को स्थापित किया । उसी वंश में गांधार नामक राजा हुआ जिसके नाम से गान्धार जनपद प्रसिद्ध हुआ । इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारतीयों के हृदय में नवीन उपनिवेश बसाने और संस्कृति प्रचार का उत्साह सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के यूरोपीय लोगों के समान था ।

ऋषिवंश, इक्ष्वाकुवंश और पुरुवंश के वर्णन से वैदिक काल से लेकर पुराण काल तक के राजाओं और ऋषियों की परम्परा का बहुत कुछ परस्पर संगत ज्ञान प्राप्त हो जाता है । अर्जुन की वंश परम्परा का वर्णन उस उदयन नक भविष्य कथन के रूप में किया गया है जो गौतम बुद्ध का समकालीन था । इस प्रकार गौतम बुद्ध के पूर्व के इतिहास पर इस वंश परम्परा वर्णन द्वारा एक हल्का सा प्रकाश पड़ता है । यदि पुराणों पर वह अविश्वास न रखा जाय, जो बहुत कुछ अपनी संकीर्ण भावनाओं और पाश्चात्य इतिहासज्ञों को ही सब कुछ मान लेने के कारण है तो बहुत कुछ अतीत की सामग्री इन पुराणों से प्राप्त की जा सकती है । इसीलिये पार्जीटर आदि कतिपय यूरोपीय विद्वान् भी पुराणों की राजवंश परम्परा को इतिहास के लिये उपयोगी सामग्री मानते हैं। भारतीय विद्वानों ने भी अब शनैः शनैः इधर ध्यान देना प्रारंभ किया है । यदि पुराणों की ऐतिहासिक सामग्री प्रकाश में लाई जाय तो इससे बहुत कुछ इतिहास और समाज का कल्याण हो सकता है । प्राचीन आर्यों की ऐतिहासिक खोजों और अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं से आज की सामाजिक परम्परा के नवनिर्माण में भी सहायता प्राप्त हो सकती है ।

काव्य सौन्दर्य्य

इस पुराण में काव्य सौंदर्य ढूँढ़ना इतिहास में काव्यात्मक सौंदर्य ढूँढ़ने के समान है । इसमें मानव जीवन के उपयोगी तथ्यों को प्राप्त किया जा सकता है, भावनाओं को नहीं । यहाँ तो सूतजी सृष्टि, विसृष्टि और पाशुपत योग वर्णन में व्यस्त हैं, उन्हें हृदय को रमाने वाले स्थलों और सामग्रियों को लाने का अवकाश कहाँ ? उनके सामने तो शौचाचार, परमाश्रमविधि, कल्पसंख्या, भुवनविन्यास आदि से संबंध रखने वाले प्रश्नों की झड़ियाँ लगी हैं । परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि यह पुराण काव्यात्मक आनन्द और सौंदर्य से सर्वथा शून्य है । स्तुति, ऐश्वर्य वर्णन, गन्धर्वों के रूप वर्णन प्रसंग में सूत जी ने उपमाओं का उपयुक्त प्रयोग किया है । भुवनविन्यास प्रसंग में तो मेरुगिरि का वर्णन करते समय स्वर्णाभ पर्वतशिखरों को मृदु पद्मपत्रों की तुलना में रखते हुये उनको तनिक भी संकोच नहीं होता है । चन्द्रप्रतीकाशा पूर्णचन्द्रनिभानना (पूर्णचन्द्र के समान मुखवाली) गन्धर्व कुमारियों के वर्णन और मानसरोवर के रत्न जटित सोपान से उतरती हई अप्सराओं के सौंदर्य का आकर्षण और उनकी भावभंगिमा उन्हें भी आकृष्ट करती है । हरिवर्ष और केतुमाल के वर्णन में प्राकृतिक छटा और श्वेतनील शिखरवाले शिखरियों की शोभा का मनोहारी वर्णन किया है । वलय, अंगद केयर हार कुण्डल से आभूषित ललनाओं और चित्र विचित्र मुकुट पहननेवाले मालाधारी रंग बिरंगे वस्त्र पहननेवाले लोगों का निरीक्षण करना वे भूलते नहीं––

(वलयांगद केयूर हार कुण्डल भूषिता, स्राग्विणाश्चित्र मुकुटाश्चित्राच्छादन वाससः) इसी प्रकार गिरिवर की शोभा का वर्णन––

चन्द्रतुल्यप्रभैः कान्तैश्चन्द्राकारैः सुलक्षणैः
श्वैत वैदूर्य कुमुदैश्चित्रोऽसौ कुमुद प्रभः ।
अनेक चित्रकोद्यानो नैक निर्झर कन्दरः ।
महासानुदरी कुंजैर्विविधैः समलंकृतः ॥

Funding by IKS-MoE

(वह पर्वत स्वयं कुमुद के समान धवल, उसके सरोवरों में विकसित चन्द्रमा की ज्योत्स्ना के समान कान्तिमान कुमुद उसकी धवलिमा को द्विगुणित कर रही है। साथ ही विचित्र पर्वतोद्यान ,अनेक झरनों ,कन्दराओं उत्तुंग शिखरों और विविध कुंजों से भी वह गिरि सुशोभित है ।) इन पंक्तियों में अधिक काव्य सौंदर्य प्रस्तुत किया गया है । इनमें हृदय का उल्लास भी प्रतिविम्बित होता है । गिरि से धरणीतर पर उतरती हुई भ्रान्त-तोया तरंगिणी के वर्णन में सूत जी की काव्य प्रतिभा का चमत्कार दिखाई देता है । आशुगामिनी महानदी का पारिजात नामक महाशैल पर गिरना ,उस आशुगामिनी (तीव्र धार से वहनेवाली) के हृदय की व्यग्रता व्यक्त करता है जो अत्यंत स्वाभाविक और सजीव है—

अनेकाभिः स्रवन्तीभिराप्यायित जलाशिवा,
एवं शैल सहस्राणि सादयन्ती महानदी ।

पारिजाते महाशैले निपपाताशु गामिनी । वायु पु० अ० ४२ श्लोक ५३-५४ (वह कल्याणी महानदी जिसमें अनेक झरनों का जल मिला हुआ है, अनेक पर्वत शिखरों को कुचलती हुई बड़े वेग से उस पारिजात शैल पर उतरी)

तस्य कुक्षि स्वनेकासु भ्रान्ततोया तरंगिणी
व्याहत्य मानसंवेगा गण्ड शैलैरनेकशः ।
संविद्यमान सलिला गता च धरिणी तले ॥ अ० ४२ श्लोक ५५-५६ ।

(उस पर्वत की अनेक कन्दराओं में उस तरंगिणी को निकलने के लिये मार्ग ढूँढ़ने में कठिनाई होती है । अन्त में अनेक गण्डशैलों के आघात से उसकी धारा तीव्र हो जाती है तब वह धरणीतल पर उतरती है) । इन उपर्युक्त पंक्तियों में अरण्यवासी ऋषि का प्रकृति निरीक्षण पाया जाता है जो मरुभूमि के मध्य लहलहाते शाद्वल प्रदेश के समान है जहाँ पाठक को आनन्द और शान्ति मिलती है । स्तुति वर्णन में भी शिव और विष्णु के प्रति अनन्यभाव और आत्मनिवेदन की आकुलता, भक्त की अन्यथा शरणं नास्ति (अब दूसरा कोई आधार नहीं) वाली विशेषता के साथ मुखरित हो जाती है ।

वायुपुराण का विकासवाद

सभ्यता और संस्कृति के विकास के विषय में वायुपुराण अपना तर्कसंगत सिद्धांत सामने रखता है । इसके अनुसार मनुष्य प्रारंभ में वनेचर थे । पश्चात् उन्होंने ग्रामीण और नागरिक जीवन अपनाया । पहले वे पशुओं की भाँति शीतातप सहा करते थे परन्तु कालान्तर में उनकी बुद्धि का विकास हुआ और वे शीतातप से बचने के लिये उपाय सोचने लगे । धीरे धीरे अपने अंगों को ढंकने और शीत से रक्षा के लिये वस्त्रों का आविष्कार किया[1] पहले वे निकेतनहीन और निकामचार (इच्छनुसार आहार विहार करनेवाले) थे । पीछे वे गृही और आचारप्रिय बने ।[2] सर्वप्रथम उन्होंने वहीं अपना घर पर्वतों पर और नदियों के किनारे बनाया जहाँ उनकी रुचि होती थी और जहाँ उनको प्राकृतिक सुख सामग्री प्राप्त होती थी[3] । धीरे धीरे खेट (टोला) ग्राम, पुर और नगर आदि का निर्माण किया । घर बनाते समय अन्तर्गृह निर्माण के लिये लंबाई चौड़ाई में समानुपात कैसे हो इस कठिनाई को दूर करने संज्ञाओं एवं पर्यायवाची शब्दों के अभिधेय पर प्रकाश पड़ता है ।

---

[1] शीत वातातपैस्तीव्रैस्ततस्ताः दुःखिता भृशम् ।
द्वन्द्वैस्ताः पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥ अ० ८ श्लो० ९५।

[2] कृत्वा द्वन्द्व प्रतीकारं निकेतानि हि भेजिरे ।
पूर्वं निकाम चारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ॥ अ० ८।९६

[3] यथायोग्यं यथा प्राति निकेतेष्ववसन् पुनः ।

Funding by IKS-MoE

इस पुराण के कतिपय अध्यायों के (चतुराश्रम विभाग आदि) पढ़ने से मनुष्य का सामाजिक विकास, सभ्यता एवं कला कौशल का किस प्रकार क्रमिक विकास हुआ यह रहस्य व्यक्त होता है । जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य को ईश्वर ने स्वयं आकर इन वातों को सिखाया—उनको इस पुराण का अवलोकन करना चाहिये ।

इन पुराणों के सृष्टिवर्णन आदि असत्य जान पड़ने वाले आख्यानों के विषय में यह समझना चाहिये कि ये वर्णन अधिकतर रूपक शैली या श्रुतिकात्मक शैली में हैं । इनको पढ़कर घटना की सत्यता पर ध्यान न देकर उन आख्यानों से प्रतिध्वनित होनेवाले सत्य पर ध्यान देना चाहिये । जैसे समुद्र मन्थन के द्वारा यह संकेत किया गया है कि अमृत और विष दोनों इस संसार रूपी महासागर से ही निकले हुये हैं। किसी उत्तम वस्तु की प्राप्ति या आविष्कार में शक्ति (असुर) और ज्ञान (सुर) या सत्व (सुर) और रज या तम (असुर)के परस्पर सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु उपभोग के समय ज्ञान और सतोगुण की आवश्यकता है अन्यथा आसुरी शक्ति प्रवल होकर विश्व संहार कर देगी । यही कारण है कि असुरों को अमृतपान नहीं कराया गया । नदियों, पर्वतों, वृक्षों और औषधियों की सृष्टिकथा भी रहस्यात्मक है । इसी प्रकार भावात्मकसृष्टि काम, क्रोध, मोह, द्वेष, हिंसा, अहिंसा आदि का वर्णन भी है । अब तक प्रायः लोग पुराणों की कथाओं के ही सत्यासत्य पर विचार कर पुराणों को उपेक्ष्य सिद्ध कर उनके पठनपाठन की उपेक्षा करते आये हैं परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि पुराणों में वर्णित जीवन के प्रति प्राचीन ऋषियों के सिद्धांतों, मानव की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, और विविध परिस्थितियों तथा उनका जीवन प्रभाव और उनसे प्राप्त समाज निर्माण संवंधी प्रेरणाओं पर ध्यान दिया जाय । हिन्दू समाज अब तक अपनी परम्परा पर ही आस्था रखने वाला है ।

हमारे देश में पुराणों के पाठ का बहुत महत्व स्वीकार किया गया है । आजतक धर्मप्रेमी जनता इसको पुण्यजनक मानती है । परन्तु अब धर्म के वास्तविक तथ्यों को समझना चाहिये । धर्म इहलोक, परलोक दोनों से संबंध रखता है । पुराणों में वर्णित कथाओं में भी यही सत्य रक्षित है । उसको पढ़कर या सुनकर प्रत्यक्ष जीवन में भी उसका उपयोग करना चाहिये । पुराणों के अध्ययन से हमें विदित होता है कि हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार मुक्ति का उपाय निकाला । अंगुलियों से नाप नाप कर कोठरियाँ बनाने का प्रारम्भ किया । मित्वामित्वाऽऽत्मनोऽङ्गुलैः मनोरथानि प्रमाणाणि तदा प्रभृति चक्रिरे । इस प्रकार माप क्रिया करते करते जव उनको माप ज्ञान हुआ तव दूरी नापने के लिये लाल, गोकर्ण, वितस्ति अरत्नि आदि मापदण्ड वने । यह परिभाषा वच्चों को समझाने के लिये वनाई गई थी ।[1] इसी प्रकार धनुर्दंड (चार हाथ लंवा) गव्यूति (दो कोस जो दो हजार धनुर्दण्ड के बराबर होता है ।) और आठ हजार धनुष परिमाण का योजन (अष्टौ धनुः सहस्राणि) निश्चित किया गया । शत्रु से आक्रमण से बचने के लिये दुर्ग बनाये गये । आवश्यकतानुसार सौध ,वप्र (गुम्वज) प्राकार (चहार दीवारी), स्वस्तिक द्वार, कुमारीपुर, (अन्तःपुर) स्रोतसी संहतद्वार (वह द्वार जिसके दोनों ओर खाइयाँ खुदी रहती हैं) आदि बनने लगे । आने जाने की सुविधा के लिये, जिससे मनुष्य, घोड़े, हाथी, रथ आदि के आवागमन में वाधा न हो, राजपथ (चौड़ी पक्की सड़कें) बनाये गये । इस दिशा में भी मानव मस्तिष्क ने घण्टापथ, शाखारथ्या (ब्रांच स्ट्रीट) गृहरथ्या (घर के भीतर बनी सड़कें) आदि का निर्माण कर अपनी आवश्यकता पूरी की और रचना कौशल दिखाया । उस आदिम काल में भी मनुष्यों के प्रत्येक कार्य में वैज्ञानिकता और मर्यादा देखी जाती है । उन मनुष्यों ने नगर, पुर आदि का निर्माण आजकल के अवैज्ञानिक बेतुके गावों (जो कि भारतीय संस्कृति के स्थान माने जाते हैं) की भाँति नहीं किया प्रत्युत् लंबाई, चौंड़ाई में अनुपात रखकर किया । इस प्रसंग में इस पुराण में यह स्पष्ट कहा गया है कि उन आदिम मानवों को गृह, उपगृह और अन्तर्गृह बनाने का ज्ञान वृक्षों और उनसे

---

[1] तालः स्मृतः मध्यमया, गोकर्णश्चाप्यनामया, कनिष्ठया वितस्तिर रत्नि रंगुल पर्वणि । अ० ८ श्लोक १०३, १०४ ।

Funding by IKS-MoE

निकली हुई शाखाओं उपशाखाओं को देखकर प्राप्त हुआ । घरों का नामकरण भी गुणानुसार हुआ । जैसे, घर का नाम प्रासाद इसलिये पड़ा कि उसको देखकर या उसमे रहने से मन को प्रसन्नता प्राप्त होती है—

प्रसीदति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः ।
तस्माद् गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः ।।

उन शालाओं में रहने से मन प्रसन्न होता था इसलिये उन घरों और शालाओं का नाम प्रासाद रखा गया । इसी प्रकार इस पुराण में यत्र तत्र शब्दों की व्युत्पत्ति गुणानुसार की गई है । जिससे आधुनिक प्रचलित मुक्ति, अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों जीवन का लक्ष्य होना चाहिये । प्राचीन सत्यद्रष्टा ऋषियों ने अध्यात्म का समर्थन जीवन को मानव वरदान समझने के लिये किया । किसी भी अवस्था में निराश न हो, अपने को सर्वदा ऊपर उठाने का प्रयत्न करें, अपने स्व को विश्व के स्व के साथ संयुक्त कर विश्व में आत्मवत् सर्व भूतेषु (सबको अपने ही समान समझो) को प्रत्यक्ष कर कल्याण पथ प्रशस्त करें । इस प्रकार पुराणों के शाश्वत सिद्धांत को हृदयंगम करना ही पुराणपाठ या श्रवण का उद्देश्य होना चाहिये ।

मूलपाठ और अनुवाद

मध्यकाल की अनियन्त्रित स्वार्थपूर्ण यशोलिप्सा और आधुनिक उपेक्षावृत्ति के दुष्परिणाम से वायुपुराण भी सुरक्षित न रह सका । ऐतिहासिक अध्ययन और वैज्ञानिक अनुसंधान से स्पष्ट विदित होता है कि मध्ययुग के स्वार्थसंघर्ष में पड़कर यह पुराण भी लुप्तांग और अधिकांग बन गया । लुप्तांगों की पूर्ति प्रक्षिप्तांशों द्वारा किये जाने की चेष्टा स्पष्ट प्रतीत होती हैं । यह प्रक्षेपणकला अवैज्ञानिक ढंग और अनधिकार चेष्टा द्वारा संपादित हुई है । ग्रंथ के अंत मे उपसंहार के बाद पुनः किये गये गयामहात्म्य के वर्णन में 'प्रक्षेपण प्रयास' तिल तुंडल न्याय चरितार्थ कर रहा है ।

मध्यकाल और वर्तमानकाल की इस स्वार्थपूर्ण रगड़-झगड़ के बीच मूल वायुपुराण के जो संस्करण संपादित और मुद्रित हुए हैं उनमें "ननु नच" की पर्याप्त गुंजाइश है । ऐसी स्थिति में अनुवादकार्य में हमें पदे पदे बौद्धिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । आनन्दाश्रम पूना, निर्णय सागर प्रेस बंबई और कलकत्ता से प्रकाशित वायुपुराण के संस्करणों में अनेक स्थलों पर परस्पर द्यावापृथवी का अन्तर है । इसलिये संभव है क्वचित् विवादग्रस्त मूलपाठ के अनुवाद संदेहास्पद हों फिर भी यथासाध्य हमने पाठ संबंधी दुर्बलताओं को दूर करने का प्रयत्न किया है । जहाँ भ्रम विच्छेद नहीं कर सके वहाँ विवश होकर प्रश्नसूचक (?) चिन्ह लगा कर हमनेसंदेह प्रकट किया है । अन्यत्र संदिग्ध स्थलों में हमने अपनी पादटिप्पणियों द्वारा अपने मत भी व्यक्त किये हैं ।

प्रस्तुत पुराण का अनुवाद राष्ट्रीय हित और समाज की उपयोगिता को दृष्टिगत रखते हुए सर्वजनीन, सरल सुबोध भाषा और कथानक शैली में करने का प्रयास किया गया है । अनुवाद की भाषा-शैली और भावाभिव्यक्ति में विवेकशील पाठकों और आलोचकों को द्वैत अवश्य प्रतीत होगा, क्योंकि ग्रन्थ के आरंभ के कुछ अध्यायों का अनुवाद बहुत पहले एक अन्य विद्वान द्वारा किया गया है, न जाने किस कारणवश पूरा अनुवाद करने में वे असमर्थ रहे । तदनन्तर शेषांश को पूरा करने का भार मुझे सौंपा गया । वायुपुराण की महत्ता और अनुवाद की लोकप्रियता को दृष्टिगत रखते हुए मुझे इस अनुवाद कार्य में जो कठिनाइयाँ पड़ीं उन्हें निराकृत करने तथा पूर्वांश अनुवाद की पांडुलिपि को संपादित करने में मुझे अपने जिन गुरुजनों, मित्रों और सहयोगियों से सहायता मिली है, उनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूँ ।

Funding by IKS-MoE

वायुपुराण का यह अनुवाद पहले ही पूरा हो चुका था किन्तु बहुत दिनों तक प्रेस में जाने से रुका रहा। उसका कारण यह था कि मुझे एकाएक संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद का कार्य छोड़कर सम्मेलन के सहायकमन्त्री पद का भार संभालना पड़ा। कार्य की जटिलता तथा विविधता के कारण मैं उसकी पाण्डुलिपि में यथेष्ट परिश्रम न कर सका और इसका भार मैंने अपने अनन्य मित्र पण्डित घनश्याम त्रिपाठी बी० ए०, व्याकरणाचार्य, साहित्यरत्न को सौंपा। उन्होंने इसमें पर्याप्त श्रम किया है। मित्रवर पण्डित देवदत्त शास्त्री का मैं विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने अनेक बहुमूल्य सुझाव और सहयोग मुझे दिए हैं।

इस प्रकार भारतीय वाङ्मय के अमररत्न वायुपुराण का यह अनुवाद भारतभारती भक्तों के समक्ष रखते हुए हम सफल मनोरथ होने की आशा करते हैं। साथ ही यह विश्वास भी है कि:—

"करकृतमपराधंक्षन्तुमर्हन्ति सन्तः"

रामप्रताप त्रिपाठी

Funding by IKS-MoE

विषय सूची

अध्याय विषय पृष्ठ

(प्रक्रिया-पाद)

१—अनुक्रमणिका कथन १
२—बारह वर्ष तक चलने वाले यज्ञ का वर्णन ९
३—सृष्टि-प्रकरण का वर्णन ११
४—सृष्टि-प्रकरण का वर्णन १२
५—सृष्टि-प्रकरण का वर्णन १६
६—सृष्टि-प्रकरण का वर्णन १८

(प्रकियापाद समाप्त)

७—प्रतिसन्धि वर्णन २२
८—चतुराश्रम विभाग ३३
९—देवादि सृष्टि वर्णन ३४
१०—मन्वन्तर वर्णन ३९
११—पाशुपत योग ४३
१२—योगोपसर्ग निरूपण ४६
१३—योग द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यों का वर्णन ४८
१४—पाशुपत योग निरूपण ४९
१५—पाशुपत योग निरूपण ५१
१६—शौचाचार लक्षणों का वर्णन ५२
१७—परमाश्रम विधि का कथन ५३
१८—यतियों के लिए प्रायश्चित्त का विधान ५४
१९—अरिष्ट निरूपण (मृत्यु सूचक अपशकुन का निरूपण) ५५
२०—ओंकार प्राप्ति के लक्षणों का वर्णन ५७
२१—कल्प निरूपण ५९
२२—कल्प संख्या निरूपण ६२
२३—माहेश्वरावतार योग का वर्णन ६४
२४—शर्व-स्तुति ७२
२५—मधु-कैटभ की उत्पत्ति और विनाश का वर्णन ८०
२६—स्वरोत्पत्ति निरूपण ८४
अध्याय विषय पृष्ठ
२७—महादेव के तनु (शरीर) का वर्णन ८६
२८—ऋषि वंश का वर्णन ८९
२९—अग्निवंश का वर्णन ९१
३०—दक्ष शाप का वर्णन ९३
३१—देव वंश का वर्णन १०५
३२—युग-धर्म १०८
३३—स्वायम्भुव वंश का वर्णन १११
३४—जम्बूद्वीप का वर्णन (पृथ्वी का विस्तार द्वीप, समुद्र, देश, नदी आदि का वर्णन ११३
३५—जम्बू द्वीप का वर्णन ११७
३६—भुवन-विन्यास १२०
३७—भुवन-विन्यास १२१
३८—भुवन-विन्यास १२२
३९—भुवन-विन्यास १२६
४०—भुवन-विन्यास १२८
४१—भुवन-विन्यास १३०
४२—भुवन-विन्यास १३३
४३—भुवन-विन्यास १३६
४४—भुवन-विन्यास १३८
४५—भुवन-विन्यास १३९
४६—भुवन-विन्यास १४४
४७—भुवन-विन्यास १४६
४८—भुवन-विन्यास १४९
४९—भुवन-विन्यास १५१
५०—ज्योतिष्प्रचार १५९
५१—ज्योतिष्प्रचार १६८
५२—ज्योतिष्प्रचार १७२
५३—ज्योतिमण्डल के विस्तार का वर्णन १७६
५४—नीलकण्ठ की स्तुति १८१

Funding by IKS-MoE

अध्याय	विषय	पृष्ठ
५५	—लिंगोद्भव स्तुति	१८६
५६	—पितर वर्णन	१९०
५७	—यज्ञ प्रथा का वर्णन	१९५
५८	—चारों युगों का आख्यान	१९८
५९	—ऋषि लक्षण	२०९
६०	—महास्थान तीर्थ में वेद शाखाओं का प्रणयन	२१६
६१	—प्रजापति का वर्णन	२२१
६२	—पृथ्वी का दुहा जाना	२३०
६३	—पृथु वंश का वर्णन	२४०
६४	—वैवस्वत सर्ग का वर्णन	२४३
६५	—प्रजापति वंश का वर्णन	२४५
६६	—कश्यप की प्रजा सृष्टि	२५३
६७	—कश्यप की प्रजाओं की सृष्टि	२६१
६८	—कश्यप की सन्ततियों की सृष्टि	२६८
६९	—कश्यप की प्रजा सृष्टि	२७०
७०	—ऋषियों के वंशों का वर्णन	२८८
७१	—श्राद्ध की प्रक्रिया	२९३
७२	—श्राद्धकल्प	२९७
७३	—श्राद्ध-कल्प	३००
७४	—श्राद्ध-कल्प	३०४
७५	—श्राद्ध कल्प	३०६
७६	—श्राद्ध कल्प	३१०
७७	—श्राद्ध कल्प	३१३
७८	—श्राद्ध कल्प	३२०
७९	—श्राद्ध कल्प	३२४
८०	—श्राद्ध में दान का फल	३३०
८१	—विशेष तिथियों में श्राद्ध के करने का फल	३३३
८२	—विशेष नक्षत्रों में श्राद्ध करने का फल	३३५
८३	—श्राद्ध में भिन्न भिन्न समय में तृप्ति के साधन भूत विशेष द्रव्य, गया में श्राद्ध के फल तथा ब्राह्मण की परीक्षा आदि	३३६
८४	—श्राद्ध विधि के प्रसंग में वरुण के वंश का वर्णन	३४३
८५	—श्राद्धीय प्रसंग में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन	३४८
८६	—वैवस्वत मनु के वंश प्रसंग में गान्धर्वों की मूर्च्छना का वर्णन	३५०
८७	—गीतों के अलंकारों का वर्णन	३५३
८८	—वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन	३५५
८९	—वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन	३६६
९०	—चन्द्रमा का जन्म वृत्तान्त	३६८
९१	—चन्द्र वंश वर्णन	३७०
९२	—चन्द्रवंश वर्णन	३७७
९३	—चन्द्रवंश वर्णन	३८२
९४	—कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्ति विवरण	३८८
९५	—ज्यामद्य वृत्तान्त कथन	३९१
९६	—विष्णु वंश वर्णन	३९४
९७	—विष्णु माहात्म्य कीर्तन	४०७
९८	—विष्णु माहात्म्य कीर्तन	४१७
९९	—तुर्वस्वादि वंश वर्णन	४२४
१००	—मन्वन्तर निसर्ग वर्णन	४४७
१०१	—भूर्लोकादि व्यवस्था वर्णन	४५९
१०२	—प्रतिसर्ग वर्णन	४७८
१०३	—सृष्टि वर्णन	४८५
१०४	—व्यास के संदेह का निराकरण	४८९
१०५	—गया माहात्म्य	४९५
१०६	—गया माहात्म्य	४९८
१०७	—गया माहात्म्य	५०३
१०८	—गया माहात्म्य	५०६
१०९	—गया माहात्म्य	५११
११०	—गया माहात्म्य	५१५
१११	—गया माहात्म्य	५१८
११२	—गया माहात्म्य	५२३

Funding by IKS-MoE

श्री गणेशायनमः

वायु पुराण

प्रक्रिया-पाद

पहला अध्याय

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥

श्रीनारायण एवं नरोत्तम नर तथा देवी सरस्वती और व्यासजी को नमस्कार करने के बाद जय (अर्थात् वायु पुराण) कहना चाहिए ।१॥

सत्यवती के हृदय-नन्दन पराशर के पुत्र श्री व्यासजी की जय हो, जिनके मुख कमल से निकले वाङ्मय अमृत का पान सारा संसार करता है ।२॥

समस्त जगत् के पति, देव, ईशान, नित्य, अचल, अविकारी, महात्मा, महादेव, लोक-कर्त्ता, सर्वज्ञ, अजित एवं भूत भविष्य और वर्त्तमान के प्रभु सत्पति ब्रह्मा की मैं शरण में हूँ । जिस जगदीश के अनुपम ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य तथा धर्म साथ ही साथ सिद्ध हैं, जो इन सत्-असत-रूप समस्त पदार्थों का पालन करते हैं, जिनमें सारे पदार्थ उत्पन्न होने के लिये ही प्रविष्ट होते हैं तथा जो भुवनभावन लोकतत्वज्ञ तत्ववेत्ता भगवान् योग के बल से स्थावर, जङ्गम और समस्त भूतों की सृष्टि करते हैं, पुराण की कथाएँ जानने की लालसा से मैं उन्हीं अजन्मा, सर्वकर्मा, लोकसाक्षी, चित्पति प्रभु की शरण में आया हूँ । ब्रह्मा वायु महेन्द्र तथा ऋषि श्रेष्ठ वसिष्ठ एवं उनके दौहित्र परम कीर्तिमान जातूकर्ण्य ऋषि प्रकृष्ट पुण्यात्मा कृष्णद्वैपायन को नमस्कार करके समाहितचित्त होकर धर्म अर्थ तथा न्याय से भरे पूरे शास्त्रों से विभूषित, वेदों के समान ब्रह्मोक्त पुराण को मैं सुनाऊँगा ।

जिस समय अनुपम कान्तिमान विक्रमशाली नरपति श्रेष्ठ राजा असीम कृष्ण धर्मपूर्वक इस पृथ्वी पर शासन करते थे, उस समय पवित्र तट वाली पुण्यसलिला दृषद्वती नदी के तीर पर धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र में सरल, शान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, रजोगुणविहीन, स्थिरबुद्धि, सत्यव्रती ऋषियों ने एक महान् यज्ञ किया । शास्त्र की विधि से उन नैमिषारण्य वासी ऋषियों की दीक्षा हुई थी । वहाँ उनके दर्शन करने के लिए महाबुद्धि पौराणिकप्रवर सूत आये ।३-१५॥

उनके सुभाषित वचनों को सुन श्रोताओं को रोमांच हो जाता था, अतः इस संसार में इस कर्म के अनुसार उनका लोमहर्षण नाम प्रसिद्ध था । वे तपस्या, विद्या तथा आचार के निधान श्री वेद

Funding by IKS-MoE

व्यास के बड़े मेधावी शिष्य थे, तीनों लोकों में उनकी ख्याति थी । समस्त पुराणों, वेदों तथा महाभारत को पल्लवित करने वाली शक्तिमती वाणी उनमें प्रतिष्ठित थी । जिस प्रकार पृथ्वी में ओषधियाँ भरी हुई हैं उसी प्रकार उनमें धर्म अर्थ, काम और मोक्ष की कथाएँ, सूक्तियाँ एवं सुन्दर परिभाषाएँ भरी पड़ी थीं नीतिज्ञ मेधावी सूत जी ने मुनिवरों के पास पहुँच कर नियम से सादर हाथ जोड़ नमस्कार किया और उनको अपनी नम्रता से सन्तुष्ट कर दिया । वे परम तेजस्वी यज्ञकर्त्ता मुनिगण सदस्यों के साथ बहुत प्रसन्न हुए और यथा योग्य उनकी प्रशंसा और पूजा की गई । उस समय मुनियों के मन में पुराण सुनने की इच्छा प्रकट हुई ।

उस यज्ञ का गृहपति समस्त शास्त्रों का ज्ञाता था । उसने अत्यन्तविश्वस्त परमविद्वान् लोमहर्षण को देखकर तथा उन ऋषियों के इङ्गित से उनके मनोभावों को समझकर सूतजी से कहा—"सूत जी ! आपने इतिहास और पुराण के निमित्त ब्रह्मज्ञ-वरिष्ठ मेधावी व्यास जी की बड़ी उपासना की है और उनकी बुद्धि से आपने पुराणों की कथा का दोहन कर लिया है । महाबुद्धे ! इन धीमान् ऋषि प्रवरों को पुराण सुनने की बड़ी आकांक्षा है अतएव आपको सुनाना चाहिये । ये सब विभिन्न गोत्रों के महात्मा यहाँ आये हुए हैं । अपने-अपने वंशों को पुराणों के द्वारा ये सुन लें । ये लोग इस महान् यज्ञ में पुत्रों समेत आये हुए हैं, इन्हें पुराण की कथाएँ सुनाइये । प्रस्तुत यज्ञ की दीक्षा लेने के पूर्व इसीलिए हम लोगों ने आपका स्मरण किया है । ऋषियों तथा गृहपति के इस प्रकार अनुरोध करने पर लोमहर्षण सूत जी मधुर स्वर में न्याय युक्त कल्याण कारी वाणी बोलने लगे ।१६-२९॥"

सूत जी ने कहा—ऋषिवृन्द ! आप लोग स्वयं पुराण जानते और सत्यव्रत का पालन करते हैं । आप लोगों ने जो मुझे पुराण सुनाने की प्रेरणा की उससे मैं परम पुनीत हुआ और यह हमारे ऊपर आपका परम अनुग्रह है । प्राचीन सत्पुरुषों ने सूत का यही अपना निजी धर्म बताया है कि वह इतिहास पुराणों में ब्रह्मवादियों द्वारा बताये हुए देवताओं, ऋषियों तथा अतुल तेजस्वी राजाओं की वंशावली तथा महात्माओं से सुनी बातों को धारण करे । वेदों में सूतों का कोई अधिकार नहीं है । महात्मा वेन के पुत्र (पृथु) के यज्ञ के अवसर पर सर्व प्रथम सुत्यों में (अर्थात् यज्ञ की ओषधियों के कूटने के समय) वर्ण संकर सूत की उत्पत्ति हुई । क्योंकि उसमें इन्द्र को दिये जाने वाले द्रव्य के साथ बृहस्पति का द्रव्य मिश्रित हो गया और उसी की आहुति इन्द्रदेव को भूल से दे दी गई । इसी गड़बड़ी से सूत उत्पन्न हुआ और कार्यों में प्रायश्चित्त भी आया । शिष्य के हविष्य के साथ मिलने से गुरु के हविष्य का अनादर हुआ, अतएव इधर का उधर होने से (नीच का उच्च में मिल जाने से) वर्ण संकर सूत की उत्पत्ति हुई । क्षत्रिय से ब्राह्मण योनि द्वारा उत्पन्न होने के कारण सूत साधर्म्य से उसी के (क्षत्रिय के) तुल्य धर्म वाला कहलाया । सारथि की जीविका अर्थात् रथ हाथी घोड़ों के परिचालन का काम—यह सूत का मध्यम एवं चिकित्सा करना यह जघन्य धर्म है । अतएव जब आप ब्रह्मवादियों ने मुझसे अपने धर्म की बात पूछी है तो फिर मैं ऋषि पूजित पुराण का भली भाँति वर्णन क्यों नहीं करूँगा ? ३०-३९॥

Funding by IKS-MoE

पितरों की एक मानसी कन्या वासवी हुई। पितरों ने उसे शाप दिया जिससे मत्स्य योनि में वह उत्पन्न हुई। जैसे अग्नि के जन्म का निमित्त अरणी (लकड़ी) होती है, वैसे ही वेदज्ञों में श्रेष्ठ महायोगी व्यासजी ने उसी से जन्म ग्रहण किया। उन्हीं भृगु मुनि के वाक्यों पर चलने वाले ब्रह्मरूप, पुराण पुरुष, मनुष्य के कपट वेश में साक्षात् प्रभविष्णु विष्णु भगवान् श्री व्यासजी को नमस्कार करके जिस व्यास देव के जन्म लेते ही समस्त संग्रहों के साथ वेद स्वयं उपस्थित हो आये, जिन्हों ने धर्म को सामने रखकर जातूकर्ण्य से उन्हें पाया और अपनी बुद्धि की मथानी से उस श्रुतिरूप समुद्र को मथकर संसार में महाभारत जैसे चन्द्रमा का प्रकाश उत्पन्न किया; जिनको पाकर वेदवृक्ष शाखाओं से वैसे ही सुशोभित हुआ जैसे भूमि, काल और गुणों को पाकर पेड़ों में अनेक टहनियाँ फूट निकलती हैं, उन सर्वज्ञ, समस्त वेदों में पूजित दीप्त तेज वाले ब्रह्मवादी से पुराण सुनकर मैं आज आप लोगों को यह पुराण सुनाऊँगा जिसको प्राचीन काल में नैमिषारण्य के निवासी महात्मा मुनियों के पूछने पर वायुदेव ने कहा था। महेश्वर, पर, अव्यक्त, चतुर्बाहु, चतुर्मुख, अचिन्त्य, अप्रमेय स्वयम्भू ईश्वर हेतु हैं, सत्असत्रूप नित्य अव्यक्त कारण हैं। वे महत् तत्त्व से लेकर विशेष-तत्त्वतक की सृष्टि करते हैं यह बात निश्चित है। सब से पहले हिरण्मय अण्ड उत्पन्न हुआ। अण्ड जलसे, जल तेज से, तेज वायु से, वायु आकाश से, आकाश भूतादि (मानसिक अहंकार) से, भूतादि महत् तत्त्व से और महत् तत्त्व अव्यक्त से ढँका था,। सर्व प्रथम इसी का वर्णन है इसके पश्चात् यहाँ समस्त देवताओं तथा ऋषियों का वर्णन है। नदियों, पर्वतों की उत्पत्ति बतायी गयी है और मन्वन्तरों तथा कल्पों की भी चर्चा है। ब्राह्मण और क्षत्रियों की कथा और ब्राह्मण जन्म बतलाया गया है। फिर ब्रह्मा से सृष्टि के होने तथा प्रजा सर्ग की बात है। अव्यक्त जन्म वाले ब्रह्म की अवस्थाएँ, कल्पों के वर्ष तथा जगत् की स्थापना कही गई है। यहाँ भगवान का शयन तथा पृथ्वी का उद्धार करना, वर्ण और आश्रम के विभाग के साथ-साथ पुर नगर आदि की संनिवेश स्थापना, गृहों के वृक्ष तथा सिद्धियों का विनाश, मार्ग-माप या मार्गों का विस्तार पूर्वक वर्णन है।४२-५७॥

पुण्यात्मा पुरुषों के स्वर्ग में अलग-अलग स्थान, वृक्षों, ओषधियों और लताओं का कीर्त्तन यहाँ है।· पापी मनुष्यों का मरने पर वृक्ष, नारकीय कीट होना, तथा देवताओं और ऋषियों की दो प्रकार की गति बताई गई है। अन्नादि शरीरों की सृष्टि, उनको त्यागना तथा ब्रह्मा ने सब शास्त्रों के पहले पुराण का स्मरण किया, तब उनके मुख से वेद वेदाङ्ग तथा धर्म शास्त्र निकले। व्रत और नियम, पशु एवं पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन, उनकी व्याख्या कल्प के साथ वर्णित है। फिर ब्रह्मा के बुद्धि पूर्वक नव सर्ग, फिर तीन और बुद्धि पूर्वक सर्ग, नव लोकों की सृष्टि, फिर बारह धर्म जो बार बार प्रजाकल्प में ब्रह्मा के अंगों से उत्पन्न होते हैं बताये गये हैं। दो कल्पों का अन्तर तथा प्रतिसन्धि, तमोगुण से ढकने के कारण ब्रह्मा से अधर्म की उत्पत्ति, एवं उसके पश्चात् शतरूपा का जन्म, प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा प्रसूति और आकूति जिनसे सृष्टिविस्तार हुआ

Funding by IKS-MoE

पुनः जिनके स्मरण से लोग पवित्र हो जाते हैं— जिनमें लोक प्रतिष्ठित हैं उनका वर्णन है। रुचि एवं प्रजापति दोनों की उत्पत्ति के बाद फिर आकूति से मैथुनात्मक सृष्टि, प्रसूति से दक्ष की लड़कियों की उत्पत्ति, श्रद्धा आदि में महात्माओं की उत्पत्ति आदि बताई गई है। सात्विक धर्म की सुखमयी तथा अधर्म की तामसी अशुभ रूपा हिंसामयी सृष्टि का वर्णन है। सती में महेश्वर की प्रजा-सृष्टि और वैसे ही निरामय ब्रह्म का कीर्त्तन किया गया है। मोक्ष की इच्छा रखने वाले ब्राह्मणों के लिये योगीश्वर ने योगब्रह्म बतलाया है एवं रुद्र के भाग्यशाली अवतार का वर्णन है। तीनों वेदों की कथा; ब्रह्मा और नारायण का उत्तम संवाद एवं वहाँ स्तोत्र का भी कीर्त्तन है। इन दोनों की स्तुति से देवेश भगवान शिव सन्तुष्ट हुए और महात्मा रुद्र का ब्रह्मा के शरीर में आविर्भाव हुआ। महामना रुद्र क्यों रोये उसका तथा रुद्र आदि आठों नाम स्वयम्भू के क्यों पड़े उसका कारण बताया गया है। साथ ही इस सचराचर जगत् को उन्हों ने कैसे व्याप्त कर लिया एवं भृगु आदि ऋषियों के प्रजासर्ग का वर्णन है। ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के गोत्र का वर्णन तथा अग्नि का स्वाहा से प्रजासर्ग वर्णित है। पितृ-वंश के प्रसंग में दो प्रकार के पितरों तथा फिर स्वधा का वर्णन है एवं महेश्वर का सती के लिये दक्ष तथा श्रीमान् भृगु आदि के प्रति शाप एवं विचित्र कर्मा दक्ष का रुद्र को प्रतिशाप देना वर्णित है। दोष दिखाकर वैर का प्रतिषेध एवं मन्वन्तर के प्रसंग से काल का ज्ञान वणित है। कर्दम प्रजापति की शुभ लक्षणों वाली कन्या तथा प्रियव्रत के पुत्रों का विस्तार बतलाया गया है। तत्पश्चात् वे सब पृथक-पृथक किन-किन द्वीपों और देशों में भेजे गए एवं फिर स्वायम्भुव सर्ग का वर्णन है। नाभि तथा महात्मा रजस का सर्ग एवं समुद्रों द्वीपों और पर्वतों का वर्णन, वर्षों, नदियों तथा उन सब के भेदों एवं सातों द्वीपों के सहस्रों भेद और उप भेद बताये गये हैं। ८२॥

जम्बूद्वीप और समुद्र के विस्तार तथा उनके मण्डल तथा पर्वतों के साथ योजन-मान से उन का प्रमाण बताया गया है। हिमवान्, हेमकूट, निषध, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गवान् ये वर्ष पर्वत कहाते हैं। इनकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तथा इनके बीच के विष्कम्भों का परिमाण योजनों में दिया गया है एवं इनमें निवास करने वालों का भी वर्णन है। भारत आदि वर्ष चल, अचल, नदियों, पर्वतों तथा प्राणियों से भरे हैं। जम्बूद्वीप आदि द्वीप सात समुद्रों से घिरे हैं और उसके पश्चात् जलमयी भूमि तथा लोकालोक का कीर्त्तन है। ब्रह्माण्ड के बीच से भू आदि लोक तथा सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी अपने-अपने नैसर्गिक प्राकारों के साथ हैं। इन सबों में जो प्रधान हैं उनका एकदेशिक परिमाण इनके व्यासों के प्रमाण के साथ संक्षेप में लिखा है। सूर्य तथा चन्द्रमा एवँ पृथ्वी का भी मान योजनआदि में एतत्कालीन मानप्रमाण के साथ दिया है। मानस के उत्तर शिखर पर महेन्द्र आदि की पुण्य सभाएँ तथा उसके पश्चात् आलातचक्र की भाँति स्वर्ग की गति बताई गई है। नागबीथी तथा अजबीथी का लक्षण बता कर योजनों में मंडलों की काष्ठा और लेखाओं का मान बताया है। लोकालोक, सन्ध्या, दिन और विषुवत का भी वर्णन है एवं पुनः चारों दिशाओं में

लोकपालों के रहने की बात है। पितरों और देवताओं के दक्षिण और उत्तर मार्ग, रजोगुण और सत्त्वगुण के आश्रय से गृहस्थों तथा संन्यासियों के कर्म बताये गये हैं। विष्णु का धाम जहाँ धर्म आदि रहते हैं एवं सूर्य और चन्द्रमा तथा ग्रह और नक्षत्रों की चाल बताई गई है। ध्रुव के सामर्थ्य से प्रजाओं का शुभ अशुभ तथा प्रयोजन वश ब्रह्मा के बनाये हुए सूर्य के रथ का वर्णन है; जिस रथ से स्वयं भगवान् आकाश में चलते और जिसपर देवताओं, ऋषि, गन्धर्व, अप्सरायें, ग्रामणी, साँप और राक्षस आदि सवार रहते हैं उसका वर्णन है। और गन्धर्व, अप्सरागण तथा ग्रामणी साँप और राक्षसों के साथ जल के सार रूप चन्द्रमा के रथ का वर्णन किया गया है। सूर्य के कारण चन्द्रमा की वृद्धि और क्षय का होना तथा ध्रुव के साथ सूर्य आदि के रथों का वर्णन है। फिर उस शिशुमार का वर्णन है जिनकी पूँछ में ध्रुव की स्थिति है, फिर ग्रहों के साथ तारा रूप समस्त नक्षत्रों का वर्णन है। सूर्य की सहस्रों किरणों से वर्षा, शीत तथा धूप का झरना एवं उनमें पुण्यात्मा देवों के निवास स्थान बताए गये हैं। नाम, कर्म, तथा अर्थ के आश्रय से किरणों का विभाग एवं सूर्य की अपेक्षा से ग्रहों की चाल और मान बताया है। ब्रह्मा की स्तुति से प्रसन्न होकर विषभक्षक शूलपाणि शम्भु का कण्ठ तुरन्त विष से कैसे नीला हो गया उसका वर्णन है। देवताओं ने विष्णु की स्तुति की और उन्होंने महादेव की फिर सब पापों को नाश करनेवाली लिङ्ग की उत्पत्ति की पवित्र कथा है। विश्वरूप शिव से प्रधान प्रकृतिका यह विचित्र परिणाम तथा एक पुरुखा के महात्म्य का वर्णन किया है। उसने दोनों प्रकार के पितरों का अमृत से कैसे तर्पण किया फिर पर्व तथा उनकी सन्धियों का वर्णन है। स्वर्ग लोक में पहुँचे हुये प्राणियों की भी अधोगति तथा दोनों प्रकार के पितरों का श्राद्ध से महान् कल्याण का वर्णन है। युगों की संख्या तथा मान, सत्य युग तथा त्रेता युग में अपकर्ष के कारण एवं वर्णों, आश्रमों और संख्याओं की प्रवृत्ति तथा धर्म से वर्णों तथा आश्रमों की स्थिति का वर्णन है। यज्ञ की प्रवृत्ति तथा ऋषियों और वसु की शास्त्रार्थ की बात तथा फिर वसु की अधोगति का कीर्त्तन है। प्रश्नों का कठिन होना तथा स्वायम्भुव मनु को छोड़ तपस्या की प्रशंसा एवं सारी युगों की अवस्थाओं का वर्णन है। (१) द्वापर तथा कलि का संक्षेप से वर्णन तथा युग युग के देवता, पशु-पक्षी एवं मनुष्यों के परिमाण का वर्णन है। युग के सामर्थ्य से आयु की वृद्धि और ह्रास तथा शिष्ट आदि की उत्पत्ति तथा निर्देश का कथन है। मन्त्र और ब्राह्मण के लक्षण तथा ईश्वर, ऋषि, मनु और पितरों के लक्षण बताये गये हैं। वेद तथा उनके मन्त्रों का वर्णन एवं शाखाओं की गणना तथा वेदव्यास आदि की बातें हैं। मन्वन्तरों का संहार तथा संहार के पश्चात् देवता, ऋषि, मनु तथा पितरों की उत्पत्ति विस्तार से नहीं कही जा सकती अतएव संक्षेप में कही गई है एवं मानुष गणना से मन्वन्तर की संख्या बताई गई है। सभी अतीत और वर्त्तमान मन्वन्तरों का यह लक्षण वर्त्तमान से लेकर बताया गया है। फिर स्वायम्भुव मन्वन्तर में अतीत और वर्त्तमान सभी मन्वन्तरों का प्रतिसन्धान (मर्यादा) बताया गया है। तीनों मन्वन्तर उनका अवसान एवं मन्वन्तरों के

देवताओं तथा प्रजापतियों का वर्णन है। दक्ष के दौहित्र (उनकी प्रिय-पुत्री के पुत्र,) जिनको बुद्धिमान् दक्ष ने ही ब्रह्मा आदि के द्वारा उत्पन्न कराया। वे सावर्णि आदि मनु सुमेरू पर्वत के रहने वाले हैं उनका फिर उत्तानपाद ध्रुव की प्रजासृष्टि का वर्णन है। वेन के पुत्र पृथु से पृथ्वी का दोहन, पात्रों और दुग्धों तथा वंशों का वर्णन है। इसके पहले भी इस पृथ्वी का दोहन ब्रह्मा आदि तथा दश प्रचेताओं ने किया था। फिर सोम के अंग से मारिषामें श्रीमान् प्रजापति दक्ष की उत्पत्ति का और महेन्द्रों के भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमान के शासक होने का वर्णन है। अनेकों आख्यानों से युक्त मनु आदि, एवं वैवस्वान मनुकी भी प्रजा-सृष्टि का वर्णन है। वारुण शरीरधारी महादेव के यज्ञ में ब्रह्मा के वीर्य से भृगु आदि की उत्पत्ति बताई गई है। चाक्षुष मनु के शुभ प्रजा-सर्ग हो जाने पर वैवस्वत मन्वन्तर में दक्ष की ध्यान से की गई सृष्टि का वर्णन है। ब्रह्मा के पुत्र प्रियवंद नारद ने स्वयं शाप (पाने) के लिये दक्ष के महावली पुत्रों का विनाश किया। तब दक्ष ने वीरिणी में ही प्रसिद्ध कन्याओं की सृष्टि की। फिर मतिमान् कश्यप की धर्म-सृष्टि का वर्णन है। इसके उपरान्त ब्रह्मा, विष्णु और शिव के एक ही तथा पृथक् पृथक् होने और उनकी (परस्पर) विशेषता की बात है। स्वयम्भूने देवताओं को शाप देकर कैसे ईशत्व से च्युत किया तथा मरुतों को कैसे मरुत् होने का वर मिला तथा दिति से देवताओं की उत्पत्ति का वर्णन है। उनचास मरुतों तथा पिता के वाक्य से उनका देवता होना एवं वायु के कन्धे पर रहना बतलाया गया है। दैत्य, दानव, गन्धर्व, उरग, राक्षस तथा सभी भूत, पिशाच, पशु, पक्षी एवं लताओं तथा अप्सराओं की उत्पत्ति बड़े विस्तार से बताई गई है तथा समुद्र के संयोग से ऐरावत हाथी का जन्म वर्णित है, गरुड़ की उत्पत्ति तथा उनका अभिषेक एवं भृगु तथा अङ्गिरा गोत्रवालों का विस्तार बताया गया है। वहीं कश्यप, पुलस्त्य महात्मा अत्रि, तथा पराशर मुनि की प्रजाओं का भी विस्तार है। तत्पश्चात् देवताओं और ऋषियों की प्रजाओं की उत्पत्ति है, तीन कन्याओं का वर्णन है जिनमें सारे लोक प्रतिष्ठित हैं। देवताओं के पिता और दौहित्र बताये गये हैं। तथा देवों की उत्पत्ति पाँचों महात्माओं और भगवद्भक्त तुम्हारे जन्म का विस्तार पूर्वक वर्णन हैं। इला का वर्णन फिर आदित्य का तब विकुक्षिका चरित और धुन्धुका विनाश है। संक्षेप में, एवं इक्ष्वाकु से लेकर वृहद्बल पर्यन्त तथा निमि से लेकर जन्हु गण तक राजाओं का, नृपति ययाति एवं यदुवंश तथा हैहयवंश का विस्तार है। इसके अनन्तर कोंष्टा के वंश का विस्तार तथा ज्यामघ का महात्म्य एवं उनके प्रजासर्ग का वर्णन है। देवावृध अर्क महात्मा वृष्णि के वंश तथा विष्णु का दिव्य वर्णन है। महामति विवस्वान् को मणिरत्न की प्राप्ति तथा महात्मा युधाजित का प्रजासर्ग कहा गया है। श्रीमान् राजर्षि देवमीढुषं के जन्म, चरित और वंश का वर्णन है। कंस की दुष्टता तथा प्रजापति विष्णु वासुदेव का देवकी के गर्भ से एकान्त में जन्म लेने का कथन है। तदनन्तर विष्णु के प्रजा-सर्ग का वर्णन तथा देवासुर के उत्पन्न होने पर विष्णु को स्त्रीबध करके शक्र की प्राण-रक्षा करने पर भृगु शाप का मिलना तथा भृगु का शुक्र की

दिव्य माता को उठाना वर्णित है । देवताओं और असुरों के बारह विचित्र नारसिंह आदि प्राण नाशक संग्रामों का वर्णन है । धीर शुक्र ने तपस्या द्वारा शिव की आराधना तथा वरदान के लोभ से उनकी स्तुति की । तदनन्तर देवताओं और असुरों के कार्य तथा जयन्ती के साथ महात्मा शुक्र के आसक्त होने पर बुद्धिमान बृहस्पति ने शुक्र का रूप धारण करके असुरों को मोहित किया और तेजस्वी शुक्र ने असुरों को शाप दिया । तत्पश्चात् विष्णु का महात्म्य तथा विष्णु के जन्म आदि की कथा है फिर शुक्र की पुत्री देवयानी से यदु के तुर्वसु उत्पन्न हुआ । ययाति के पुत्र अनु, द्रुह्यु तथा पुरु राजा हुए । वहाँ उनके वंशज जो उत्तम महात्मा नरेन्द्र बहुत धन और तेज वाले हुए उनका पूरा पूरा तथा विप्रर्षि कुशिक के धर्मपालन का वर्णन है । बृहस्पति के शाप को सुरभिने हटाया फिर जह्नु-वंश कीर्त्तन तथा शन्तनु के बल-वीर्य की कथा है । तदुपरि भविष्य में होने वाले राजाओं तथा सात मनुओं का वर्णन है । अन्त में कलियुग के क्षीण होने पर पृथ्वी का संहार बताया गया है तथा परार्ध्य और पर के लक्षण कहे हैं । योजन में ब्रह्मा के परिमाण का निर्णय किया गया है एवं नैमित्तिक प्राकृतिक तथा आत्यन्तिक तीन प्रकार के प्रलय समस्त भूतों के बताये गये हैं । फिर सूर्य से अवर्षण होने तथा घोर संवर्त्तक अग्नि का वर्णन है । एकार्णव मेघ, वायु तथा महात्मा की (परमात्मा) रात्रि का वर्णन है तथा विशेष कर ब्राह्मकाल संख्या का लक्षण बतलाया है । फिर भूः आदि सात लोकों का और पापियों के रौरव आदि नरकों का वर्णन । ब्रह्मलोक के ऊपर शिव का उत्तम स्थान है वहीं प्रलय में समस्त भूतों का संहार होता है । फिर सब जीवों के परिणाम का निर्णय तथा ब्रह्मा के प्रलय में सब के सँहार का वर्णन है । फिर आठ प्रकार के आठ प्राण बताये गये हैं । एवं धर्म और अधर्म के आश्रय से ऊर्ध्व एवं अधः गतियाँ वर्णित हैं । महान् भूतों का भी प्रत्येक कल्प में क्षय तथा दुःखों को बताकर ब्रह्मा की भी अनित्यता बताई गई है । भोगों के दोष तथा उनके परिणाम का निश्चय तथा मोक्ष की दुर्लभता एवं वैराग्य से दोष देखने की बात कही है । व्यक्त और अव्यक्त का परित्याग करके केवल ब्रह्म में स्थित एवं नानात्व के दर्शन से शुद्ध हो कर जब जीव सत्त्व के परे जाता है तब वह तीनों नामों से अतीत नीरूप नामक निरञ्जन ब्रह्म का आनन्द कहलाता है फिर किसी से वह डरता नहीं । फिर पहले जैसी दूसरे ब्रह्मा की सृष्टि तथा सब पापों को नाश करने वाले ऋषियों के वंश का कीर्त्तन है । पुराण का इतिवृत्त वर्णन करके जगत् के सभी प्रलयों और विकारों की कथा है । फिर जीवों की प्रवृत्तियों तथा निवृत्तियों के फल एवं वसिष्ठ के प्रादुर्भाव और शक्ति के जन्म की कथा है । पुनः विश्वामित्र के द्वारा तथा सौदास से उनका निग्रह (अपमान) एवं प्रभु पराशर की उत्पत्ति तथा उनका अन्तर्धान वर्णित है । पितरों की कन्या से व्यास मुनि के जन्म की कथा तथा पुत्र के सहित शुकदेव की उत्पत्ति की बात बताई है । पराशर का विश्वामित्र से द्वेष कैसे हुआ एवं विश्वामित्र के बध की इच्छा से बशिष्ठ ने अग्नि प्रस्तुत किया उसे दैवविधि से विश्वामित्र के हितैषी मतिमान् विसुकन्द ने सन्तान के निमित्त उसका पालन किया । फिर भगवान ईश्वर व्यास ने एक चतुष्पाद वेद को चार भागों में अपनी बुद्धि से कैसे विभक्त किया—इन सबों का वर्णन है । तत्पश्चात् उनके शिष्यों ने शाखा विस्तार किया ।

Funding by IKS-MoE

षड्गुणीय प्रयोगों से स्वयंभू प्रभु ब्रह्मा ने धर्म की लालसा से पुण्यप्रदेश पाने के इच्छुक मुनियों की पूछ-ताछ करने पर उनकी हित कामना से सुन्दर नाभिवाला दिव्य रूप नामक शुभ विक्रम अनुत्तम वर्त्तमान चक्र को बताकर कहा कि आलस्य छोड़ दृढ़ता पूर्वक पीछे चले जाओ तब कल्याण प्राप्त होगा। जाते जाते जहाँ इस धर्मचक्र की नेमी शीर्ण हो जाय उसी को बृहत् पुण्य देश समझना और ऐसा बतला कर फिर ब्रह्मा अदृश्य हो गये। गङ्गा के गर्भ तथा नैमिषेय का वर्णन कर बताया है कि मुनियों ने नैमिषारण्य में यज्ञ किया। शरद्वान् के मरने पर नैमिषारण्य के ऋषियों ने बड़ी श्रद्धा से उसका उत्थापन किया। उसे इस सम्पूर्ण निःसीम पृथ्वी का राजा बना कर ले आये और विधि पूर्वक शास्त्र की मर्यादा से उनका अतिथि सत्कार किया। जब विधि पूर्वक आतिथ्य से राजा प्रसन्न हुआ तो उसको छिपकर क्रूर राक्षस स्वर्भानु (राहु) ने हर लिया। प्राचीन काल में जैसे ऋषिगण हरे जाने पर भी गन्धर्वों के साथ कलाप ग्राम में रहने वाले राजा ऐड के पीछे गये और यंज्ञ में ऋषियों के साथ उनका मिलना आदि वर्णित है। महात्मा मुनियों के यज्ञ में सब वस्तु हिरण्मयी देख कर उस बारह वर्ष में होने वाले नैमिषारण्य के ऋषियों के उस रात्र में कैसे विवाद हुआ और ऐड को उन्होंने कैसे स्थापित किया—सब वर्णित है। वन में ऐड के पुत्र आयुष को उत्पन्न कराकर उस यज्ञ को समाप्त करके आयुष की उपासना की। हे ऋषिश्रेष्ठो यह सब जैसे जैसे हुआ, बताया गया है एवं यहाँ ऋषियों का परम, सर्वोत्तम लोकतत्व भी वर्णित है। पूर्वकाल में जो उत्तम ज्ञान पुराणब्रह्म ने कहा था और द्विजों पर अनुग्रह करके जो रुद्र का अवतार हुआ तथा पशुपत योग एवं स्थान और लिङ्ग की उत्पत्ति तथा महादेव का कण्ठ कैसे नीला हुआ सब बताया गया है। यहाँ ब्रह्मवादी वायु ने विप्रों से सब पापों को नाश करने वाले तथा धन यश और आयु देने वाले इस पुराण को कहा है। इस पुराण का श्रवण कीर्त्तन और विशेष रूप से धारण ही फल दायक है इसी क्रम से यह पुराण कहा जाता है। लम्बी बात भी थोड़े में कहने पर सहज में समझ ली जाती है, इसीलिये पहले संक्षेप में कह कर फिर पीछे से विस्तार पूर्वक कहूँगा। जो जितेन्द्रिय इस पाद को भली भाँति पढ़ लेता है उसने इस समस्त पुराण को पढ़ लिया इसमें सन्देह नहीं। जो द्विज अङ्गों और उपनिषदों के साथ चारों वेदों को जानता है; किन्तु पुराण नहीं जानता वह चतुर नहीं हो सकता। वेद को इतिहास और पुराण द्वारा बढ़ाना चाहिये; अल्प विद्या से वेद डरता है कि यह मुझे मार डालेगा, अर्थात् अर्थ का अनर्थ कर देगा। साक्षात् स्वयम्भू ने इस अध्याय को कहा है, जो इसका अभ्यास करता है उसकी आई हुई आपत्तियाँ दूर हो जाती हैं और यथेष्ट गति उसे मिलती है। यह पुरा (अर्थात् पहले पहले) अनन (अर्थात् प्राणन) करता है इस लिये इसे पुराण कहते हैं; जो इसकी व्याकृति को जानता है, यह सब पापों से छूट जाता है। इस समस्त संसार में नारायण व्याप्त रहते हैं उस जगत् के स्रष्टा के भी स्रष्टा देव महेश्वर हैं। अतएव संक्षेप में सुन लीजिये कि यह समस्त पुराण महेश्वर है। सर्ग काल में यही सृष्टि करते और संहार काल में प्रलय करते हैं ।५८-२०४॥

"इस श्री वायु महापुराण का प्रक्रिया पाद में अनुक्रमणिका कथन नाम का पहला अध्याय समाप्त।"

दूसरा अध्याय

द्वादश वार्षिक सत्र निरूपण

फिर उन तपस्वी ऋषियों ने सूत जी से कहा—"उन विचित्रकर्ता ऋषियों का यज्ञ कहाँ हुआ ? कितना समय लगा ? और किस प्रकार वह यज्ञ सम्पन्न हुआ ? वायुदेव ने उन ऋषियों को कैसे पुराण सुनाया ? यह बात विस्तार से बतलाइये। हम लोगों को बड़ा कुतूहल हो रहा है।"

ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत जी मधुर वचन बोले—"उन धीर मुनियों ने जहाँ उत्तम यज्ञ किया, जितना समय उसमें लगा एवं जिस प्रकार वह सम्पन्न हुआ, ये सारी बातें आप लोग सुनिये ॥१-४॥

जहाँ विश्व की सृष्टि की इच्छा से प्राचीनकाल में विश्व के स्रष्टाओं ने सहस्र वर्ष पर्यन्त पवित्र यज्ञ किया था, जिस यज्ञ में तप ही यजमान और ब्रह्मा स्वयं ब्रह्मा हुए थे, जिसमें इला ने पत्नी तथा बुद्धिमान् तेजस्वी मृत्यु ने शामित्र[1] का कार्य किया था। महात्माओं के उस सत्र में जहाँ देवों ने सहस्र वर्ष तक यज्ञ किया था; जहाँ घूमते-घूमते धर्मचक्र की नेमि शीर्ण हो गई और इसीलिए जिस मुनिपूजित प्रदेश का अर्थतः नैमिष नाम पड़ा। जहाँ सिद्धों और चारणों से सेवित गोमती है, जहाँ रोहिणी से सौम्य नामक सुत उत्पन्न हुआ, जहाँ महात्मा वशिष्ठ तथा अरुन्धती के अति तेजस्वी सौ पुत्र उत्पन्न हुये, जिनमें शक्ति ज्येष्ठ था; जहां शक्ति ने कल्माषपाद ऋषि को शाप दिया; जहां विश्वामित्र और वशिष्ठ में वैर हुआ, जहां अदृश्यन्ती में पराशर मुनि उत्पन्न हुए और जिनके जन्म लेने पर भी वशिष्ठ का पराभव बना रहा, वहां उस नैमिषक्षेत्र में उन ब्रह्मवादियों ने यज्ञ किया। अतएव वे ऋषि नैमिषेय कहे जाते हैं ॥५-१३॥

वहां पर उन महामति मुनियों का वह सत्र विक्रमशाली भूपाल पुरूरवा के शासन काल में बारह वर्ष तक हुआ। राजा पुरूरवा यद्यपि अठारह समुद्र के द्वीपों का उपभोग कर रहा था; किन्तु हमने सुना है कि रत्न के लोभ से वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। देवहूति की प्रेरणा से उर्वशी ने उसका वरण किया और स्वर्ग की वेश्या के साथ उसने उस सत्र को नष्ट करने का प्रयत्न किया। परन्तु उस नरपति के शासन काल में ही नैमिषेयों ने सत्र सम्पन्न किया। प्रदीप्त तेज वाले पावक से गङ्गा ने जो गर्भ प्रसव किया उस उल्ब को पर्वत पर रखा गया जो सोना हो गया। तब उन अतुल तेजस्वी महात्माओं की यज्ञशाला स्वयं वृहस्पति देव विश्वकर्मा ने भगवान का स्मरण कर के सोने की बना दी। एक दिन आखेट खेलते-खेलते ऐल पुरूरवा वहां पहुँचा और सोने की बनी उस यज्ञशाला को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। लोभ से उसकी बुद्धि मारी गई और उसने उसे लेना चाहा। तब नैमिषेय ऋषि राजा पर बहुत रुष्ट हुए और क्रोध में आकर दैववश उन मनीषी मुनियों ने उस राजा को रात बीतते-बीतते कुशवज्रों से मार डाला। कुशवज्रों से चूर्ण होकर महीपति ने शरीर छोड़ दिया। तब उर्वशी से उत्पन्न उसके पुत्र को पृथ्वी पर नरपति बनाया। उसी महात्मा को नहुष का पिता कहा जाता है। उस धर्मात्मा राजा ने उन ऋषियों के

---

[1] पशु बंधन स्थान।

Funding by IKS-MoE

प्रति अच्छा बर्त्ताव किया उस राजा की आयु और स्वास्थ्य बहुत उत्तम था। वह स्वयं बड़ा ही सज्जन था। उस राजा को प्रसन्न कर ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ उन मुनियों ने धर्म की वृद्धि के लिये विधिवत् सत्र को प्रारम्भ किया। उन महात्माओं का वह यज्ञ बड़ा ही आश्चर्यजनक हुआ। पूर्वकाल में विश्व की सृष्टि की इच्छा से विश्व-स्रष्टाओं की भांति उस यज्ञ में वैखानस, प्रिय मित्र बालखिल्य, मरीचि तथा अन्य सूर्य और अग्नि जैसी कान्ति वाले मुनिगण एवं पितर, देवता, अप्सराएँ सिद्ध, गन्धर्व, नाग तथा चारणगण वहां उपस्थित हुए। उस यज्ञ में इन्द्रपुरी की भांति उत्तमोत्तम सामग्रियाँ भरी थीं एवं स्तोत्र, सत्र तथा ग्रहों से देवताओं की, पित्र्य कर्मों से पितरों की एवं जाति के अनुसार गन्धर्व आदिकों की पूजा उन आराधना के प्रेमी ऋषियों ने की। उस यज्ञ में गन्धर्व साम गान करते थे, अप्सराएँ नृत्य करती थीं तथा मुनिगण चित्र विचित्र अक्षरों और पदों वाली वाणी का उच्चारण कर रहे थे। मन्त्र आदि तत्वों के विद्वान् आपस में वार्त्तालाप करते तथा कुछ वितण्डा से ही अपने प्रतिवादियों को परास्त कर रहे थे। वहां पर सांख्य तथा न्याय-शास्त्र के विद्वान् ऋषिगण एकत्र थे। ब्रह्म राक्षसों ने किसी प्रकार का उपद्रव वहां नहीं किया। यज्ञघातक दैत्य या यज्ञचोर असुर नहीं पहुँचे और न वहां कोई प्रायश्चित या दुर्यज्ञ ही हुआ। शक्ति, बुद्धि और क्रिया के योग से सारी विधि उत्तम रीति से हुई। इस प्रकार मनीषियों ने वहां बारह वर्ष पर्यन्त यज्ञ किया। भृगु आदि धीर ऋषियों ने वहां पृथक्-पृथक् ज्योतिष्टोम किए एवं पर्याप्त दक्षिणा देकर सब को बिदा किया ॥१४-३६॥

"ब्राह्मणो! यज्ञ के समाप्त होने पर सब ने महाराज शक्तिशाली वायु से वही बात पूछी जो बात आप लोगों ने हमसे आज पूछी है। वंश वर्णन के लिए प्रेरणा पाकर उस प्रभु ने उन ऋषियों से सब कथाएँ कह दीं। भगवान् वायु स्वयंम्भु के शिष्य, वशी एवं प्रत्यक्षद्रष्टा हैं। अणिमा आदि आठों ऐश्वर्यों से युक्त होकर वे पशु पक्षी आदि की सहायता से धर्मपूर्वक सारे लोकों का भरण-पोषण करते हैं। सदा वे सातों स्कन्धों में योजन-योजन उड़ा करते हैं और उनके राज्य में सातों गण अपने-अपने स्थान पर नियत हैं। वे महाबली तीनों भूतों को एक में संगठित कर प्रज्वलित तेज द्वारा इस शरीरी जीव का पोषण करते हैं। प्राण आदि पांच वृत्तियां इन्द्रियों की वृत्तियों से प्रेरित होकर शरीर को धारण करती हैं। इस तत्व को मनीषियों ने आकाश से उत्पन्न, दो गुण (शब्द-स्पर्श) वाला तथा तैजस प्रकृति का कहा है। वे अभिमानी देवता भगवान् वायु अतिक्रियाशील, शब्दशास्त्रविशारद तथा वातारणि कहलाते हैं। उस पुराणवेत्ता पवन देव ने उन सहृदय मुनियों को सुन्दर पौराणिक आख्यान सुनाकर गद्गद कर दिया॥३७-४५॥

॥ श्री वायु महापुराण का द्वादश वार्षिक यज्ञ वर्णन नामक दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

Funding by IKS-MoE

करने से सभी की कीर्त्ति विस्तृत होती है। स्थिर कीर्त्ति वाले समस्त पुण्यात्माओं के गुणगान से धन, यश तथा स्वर्ग मिलता है, शत्रुओं का नाश होता और आयु बढ़ती है। सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर और वंशचरित्र यही पुराण के पाँच लक्षण हैं। यह न्याय से भी न्याय और शुचि से भी निश्चित ही शुचि है। वेद सम्मत वायु प्रोक्त पुराण मैं सुनाऊँगा। इस पुराण में प्रबोध और प्रलय, स्थिति और उत्पत्ति वर्णित हैं। कथानीय वस्तुओं का संग्रह पहला प्रक्रिया पाद, उपोद्घात पाद, अनुषङ्ग पाद तथा उपसंहार पाद भी हैं। ये धर्म यश आयु के देने वाले तथा सब पापों का नाश करने वाले हैं। इस प्रकार चारों पादों को संक्षेप में बतला दिया। अब इनको क्रम से विस्तार पूर्वक सुनाऊँगा ॥४-१४॥

उस हिरण्यगर्भ पुरुषेश्वर, अज, प्रथम, विशिष्ट, प्रजारूप, लोकमात्र स्वयम्भू ब्रह्मा को नमस्कार करके महत् तत्व से प्रारम्भकर विशेष पर्यन्त नाना रूपों और लक्षणों के साथ पाँच प्रमाणों तथा छः स्वेतों वाली, पुरुष से अधिष्ठित वन्दनीय अनुत्तम भूतसृष्टि को निस्सन्देह बताऊँगा। अव्यक्त कारण जो सदा सत् [illegible] रूप में रहता है जिसे तत्वचिन्तक लोग प्रधान एवं प्रकृति तथा गन्ध, वर्ण से शून्य शब्द स्पर्श से [illegible]जात; ध्रुव, अक्षय्य, नित्य, अपने में उपस्थित, जगत का आदि कारण, महत, भूत, पर-ब्रह्म, स[illegible] समस्त भूतों के विग्रह (शरीर रूप) और अव्यक्त कहते हैं, जो आदि अन्त से रहित सूक्ष्म निर्गु[illegible] की उत्पत्ति तथा प्रलय का स्थान, असाम्प्रत, अविज्ञेय ब्रह्म पहले हुआ उसी की आत्मा से यह स[illegible]य जगत व्याप्त था। उस गुणों की साम्यावस्था, तमोमय व केवल एक गुण-भाव वाले सृष्टि काल [illegible] क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से गुणयुक्त महान् नामक तत्व प्रकट हुआ जो पहले सूक्ष्म महत् अव्यक्त से ढका था। पहले सत्व बहुल महान् प्रकट हुआ। सत्वमात्र प्रकाशरूप मन को ही महान् समझना चाहिये। उसका कारण भी मन ही कहलाता है। क्षेत्रज्ञ के अधिष्ठान से वह लिङ्ग मात्र उत्पन्न हुआ। लोक के तत्वों के कारण धर्म आदिके उसके रूप हैं। सृष्टि की इच्छा से प्रेरित होने पर महान् ही सृष्टि करता है। उसी को पण्डित लोग मन, महान्, मति, ब्रह्मा, भू, बुद्धि, ख्याति, ईश्वर, प्रज्ञा, चिति स्मृति, संविद् और विपुर कहते हैं। यह विभु, सूक्ष्मता से विवृद्ध समस्त भूतों की चेष्टा के फल का मनन कर लेता अर्थात् उनको समझ जाता है इसलिये इसको मन कहते हैं। तत्वों में सब से प्रथम उत्पन्न होने, परिमाण में अथच शेष गुणों से बड़ा होने के कारण इसको महान् कहते हैं। यह मान धारण करता जगत् तथा पुरुष के भोग के सम्बन्ध से विभाग को समझता और जानता है इसलिये उसे मति कहते हैं। वृहत् और वृंहण होने के कारण सलिल के आश्रय से भावों को बढ़ाता है अतएव इसका नाम ब्रह्मा है। समस्त देहों तथा नियत तत्व भावों को अनुग्रह द्वारा भरण करता है अतएव भू कहलाता है। इसी से पुरुष हित अहित सारे भावों का बोध करता तथा कराता है अतएव इसकी बुद्धि संज्ञा हुई। भोग के ज्ञान-निष्ठ होने के कारण इसी से ख्याति तथा प्रत्युपभोग होता है एवं अपने गुणों वाले अनेक नामों से इसकी ख्याति है अतएव महत् को ख्याति कहते हैं। ये महात्मा सबको साक्षात् जानते हैं अतएव इनका नाम [illegible]है। इसी से ग्रह भी उत्पन्न हुए इसलिये इसका नाम प्रज्ञा है। ज्ञान आदि रूप तथा क्रतु, कर्मफल

Funding by IKS-MoE

सब को भोग के लिये चयन करता है अतएव इसे चिति कहते हैं। वर्त्तमान अतीत तथा अनागत सभी कार्यों का स्मरण रखता है इसलिये इसका नाम स्मृति है। समस्त ज्ञान को प्राप्त करता है अतएव इसकी संज्ञा माहात्म्य है। विन्दन अर्थात् प्राप्त करने एवं वेदन अर्थात् ज्ञान के कारण तथा उसमें सब कुछ एवं यह सब में विद्यमान रहता है इसलिये भी इसे विशाल बुद्धि वाले संविद् कहते हैं। ज्ञाननिधि ने इसे ज्ञान रूप होने के कारण ज्ञान कहा है ॥१५-४१॥

द्वन्द्वों के विपुर (विशिष्ट स्थान) होने के कारण इसे पण्डित गण विपुर कहते हैं। लोकों का सर्वेश होने से यह अवश्य ही ईश्वर है। बृहत् होने से 'ब्रह्मा' एवं उद्भूत होने से 'भव' तथा क्षेत्र के विज्ञान एवं एकत्व के कारण इसे 'क' कहते हैं। पुरी में शयन करता है इसलिये पुरुष कहलाता है। किसी ने इसे उत्पन्न नहीं किया एवं सबसे पहले होने के हेतु इसे स्वयम्भू कहते हैं। सद्भावों को चिन्तन करने वालों तथा तत्वों के भाव जानने वालों ने अनुत्तम आद्य तत्व की इस प्रकार व्याख्या पर्याय-वाची शब्दों से की है। सर्ग की इच्छा से प्रेरित होने पर महान् सृष्टि करता है। संकल्प तथा अध्यवसाय इसकी दो वृत्तियाँ हैं। लोकों के तत्व पदार्थ के हेतु धर्म आदि इसके रूप हैं तथा यह सात्विक राजस एवं तामस रूप से त्रिगुण है ऐसा जानना चाहिये। त्रिगुण में रजोगुण की अधिकता से अहङ्कार उत्पन्न हुआ, वह महान् से आवृत, आदि भूत और विकृत था यह सृष्टि महतत्व से रुकी थी। उस तमोबहुल अहङ्कार से भूततन्मात्र की सृष्टि हुई। वह भूतादि अहंकार तामस ही तो है। भूतादि के विकृत होने पर शब्द तन्मात्रा की सृष्टि हुई और उससे शब्द लक्षण वाला महाविवर आकाश उत्पन्न हुआ। फिर भूतादि अहंकार ने शब्दमात्र आकाश को ढँक लिया और उस शब्दमात्र आकाश ने स्पर्शतन्मात्रा की सृष्टि की। उससे बलवान् वायु उत्पन्न हुआ उसका गुण स्पर्श है। शब्दमात्र आकाश ने स्पर्शमात्र को ढक लिया। वायु ने विकृत होकर रूप तन्मात्रा की सृष्टि की। वायु से ज्योति की उत्पत्ति होती है। ज्योति का गुण रूप कहा जाता है। वायु की स्पर्शतन्मात्रा की रूपतन्मात्रा को आच्छादित कर लिया। फिर ज्योति की विकृति से रस तन्मात्रा की उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् ताप से रसमय जल की सृष्टि होती है। जल की यह तन्मात्रा भी रूप-तन्मात्रा से आवृत्त होती है। जलीय रसमात्रा की विकृति से गन्धमात्रा का उद्भव हुआ। इसी से संघात (पृथ्वी) होता है उसका गुण गन्ध है। रसमात्रा वाला तोय गन्ध मात्रा को भूतों में ढके रहा। उन उन भूतों में वह वह (शब्दआदि) मात्रा रहती हैं इसलिये तन्मात्रा नाम पड़ा। नाम अविशेष होने तथा शान्त घोर एवं फिर मूढ़ न होने के कारण इन तन्मात्राओं को अविशेष कहते हैं। इन भूतों और तन्मात्राओं की सृष्टि को पारस्परिक समझना चाहिये। अन्य सात्विक वैकारिक अहंकार से सत्व के उद्रेक कारण वैकारिक सृष्टि एक साथ प्रवृत्त होती है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ है। साधक करण का नाम इन्द्रिय है। ये दश वैकारिक देव हैं। ग्यारहवाँ मन भी वैकारिक देव ही है। श्रोत्र, त चक्षु, जिह्वा एवं पाँचवी नासिका ये शब्द आदि की प्राप्ति या बोध के निमित्त हैं, इन्हें ज्ञानेन्द्रिय कहते हैं। दोनों पाद, गुदा, लिंग, दोनों हाथ तथा दसवीं इन्द्रिय वाणी, है। इनके कर्म गति, विसर्ग, आ

शब्द मात्र आकाश ने स्पर्श मात्र में प्रवेश किया अतएव वायु शब्द एवं स्पर्श दो शिल्प तथा वाक्य हैं। गुणों वाला हुआ। वैसे ही शब्द तथा स्पर्श ये दोनों गुण रूप में आविष्ट हुए और उससे शब्द स्पर्श तथा रूप इन तीनों गुणों वाली अग्नि हुई। शब्द स्पर्श एवं रूप फिर रसमात्र में समाविष्ट हुए और उनसे चारों गुणों वाला रसमय जल हुआ। इन गुणों से गन्ध संयुक्त हुआ और उससे यह पृथ्वी उत्पन्न हुई। इसीलिये स्थूल भूतों में पृथिवी पाँच गुणों वाली दीखती है। और इसी हेतु ये स्थूल भूत शान्त घोर तथा मूढ़ और विशेष कहे गये हैं एक दूसरे में प्रविष्ट होने के कारण ये एक दूसरे को धारण करते हैं। यह सब केवल लोकालोक से सम्पूर्णतया आच्छन्न भूमि के भीतर हैं। इन्द्रिय ग्राह्य तथा नियत होने के कारण ये विशेष कहलाते हैं। पूर्व पूर्व के गुण उत्तर उत्तर में मिलाते हैं। इन सबों के जितने जितने और जो जो गुण हैं उसके वे सब बताये गये हैं। किसी को शुद्ध वायु में अपने दोष के कारण गन्ध गुण मिलता है। वह गन्ध पृथिवी का ही समझना चाहिये, क्योंकि वहाँ वायु में पृथ्वी तत्व मिला हैं। ये सातों महाबली पृथक्-पृथक् अनेक होकर बिना पूर्णतया मिले प्रजाओं की सृष्टि नहीं कर सके। तब महत् तत्व से लेकर विशेष पर्यन्त ये महत्तत्व एक दूसरे के आधार बनकर पुरुष के अधिष्ठान तथा अव्यक्त के अनुग्रह से अण्ड की उत्पत्ति करते हैं। एक ही समय [illegible] से वह अण्ड उस विपुल जल से पानी के बुलबुले के [illegible] उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा का कार्यकरण सिद्ध हुआ। प्राकृत अण्ड के विकसित होने पर उसमें [illegible] स्वरूप क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा हुए। वही प्रथम शरीरी हैं उन्हीं को पुरुष कहते हैं। भूतों के आदि कर्त्ता ब्रह्मा ही पहले रहे। सर्ग या प्रतिसर्ग में पहले पहल वही हिरण्यगर्भ चतुर्मुख अविषय क्षेत्रज्ञ प्रकट होते हैं। सृष्टि काल में करणों के [illegible] की सृष्टि होती है फिर प्रलयकाल में करण..। त्याग देते हैं और पुनः असमाहार सन्धियों में शरीरों को ग्रहण कर लेते हैं। जो स्वर्णमय मेरु है वही उस महात्मा का उल्ब (कलल) है। समुद्र उसका गर्भजल तथा पर्वत उसकी जरादि हड्डियाँ हैं। उस अण्ड के भीतर ये सारे सातों लोक तथा सातों समुद्रों के साथ सात दीपावली पृथिवी छिपी हुई है। सहस्रों बड़ी नदियों और पर्वतों के साथ ये सब लोक तथा यह समूचा जगत् उसी के भीतर है। चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, ग्रह और वायु जो कुछ लोक या अलोक है सब उसी अण्ड में समर्पित हैं। वह अण्ड दशगुने जल से बाहर से घिरा हुआ है। और इसी प्रकार दसगुना जल बाहर से तेज से आवृत है। दसगुने वायु से तेज बाहर से आच्छादित है। वायु दसगुने आकाश से और आकाश से वायु ढका है। स्वयं आकाश भूतादि अहंकार से ढका है। फिर भूतादि महत्तत्व से तथा महत्तत्व अव्यक्त से परिवेष्टित है। इन सात प्राकृत आवरणों से अण्ड आच्छादित है। ये आठ प्रकृतियाँ एक दूसरे को आच्छादित कर के रहती हैं। (सृष्टिकाल में) स्थित रहकर फिर प्रलयकाल में एक दूसरे का ग्रास कर जाती हैं। इस प्रकार एक दूसरे से उत्पन्न होतीं तथा एक दूसरी को धारण करती हैं आधार और आधेय भाव से विकृति अपनी प्रकृति में रहती है। अव्यक्त को क्षेत्र तथा ब्रह्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं। यही क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सर्ग है। यह पहले अबुद्धि पूर्वक हुआ जैसे तड़ित् उत्पन्न होती है। हिरण्यगर्भ की

Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति को जो ठीक ठीक जानता है उसकी आयु, कीर्ति धन और प्रजा सभी बढ़ती है। शुद्धात्मा निवृत्ति का इच्छुक मनुष्य भी पुराण सुनने से गति पा जाता एवं उसे सुख और क्षेम मिलता है ॥१२-९२॥

श्री वायु महापुराण के प्रक्रिया पाद में प्रसृष्टि प्रकरण कथन नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

पाँचवाँ अध्याय

सृष्टि-प्रकरण

लोमहर्षण ने कहा—ब्राह्मणो ! जो सृष्टि समय की अवधि हमने बताई है वही परमेश्वर का दिन समझना चाहिये। इतनी ही बड़ी परमेश की सम्पूर्णतया रात्रि भी जाननी चाहिए। जो सृष्टि है वही उसका दिन और प्रलय ही उसकी रात्रि है। वस्तुतः उसका दिन ही दिन होता है रात कभी नहीं होती किन्तु लोगों की हितकामना से रात का भी उपचार (आरोप) कर दिया जाता है। प्रजाएँ, प्रजापतिवर्ग, सनत्कुमार आदि तथा ब्रह्म-सायुज्य वालों के साथ ऋषि तथा मुनिगण, ज्ञानेन्द्रियां एवं उनके विषय पांचो महाभूत, तथा तन्मात्रायें, कर्मेन्द्रियां, बुद्धि और मन ये सब अभिमानि परमेश्वर के दिन में अवस्थित रहते और दिन के अन्त में उसी में लीन हो जाते हैं। फिर रात्रि के बीतने पर विश्व की उत्पत्ति होती है। विकार का प्रतिसंहार होने पर जब सत्व अपने में स्थित रहता है उस समय शब्द और पुरुष दोनों एक भाव से स्थित रहते हैं। ये दोनों तमोगुण और सत्वगुण समभाव से स्थित भूतानि। फिर बढ़कर एक दूसरे की विषमता से सृष्टि करते हैं। गुणों की साम्यावस्था में प्रलय तथा वैषम्य में सृष्टि होती है। जैसे तिलों में तैल अथवा दूध में घी रहता है उसी प्रकार सत्व और तम में अव्यक्त के आश्रय से रजोगुण रहता है। फिर समस्त पारमेश्वरी परा रात्रि की उपासना करके प्रकृति सम्भव परमेश्वर ही, जब दिन का आरम्भ होता है, तब अपने उत्कृष्ट योग से अण्ड में प्रवेश करके प्रधान प्रकृति और पुरुष को क्षुब्ध करते हैं। प्रकृति के क्षुब्ध होने पर रजोगुण उद्बुद्ध हुआ। बीजों में जल की भांति रजोगुण प्रवर्त्तक है। गुणों की विषमता पाकर चेतना के अधिष्ठान से सृष्टि होती है। गुणों में क्षोभ आने पर आश्रित, परम, गुह्य, सर्वात्मा, शरीरी तीनों देव उत्पन्न हुए। रजोगुणी ब्रह्मा, तमोगुणी अग्नि तथा सत्वगुणी विष्णु प्रकट हुए। रजोगुण के प्रकाशक ब्रह्मा स्रष्टारूप तथा तमोगुण के प्रकाशक अग्नि कालरूप से तथा सत्व के प्रकाशक विष्णु उदासीन भाव से अवस्थित हैं। यही तीनों लोक, ये ही तीनों गुण, ये ही तीनों वेद और ये ही तीनों अग्नियां हैं। ये एक दूसरे के आश्रित तथा परस्पर मिले हुए एक दूसरे में रहते, एक दूसरे को धारण करते हैं। ये एक दूसरे से मिले रहते और एक दूसरे के सहायक हैं। आपस में ये क्षणमात्र भी वियोग नहीं सह सकते। ईश्वर पर देव हैं, विष्णु महान से पर हैं और रजोगुण से प्रवृद्ध होकर ब्रह्मा सृष्टि करते हैं। पर नाम है पुरुष का और परा प्रकृति को कहते हैं ॥१-२०॥

Funding by IKS-MoE

महेश्वर के अधिष्ठान से वह चारों ओर से प्रेरित होकर कार्य में प्रवृत्त होती है। वे चिरकाल तक प्रिय होने के कारण अपने विषय में रहकर फिर महान् को प्रवृत्त करते हैं। गुण की विषमता से सृष्टि काल में पहले प्रकृति प्रवृत्त होती है। तत्र उस सत् असत् रूप से ब्रह्मा और बुद्धि दोनों उत्पन्न हुए। इसीलिए तम तथा अव्यक्तमय क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा कहा जाता है। कार्य और करणों से सिद्ध ब्रह्मा पहले पहल थे। तेज से उस प्रथम बुद्धिमान् अव्यक्त का प्रकाश होता है। वही प्रथम शरीरी कारण रूप से है। वह अप्रतिहत ज्ञान तथा ऐश्वर्य से युक्त है। अप्रतिहत धर्म तथा वैराग्य से भी वह सम्पन्न है। उसी ईश्वर का अप्रतिहत ज्ञान वैराग्य स्वरूप है। इस अभिमानी ब्रह्मा के धर्म और ऐश्वर्य से बुद्धि प्रकट हुई। यह जो अपने मन से चाहता है वही इस अव्यक्त से उत्पन्न होता है। वशीकार, वैगुण्य, सुरेश्वत्व तथा स्वभाव के कारण ब्रह्मत्व में चतुर्मुख तथा कालत्व में अन्तक (मृत्यु) हुआ। सहस्रों शिरों वाला यह पुरुष है। इस स्वयम्भू की तीन अवस्थायें हैं। इस स्वयम्भू की ब्रह्मा होने पर सत्व तथा रजोमयी, काल होने पर रज और तमोमयी तथा पुरुष होने पर सत्वमयी गुणवृत्ति होती है। यह ब्रह्मा होकर लोकों की सृष्टि करता, काल होकर संहार करता तथा पुरुष होने पर उदासीन रहता है। प्रजापति की तीन अवस्थाएँ भी हैं। ब्रह्मा कमल गर्भ के रंग के, काल अञ्जनवर्ण के हैं, पुरुष की आँखें पुण्डरीक की सी हैं। यही रूप परमात्मा का है। यह योगेश्वर अपनी लीला से नाना आकृति, क्रिया, रूप तथा नामों द्वारा शरीरों को बनाते तथा बिगाड़ते हैं। संसार में ये तीन प्रकार से रहते हैं अतएव इनका नाम त्रिगुण है। चार प्रकार से प्रविभक्त होने के कारण इन्हें चतुर्व्यूह कहा गया है। आप्ति तथा आदान करने तथा विषय का भोग करने से सदा उसका वही भाव हो जाता है अतः उसे आत्मा कहते हैं। सर्वत्र गति होने अर्थात् सर्वव्यापक, और आद्य शरीर धारण करने से ऋषि कहाते एवं स्वयं सब के स्वामी होने से प्रभु कहे जाते हैं। सब में प्रविष्ट होने के कारण विष्णु कहलाते हैं। भग अर्थात ऐश्वर्य के होने से भगवान् तथा राग पर शासन करने के कारण—इसको राग कहा जाता है। प्रकृष्ट होने से पर तथा अवन या रक्षण करने से इसे ओम् कहते हैं। सब कुछ का ज्ञान होने के कारण इसे सर्वज्ञ तथा सब कुछ होने से इसे सर्व कहते हैं। नरों का अयन होने से नारायण कहलाता है। अपने को तीन प्रकार से विभक्त करके त्रैलोक्य को चलाता है इन तीनों रूपो से वह सृष्टि, संहार तथा रक्षण करता है। पहले पहल वह हिरण्यगर्भ चतुर्मुख रूप में प्रकट हुआ। आदि होने से वह आदिदेव तथा अजन्मा होने से अज कहलाता है। सब प्रजाओं का पालन करता है अतएव उसे प्रजापति कहते हैं। सब देवों में यह बड़ा है इसलिये इसे महादेव कहते हैं। सब का ईश तथा लोकों के वश में न होने के कारण यह ईश्वर कहलाता है। बृहत् होने से ब्रह्मा तथा भूत कहा जाता है। क्षेत्र के विज्ञान से क्षेत्रज्ञ तथा सर्वव्यापी होने से विभु इसका नाम है। पुर अर्थात शरीर में सोता है इस लिये इसे पुरुष कहते हैं। किसी ने इसे उत्पन्न नहीं किया और रूप के पूर्व में वह रहता है अतएव सब इसे स्वयम्भू कहते हैं। इज्य (पूज्य) होने से यज्ञ तथा क्रान्तदर्शी होने के कारण कवि कहता है। क्रमणीय अर्थात् सबका गन्तव्य होने से क्रमण तथा वर्णों

की रक्षा करने से आदित्य और कपिल कहलाता है। आगे उत्पन्न होने के कारण यह अग्नि कहा जाता है। हिरण्य इसका गर्भ तथा यह हिरण्य के गर्भ उत्पन्न हुआ अतएव इसे पुराण में हिरण्यगर्भ कहते हैं। व्यतीत स्वयम्भू के वर्ष आदि काल सैकड़ों वर्षों में भी नहीं गिनाये जा सकते। कल्प संख्या से युक्त ब्रह्मा का काल पर, कहलाता है। उतना ही (जितना बीत चुका है) उसका काल अभी शेष है। उसके अन्त में प्रलय होता है। कोटि सहस्र कल्प जो बीत गये उतने ही पर काल अभी शेष हैं। इस समय जो वह वर्तमान वाराह कल्प है उसे सुनिये। ब्राह्मणों, उनमें से पहला यह साम्प्रत कल्प है। इसमें स्वांयभुव आदि चौदह मनु हैं। उनमें व्यतीत वर्तमान, तथा भविष्य जो हैं वे ही नरेशर भली भाँति इस सातों द्वीपों वाली पृथवी का पूरे चार सहस्र युग तक तप तथा प्रजोत्पत्ति से पालन करते हैं। उनका विस्तार आप लोग सुनिये। ज्ञानी पुरुष को एक ही मन्वन्तर से सभी मन्वन्तरों का, एवं भविष्य से भविष्यो का तथा कल्प से कल्पों का, एवं वंश और देवों के साथ अतीत कल्प जैसे हैं वैसे ही भविष्य में भी होंगे ऐसा तर्क कर लेना चाहिये।

श्री वायु महापुराण का प्रकृति वर्णन नाम का पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥५॥

छठाँ अध्याय

सृष्टि प्रकरण

सूत बोले—पृथ्वी तल पर अग्नि के नष्ट हो जाने पर अग्नि से जल उत्पन्न हुआ। स्थावर जंगम सहित पृथ्वी जब उस जल में विलीन हो गई, तब चारों ओर केवल समुद्र ही समुद्र दिखाई पड़ने लगा। उस प्रलय पयोधि में कोई दूसरा पदार्थ दृष्टिगोचर नहीं होता था। उस समय सहस्र नेत्र, सहस्र पाद, और सहस्र शीर्ष, रुक्म वर्ण और अतीन्द्रिय पुरुष भगवान् ब्रह्मा, जिसको नारायण कहा जाता है, उस सलिल राशि में सो गए। कुछ समय बाद सतोगुण के जाग्रत होने पर वे जाग गए उस समय उनको चतुर्दिक् शून्य ही दिखाई पड़ता था। उस नारायण के प्रति यह श्लोक कहा जाता है कि अप्, नार, तनु ये जल की संज्ञायें हैं, यतः वे जल में सोते हैं इसलिए वे नारायण कहे जाते हैं। वे ही हजारयुगों के बराबर निशा काल बीत जाने पर रात्रि के अन्त में सृष्टि के लिए ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं। ब्रह्मा उस समय वायु का रूप धारण कर वर्षा काल में रात्रि के समय इधर उधर उड़ने वाले जुगनू की तरह इधर-उधर समुद्र तल पर घूमने लगे। अनुमान से उस समुद्र में डूबी हुई पृथिवी का पता पाकर उसके उद्धार के लिए सचेष्ट हो गए। उन्होंने पूर्व कल्पो में जैसा शरीर धारण किया था वैसा ही दूसरा शरीर धारण कर लिया। पुनः वे महात्मा मन में दिव्य रूप का ध्यान करने लगे। वे चारों ओर से पृथ्वी को जल से घिरी हुई देख कर सोचने लगे कि 'किस महान् शरीर को धारण कर इस पृथ्वी का उद्धार करूँ'। इतने में जल कीड़ा के उपयुक्त बाराह रूप का उनको स्मरण हो

Funding by IKS-MoE

गया। तब हरि ने, प्राणीयों से अजेय, वाङ्‌मय और धर्ममूर्ति बाराह रूप को धारण किया, जिनका शरीर दश योजन लम्बा और सौ योजन ऊँचा था। वे रंग में नीले मेघ के समान और घोर चीत्कार करने में भी मेघ के ही समान थे। महापर्वत के समान विशाल काय, श्वेत तीक्ष्ण और कठोर दाँतों वाले उस बाराह की आँखे विद्युत और अग्नि के समान चमकीली थीं। सूर्य के समान तेजस्वी उनका स्कन्ध मोटा, लम्बा और गोल था। सिंह के समान गमन करने वाले उस देव का कटि भाग पीन और उन्नत था। इस प्रकार सुडौल शुभ लक्षण, अमित और विपुल काय उस बाराह रुप को धारण कर भगवान् पृथ्वी का उद्धार करने के लिए रसातल में घुस गए। ॥१—१४

उस भगवान् बाराह के वेद चरण, यूप दंष्ट्रा, यज्ञ वक्षस्थल, चिति मुख, अग्नि जिह्वा, कुश रोमसमूह और ब्रह्मा ही शिर थे। उस महात्मा ने दिन रात को नेत्र के रूप में धारण किया था। वेदाङ्ग उन के कानों के कुण्डल, आज्य नासिका के छिद्र और स्रुवा उन का तुण्ड (नथुना) था। उनका दीर्घ घोष ही साम गान था। सत्य धर्ममय वे श्रीमान् धर्म और विक्रम की साक्षात् प्रतिमा थे। प्रायश्चित्त उनका रथ, पशु उनका भयङ्कर [illegible]। वे महान आकार वाले थे, उद्‌गाता उनकी अतड़ियाँ, होम लिङ्ग स्थान और महोषधियाँ [illegible] उनका अन्तःकरण, मन्त्र स्फिग्, आज्य रक्त, सोम शोणित तथा वेद स्कन्ध थे। हवी उनके शरीर की सुगन्ध, हव्य उनका वेग, और प्राग्वंश शरीर था। परम द्युतिमान वे नाना दीक्षाओं से दीक्षित थे। महायज्ञमयविभु योगी का दक्षिणा हृदय था। उपाकर्म, रुचिर इष्टि और प्रवर्ग्य ही वैभव था, नाना छन्द गतिपथ और रहस्यमय उपनिषद् आसन थे। पत्नी छाया के सहित वे मणिमय शृङ्ग (सुमेरु) के समान ऊँचे थे। इस प्रकार प्रभु यज्ञबाराह बनकर उस जलराशि में घुस गए। उस प्रजापति ने जल से आवृत पृथ्वी के समीप जाकर उसको दाँतों से पकड़कर जल के ऊपर स्थापित कर दिया। इतना कर चुकने के बाद समुद्र जल को समुद्रों में, नदी जल को नदियों में बाँट दिया। पृथ्वी के उद्धार कर्त्ता उस हरि ने पृथ्वी को अपने निर्दिष्ट स्थान पर रख कर पहले मन में भविष्य की रूपरेखा निश्चित कर उसको जल तल पर छोड़ दिया। उस जल राशि के ऊपर पृथ्वी बहुत बड़ी नाव के समान स्थित हुई जो कि अपने आकर की विपुलता और भगवान के प्रभाव से डूबती नहीं है ॥१५-२७॥

कमलनेत्र देव पृथ्वी का उद्धार करने के अनन्तर संसार स्थापन के उद्देश्य से पृथ्वी को कई भागों में विभक्त करने को सोचने लगे। पहले भूतल को समतल कर उस पर पहाड़ों को स्थापित किया। पूर्व सृष्टि में जो संवर्तक अग्नि से गल गए थे और धरातल पर चारों ओर जल कर विखर गए थे, वे उस जलप्लावन में शीतलता के कारण, वायु के द्वारा जल इकट्ठा हो जाने से पहले जहाँ जहाँ स्थित थे वहाँ वहाँ इस बार भी अचल हो गए। पहले पिघल कर वे अचल (स्थित) हुए इसलिये पर्वतों का नाम अचल पड़ा, पर्व (गाँठ) होने के कारण वे पर्वत कहे गए। जल के भीतर निगले जाने के कारण गिरि और शिलाओं के चयन (चुनना) के कारण पर्वतों का नाम शिलोच्चय पड़ा। ॥२७-३३॥

Funding by IKS-MoE

उन लोक-समुद्र और पर्वतों के नष्ट हो जाने पर विश्वस्रष्टा हरि कल्प के आदि में बार बार पृथ्वी का विभाग और निर्माण करते हैं। इस नियम के अनुसार इस बार भी उन्होंने समुद्र, सप्तद्वीप और पर्वतों से युक्त इस पृथ्वी, भू आदि चारों लोकों की सृष्टि की। लोकसृष्टि के अनन्तर प्रजासृष्टि की गई। विविध प्रजाओं की सृष्टि के इच्छुक स्वयंभू भगवान् ब्रह्मा ने पूर्व कल्प की भाँति ही सृष्टि की। जिस समय ध्यानावस्थित होकर उन्होंने बुद्धिपूर्वक सृष्टि की इच्छा की, उसी समय ध्यान के साथ ही तमोमय, तमोमोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध नामक पाँच प्रकार की तमोमय सृष्टि हुई। उस महात्मा के ध्यान मात्र से पाँच पर्वों (श्रेणी) वाली यह अविद्या उत्पन्न हुई। उस अभिमानी ध्यानस्थ देव का यह सर्ग पाँच भागों में विभक्त था। वह सर्ग चारों ओर से अन्धकार से ढका ऐसा जान पड़ता था मानो घड़े से ढका दीपक हो। वह सर्ग बाहर और भीतर से प्रकाशमान शुद्ध और निःसंज्ञ (अचेतन) था। अतः उन पाँचों से बुद्धि और मुख्य करण (इन्द्रियाँ) ढकी हुइ थीं इसलिए वे संवृत्तात्मा 'नग, नामक मुख्य सर्ग कहलाए। ॥३४–३६॥

ब्रह्मा अपने मुख्य सर्ग को इस प्रकार सृष्टिकार्य में अवरोधक देखकर असंतुष्ट हो गए। उस सर्ग से विरक्त हो वे अन्य सृष्टि के लिए ध्यान करने लगे। उनके ध्यान करने से वहाँ तिर्यक् (तिरछा) स्रोत नामक सर्ग उत्पन्न हुआ था। यतः उस समय के उत्पन्न पदार्थ तिर्यक् (उटला) व्यवहार और व्यापार करने वाले थे इसलिए उनका नाम तिर्यक् स्रोत पड़ा। वे सभी तमोगुण की अधिकता के कारण अज्ञानी हुए। विपरीत मार्ग पर चलने वाले ध्यान और अध्यान पर कुछ भी विचार करने वाले न थे। उस तिर्यक् स्रोत सर्ग को देखकर ईश्वर ने पुनः दूसरे प्रकार की सृष्टि की। वह सृष्टि अहंकार प्रधान, अहंकार भाव वाली और अट्ठाइस प्रकार की है। एकादश इन्द्रिय वाले उस सर्ग का नवविध उदय बताया गया है। तारक आदि की संख्या आठ है, जिनकी शक्ति भिन्न भिन्न प्रकार की हैं। उनका अन्तस् प्रकाशमान परन्तु बाहर से वे ढके हुए हैं। (वे तिर्यक् व्यवहार वाले हैं अतः तिर्यक् स्रोत उनका नाम है। इस तिर्यक् स्रोत वाली सृष्टि को देख कर भी ईश्वर ने तृतीय सृष्टि की इच्छा की क्योंकि पूर्व की दो सृष्टियों को देखकर उनके हृदय में अन्य प्रकार की सृष्टि करने की इच्छा हुई थी।) उनके नित्य ध्यान से सात्विक सर्ग उत्पन्न हुआ वह तीसरा सर्ग ऊर्ध्वस्रोत हुआ जो कि ऊर्ध्व दिशा की ओर ही व्यवस्थित रहा। यतः उसकी ऊपर की ओर ही गति थी इसलिए उस सर्ग का नाम ऊर्ध्वस्रोत पड़ा। उस सर्ग के जीव सुखी और प्रेमी थे। उनका अन्तः और बाह्य दोनों प्रकाशमान और समान रूप से व्यस्थित था। ऐसे ऊर्ध्वस्रोत सर्ग से उत्पन्न सभी ऊर्ध्वस्रोत ही कहे जाते हैं। उसी सर्ग के अन्तर्गत जीवों में प्राण संचार करनेवाले वायु आदि सम्मिलित हैं। उर्ध्व प्रवृत्ति होने के कारण ही वह सर्ग ऊर्ध्वस्रोत कहा गया है। उस समय ऊर्ध्वस्रोत देवों की सृष्टि हो जाने के अनन्तर प्रभु ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने अब दूसरे प्रकार की सृष्टि करने का विचार किया। उस प्रभु ईश्वर ने

Funding by IKS-MoE

अन्य साधक (इच्छानुकूल) सर्ग की सृष्टि की । उस समय सत्य-चिन्तन करने वाले ब्रह्मा के चिन्तन से अव्यक्त से अव्यक्त स्रोत नामक सर्ग उत्पन्न हुआ जो कि प्रभु के इच्छानुकूल था । यतः वह सर्ग अर्वाक् (मध्यगत) प्रवृत्ति वाला था इसलिए वह अर्वाक् स्रोत कहा गया है । उस सर्ग के जीव प्रकाश, सत्व, रज और तम तीनों गुणोंसे यथेष्ट रूप से पूर्ण थे । इसलिए उनमें दुःख की मात्रा अधिक थी और वे बार बार कर्म करने वाले हुए । वे मनुष्य अन्तः बाह्य सभी ओर से प्रकाशपूर्ण और सृष्टि के सहायक हुए । वे तारक आदि लक्षणों से आठ रूपों में स्थित हैं । वे सिद्धात्मा मानव गन्धर्वों के सहधर्मी हैं । इस प्रकार यह सर्ग तैजस् और अर्वाक् स्रोत कहा गया है । [illegible]० — ५६॥

पाँचवाँ सर्ग अनुग्रह के नाम से विख्यात है जिसकी व्यवस्था शक्ति, तुष्टि एवं सिद्धि के विपर्यय (उलटे) क्रम से की गई हैं । उस सृष्टि के प्राणी (ब्रह्म के) विवर्त रूप एवं उसके वर्तमान अर्थ को तात्त्विक रूप से जानते हैं, इस प्रकार भूतादि (पञ्चभूत आदि) जीवों का वह सर्ग छठाँ सर्ग कहा जाता है । उनमें जो संचय तथा समान विभाग करने वाले और भक्षणशील एवं कठोर प्रवृत्ति के हैं, उन्हें भूत सर्ग नामक छठाँ सर्ग जानना चाहिए । विपर्यय के क्रम से उत्पन्न वह भूतादि सर्ग, शक्तिहीन रूप से स्थित है । प्रथम उत्पन्न होने के नाते इसको महत् सर्ग कहा गया है, इसीलिए उसे महत् सर्ग जानना चाहिए । पञ्चतन्मात्रा का दूसरा रूप, भूतसर्ग कहा जाता है, और विकार जनित होने के नाते उसके तीसरे रूप को वैकारिक कहते हैं इन्हें ऐन्द्रिक (इन्द्रिय द्वारा जनित) भी कहा जाता है । इस प्रकार बुद्धिपूर्वक यह प्राकृत सर्ग उत्पन्न हुआ । चौथा मुख्य सर्ग है, जिसमें मुख्य स्थावर सर्ग का होना बताया गया है । तिर्यक् स्रोत वाले उस पाँचवें सर्ग को तिर्यक् योनि कहा गया है और ऊर्ध्व स्रोत वाले उस छठें सर्ग को देवसर्ग । इसी प्रकार अर्वाक् स्रोत वाले को सातवाँ मानुष सर्ग कहा जाता है एवं अनुग्रह सर्ग को आठवाँ जो कि सात्त्विक और तामस के संमिश्रण से प्रादुर्भूत है । इस प्रकार पाँच प्रकार के विकृत और तीन प्रकार के प्राकृत सर्ग बताये गये हैं ! इन्हीं विकृत तथा प्राकृत सर्गों के समेत नवें कौमार सर्ग की व्याख्या की गई है (इनमें तीन प्रकार के इस प्राकृत सर्ग की बुद्धिपूर्वक सृष्टि की गई है) इस प्रकार ब्रह्मा की ये छहों सृष्टियाँ बुद्धि पूर्वक ही प्रवृत्त होती हैं ।

अब मैं वर्णनीय उस अनुग्रह नामक सर्ग की जो समस्त प्राणियों में चार प्रकार से पूर्णरूपेण स्थित है, विस्तृत व्याख्या बता रहा हूँ, तुम लोग सुनो ।

शक्ति, तुष्टि एवं सिद्धि के विपर्यय क्रम से स्थावर सृष्टि में विपर्यय और तिर्यक् योनियों में शक्ति का संचार हुआ है । अतः मनुष्यों में सिद्धि और देवों में तुष्टि पूर्ण रूप से निहित है । पुनः इस प्रकार प्राकृत तथा विकृत सर्ग नव प्रकार के बनाये गये हैं । परस्पर संबद्ध इन सर्गों के बहुत से भेद कहे गए हैं । सब से पहले ब्रह्मा ने अपने ही समान विद्वान् सनक, सनन्दन और सनातन नामक तीन मानस पुत्रों

Funding by IKS-MoE

को उत्पन्न किया। वे तीनों महातेजस्वी अपने सृष्टिविज्ञान के प्रभाव से निवृत्ति मार्ग पर अटल रहे। नानात्व के रहस्य को जानकर वे ज्ञान संपन्न हो गए और पिता की आज्ञा न मानकर प्रजोत्पत्ति से विमुख हो अन्यत्र चले गए। इस प्रकार उन कुमारों के चले जाने पर ब्रह्मा ने पुनः अपने पद का अभिमान करने वाले अन्य मानस पुत्रों को उत्पन्न किया जिन्होंने सृष्टि कार्य में पूरा सहयोग दिया। प्रलय तक स्थित रहने वाले स्थानाभिमानी देवों के नामों को गिना रहा हूँ सुनो —

जल, अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, दिशायें, स्वर्ग, दिव, समुद्र, नद, शैल, वनस्पतियाँ, औषधियाँ, आत्मा, मन, वृक्ष, वीरुध, (छोटे वृक्ष), लव, काष्ठ, कला, मुहूर्त्त, सन्धि, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, ये सभी स्थानाभिमानी और स्थान के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जिसके मुख से ब्राह्मण, वक्षस्थल से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और जिसके पैर से शूद्र, इस प्रकार जिसके शरीर से सब वर्ण उत्पन्न हुए वे नारायण अव्यक्त से परे हैं। उस अव्यक्त से अण्ड की उत्पत्ति हुई और अण्ड से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जिन्होंने स्वयं लोकों को उत्पन्न किया। यह प्रक्रियापाद आप लोगों से संक्षेप में कहा गया है। इस प्रकार इस आद्य पाद के द्वारा यह पुराण कहा गया है। ॥५७—७१॥

श्री वायु महापुराण का सृष्टि-प्रमाणनामक छठाँ अध्याय समाप्त ॥ ६ ॥

सातवाँ अध्याय

प्रतिसन्धि का वर्णन

सूतजी बोले—यह पहला प्रक्रिया पाद कह दिया गया जिसको सुनकर सनातन काश्यपेय प्रसन्न हो गये। इसके बाद सूत का प्रिय शब्दों से सम्मान कर उन्होंने पुनः आगे की कथा पूछी कि—हे कल्प की कथा जानने वाले! आप अत्यन्त कुशल हैं अब इसके बाद प्रतिसन्धि के विषय में हमलोगों को बतलाइये। बीते हुये और वर्तमान कल्प का जो मध्य काल है और उनकी जो प्रतिसन्धि है उसको हमलोग जानने के लिये अत्यन्त उत्सुक हैं ॥ १–२ ॥

लोमहर्षण बोले—'अब मैं अतीत और वर्तमान दोनों कल्पों की जो प्रतिसन्धियाँ हैं, जिन कल्पों में जो मन्वतर होते हैं; हे सुव्रत! उसको बतला रहा हूँ। यह जो वर्तमान कल्प है वह शुभ साम्प्रत या बाराह कल्प कहलाता है। इस कल्प से पूर्व का जो कल्प बीत गया है वह सनातन कल्प था। उस अतीत और इस वर्तमान वाराह कल्प की मध्य अवस्था के विषय में सुनिये। पूर्व कल्प के बीत जाने पर प्रतिसन्धि आती है, तब दूसरा कल्प जनलोक से आता है यही क्रम बार-बार चलता रहता है। बीच में प्रतिसन्धि के आजाने से ही एक कल्प दूसरे कल्प से पृथक् होते हैं। पूर्वकल्प के बीत जाने पर उस अतीत कल्प की सारी क्रियायें सर्वथा छिन्न भिन्न हो जाती हैं। उस कल्प से आगत कल्प के प्रारम्भ तक का काल कल्प की प्रतिसन्धि कहा जाता है। मन्वन्तर और युगों की अविच्छिन्न सन्धियाँ मन्वन्तर युगों के साथ परस्पर

प्रवृत होती हैं। जो प्रक्रिया पाद में संक्षेप में कहे गये हैं वे पूर्व कल्प हैं। उन परार्ध कल्पों में इससे पूर्व जो प्रथम पर कल्प था वह तो व्यतीत हो चुका किन्तु द्वितीय परार्ध कल्प अभी नहीं व्यतीत हुआ है। अन्य जो भविष्य में आने वाले कल्प हैं वे अपरार्ध से गुणीकृत (अपरार्द्ध नाम से प्रसिद्ध) हैं। द्विजो! उनमें से पहला साम्प्रत नामक यह कल्प बीत रहा है। जो प्रथम परार्द्ध में पूर्व है और जो द्वितीय परार्द्ध में पर कहा जाता है इतना काल परिमाण स्थितिकाल है इसके बाद का काल प्रत्याहार काल (प्रलय काल) कहा गया है। अर्थात् पूर्व और पर परार्द्ध का काल स्थितिकाल और इस द्विपरार्द्ध के बाद का प्रलय काल (प्राकृत प्रलय काल) कहा जाता है। इस कल्प से पूर्व जो सनातन कल्प था वह बीत चुका है। वह सहस्र चतुयुर्ग के अन्त में मन्वन्तर परिमित [illegible] होने पर क्षीण हो गया। उस समय कल्प के क्षीण होने पर और प्रलयकालीन-दाहकाल के आ जाने पर उस कल्प में जितने विमान-विहारी देवता, नक्षत्र, ग्रह, तारामण्डल सूर्य और चन्द्रमा आदि ग्रह थे, वे सुकृतात्मा देव सब मिलाकर अट्ठाइस करोड़ थे। यह एक मन्वन्तर के देवताओं की संख्या है। इस प्रकार चौदहों मन्वन्तरों के देवों की संख्या तीन सौ बानवे करोड़ हुई। पहले अतीत (बीते हुए) कल्प में जो वैमानिक देव थे उनकी संख्या सात सौ आठ हजार कही गई है। एक कल्पों में जितने वैमानिक देव होते हैं स्वर्ग में उतने ही चौदहों मन्वन्तरों में होते हैं। उस मन्वन्तर या कल्प काल में जितने देवता, पितर, मुनि तथा मानव, उनके अनुचर, वर्णाश्रम धर्मावलम्बियों के पूज्य जितने देवता एवं मन्वन्तरों में जो देवलोक के रहने वाले देवता थे, वे अपने संयोजकों के साथ उस समय संहार काल में प्रलयकालीन लक्षणों के उपस्थित हो जाने पर समान भाव से अपने अवश्यंभावी पर्याय (स्थान-नाश) को जान गये। अतएव वे त्रैलोक्यवासी देवता जो कि अपने स्थान-महत्व पर अभिमान करने वाले थे—उस समय अपने स्थिति-काल को समाप्तप्राय और पश्चाद्भावी प्रलय के उपद्रवों को निकट आया हुआ समझ गए। अतएव अपने स्थानों को छोड़ कर उत्सुकता और विषादयुक्त हो महर्लोक जाने के लिये आतुरता के साथ सोचने लगे। उस समय वे सभी देवता अपनी परम आत्म-विशुद्धि के कारण महर्लोक के उपयुक्त शरीर को पा गये, इस प्रकार उस समय सबको मानसी-सिद्धि प्राप्त हो गई। ॥ ४-२६ ॥

वे चौदह प्रकार के देवगण उस महर्लोक में उन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों, भक्तों और अपर जनों के साथ जिन्होंने "महान्" को प्राप्त कर लिया है—कुछ समय रहकर जनलोक जाने के लिये उद्विग्न हो सोचने लगते हैं। तत्पश्चात् वे अति विशुद्ध अन्तःकरण वाले जिन्होंने मानसी सिद्धि प्राप्त करली है, उन कल्पवासियों के साथ जिन्होंने कि 'महान्' को प्राप्त कर लिया है—जनलोक को चले जाते हैं, वहाँ पर दश गुने समय तक (पूर्व काल के दशगुने अर्थात् दश कल्प तक) आनन्द भोगकर पुनः वहाँ से तपोलोक को चले जाते हैं। वहाँ पर भी दश कल्प तक रहकर पुनः सत्यलोक को चले जाते हैं। इस क्रम से कल्पनिवासी ऊर्ध्व लोक जाते हैं। इस प्रकार एक के बाद एक लोक को प्राप्त करने में देवों के सहस्र युग बीत जाते हैं। वे देव ब्रह्मलोक में जाकर ऐसी गति को प्राप्त हो जाते हैं जहाँ से पुनः लौटते नहीं हैं। वहाँ वे आधिपत्य तो नहीं

Funding by IKS-MoE

प्राप्त करते परन्तु रूप और विषय से ब्रह्म के ही अनुरूप होते हैं और उन्हीं के समान ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। प्रसन्नतापूर्वक वे वहाँ ब्रह्मानन्द को पाकर ब्रह्म के साथ मुक्ति (मोह-मुक्ति) प्राप्त करते हैं, पुनः जो स्वयं प्रकृति-सिद्ध अवश्यम्भावी सृष्टिप्रयोजनवश नानात्व से संबद्ध हो जाते हैं, उस काल से सम्बद्ध उन देवों की ऐसी अवस्था हो जाती है, जैसी जान बूझकर सोने का बहाना करने वालों की होती है। वे उस समय जैसे सोते हुये भी जागते रहते हैं उसी प्रकार उस समय उन मुक्त पुरुषों या देवों के मन में तत्कालसम्बन्धी नानात्व का ज्ञान उद्बुद्ध हो जाता है। जो भेद ज्ञान प्रत्याहार (प्रलय) काल में रहता है वही अब अपने भिन्न भिन्न सूक्ष्म रूपों में व्यक्त हो जाता है। उन ब्रह्मलोक निवासी, अपने धर्म का पालन करने वाले परन्तु सम्प्रति नानात्व दर्शन से अधिकारच्युत महापुरुषों के प्राकृत ज्ञान के साथ ही कार्य और कारण की सृष्टि होने लगती है। वे (पहली कोटि के शुद्धआत्मा), निरञ्जन, और तुल्य लक्षण कारणातीत सिद्ध पुरुष अपनी प्रकृति में ही व्यवस्थित रहते हैं। प्रकृति उन द्वितीय कोटि के मुक्त पुरुषों पर सर्वथा अपनी धाक तो जमा लेती है परन्तु वह पुरुष के विना सहयोग के किसी कार्य को स्वयं नहीं प्रारम्भ करती है। अतः प्रलय काल में पुरुष में ही वह लीन रहती है। सृष्टि प्रारम्भ होने पर या कारण उपस्थित होने पर उन योगी, तत्वदर्शी, युक्त, आवागमन के बन्धन से रहित पुरुषों की उस प्राकृत संयोग काल में भी (सृष्टि-काल में) शान्त अग्नि ज्वाला के समान पुनः उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकार इस त्रैलोक्य से ऊर्ध्व अत्यन्त महान् लोकों में (तपः सत्य) उन महापुरुषों के चले जाने पर उनके साथ रहने वाले वे महापुरुष तपस्वीजन जिन्होंने कि अपनी तपस्या से महर्लोक से ऊपर के लोकों का अधिकार नहीं प्राप्त किया है, कल्पपर्यन्त वहीं (महर्लोक में) शरीर धारणकर निवास करते हैं। उस समय गन्धर्वों से लेकर पिशाच पर्यन्त, मानव (ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि, पशु-पक्षी, स्थावर, सरीसृप (रेंग कर चलने वाले साँप आदि) आदि जो जीव पृथ्वीतल पर रहते हैं, । उनको प्रलय का सामना करना पड़ता है। उस समय सूर्य की जो सहस्र किरणों चमकती रहती हैं; उनमें से प्रत्येक सप्तरश्मि होकर एक एक सूर्य बन जाती हैं। क्रमशः वे सूर्य अधिकाधिक प्रज्वलित होते जाते और अपनी अपनी असह्य-ज्वाला से तीनों लोकों को जलाने लगते हैं। स्थावर, जंगम, सब नदियाँ, सब पर्वत जो कि पहले अनावृष्टि के कारण सूख गये थे, वे अब सूर्य किरणों से जला दिये जाते है। वे समस्त धर्मात्मक अधर्मात्मक पार्थिव पदार्थ अगत्या जल जाते हैं। तब वे सभी अपने पार्थिव शरीर के जल जाने के कारण निष्पाप हो जाते हैं और उनका आयुयुग के बीत जाने पर भी अपने शुभ और अशुभ कर्मों से संबन्ध रखने वाली योनि से सम्बन्ध बना ही रहता है। अत्यन्त विशुद्ध, मानसी सिद्धि प्राप्त करने वाले व्यक्ति जनलोक में वैसी ही (कर्मानुसारिणी) तुल्याकृति प्राप्त करते हैं। वे अव्यक्त-जन्मा ब्रह्मा की रात्रि को वहाँ रह कर बिताते हैं। पुनः सृष्टि-काल में वे ब्रह्मा के मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न होते हैं। तदनन्तर जब त्रैलोक्यवासी जनलोक में जाने के लिये नहीं शेष रह जाते अर्थात् अपनी शक्ति के क्षीण हो जाने पर जब वे जनलोक के अधिकारी नहीं रहते, सप्तसूर्य की ज्वाला से वे सब लोक दग्ध हो जाते, सम्पूर्ण पृथिवी वृष्टि से लबालब भर जाती और

Funding by IKS-MoE

सब आवास स्थान नष्ट हो जाते हैं तब समुद्र, मेघ, सम्पूर्ण जल और सब पृथिवी से सम्बद्ध जलराशि परस्पर एकाकार होकर एक महासागर के रूप में हो जाती है। इस प्रकार जब सब जलराशि एकाकार हो इस भूमि को चारों ओर से घेर लेती है तब इसका नाम **'अर्णवा'** हो जाता है । जिससे सब प्रकाशित होते हैं, जिसके बिना कोई प्रकाश में नहीं आते, जो अपनी व्याप्ति एवं दीप्ति के कारण चारों ओर फैला रहता है उसको अम्भ कहते हैं। वह अम्भ (जल) सम्पूर्ण पृथिवी को चारों ओर विस्तृत करता है और तनु धातु विस्तार अर्थ में प्रयुक्त होता है इसलिये अम्भ को तनु भी कहा जाता है। कवियो ने 'अर, इसको शीघ्रार्थ द्योतक माना है, एकार्णव काल में जल शीघ्रगामी नहीं होता इसलिये जल को 'नर' या 'नार' भी कहा जाता है। सहस्र युग काल परिमाण वाले ब्रह्मा के एक दिन की स्थिति के बाद उतने ही परिमाण वाली रात्रि के हो जाने पर जबकि चारों ओर केवल जल ही जल व्याप्त रहता है और अग्नि के नष्ट हो जाने पर पृथ्वी तल पर चारों ओर घना अन्धकार छा जाता, कहीं पर भी आलोक नहीं दिखाई देता तब उस सलिल में निवास करने वाले उस प्रभु-पुरुष ब्रह्मा के हृदय में पुनः इस लोक को विभक्त करने की इच्छा हुई। स्थावर जङ्गमात्मक सृष्टि के नष्ट हो जाने पर जब उस समय केवल एक मात्र समुद्र ही शेष रह जाता है तब केवल इच्छा मात्र से वह ब्रह्मा सहस्राक्ष (हजार आखों वाला) सहस्रपाद् (हजार पैर वाला) सहस्रशीर्ष, (हजार शिर वाला) सुवर्ण के समान वर्ण वाला और अतीन्द्रिय हो गया। उस समय वे नारायण नामक ब्रह्मा जल में ही सोते थे। ब्रह्मा के हृदय में उस समय जब सत्व गुण की वृद्धि हुई तब उनको ज्ञान-प्राप्ति हो गई, तब उन्होंने चारों ओर केवल शून्य को ही देखा ॥ २७-६३ ॥

नारायण के सम्बन्ध में इस प्रकार का श्लोक प्रसिद्ध है कि जल का नर और तनु नाम है। उस जल में वे नाभितक मग्न होकर रहते हैं अतः उनका नाम नारायण पड़ा। इन सहस्रप्राण, मन, मुख, मस्तक, हस्त, पाद, चक्षु और कर्ण वाले, सर्वाग्रवर्ती, प्रजापति पुरुष के विषय में वेदों में विशेष उल्लेख है। यही महात्मा वेद में आदित्यवर्ण, भुवनपालक, अपूर्व, प्रथम प्रजापति इन्द्र तमसे परे हिरण्यगर्भ और महापुरुष कहे जाते हैं। यही कल्प के आदि में रजोगुण के उद्रेक होने से ब्रह्मा होकर प्रजा की सृष्टि करते हैं और कल्पान्तर काल में तमोगुणके उद्रेक होने से काल होकर सबको निगल जाते हैं। सत्वगुण के उद्रेक होने से वे एकार्णव में शयन करते हैं, अत: नारायण नाम से प्रसिद्ध होते हैं। वे अपने को तीन भागों में विभक्त कर त्रैलोक्य में विराजमान रहते हैं। तीन मूर्तियों के द्वारा वे सृष्टि और पालन किया करते हैं। चार हजार युग के बाद जब स्थावर जङ्गम विनष्ट हो जाते दशों दिशाएँ जलमय होकर एकार्णवाकार हो जाती हैं, जब ब्रह्मा काल रूप से चतुर्विध प्रजाओं को निगल कर प्रकाशहीन जलराशि के मध्य में नारायण रूप से सोते रहते हैं, तब उन्हें कल्प के महर्लोकवाली भृगु आदि महर्षिगण देखते हैं। उन महर्षियोंने महान् पुरुष का आश्रय प्राप्त किया है। गमनार्थक ऋष् धातु से सर्वप्रथम ऋषि शब्द बना है उसमें भी वे महान् हैं, अतः महर्षि कहे जाते हैं। महर्लोक में स्थित वे समस्त ऋषिगण उस समय सोये हुए काल को देखते हैं। पूर्व कल्प में जो सत्य प्रभृति महर्षिगण थे उन्होंने भी काल को इसी प्रकार सुप्त देखा था । इस प्रकार

Funding by IKS-MoE

ब्रह्मा की सहस्र-सहस्र रात्रि के बीत जाने पर अन्य महर्षियों ने भी काल को इसी प्रकार शयन करते हुए देखा है। यतः कल्प के आदि में ब्रह्मा ने चौदह संस्थाओं के विभाग की कल्पना की इसलिये उस काल को कल्प कहते हैं। वही व्यक्ताव्यक्त महादेव कल्प के आदि में सर्वभूतों की बार बार सृष्टि करते हैं; अतः यह जगत उनकाही है। अतीत और वर्तमान काल के मध्य भाग में जो कुछ घटित हुआ है वही प्रतिसन्धि वृत्तान्त है। मैंने आपके आगे उसे कह दिया है। कल्प-कल्प में जो घटना घटित होती है, उसे भी संक्षेप में कह दिया है। अब तक जो.कुछ कहा गया है वह वर्तमान कल्प का वर्णन है। अब आप लोगों से साम्प्रत कल्प के विषय में कह रहा हूँ इसको सुनिये ॥ ६४--८० ॥

श्री वायु महापुराण का प्रतिसन्धि वर्णन नामक सातवाँ अध्याय समाप्त ॥७॥

आठवाँ अध्याय

सूतजी बोले—हजार युग के बराबर रात्रि काल को बिताकर वे आदि पुरुष रात्रि के अन्त में सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा का रूप धारण करते हैं। ब्रह्मा उस समय वायु रूप धारण कर उस अन्धकार में——जब कि स्थावरजंगमात्मक जगत् नष्ट हुआ रहता, सारा भूमण्डल चारों ओर से जलमग्न रहता, पंच महाभूतों का विभक्त रूप नहीं रहता अर्थात् पाँचो महाभूत पृथक् पृथक् नहीं दिखाई पड़ते——इधर उधर जल के ऊपर घूमते रहते हैं। वर्षा ऋतु के खद्योत की भाँति वे इधर उधर घूमते तो रहते परन्तु स्वयम्भू सर्वदा उनका निरीक्षण किया करते हैं। उस समय प्रभु भू-प्रतिष्ठा (पृथ्वी को जल के ऊपर-लाना) के उपाय को ढूँढ़ते रहते हैं। वे उस समय समुद्र में मग्न पृथ्वी का अनुमान से ठीक पता पाकर पृथ्वी के उद्धार के लिए सचेष्ट हो गए। उन्होंने पूर्व कल्पों का स्मरण कर तदनुरूप ही दूसरा शरीर धारण कर लिया। तब प्रभु वाराह का रूप धारण कर उस समुद्र में घुस गए, और जल से आच्छादित पृथ्वी को भली भाँति देखकर उसको उस जल के ऊपर स्थापित किया। जल को विभक्त कर भिन्न भिन्न जलाशयों में स्थापित किया। समुद्र-जल को समुद्रों में, नदी जल को नदियों में और पार्थिव जल को पृथ्वी में स्थापित कर दिया। पूर्व सर्ग के संवर्तक अग्नि से भस्म होने पर उस समय के पर्वत भी पृथ्वी में ही गलकर लीन हो गए थे। जल-प्लावन के समय शीतलता के कारण, वे जहाँ जहाँ पहले गड़े हुए थे वहाँ वहाँ पुन. जमकर स्थिर हो गए। वायु के द्वारा ऊपर का जल भी सूख गया। गतिहीन होने के कारण उनका नाम अचल, पर्व (गाँठ) के कारण पर्वत, जल से निगले जाने के कारण अर्थात् जल में डूब जाने के कारण गिरि, पत्थरों के चयन के कारण उन का नाम शिलोच्चय पड़ा। ॥ १--१२ ॥

तदनन्तर प्रभु ने जल के भीतर से पृथ्वी का उद्धार कर उसको निर्दिष्ट स्थान पर स्थापित किया और उसका फिर से विभाग किया। पहले उसको सात द्वीपों में और प्रत्येक द्वीपों को सात सात वर्षों में बाँटा। विषम भूमि को समतल बनाकर शिलाखण्डों से चुनकर पर्वतों को बनाया। उन द्वीपों में चालीस

Funding by IKS-MoE

वर्ष बनाये गए और प्रत्येक वर्षों में उतने ही पर्वत सृष्टि के आदि में प्रकृति की अनुकूलता के आधार पर स्थापित किये गए, उसमें कोई उलट फेर नहीं हुआ। सातों द्वीप और सातों समुद्र एक दूसरे के मण्डल को प्रकृतितः घेरकर एक दूसरे के निकट स्थित हैं। ब्रह्मा सबसे पहले भूः आदि चार लोकों को, चन्द्रमा, सूर्य और अन्य ग्रहों के सहित बनाया और उन पर भली भाँति स्थानों का भी विभाग किया। ब्रह्मा ने सबसे पहले इस कल्प के स्थानो (एक स्थान पर रहने वाले) जल, अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आकाश, स्वर्ग, दिशायें, समुद्र, नदी सब पर्वत, अमृतमय औषधियाँ, वृक्ष लता आदि वनस्पतियाँ, लव, काष्ठ कला, मुहूर्त्त, सन्ध्या, रात्रि, दिन, पक्ष, मास, अयन, वर्ष, युग, पृथक् पृथक् स्थान एवं स्थानाभिमानी और स्थानात्माओं का निर्माण कर उन्होंने कृत, त्रेता, द्वापर और कलि आदि युगों का निर्माण किया। सबसे पहले कल्प के आदि में कृत युग को व्यवस्थित किया। पहले मैंने जिस काल और प्रजा की चर्चा की है और उस कल्प के अन्त में जो संवर्तक अग्नि से जलाये गए परन्तु तपोलोक को न जाकर जो जनलोक तक ही रह गए, वे पुनः नवीन सृष्टि के समय सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होते हैं और वे सृष्टि के कारण बनते हैं। वहाँ सृष्टिबीज के लिए स्थित वे पुनः सृष्टि के लिये देह धारण करते और सन्तान-वृद्धि में सहायक होते हैं। वे प्रजा, देवता, पितर, ऋषि, मनु आदि धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष के साधन माने गए हैं। तदनन्तर वे तपस्या में लीन होकर अपने स्थानों को (कार्यो को) पूरा करते हैं और सिद्धात्मा ब्रह्मा के मानसपुत्र के रूप में देह धारण करते हैं। और जो अपने शुभ और उदार कर्मो के प्रभाव से स्वर्ग को प्राप्त किए थे, वे पुनः यहाँ प्रत्येक युग में उत्पन्न होते हैं। अपने कर्मफल के शेष रहने के कारण वे वैसा रूप धारण करते हैं और कर्मसंशय के बन्धन के कारण ही वे जनलोक से पुनः इस लोक में आते हैं। इस उत्पत्ति में कर्मों के आशय को ही कारण समझना चाहिए। वे उन शुभ, अशुभ कर्मों के कारण ही जनलोक से यहाँ उत्पन्न होते हैं। नाना योनियों में वे नाना रूप धारण कर देव योनि से लेकर स्थावर पर्यन्त योनियों में उत्पन्न होते हैं। उनमें से सृष्टि के पूर्व जिन को जो जो कर्म प्राप्त थे, वे पुनः पुनः जन्म लेकर उन्हीं कर्मों को प्राप्त करते हैं। हिंसा अहिंसा, [मृदुता, क्रूरता, धर्म, अधर्म सत्य, असत्य, आदि को कर्मानुसार प्राप्त करते हैं। इसलिए वे कर्म ही उनको अच्छे जान पड़ते हैं। बीते हुए कल्पों में उनके जैसे रूप और नाम रहते प्रायः उन्हीं नामरूपों को भविष्य कल्पों में प्राप्त करते हैं। इस नियम के अनुसार उन्हीं नाम रूपों को इस सृष्टि में भी प्राप्त किया।] वे इस प्रकार प्रत्येक कल्प में नाम रूपों के अनुसार जन्म लेते हैं। ॥१३—३६॥

तदनन्तर सृष्टि की इच्छा से चिन्तनशील ब्रह्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में उन जनलोकवासी प्रजाओं का ध्यान किया। उस समय अपने मुख से एक सहस्र युग्म (नर-नारी) उत्पन्न किए। सतोगुण के उद्रेक से वे पुरुष स्त्री बुद्धिमान् और सतोगुणी हुए। वक्षस्थल से दूसरे एक हजार पुरुष स्त्री के जोड़े उत्पन्न किए। वे सभी रजोगुण की अधिकता से तेजस्वी और तेजविहीन दोनों प्रकार के थे। पुनः अपने उरुसे अन्य एक हजार जोड़ों को उत्पन्न किया जो रज और तम दोनों की अधिकता से कामुक हुए। अपने

Funding by IKS-MoE

चरणों से जिन हजार जोड़ों को उत्पन्न किया वे केवल तमोगुण की अधिकता के कारण तामसी, श्रीहीन और अल्प तेज वाले थे। वे मिथुन प्राणी एक दूसरे के प्रेम से आकृष्ट होकर मैथुन कर्म में प्रवृत्त हुए। इस कल्प में उसी समय से मैथुन सृष्टि आरम्भ हुई। उस समय स्त्रियों को प्रतिमास रजोदर्शन नहीं होता था अतः मैथुन करने पर भी उनको सन्तान नहीं होते थे। वे एक बार ही जीवन के अन्तिम भाग में एक बालक और बालिका को जनती थीं। वे क्षुद्र और कुविक (१) मरणशील थे। उस समय से ही इस कल्प में मैथुनसृष्टि की उत्पत्ति हुई। उन प्रजाओं को मन से ध्यान करने पर (विचार करने पर) एक बार प्रत्येक को पंच लक्षण शुद्ध शब्द आदि विषयों का ज्ञान हो गया। प्रजापति की जो पहली मानसी सृष्टि हुई उसी के वंश में मिथुन सृष्टि भी हुई जिससे यह जगत् परिपूर्ण हो गया।

उस समय उस कृतयुग के आरम्भ काल में वे मानव नदी, सरोवर, समुद्र और पर्वतों के समीप रहते थे, उनको अधिक शीत और गर्मी से पीड़ा नहीं होती थी, वे इच्छानुसार इधर उधर घूमते रहते थे। पृथवी से उत्पन्न वनस्पतियों या फल मूल को खाते थे। उनको मानसिक सिद्धि प्राप्त थी और वे कामचारी थे। उनको धर्म अधर्म का विचार न था, कोई भेदभाव भी न था। उस कृत युग में वे आयु, रूप और सुखानुभूति में समान थे। उस कृत युग का वर्षप्रमाण चार हजार दिव्य वर्ष है और संध्या तथा सन्ध्यांश का प्रमाण चार सौ वर्ष है। यद्यपि उस समय प्रजायें हजारों की संख्या में थीं तथापि उनमें किसी प्रकार का संघर्ष, प्रतिद्वन्द्विता और क्रम का प्रश्न नहीं था। वे तो पर्वतों और समुद्रों के निकट बसते थे। उनका कोई स्थायी घर भी नहीं था, वे एकान्त सुखी, शोक रहित और सतोगुणी थे। अपनी इच्छा के अनुसार इधर उधर घूमते और सर्वदा प्रसन्न रहते थे, उस समय पशु, पक्षी, सरिसृप (रेंग कर चलने वाले) आदि जीव नहीं थे। न तो उस समय अधर्म करने वाले कोई नारकीय जीव थे और न तो कोई उद्भिज्ज पदार्थ ही थे। मूल, फल, पुष्प का उस समय अभाव था (ये उपजाये नहीं जाते थे)। ऋतु और ऋतु संबन्धी परिवर्त्तन आदि भी नहीं थे, उनके लिए प्रत्येक क्षण सुखदाई थे, अति शीत और असह्य आतप नहीं था। उनको सर्वत्र सर्वदा अभीष्ट पदार्थ प्राप्त थे। उनकी इच्छा मात्र से पृथ्वी से रसमय पदार्थ मिल जाते थे। उनको बल और रूप को बढ़ाने वाली रोगनाशक औषधियाँ प्राप्त थीं। यद्यपि वे अपने शरीर का संस्कार (स्नान आदि) आदि नहीं करते थे तथापि वे स्थिरयौवन थे। उनके शुद्ध संकल्प से ही मिथुनप्रजा (सन्तति) उत्पन्न हो जाती थी। वे जन्म और रूप में समान, थे मृत्यु भी साथ ही होती थी। उस समय सत्य, अलोभ, क्षमा, तुष्टि, सुख और संयम का ही प्रचार था। इनके रूप, आयु, शील और चेष्टाओं में पार्थक्य या विशेषता नहीं थी। प्रजाओं के व्यापार और व्यवहार स्वाभाविक होते थे बुद्धिपूर्वक नहीं। कृत युग में शुभ और अशुभ कर्मों में प्रजा की प्रवृत्ति नहीं थी क्योंकि शुभ अशुभ का विभाग था ही नहीं। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्था न थी, न तो संकर दोष ही था। वे परस्पर अकाम और अनिच्छा पूर्वक व्यवहार करते थे। रूप, आयु में सभी तुल्य थे, उत्तम अधम का प्रश्न नहीं था, उस युग में तो सभी सुखी, विशोक, सदा प्रसन्न, महासत्व और महा बलवान् थे।

Funding by IKS-MoE

उनमें लाभ-अलाभ, मित्र-अमित्र, प्रिय-अप्रिय के व्यवहार न थे, वे निरीह थे और मन की प्राकृतिक प्रेरणा से ही विषयों में प्रवृत्त होते थे। एक दूसरे के प्रति किसी की कोई इच्छा, स्वार्थ न था, न तो परस्पर के अनुग्रह की आवश्यकता थी। कृतयुग में ध्यान का ही महत्व है, त्रेता में ज्ञान, द्वापर में यज्ञ और कलि में दान ही श्रेष्ठ समझा जाता है। युगानुरूप कृतयुग में सतोगुण, त्रेता में रजोगुण, द्वापर में रज और तम और कलियुग में केवल तम की प्राधनता रहती है। कृतयुग का जो काल परिमाण है उसको सुनो।

चार हजार दिव्य वर्षों का कृतयुग है उसकी संध्या और संध्याशंका परिमाण आठसौ दिव्यवर्ष हैं। उस युग में प्रजाओं को मृत्यु, क्लेश और विपत्तियों की आशंका नहीं। तदनन्तर उस कृतयुग में सन्ध्यांश काल के बीत जाने पर उस समय का युगधर्म चौथाई शेष रह जाता है। इस प्रकार कृतयुग के बीत जाने पर उस युग की सिद्धि भी लुप्त हो गई। उस मानसी सिद्धि के लुप्त हो जाने पर त्रेता और कृत युग के सन्धि-काल में दूसरी सिद्धि उत्पन्न हुई। मैंने सृष्टि के आरम्भ की जिन आठ प्रकार की सिद्धियों को गिनाया है, वे आठों क्रमशः नष्ट हो जाती हैं। कल्प के आदि में कृत युग में वह मानसी सिद्धि होती है। सब मन्वन्तरों में चारों युगों के विभाग के अनुसार वर्णाश्रम धर्म के आचार पालन के द्वारा कर्मों की सिद्धियाँ होती हैं। किन्तु युगशेष के साथ-ही-साथ वर्णाश्रमों के आधार और कर्मजन्य उनकी समस्त सिद्धियाँ भी विनष्ट हो जाती हैं। सत्य युग के सन्ध्याकाल में युगधर्म का एक पाद्, सन्ध्यांशकाल में सन्ध्याकालीन धर्म का एक पाद् एवं त्रेता के प्रारम्भ में उस सन्ध्यांशकालीन धर्म का एक पाद नष्ट हो जाता है, इसी क्रम से तपस्या, शास्त्रज्ञान, बल और आयु भी क्षीण होती है। मुनिगण! सत्ययुग और सन्ध्यांश के क्षीण हो जाने पर त्रेता युग का प्रारम्भ होता है। जब प्रजाओं में युगादि कालीन वह सिद्धि नहीं रहती तब फिर उनमें दूसरी सिद्धि उत्पन्न होती है। जल समूह की सूक्ष्मता विनष्ट हो जातीहै और वह गर्जनकारी मेघ के रूप में परिणत हो जाता है, और वृष्टि की सृष्टि हो जाती है। एक बार भी वृष्टि के हो जाने से प्रजाओं के वासस्थानों में वृक्षादि उग आते हैं। इससे प्रजाओं को विविध उपभोग प्राप्त हो जाते हैं। त्रेता युग की प्रथम अवस्था में प्रजाजन उसीसे जीविका-निर्वाह करते हैं। इसके बाद क्रम-क्रमसे उनके भावों में परिवर्तन होने लगता है। वे आकस्मिक राग और लोभ से आक्रान्त हो जाते हैं। सत्ययुग में स्त्रियों को आयु के शेषकाल में ही गर्भ धारण करने की शक्ति उत्पन्न होती थी; किन्तु वह भाव युग प्रभाव से त्रेता में विलुप्त हो जाता है। इस युग में स्त्रियाँ प्रतिमास ऋतुमती होतीं हैं। सहवासकारी प्रजाओं के प्रतिमास संगम करने से अकाल में ही गर्भोत्पत्ति और आर्तवोत्पत्ति होने लगती है। पुनः क्रमशः काल के परिवर्तन-वश प्रजाओं के निवास में उगे हुए वृक्षादि विनष्ट होने लगते हैं, इससे लोग विभ्रान्त और व्याकुल चित्त होकर पहले का सिद्धि-बिषयक ध्यान करने लगते हैं। उनके सत्याभिध्यान के फल से फिर घरों में वृक्षादि उगने लगते। इस प्रकार वे उसी वृक्षों से वस्त्र, फल, आभरण एवम् उत्तम गन्ध वाला, देखने में सुन्दर सरस और अत्यन्त वीर्यकारी अमाक्षिक मधु हरे पत्तों से प्राप्त करने लगे। त्रेतायुग में प्रजागण उसी के द्वारा सुख से जीवन व्यतीत करते थे। सभी उसी सिद्धि के द्वारा हृष्ट-पुष्ट और क्षोभरहित होकर कालयापन करते थे। फिर जब कालक्रम से

प्रजावर्ग लोभ के वशीभूत होकर उन समस्त वृक्षों को और माक्षिक मधु को बलपूर्वक अपनाने लगे, तब उनके इस अपचार के कारण कहीं-कहीं वे कल्पवृक्ष मधु के साथ ही विनष्ट होने लगे। उस काल में कल्पवृक्षों के क्षीण हो जाने से प्रजाओं में शीतोष्णादि द्वन्द्व-क्लेश भी उत्पन्न हो गये। तब वायु, ठंडक और गर्मी से पीड़ित होकर लोग गात्रावरण (वस्त्र) धारण करने लगे। वे यथेच्छविहारी गृहहीन प्रजागण गात्रावरण द्वारा वायु, शीत और घाम के कष्ट का निवारण करने के लिए घर बना कर रहने लगे। यथायोग्य अपनी रुचि के अनुसार गृह निर्माण कर सुख से निवास करने लगे। उन्होंने मरु, उन्नत, निम्न, पर्वत, नदी, जलप्राय सम, विषम, दुर्गम, इत्यादि नाना स्थान में अपनी रुचि के अनुसार शीतातप-क्लेश से बचने के लिये दुर्ग भवनादि बनाना आरम्भ कर दिया। तब खेट (क्षुद्रग्राम), ग्राम, पुर, अन्तःपुर हर्म्यादि बनाये गए। उनकी लंबाई चौड़ाई यथाबुद्धि निश्चित की गई, उनके दीर्घप्रस्थादि परिमाण के लिये अङ्गुलि के माप द्वारा विविध परिमाण की संज्ञा भी निश्चित हुई। प्रादेश, हस्त, किष्कु, धनु इत्यादि संज्ञायें तभी से प्रचलित हुईं। दश अङ्गुलिपर्वों का एक प्रदेश, अङ्गुष्ठा से लेकर तर्ज्जनी तक के विस्तार-परिमाण को प्रादेश, मध्यमापर्यन्त का ताल, अनामिका के अन्त तक गोकर्ण और कनिष्ठान्त परिमाण की एक वितस्ति (वित्ता) होती है। वितस्ति का परिमाण बारह अङ्गुलियों का होता है। इक्कीस अङ्गुलियों के पर्वों की रत्नि, चौबीस अङ्गुलियों के पर्वों का हस्त और दो रत्नियों का अर्थात् बयालीस अङ्गुलियों का एक किष्कु होता है। चार हाथ का एक धनु, दण्ड या नालिका युग होता है। दो हजार धनुओं की एक गुव्यूति और आठ हजार धनुओं का एक योजन होता है। इसी योजन परिमाण के अनुसार से उन लोगोंने अपना अपना वासस्थान बनाया था। उन लोगोंने चार तरह के दुर्गों का भी निर्माण किया। जिनमें तीन दुर्ग तो प्राकृतिक होते थे, परन्तु चौथा कृत्रिम होता था। इस कृत्रिम दुर्गकी भी विधिसुनिये—उसमें ऊँचे घेरे वाले कोठे, बहुजलपूर्ण परिखा, सेतु-संयुक्त द्वारदेश और स्वतिक द्वार होते हैं। दुर्ग में कुमारिपुर भी रहता है। परिखा की लंबाई और चौड़ाई दश और आठ हाथकी ठीक होती है, या नव और आठ हाथकी भी होती है। खेट, नगर, ग्राम और त्रिविध दुर्गों की सीमा पर्वत अथवा जल द्वारा बाँधी जाती है। विष्कम्भ परिमाण के त्रिविध दुर्गों का आयतन परिमाण साढ़े आठ अंश का होता है। लम्बाई से आधी चौड़ाई वाला पुर श्रेष्ट होता है। पूर्वोत्तर दिशाका भाग कुछ निम्न रहना चाहिये। छिन्नकर्ण, विकर्ण, छिटफुट, घना, गोला, छोटा और बड़ा पुर निन्दनीय होता है। चौकोर कुछ बड़ा एवम् एक दिशामें घना पुर उत्तम होता है, किन्तु इनमें भी अपेक्षा कृत पहला ही उत्तम है। चौबीस हाथ और एकसौ आठ हाथोंके विष्कम्भ परिमाणसे युक्त सम चतुरस्र (चौकोर) मध्य भाग प्रशंसनीय होता है। पुरमध्यवर्ती मुख्य वासस्थानका विष्कम्भ-परिमाण अष्ट शतकिष्कु है। नगर के परिमाणसे खेटका परिमाण आधा होता है और खेट (कस्बा) के परिमाणसे ग्रामका परिमाण छोटा रहता है। नगरसे खेट एक योजनपर और खेटसे ग्राम आधे योजनपर रहता है। परम (चरम) सीमा दो कोसों की होती है। क्षेत्र की सीमा चार धनु की और प्रत्येक दिक्पथका विस्तार बीस बीस धनुओं का होता है। ग्राम्य पथका विस्तार भी बीस धनु और सीमापथ का परिमाण दस धनु होता है। श्रीसम्पन्न

Funding by IKS-MoE

1144

AWSSOAD BVBSSMV

राजपथका विस्तार दस धनुओंका होता है, जिससे मनुष्य हाथी घोड़े रथ आदि सुख पूर्वक चल फिर सकें। उस काल के प्रजागण शाखागली चार धनुका बनाते थे। घरेलूगली दो धनुकी, साधारण गली एक धनुकी, घंटापथ चार पदका और गृहान्तर तीन पदका होता था। वृत्तिपथ आधा पदका और प्राग्वंश एक पदका एवम् अवस्कर और जलनिर्गम स्थान एक पदका होता था। वे प्रजागण ऐसा कर के पहले जिस प्रकार वृक्षों के निकट वास करते थे वैसे ही घरों को भी उन्हीं वृक्षों के अनुकरण से बार बार सोच विचार कर बनाने लगे। ॥३७--१३३॥

वृक्ष की शाखा जिस प्रकार आगे, पीछे, ऊपर और इधर-उधर फैली रहती है, उसी प्रकार काठ फैला कर उन लोगों ने उत्तम घर बनाया। वृक्षशाखा की तरह विन्यस्त होने से वैसे घरों का नाम शाला रखा गया। शाखा के आकार में बनाये जाने के कारण वे गृह शाला के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहा शाला शब्द का योगार्थ है; क्योंकि शाखाओं से ही शाला और शालात्व बने हैं। जिस घर से मन प्रसन्न हो और जो मन को प्रसन्न करे ऐसे, गृह और शाला का नाम प्रासाद रखा गया। उस काल के प्रजागण इस प्रकार शीतोष्णादि द्वन्द्व क्लेश का निवारण करके जीविका का उपाय सोचने लगे। मधु के साथ-साथ कल्पवृक्षों के विनष्ट हो जाने से वे प्रजागण भूख, प्यास और विषाद से ब्याकुल हो रहे थे। तब सत्ययुग की हीं तरह उस त्रेतायुग में उनके बीच कामानुरूप वार्तार्थसाधक (जीविका साधक) वृष्टि रूप सिद्धि उत्पन्न हुई। इसीसे उनकी वृत्ति 'जीविका' चली। उस द्वितीय वृष्टि-सृष्टि से पृथ्वी का जो स्थान जल हीन और शुष्क हो गया था, वह जलपूर्ण हो गया। गड्ढे नदी के रूप में परिणत हो गये और जगह-जगह जो जल रुक गये थे, उससे पृथ्वी रसवती होकर शस्यशालिनी हो गई। विना जोते-बोये चौदह तरह की फल-फूल मूल वाली औषधियाँ गाँवों और जंगलों में उग आईं। उस त्रेता युग में ही ऋतुओं के अनुकूल पुष्प-फल, वृक्ष-गुल्म और जीविका की बहुविधि औषधियाँ उत्पन्न हुईं। उन औषधियों के गुण से उस काल के प्रजा लोग सुख पूर्वक कालयापन करते थे। तब युग धर्म के अनुसार अवश्यम्भावी रोग और लोभ उनमें उत्पन्न हुए। अपनी शक्ति के अनुसार उन लोगों ने क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और औषधियों को अपने अपने अधिकार में करने लगे। सत्ययुग के पूर्व जिन सिद्धात्माओं की कथा को कहा है, वे ब्रह्मा की मानस सृष्टि हैं। यजन से ही उनकी उत्पत्ति है। वे ही फिर त्रेतायुग में जन्मग्रहण करते हैं। शुभाशुभ कर्म के गुरुत्व और लघुत्व के अनुसार यथा क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और इन तीनों का द्रोहकारी शूद्र, इस तरह चतुर्विध प्रजा उत्पन्न हुई। उनके बीच जो बलवान् सत्यवादी, अहिंसक, निर्लोभ और जितेंद्रिय थे—वे ऊपर बताये गये नगर-ग्राम आदि में रहते थे। इनकी अपेक्षा जो दुर्बल थे, वे इनसे प्रतिग्रह 'दान' लिया करते थे। जो इनकी अपेक्षा भी दुर्बल थे, वे इनका कर्म किया करते थे जो इनसे भी दुर्बल थे, वे इनकी परिचर्या किया करते थे। इस तरह वे परस्पर आश्रय लेकर कालयापन करते थे। उनके इस दोष से औषधियाँ इस तरह नष्ट हो गईं, जिस प्रकार क्रमशः मुट्ठी-मुट्ठी हटाने से बालुकाराशि नष्ट हो जाती है। युगधर्मानुकूल पृथ्वी ने तब चौदहों प्रकार के जंगली और ग्रामीण सस्यों को अपने में छिपा लिया। प्रजागण उस समय

Funding by IKS-MoE

फल लेते समय पुष्प और पुष्प लेते समय पत्र को भी तोड़ लिया करते थे, इससे वे सब नष्ट हो गये और प्रजागण व्याकुल हो उठे। वे व्याकुल हो पुनः जीविकालाभ के लिये स्वयम्भू-प्रजापति ब्रह्मा के पास उपस्थित हुए। उस त्रेतायुग के आदि काल में स्वयम्भू प्रजापति ब्रह्मा ने उनकी अभिलाषा को जान लिया और प्रत्यक्ष भी देखा। विचार करने के बाद यह जान कर कि पृथ्वी ने औषधियों को अपने में छिपा लिया है, पृथ्वी को फिर से दूहा। उन्होंने सुमेरु को बछड़ा बनाकर इस पृथ्वी को दूहा। दूहे जाने पर इस धेनु रूपा पृथ्वी ने जंगली और ग्रामीण बीजों को पृथ्वी तल पर उत्पन्न किया। फल पकने तक जिसके बीज रहें, वे औषधियाँ हैं। ये औषधियाँ सत्रह प्रकार की हैं। धान, जौ, गेहूँ, तिल, प्रियंगु, उदार, कारूष, सवीनक, माष, मूँग, मसूर, निष्पाव कुलथी, आढ़क्य और चना ये सत्ररह प्रकार की औषधियाँ ग्रामीण कही जाती हैं। ग्रामीण और जंगली चौदह प्रकार की औषधियाँ यज्ञसाधन हैं। ब्रीही, यव, माष, गोधूम, अणु, तिल, प्रियगु, कुलथी श्यामाक, नीवार, जर्तिल गवेधुक, कुरुविन्द, वेणुयव और मर्कटक ये चौदह प्रकार की औषधियाँ ग्रामीण और आरण्यक दोनो हैं। त्रेतायुगके आदि काल में पहले ये उत्पन्न हुईं। बिना जोते ये औषधियाँ जंगलों और ग्रामों में उत्पन्न हुईं। इनके अतिरिक्त वृक्ष, गुल्म, लता, बल्ली विरुध तृण आदि भी प्रदुर्भूत होकर मूल, फल, पुष्प आदि से प्रजाओं को सुख समृद्ध करने लगे। ब्रह्मा द्वारा दुहे जाने पर पृथ्वी ने जिन बीजों को उत्पन्न किया था, उनसे ऋतुओं के अनुकूल विविध प्रकार के फल उत्पन्न हुए। किन्तु जब तक वे औषधियों अच्छी तरह उगी नहीं तब तक के लिये उन्होंने उनकी जीविका का उपाय किया कि भूमि जोतकर अन्न उपजाया जाय। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ने उनकी कर्मजन्य सिद्धि को देखकर ऐसा किया। तभीसे कर्षणज सस्योत्पत्ति आरम्भ हुई है। उनकी संदिग्ध वार्ता में यानी जीविकोपाय के विवाद-संवाद में ब्रह्मा ने बहुतेरी मर्यादा (व्यवस्था) स्थापित की। उनके बीच जो बलवान् और भूमिपति थे उन क्षत्रियों को दूसरे की रक्षा का भारसौंपा। जो उन क्षत्रियों के निकट निर्भय होकर जाते थे, सत्यवादी और सर्वभूतों में ब्रह्मज्ञानवान् थे वे ब्राह्मण कहलाये। जो उनकी अपेक्षा निम्नक्रूर कर्म करने वाले और यमकी तरह जानबूझ कर पृथ्वी पर प्रजाओं का नाश करते थे उन्हें कीनाश पद से अभिहितकर वैश्य कहा और उन्हें सर्वसाधारण के वृत्ति साधन कार्य में लगाया। जो सोचते हुए शोक करते हुए इधर उधर भ्रमण करते थे और निस्तेज थे, उन्हें शूद्र कहा और उन्हें परिचर्या-कार्य में लगाया। इस तरह ब्रह्मा ने उनके धर्म-कर्म का प्रणयन किया और वे चतुर्वर्ण अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करने लगे। फिर वे क्रम-क्रम से मोहवश होकर उन सकल वर्णधर्म नियमों का अनादर कर परस्पर विरुद्धाचारण में प्रवृत्त हुए। प्रभु ब्रह्मा ने यथार्थतः उनके आचरणों को जानकर क्षत्रियों को बल, शासन और युद्ध जीविकोपाय बताया, ब्रह्मणों को याजन, अध्यापन और प्रतिग्रह रूप तीन कर्म बतलाये, पशुपालन, वाणिज्य और कृषिकर्म रूप जीविकोपाय वैश्यों को दिया, एवं शूद्रोंके लिये शिल्प तथा दासत्व की व्यवस्था की। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यों के लिये यजन, अध्ययन एवं दान की सामान्य रूप से व्यवस्था की। ब्रह्मा ने उन्हें परस्पर कर्म और जीविका देकर उनकी सिद्धि के अनुरूप

Funding by IKS-MoE

लोकान्तर में भी स्थानों का निर्देश कर दिया। क्रियाशील ब्राह्मणों के लिये प्राजापत्यस्थान, संग्राम में डटे रहने वाले क्षत्रियोंके लिये ऐन्द्रस्थान, स्वधर्मनिष्ठ वैश्योंके लिये मारुत नामक स्थान और अपने आचरण में निरत शूद्रों के लिये गान्धर्व स्थान का निरूपण किया। स्वधर्मनिष्ठ वर्णचतुष्टयों के लिये उन्होंने इन स्थानों का विधान किया। इस तरह वर्णधर्म के प्रतिष्ठित हो जाने पर उन्होंने आश्रमों का स्थापन किया। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षुक नामक चार आश्रमों को ब्रह्मा ने पहले स्थापित किया। उन आश्रमवासी प्रजाओं में कुछ वर्णधर्म को नहीं करते थे और कहने लगे कि पृथ्वीतल में हमारा कर्तव्य कर्म क्या है, क्या करें। तब ब्रह्मा ने उन्हें कर्मनिष्ठ करने के लिये चार आश्रमों का विधान किया। प्रभु ब्रह्मा ने तब प्रजावर्ग को शिक्षा देने के लिये धर्म, आचार और यम-नियमादि का उपदेश दिया॥ ४८—१७९॥

चारों आश्रमों के मध्य गृहस्थाश्रम ही अन्य आश्रमों की उत्पत्ति और स्थिति का कारण है, अतः गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों का मूल है। अब हम यथाक्रम से यम-नियम के साथ आश्रम चतुष्टयका विधान करते हैं। स्त्रीपरिग्रह, अग्निहोत्रानुष्ठान, अतिथिसत्कार, यज्ञश्राद्धादि कार्य और सन्तानोत्पादन यही संक्षेप में गृहस्थों के कर्तव्य-धर्म हैं। दण्ड, मेखला, जटाधारण, भूतल शयन, गुरुशुश्रूषा और भिक्षा यह विद्यार्थी एवं ब्रह्मचारियों के लिये पालनीय धर्म है। चीर, पत्र और अजिन धारण; धान्य मूल और फल भक्षण; दोनों सन्ध्या काल में डुबकी लगाकर स्नान तथा होमानुष्ठान यह वानप्रस्थवालों का करणीय धर्म है। जिस समय मुसल का शब्द नहीं सुना जाता हो, उस समय भिक्षा करना, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, सावधानता, सम्भोग से पराङ्मुख होना, प्राणियों के प्रति दया, क्षमा, अक्रोध, गुरुशश्रूषा और सत्य इस तरह इस दस लक्षण धर्म को स्वयम्भू ने संन्यासियों के लिये कहा है। इनमें ऊपर वाले पाँच भिक्षुकों के लिये मुख्य हैं और नीचे वाले पाँच गौण। इनके अतिरिक्त सदाचार, विनय, शुद्धता, विलास हीनता और सम्यग्विवेचन ये पाँच उपव्रत कहे गये हैं। ध्यान, इंद्रिय मन का संयम, सर्वत्र जाकर बिना कटु बचन कहे भिक्षा ग्रहण; शरीर या इद्रिय को सुख पहुँचाने वाले उपचारों का निरादर संन्यासियों के लिये धर्म कहा गया है। ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि, सभी आश्रम कल्याण के लिये हैं; किन्तु सत्य, सरलता, दया, क्षमा, योग, याग, दम, वेद, वेदाङ्ग, यजन, व्रत, नियम आदि कर्म सद्भावना रहित श्रद्धाहीन व्यक्तियों के लिये फलप्रद नहीं होते। जिसके भीतर श्रद्धा नहीं है, अन्तःशुद्धि नहीं है, वह पराक्रम करके भी कभी सफल नहीं हो सकता। कलुषित हृदय से सर्वस्व दान करके भी कोई धर्मभाजन नहीं हो सकता; क्योंकि उसकी भावना शुद्ध नहीं। धर्मलाभ के विषय में मानसिकभावना ही कारण है। देव, पितर, ऋषि और मनुओं के लिये जो स्थान निर्दिष्ट हैं, वेही स्थान संन्यासियों के लिये भी हैं। अठासी हजार ऊर्द्ध्वरेता ऋषि हैं, इनके जो स्थान हैं वे ही गुरु के निकट रहने वाले ब्रह्मचारियों के लिये हैं। सप्तर्षि जहाँ निवास करते हैं, वही देवों का वासस्थान है। गृहस्थ प्रजापति लोक में वास करते हैं और संन्यासी ब्रह्मलोक लाभ करते हैं। योगियों के लिये अमृत (कैवल्य) नामक स्थान, किन्तु नाना बुद्धिवालों के लिये कहीं स्थान नहीं है। ये स्थान आश्रमस्थ स्वधर्मनिष्ठ व्यक्तियों के लिये निर्दिष्ट हैं। देवयान महापथ

Funding by IKS-MoE

के ये चार साधारण पथ हैं। लोकविस्तारार्थी ब्रह्मा ने आदि मन्वन्तर में देवयान प्राप्ति के लिये भूमण्डल में इनका निर्माण किया है। सूर्य इन सब पथों के द्वार रूप हैं। इसी तरह पितृयान के द्वार चन्द्रमा कहे जाते हैं। इस तरह वर्णाश्रम विभाग करने पर भी प्रजागण उस वर्णाश्रम धर्म के पालन में शिथिलता दिखाने लगे। यह देखकर उन्होंने फिर अपने शरीर से उस त्रेता युग में अपनी ही तरह कितनी ही मानसी प्रजा की सृष्टि की। उस त्रेता युग के क्रम से मध्य काल प्राप्त होने पर उन्होंने दूसरी मानसी प्रजा की सृष्टि करने का प्रयत्न किया ॥१८०—२०१॥

प्रभु ब्रह्मा ने उस समय सत्त्व-रजः प्रधान देव, ऋषि, पितर और मनु नामक चार प्रकार के सन्तान को उत्पन्न किया। ये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और जीवन-यात्रा के साधक हैं। ब्रह्मा के इन पुत्रोंने ही धर्म के अनुसार युगानुरूप सन्तानोत्पादन द्वारा सृष्टि-विस्तार किया है। स्वयम्भू द्वारा निर्मित उस प्रजाधर्म के पूर्ण प्रभाव काल में सब मानसी प्रजा नाना रूप होकर ध्यान करने लगी। हमने पहले ही कहा है कि, जनलोक में जो अतीत कल्प में थे, वे देवादि यहाँ प्रजा होकर आये। ब्रह्मा के ध्यान करने से ही इस तरह की प्रजासृष्टि हुई। प्रथम या कनिष्ट सभी मन्वन्तरों में सुकर्म-कुकर्म, सुख-दुख, ख्याति, प्रतिपन्न रुपगुणादि सम्पूर्ण विषयों में एक प्रकार होकर रहते हैं। प्राणियों को कर्म फल के अवशेष होने पर ही जन्म ग्रहण करना पड़ता है। वे देव, असुर, पितर, पशु, पक्षी, सरीसृप (रेंग कर चलने वाले) वृक्ष, नारकीय कीट आदि नाना रूप से प्रादुर्भूत होते हैं। अपने द्वारा रची गई प्रजाओं के सुख, स्वतन्त्रता के लिये ब्रह्मा ने ऐसा विधान बनाया ॥ २०२—२०९ ॥

श्री वायु महापुराण में चतुराश्रम विभाग कथन नामक
आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

नवाँ अध्याय

देवादि सृष्टिकथन

सूतजी बोले—इसके अनन्तर ब्रह्मा के ध्यान करने से मानसी प्रजा उत्पन्न हुई। धीमान् ब्रह्मा के शरीर से कार्य-कारणों के साथ क्षेत्रज्ञसमूह उत्पन्न हुआ। देव, असुर, पितृ और मानव स्वरूप चतुर्विध प्रजा की सृष्टि के लिये जलराशि के बीच वे आत्मयोग में निरत हो गए। युक्तात्मा स्वयम्भू ब्रह्मा सर्ग के लिए ध्यान करने लगे, जिससे सृष्टि-कार्य प्रारम्भ हुआ। उनके जघन से पहले असुर नामक सन्तान की उत्पत्ति हुई। विप्रगण प्राण को असुर कहते हैं; अतः उससे जन्म ग्रहण करने के कारण वे असुर कहलाए। ब्रह्मा ने जिस शरीर से असुरों को उत्पन्न किया, उस शरीर को उन्होंने छोड़ दिया। वह त्यक्त शरीर तुरन्त ही रात्रि रूप में परिणत हो गया। वह शरीर तमोबहुल था, इससे रात्रि त्रियामा कहलाई। इसी से स्वयम्भू की समस्त प्रजा रात में तमोगुण से आवृत हो जाती है।

Funding by IKS-MoE

देवेश ब्रह्मा ने असुरों को देखकर अव्यक्त और सत्त्वबहुल दूसरे शरीर को धारण किया। उस शरीर को धारण कर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए। तब आनन्दमग्न ब्रह्मा के मुख से देवगण उत्पन्न हुए उस आनन्दमय ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण वे देव कहलाए। दिवि धातु का अर्थ है क्रीड़ा। उस दिव्य शरीर से उत्पन्न होने के कारण ही वे देवतापदवाच्य हुए। देवेश ब्रह्मा ने देवों की भी सृष्टि करने के पश्चात् दूसरे शरीर को धारण किया! वह छोड़ा हुआ शरीर तुरत दिन के रूप में परिणत हो गया। इसलिए कर्मानुष्ठान के लिए दिन में ही उपासना करते हैं। तब ब्रह्मा ने सत्त्वमात्रात्मक दूसरे शरीर को धारण किया और पितर की तरह मानकर उन पुत्रों का ध्यान करने लगे। उन्होंने तब दोनों पक्षों के साथ दिन और रात्रि के मध्य में पितरों का सृजन किया। इसीलिए उन देवगणों की पितृ संज्ञा हुई और उनका पुत्रत्व भी इसी कारण हुआ। जिस शरीर से ब्रह्मा ने पितरों को उत्पन्न किया उस शरीर को भी उन्होंने छोड़ दिया। वह छोड़ा हुआ शरीर तुरत सन्ध्या के रूप में परिणत हो गया। इसलिए दिन देवों के लिए, रात्रि असुरों के लिए और दिन और रात्रि के बीचवाली गरीयसी सन्ध्या पितरों के लिए सुखदायक हुई। तब से ऋषि, देवता, असुर और मनु आदि ब्रह्मा के उस मध्यम शरीर (सन्ध्या) की उपासना करने लगे। ॥ १—१६ ॥

ब्रह्मा ने फिर दूसरे शरीर को धारण किया। उनका यह शरीर रजःप्रधान था। उस रजोबहुल देह से उन्होंने तब कितने ही मानस सन्तानों को उत्पन्न किया। मन से उत्पन्न होने के कारण उनका नाम मानस पड़ा। प्रजाओं को देखकर उन्होंने अपने शरीर को फिर छोड़ दिया। वह त्यक्त शरीर तुरत ज्योत्स्ना हो गया; इसलिए ज्योत्स्ना के प्रकट होने पर सभी लोग प्रसन्न होते हैं। उस महामना ब्रह्मा ने इस प्रकार शरीर-समुदाय का त्याग किया और वे शरीर तुरत रात्रि, दिन, सन्ध्या और ज्योत्स्ना के रूप में हो गए। ज्योत्स्ना, संध्या तथा दिन सत्त्व गुणात्मक हैं और रात्रि तमः प्रधान है; इसीलिए यह त्रियामा कहलाती है। ब्रह्मा के दिव्य शरीर से उत्पन्न होने के कारण देवता सतत प्रसन्न चित्त रहते हैं और दिन में उत्पन्न होने के कारण वे दिन में ही अधिक बलवान् होते हैं। यतः रात में जघन से असुरों को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया है; इसीलिए रात्रिजातअसुर गण रात में असह्य पराक्रम वाले हो जाते हैं। देव, असुर, पितृ, मनु आदि की भूत भविष्य सभी मन्वन्तरों में इसी प्रकार उत्पत्ति होती है। ज्योत्स्ना, रात्रि, दिन और सन्ध्या का भी प्रादुर्भाव इसी प्रकार होता है। उस एकार्णव जलराशि में ये चारों अभासित होते थे, इसीसे जल का नाम अम्भस् पड़ा। भा धातु व्याप्ति और दीप्तिवाचक है। विद्वानों ने और स्वयं ब्रह्मा ने भी यही कहा है। उन्होंने इस जल को देखकर ही देव, दानव, मानव, पितर और अन्यान्य विबुधादि प्रजाओं को बनाया है। ब्रह्मा ने उस शरीर को भी सम्पूर्ण रूप से छोड़ दिया और फिर रजस्तम प्रधान दूसरे शरीर को धारण किया। उस अन्धकार में क्षुधाकुल होकर उन्होंने दूसरी प्रजा को उत्पन्न किया। उनके द्वारा उत्पन्न वह प्रजा जल को ही खाने के लिए तैयार हो गई। 'हम जल की रक्षा करते हैं, यह कहते हुए जो उत्पन्न हुए वे क्रोधी निशाचर राक्षस कहलाए। जिन्होंने कहा था कि, हम जल को खा जायँगे, नष्ट कर देंगे, वे क्रूरकर्मा गुह्यक यक्ष कहलाए।

Funding by IKS-MoE

रक्ष धातु पालनार्थक है; इसी से उनका नाम राक्षस पड़ा और क्षि धातु क्षयार्थक इसी से उनका नाम यक्ष पड़ा। इस अप्रिय सृष्टि को देखकर धीमान् ब्रह्मा की केशराशि स्खलित हो गयी। वह शीतोष्ण गुणयुक्त सर्पाकार में परिणत होकर उन्हीं के ऊपर चढ़ने लगी। ब्रह्मा के शिर से हीन होकर अर्थात् स्खलित होकर उसने अपसर्पण (टेढ़ा चलना) किया था इसी से वह कालात्मा (खलस्वभाव), हीनत्व के कारण अहि और सर्पण के कारण सर्प, पन्नत्व अर्थात् रूपान्तर प्राप्ति के कारण पन्नग उसका नाम पड़ा। पृथ्वी के गर्भ में जहाँ चन्द्र-सूर्य की किरणें नहीं पहुंच सकतीं, वहीं उनका वासस्थान निर्दिष्ट हुआ। उस समय ब्रह्मा को अग्नितुल्य अत्यन्त दारुण क्रोध हुआ। वह क्रोध साँपों के साथ ही उत्पन्न हुआ था अतः वह भी विष होकर साँपों में प्रवेश कर गया। ब्रह्मा साँपों को देखकर क्रुद्ध हुए, इसी से उन्होंने क्रोध परायण भूत-पिशाचों को भी बना दिया। भूमण्डल पर आवृत प्राय होने से भूत, और पिशित यानी कच्चा मांस खाने के कारण पिशाच ये नाम क्रम से दोनों के लिये पड़े।

ब्रह्मा के तेज के पान करने के कारण गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई। 'धे' धातु पनार्थक है और गोः माने तेज, अतः तेज के पान करने से उनका नाम गन्धर्व पड़ा। ब्रह्मा ने इस प्रकार अष्ट-विध देव योनि की सृष्टि कर स्वच्छन्द भाव से व्यवस्था द्वारा पक्षियों को बनाया। वे छादन करते हैं, छन्द और वयस् द्वारा सृष्ट हुए हैं, इसलिये वे वयः पदवाच्य हैं। शून्य को देखकर उन्होंने पक्षियों को बनाया। मुख से बकरे की सृष्टि हुई और वक्षःस्थल से वयस् की। ब्रह्मा ने उदर के पार्श्वद्वय से गौओं को बनाया। उनके दोनों पैरों से अश्व, हस्ती, शरभ, गवय, मृग, ऊँट, अश्वतर और इसी जाति के अन्य पशुगण उत्पन्न हुए। रोमों से ओषधि और फल-मूल उत्पन्न हुए। प्रभु ब्रह्मा ने इस प्रकार उस त्रेतायुग के आदि कल्प में पशुओं और औषधियों की सृष्टि करके यज्ञ कार्य में उनका विनियोग किया। गो, अज, पुरुष, मेष, अश्व, अश्वतर, गर्दभ ये ग्राम्य पशु हैं। अब जंगली पशुओं को भी सुनिये। श्वापद, द्विखुर, हस्ती, वानर, पक्षी, उन्दक और सरीसृप ये जंगली पशु हैं। गायत्र, वरुण, त्रिवृत, सौम्य, रथन्तर, अग्निष्टोम आदि श्रेष्ठ यज्ञ उनके पूर्व मुख से उत्पन्न हुए। छन्दः सकल, त्रैष्टुभ, कर्म, स्तोम, पञ्चदश बृहत्साम, उक्थ्य इत्यादि उनके दक्षिण मुख से उत्पन्न हुए। साम, जगती छन्द के पन्द्रह प्रकार के भेद, वैरूप्य, अतिरात्र इत्यादि पश्चिम मुख से और इक्कीस प्रकार का अथर्व, आप्तोर्यामाण, अनुष्टुप्, वैराज आदि उनके उत्तर मुख से सृष्ट हुए ॥१७ - ५१॥

प्रभु ब्रह्मा ने कल्प के आदि काल में बिजली, वज्र, मेघ, रोहितवर्ण इन्द्रधनुष और वयस् का सृजन किया एवं छोटे-बड़े जीव-जन्तु उनके शरीर से उत्पन्न हुए। प्रजा की सृष्टि करने वाले प्रजापति ब्रह्मा ने पहले देव, असुर, पितर प्रजा नामक चार प्रकार की सृष्टि करके स्थावर-चरादि अन्यान्य भूतों को उत्पन्न किया। यक्ष, पिशाच, नर, किन्नर, अप्सरा, गन्धर्व, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, उरग, अव्यय, व्यय, स्थावर, जंगम आदि समस्त पदार्थों को बनाया। पहली सृष्टि में इन लोगों ने जैसा कर्म प्राप्त किया था, वैसा ही कर्म इन लोगों ने बार बार उत्पन्न किये जाने पर भी पाया। उसी कर्म-वासना के

अनुरूप वे सब पृथक्-पृथक् प्रवृत्ति वाले होते हैं। इसी से वे सब हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, अनृतादि विविध कर्म में अपनी इच्छा के अनुसार प्रवृत्त होते हैं। विधाता ने स्वयं ही महाभूतों का नानात्व और मूर्त्ति तथा इन्द्रियार्थ समूहों की व्यवहार-रीति को निश्चित किया है। विप्रगण! कोई मानवकर्म, कोई पुरुषाकार, कोई दैव और कोई स्वभाव को ही कर्मफलदायक कहकर निरूपण करते हैं। किन्तु पुरुषाकार, दैव और कर्म ये तीनों ही स्वभाव के वश फलसाधक हैं। इनके बीच न्यूनाधिक भाव नहीं है; प्रत्येक समान भाव से प्रधान हैं। कोई कर्म इनमें एक के द्वारा सम्पन्न होता है, यह कहा नहीं जा सकता। कर्म साधन समूह का एकत्व-द्वित्वादि भेद कर निर्वाचन भी नहीं किया जा सकता; इसलिये सत्त्वस्थ ब्रह्मनिष्ठगण विषयसमूह को कर्मस्थ कह कर निर्देश करते हैं। महेश्वर ब्रह्मा ने कल्पादि काल में वेदवचन द्वारा भूत समूह के नाम, रूप और कर्मादि का निर्माण किया है। रात्रि के अवसान में और दिन के प्रारम्भ काल में भगवान् ब्रह्मा पूर्व काल के वेदों का प्रकाश करते हैं और ऋषिगण भी पूर्वकालीन नाम प्रगट करते हैं। विभिन्न ऋतुकाल में जिस प्रकार ऋतु-चिह्न विविध आकार में व्यक्त होते हैं, उसी प्रकार विभिन्न युग में भाव समूह भी विविध आकार में प्रकाशित होता है। अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा रात्रि के अवसान में मानसी सिद्धि के द्वारा प्रतिदिन इसी प्रकार सृष्टि कर्म में प्रवृत्त होते हैं। वे प्रत्येक दिन इसी प्रकार स्थावर जंगम आदि की सृष्टि करते हैं।

जब उन्होंने देखा कि इस प्रकार प्रजा-वृद्धि नहीं हो रही है, तब भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, और वसिष्ठ नामक दस मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। ये ही नव 'ब्रह्माण' नाम से पुराणों में प्रसिद्ध हैं। ये सभी ब्रह्मवादी और ब्रह्मचर्यनिष्ठ हुए। तब ब्रह्मा ने फिर अपने रोष से रुद्र की सृष्टि की। सबके पुरोवर्ती ब्रह्मा ने संकल्प और धर्म को भी बनाया। ब्रह्माने सबके आगे सनन्दन, सनक, सनातन और सनत्कुमार नामक अपने समान ब्रह्मनिष्ठ पुत्रोंको उत्पन्न किया। किन्तु वे सब संसारमें आसक्त नहीं हुए प्रत्युत् निरपेक्ष, जितेन्द्रिय, वीतराग, विमत्सर और भविष्य ज्ञान-सम्पन्न हुए। हिरण्यगर्भ परमेष्ठी भगवान् ब्रह्मा उन पुत्रों को निरपेक्ष ब्रह्मनिष्ठ होते देखकर चिन्ता करने लगे। उनके क्रोध करने से सूर्य के समान कान्तिवाली, अग्नि के समान जलती हुई एक मूर्ति उत्पन्न हुई जिसका आधा शरीर स्त्री का और आधा पुरुष का था। उसके उत्पन्न होते ही चारों ओर सूर्य के समान प्रकाश फैल गया। वह मूर्ति बोल उठी—'अपने को विभक्त करो, यह कह कर वह पुरुष अन्तर्हित हो गया। इस तरह कहे जाने पर भगवान ब्रह्मा ने अपने को दो भागों में विभक्त किया—एक स्त्री और एक पुरुष। अपनी आधी आत्मा यानी पुरुष मूर्ति को उन्होंने ग्यारह भागों में विभक्त किया और कहा कि महात्मन्! तुम लोग संसार के हित-विधानार्थ सृष्टि विस्तार एवं सृष्ट प्रजाओं की मंगल व्यवस्था करने के लिये अनलस भाव से यत्न-परायण होओ। यह सुनकर वे रोने लगे और चारों ओर से द्रवित हो गये, अतः रोदन और द्रवण के कारण उनका नाम रुद्र पड़ा। ये रुद्रगण सम्पूर्ण चराचर और सृष्टि प्रपंच को व्याप्त करके विराजमान हैं। गणेश्वर रुद्रगण सभी सिरजे हुए भूत प्रपंचों में श्रेष्ठ, सर्वलोकपरायण अधिक विक्रमशील और अयुत

नागों से भी अधिक बलवान हैं। हमने पहले ही कहा है कि दक्षिणार्द्ध से शुक्लवर्ण और वामार्द्ध से कृष्णवर्ण शंकरार्द्ध शरीरिणी एक महाभागा देवी प्रादुर्भूत हुई। उस देवी से भगवान् ब्रह्मा ने देह-विभाग करने को कहा। द्विजगण ! उन देवियों का नाम कहते हैं सुनिये---स्वाहा, स्वधा महाविद्या, मेधा, लक्ष्मी, सरस्वती, अपर्णा, एकपर्णा, पाटला, उमा, हैमवती षष्ठी, कल्याणी, ख्याति, प्रज्ञा, महाभागा और गौरी। इन आर्या देवियों ने ही पृथक् पृथक् देह धारण कर सृष्टि को व्याप्त किया है। संक्षेप से उनके और नामों को भी कहता हूँ—प्रकृति, नियता, रौद्री, दुर्गा, भद्रा, प्रमाथिनी, कालरात्रि, महामाया, रेवती भूतनायिका। द्वापरादि युग में देवी जिन नामों से प्रसिद्ध होती हैं उनको भी सुनिये—गौतमी, कौशिकी, आर्या, चण्डी, कात्यायनी, सती, कुमारी, यादत्री, देवी, वरदा, कृष्णा, पिंगला, बर्हिध्वजा, शूलधरा, परमब्रह्मचारिणी, माहेन्द्री, इन्द्रभगिनी, वृषकन्या, एकवाससी, अपराजिता, बहुभुजा, प्रगल्भा, सिंहवाहिनी, एकानंशा, दैत्यहवी, माया, महिषमर्दिनी, अमोघा, विन्धनिलया, विक्रान्ता और गणनायिका। ये समस्त यथाक्रम से उस देव के नाम भेद हैं। यह देवियों का नाम भद्रकालीका स्तव है। जो आदमी इसे पढ़ते हैं, उनका पराभव नहीं होता। जंगल, प्रान्तर, नगर, गृह, जल और स्थल में, बाघ-कुम्भीर-चौरादि द्वारा आक्रान्त होने पर एवं जितने भी मानस दुःख के अवसर हैं उनमें देवी के इन नामों का कीर्तन और रक्षार्थ प्रयोग करे। बालग्रह, भूत पूतना, और मातृकादि कृत अनिष्ट होने पर बालकों के लिए इस रक्षा-प्रयोग (कवच) को करे। प्रजा और श्री उस महादेवी की मूल मूर्तियाँ हैं। इन दोनों मूर्तियों से हजार-हजार मूर्तियाँ समुद्भूत हुई हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त कर लिया है। उस देवी ने कल्पादि काल के प्रारम्भ में व्यवसाय, भूत-सुखकर धर्म और संकल्प का सृजन किया है ॥५२–१११॥

अव्यक्त योनि ब्रह्मा के मन से रुचि नामक पुत्र जनमा एवं प्राण से दक्ष, चक्षुर्द्वय से मरीचि, हृदय से भृगु, मस्तक से अङ्गिरा, कान से अत्रि, उदान से पुलस्त्य, व्यान से पुलह, समान से वशिष्ठ, आदान से क्रतु एवं अभिमान से नीललोहित रुद्र उत्पन्न हुए। ये बारहों पुत्र ब्रह्मा के प्राण से उत्पन्न हुए हैं, ये ही ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे जाते हैं। भृगु आदि नौ पुत्र जो सृष्ट हुए वे ब्रह्मवादी हैं। ये प्राचीन गृहस्थ हैं और इन्होंने ही पहले धर्म का प्रवर्तन किया है। रुद्र के साथ ये बारहों प्रजा का प्रवर्तन करने वाले हैं। ऋभु और सनत्कुमार सबसे पहले उत्पन्न हुए हैं और दोनों ही ऊर्द्ध्वरेता हैं। प्रथम कल्प के अवसान में लोकहित की अभिलाषा से इन दोनों महात्माओं ने अपने तेज का संयमन करके वैराज लोक में आश्रय प्राप्त किया था। महातेजस्वी और महायोगी वे दो ब्रह्मर्षि आत्मा से आत्मा का समाधान करके प्रजाओं के धर्म और काम समूह का साधन करते हुए स्थित हुए। वे जैसे जनमे हैं वैसे ही हैं; इसीलिए कुमार कहे जाते हैं और सनत्कुमार भी इसीलिए कहे जाते हैं। इन द्वादश ब्रह्मतनयों की वंशवृद्धि दिव्य, देव गुणान्वित, क्रियायुक्त प्रजा-समन्वित, और महर्षि गुणालंकृत हुई। लोक की सृष्टि करने के लिए स्वयम्भू का जो महान् से विशेष पर्यन्त प्रकृति-विकार हैं, वे ही चन्द्र, सूर्य आलोक, अन्धकार, ग्रह, नक्षत्र, नदी समुद्र, पर्वत, विविधाकार वाले पुर और सुप्रीत जनपदादि युक्त जगत्प्रपञ्च में परि वर्तित हुए हैं। उस अव्यक्त ब्रह्मवन में ब्रह्मा अपना

रात्रिकाल बिताते हैं। वह ब्रह्मवृक्ष अव्यक्त बीज से उत्पन्न और उसी के अनुग्रह से उत्थित अर्थात् बढ़ा भी है। बुद्धि उसका स्कन्ध है, इन्द्रियगण कोटर, महाभूत शाखा-प्रशाखा; विशेष (तत्त्व) पत्र; धर्माधर्म पुष्प और सुख दुःख उसके फल हैं। यह सनातन वृक्ष सम्पूर्ण भूतों का आश्रय है। उस ब्रह्मवृक्ष का यह ब्रह्मवन अव्यक्त, नित्य और सदसदात्मक कारण है। यह प्राकृत सर्ग ब्रह्मा के अनुग्रह सर्गके नाम से प्रसिद्ध है। वैकृत नामक मुख्य सर्ग छः प्रकार के हैं, जो बुद्धि-पूर्वक बिचारणीय हैं। ये सर्ग अभिमानी ब्रह्मा के तीनों काल में प्रवर्तित होते हैं। ये सर्ग परस्पर एक दूसरे के कारण हैं ऐसा पडितों ने कहा है। उस ब्रह्म वृक्ष पर समानाकार और समानचारी दो दिव्य पक्षी निवास करते हैं। उनमें केवल एक को वृक्ष का ज्ञान है। उस सर्वात्मा के अतिरिक्त दूसरा कोई इस भू तत्व को जानने वाला नहीं है। विप्रगण! भूलोक को जिसका शिर, आकाश को नाभि, चन्द्र सूर्य को नेत्र, दिशाओं को कान और भूमि को चरण कहकर जिसकी स्तुति करते हैं। जिसके मुख से ब्राह्मण, छाती के पूर्व भाग से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और चरणों से शूद्र इस प्रकार सब वर्ण जिसके शरीर से उत्पन्न हुए वही अचिन्त्य परमात्मा सब भूतों का उत्पादक है। महेश्वर अव्यक्त से सभी अण्ड की उत्पत्ति हुई। अण्ड से ब्रह्मा का जन्म हुआ और ब्रह्मा ने सचराचर त्रैलोक्य को उत्पन्न किया। ॥ १११–१२२ ॥

श्री वायु महापुराण का देवादि सृष्टि वर्णन नामक
नवाँ अध्याय समाप्त ॥९॥

दसवाँ अध्याय

मन्वन्तर-वर्णन

सूतजी बोले—लोककर्ता ब्रह्मा ने इस प्रकार समस्त प्रजाओं की सृष्टि की; किन्तु किसी कारण वे प्रजागण विधिनिर्दिष्ट पथ में प्रवृत्त नहीं हुए। इससे ब्रह्मा तमोगुण से आच्छन्न हो गये और दुखी रहने लगे। तब उन्होंने इष्टसिद्धि का उपाय सोच निकाला और अपने में तामसी शक्ति की सृष्टि की। प्रजागण राजस भाव को छोड़कर सत्त्वगुणावलम्बी होकर सन्तप्त हो रहे हैं, यह देखकर जगत्पति पुनः शोक करने लगे। तब उन्होंने तमोभाव को छोड़कर रजोगुण का अवलम्बन किया। उस रजोगुण ने उनके तमोगुण को ढक लिया। उस परित्यक्त तमोगुण से एक मिथुन की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मा के चरण से अधर्म और शोक से हिंसा का जन्म हुआ। इससे ब्रह्मा अत्यन्त आनन्दित हो गये। अपने उस मलिन शरीर की मलिनता को ब्रह्मा ने दूर कर उस देह को दो भागों में विभक्त किया, जिसमें एक भाग पुरुष हो गया और दूसरा स्त्री। उस स्त्री का नाम शतरूपा पड़ा। उस प्राकृत और जीवों को धारण करने वाली देवी को ब्रह्मा ने सृष्टि कामना से उत्पन्न किया। उसने अपनी महिमा से द्यावापृथिवी को व्याप्त कर लिया। गगनव्यापिनी उस ब्राह्मी तनु ने, जो ब्रह्मा के आधे शरीर से उत्पन्न हुई थी और जिसका

Funding by IKS-MoE

नाम शतरूपा पड़ा था, नियुत वर्षों तक परम घोर तपस्या की। उसने दीप्त यश वाले स्वायम्भुव मनु को पति के रूप में वरण किया। इकहत्तर युग का मन्वन्तर माना गया है। स्वयम्भु मनु उस अयोनिजा शतरूपा को पत्नी के रूप में प्राप्त कर उसके साथ रमण करने लगे। इसी से उसका एक नाम रति भी पड़ा। कल्प के आदि में वही प्रथम नर-नारी संयोग हुआ। ब्रह्मा ने विराट् का सृजन किया है। विराट् से ही वैराज मनु की उत्पत्ति है। वीर सम्राट् वैराज मनु ने शतरूपा के गर्भ से प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो श्रेष्ठ पुत्रों और आकूति तथा प्रसूति नाम्नी दो शुभ पुत्रियों को उत्पन्न किया। उन्हीं दोनों पुत्रियों से यह सारी प्रजा उत्पन्न हुई है। स्वायम्भुव मनु ने प्रसूति को दक्ष के हाथ में सौंप दिया। जो प्राण है, वही दक्ष है और संकल्प को मनु कहा जाता है। मनु ने रुचि प्रजापति को आकूति नाम की कन्या दे दी। ब्रह्मा के मानस पुत्र रुचि को आकूति के गर्भ से यज्ञ और दक्षिणा नामक मिथुन सन्तान उत्पन्न हुए। उस स्वायम्भुव मन्वन्तर में दक्षिणा में बारह पुत्र हुए। उनका नाम याम पड़ा। यज्ञ का ही दूसरा नाम यम था। उनके पुत्र होने के कारण वे याम कहलाये। वे अजित और शूक्र नामक दो भागों में विभक्त हैं, किन्तु देवों के बीच वे याम नाम से ही प्रसिद्ध हैं। दक्ष प्रभु ने स्वायम्भुव मनु की पुत्री प्रसूति के गर्भ से संसार की माता स्वरूप चौबीस पुत्रियों को उत्पन्न किया। वे सभी अत्यन्त भाग्यशालिनी और कमल के समान आँखवाली, योगपत्नी, योगमाता और ब्रह्म-वादिनी थीं। वे सभी संसार की माता थीं। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शास्ति, सिद्धि और कीर्ति इन समस्त दक्ष-कन्याकाओं को प्रभु धर्म ने पत्नी के रूप में वरण किया। स्वयम्भू ब्रह्मा ने धर्मलाभ के लिये इन्हें द्वार रूप से निर्देश किया है। इनकी कनिष्ठा सती, ख्याति, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, संनति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामक एकादश कन्यकाओं को रुद्र, भृगु, मरीचि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, पुलस्त्य, अत्रि, वसिष्ठ, पितृगण और अग्नि ने यथाक्रम से वरण किया। सती भव को, ख्याति भृगु को, सम्भूति मरिचि को, स्मृति आङ्गिरा को, प्रीति पुलस्त्य को, क्षमा पुलह को, संनति क्रतु को, अनुसूया अत्रि को, ऊर्जा वशिष्ठ को, स्वाहा अग्नि को और स्वधा पितृगण को दी गई।

अब इनकी सन्ततियों को भी कहते हैं। ये सब बुद्धिमती और महाभाग्यशालिनी दक्षकन्यकाएँ प्रलयकालपर्यन्त सभी मन्वन्तरों में सदाचारों का प्रतिपालन करती हुई स्थित रहती हैं। श्रद्धा ने काम, लक्ष्मी ने दर्प, धृति ने नियम, तृष्टि ने सन्तोष, पुष्टि ने लाभ, मेधा ने श्रुत, क्रिया ने नय-दण्ड-समय, बुद्धि ने बोध-अप्रमाद, लज्जा ने विनय, वपु ने व्यवसाय, शान्ति ने क्षेम, सिद्धि ने सुख एवं कीर्ति ने यश नामक पुत्र को प्रसव किया। ये सब पुत्र धर्म के थे। काम को रति के गर्भ से हर्ष नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। धर्म का यही सुखदायक वंश वर्णन है।

अधर्म को हिंसा के गर्भ से निकृति नाम की कन्या और अनृत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अनृत को निकृति से भय और नरक नामक दो पुत्र एवं वेदना तथा माया नाम की दो पुत्रियाँ पैदा हुईं। भय को माया से सब भूतों को नष्ट करने वाला मृत्यु नामक पुत्र हुआ। रौरव यानी नरक को वेदना से दुःख

Funding by IKS-MoE

नामक पुत्र हुआ। मृत्यु को वेदना से जरा, शोक, क्रोध और असूया नामक चार सन्तान हुए। वेदना की यह सन्तति, दुःखमय और अधर्मलक्षणों से युक्त है। इन्हें दूसरी भार्या तथा पुत्रादि नहीं हैं एवं ये सभी अमर हैं। यह तामस-सर्ग धर्म का नियामक होकर प्रादुर्भूत हुआ है।

ब्रह्मा ने जब नील-लोहित यानी महादेव को प्रजाओं की सृष्टि करने के लिये कहा, तब उन्होंने भार्या सती का ध्यान करके समान गुण स्वभाव वाले आत्मसम अनेकानेक मानस सन्तान को उत्पन्न किया। महादेव के सभी पुत्र रूप, तेज, बल और ज्ञान में पिता के तुल्य थे, सभी चर्म धारण किये हुए थे, वे पिङ्गलवर्ण, निषङ्गधारी, जटिल, कुछ लोहितवर्ण, वसनहीन, हरितकेश, क्रूरदृष्टि और कपालधारी थे। इनमें कोई बहुरूपधारी, विरूप, सुरूप, विश्वरूप, रथी, वर्मी, (कवचधारी), चर्मी, वरूथी, शतबाहु, सहस्रवाहु, द्युचारी, भूविहारी, अन्तरिक्षगामी, स्थूल मस्तकवाले, आठ दाँतवाले, जिह्वाहीन, द्विजिह्व, त्रिलोचन, अतिकाय, शितिकण्ठ, नीलग्रीव, अन्नभोजी, मांसभोजी, घृतपायी, सोमपायी, अतिक्रोधी, धनुर्बाणादि नाना अस्त्रधारी, आसीन, धावमान, जम्हाई लेनेवाले, स्थित, अध्यापनशील, जप करने योग्य, ध्यान करनेवाले, ज्वलनशील, वर्षणशील, प्रकाशशील, धूप करने में आसक्त, बुद्ध, बुद्धतम, ब्रह्मिष्ठ, शुभदर्शन, नीलग्रीव, सहस्रलोचन, सर्वाङ्गलोचन, रात्रिचारी, सब भूतों के लिये अदृश्य, महायोगयुक्त, स्थिर यौवन और महातेजस्वी थे। हजार-हजार का दल बाँध कर वे सब रुदन और द्रवण कर रहे थे ॥१२-५३॥

रुद्ररूप सुरोत्तम की प्रजा सृष्टि देखकर ब्रह्मा ने कहा—आप इस तरह की प्रजा सृष्टि न करें। रुद्र! आपका कल्याण हो। आप अब अपनी तरह इस आकार-प्रकार की प्रजाओं को मत उत्पन्न करें। आप मरणशील प्रजाओं की सृष्टि करें। मृत्युरहित प्रजा कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त नहीं होती है। यह सुनकर नीललोहित रुद्र ने कहा—आपका कल्याण हो। हम मरणशील प्रजा की सृष्टि नहीं करते। हम इस कर्म से विरत होते हैं। आप ही प्रजा की सृष्टि करें। हमने जो इन नीललोहित, विरूप और अपने समान हजारों प्रजाओं को उत्पन्न किया है, वे महाबली देवगण भूलोक और अन्तरिक्ष में रुद्र नाम से प्रसिद्ध होकर यज्ञीय देवों के मध्य में परिगणित होंगे एवं शतरुद्र नाम से विख्यात होंगे। सब युगों के साथ ये यज्ञीय भाग का भोग करेंगे। प्रत्येक मन्वन्तर में छन्दः समुत्पन्न जो यज्ञीय देवता प्रादुर्भूत होंगे, उनके साथ यज्ञीय देवता होकर ये महाप्रलयपर्यन्त रहेंगे। धीमान् महादेव द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हुए और भीममूर्ति महादेव से कहा—हे प्रभु! आपका कल्याण हो। आपने जैसा कहा है, वैसा ही हो ॥५४—६२॥

विधाता के आदेश से ही सब कार्य हुआ करते हैं। तब से महादेव ने प्रजासृष्टि को बन्द कर दिया। उस समय से कल्पान्तपर्यन्त वे स्थाणु और उर्द्ध्वरेता होकर रहे। यतः उन्होंने कहा था कि, हम इस कर्म से विरत होते हैं—(ठहर गये) इसीलिए उनका नाम स्थाणु पड़ा। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य; तपस्या, सत्य, क्षमा, धृति, सृष्टि-योग्यता, शासन-गुण और आत्मसंबोध ये दश गुण शंकर में सदा वर्त्तमात रहते

Funding by IKS-MoE

हैं। देवता, असुर और ऋषियों से भी वे अधिक तेजस्वी हैं, इसी से उनका नाम महादेव पड़ा। उन्होंने ऐश्वर्य से देवों को, बल से असुरों को और ज्ञान से ऋषियों को, तथा योग द्वारा सम्पूर्ण भूतों को पराजित किया है।

ऋषि गण बोले—महामुनि आपने हम लोगों से अभी महेश्वर का ज्ञानसाधन, योग, तप, सत्य और धर्म कहा है। प्रभु! जिस धर्माचरण से द्विजगण सद्गति प्राप्त करते हैं उस माहेश्वर योग को हम लोग सुनना चाहते है।

वायु बोले—रुद्र ने पाँच प्रकार के धर्मों को बताया है, जो पुराण में माहेश्वर धर्म के नाम से कहा गया है। अक्लिष्टकर्मा रुद्रगण, आदित्य, वसु, साध्य दोनों अश्विनीकुमार, मरुद्गण, भृगुवंशीय गण, सुरपुरवासी शुक्र, यम, पितृ, काल और अन्तक प्रभृति अनेकानेक धार्मिक व्यक्ति उस धर्म का प्रतिपालन करते हैं। इस धर्म के उपासक वासना से रहित और शरद ऋतु के आकाश के समान निर्मल हो जाते हैं। मुनिगण आत्मा में मन को लगाकर उस धर्म की उपासना करते हैं। इस धर्म के उपासक गुरु के प्रिय और हितकर कार्य में निरत एवं गुरु के प्रियपात्र होकर मनुष्य जन्म की कुछ चिन्ता न कर देवता की तरह विहार करते हैं। महेश्वर ने जिन सनातन पाँच धर्मों को कहा है उन्हें हम यथाक्रम से कहते हैं, आप लोग सुनें। माहेश्वर योग के प्राणायाम, ध्यान, प्रत्याहार, धारणा और स्मरण ये ही पाँच धर्म हैं उनका क्रमशः लक्षण, कारण और तत्व, जैसा कि रुद्र ने बताया है, हम कहते हैं। प्राण की विस्तार-गति को ही प्राणायाम कहते हैं। वह तीन प्रकार का है, उत्तम, मध्यम और मन्द। प्राण के निरोध को भी प्राणायाम कहते हैं। प्राणयाम का प्रमाण द्वादश मात्रात्मक है। मन्द प्राणायाम द्वादश मात्रात्मक है, इसके बारह उद्घात हैं। मध्यम प्राणायाम चौबीस मात्रात्मक है। इसके दो उद्घात हैं। उत्तम प्राणायाम की तिरसठ मात्रायें हैं और इसके तीन उद्घात हैं स्वेद, कम्प और विषाद जिससे उत्पन्न हो, वह उत्तम प्राणायाम है। प्राणायाम का यह त्रिविध लक्षण हुआ। प्रमाण और लक्षण भी अब संक्षेप से सुनिए—सिंह, हाथी, मृग, या अन्य बनैले पशुओं को पकड़कर पालने से जैसे धीरे-धीरे वे मृदुता धारण करने लगते हैं वैसे ही अजितेंद्रियों के लिए प्राण भी दुराधर्ष है। योग और अभ्यास के द्वारा ही वह वशीभूत होता है। वे सिंह या हाथी जैसे दुर्बल हो जाते हैं यानी खाने-पीने के अभाव से दुर्बल होकर अहिंसक हो जाते हैं, वैसे ही प्राण भी कालक्रम से योगाभ्यास द्वारा वशीभूत हो जाता है। वही प्राण वायु मानस व्यापार द्वारा संयत होने पर मन्द और वश्य हो जाता और मन के अधीन होकर जीवित रहता है। योगानुष्ठान के द्वारा जब प्राणवायु वश में हो जाता है, तब उसे इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ ले जा सकते हैं। जैसे जब सिंह और हाथी वशीभूत हो जाते हैं, तो मनुष्यों का पशुभय दूर हो जाता है और वे मनुष्यों के कार्यसाधक बन जाते हैं, उसी प्रकार यह परिचित प्राणवायु ध्यान द्वारा जब संयत और अनुकूल हो जाता है, तब शरीरगत पाप का नाश कर देता है। प्राणायाम करने वाले जितेन्द्रिय ब्राह्मणों के सभी पाप नष्ट हो जाते हैं और वे सतोगुणी हो जाते हैं। जितनी तरह की तपस्याएँ, व्रत, नियम और यज्ञफल आदि हैं प्राणायाम भी उन्हीं के समान है। सौ

Funding by IKS-MoE

संवत्सरों तक प्रत्येक मास कुश के अग्र भाग से जलबिन्दु पान करने से जो फल होता है, वही फल प्राणायाम करने से होता है। प्राणायाम से दोषों का नाश होता है। धारणा से पाप का, प्रत्याहार से विषय समूह का और ध्यान से अनीश्वर गुणों का नाश होता है। इसलिए योगी को उचित है कि, वह प्राणायाम-निष्ठ हो। इससे वह विशुद्धात्मा होकर परब्रह्म को प्राप्त करता है। ॥६३—६४॥

श्री वायु महापुराण का मन्वन्तर वर्णन नामक
दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

ग्यारहवाँ अध्याय

पाशुपत योग

वायु बोले—महात्मा ऋषिगण एक महादिवस, अहोरात्र, अर्द्धमास, मास, अयन, वत्सर युग, अथवा हजार महायुगों तक तपस्या करते हुए दिव्य चक्षु से प्राण की उपासना करते हैं। इसके आगे हम अब प्राणायाम के प्रयोजन और फल को विशेष प्रकार से कहते हैं, जैसा कि स्वयं भगवान प्रभु ने कहा है।

शान्ति, प्रशान्ति, दीप्ति और प्रसाद, इन चारों को प्राणायाम का प्रयोजन समझिए। इस काल अथवा परकाल में देहधारियों द्वारा स्वयं किए हुए अथवा पिता-माता द्वारा, किंवा भाइयों द्वारा किए हुए भयङ्कर अकल्याणकारक कर्म से उत्पन्न कुत्सित पाप समूह का जिससे नाश होता है, उसे शान्ति कहते हैं। इस लोक और परलोक में हित के लिए लोभ और अश्रेयस्कर अभिमानादि पापवृत्तियों का जिससे संयम हो, उस तपस्या को प्रशान्ति कहते हैं। तपःपरायण योगी की जिस प्रतिबुद्ध अवस्था में ज्ञान-विज्ञान युक्त प्रसिद्ध ऋषियों की तरह चन्द्र-सूर्य-ग्रह-तारकादि और भूत-भविष्य-वर्त्तमान का विषय प्रत्यक्ष हो अर्थात अलौकिक सामर्थ्य प्राप्त हो जाय, उसे दीप्ति कहते हैं। इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ, मन और पंच वायु जिससे प्रसन्न हों, उसे प्रसाद कहते हैं। यह चार प्रकार का पहला प्राणायाम धर्म हुआ। यह आशु फलदायक और काल भय निवारक है। इसके आगे हम प्राणायाम का लक्षण, और योग के लिए योगियों के योग्य आसन कहते हैं।

पहले ॐकार का उच्चारण करे और चन्द्र-सूर्य को प्रणाम करे। फिर स्वस्तिक, पद्म, अर्द्ध समजानु, एकजानु, उत्तान, सुस्थित आदि किसी आसन को दृढ़ भाव से लगाकर समकाय हो जाय और दोनों चरणों को परस्पर मिला ले। अथवा दोनों पैर की एड़ियों द्वारा लिंग तथा दोनों अण्डकोष को कुछ निपीड़ित करके ग्रीवा और मस्तक को कुछ ऊपर उठावे फिर मुँह बन्द कर और आँखों को मूँद कर बैठे। दिशाओं को न देखे केवल नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि जमा दे। तमोगुण को रजोगुण से और रजोगुण को सत्त्वगुण से आच्छादित कर दे। तब सत्त्वमात्रा में स्थित होकर एकाग्र मन से योगानुष्ठान करे। इन्द्रियों, विषयों, मन,

Funding by IKS-MoE

और पंच वायु को समवाय द्वारा वश में कर प्रत्याहार का अभ्यास करे। कछुआ जिस प्रकार अपने शरीर का आकुंचन करता है, उसी प्रकार योगी सम्पूर्ण कामों से अर्थात् विषय समूह से मन को हटा कर एकस्थ होकर आत्मरति करे और आत्मा में ही सब का निरोध करे। ऐसा ही करने से योगी आत्मा का दर्शन अपने में करते हैं। योगी बाहर भीतर से शुद्ध होकर प्राणायामकाल में वायु द्वारा नाभि से कण्ठ पर्यन्त पूर्ण करके प्रत्याहार का आरम्भ करे। निमेषोन्मेष (पलक गिरना और उठना) काल को कला या मात्रा कहते हैं। प्राणायाम के लिए बारह मात्रा का काल बताया गया है। बारह प्राणायामों की एक धारणा होती है और दो धारणाओं का एक योग होता है। इस तरह जो योग करता है, उसे ऐश्वर्य प्राप्त होता है, वह अपने तेज से प्रदीप्त होकर परमात्मा का दर्शन करता है। जितेन्द्रिय और प्राणायाम करने वाले ब्राह्मण के सभी दोष नष्ट हो जाते हैं और वह सत्त्व गुण में प्रतिष्ठित हो जाता है। साधक आहार को नियत करके और प्राणायाम में आसक्त होकर एक-एक भूमि को जीतने के बाद आगे बढ़े यानी प्राणायाम सम्बन्धी पहली अवस्था में पूर्ण अभ्यास कर बादवाली अवस्था को साधे। पूर्वभूमि को बिना जीते पर भूमि के लिए उद्यम करने से सम्मोहादि बहुतेरे दोष उत्पन्न हो जाते हैं। इसलिए बिना जीती हुई (अजिता) भूमि पर आरोहण न करे। यन्त्र नल के द्वारा जिस प्रकार जल बलपूर्वक लाए जाने पर पिया जाता है, उसी प्रकार परिश्रमी साधक प्राण वायु को भी ऊपर खींचे (यानी प्राणायाम करे) नाभि, हृदय, कण्ठ, वक्षःस्थल, मुख, नासाग्र, नेत्र, भ्रूमध्य, मस्तक और ब्रह्मरंध्र में मन को स्थिर करे। प्राणापानादि वायु के निरोध को प्राणायाम कहते और मन की धारणा ही धारणा कही जाती है। विषयों से निवृत्ति पाने को प्रत्याहार कहते और इन सब की समष्टि रूप से सिद्धि हो जाने पर योगलक्षण प्रकाशित होता है। उससे उत्पन्न योग की सिद्धि का लक्षण ध्यान है। ध्यानयुक्त योगी अपने को सदा चन्द्र-सूर्य के समान देखे। सत्त्वगुण की वृद्धि नहीं होने पर अथवा देश-कालादि के विचार से हीन योग होने पर दर्शन लाभ नहीं होता। अग्नि के निकट, वन में सूखे पत्तों के ढेर पर, कीड़े-मकोड़ों वाली जगह में, श्मशान में, पुरानी गोशाला में, चौराहे पर, कोलाहल के स्थान पर डरावनी जगहों में, वृक्ष के नीचे, दीमक की मिट्टी से बनी ऊँची भूमि, नदी और कुआँ आदि के समीप, भूखा रहकर, बेमन से और व्याकुल चित्त होकर योगी को ध्यान-योग में लीन नहीं होना चाहिए। इन दोषों को बिना विचारे जो प्रमाद से योग साधने लगते हैं, उनके शरीर में बहुतेरे विघ्नकारक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जड़ता, बहिरापन, मूकत्व, अंधत्व, स्मृतिलोप जरा प्रभृति नाना रोग उत्पन्न होकर योगी को सताने लगते हैं, जो अज्ञानवश योगकार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। इसलिये ज्ञानपूर्वक शुद्ध चित्त से योगी

करे। जो सावधान रहते, उन्हें कोई दोष उत्पन्न नहीं होता।

योगसाधन

की भी चिकित्सा हम यथाक्रम से कहते हैं, जिससे प्राणायाम-जनित दोष शान्त हो

गर्म यवागू को खाकर कुछ काल तक उस स्थान पर धारणा करे। इससे वातगुल्म

उन दोष

के लिये यह चिकित्सा करे कि, दही अथवा यवागू का भोजन करे

जाते। स्निग्धसेवार्थमिश्रित

में परिचालित करे। अगर इससे शान्त न हो, तो मस्तक में

नष्ट होता और वायुग्रन्थिका भेदन करके उसे ऊर्द्ध्व देश में परिचालित दूर करने

और वायुग्रन्थिका भेदन करके

धारणा करे। योगरत सत्त्वस्थ योगी की देह में अगर गुदावर्त की पीड़ा हो, तो वह यही उपचार करे। जिस योगी के सर्वाङ्ग में कँप-कँपी प्रारम्भ हो जाय, वह इस प्रकार चिकित्सा करके सुखी हो सकता है। शरीर को स्थिरकर मन से किसी पर्वत की धारणा करे। उरोद्घात या वक्षोभ्रंश (छाती का रोग) होने से उरःस्थान या कण्ठ देश में भी वैसी ही धारणा करे। वाग्रोध होने से वचन में और वधिरत्व होने से कानों में धारणा की जाती है। तृषार्त होने से जिह्वा स्थान में स्नेहाक्त प्रज्ज्वलित अग्नि की धारणा करे। इन चिकित्साओं का जो फल हो, उसकी प्रतीक्षा करे। फिर तो वह सुखी हो जायगा। क्षय, कुष्ठ और कीलासादि राजस रोग में सात्त्विकी वृत्ति की धारणा करे। जिस-जिस देश में जो विकार उत्पन्न हो, वहाँ-वहाँ सात्त्विकी धारणा करे। जिस ब्राह्मण को इस प्रकार योग जनित दोष उत्पन्न हो उसको इसी प्रकार की चिकत्सा करनी चाहिए। जो भयभीत हो जाय बांस की कील से उसके सिर पर ताड़ना करे अथवा भयभीत योगी के सिर पर लकड़ी की कील रखकर लकड़ी से खटखटावे। इससे उसकी संज्ञा लौट जाती है। जिसकी संज्ञा लुप्त हो गई हो उसे सिरपर दोनों हाथों से धारणा करावे, इससे उसकी संज्ञा फिर जाती है—उसको पुनः मूर्द्धा में धारणा करनी चाहियें। रोगी को स्निग्ध और थोड़ा भोजन करावे इससे वह सुख पाता है। योगी जब अमानुष तत्त्वों का अनुभव करने में समर्थ हो जाय, तब आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी की धारणा करे। वैसी दशा में प्राणायाम के द्वारा सब तत्त्व दग्ध होकर वशीभूत हो जाते हैं। फिर भी अगर कोई दोष शरीर में प्रवेश कर जाय, तो उसका निराकरण यह है कि, मस्तक में संस्तम्भन करके धारणा करे और प्राणायाम रूप अग्नि में सब को जला डाले। ऐसा करने से सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। अगर नाग ने डँस लिया हो, तो हृदय और उदर में धारणा करे। महः, जन, तप, सत्य लोक की भी हृदय में धारणा करे। अगर विष पी लिया गया हो, तो हृदय में विशल्या धारण करे। मन में पर्वतमय पृथ्वी की धारणा कर हृदय में देवता और समुद्र की धारणा करे। योगी हजार घड़े जल से भी स्नान करे। कण्ठमात्र जल में पैठकर मस्तक में धारणा करे, नदी की विपरीत दिशा में रहकर; सम्पूर्ण शरीर में धारणा का अवलम्बन करे। अकवन के सूखे पत्ते की दोनिया बनाकर दीमक की मिट्टी भी पी सकता हैं। योगज रोग होने पर इस प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये। विख्यात योगनिर्माता ने योग द्वारा प्राप्त ज्ञान के द्वारा संक्षेप में इस प्रकार की विधि कही है। योग सम्बन्धी बातों को किसी से नहीं कहना चाहिये। कहे भी तो ब्राह्मणों से ही। मोहवश अगर किसी से कह दिया जायगा, तो उसका विज्ञान लुप्त हो जायगा। इसलिए योग की प्रवृत्ति किसी से नहीं कहनी चाहिये। सत्त्व गुण की अधिकता, आरोग्य, लोभ का अभाव, कान्ति, सुन्दर स्वर, सुभगमूर्ति, उत्तम गन्ध, मूत्रपुरीष की अल्पता जब शरीर में हो जाय, तब समझना चाहिये कि योग की पहली प्रकृति सिद्ध हो गई। अपने को और पृथ्वी को अगर जलता हुआ देखे और सृष्ट पदार्थ में प्रवेश कर सके, तो सिद्धि को उपस्थित समझे। ॥ १२—६४ ॥

श्री वायु महापुराण का पाशुपत योग नामक ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥११॥

बारहवाँ अध्याय

योगोपसर्ग

सूतजी बोले—तत्त्वदृष्टि-सम्पन्न योगियों को जो उपसर्ग (रोग) होता है, उसे अब हम यथायोग्य इसके आगे कहते हैं। मनुष्योचित विविध कामना, स्त्री प्रसङ्गाभिलाष, पुत्रोत्पादनेच्छा, विद्यादान, अग्निहोत्र, हविर्यज्ञ, अन्य तपस्या आदि, कपट, धनार्जन, स्वर्गस्पृहा आदि वस्तुओं में यदि योगी पुरुष आसक्त हो गये तो वे अविद्या के वशीभूत हो जायँगे इन्हें उपसर्ग या विघ्न समझ कर योगिजन इनका विवेचन कर निराकरण करे। प्रतिदिन ब्रह्मनिष्ठ होकर योगाभ्यास करने से ये दोष नष्ट हो जाते हैं। इन उपसर्गों को और श्वास को जीतनेवाले योगियों को सात्त्विक, राजस और तामस विघ्न उपस्थित होते हैं।

दूर की ध्वनि सुनने की शक्ति, देवताओं का दर्शन और अभ्रान्ति, सिद्ध का लक्षण कहा गयाहै। विद्या, कवित्व, शिल्पनैपुण्य, सब भाषाओं का बोध और विद्या का तत्त्वज्ञान, सुनने योग्य शब्दों को सौ योजन दूर से भी सुन ले, सर्वज्ञ हो, विधिज्ञ हो और उन्मत्त की तरह रहता हो यह योग प्रभाव का लक्षण है। यक्ष, राक्षस गन्धर्व आदि दिव्य दर्शन योगियों के लिये विघ्नस्वरूप हैं। योगी जबसब दिशाओं में देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि और पितरों को देखने लगते हैं, तब वे उन्मत्त हो जाते हैं। भ्रान्त योगी भ्रमवश अन्तरात्मा द्वारा विविध विषय की ओर प्रेरित होनेपर भूल जाते हैं। भ्रम से उनकी बुद्धि मारी जाती है और उनका ज्ञान नष्ट हो जाता है। अन्तरात्मा द्वारा प्रेरित होने पर वार्ता (?) चित्त को नष्ट कर देती है और उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाने पर सब ज्ञान नष्ट हो जाता है। ऐसा होने पर शीघ्र ही उज्वल वस्त्र या कम्बल से शरीर को ढक कर मन ही मन परब्रह्म का ध्यान करे। इसलिये सिद्धि चाहने वाला मेधावी योगी आत्मजनित दोष और उपस्थित उपसर्गों को दूर कर दे। ऋषि, देव, गन्धर्व, यक्ष, उरग, महासुर आदि उपसर्ग के वशीभूत होकर बार-बार उसी में फँसे रहते हैं; इसलिये योगी जितेन्द्रिय होकर थोड़ा खाय, निद्रा को जीते और मूर्धा में सूक्ष्म की धारणा करे। इन्द्रिय को जीतनेवाले जो योगयुक्त योगी हैं उन्हें फिर प्राणसंज्ञक उपसर्ग होता है। ऐसा होने पर पहले योगी सम्पूर्ण पृथ्वी की धारणा करे फिर जल की धारणा करे। अनन्तर अग्नि, सम्पूर्ण आकाश, मन और परा बुद्धि की यत्नपूर्वक धारणा करे। सिद्धि-लक्षण को देखकर उनका फिर एक-एक कर त्याग करता जाय।

पृथ्वी की धारणा करने से पृथ्वीतत्त्व सूक्ष्म रूप से उसमें प्रविष्ट हो जाता है। योगी उस समय अपने को नित्य पृथ्वी मय समझे। ऐसा करने से उसके शरीर से उत्तम गन्ध निकलने लगती है। जल की धारणा करने से जल का सूक्ष्म तत्त्व उसमें प्रवेश करता है और अमृततुल्य शीतल सूक्ष्म रस उसके शरीर से प्रवाहित होने लगता है। तेज की धारणा करने से तेज सूक्ष्म रूप से उसमें संक्रान्त हो जाता है। योगी अपने को तेजोमय समझने लगता है और उसी भाव को देखता भी है। वायु की धारणा से वायु सूक्ष्म

Funding by IKS-MoE

भाव से संक्रान्त हो जाता है। योगी अपने को वायु समझता है और वायु की तरह वायुमण्डल में भ्रमण करने लगता है। आकाश की धारणा करने से सूक्ष्म आकाश संक्रान्त होता और योगी नादसम्पन्न होकर उसके सूक्ष्म मण्डल को देखने लगता है। वायु की धारणा करने वाला योगी अपने को वायुमय, नित्य समझने लगता है और वायु सूक्ष्म रूप से उसमें संक्रान्त हो जाता है। मन की धारणा करने से मन सूक्ष्म होकर संक्रान्त होता और योगी अपने मन से सब के मन में प्रवेश कर जाता है। बुद्धि द्वारा जब बुद्धि की धारणा की जाती है तब योगी समस्त तत्वबोध में समर्थ होते हैं। इन सप्त सूक्ष्मों को जान कर भी जो योगवित् मेधावी इनका परित्याग कर देते हैं, वे बुद्धिगुण से परम तत्त्व को प्राप्त करते हैं। योगी जिस किसी ऐश्वर्यजनक भूत में आसक्त होते हैं और उसका सेवन करते हैं, उसी के साथ उनका विनाश हो जाता है। इसलिये जो ब्राह्मण परस्पर संसक्त सूक्ष्म भूत समूह का परित्याग करते हैं, वे परम तत्त्व को प्राप्त करते हैं। ऐसा देखा गया है कि, दिव्य चक्षु महात्मा ऋषिगण भी सूक्ष्म भाव समूह में लिप्त होने के कारण दोष-दुष्ट हो गये हैं। इसलिये सूक्ष्म भावसमूह में एकान्त निष्ठावान नहीं होना चाहिये। ऐश्वर्य से राग उत्पन्न होता है और विराग का ही नाम ब्रह्म है। इन सप्त सूक्ष्म तत्वों को और षडंग महेश्वर को जान कर जो योगी क्रिया-कलाप में पटु होते हैं, वे ही परब्रह्म को प्राप्त करते हैं। विधि तत्त्व को जानने वाले व्यक्तियों ने प्रभु महेश्वर के षडङ्ग तत्त्व को इस प्रकार बताया है, सर्वज्ञता, तृप्ति, अनादि बुद्धि, स्वतन्त्रता, नियत अविनश्वर शक्ति और अनन्त शक्ति। जो योगी परब्रह्म को ही नित्य धन समझने लगते हैं, उनके सभी उपसर्ग शान्त हो जाते हैं। जिसने राग और प्राणायाम जनित उपसर्गों को जीत लिया है, उसके लिये वहिः शरीर में सर्वकार्य-साधिका एकमात्र धारणा ही विहित है। योगी जहाँ-जहाँ जिस भूत विशेष में मन को लगाते हैं, वहाँ वे प्रवेश कर जाते हैं। वे तीनों लोकों को भी कँपा सकते हैं। वे देह छोड़ कर दूसरी देह में भी प्रवेश कर सकते हैं। सब योगों का द्वार मन है। आदित्य को भी योग का द्वार कहते हैं। ये इन्द्रियों का आदान करते हैं अर्थात् इन्द्रिय-वृत्ति समूह का आकर्षण करते हैं, इससे वे आदित्य कहलाते हैं। इस विधि से योगी विषय से विरक्त होकर, सूक्ष्म तत्वों को त्याग कर और प्रकृति का अतिक्रमण करके रुद्रलोक में निवास पाता है। ऐश्वर्य गुण से संयुक्त होने पर योगी ब्रह्मत्व प्राप्त करता है। तब वे संपूर्ण देवस्थानों से हो जायँ यानी देवस्थानों में धारणा नहीं करें। तब वे अपने पिशाचगुण से पिशाचादि को, राक्षस गुण से राक्षसों को, गान्धर्व गुण से गन्धर्वों को, कौवेर गुण से कुवेर को, ऐन्द्र गुण से इन्द्र को, सौम्य गुण से सोम को, प्राजापत्य से प्रजापति को साधे। ब्राह्म गुण से ब्रह्म की साधना भी योगी करे। वे ही प्रभु सब कार्यों के प्रवर्तक हैं। उनमें आसक्त होने से योगी उन्मत्त अर्थात् सिद्ध हो जाता है। उन्हीं से सब का प्रवर्तन होता है। इसलिये इन गुण स्थानों का त्यागकर योगी नित्य ब्रह्म में रत हो जाय। इन स्थानों में अनासक्त योगी सर्वत्रगामी हो जाता है ॥१-६३ ॥

श्री वायु महापुराण का योगोपसर्ग निरूपण नामक बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

तेरहवाँ अध्याय

योगैश्वर्य निरूपण

वायु बोले - इससे आगे अब हम योग के ऐश्वर्य-विस्तार को कहते हैं, जिस योगविशेष से तीनों लोक जीते जा सकते हैं।

योगियों के लिये आठ प्रकार के ऐश्वर्य कहे गये हैं। उन्हें हम क्रम से कहते हैं, सुनिये—अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायिता। यह सार्वकामिक ऐश्वर्य भी विविध प्रकार का है। जैसे सावद्य, निरवद्य और सूक्ष्म। सावद्य नाम का जो तत्त्व है, वह पंचभूतात्मक है। निरवद्य भी पंचभूतात्मक है। स्थूल इन्द्रिय, मन और अहङ्कार एवं सूक्ष्म इन्द्रिय मन और अहङ्कार तथा सम्पूर्ण आत्मख्याति—अष्ट ऐश्वर्यों की यह त्रिविध प्रवृत्ति है। स्थूल और सूक्ष्म सर्वभूतों में यह अष्ट ऐश्वर्य जिस भाव से प्रवृत्त होता है, उसे हम ठीक वैसा ही कहते हैं जैसा कि, स्वयं प्रभु ब्रह्माने कहा है।

त्रैलोक्य में जितने जीव-जन्तु हैं, वे सभी उस योगी के वशवर्ती हो जाते हैं। जिसने अणिमा ऐश्वर्य को प्राप्त किया है। तीनों लोकों में प्राणियों द्वारा जो दुष्प्राप्य कहा गया है, उसे भी योगी अपने प्रथम (अणिमा) योगबल से प्राप्त कर लेते हैं। द्वितीय ऐश्वर्य लघिमा के द्वारा योगी सब जीवों के बीच शीघ्रता से चले जाते हैं, वे आकाश में उड़ सकते और पानी में तैर सकते हैं। तृतीय ऐश्वर्य-प्राप्ति द्वारा तीनो लोकों के पदार्थ को योगी पा जाते हैं। प्राकाम्य के फलस्वरूप इच्छानुरूप विषय भोग कर सकते हैं और कहीं भी उनके लिए रोक टोक नहीं हो सकती। महिमा द्वारा एक स्थान में रहकर भी तीनों लोकों की सब वस्तुओं से संयुक्त हो सकते हैं। ईशित्व के प्रभाव से योगी त्रैलोक्यगत सम्पूर्ण भूतों के सुख-दुःख विधान में समर्थ होते हैं। वशित्व के द्वारा सभी चराचर योगी के वश हो जाते हैं; लेकिन यह उनकी इच्छा के अधीन है। कामावसायिता के प्रभाव से योगी की इच्छा के अनुसार ही सभी कार्य सिद्ध होते हैं और प्राणी भी वशीभूत हो जाते हैं परन्तु वह भी योगी की इच्छा के अधीन ही है। शब्द, स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और मन आदि योगी की इच्छा के अनुसार प्रवर्तित होते हैं और इच्छा न होने पर वे तिल भर भी इधर उधर नहीं होते। ऐसे योगी को जन्म, मृत्यु, छेद, भेद, दाह, मोह, संयोग, क्षय, क्षरण, खेद आदि कुछ नहीं होते। वे सभी अवस्था में अपनी इच्छा के अनुसार कार्य-सम्पादन करते हैं। गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, वर्ण, स्वर आदि उन्हें कुछ नहीं है। वे विषयभोग करते हैं; किन्तु विषय में लिप्त नहीं होते। परम सूक्ष्म का ज्ञान होने से अपवर्ग होता है; क्योंकि अपवर्ग सूक्ष्म है। व्यापक-व्यापित्व और अपवर्ग के कारण ही वे पुरुष कहे जाते हैं। पुरुष सूक्ष्म भाव के ऐश्वर्य के चारों ओर अवस्थित हैं। ऐश्वर्य-

Funding by IKS-MoE

गत अन्य गुण सबकी अपेक्षा सूक्ष्म हैं। मानव अविनाशी उत्तम योग के प्रभाव से परम सूक्ष्म अपवर्ग नामक परम पद प्राप्त करते हैं। ॥ १२—२४ ॥

श्री वायु महापुराण का योगैश्वर्य निरूपण नामक
तेरहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १३ ॥

चौदहवाँ अध्याय

पाशुपत योग निरूपण

वायु बोले—इस प्रकार ब्रह्मतत्व ज्ञान से रहित प्राणी रागवश राजस और तामस कर्मों के आचरण से फिर उन्हीं में लिप्त हो जाते हैं और सुकृत करने वाले स्वर्ग लाभ करते हैं। वे फल भोग, करने के उपरान्त पुनः भ्रष्ट होकर मानव जन्म प्राप्त करते हैं। इस कारण अत्यन्त सूक्ष्म जो परब्रह्म है वही सर्वकालीन है, इसलिये ब्रह्म का ही सेवन करना चाहिये। उसी में परम सुख निहित है। अत्यन्त परिश्रम और बहुव्यय करने से यज्ञ सम्पन्न होता है; किन्तु उससे भी मृत्यु का निराकरण नहीं होता है; इसलिये मोक्ष ही परम सुख है। ध्यानसंयुक्त ब्रह्मयज्ञ परायण व्यक्ति सौ मन्वन्तरों तक प्रयत्न करने पर भी किसी के द्वारा (मृत्यु के द्वारा) सीमित नहीं होता है। विश्वाख्य, विश्वरूपी, विश्वपाद शिरोग्रीव, विश्वेश, विश्वभावन, विश्वगन्ध, विश्वमाल्य, विश्वाम्बरधर, प्रभु, अपनी किरण से भूमण्डल का संयमन करने वाले, नियत गतिमान्, परम गति, वरेण्य, महात्मा, कवि, अनुशासक, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, स्थूल से भी स्थूल, निरिन्द्रिय, दिव्य पुरुष को योगी योग से देखते हैं न कि इन आँखों से। योगिगण योगबल से उस चेतनात्मक नित्य निर्गुण अलक्ष्य, परम पुरुष के सगुण, सवर्णावर्ण, सर्वव्यापी, शुचि और अचल प्रकाशमान् रूप का दर्शन करते हैं। वही एक अतीन्द्रिय सुसूक्ष्म परमपुरुष भावनात्मक तेज प्रभाव से दीप्यमान है, जिसको पाणि-पाद-उदर-पार्श्व और जिह्वा नहीं हैं। वे चक्षु विहीन होकर भी देखते हैं, कर्ण हीन होकर भी सुनते हैं। इनसे कुछ अज्ञात नहीं है; यद्यपि इन्हें बुद्धि नहीं है। ये सब कुछ जानते हैं परन्तु इन्हें वेद भी नहीं जान पाते हैं। इसी सर्वगत, अतिसूक्ष्म सचेतन महापुरुष को ही सर्वाग्रवर्ती परम पुरुष कहा जाता है। मुनियों ने इन्हीं को सम्पूर्ण लोकों और जीवों को प्रसव करने वाली प्रकृति कहा है। योगी इन्हीं को ध्यान से देखते हैं। इनके पाणिपाद सभी जगह हैं, आँख-सिर-मुँह और कान भी सब जगह हैं एवं सभी को आवृत्त करके ये स्थित हैं। ध्यान योग द्वारा इस सर्वगत, सनातन, सर्वभूतेश परम पुरुष को प्रत्यक्ष करने पर ध्यान करने वाला मोह ग्रस्त नहीं होता है। भूतात्मा, महात्मा, परमात्मा, सर्वात्मा और अव्यय परब्रह्म का ध्यान करने पर मोह नहीं होता है। वायु जिस तरह सब भूतों में विचरणशील है और उसको भी रूप में बाँध लेते हैं उसी प्रकार सब भूतों के हृदयाकाशरूपीपुर में शयन करने के कारण वह पुरुष कहलाता है।

धर्महीन जीवगण विशेष प्रारब्ध कर्म के अनुसार वह ब्रह्म योनि में रजोवीर्यमय होकर माता-पिता के मिथुन कर्म द्वारा बार-बार उत्पन्न होते हैं। गर्भकाल में वे पहले कलल रूप में रहते हैं। फिर कुछ काल बाद वह कलल बुद्बुद् हो जाता है। मिट्टी का लोंदा जिस तरह चाक पर घुमा-घुमा कर कुम्हार द्वारा दोनों हाथों से दबा कर गढ़ा जाता है और विभिन्न रूप धारण कर लेता है, उसी प्रकार वायु द्वारा प्रेरित होकर आत्मा भी अस्थि युक्त होकर रूपानुकूल मन प्राप्त कर मानव रूप में उत्पन्न होता है।

वायु सब का संभव यानी आश्रयस्थान है। वायु से जल होता है, जल से प्राण और प्राण से वीर्य उत्पन्न होता है। तैंतीस भाग रज और चौदह भाग वीर्य करीब आध पल के परिमाण में जब गर्भाशय में जाता है, तब गर्भ बन कर वह पंच वायु द्वारा आवृत हो जाता है। पिता के शरीर के अनुरूप उसका रूप और प्रत्येक अंग उत्पन्न होते हैं एवं माता द्वारा खाये, पिये, चाटे गये द्रव्य रस के द्वारा-जो नाभिरन्ध्र से वहाँ तक पहुँचता है—देहधारियों का प्राण टिका रहता है। वह नौ मास तक निःसामर्थ्य सा पैर से लेकर सिर तक स्नायु द्वारा क्रम-हीन भाव से बँधा रहता है। इसी तरह नौ महीना रह कर वह अधोमुख होकर योनि छिद्र से उत्पन्न होता है। फिर पाप कर्म के कारण वह नरक प्राप्त करता है। असिपत्रवन और शाल्मली नरक में उसका छेदन होता है, वह शोणित भोजन करता है, दुस्सह झिड़कियाँ पाता है और कुंभीपाक की यातना तो उसके लिये अत्यन्त कठिन और दुस्सह हो जाती है। जिस प्रकार जल छिन्न-भिन्न होकर भी अपना रूप प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार छिन्न-भिन्न किये जाने पर भी जीवगण यातना स्थान में पीड़ा का अनुभव करते हैं। अपने कृत पापों द्वारा दुखित होकर जीव कर्म के शेष हो जाने पर दुःख अथवा सुख प्राप्त करते हैं। मृत्युपुर में अकेले ही जाना होता है और कर्मफल का भोग भी अकेले ही करना पड़ता है; इसलिये सुकृत कार्यों को ही करना चाहिये। यहाँ से प्रस्थान करने पर इस जीव का कोई साथ नहीं देता। केवल अपने द्वारा किया गया कर्म ही साथ जाता है। यममन्दिर में पापियों की देह छिन्न-भिन्न हो जाती है। सर्वदा घोर यातना मिलती रहती है, जिससे वे "हाय बाप" करते रहते हैं। अधर्म के परिणाम-स्वरूप बड़ी भारी यातना की वेदना सहते सहते शरीर सूख जाता है। मन, बचन या कर्म से जो कुछ भी पापाचार किया गया है, वह पाप बलात् यातना स्थान में ले जाता है, इसलिये सत्कर्म ही करना चाहिये। देहधारी पहले जिस प्रकार का पापकर्म करता है, उसी प्रकार वह षड्विध तामस संसार में प्राप्त होता है। मनुष्य, पशु, मृग, पत्ती, सरीसृप और स्थावर आदि क्रमशः निकृष्टयोनियों में जन्म प्राप्त कर पापी जीव फिर मनुष्यत्व प्राप्त करता है। कुम्हार के चक्के की तरह पापी जीव सदा घूमता रहता है। संसार में मनुष्य से लेकर स्थावर पर्यन्त की यही दशा है। ये तामस हैं और पापी जीव इन्हीं में घूमता रहता है। ब्रह्मा से लेकर पिशाचपर्यन्त सात्विक सृष्टि है। इनका स्थान स्वर्ग में है। ब्राह्म सृष्टि में केवल सत्त्व है और स्थावर में केवल तम है। चतुर्दशविध सृष्टिस्थान के मध्य में केवल रज ही व्याप्त है। देहधारी सदा कष्ट से पीड़ित रहते हैं, जिससे उनका हृदय छिन्न-भिन्न हुआ रहता है, तब वे परब्रह्म का स्मरण किस प्रकार कर सकते हैं? पूर्व धर्म की

भावना और संस्कार से प्रेरित होकर जीव मानव शरीर प्राप्त करता है ; अतः वह नित्य परब्रह्म का ध्यान किया करे ॥१–४२॥

श्री वायु महापुराण का पाशुपत योग निरूपण नामक
चौदहवाँ अध्याय समाप्त ॥१४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

पाशुपत-योग-निरूपण

वायु बोले—प्राणी चौदह प्रकार के संसार-मंडल को जानकर संसार के भय से डरता हुआ सांसारिक कार्यों का सम्पादन करे। कालचक्र से परिवर्तित होकर ही वह संसार का स्मरण करता है यानी संसार में लिप्त होता है। इसलिये ध्यान तत्पर होकर सदा योगाराधन करना युक्त है। ऐसे योग का आरम्भ करे, जिससे कि आत्मदर्शन प्राप्त हो। यही आत्मा आद्य और परम ज्योति है एवं संसार-सागर से पार जाने के लिये उत्तम पुल है। आत्मा के विवृद्ध यानी प्रकाशमान होने से जीवों का शाश्वत संभेद यानी सर्वदा का आवागमन रुक जाता है। इसलिये विधि को जानने वाले योगी सेतुस्वरूप, विश्वतोमुख, अग्निरूप और सब भूतों के हृदय में रहने वाली आत्मा की उपासना करें। शुद्ध होकर और आत्मा में मन लगाकर योगी उस हृदयस्थ अग्नि में यथाविधि आठ आहुति का हवन कर एक बार जल से आचमन कर चुपचाप उपासना करे। उसकी पहिली आहुति प्राण के लिये, दूसरी अपान के लिये, तीसरी समान के लिये, चौथी उदान के लिये, पाँचवीं व्यान के लिये है। सब के अन्त में स्वाहा भी कहना चाहिये। इसके बाद शेष अन्न को यथेच्छ भोजन करे। एक बार जल पिये, तीन बार आचमन करे और हृदय का भी स्पर्श करे। मन्त्र यह है—"आत्मा ही प्राण की ग्रन्थि है और सर्वसंहारी रुद्र ही आत्मा हैं। वे ही रुद्र हमारे प्राण को स्वयं तृप्त करें। आप देवों में ज्येष्ठ हैं, उग्र हैं, चतुर हैं, वृषवाहन हैं। आप हमारी मृत्यु के निवारक हों। यह हवन की गई हवि कल्याणकारक हो"। इस प्रकार हृदय का स्पर्श करे। दाहिने पैर के अंगूठे को दाहिने हाथ से छूआ दे फिर हाथ से नाभि को छुए और आचमन करके आत्मा का स्पर्श करे। दोनों आँख, दोनों कान, नाक, हृदय और सिर का भी स्पर्श करे। पाण और अपान दोनों ही आत्मा कहे गये हैं। उनमें प्राण अन्तरात्मा है और अपान बहिरात्मा। अन्न ही प्राण और अपान है और अन्नाभाव ही जीवों के लिये मृत्यु है। अन्न ही ब्रह्म और प्रजाओं का सृष्टिमूल है। अन्न से ही भूतसमूह उत्पन्न होते हैं और अन्न द्वारा ही उनका पालन होता है। सकल जीव अन्न से ही वृद्धि पाते हैं; इसलिये यह अन्न कहा जाता है। देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, पिशाचादि अग्नि में हुत अन्न को ही खाते हैं। ॥ १--१७ ॥

इस श्री वायु महापुराण का पाशुपत योग निरूपण नामक
पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १५ ॥

Funding by IKS-MoE

सोलहवाँ अध्याय

शौचाचार लक्षण निरूपण

वायु बोले—"इसके आगे अब हम शौचाचार का लक्षण कहते हैं, जिसके अनुष्ठान से जीव शुद्धात्मा होकर स्वर्ग प्राप्त करता है।

शुद्धता की अभिलाषा करने वाले मुनियों के लिये जल सबसे उत्तम है। जो मुनि इसमें आलस्य नहीं दिखाते हैं, उन्हें कभी भी विषाद नहीं होता है। मान और अपमान दोनों ही विष और अमृत कहे गए हैं। उनमें अपमान विष है और मान अमृत। इसमें भी जो मुनि आलस्य नहीं दिखाते हैं, उन्हें कभी भी विषाद नहीं होता है। गुरु के प्रियतर कार्य को करनेवाला मुनि सर्वदा सुखपूर्वक रहता है। यम और नियम का जो सदा पालन करते हैं और गुरु की आज्ञा लेकर उत्तम ज्ञान का अनुगमन करते हैं, वे धर्मानुकूल कार्य को करते हुए पृथ्वी पर विचरण करते हैं। आँख से देखकर राह में चलना चाहिए, कपड़े से छानकर जल पीना चाहिये और सत्य से शुद्ध कर वचनों का उच्चारण करना चाहिये। यही धर्मशास्त्र की आज्ञा है। योगी किसी भी श्राद्ध या यज्ञ में आतिथ्य स्वीकार न करे, और अहिंसक होकर रहे, यही शास्त्रीय सिद्धान्त है। ॥ १—८ ॥

रसोई की आग जब निर्धूम होकर ठंडी पड़ जाय, घर के सभी लोग खा लिए हों तब योगी उस घर में भिक्षा के लिये जाय; लेकिन एक ही घर नित्य न जाय। सज्जनों के धर्म की रक्षा करते हुये योगी इस प्रकार भिक्षा करे, जिससे कि उनके अपमान और पराभव का विचार न रहे। आचार-शील गृहस्थों के यहाँ भिक्षा माँगना योगियों के लिये परम श्रेष्ठ वृत्ति कही गयी है। नहीं तो शालीन, श्रद्धावान्, शान्त, महात्मा श्रोत्रिय गृहस्थों के यहाँ भिक्षाचरण करें। इसके अतिरिक्त अदुष्ट और अपतित गृहस्थों के घर भिक्षाचरण किया जा सकता है; किन्तु हीन वर्णों के यहाँ भिक्षा माँगना योगियों के लिये निकृष्ट कहा गया है।

भिक्षावस्तु में यवागू, तक्र, दूध, यावक, अपक्व, फल-मूल, पिण्याक अथवा शक्त्यनुसार जो कुछ भी दिया गया हो वह योगियों के लिये सिद्धिवर्द्धक है। योगियों के लिये वही आहार श्रेष्ठ है, जो भिक्षा द्वारा प्राप्त होता है। जो योगी प्रत्येक मास कुश के अग्र भाग से जलविन्दु का पान करते हैं और जो न्यायपूर्वक भिक्षाचरण करते हैं उनमें पहले से पीछे वाले श्रेष्ठ हैं।

सब योगियों के लिये चान्द्रायण व्रत श्रेष्ठ कहा गया है। अतएव शक्ति के अनुसार योगी एक-दो-तीन अथवा चार चान्द्रायण व्रत करे। चोरी नहीं करना, ब्रह्मचर्य, अलोभ और त्याग योगियों के व्रत हैं। अहिंसा, तत्त्वजिज्ञासा, अक्रोध, गुरु-शुश्रूषा, शौच, आहार में लघुता और नित्य स्वाध्याय योगियों के लिये नियम कहे गये हैं। जिस प्रकार जंगली हाथी अंकुशाघात से शान्त होकर शीघ्र ही मनुष्यों का वशीभूत हो

जाता है उसी प्रकार कर्मबीजोत्पन्न गुणमय देह यानी कर्मबद्ध जीव शुद्ध ज्ञान-योग में दग्ध बीज होकर निष्पाप और शान्त हो जाता है। कर्म बन्धन से मुक्त होने पर वही जीव मुक्त पदवी को प्राप्त करता है। वेद की ही तरह सम्पूर्ण यज्ञक्रियाएँ हैं और यज्ञों में जप ही ज्ञानियों द्वारा श्रेष्ठ कहा गया है। ज्ञान से सङ्ग-रागरहित ध्यान श्रेष्ठ है। इस ध्यान को प्राप्त करने से ही नित्य वस्तु की उपलब्धि होती है। शुद्धसत्त्व ज्ञानी कहते हैं कि, शम, दम, सत्य, निष्पापत्व, मौन, सम्पूर्ण भूतों पर दया और सरलता ही अतीन्द्रिय ज्ञान को उत्पन्न करने वाली है। जो समाधि तत्पर, अप्रमादी, ब्रह्मनिष्ठ, शुचि, जितेन्द्रिय और आत्मरति करने वाले साधु हैं, वे ही इस योग को प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार अनिन्दित और निर्मल आशयवाले महामति महर्षिगण ने इस योग को प्राप्त किया है। ॥ ६—२४ ॥

श्री वायु महापुराण में शौचाचार लक्षण-निरूपण नामक
सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

सत्रहवाँ अध्याय

परमाश्रम-विधि कथन

वायु बोले—संवत्सर के (आयु) अन्तिम भाग में गुरु की आज्ञा से उत्तम ज्ञान प्राप्त कर तीनों आश्रमों का परित्याग कर चौथे आश्रम में प्रवेश करे और ब्रह्म-प्राप्ति में सहायक सारभूत ज्ञान की उपासना करता हुआ पृथ्वी में विचरण करे। जो तृषित होकर यह जानने की चेष्टा करता है कि यह ज्ञान है और यह ज्ञेय है, वह हजार कल्पों में भी ज्ञेय को प्राप्त नहीं करता है। सङ्गहीन होकर, क्रोध को जीतकर, थोड़ा भोजन कर जितेन्द्रिय बुद्धि योग से समस्त इन्द्रिय द्वार को बन्दकर ध्यान में मन का निवेश करे। ऊपर से खुले हुए शून्य स्थान में, गुफा में, जंगल में और नदियों की बालुकाराशि पर नियत रूप से योगानुष्ठान करे। वाग्दण्ड, कर्मण्ड और मनोदण्ड स्वरूप तीन दण्ड हैं। जिनके पास ये तीनों दण्ड हैं, वे त्रिदण्डी कहलाते हैं। ध्याननिष्ठ जितेन्द्रिय मनुष्य शास्त्रानुकूल विधि का पालन और शुभाशुभ कर्मों का परित्याग कर अगर शरीर छोड़ते हैं तो फिर उनका जन्म-मरण नहीं होता है। ॥ १—८ ॥

श्री वायुपुराण में परमाश्रम विधि कथन नामक
सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

Funding by IKS-MoE

अठारहवाँ अध्याय

यतियों का प्रायश्चित-विधान कथन

वायु बोले—इसके बाद अब मैं यतियों के प्रायश्चित्त को यथार्थ रूप से कह रहा हूँ। सूक्ष्म धर्म जानने वालों ने काम कृत और अकाम कृत दोनों ही पापों के लिए प्रायश्चित कहा है। मंन, वचन और शरीर से उत्पन्न होनेवाले पाप तीन प्रकार के हैं। इसी त्रिविध पाप से यह संसार दिन-रात सदा बँधा रहता है। परा (उच्च) श्रुति का ऐसा कथन है कि कर्मसमूह या कर्मबद्ध संसार सत्य नहीं है। जीवनकाल में ये पाप क्षण भर के लिये ही आते हैं, अतः आयुष्काल में जीवगणों को सर्वदा धीर और सावधान होना चाहिये; क्योंकि योग ही परम बल है। मनुष्यों के लिये योग से उत्कृष्ट दूसरा कुछ नहीं है, इसीलिये धर्मिष्ठ विद्वानों ने योग की प्रशंसा की है। धीर व्यक्ति विद्या की सहायता से अविद्या को पार कर (दूर कर) अनुत्तम ऐश्वर्य का लाभ करते हुए पर-अपर का प्रत्यक्ष करते हैं और परम पद को प्राप्त करते हैं। सन्यासियों के लिये जो व्रत निर्धारित हैं, उनमें एक का भी त्याग करने से प्रायश्चित करना पड़ता है ॥१—७॥

सन्यासी अगर कामवश स्त्री-प्रसङ्ग कर ले, तो प्राश्चित्त करना होगा। ऐसी दशा में प्राणायाम के साथ सान्तपन करे और उक्त कृच्छ् व्रताचरण के अनन्तर वह अपने आश्रम में प्रवेश करे एवं सावधान होकर भिक्षा करे। क्रीड़ा-परिहास के समय असत्य बोलने से कोई दोष नहीं होता है; किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसा प्रसङ्ग ही भयङ्कर होता है। दिन-रात में अधिक से अधिक एक आधअक्षर परिहास में कहा गया असत्य अधर्म नहीं है ऐसी श्रुति कहती है; किन्तु देवता और मुनियों ने हिंसा को सब से बड़ा पाप कहा है, यही वेद भी कहते हैं। सारांश यह कि हिंसा सब पापों से बढ़कर है। धन लोगों के वहिर्गत प्राण हैं; इसलिये जो धन का हरण करता है, वह उसके प्राण का हरण करता है। इन अपकर्मों को करनेवाला दुष्टात्मा भिक्षुक व्रत से च्युत हो जाता और क्लेश प्राप्त करता है। ऐसा भिक्षुक शास्त्रविधि से संवत्सर पर्यन्त चान्द्रायण व्रत करे। यही श्रुति कहती है। संवत्सर के अन्त में निष्पाप होकर भी वह व्यथित चित्त से सावधान होकर भिक्षाचरण करे। मन, वचन और कर्म से सब जीवों के लिये अहिंसा धारण करनी चाहिये। अगर विना किसी अभिलाषा के भी भिक्षु मृगादि पशुओं की हिंसा कर डाले, तो उसे कठिन-से-कठिन चान्द्रायण करना चाहिये। इन्द्रिय दौर्बल्य के कारण यदि स्त्री दर्शन से ही यती का वीर्यपात हो जाय तो उसे षोड़श प्राणायाम करना चाहिये। अगर ब्राह्मण का दिन में वीर्यपात हो जाय, तो इसके लिए प्रायश्चित यह है कि, वह तीन रात उपवास कर सौ प्राणायाम करे, रात में वीर्यपात करने से स्नान के बाद बारह बार प्राणायाम करे। प्राणायाम के द्वारा ब्राह्मण शुद्ध और निष्पाप हो जाता है। बिना किसी दूसरी वस्तु को मिलाये कोई एक अन्न, मधु, मांस, आम श्राद्ध और चाट-चाट कर नमक खाना यतियों के लिये वर्जित है। इनमें एक का भी अगर यती सेवन

कर ले, तो उसे प्रायश्चित्त करना होगा। कृच्छ्र प्राजापत्य के द्वारा वह पाप से मुक्त होगा। मन, वचन और शरीर के द्वारा जो कुछ पाप हो जाय, उसके प्रायश्चित्त के लिये सज्जनों से निश्चय करे और वे जो कहें, वही करे। विशुद्ध बुद्धि, मिट्टी को रोड़े और सोने को समान समझनेवाला एवं सब जीवों पर दया करनेवाला व्यक्ति निश्चल, अविनाशी और सर्वकालीन उस स्थान को प्राप्त करता है, जहाँ से जाकर वह फिर कभी नहीं लौटता। ८–२३॥

श्री वायु महापुराण का यति प्रायश्चित्त-विधान कथन नामक
अठारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१८॥

उन्नीसवाँ अध्याय

अरिष्ट-निरूपण

वायु बोले—इसके आगे अब हम अरिष्टों को कहते हैं उसको सुनिये। जिस ज्ञान विशेष द्वारा योगी अपनी मृत्यु को भी जान जाते हैं।

जो व्यक्ति अरुन्धती, ध्रुव, सोम-छाया और महापथ को नहीं देखता है, वह एक वर्ष से अधिक नहीं जीता। जो सूर्य को बिना किरणवाला और अग्नि को किरण-सम्पन्न देखता है, वह ग्यारह महीने से अधिक नहीं जीता है। जो स्वप्न में या प्रत्यक्ष ही मल-मूत्र या सोना-चाँदी वमन करे, वह दस महीने से अधिक नहीं जीता है। धूल या कीचड़ में जिसका पदचिन्ह आगे या पीछे से खण्डित मालूम पड़े वह सात महीने से अधिक नहीं जीता है। जिसके सिर पर कौआ, कबूतर, गीध या कोई भी मांसभोजी पक्षी बैठ जाय, वह छः महीने से अधिक नहीं जीता है। जिसके ऊपर दस-बीस कौए मँडराते रहें, जो सहसा धूलिवर्षण से धूसरित हो जाय और जो अपनी छाया को विकृत देखे, वह चार-पाँच महीने से अधिक नहीं जीता है। दक्षिण दिशा में बिना मेघ के ही बिजली देखे और जल में इन्द्रधनुष देखे, तो वह दो-तीन महीनों से ज्यादा नहीं जीता है। जल में या दर्पण में जो अपने को नहीं देखता है या अपने प्रतिबिम्ब को बिना शिर के देखता है, वह एक महीने से अधिक नहीं जीता है। जिसके शरीर से मुर्दे या चर्बी की तरह गन्ध निकले वह पन्द्रह दिनों से अधिक नहीं जीता है। स्नान करते ही जिसके दोनों पैर और हृदय सूख जायँ एवं सिर से धुआँ निकले, वह दश दिनों तक जीता है। प्रकुपित वायु जिसके मर्म स्थान में पीड़ा पहुँचावे और जल को छूने पर भी जिसे तृप्ति नहीं हो, उसकी मृत्यु उपस्थित समझिये। जो स्वप्न में बानर-भालुओं से युक्त रथ पर बैठ कर गाता हुआ दक्षिण दिशा की ओर जाता है, वह भी नहीं जीता है। काले कपड़े को पहन कर अगर श्यामा स्त्री गाती हुई किसी को दक्षिण दिशा की ओर ले जाय, तो वह नहीं जीता है। अगर स्वप्न में देखे कि, हम फटा हुआ काला कपड़ा पहने हैं या हमारा कान दो

टूक हो गया है तो वह नहीं जीता है। जो स्वप्न में अपने को सिर तक दलदल में फँसा हुआ देखता वह शीघ्र ही मर जाता है ॥१-१६॥

भस्म, आग, केश, सूखी नदी और साँप को स्वप्न में देखने वाला मनुष्य दस रात से अधिक नहीं जीता है। काला कलूटा विकराल पुरुष शस्त्रों को तानकर अगर पत्थर से स्वप्न में चोट पहुँचावे, तो तुरन्त मृत्यु हो जाती है। सूर्योदय या संध्याकाल में जिसके आगे गीदड़ हुआँ-हुआँ करता हुआ आवे उसकी आयु बीती हुई समझिये। स्नान करते ही जिसके हृदय में पीड़ा हो जाय और दाँत खटखटाने लगे, उसकी आयु भी बीती हुई कहिये। दिन और रात में भी जो जोर-जोर से साँस ले और दीप निर्वाण की गन्ध को नहीं समझे, उसकी भी मृत्यु उपस्थित समझिये। रात में इन्द्रधनुष को देखने वाला दिन में नक्षत्रमण्डल को देखनेवाला और अपना प्रतिबिम्ब दूसरे की आँखों में देख मनुष्य अधिक दिन नहीं जीता है। जसकी एक आँख से ही सदा आँसू आता रहे, दोनों कान स्थानभ्रष्ट हो जायँ, और नाक टेढ़ी हो जाय, वह भी आयु-क्षीण कहलाता है। जिसकी जीभ खुरखुरी और काली हो जाय, मुँहपर कीचड़ की आभा मालूम पड़े और गण्ड स्थान चिपटे होकर लाल दिखाई पड़ने लगें, उसकी भी मृत्यु उपस्थित समझिये। स्वप्न में जो व्यक्ति खुला केश, हँसता हुआ और गाता हुआ दक्षिण दिशा की ओर जाता है उसके जीवन का भी अन्त समझिये। श्वेत सरसों की तरह जिसे बार-बार पसीना निकले, उसकी भी मृत्यु उपस्थित समझिये। ऊँट या गधे जुते हुए रथ पर जो स्वप्न में दक्षिण दिशा जाता है, वह भी नहीं जीता है। जो कान से शब्द नहीं सुनता है और जिसकी आँखें पथरा जाती हैं, उनकी मृत्यु आसन्न समझिये; क्योंकि ये दोनों अरिष्ट चरम कोटि के हैं। स्वप्न में जो गड्ढे में गिर जाय और निकलने का रास्ता नहीं पावे और उस गड्ढे से निकले ही नहीं, उसके जीवन का भी अन्त समझिये। जिसकी दृष्टि ऊर्द्धवगत, रक्तवर्ण और कँवल रहे, मुँह से बड़ी गर्मी निकले, नाभि गहरी हो जाय और पेशाब बहुत गर्म हो, उसकी भी अवस्था विषम समझिये। दिवा या रात्रिकालीन स्वप्न में अगर कोई आघात करता हो और नींद टूटने पर उसी व्यक्ति को प्रत्यक्ष देख ले, तो स्वप्न में चोट खाया हुआ व्यक्ति नहीं बचे। स्वप्न में जो अग्नि प्रवेश करता है और स्वप्न ही में इस बात को भूल जाता है, उसका भी जीवन शेष समझिये। अगर कोई आदमी श्वेत वस्त्र को स्वप्न में लाल या काला देखता है, तो उसकी मृत्यु हो जाती है।

बुद्धिमान् मनुष्य अरिष्ट की सूचना पाकर और उस काल को उपस्थित समझकर भय-विषाद को छोड़ दे और योगानुष्ठान का उद्योग करे। पूर्व या उत्तर दिशा में जाकर शुद्धभाव से सम, स्थिरतर, जनवर्जित और पवित्र स्थान में उत्तर या पूर्व मुख होकर स्वस्तिकासन लगा कर स्वस्थ भाव से बैठ जाय और आचमन करे, महेश्वर को प्रणाम करे। शरीर, सिर और ग्रीवा को सीधा कर धारणा का अवलम्बन करे, किसी भी ओर न देखे। निर्वात स्थान के दिये की तरह स्थिरता धारण करे। पूर्वोत्तर दिशा के निम्न भाग में योगी योगाराधन करे। काम, वितर्क, प्रीति, सुख-दुःख आदि भावों को मन से हटा कर

Funding by IKS-MoE

सत्त्वगुण का ध्यान करे । प्राण, चक्षु, त्वक्, कर्ण, मन, बुद्धि, वक्षःस्थल और मस्तक में योगी धारणा का अवलम्बन करे । कालधर्म को समझकर और अरिष्टादि समूह का समन्वय करके योगी बारह या एकसौ आठ धारणा को मस्तक में धारण करे । इस प्रकार धारणा के द्वारा वायु-प्रवृत्ति को निरुद्ध करके एकाग्र मन से ओंकार द्वारा सम्पूर्ण देह को पूर्ण कर दे । ऐसा करने से योगी ओंकारमय हो जाता है, उस अविनाशी योगी का नाश नहीं होता, और वह अमर हो जाता है ॥१७-४२॥

श्री वायु महापुराण का अरिष्ट निरूपण नामक
उन्नीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

ओंकार-प्राप्ति के लक्षण का निरूपण

वायु बोले—इसके बाद अब हम ओंकार प्राप्ति के लक्षण कहते हैं । यह ओंकार तीन मात्राओं से युक्त है और इसका व्यञ्जन स्वर-समन्वित है । इसकी पहली मात्रा को वैद्युती, दूसरी को तामसी और तीसरी अक्षरगामिनी मात्रा को निर्गुण जानना चाहिये । शिर में चींटी के समान स्पर्शवाली गान्धार स्वर से उत्पन्न गान्धर्वी मात्रा भी लक्षित होती है । इन मात्राओं से युक्त ओंकार जब मस्तक में लय प्राप्त करता है, तब योगी ओंकारमय हो जाता है और अक्षरत्व लाभ करता है । ओंकार धनुष है, आत्मा बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है । सावधान होकर लक्ष्य-भेद करना चाहिये । इसके लिये बाण की तरह तन्मयता आवश्यक है । ओंकार रूपी एकाक्षर ब्रह्म बुद्धि रूपी गुहा में निहित है वही परम पद है । ओंकार ही तीनों वेद, तीनों लोक और तीनों अग्नि हैं । यह त्रिविक्रम के तीनों पाद ऋक्, यजुः और साम है । ओंकार में चार मात्रायें हैं, यह विचार करके जानना चाहिये । उस ओंकार में जो योगी युक्त होता है, वह ब्रह्म सा रूप्य को प्राप्त करता है । आकार को अक्षर समझना चाहिये, उकार स्वर कहा गया है और मकार प्लुत है । इस प्रकार इसके परमार्थतः तीन मात्राओं को समझना चाहिये । अकार भूलोक, उकार भुवःलोक और व्यंजन सहित मकार स्वर्लोक कहा गया है । ओंकार त्रिलोकमय है । इसका शिरोभाग स्वर्ग है । सम्पूर्ण भाग भुवनमय ब्राह्मपद कहा गया है । मात्रापद रुद्रलोक है और अमात्रा यानी विन्दुस्वरूप शिवपद है । इस प्रकार विशेष प्रकार के ध्यान से उस पद की उपासना करे । इसलिये ध्याननिष्ठ योगी शाश्वत पद की कामना से यत्नपूर्वक उस नित्य, अविनाशी और अमात्र की उपासना करे । इसकी प्रथम मात्रा ह्रस्व है, दूसरी मात्रा दीर्घ और तीसरी मात्रा प्लुत है । इन मात्राओं को यथार्थ और आनुपूर्वी रूप से समझना चाहिये । जहाँ तक सामर्थ्य हो, वहाँ तक इनकी धारणा करनी चाहिये । इन्द्रिय, मन, बुद्धि का जो आत्मा में ध्यान करता हुआ अष्टमात्रा-विशिष्ट प्रणव की धारणा करता है, वह विशेष फल प्राप्त करता है । सुनिये, प्रत्येक मास जो अश्वमेध से सौ वर्षों तक यजन करता है, वह उतना पुण्य प्राप्त नहीं

Funding by IKS-MoE

करता है, जितना कि मात्रा के ज्ञान से प्राप्त होता है। जो आदमी कुश के अग्र भाग से प्रति मास जलबिन्दु पान करते हैं और सौ वर्षों तक ऐसा करते रहते हैं उसके उस कर्म के समान मात्रा के ज्ञान द्वारा फल प्राप्त होता है। इष्टापूर्त यज्ञ का और सत्य वचन का जो फल है, एवं महीने भर जल पीकर रहने का जो फल है, वही फल मात्रा ज्ञान से प्राप्त होता है। स्वामी के लिये युद्ध में मर जाने वाले शूरों को जो फल प्राप्त होता है, वही फल मात्रा ज्ञान से होता है। मात्रा ज्ञान से जो फल प्राप्त होता है, वह उग्र तपस्या अथवा बहुत दक्षिणा वाले यज्ञ से भी नहीं प्राप्त होता है। उसकी जो अर्द्धमात्रा प्लुत के नाम से कही गयी है, वही गृहस्थ योगियों के लिये विशेष रूप से उपादेय है। वही विशेष रूप से ऐश्वर्य-साधक है। योगियों को अणिमादि आठ प्रकार के विशेष ऐश्वर्य की प्राप्ति उसी से होती है; अतएव ब्राह्मण उसी का साधन करे। इस प्रकार उस प्लुत मात्रा से संयुक्त होकर जो शुद्ध, शान्त और जितेन्द्रिय योगी अपने को जानता है, वह द्विज सब जान जाता है। ध्यानपरायण ब्राह्मण योगज्ञान से ही तीनों वेदों और उपनिषदों को जान जाते हैं, वे सब भूतों के लयस्थान में लीन होकर लयस्थान के रूप में परिणत हो जाते हैं। वे योगिजनोचित उत्क्रमण विधान से प्राण त्याग करके अविनाशी पद को प्राप्त करते हैं। और जो दिव्य दृष्टि से ध्यान के द्वारा चतुर्मुखी, विश्वरूपाख्या प्रकृति देवी को देख कर यह समझते हैं कि, यही एक अजा है, जो रक्त-कृष्णवर्ण की है और अपनी ही तरह अनेक प्रजाओं को उत्पन्न करने वाली है। जीव रूप एक अज उस अजा से मिलकर शयन करता है अर्थात् उसका उपभोग करता है; किन्तु दूसरा शिव स्वरूप अज उसे उपभुक्त समझ कर छोड़ देता है। वह प्रकृति स्वरूपा आदि अजा आठ अक्षरों वाली, सोलह पाणि-पादोंवाली, चतुर्मुखी, शिखाविहीन या विशिष्ट शिखावाली, एक शृङ्गवाली और संसार को सृजन करने वाली है। इसके स्वरूप को जानकर पंडित अमृतत्व प्राप्त करते हैं, जो ब्राह्मण प्रणव को जानते हैं, वे पुनः संसार-यात्रा नहीं करते हैं। यह ओंकार रूप अक्षर ब्रह्म है। इसका जो ध्यान करता है और जो इसे समझता है, वही सभी बन्धनों से मुक्त होकर और संसार के आवागमन से रहित होकर निश्चय ही अचल, निर्गुण शिवस्थान को प्राप्त करता है। यह हमने ओंकार प्राप्ति का लक्षण बताया है।

सर्व सङ्कल्पाभिज्ञ लोकेश्वर को नमस्कार है। उसी महात्मा की उपासना करनी चाहिये। उसी ब्रह्म को प्रणाम करना आप लोगों के लिये हितकर है। सर्वव्यापी, निर्गुण, भक्त योगियों के लिये ऐश्वर्य दाता, जलयुक्त परन्तु उससे अलिप्त कमलपत्र की तरह शुद्ध ब्रह्म की उपासना करनी चाहिये। पवित्रों के बीच पवित्र, अतिशय पवित्र, पवित्रता से पूर्ण, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुतमात्राविशिष्ट, शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्ध-वर्जित ओंकार की उपासना करनी चाहिये। अविद्याधिपति योगीश्वर को नमस्कार है। अविद्याधिपति को नमस्कार करने वाले का विश्वरूप नहीं होता यानी उसे अविद्या नहीं सताती है। जिसने द्युलोक को उन्नत, पृथ्वी को दृढ़, स्वर्लोक को स्तम्भित और स्वर्ग को अन्तरिक्ष में रखा है, जो देवों के हृदय स्वरूप हैं वही परम पुरुष विश्वरूप हैं। उन्हें प्राणापान नहीं हैं और न उनकी उपमा है। यही ओंकार नामक

विश्वरूपी रुद्र, यज्ञ, वेद और नमस्कारादि रूप से परिणत हुए हैं। उस योगेश्वराधिपति रुद्र को नमस्कार है। सिद्धिदायक रुद्रोपस्थानका सायं-मध्याह्न और प्रातः काल में पाठ करने से रुद्र सभी कामनाओं को फलीभूत करते हैं। वायु के हल्के धक्के से ही जैसे पका फल गुच्छे से टपक पड़ता है, उसी प्रकार रुद्र को नमस्कार करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं ॥१—३४॥

रुद्र को नमस्कार करने से सब धर्मों का फल प्राप्त होता है, दूसरे देवों को नमस्कार करने से वह फल नहीं मिलता है, इसलिये योगी त्रिकाल में जगद्विस्तारकारी ब्रह्मस्वरूप महेश्वर की उपासना करे। वह प्रभु सब समय ओंकार में निविष्ट है। इसलिये महायशस्वी विष्णु ही नमस्करणीय हैं। नमस्कार मूर्त्ति विष्णु का प्रणव स्तवन करते हैं। यज्ञ प्रणव का, यज्ञ मन का और मन रुद्र का स्तवन करते हैं, इसलिये रुद्रपद ही परम मङ्गलास्पद है। यतियों के लिये यह रहस्य यथाक्रम कहा गया है। जो इसे ध्यानपूर्वक जानता है, वह परमपद प्राप्त करता है ॥३५--३९॥

श्री वायु महापुराण में ओंकार प्राप्ति लक्षण कथन नामक
बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

कल्प-निरूपण

सूतजी बोले—नैमिषारण्य में रहने वाले अग्नितुल्य ऋषियों के बीच सावर्णि नाम के एक वेदज्ञ पण्डित ऋषि थे। बोलने में चतुर होने के कारण सब ऋषियों से आगे बढ़ कर उन्होंने विनयपूर्ण, अत्यन्त कान्तिवाले वायु से सत्रयाज्ञिकों के कल्याण के लिये पूछा।

सावर्णि बोले—प्रभो! आप सर्वदर्शी हैं। आपके प्रसाद से हम वेदतुल्य पौराणिक कथा को अच्छी तरह से सुनना चाहते हैं। भगवान् हिरण्यगर्भ ने अपने ललाट से अत्यन्त तेजस्वी नीललोहित देव को किस प्रकार पुत्र रूप में प्राप्त किया? कमलयोनि ब्रह्मा किस प्रकार उत्पन्न हुए? ब्रह्मनन्दन नीललोहित को रुद्रत्व किस प्रकार प्राप्त हुआ? रुद्र के साथ विष्णु की उत्तम प्रीति किस प्रकार हुई? 'सभी देवता विष्णुमय हैं, सभी गण विष्णुमय हैं, विष्णु के समान कोई दूसरी गति नहीं है' देवगण सदैव ऐसा निःसन्दिग्ध भाव से कहा करते हैं। फिर भी वही विष्णु भवदेव को (रुद्र को) क्यों प्रणाम करते हैं?

सूतजी बोले—इस प्रकार पूछे जाने पर भगवान् वायु ने सावर्णि से कहा—अहो! धन्यवाद है, हे साधु! आपने उत्तम प्रश्न पूछा। ब्रह्मा के पुत्र रूप में भव का जन्मग्रहण, कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति, शंकर का रुद्रत्व, विष्णु और भव दोनों की परस्पर प्रीति और विष्णु क्यों शंकर को नित्य प्रणाम करते हैं?

Funding by IKS-MoE

यह सब हम यथाक्रम से विस्तारपूर्वक कहते हैं, सुनिये । महात्मा द्विजोत्तम ! छठें कल्प के बीत जाने पर मनु के अधिकार काल में सातवाँ पद्म नाम का कल्प था । अभी वाराह कल्प बीत रहा है । यह रहस्य हम विस्तार के साथ कहते हैं । ॥ १—१३ ॥

सावर्णि बोले—कितने काल का कल्प होता है ? कल्प का क्या प्रमाण है ? कृपा कर कहिये ।

वायु बोले—सातों मन्वन्तरों को कल्पसंख्या हम यथाक्रम संक्षेप से कहते हैं सुनिये । दो हजार आठ सौ करोड़ एवं बासठ करोड़ सत्तर नियुत कल्पार्द्ध की वर्षसंख्या कही गई है । इसका पूर्व भाग वर्ष परिमाण कहा गया है । एक सौ अठहत्तर करोड़ दो लाख नब्बे नियुत के मानुष परिमाण से वैवस्वत मन्वन्तर है । कल्पार्द्ध मान का दुगुना परिमाण कल्प का परिमाण है । आने वाले सातों कल्पों का काल परिमाण और संख्या यथाक्रम इसी प्रकार समझना चाहिये । यही ईश्वरानुमोदित है । पाँच सौ आठ नियुत, अस्सी सौ नियुत और चौरासी प्रयुत कालपर्यन्त सप्तर्षि, मनु और इन्द्रादि देवता वर्षकाल प्रमाण से विद्यमान रहते हैं, ऐसा जानना चाहिये । इस मन्वन्तर के अन्त में मनुष्यों का भी अन्त हो जाता है । प्रणव प्रतिपाद्य देवता, साध्य और विश्वदेवता जो नित्य कहे जाते हैं, वे भी कल्पपर्यन्त ही जीते हैं । यह जो कल्प बीत रहा है, वह वाराह कल्प के नाम से प्रसिद्ध है । इसमें स्वायम्भुवादि चौदह मनु आविर्भूत होते हैं ॥ १४—२३ ॥

ऋषिगण बोले—"किस कारण यह वाराहकल्प के नाम के प्रसिद्ध है ? किस कारण से वे देव वाराह कहे गये ? भगवान् वराह कौन हैं ? वे किसके उत्पादक हैं ? उनका क्या स्वरूप है ? वे किस प्रकार उत्पन्न हुये ? हम लोगों को यह सब जानने की इच्छा है ।"

वायु बोले—"वराह जिस प्रकार जिस प्रयोजन के लिए उत्पन्न हुए, कल्प का वराह नाम पड़ने का कारण, कल्प का स्वरूप, विवृत्ति और दोनों कल्पों का अन्तर जिस प्रकार कल्पित हुआ है, उसे हमने जैसे देखा है, और सुना है, वैसे ही कह रहे हैं । सृष्टि के पहले भवकल्प हुआ । इस कल्प में स्वयं ज्ञातव्य आनन्दमय साम्प्रत भगवान् थे । उन्होंने दिव्य सम्भव, आधारभूत ब्रह्म स्थान प्राप्त किया था । दूसरा भुवकल्प, तीसरा तपःकल्प, चौथा भवकल्प, पाँचवाँ रम्भकल्प, छठाँ ऋतुकल्प, सातवाँ क्रतुकल्प, आठवाँ वह्नि कल्प, नवाँ हव्यवाहन कल्प, दशवाँ सावित्र कल्प, ग्यारहवाँ भुवः कल्प, बारहवाँ कुशिक और चौदहवाँ गान्धार कल्प हुआ । इस कल्प में गान्धार स्वर उत्पन्न हुआ था । उसी गान्धार स्वर से नाद और गन्धर्वों की उत्पत्ति हुई है । हे ब्राह्मणो ! पन्द्रहवाँ कल्प ऋषभ हुआ, ऐसा जानिये । इसी कल्प में लोक मनोहर ऋषभ स्वर उत्पन्न हुआ । षड्ज नामक सोलहवाँ कल्प हुआ, जिसमें छः ऋषि प्रसिद्ध थे । शिशिर, वसन्त, निदाघ, वर्षा, शरत् और हेमन्त नामक ये छवों ऋषि ब्रह्मा के मानस पुत्र थे । सोलहवें कल्प में वे पुत्र षड्ज से उत्पन्न हुए । यतः इन छवों के होने से ऐसा ज्ञात हुआ मानों महेश्वर ही सद्यः स्वयं उत्पन्न हो गए । इसलिये समुद्र की तरह गम्भीर ध्वनिवाला षड्ज स्वर उत्पन्न हुआ । सत्रहवाँ कल्प

Funding by IKS-MoE

माजीलीय नाम से ख्यात है इसलिये कि, इस कल्प में ब्रह्म सम्बन्धी मार्जालीय कर्म सृष्ट हुआ था। अठारहवें कल्प का नाम था मध्यम। जिसमें धैवत से भी श्रेष्ठ मध्यम स्वर उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा की सृष्टि में वह मध्यम नाम से ख्यात हुआ। उन्नीसवाँ कल्प वैराजक कहलाता है। जिसमें ब्रह्मा के पुत्र वैराज मनु हुये। उन्हें दधीचि नाम का धर्मात्मा पुत्र हुआ। ये ही अत्यन्त तेजस्वी अधिपति प्रजापति यजन कर रहे थे, कि गायत्री ने उनकी कामना की। जिससे दधीचि को पुत्रस्वरूप स्निग्ध स्वर उत्पन्न हुआ।

बीसवाँ निषाद कल्प कहलाता है। प्रजापति ने उस स्वयम्भू-संजात निषाद को देख कर सृष्टि कर्म से हाथ रोक लिया। निषाद भी तपस्या करने लगा। जितेन्द्रिय निषाद निराहार रहकर देवों के वर्ष से हजार वर्षों तक तप करता रहा। महातेजस्वी लोक-पितामह ब्रह्मा ने तब उस निषाद से, जो कि तपस्या के कारण कृश, दुःखित, भूख प्यास से व्याकुल, शान्त और हाथ ऊपर उठाये तपस्या कर रहा था, कहा कि 'निषीद' (बैठ जाओ)। इसलिये वह निषाद कहलाया और स्वर का नाम भी निषाद ही हुआ। इक्कीसवें कल्प का नाम पञ्चम है। इसमें ब्रह्माको उन्हीं के समान प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान नामक पाँच मानस पुत्र हुए। वे अर्थ सहित स्तुति वचनों से महेश्वर का स्तवन करने लगे। जिस कारण उन पाँचों महात्माओं ने पञ्चम स्वर से गान किया; इसलिये वह कल्प पञ्चम कहलाया और उस स्निग्ध स्वर का नाम पञ्चम पड़ा। बाईसवें कल्प का नाम मेघवाहन जानना चाहिये। इस कल्प में महाबाहु विष्णु ने मेघ के स्वरूप में चर्मवसनधारी महेश्वर को दिव्य सहस्र वर्ष तक धारण किया था। कश्यप के पुत्र विष्णु भाराक्रान्त होकर दीर्घ निःश्वास ले रहे थे कि, उनके मुँह से लोक का नाश करने वाला विकराल काल उत्पन्न हुआ। ब्राह्मणों के द्वारा यह कथा इसी प्रकार कही गई है। तेईसवाँ कल्प चिन्तक है। प्रजापति-तनया चिन्तक के साथ विति नाम की एक पुत्री भी हुई। यतः ब्रह्मा को ध्यान करते समय वह हो गई इसी से उस कल्प को ब्रह्मा ने चिन्तक कहा। चौबीसवाँ कल्प आकूति कहलाता है। इस कल्प में आकूत और आकूति मिथुन उत्पन्न हुए। प्रजापति ने आकूति को सृष्टि करने के लिये कहा; इसलिये उस कल्प का आकूति नाम पड़ा। पचीसवाँ कल्प विज्ञाति कहलाता है। विज्ञाति देवी भी विज्ञात के साथ जुड़वाँ उत्पन्न हुई थी। सृष्टि की इच्छा से ध्यान करते हुए ब्रह्मा को शीघ्र ही सब ज्ञात हो गया, इससे उस कल्प का नाम विज्ञाति पड़ा। छब्बीसवें कल्प का नाम मन कहलाता है। शंकरी देवी ने एक मिथुन उत्पन्न किया। प्रजापति सृष्टि की कामना कर रहे थे, प्रजा की चिन्ता कर रहे थे। उसी प्रजा-संभवन काल में यह कल्प उत्पन्न हुआ। इसी कारण प्रजाविषयक भावना होने से वहकल्प भावनसंभव कहलाया ॥२४-६१॥

सताइसवाँ कल्प भव कहलाता है। इस कल्प में भी पौर्णमासिक देवी ने एक मिथुन उत्पन्न किया। प्रजा की सृष्टि के अभिलाषी परमेष्ठी ब्रह्मा परमात्मा का ध्यान कर रहे थे कि उनका ज्योतिमण्डल अग्नि रूप से भूलोक और द्युलोक में व्याप्त होकर प्रदीप्त हो उठा। हजार वर्ष बीत जाने पर वह ज्योतिमण्डल पूर्ण हुआ अर्थात् एकीभूत हुआ और सूर्यमण्डल के रूप में परिणत हो गया। ब्रह्मा ने पूर्व में अदृश्य उस सूर्यमण्डल को देखा और उस मण्डल से समस्त योग और मन्त्रसमूह उत्पन्न हुए; इसलिये उस कल्प का

नाम दर्श पड़ा। प्राचीन काल में उस समय भगवान सोम ब्रह्मा के मन में पूर्ण रूप से प्रकट हो गये थे, इससे पौर्णमासी भी कहलायी। इसलिये योगियों को चाहिये कि उभय पक्ष के पर्व दिन में यानी दर्श-पौर्णमासी में अपनी भलाई के लिये योगानुष्ठान करें। दर्श (अमावास्या) और पूर्णिमा में जो द्विजाति यजन करते हैं, उनका ब्रह्मलोक से फिर आवागमन नहीं रहता है। जो अनाहिताग्नि द्विज शुद्ध होकर वीर पथ में प्रवृत्त होते हैं और चंचल मन का समाधान कर इस मन्त्र का शनैः शनैः पाठ करते हैं, मन ही मन उच्चारण करते हैं एवं अग्नि में प्रवेश कर जाते हैं, वे रुद्रलोक जाते हैं। अग्नि ही काल रुद्र और सोम हैं–ऐसी श्रुति है। इस कारण जो अग्नि में प्रवेश करता है वह रुद्रलोक से नहीं लौटता है। मन्त्र—"त्वमग्ने रुद्रो असुरो महोदिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे, त्वं पाश गन्धर्व शिषं पूषा विधत्तयासिना।" अठाईसवाँ कल्प बृहत् कहलाता है। सृष्टि की कामना करनेवाले प्रजाभिलाषी ध्यानपरायण ब्रह्मा के अन्तःकरण से बृहत् साम और रथन्तर प्रादुर्भूत हुए। जिस कारण सर्वतोमुख बृहत् समुत्पन्न हुए; इसीलिये उस कल्प को तत्त्वचिन्तकगण बृहत् कहते हैं। सूर्यमण्डल के रथन्तर का परिमाण अठ्ठासी हजार योजन जानना चाहिये। इसलिये सूर्यमण्डल का भेद करना कठिन है परन्तु दृढ़चेता योगी द्विजगण उसका एवं बृहत् साम का भी भेदन कर वहाँ चले जाते हैं। उस रथन्तर में ही अन्यान्य कल्प संघातभाव प्राप्त करते हैं। इस प्रकार हमने विचित्र अध्यात्मतत्त्व का वर्णन किया। इसके अनन्तर कल्पों का शुभ विस्तार कहेंगे। जिह्वे! त्रिलोकाधिपति, परमकारुणिक, परमपुरुष नारायण का सतत स्तवन कर। प्राचीन कर्म के श्रंखला बन्धन से मुक्ति पाने के लिये उस पुराणपुरुष की अपेक्षा और कोई उपाय नहीं हैं। ॥७६–८१॥

श्री वायु महापुराण में कल्प निरूपण नामक
इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२१॥

बाईसवाँ अध्याय

कल्प-संख्या निरूपण

ऋषियों ने कहा—महामुनि! आपने मन्त्रों की कल्पना और कल्पों का अत्यन्त आश्चर्यजनक और रहस्यमय आख्यान सुनाया। तीनों लोगों में आपसे कुछ भी अज्ञात नहीं अतः कृपाकर विस्तारपूर्वक सब कल्प संख्यायों का वर्णन हम लोगों को सुनाइए। ॥१—२॥

वायु बोले—अब मैं कल्प संख्या तथा परमेष्ठी ब्रह्मा के युग और वर्ष के विषय में तुम लोगों से कह रहा हूँ। एक हजार युग ब्रह्मा का वर्ष कहा जाता है। ब्रह्मा के आठ हजार वर्षों का उनका एक युग होता है। एक सहस्र युग प्रजापति का सवन हैं। दो सहस्र सवनों का उनका त्रिवृत्त होता है। ब्रह्मा के स्थितिकाल की यही सारी कथा है। इसके आगे क्रमशः उस काल की संख्या बतला रहा हूँ।

जिन अट्ठाईस कल्पों की नामावली बताई है, पहले उन कल्पों के नाम पड़ने कारण कह रहा हूँ। रथान्तर और साम के बाद कल्पों का नाम और जिस कल्प में जिस मन्त्र की उत्पत्ति हुई उसका वर्णन कर रहा हूँ।

उनतीसवाँ कल्प श्वेतलोहित नाम का है। जिस कल्प में परम ध्यानमग्न ब्रह्मा को श्वेतोष्णीषधारी, श्वेत माला और श्वेत वस्त्र धारण करने वाला, अग्नि के समान एक परम तेजस्वी कुमार उत्पन्न हुआ। उस भीममुख, महारौद्र, घोररूप, श्वेतलोहित, अपनी देहकान्ति से प्रदीप्त, श्वेत वर्चस और महामुख कुमार को देखकर श्रीमान् विश्वमुख ब्रह्मा ने उसको विश्वरूप लोकपालक महेश्वर समझा और उस पुराणपुरुष, योगिवर देवदेवेश की लोकपितामह ब्रह्मा ने वन्दना की। तदनन्तर ब्रह्मा हृदय में उस सद्योजात परमात्मा ईश्वर, महादेव ब्रह्मा का हृदय में ध्यानकर विचार करने लगे। ब्रह्मा के सारे रहस्य को जानकर जगत्पति, देवेश श्वेत ने प्रसन्न हो अट्टहास किया जिससे उनके पार्श्व से श्वेत माला और श्वेत अंगराग से सुशोभित, ब्रह्मतेज से युक्त श्वेत वर्ण के सुनन्द, नन्दन, विश्वनन्द और नन्दन नामक तेजस्वी ऋषि उत्पन्न हुए। वे महात्मा श्वेत देव के शिष्य हुए, ब्रह्मज्ञानी वे ब्रह्म के चारों ओर आसीन थे। उसी समय उस श्वेत ब्रह्म के आगे एक श्वेत वर्ण के श्वेत नामक महातेजस्वी महामुनि उत्पन्न हुए जिनसे महातेजस्वी नर ऋषि उत्पन्न हुए। तदनन्तर उन ऋषियों ने उस सद्योजात महेश्वर की कृपा छाया में आश्रय प्राप्त किया। द्विजो! इसलिये जो प्राणायाम परायण योगी और ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति उस विश्वेश्वर देव की शरण में जाते हैं वे सब निष्पाप, तेजस्वी और शुद्ध हृदय होकर ब्रह्मलोक को भी पार कर उत्तम लोक को प्राप्त करते हैं ॥३–२०॥

वायु बोले—इसके उपरान्त तीसवाँ रक्त नामक कल्प है, जिसमें महातेजस्वी रक्त ने रक्तवर्ण धारण किया। परमेष्ठी ब्रह्मा पुत्रकामना से ध्यान कर रहे थे, उनको महातेजस्वी और प्रतापी एक कुमार उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर और नेत्र रक्त वर्ण के थे जो रक्त माला और वस्त्र पहने हुए था। उस रक्ताम्बरधारी महादेव कुमार को देखकर ब्रह्मा ध्यानमग्न हो गए। ध्यान योग से उन्होंने जाना कि यह रक्तविग्रह कुमार स्वयं विश्वेश्वर है। तब भगवान् ब्रह्मा ने विनम्र भाव से उस कुमार को प्रणाम किया और उस ब्रह्म स्वरूप महादेव का चिन्तन करने लगे। परमेष्ठी ब्रह्मा के इस प्रकार ध्यान करने पर महादेव अत्यन्त प्रसन्न हो गए। उन्होंने प्रेमपूर्वक ब्रह्मा से कहा—

पितामह! जिसलिए तुमने पुत्रकामना से मेरा ध्यान किया है, और सत्तम! तुमने परम भक्ति और ध्यान योग से मेरा दर्शन किया है, इसलिए महातत्त्व! महातपस्वी तुम प्रत्येक कल्प में परम ध्यान के द्वारा लोकपालक, ईश्वर मुझको भली भाँति जानोगे। इस प्रकार कहकर भगवान् शर्व ने अट्टहास किया। तदुपरान्त उस शर्व के चार महात्मा कुमार उत्पन्न हुए जिनका नाम विरज, विबाहु, विशोक और विश्वभावन था। वे चारों शुद्ध बुद्धि, महात्मा, ब्रह्मण्य, वीर, ब्रह्मा के समान और अध्यवसायी थे। सभी रक्ताम्बरधारी, रक्तमाला और रक्त लेप से युक्त थे, सब के अंगों में रक्त विभूति लगी हुई थी, उनके मुख और लोचन भी रक्तवर्ण के ही थे। इसके अनन्तर उन ब्रह्मज्ञानी, अध्यवसायी महात्माओं ने उस वामदेव

सम्बन्धी ज्ञान का अभ्यास किया और उनकी स्तुति की। लोकहित और शिष्यों की हितदृष्टि से अखिल धर्मों का उपदेश कर पुनः स्वयं उसी अव्यय रुद्र महादेव में विलीन हो गए।

द्विजश्रेष्ठ ! जो अन्य व्यक्ति भी वामदेव महादेव का ध्यान करते और अनन्य भाव से उसकी शरण में जाते हैं वे भी शुद्ध, बुद्ध और निष्पाप होकर उस रुद्रलोक को प्राप्त करते हैं जहाँ से पुनः लौटना दुर्लभ और असम्भव है। ॥ २१–३५ ॥

श्री वायु महापुराण का कल्प संख्या निरूपण नामक
बाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२२॥

तेईसवाँ अध्याय

माहेश्वरावतार योग

वायु बोले— इकतीसवाँ कल्प पीतवासा कहलाता है, जिसमें महातेजस्वी ब्रह्मा पीतवर्ण के हो जाते हैं। उस कल्प में पुत्रकामना से ध्यान करने वाले परमेष्ठी ब्रह्मा को महातेजस्वी, पीतवस्त्रधारी एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसके अङ्गों पर पीत चन्दन का लेप लगा हुआ था, जिसकी ग्रीवा पीत माला से सुशोभित थी, जो युवक था, जिसके गले में पीत यज्ञोपवीत और शिर पर पीली पगड़ी शोभित थी, बड़ी बड़ी भुजाओं वाला वह कुमार अत्यन्त तेजस्वी था। ब्रह्मा ने उस ध्यानमग्न, लोकेश्वर, लोकपालक, परमेश्वर, प्रभु को देखकर मन ही मन प्रणाम किया। तदनन्तर ध्यानमग्न ब्रह्मा ने उस महेश्वर के मुख से उत्पन्न एक विचित्र गाय को देखा, जिसके चार पैर, चार मुख, चार हाथ, चार स्तन, चार नेत्र, चार सींगें चार दाँत और चार मुख थे। जो चारों ओर मुख वाली, बत्तीस लोकों से युक्त, ईश्वरी थी। सब देवों से पूजित महादेव उस महेश्वरी महादेवी को देखकर बार बार कहने लगे कि तुम स्मृति, बुद्धि और मति हो, यहाँ आवो, यहाँ आवो। ॥ १–९ ॥

महादेव के आह्वान को सुनकर वह देवी विनम्र होकर हाथ जोड़कर सामने खड़ी हो गई। उसको सामने खड़ा देखकर महादेव ने कहा कि तुम अपनी योग माया से विश्व में व्याप्त होकर सारे संसार को वश में करो। देखो, तुम्हारा नाम भविष्य में रुद्राणी होगा। तुम्हारे द्वारा ब्राह्मणों का हित और परमार्थ सिद्धि होगी।

इतना आदेश देने के अनन्तर उस देवाधिदेव ने पुत्रेच्छु, ध्यानपरायण ब्रह्मा को वह माहेश्वरी गाय दे दी। तत्पश्चात् लोकपूज्य ब्रह्मा ध्यान योग से उस माहेश्वरी को जानकर उसकी शरण में आए, और संयमपूर्वक उस रौद्री गायत्री का ध्यान कर रौद्री, महादेव से हुई, रुद्रलोक नमस्कृत वैदिकी विद्या गायत्री का जपकर पुनः महादेव की शरण में गए। महादेव ने तब ब्रह्मा को दिव्य योग, ऐश्वर, ज्ञान,

Funding by IKS-MoE

सम्पति और वैराग्य प्रदान किया। इसके अनन्तर महादेव ने भीषण अट्टहास किया, जिससे उनके शरीर से तेजस्वी कुमार उत्पन्न हुए; जो कि पीली माला, पीत वस्त्र, पीत अंगराग-धारण किये हुए थे, जिनके शिर पर पीली पगड़ी थी, जिनके मुख और केश भी पीत वर्ण के थे। वे सब तेजस्वी कुमार हजार वर्ष तक निवास करने के बाद रुद्र की देह में प्रवेश कर गये। इतने दिनों तक ये योगधारी, ब्राह्मणों के हितैषी और स्नान करने वाले धर्म और योग से बलवान होकर दीर्घकाल तक यज्ञ करने वाले ऋषियों को योगविषयक उपदेश देते रहे। इसविधान से दूसरे भी जो जितेन्द्रिय और ध्यानासक्त व्यक्ति महेश्वर की शरण में जाते हैं, वे सब भी निष्पाप और रजोरहित होकर ब्रह्मतुल्य तेजस्वी हो जाते हैं और महादेव रुद्र के शरीर में प्रवेश कर फिर कभी जन्म ग्रहण नहीं करते॥ १०–२१ ॥

वायु बोले—ब्रह्म के उस पीतवर्ण कल्प के बीत जाने पर सित नामक दूसरा कल्प हुआ। उस समय दिव्य सहस्र वर्ष तक जगत् एकार्णव रूप में था। ब्रह्मा दुखी होकर सृष्टि करने के लिए चिन्ता करने लगे। पुत्र कामना से चिन्ता करने वाले परमेष्ठी प्रभु ब्रह्मा के ध्यान करते ही उनका वर्ण काला हो गया। महातेजस्वी ब्रह्मा ने तब देखा कि, एक कुमार उत्पन्न हुआ है। जो कुमार कृष्णवर्ण, महावीर्य, अपने तेज से दीप्यमान, काला वस्त्र पहने हुए, काली पगड़ी और कृष्ण यज्ञोपवीतधारी, कृष्ण मौलिशाली एवं काली माला तथा काला लेपन लगाए हुए है। ब्रह्मा ने उस महात्मा देवकुमार को देखकर कृष्णपिङ्गलाभ देवाधिपति विश्वेश्वर को प्रणाम किया। प्राणायामपरायण ब्रह्मा हृदय में महेश्वर का ध्यान कर मन ही मन उस ध्यानयोगी यतीश्वर के शरणापन्न हुए और अघोर इत्यादि मन्त्र से ब्रह्मा ने ब्रह्म का अनुचिन्तन किया। इस प्रकार परमेष्ठी ब्रह्मा ध्यान कर ही रहे थे कि, भगवान् रुद्र ने घोर स्वर से अट्टहास किया। जिससे उनके पार्श्व से कृष्ण वर्ण के महात्मास्वरूप चार कुमार उत्पन्न हो गए। वे काला चन्दन लगाये, काली माला काली पगड़ी और काला वस्त्र पहने हुए थे, और उनका मुँह भी काला था। उन कुमारों ने महान् हुंकार के साथ अट्टहास किया और बारम्बार नमस्कार शब्द का उच्चारण किया। उन महाप्रभुओं ने योगबल से सहस्र वर्ष तक परमेश्वर की उपासना की और उस योगरहस्य को शिष्यों को दे दिया। योगसम्पन्न होकर उन कुमारों ने योग द्वारा मन ही मन शिव का ध्यान करते-करते विश्वेश्वर के निर्मल और निर्गुण स्थान में प्रवेश किया। इसी प्रकार इस योगविधान से जो दूसरे भी द्विजातिगण विधानज्ञ होकर रुद्र का स्मरण करेंगे, वे शाश्वत स्थान में गमन करेंगे।

उस भयानक कृष्णकल्प के बीत जाने पर दूसरा विश्वरूप नामक कल्प हुआ। कल्पान्त कालीन संहार कार्य के समाप्त हो जाने और सृष्टि रचना के पुनः आरम्भ होने पर परमेष्ठी ब्रह्मा पुत्र कामना से ध्यान करने लगे। उसी समय महानाद करने वाली विश्वरूपा सरस्वती प्रादुर्भूत हुई। पितामह ने योगासक्तचित्त से विश्वमाल्य और विश्ववसनधारी, विश्वयज्ञोपवीती, विश्वोष्णीषधारी, विश्वगन्धी, विश्वस्थ, महाभुज, सर्वगामी, सर्वेश्वर ईशान देवका मन ही मन ध्यान करके वन्दना की और कहा—ईशान! महादेव! तुम्हें मेरा नमस्कार है। इस प्रकार ध्यानपरायण पितामह के प्रणाम करने पर भगवान् ईशान

Funding by IKS-MoE

ने कहा—"हम आपसे प्रसन्न हैं, क्या चाहते हैं कहिये ?" तब ब्रह्मा ने प्रणत होकर महेश्वर की स्तुति की और अत्यन्त प्रसन्न चित्त से बोले—"देव ! आपका जो यह विश्वगामी, विश्वेश्वर विश्वरूप है उसे हम जानने की इच्छा करते हैं । यह परमेश्वर कौन है ? यह भगवती कौन है, जो चार पैर, चार मुख, चार सींग, चार मुख, चार दाँत, चार स्तन, चार हाथ, चार आँखवाली और विश्वरूपा कहलाती है ? इसका क्या नाम है ? इसकी आत्मा और रूप कैसे हैं ? इसका पराक्रम और कर्म कैसे हैं ?

महेश्वर बोले—"मन्त्रों का यह रहस्य पावन और पुष्टिवर्द्धन है । आदि सर्ग के इस परम गुह्य तत्त्व को यथार्थ रूप से सुनिये । यह जो कल्प बीत रहा है, वह विश्वरूप कहलाता है । भवादि देवगण इस कल्प के छत्तीसवें मनु कहलाते हैं । विभो ! जब से आपने इस ब्रह्म पद को प्राप्त किया है, तब से यह तैंतीसवाँ कल्प चल रहा है । देवेश महामुनि ! आपके समक्ष हीं जो शत-शत और सहस्र-सहस्र स्वयम्भू बीत चुके हैं, उनकी कथा सुनें । आप पहले आनन्द नाम से प्रसिद्ध थे । आपने बड़ी तपस्या की थी । आप गालव्य गोत्र में उत्पन्न हुए और तपस्या के बल से मेरे पुत्र हुए थे । योग, सांख्य, तपस्या, विद्या, विधि व्यवस्था, क्रिया, ऋतु, सत्य, ब्रह्म, अहिंसा, अविच्छिन्न सन्तति, ध्यान, ध्यानयोग शरीर, शान्ति, विद्या, अविद्या, मति, धृति, शान्ति, स्मृति, मेधा, लज्जा, शुद्धि, सरस्वती, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, लज्जा और शान्ति आदि आपमें प्रतिष्ठित थे । हे ब्रह्मन ! यह जो बत्तीस अक्षरों के नाम वाली और छब्बीस गुणों से विराजमान है इस माहेश्वरी प्रकृति को ही आप अपनी प्रसूति या जननी कहें । यह चतुर्मुखी, जगद्योनि गोरूपिणी प्रकृति देवी भगवती ही आपकी प्रसूति है । तत्त्वदर्शी इसे ही प्रधान वा प्रकृति नाम से कहते हैं । इसका जन्म नहीं हुआ है, यह लोहित-शुक्ल, कृष्णा विश्वसृष्टिकारिणी और सुरूपा है । इसी गोरूपिणी विश्वरूपा गायत्री को जान कर हम अज और बुद्धि-सम्पन्न हुए हैं । यह कह कर महादेव ने उच्च स्वर से अट्टहास किया, जिससे उनकी बगल से दिव्य रूपधारी कतिपय कुमार उत्पन्न हुए । इनमें कोई जटी, कोई मुण्डी, कोई शिखण्डी और कोई अर्द्धमुण्डी थे । वे पराक्रमशाली कुमारगण योगविधान से हजार वर्षों तक महेश्वर की उपासना करते रहे । फिर शिष्ट जनों के लिये नियत योगमय धर्मोपदेश करके वे नियतात्मा कुमारगण रुद्र के शरीर में प्रवेश कर गये ।॥ २२–६१ ॥

वायु बोले—ऐसा सुनकर लोक पितामह ब्रह्मा अत्यन्त विस्मित हो गये । भक्तियुक्त चित्त से महादेव की शरण में आकर उन्होंने कहा—विभो ! यह आपमें श्वेतत्व कैसे आया ?

भगवान बोले—चूँकि, यह श्वेत कल्प है इसलिये हम इस कला के प्रारम्भ से ही श्वेत हो गये हैं । हमारी पगड़ी, माला, कपड़ा, अस्थि, मांस, रोम, त्वक् और रक्त भी श्वेत हो गया है । हम श्वेत नाम से ही विख्यात हुए इसी कारण यह श्वेत कल्प कहलाया । हमारे प्रसाद से इस समय देवाधिप श्वेताङ्ग, श्वेत लोहित एवं ब्रह्म नाम्नी गायत्री श्वेत वर्ण की हो गई है । हे देवेश ! जिस कारण हम भी तुम्हारे साथ गुह्य पद में अवस्थित थे; इसलिये अपनी तपस्या के प्रभाव से हम सद्योजात सनातन पुरुष के रूप में तुम्हारे द्वारा जाने गये । अभिनव हमारी मूर्ति गुह्य ब्रह्म के रूप में कही जाती है ।

Funding by IKS-MoE

इसलिये जो द्विजाति गण हमारे उस गुह्य रूप को जानेंगे, वे ब्रह्म का सामीप्य प्राप्त करेंगे, जहाँ जाने पर फिर जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता। जब हम लोहित नाम से विख्यात थे, तब हमारे वर्ण के अनुसार उस कल्प का भी नाम लोहित पड़ा। गोरूपिणी गायत्री भी उस समय लोहित वर्ण वाली विख्यात हुई। उसका मांस, अस्थि, अक्षि और स्तन लोहित हो गये। उसने स्वयं लोहित वर्ण दूध की भाँति रूप धारण किया। रंग के हेर फेर हो जाने से अर्थात् लाल रंग के हो जाने से और योग में भी वामता आ जाने से हम वामदेव हो गये। किन्तु महासत्त्व! आप हमें नियत चित्त से श्वेत वर्ण ही समझते रहें; इसी से हम वर्णोत्तम कहलाये। इसके बाद हमने महीतल में वामदेव के नाम से ख्याति लाभ की। हे विभो! जो द्विजाति हमारे वामदेवत्व को जानेंगे और इस रुद्राणी गायत्री माता को जानेंगे, वे सम्पूर्ण पापों से मुक्त होकर विरजस्क और ब्रह्मतुल्य तेजस्वी होंगे एवं रुद्रलोक में सदा निवास करेंगे।

जब फिर हमारा शरीर घोर कृष्ण वर्ण का हुआ, तब हमारे परिवर्तित वर्ण के अनुसार वह कल्प कृष्ण कल्प कहलाया। उस समय हम लोकप्रकाशक काल के समान काल कहलाये। ब्रह्मन्! आपने हमें घोर पराक्रमी घोर समझा। इसलिये पृथ्वीतल में जो हमें घोराकार से जानेंगे, उनके निमित्त हम सदैव अघोर, अव्यय और शान्त रूप से विराजमान रहेंगे। इस प्रकार भूतल में जो हमारा विश्वरूप से दर्शन करेंगे, उनके लिए हम सदा शिव और सौम्य होकर वर्तमान रहेंगे। इसलिये यह कल्प विश्वरूप के नाम से प्रसिद्ध हुआ है और इस सावित्री का भी नाम विश्वरूपा हुआ है। हमें सर्वरूप नामक उस समय चार पुत्र उत्पन्न हुए। वे चारों पुत्र धर्म के लोकसम्मत चतुष्पद स्वरूप हैं इसके अनन्तर हमें नाना वर्णत्व और प्रजात्व हुआ अर्थात् बहुविध पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें वर्णानुसार आगे चलकर कोई - सर्वभोगी और कोई पवित्र हुए। मोक्ष, धर्म, अर्थ, काम ये ही चार पुत्र हैं। इन्हीं से वेत्ता और वेद्य भी चार प्रकार के होते हैं। चार भूतग्राम और चतुराश्रम भी धर्म के चारपाद स्वरूप एवं हमारे चार पुत्र हैं। इसलिये यह सचराचर जगत् चतुर्युगावस्था में अवस्थित और चार भागों में विभक्त है। भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जन, तप और सत्य लोक एवं इसके ऊपर भी रुद्रलोक, ये ही आठ लोक हैं, जिनमें कोई-कोई क्षयशील भी हैं। भूर्लोक और स्वर्लोक प्रभृति चार पाद के हैं। उनके मध्य भूर्लोक प्रथम पाद, भुवर्लोक द्वितीय स्थान है, यही योगियों के द्वारा प्राप्य है। जो निर्मम, निरहङ्कार, काम क्रोध-हीन, ध्यान-निष्ठ योगी हैं, वे ही उस लोक का अवलोकन कर सकते हैं। जिस लिये आपने चार पैर वाली सरस्वती का साक्षात्कार किया है, इसी से आपके सब पशु चार पैर वाले होंगे। इसी से उनके स्तन भी चार ही होंगे। ब्रह्मन्! सभी प्राणियों का प्राणस्वरूप मन्त्रमय सोम हमारे मुख से च्युत हुआ है, इसी से जीवधारियों ने उसे पीकर स्तनों में धारण किया है। इसी से वह सोममय और अमृत भी कहलाता है। सोम का वर्ण श्वेत होता और उसको चारपाद होते हैं।

जिस कारण आपने लोकभाविनी महेश्वरी सावित्री को दो पैरों वाली देखा है, उसी प्रकार आपके द्वारा सृष्ट नरगण द्विपद और दो स्तन वाले होंगे। जो सर्ववर्णा, सर्वभूतधारिणी, महासत्त्वशालिनी, परम,

Funding by IKS-MoE

जन्मरहित माहेश्वरी देवी हैं, उनका आपने साक्षात्कार किया है, इसलिये अन्य देवगण विश्वरूप होगें और महातेजस्वी अज भी विश्वरूप धारण करेंगे। इनके मुख में अमोघरेता हुताशन रहेंगे, इसलिये पशु रूपी हुताशन सर्वगत और मेध्य होंगे। जो तपस्वी द्विज हमें सर्वगामी ईश्वर शिव रूप में देखेंगे, वे रज और तमोगुण से मुक्त होकर मानव शरीर को छोड़ने के बाद हमारे समीप आवेंगे, जहाँ से कि वे फिर कभी नहीं लौटेंगे। हे द्विजगण! जब रुद्र ने भगवान् ब्रह्मा से इस प्रकार कहा, तब पितामह ने नम्र होकर फिर कहा।

"देव! देवेश! भगवन्! आप विश्वरूपधारी महेश्वर हैं। महादेव! आपके ये शरीर लोकपूज्य हैं; किन्तु हम जानने की इच्छा करते हैं कि, विश्वरूप! महासत्त्व, महाभुज! कब किस काल में और किस युग में द्विजातिगण आपको देख सकेंगे? महादेव! किस तत्त्वयोग से, किस ध्यान धारणा से द्विजातिगण आपकी मूर्ति का दर्शन कर सकेंगे?"

भगवान् बोले—"तपस्या, योग, दानधर्म के फल, तीर्थाटन, दक्षिणा सहित यज्ञ, वेदों का अध्यापन, धनों का दान आदि से नहीं बल्कि केवल ध्यान के द्वारा ही मनुष्य हमें देख सकते हैं। त्रिभुवनपति नारायण विष्णु ही एक मात्र साधनीय हैं। वे वाराह नाम से विश्रुत होंगे। उन्हें चार बाहु, चार पैर, चार नेत्र और चार मुख होंगे। उस समय वे संवत्सर होकर यज्ञस्वरूप होंगे। वे षडङ्ग, त्रिशीर्ष, त्रिस्थान, और त्रिशरीरवान् होंगे। कृत, त्रेता, द्वापर और कलि ये चारों युग उनके चार पाद होंगे। सकल यज्ञ उनके अङ्ग, चारों वेद चारों भुजाएँ, ऋतु और ऋतु सन्धि उनके मुख, दोनों अयन और दोनों अयनमुख उनकी चारों आँखें, पर्व यानी फाल्गुनी, आषाढ़ी, कृत्तिका उनके तीनों सिर, दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम ये तीनों स्थान उनके मस्तकत्रय एवं उत्पत्ति और प्रलय उनका आश्रम कहलाता है। वही प्रभु नारायण जब काल रूप से वाराह देह में प्रतिष्ठित होकर सबके द्वारा आराधनीय होंगे, तब देवेश! आप भी चतुरानन होंगे। भगवान् नारायण तब ब्रह्मलोक निवासियों के लिये भी नमस्करणीय होंगे। जब संसार एकार्णवी भूत हो जायगा, तब आप उस प्रवाह के बीच पुरुषोत्तम हरि को ध्यानस्थ महामुनि की तरह शयन करते हुए देखेंगे। उस समय हमारी माया से मोहित होकर आपकी चेतना नष्ट हो जायगी। रात होने के कारण आप दोनों ही एक दूसरे को नहीं जान सकेंगे, आपस में स्पर्द्धा करेंगे। उस समय आप दोनों ही एक दूसरे के उदर में चराचर लोक को देखकर अत्यन्त विस्मित हो जायँगे और ध्यान द्वारा अपने को मनुष्य समझने लगेंगे। उस कल्प में आप पद्मनाभि, पद्मजन्मा, पद्माङ्कित आदि नामों से विपुल ख्याति प्राप्ति करेंगे। प्रभु के उस सप्तम वाराह कल्प में विष्णु महातेजस्वी काल होकर संसार का संहार करेंगे। उस समय वैवस्वत मनु आपके पुत्र होंगे। हम उस समय उस चतुर्युग के उपसंहारक कल्प में शिखायुक्त श्वेत नामक महामुनि होंगे। हिमालय के शिखर पर रमणीय छागल नामक पर्वत के ऊपर हमारे श्वेत, श्वेतशिखर, श्वेताश्व और श्वेतलोहित नामक चार शिष्य होंगे। ये चारों ही महात्मा ब्राह्मण वेदपारग और शिवध्यानानुरक्त होंगे। वे चारों ही ब्रह्मभूयिष्ठ ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मगति को देखकर

Funding by IKS-MoE

ब्रह्म के समीप अर्थात् हमारे समीप आयेंगे, जहाँ से कि वे फिर नहीं लौटेंगे। जब द्वितीय द्वापर युग में प्रभु प्रजापति देव-देव सत्य व्यास नाम से अभिहित होंगे, तब हम संसार के कल्याण के लिये सुतार नाम ग्रहण करेंगे। उस कलिकाल में सांसारिकों पर अनुग्रह करने के लिये हमें दुन्दुभि, शतरूप, ऋचीक और केतुमान् नामक चार पुत्र होंगे। वे योग तथा ज्ञान को प्राप्त कर एवं सनातन ब्रह्म को जानकर रुद्रलोक में गमन करेंगे, जहाँ से कि लौटा नहीं जाता है। ॥ १०१—१२२ ॥

तृतीय द्वापर में जब भार्गव नाम से व्यास रहेंगे, तब हम उस युगान्त में दमन नाम से प्रसिद्ध होंगे। उस समय भी हमें विशोक, विकेश, विशाप और शापनाशन नामक चार पुत्र होंगे। वे महातेजस्वी पुत्रगण उसी योगविधान-पद्धित से, जहाँ से नहीं लौटा जाता है, उस रुद्रलोक में गमन करेंगे। चतुर्थ द्वापर में जब व्यास अङ्गिरा कहलावेंगे, तब हमारा सुहोत्री नाम होगा। उस समय भी हमें सुमुख, दुर्मुख, दुर्दम और दुरतिक्रम नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। ये चारों ही तपस्वी, योगी, दृढ़व्रत और द्विजश्रेष्ठ होंगे। वे योग की सूक्ष्म गति को प्राप्त कर निष्पाप और विमल हो जायेंगे और उसी मार्ग से वे भी रुद्रलोक गमन करेंगे। पंचम द्वापर में जब व्यास सविता कहलायेंगे, तब हम कङ्क के नाम से महातपस्वी मुनि कहलायेंगे। सांसारिकों के प्रति अनुग्रह करने के लिये हम उस समय अनेक कर्मों के कर्ता और योगात्मा होंगे। हमें चार पुत्र होंगे। वे विरजस्क, शुद्धयोनि, महाभाग, योगात्मा दृढ़व्रत, निर्मम और निरहंकार होंगे। उनका नाम सनक, सनन्दन, ऋतु और सनत्कुमार होगा। ये भी हमारे पास गमन करेंगे, जहाँ से पुनरावृत्ति दुर्लभ है। फिर छठें द्वापर में जब मृत्यु व्यास होंगे तब हम लोकाक्षि के नाम से प्रसिद्ध होंगे। उस समय भी हमें चार शिष्य होंगे। वे सभी योगात्मा, दृढ़व्रत लोकमान्य, महात्मा ,और निष्पाप होंगे। उनका नाम सुधामा, विरजा, शङ्खपाद् और रव होगा। ये भी उसी मार्ग से जायेंगे इसमें कुछ संशय नहीं है। पूर्व में जो महातेजस्वी विभु शतक्रतु थे, वही सप्तम द्वापर में जब शतक्रतु व्यास होंगे, तब हम उस युगान्तकाल में योगिश्रेष्ठ जैगिषव्य नाम से ख्यात होंगे। उस युग में भी हमें चार पुत्र सारस्वत, सुमेध, वसुवाह और सुवाहन नाम के होंगे। वे महात्मा भी ध्यान-योग का अवलम्बन कर उसी मार्ग से रुद्रलोक गमन करेंगे। आठवें द्वापर में वसिष्ठ व्यास होंगे। उस समय कपिल, आसुरि, पंचशिख और वाग्वलि नामक चार महात्मा मुनि उनके शिष्य होंगे। वे महातेजस्वी और महायोगी ध्यानबल से माहेश्वर योग को पाकर निष्पाप हो जायँगे और हमारे पास आ जायेंगे, जहाँ से कि फिर लौटना नही पड़ता है ॥ १२३——१४२ ॥

नवम परिवर्तन में सारस्वत व्यास होंगे। उस समय हम ऋषभ नाम से विख्यात होंगे। उस समय भी हमें महातेजस्वी पराशर, गार्ग्य, भार्गव और अङ्गिरा नामक चार पुत्र होंगे। वे महात्मा ब्राह्मण वेदज्ञाता होंगे और तपोबलशाली होकर निग्रह-अनुग्रह के भी ज्ञाता होंगे। ये तपस्विगण उसी योगविधान-पद्धति से ध्यान का अवलम्बन करके उसी प्रकार हमारे पास पहुँचेंगे, जिस प्रकार कि और पिछले युगों में हमारे पुत्र हमारे पास आये थे। दसवें द्वापर में त्रिधामा व्यास होंगे। उस समय हम नगोत्तम हिमालय के भृगु नामक उन्नत और रम्य शिखर पर आविर्भूत होंगे। उस काल में भी हमें बलबन्धु, निरामित्र, केतुशृङ्ग

और तपोधन नामक चार पुत्र होंगे, जो व्रत करने में दृढ़, योगासक्त, महात्मा और ध्यानावस्थित होंगे। ये भी निष्पाप होकर रुद्रलोक गमन करेंगे। एकादशवें द्वापर में तिष्ठत् व्यास होंगे। उस समय हम कलि काल में गंगाद्वार में आविर्भूत होंगे। उस समय हमें उग्र नामक महानाद करने वाले अत्यन्त बलशाली लोकविख्यात लम्बोदर, लम्ब, लम्बाक्ष और लम्बकेश नामक चार पुत्र होंगे। ये भी माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक के लिये उद्यत होंगे और उसी मार्ग से उत्तम गति को प्राप्त करेंगे। ॥ १४३—१५३ ॥

बारहवें द्वापर में शततेजा महामुनि व्यास होंगे। ये कवियों में श्रेष्ठ और महासत्त्वशाली होंगे। उस युगान्त में हम अत्रि नाम से विख्यात होंगे और महीतल के हैमक वन में योगसाधना करेंगे। यहाँ भी हमें भस्म लगाये हुए, रुद्रलोकाभिलाषी महायोगी पुत्र होंगे। उनके नाम सर्वज्ञ, समबुद्धि, साध्य और सर्व होंगे। ये भी ध्यानयोग में आसक्त होकर रुद्रलोक गमन करेंगे। क्रम से जब तेरहवाँ द्वापर आवेगा, तब नारायणधर्म व्यास होंगे। तब हम गन्धमादन पर्वत के पवित्र बालखिल्याश्रम में बालि नामक महामुनि होंगे। उस समय हमें सुधामा, काश्यप, वसिष्ठ और विरजा नामक महायोगी, तपस्वी, ऊर्ध्वरेता चार पुत्र होंगे। ये भी उसी योगमार्ग से गमन करेंगे, इसमें संशय नहीं है। चौदहवें द्वापर में जब सुरक्ष व्यास होंगे। तब हम फिर उस युगान्त में अङ्गिरा के वंश में गौतम नामक श्रेष्ठयोगी होंगे। हमारा आश्रम बन तब से गौतमाश्रम के नाम से परिचित होगा। फिर कलि के प्रारम्भ में हमें चार पुत्र उत्पन्न होंगे। अत्रि, उग्रतपा, श्रवण और श्रविष्टक उनके नाम होंगे। ये योगासक्त महात्मा ध्याननिष्ठ होकर पूर्वोक्त रूप से योगमार्ग का अवलम्बन करके रुद्रलोक में निवास करेंगे। क्रम से पन्द्रहवें द्वापर के आने पर जब अरुणि प्रभु व्यास होंगे, तब हम वेदशिरा नाम से विख्यात होंगे। हे द्विजगण! उसी वेदशिरा नाम से मेरा महापराक्रमी शैव अस्त्र और एक वेदशीर्ष नामक पर्वत भी विख्यात होगा। वहीं सरस्वती के तट में नगाधिराज हिमालय के पृष्ठभाग में हम आश्रम बनायेंगे। वहाँ भी हमें कुणि, कुणिबाहु, कुशरीर और कुनेत्रक नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। वे योगी महात्मा, ब्रह्मिष्ठ और ऊर्ध्वरेता होकर उसी मार्ग से रुद्रलोक गमन करेंगे, जिससे पहले के लोग गये हैं। फिर क्रमागत सोलहवें द्वापर में संजय प्रभुव्यास होंगे। तब हम गोकर्ण नाम से विख्यात होंगे। इसलिये उस बन का भी नाम गोकर्ण होगा। वहाँ भी हमें काश्यप, उशना, च्यवन और बृहस्पति नामक महाबलिष्ठ चार पुत्र होंगे। वे भी उसी मार्ग से परम पद प्राप्त करेंगे। जब क्रमपूर्वक सतरहवाँ द्वापर लौटेगा, तब देवकृतञ्जय व्यास होंगे। उस समय हमारा नाम गुहावासी होगा। ऊँचे हिमालय के शिखर पर हमारा महापुण्यजनक सिद्धक्षेत्र प्रतिष्ठित होगा। वहाँ भी हमें उतथ्य, कामदेव, महाकाल और महालय नामक चार पुत्र होंगे। ये ब्रह्मज्ञ, योगवेत्ता, महात्मा, मर्मज्ञ, और निरहङ्कारी होंगे। इनके शत सहस्र संख्यक शिष्य ध्यानसाधना में तत्पर रहेंगे। इस कल्प में सभी ध्यानयोगी होंगे। वे योगासक्त होकर हृदय में महेश्वर को धारण कर महालय पद में वर्तमान रहकर अविनाशी शिव में प्रवेश कर जायँगे। इनके अतिरिक्त और भी जो महात्मा उस युगान्त काल में ध्यानयुक्त मन से विमल और शुद्ध-बुद्धि होकर पवित्र महालय में गमन करेंगे और माहेश्वर पद का दर्शन करेंगे। वे अपने

Funding by IKS-MoE

साथ दस पीढ़ी आगे और दस पीछे इस तरह इक्कीस पीढ़ियों का उद्धार करेंगे। हमारे प्रसाद से वे बिना क्लेश-विपाक के रुद्रलोक गमन करेंगे।

जब अठारहवाँ द्वापर आवेगा, तब ऋतञ्जय मुनि व्यास होंगे। उस समय हमारा नाम शिखण्डी होगा। देव-दानव-पूजित हिमालय शिखर पर महापुण्य जनक सिद्धि क्षेत्र में हमारा निवास होगा। उस समय वह पर्वत शिखण्डी नाम से विख्यात होगा। उस शिखण्डी पर्वत का वन ऋषि-सिद्धों द्वारा सेवित रहेगा। वहाँ भी हमें वाचश्रवा, ऋक्षीक, शावास और दृढव्रत नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। वे योगी, महासत्त्व, वेदपारग, माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक गमन करेंगे ॥ १६९-१८४ ॥

उन्नीसवें द्वापर के आने पर भारद्वाज नामक महामुनि व्यास होंगे और हमारा नाम जटामाली होगा। हिमालय के रम्य जटायु शिखर पर हमारा आश्रम होगा। वहाँ भी हमें हिरण्य, कौशिल्य, काक्षीव और कुथुमि नामक महाबलशाली चार पुत्र होंगे। ये सभी ऐश्वर्यशाली योगी और ऊर्द्ध्वरेता होकर माहेश्वर योग को प्राप्त करेंगे एवं रुद्रलोक गमन करेंगे, इसमें थोड़ा भी सन्देह नहीं है। फिर क्रम से जब बीसवाँ सर्ग लौटेगा, तब महामति वाचःश्रवा व्यास बनेंगे और हमारा नाम अट्टहास होगा। उस समय के मानव भी अट्टहास-प्रिय होंगे। उसी हिमालय के पृष्ठ पर अट्टहास नामक महागिरि है, जो अत्यन्त प्रकाशमान और सिद्ध-चारणों द्वारा सेवित होगा। वहाँ भी हमें अत्यन्त ओजस्वी, महासत्त्व, ध्यानासक्त, युक्तात्मा और नियमित रूप से व्रत करने वाले सुमन्तु, वर्वरि, सुबन्धु और कुशिकन्धर नामक चार विद्वान् पुत्र होंगे। ये भी माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक गमन करेंगे। इक्कीसवें द्वापर के आने पर ऋषिसत्तम वाचस्पति व्यास कहलावेंगे। उस समय हमारा नाम दारुव होगा। इसलिये वह महान् और पवित्र वन देवदारु वन कहलावेगा। वहाँ भी हमें प्लक्ष, दाक्षायणि, केतुमाली और वक नामक अत्यन्त ओजिस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे। ये योगात्मा, महात्मा, यतचित्त और ऊर्द्ध्वरेता होकर योगावलम्बन द्वारा निष्पाप होकर रुद्र को प्राप्त करेंगे। बाईसवें परिवर्तन में जब शुक्लायन व्यास होंगे, तब हम वाराणसी में महामुनि होंगे। हमारा नाम लाङ्गली होगा और इन्द्रादि देवगण हमें उस कलिकाल में हलायुध रूप में अवतीर्ण हुआ देखेंगे। वहाँ हमें सुधर्मिक, तुल्यार्चि, मधुपिङ्गाक्ष और श्वेतकेतु नामक पुत्र उत्पन्न होंगे। वे रजोगुण-रहित, ब्रह्मभूयिष्ठ, ध्यानपरायण होकर माहेश्वर योग को प्राप्त करेंगे और रुद्रलोक में निवास करेंगे। तेईसवें परिवर्तन में जब तृणविन्दु नामक मुनि व्यास होंगे, तब हम श्वेत नामक महाकाय सुधार्मिक मुनि-पुत्र होंगे। उस समय हम एक उत्तम गिरिवर पर समय बितायेंगे; इसलिये उस पर्वत का नाम कालंजर होगा। वहाँ भी हमें ऊसिज, बृहदुक्थ्य, देवल और कवि नाम के चार ओजस्वी पुत्र होंगे। ये सब भी माहेश्वर योग प्राप्त कर रुद्रलोक गमन करेंगे। चौबीसवें द्वापर में ऋक्ष व्यास होंगे। हे ब्रह्मा! उस कलियुगादि में हम योगियों द्वारा सेवित नैमिषारण्य में शूली नामक महायोगी होकर प्रादुर्भूत होंगे। वहाँ भी हमें शालिहोत्र, अग्निवेश्म, युवनाश्व और शरद्वसु नामक चार तपस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे। ये सब भी व्रत करते हुए योगबल

से रुद्रलोक गमन करेंगे। फिर यथाक्रम से जब पचीसवें द्वापर का परिवर्तन होगा, तब वसिष्ठशक्ति नामक व्यास होंगे और हम प्रभु दण्डी मुण्डीश्वर होकर देवपूजित कोटिवर्ष नगर में प्रादुर्भूत होंगे। उस समय हमें छगल, कुम्भकर्षाश्य, कुम्भ और प्रवाहुक नामक क्रमागत चार पुत्र होंगे। ये महात्मा, योगात्मा और ऊर्द्ध्वरेता माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक गमन करेंगे। छब्बीसवें द्वापर के आने पर जब पराशर व्यास होंगे, हब हम सहिष्णु के नाम से विख्यात होंगे। उस कलियुग के आदि में हमारा पवित्र रुद्रवन में निवास होगा। वहाँ भी हमें धर्मनिष्ठ उलूक, वैद्युत, शर्वक और आश्वलायन नामक पुत्र होंगे, जो माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक को जायेंगे। क्रम से जब सत्ताइसवें द्वापर का परिवर्तन होगा, तब तपोधन जातुकर्ण्य व्यास होंगे। हम भी तब द्विजोत्तम सोमशर्मा होंगे। प्रभास तीर्थ में आश्रय ग्रहण करेंगे और योगात्मा होकर संसार में प्रसिद्ध होंगे। वहाँ भी हमें अक्षपाद, कणाद, उलूक और वत्स नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। वे योगात्मा, महात्मा, विमल और शुद्ध बुद्धि होंगे। वे सब भी माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक को जायेंगे। क्रम से जब अठाईसवें द्वापर का परिवर्तन होगा और लोकपितामाह पराशरसुत श्रीमान् विष्णु द्वैपायन व्यास होंगे, तब यदुश्रेष्ठ पुरुषोत्तम कृष्ण छठें अंश से वासुदेव के रूप में वसुदेव से प्रादुर्भूत होंगे। उस समय हम योगात्मा होकर योगमाया द्वारा लोगों को विस्मित करने के लिये ब्रह्मचारी देह में प्रादुर्भूत होंगे। मृत अनाथ लोगों को श्मशान में निक्षिप्त होते देखकर ब्राह्मणों के हित के लिये हम योगमाया-बल से आप एवं विष्णु के साथ दिव्य और पवित्र मेरुगुहा में प्रविष्ट होंगे। हे ब्रह्मा! उस समय हमारा नाम नकुली होगा। जितने दिनों तक पृथ्वी रहेगी, उतने दिन तक हमारे द्वारा अधिष्ठित स्थान कायारोहण नाम से सिद्धि क्षेत्र होकर विख्यात होगा। वहाँ भी हमें कुशिक, गार्ग्य, मित्रक और रुष्ट नामक चार तपस्वी पुत्र होंगे। ये योगात्मा, महात्मा, ब्राह्मण और वेदपारग होंगे। ये ऊर्द्ध्वरेता माहेश्वर योग को प्राप्त कर रुद्रलोक जायँगे, जहाँ से कि पुनरावर्तन नहीं होता है। यह हमने मनु से लेकर कृष्ण पर्यन्त क्रम से अठाईसों योग के अवतारों का लक्षण कहा। जिस कल्प में कृष्ण द्वैपायन होंगे, उसमें धर्मलक्षण के अनुसार स्मृतियों का विभाग होगा ॥ २११—२२६ ॥

श्री वायु महापुराण का माहेश्वरावतार योग नामक
तेईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २३ ॥

चौबीसवाँ अध्याय

शार्वस्तव

वायु बोले—"मुनियों ने कहा है कि, भारतवर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग होते हैं। इन हजार युगों का ब्रह्मा का एक दिन होता है। इस दिनावसान में यामादि सप्तगण और रोमवाले चौदह गण अनुचरों के साथ जनलोक में सशरीर आश्रय ग्रहण करते हैं। इस प्रकार फिर

Funding by IKS-MoE

चौयुगी के नाश होने पर वे देवता पहले जन और तपो लोक को प्रस्थान करते हैं। मन्वन्तरों के बीत जाने पर बलशाली देवगण भी ऊर्द्ध्वगामी होते हैं और वे ऊपर गये हुए कल्पवासियों का सामीप्य ग्रहण करते हैं। फिर जब प्रलय उपस्थित होता है, तब वे चौदहों देवगण अन्य देवों के साथ महर्लोक का त्याग करके जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं। उस समय स्थावरान्त अवशिष्ट भूतादि नष्ट हो जाते हैं, महान् भुवादि लोक शून्य हो जाते हैं और कल्पवासियों के साथ देवगण ऊपर चले जाते हैं। दाह और वृष्टि से जब युगक्षय हो जाता है, तब ब्रह्मा सब का संहार करके देव-दानव-ऋषियों को फिर से संस्थापित करते हैं। यह जो सप्तम कल्प बीत गया है, उसे हमने आप लोगों को बताया है। इस कल्पावशेष में सातों सागर मिलकर एक हो जाते हैं। घोर अन्धकार छा जाता है। इस एक समुद्र में कहीं भी विभाग नहीं रहता है। उस एकार्णव में शङ्ख-चक्र-गदा धारण करनेवाले, मेघतुल्य, कमलनयन, किरीटधारी, श्रीपति, नारायण के मुख से उत्पन्न, अष्टम पुरुषोत्तम, अष्टबाहु, विशालवक्ष, लोकसमूह के उत्पत्तिस्थान योगात्मा हरि माया द्वारा किसी अचिन्त्य योग को ग्रहण करके महान् नागराज के सहस्र फणों से युक्त अत्युन्नत अनुपम कान्ति वाले और सुवर्ण की तरह चमकीले शरीर रूपी पर्यङ्क को बिछा कर सोते हैं। आत्माराम प्रभविष्णु विष्णु ने सोते हुए ही कौतुकवश नाभिदेश से एक कमल को उत्पन्न किया। उस कमल का विस्तार सौ योजन का था और वह तरुण सूर्य की तरह कान्तिमान् था। वह वज्र की तरह दण्डवाला अत्युन्नत कमल प्रभविष्णु की लीला से उत्पन्न हुआ था। उस कमल से विष्णु क्रीड़ा कर रहे थे कि उनके समीप स्वर्णमय ब्रह्माण्ड से उत्पन्न अतएव स्वर्णवर्ण, अतीन्द्रिय, विशालाक्ष, चतुर्मुखी ब्रह्मा इच्छानुसार उन्हें ढूँढ़ते हुए वहाँ आ गये। श्रीसम्पन्न, प्रभावान्, सुगन्धित नवीन पद्म से विष्णु को खेलते हुए देखकर ब्रह्मा उनके और समीप पहुँच गये। वहाँ जाने पर ब्रह्मा विस्मित हो गये। वे गम्भीर स्वर में बोले—"आप कौन हैं जो इस जल के बीच सो रहे हैं?"

ब्रह्मा के उस शुभ वचन को सुनकर ब्रह्मज्ञ अच्युत विस्मय से बड़ी-बड़ी आँखें नचा कर पलंग पर से उठ बैठे। उन्होंने उत्तर दिया—"जो कार्य, कारण, अन्तरिक्ष, भूमि, स्वर्ग आदि हैं, उनका प्रभु मैं हूँ। मैं ही परम पद हूँ।" इस तरह कह कर भगवान् विष्णु ने फिर कहा—"हे भगवन्! आप कौन हैं? कहाँ से आप हमारे समीप आये हैं? फिर कहाँ जायँगे? आपका आश्रम कहाँ है? विश्वमूर्ति धारण करनेवाले आप कौन हैं? हम आपका कौन सा कार्य करें?" वैकुण्ठबिहारी विष्णु के इस प्रकार कहने के बाद पितामह ने कहा।

"जिस तरह आप हैं उसी तरह हम भी आदिकर्ता प्रजापति हैं। मेरा नाम नारायण है और मुझमें ही सब प्रतिष्ठित है"। लोककर्ता ब्रह्मा से इस प्रकार सुनकर विश्वसम्भव वैकुण्ठविहारी भगवन् अत्यन्त विस्मित हो गये और उनसे आज्ञा लेकर महायोगी विष्णु ब्रह्मा के मुख में पैठ गये। महायशस्वी और तेजस्वी विष्णु ने वहाँ प्रवेश करके देखा कि सागर पर्वतों के साथ आठों द्वीप और ब्रह्मा से लेकर स्तम्बपर्यन्त चतुराश्रम में विभक्त सातों सनातन लोक यहाँ विद्यमान हैं। यह देखकर वे

Funding by IKS-MoE

आप ही आप बोलने लगे--अहो ! इनकी तपस्या का प्रभाव अद्भुत है !

विष्णु वहाँ नाना प्रकार के आश्रमों और लोकों में घूमने लगे; किन्तु हजार वर्ष के बीत जाने पर भी उन्होंने अन्त नहीं देखा। तब अजातशत्रु गरुड़ध्वज भगवान् ब्रह्मा के मुँह से निकल कर बोले—"हे भगवन् ! हे निष्पाप ! आपके उदर का आदि अन्त, मध्य, नहीं, काल, दिशा और अन्त का भी कुछ पता नहीं चलता। ऐसा कह कर भगवान् हरि ने पितामह से फिर कहा—हे द्विजोत्तम ! आप भी इसी प्रकार हमारे शाश्वत उदर में प्रवेश कर अनुपम लोकों को देखें। पितामह ने जब मन को प्रसन्न करनेवाली ऐसी वाणी को सुना, तो वे श्रीपति विष्णु का अभिनन्दन कर उनके उदर में पैठ गये। अत्यन्त पराक्रमी गर्भस्थ ब्रह्मा ने घूम-फिर कर उन्हीं लोकों को देखा, किन्तु विष्णु देवता के उदर का अन्त नहीं पा सके। इधर विष्णु ने जब उदर के भीतर पितामह के आगमन को समझा, तब उन्होंने सब द्वारों को बन्द कर उस महाजल राशि में सुखपूर्वक सो जाने की इच्छा की। ब्रह्मा ने जब सब द्वारों को बन्द देखा, तब उन्होंने सूक्ष्म रूप धारण किया और नाभिदेश में द्वार पाकर कमलनाल के सहारे निकल कर अपने रूप का उद्धार कर लिया। उस समय चतुरानन ब्रह्मा पद्मगर्भ के समान द्युतिमान् होकर कमल के बीच जा बैठे। इसी प्रकार उन दोनों का आपस में कौतुक-व्यापार उस जलार्णव में चलने लगा।

सूतजी बोले—इसी समय जहाँ नाग-भोगपति हरि स्थित थे, वहाँ अपरिमेयात्मा भूतपति सुवर्ण चीराम्बरधारी शूलपाणि महादेव आये। वे बड़ी शीघ्रता और जोर-जोर से पैर पटक रहे थे, जिससे खौलते हुए और अत्यन्त शीतल बड़-बड़े जलविन्दु आकाश की तरफ उड़ने लगे तथा वायु भी जोर से बहने लगी। यह देखकर ब्रह्मा को बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने विष्णु से कहा – जल-विन्दु स्थूल और उष्ण हो गये हैं, जिससे कमल काँप रहा है। हमारे मन में सन्देह हो रहा है कि, यह आप क्या करना चाह रहे हैं।" पितामह के मुख से निकली इस तरह की वाणी सुनकर असुरविनाशी और अनुपम कार्यकर्ता भगवान् विष्णु ने कहा—"क्या, मेरी नाभि में दूसरे जीव ने आकर आश्रय ग्रहण किया है ? ब्रह्मा ! मैंने आपके प्रति अनुचित व्यवहार किया है फिर भी आप हमारे प्रति सुन्दर वचन कह रहे हैं। इस तरह मन में ध्यान कर उन्होंने फिर कहा—क्या आपको इस कमल के सम्बन्ध में कुछ सन्देह हो गया है ? पुरुषश्रेष्ठ ! मैंने क्या किया है, जो आप इस तरह प्रिय और उत्तम वचन मुझसे कह रहे हैं, यह आप कहें। लोकयात्रा के तत्त्वगामी देवेश विष्णु के कहने पर कमलनिवासी वेदनिधि प्रभु ब्रह्मा ने उत्तर दिया--हे प्रभु ! इसके पहले मैंने ही आपकी इच्छा से आपके उदर में प्रवेश किया था और आपने जिस प्रकार हमारे उदर में सब लोकों को देखा था, उसी प्रकार मैंने भी आपके उदर में सम्पूर्ण लोकों को देखा। हे निष्पाप ! हजार वर्ष के बाद जब हम बाहर आने लगे, तब आपने मात्सर्य से शीघ्र सब इन्द्रिय-द्वारों को बन्द कर दिया था। आप हमें वशीभूत करना चाहते थे। हे महाभाग ! तब अपने मन में सोचा और नाभि में प्रवेश कर कमलनाल द्वारा बाहर निकल आया। हे विष्णु ! इससे आपके मन को जरा भी चोट न पहुँचे। कार्यों की परस्पर इसी प्रकार की स्वाभाविक गति होती है। ॥ १—४७ ॥

Funding by IKS-MoE

विष्णु बोले——हे प्रभु ! हमने आपके-सम्बन्ध में जो कार्य किया है और हमारे द्वारा आपके प्रति जो अनुचित व्यवहार हुआ है, वह सिर्फ कौतुक वश ही । मैंने क्रीड़ापूर्वक आपको बाँधना चाहा था और इच्छा वश सब द्वारों को तुरन्त ही बन्द कर दिया था । आप इसे मन में न लावें । वास्तव में आप हमारे मान्य और पूज्य हैं। हमने आपके प्रति जो कुछ किया है, उसे आप क्षमा कर दें । हे प्रभु ! मेरा अनुरोध है कि, आप कमल से उतर जायँ क्योंकि आप भारभूत तेजस्वी पुरुष हैं । आपका भार मैं वहन नहीं कर सकता ।

ब्रह्मा ने कहा——विष्णु ! वर मांगिए । मैं इस कमल से उतर रहा हूँ ।

विष्णु बोले——शत्रुसूदन ! आप मेरे पुत्र हों यही मेरी इच्छा है, इसमें आपकी भी कीर्ति बढ़ेगी और आप सुखी होंगे । आप सत्यधन हैं, महायोगी हैं । पूज्य हैं; प्रणव रूप हैं । सर्वेश ! आज से श्वेत पगड़ी आपके शिर को सुशोभित करेगी, और आज से आप पद्मयोनि नाम से प्रसिद्ध होंगे । ब्रह्मन् ! प्रभु ! सब लोक के अधिपति ! आप मेरे पुत्र बनें ।

किरीटी विष्णु के वर को ब्रह्मा ने स्वीकार कर लिया । प्रसन्न हो उन्होंने हृदय का मात्सर्य भी छोड़ दिया और कहा 'ऐसा ही होगा' ।

इसके अनन्तर प्रातःकालीन सूर्य के समान तेजस्वी, विशाल मुख वाले किसी अद्भुत जीव को अपनी ओर समीप आते देखकर उन्होंने नारायण से पूछा——

विष्णो ! यह महामुख, बड़े-बड़े दाँतों वाला पुरुष कौन है जिसको मैं पहचान नहीं रहा हूँ, जिसके शिर के केश उधर-इधर बिखरे हुए है, जो दशभुज, त्रिशूलधारी, चारों ओर मुख और आँख वाला, साक्षात् लोकप्रभु, विकृत, मूंज की बनी मेखला पहने हुए है, जिनका लिंग ऊपर उठा हुआ है और जो भयंकर गर्जना कर रहे हैं । भगवन् ! ये तेजोराशि कौन हैं जो अपने तेज से सब दिशाओं को और अकाश को व्याप्त करते हुए उधर ही आ रहे हैं ।

ब्रह्मा की इन बातों को सुनकर भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा से कहा——'जिनके पद प्रहार से समुद्र में बड़े वेग से चंचल, उत्ताल तरंगें उठ रही हैं, जिसकी छटा से पद्मसंभव ब्रह्मा भी आवृत से हो गए हैं, और जिसके श्वास से आपके सहित यह मेरी नाभि से निकला हुआ कमल वेग से कंपित हो रहा है, वे भगवान् ईश हैं जो अनादि, लोकनाशक और विभु हैं । चलिये, आप और मैं, स्तुति से इस वृषभध्वज का समीप चलकर अभिनन्दन करें ।

यह सुनकर ब्रह्मा क्रुद्ध हो गए, और कमलनयन केशव से बोले——'आप लोककर्ता अपने को और लोकपालक सनातन प्रभु मुझको (ब्रह्मा को) निश्चय ही नहीं जानते हैं । यह शंकर कौन है जो हम दोनों से बढ़कर है ?

ब्रह्मा की क्रोध से भरी बातों को सुनकर विष्णु ने कहा——

Funding by IKS-MoE

'कल्याण ! महात्मा के प्रति ऐसी अपमानजनक बातें न कहें । ये माया योगेश्वर, धर्मरूप, बरदाता और दुर्जेय हैं, ये इस जगत् के कारण, अव्यय, पुराण पुरुष हैं, जीवों के प्राण और अपने प्रकाश से प्रकाशित होनेवाले यही हैं । स्वयं शंकर ही बालकों की भाँति जगत से खेला करते हैं । इस लोक की सृष्टि करने वाले शिव के प्रधान, अव्यय, ज्योति, अव्यक्त, तम और प्रकृति आदि नित्य नाम हैं । दुख से पीड़ित योगी इसी शिव को 'वह कहाँ है' कह कर ढूंढ़ते रहते हैं । ये बीजी हैं, आप बीज हैं और मैं सनातन योनि हूँ ।

विश्वात्मा ब्रह्मा इन बातों को सुनकर विष्णु से बोले—आप योनि हैं, मैं बीज हूँ और महेश्वर बीजी (बीज बोने वाले) हैं, यह कैसे ? आप मेरे इस सूक्ष्म, अव्यक्त सन्देह को अवश्य दूर करें ।

लोकशासक ब्रह्मा ने लोकसृष्टि सम्बन्धी बातों को जान कर भी इस प्रकार का सन्देह युक्त प्रश्न पूछा जिसको सुनकर भगवान् हरि ने उत्तर दिया कि, 'इस महेश्वर से बढ़कर रहस्यमय दूसरा कोई भूत नहीं हैं । महान् से महान् और अध्यात्मवादियों के ये परम प्राप्य पद हैं । ये दो रूपों से आत्मा में प्रविष्ट होकर स्थित हैं, ये एक रूप में निष्कल, सूक्ष्म, अव्यक्त और दूसरे रूप में सकल और महेश्वर हैं । इस मायाविधिज्ञ, अविज्ञेयगति का पूर्वकाल में एक लिंग आदि सर्ग के लिए ब्रह्मा रूपी बीज के सहित प्रकट हुआ । कालक्रम से मुझ सनातन योनि में वह बीज प्रविष्ट हुआ । उस योनि में वह बीज विशाल सुवर्णमय अण्ड के रूप में परिणत हो गया । वह अण्ड एक हजार वर्ष तक जल पर स्थित रहा । हजारवें वर्ष :के अन्त में वायु के द्वारा वह दो भागों में विभक्त हो गया । उसके एक टुकड़े से स्वर्ग और दूसरे से पृथ्वी उत्पन्न हुई । उस अण्ड कपाल का जो विशाल, ऊँचा उल्व (आवरण) था, उससे कनकाचल बना । तत्पश्चात् उसमें से देवाधिदेव, प्रबुद्धात्मा, प्रभु हिरण्यगर्भ और चतुर्भुज भगवान् विष्णु प्रगट हुए । तारा, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्रमा से शून्य लोक को देखकर 'यह क्या है' ऐसा आप सोचने लगे । उसी समय आपको कतिपय कुमार उत्पन्न हुए । अतीत कल्प में पहले जो आपके प्रिय पुत्र उत्पन्न हुए थे वे ही पुनः सहस्र वर्ष के अन्त में आपके पुत्र हुए, जो अग्नि के समान तेजस्वी और जिनके नेत्र कमल के समान विशाल थे । उनमें श्रीमान् सनत कुमार और ऋतु ऊर्द्ध्वरेता थे । सनातन, सनक और सनन्दन भी उसी समय उत्पन्न हुए जो कि अपनी मेधा के प्रभाव से सूक्ष्मदर्शी हो गए । उत्पन्न होते ही उन कुमारों ने कहा हम कोई भी कार्य नहीं करेंगे 'हम तीनों प्रकार के ताप से पृथक् रह कर आत्मज्ञ बनेंगे क्योंकि इस बुढ़ापा और शोक ग्रस्त जीवन में सुख बहुत कम और क्लेश ही अधिक है, साथ ही जीवन मरण और पुनर्जन्म का गोरखधन्धा भी लगा है । जीवन में स्वर्ग-सुख स्वप्न है केवल नरक और दुख का ही भोग करना है । इस प्रकार उन कुमारों को समस्त आगम और अवश्यम्भावी भविष्य का ज्ञान था । ऋभु और सनत्कुमार को आपके वश में देखकर सनक आदि आपके तेजस्वी पुत्र परम ज्ञान के कारण सृष्टि कर्म से विमुख हो गए । उस समय इस प्रकार अपने पुत्रों को निवृत्ति मार्ग की ओर उन्मुख होते देखकर आप शंकर की माया के प्रभाव से मोहित हो गए । अनघ

इसी प्रकार प्रत्येक कल्प में आपकी चेतना शक्ति लुप्त हो जाती है। कल्प के बीत जाने पर सब पार्थिव पदार्थ सूक्ष्म रूप में स्थित रहते हैं। यही इस संसार की ईश्वरीय माया कही जाती है। यह मेरु पर्वत ही देवलोक कहा जाता है। यह सब कुछ आपका ही माहात्म्य है। अब आप स्वयं अपनी महत्ता को पहचाने, ईश्वर की स्थिति, कमलनयन मुझको, (विष्णु को) महादेव, महायोग, प्राणियों के वरदाता प्रभु, प्रणवात्मा महादेव को भली भाँति जानकर इस जगद्गुरु का नमस्कार कीजिये। नहीं तो क्रुद्ध होकर ये महादेव एक ही साँस में हम दोनों को जला देंगे। महाबल! इस रहस्य को जान कर अब आप उठिए, मैं आपको आगे करके अग्नि के समान तेजस्वी शंकर की स्तुति करूँगा।

सूत बोले—इस प्रकार ब्रह्मा को आगे कर गरुड़ध्वज विष्णु ने अतीत, भविष्य और वर्तमान के नामों तथा विविध वैदिक ऋचाओं द्वारा इस स्तोत्र को कहा—

“आप भगवान् सुव्रत और अनन्त तेजवाले हैं आपको नमस्कार है। आप क्षेत्राधिपति बीजी और शूलधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप लिङ्गरहित, ऊर्द्ध्वलिङ्ग, और बैकुण्ठरेता हैं, आपको नमस्कार है। आप ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, अपूर्व और प्रथम हैं आपको नमस्कार है। आप हव्य, पूज्य और सद्योजात हैं, आपको नमस्कार है। आप गह्वर (शङ्कर), धनेश और स्वर्ण चीराम्बरधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप हम भूतों के प्रभव और वेदकर्मा के समान शुभ द्रव्यों के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप ग्रहों और ताराओं के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप योग के प्रभु, सांख्य के प्रभु एवं ध्रुव और निशीथ आदि ऋषियों के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप विधुत्, वज्र, मेघ और गर्जन के जनक हैं, आपको नमस्कार है। आप समुद्र और द्वीपों के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप पर्वत और वर्षा के प्रभव हैं, आपको नमस्कार है। आप नद और नदी के उत्पत्तिस्थान हैं, आपको नमस्कार है। आप औषधि और वृक्षों के उत्पादक हैं, आपको नमस्कार है। आप रस और सम्पूर्ण रत्नों के उत्पादक हैं, आपको नमस्कार है! आप धर्माध्यक्ष धर्म और स्थिति के प्रभु हैं, आपको नमस्कार है। आप क्षण, कला, निमेष, काष्ठा, अहोरात्र, अर्द्धमास और मास के प्रभव हैं, आपको नमस्कार है। आप ऋतु और परा-परार्द्ध आदि संख्या के सृष्टिकर्ता हैं, आपको नमस्कार है, आप पुराण, युग और चतुर्विधि सर्ग के जनक हैं, आप अनन्तचक्षु हैं, आपको नमस्कार है। आप कल्पादि से संबद्ध घटनाओं के कारण हैं, आप विश्व और ब्रह्मादि के भी जनक हैं, आपको नमस्कार है। आप विद्या के आदि कारण और विद्या के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप व्रतों और मन्त्रों के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप पितृपति और पशुपति हैं, आपको नमस्कार है। आप वाग्वृष और पुराण वृषभ हैं, आपको नमस्कार है। आप सुचारु सुन्दर केशवाले, ऊर्द्ध्वचक्षु, ऊर्द्ध्व शिखावाले, पशुपति और वृषभध्वज हैं, आपको नमस्कार है। आप प्रजापतियों के पति, सिद्धों के पति, दैत्य-दानव और राक्षसों के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप गन्धर्वपति, यक्षपति एवं गरुड़, सर्प और पक्षियों के पति हैं, आपको नमस्कार है। आप गोकर्ण, गोष्ठ, शङ्कुकर्ण वराह, अप्रमेय और रक्षोधिपति हैं, आपको नमस्कार

Funding by IKS-MoE

है । आप अप्सराओं के पति, गणों के पति तथा जल और तेज के पति हैं, आपको नमस्कार है । आप लक्ष्मीपति, शोभा सम्पन्न और लज्जावान् हैं, आपको नमस्कार है । आप बलाबल समूह, अक्षोभ्य-क्षोभण, दीर्घशृङ्गैकशृङ्ग, वृषभ और ककुद (वृषभ-स्कन्ध) वाले हैं, आपको नमस्कार है । आप स्थिर रहने वाले, वपुधारी और अति प्रभाशाली हैं, आपको नमस्कार है । आप भूत, भविष्यत् और वर्तमान हैं, आप तेजस्वी, शूर, वीर और अनतिक्रमणीय हैं, आपको नमस्कार है । आप वरद, (श्रेष्ठ) वरेण्य और सर्वगत हैं, आपको नमस्कार है । आप भूत, भव्य, भव और महान् हैं, आपको नमस्कार है । आप सर्व, महान् , अज और सर्वगत हैं, आपको नमस्कार है । आप जन, तपः और वरद हैं, आपको नमस्कार है । आप वन्दनीय, मोक्ष जन और नरक हैं, आपको नमस्कार है । आप भव, भजमान, दृष्ट, याजक, आयुदीर्ण, (स्तुत) दीप्त, तत्त्व, निर्गुण, पाशहस्त, स्वाभरण, हुत, अपहुत, प्रहुत, प्राशित, इष्ट, मूर्त, अग्निष्टोम यज्ञ के ऋत्विज, ऋत, सत्य, भूताधिपति, सदस्य दक्षिणावभृथ, लोकों की अहिंसा और पशुओं के लिये मन्त्रौषधि हैं, आपको नमस्कार है । आप तुष्टि के दाता, त्र्यम्बक, सुगन्धि, इन्द्रियपति परिहार (?) और मालाधारी हैं, आपको नमस्कार है । आप विश्व, विश्वरूप, विश्वतोक्षिमुख, सर्वत्र पाणि-पादवाले, रुद्र, अनुमेय, हव्य, कव्य, हव्य-कव्य, सिद्ध, मेध्य, चेष्टा, अव्यय, सुवीर, सुघोर, अक्षोभ्य क्षोभण, सुमेधा, दीप्त, भास्कर, सुप्रज, सुपर्ण और तपनीय वस्तु तुल्य हैं, आपको नमस्कार है । आप विरूपाक्ष, त्र्यक्ष, पिङ्गल, ओजस्वी, दृष्टिनाशक, और शुभदर्शन, वाले हैं, आपको नमस्कार है । आप धूम्र, श्वेत, कृष्ण, लोहित, पिशित, पीत और निषङ्गी हैं, आपको नमस्कार है । आप सविशेष, निर्विशेष, इज्य, पूज्य, उपजीव्य, क्षेम्य, वृद्ध और वत्सल हैं, आपको नमस्कार है । आप कृन, सत्य, सत्यासत्य, पञ्चवर्ण, मृत्युघ्न, मृत्यु, श्याम, गौर, कटु, रोहित, कान्त सन्ध्या, मेघवर्ण, बहुरूपी, कपालहस्त, दिग्वस्त्र, कपर्दी, अप्रमेय, शर्व, अवध्य, वर, पुरोभाग या पृष्ठ भाग से विश्रान्त, कृष्णनु, महादुर्ग, रोध, कपिल, सूर्य की प्रभा की तरह शरीर वाले, बली, वेगवान, पिनाकी, प्रसिद्ध, स्फीत, प्रसून, (विस्तृत) सुमेधा, अक्षमाली, दिग्वस्त्र, शिखण्डी, चित्रवर्ण, विभिन्न, धर, चेकितान, तुष्ट और अनिहित हैं, आपको नमस्कार है । आप क्षान्त, शान्त, वज्रप्रहारी, राक्षस-विनाशी, यज्ञविनाशी, शितिकण्ठ, ऊर्ध्वरेता, शत्रुनाशी, कृतान्त, तीक्ष्ण आयुधधारी, संमोद, प्रमोद और दूरिण्य (शून्य) हैं, आपको नमस्कार है । आप प्रणव, प्रणवेश, भक्तों के सुखदाता, मृगयाशील, दक्ष, दक्षयज्ञविनाशी, सर्वभून, भूत, सबसे अधिक पराक्रमी, पुर दैत्य को मारने वाले, शान्त, सुगन्ध, वराभिलाषी, पूषा के दाँत को तोड़नेवाले, सूर्य के नेत्र को फोड़नेवाले, कणाद, वरिष्ठ, मदन-दहन, सूर्य के कराल नामक चक्र, नागेन्द्रदमनकर्ता, दैत्यों के विनाशी, दिव्य घोष करनेवाले, श्मशान में नित्य रमण करने वाले और त्रिनेत्र हैं, आपको नमस्कार है । आप प्राण-पालक, धवलमालाधारी शोकविहीन विविध जीवों से स्तुत, नरनारी उभय शरीर वाले, देवी पार्वती के प्रियकारक, जटाधारी दण्डधारी, साँप का यज्ञोपवीत धारण करने वाले, नाचने वाले, नृत्य-वाद्य के प्रेमी,

Funding by IKS-MoE

यज्ञस्वरूप, गायक, सुगीति, गीतशील, कटककर, (?) भयङ्कर उग्र रूपधारी, विभीषण, भीम, भग (देवता) मन्थनकर्ता, सिद्धसमूह द्वारा प्रशंसित, महाभाग अट्टहासकर्ता, (सिंहनाद) करने वाले, कूदने वाले और प्रमुदित हैं, आपको नमस्कार है। आप अद्भुत, शयनशील, धावमान, प्रस्थित, ध्याता, जम्हाई लेने वाले, पीड़क, पलायनकर्ता, चलमान, क्रीड़ारत, लम्बोदर, नमस्कृत, कम्प, मुण्ड, विकट, उन्मत्तवेष, क्रूर, उग्र, अमर्षण (असहनशील), अप्रमेय, किंकिणीधारी, विकृतनेत्र, विकृतवेश, दीप्ति निर्गुण, प्रिय, वाद, नगवाली अँगूठी पहने हुए, स्तोक, तनु, अनुपम गुण वाले, गण, गुह्य, गम्य, गमन हैं, आपको नमस्कार है। हे भगवन्! यह लोकधात्री पृथ्वी, आपका सज्जन-सेवित पदयुगल है और नारायण से विभूषित जो विस्तीर्ण अन्तरिक्ष-मध्य है, वही आपका उदर है, जो सम्पूर्ण सिद्ध-योगियों का अधिष्ठान है। आपकी छाती का हार तारापथ (आकाश गंगा) की तरह शोभायमान है। दसो दिशाएँ आपकी भुजायें हैं, जो केयूर और अङ्गद से विभूषित हैं। विशाल और विस्तीर्ण नील मेघों का समूह आपका कण्ठ है, जो विद्युल्लता रूपी हेमसूत्र से विभूषित है। आपका अनुपम मुख दन्तपंक्ति से कराल एवं दुर्द्धर्ष है। पद्ममाला से मण्डित आपके शिर पर पगड़ी की शोभा ऐसी हो रही है मानो सूर्यमण्डल में दीप्ति, चन्द्रमा में वायु, पृथ्वी में स्थैर्य, वायु में बल, अग्नि में तीक्ष्णता, चन्द्रमा में प्रभा, आकाश में शब्द और जल में शीतलता हो। ये सब अविनाशी, उत्तम और स्थिर जितने गुण हैं, वे आपके ही हैं, विद्वान् लोग ऐसा ही कहते हैं। आप जप, जप्य, महायोगी, महादेव, महेश्वर, पुरेशय, गुहावासी खेचर, रजनीचर, तपोनिधि, गुहगुरु-नन्दन, नन्दिवर्धन, हयशीर्ष, धराधाता, विधाता, भूतिवाहन, बोधव्य, बोधन, नेता, धूर्व, दुष्प्रकम्पक, बृहद्रथ, भीमकर्मा, बृहत्कीर्ति, धनञ्जय, घण्टाप्रिय, ध्वजी, छत्री, पताका, रथपति, कवची, पट्टिशी, शङ्खी, पाशहस्त, परश्वभृत्, अग, अनघ, शूर और इन्द्रशत्रु विनाशक हैं। आपको प्रसन्न करके हम लोगों ने पूर्वकाल में युद्ध में शत्रुओं को मारा है। आप अग्नि हैं। सब समुद्रों को पीकर भी आप तृप्त नहीं हुए हैं। आप क्रोधागार, प्रसन्नात्मा, काम को मारनेवाले, काम को देनेवाले, प्रिय, ब्रह्मण्य, ब्रह्मचारी गोघ्न, शिष्टपूजित, वेदों का अविनाशी कोष, प्रकल्पित यज्ञ और हव्यवाहन हैं। आप वेदोक्त हव्यको धारण करते हैं। आपके प्रसन्न होने से ही हम सब प्रसन्न होते हैं। आप ईश, अनादि, तेजोराशि, लोककर्ता और लोकसृष्टि-कारक हैं। सांख्यज्ञाता योगिगण आपकी प्रकृति से श्रेष्ठ ज्ञान लाभ कर मृत्यु मुख से बचकर अमर हो जाते हैं नित्ययुक्त योगिगण योगबल से आपको जानकर भोगों का परित्याग कर देते हैं। जो मर्त्य आपका साक्षात्कार करके विशुद्ध होते हैं, वे अपने कर्मफल के अनुसार दिव्य भोगों का उपभोग करते हैं। आप अप्रमेय तत्त्व हैं। अपनी शक्ति से जैसा हमने आपको समझा वैसा ही आपके अपार महात्म्य का कीर्तन किया। आप हमारे लिये सर्वत्र कल्याण-कारक हों। आप जो हैं, वही हैं अर्थात् आप अज्ञेय और अप्राप्य हैं आपको नमस्कार है।" ॥९०—१६५॥

श्री वायु महापुराण का शार्वस्तव नामक
चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २४ ॥

Funding by IKS-MoE

पचीसवाँ अध्याय

मधुकैटभ की उत्पत्ति और विनाश

सूतजी बोले—मधु की भाँति पिङ्गल और बड़ी बड़ी आँखों वाले विरूपाक्ष, दक्षयज्ञ विनाशक, पिनाकी, खण्डपरशु, भूतप्रान्त, त्रिलोचन, पहले तो इस प्रकार देखते थे मानो वे दोनों देवताओं को पी जायँगे परन्तु पीछे अपनी स्तुति सुनकर उनको अपार हर्ष हुआ। उन देवों की सरस स्तुति-वाणी को सुनकर सब कुछ जानते हुए भी अनजान की भाँति प्रेमपूर्वक बोले—कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाले आप दोनों महात्मा कौन हैं जो उस घोर प्रलय समुद्र में एक दूसरे की हितांकाक्षा से यहाँ प्रकट हुए हैं। यह सुनकर वे दोनों एक दूसरे की ओर देखकर बोले–भगवन्! विभो! सब रहस्य को जानते हुए भी आप क्यों इस प्रकार पूछ रहे हैं? आपके विना कहाँ पर हम अत्यन्त सुख की आशा कर सकते हैं।

उन दोनों की विनीत वाणी को सुनकर भगवान् शंकर ने उनका अभिनन्दन किया और उनकी सराहना करते हुए मधुर और मृदु वाणी से बोले––'हिरण्यगर्भ और कृष्ण! सुनो, तुम दोनों की इस नित्य अक्षरों से युक्त भक्ति से परम प्रसन्न हूँ। आप दोनों मेरे मान्य और पूज्य हैं, आप लोगों को मैं कौन सा उत्तम वर दूँ?' ॥ १--१० ॥

शिव की ऐसी बातें सुनकर विष्णु ने ब्रह्मा से कहा––महाभाग! माँगो, जो वर तुमको अभीष्ट हो उसको माँगो। तदनन्तर वर चाहने वाले भगवान् ब्रह्मा ने कहा—विष्णो! मुझे पुत्र की इच्छा है, मैं ऐसा पुत्र चाहता हूँ जो मेरे भार को हल्का कर दे। विष्णु ने पुत्रेच्छु प्रजापति से कहा कि, यदि तुम अप्रतिम, वीर और धुरन्धर पुत्र को चाहते हो तो देव-देव महेश्वर को ही अपना पुत्र बनने के लिए कहो। उस पितामह ने केशव के उस सुझाव को मान लिया और स्वयं ईशान, वरदाता, रुद्र का अभिवादन कर हाथ जोड़कर पुत्रप्राप्ति की इच्छा से विष्णु के साथ कहा—भगवन्! पुत्र की कामना करने वाले मुझ पर यदि आप प्रसन्न हैं तो विश्वात्मन्! अपने समान धुरन्धर कार्यक्षम पुत्र दें। महेश्वर! आपके प्रसन्न हो जाने पर दूसरा वर मैं नहीं चाहता!'

भग के नेत्र को फोड़ देने वाले भगवान् ने ब्रह्मा की उस प्रार्थना को सुनकर स्पष्ट शब्दों में कहा–'ऐसा ही होगा। सुव्रत! तुम जब किसी कार्य को आरम्भ करोगे और उस काम में अड़चन आ जाने पर जब तुमको क्रोध होगा तो उस समय सब प्राणियों के जीवन के कारण जो एकादश रुद्र कहे गए हैं, जो मेरे ही रूप हैं, उनके रूप में शूलपाणि महात्मा और ऋषि एकादशात्मा मैं तुम्हारे ललाट से प्रकट होऊँगा।' पहले ब्रह्मा के ऊपर इस प्रकार अपनी अनुपम प्रसन्नता दिखाकर फिर विष्णु से बोले, 'तुमको भी वर दूँगा।' महाभाग विष्णु यह सुनकर शिव से बोले 'देव! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो आपने मेरे लिए सब कुछ कर दिया। मेघवाहन! तुममें मेरी अचल भक्ति रहे।' शङ्कर इन बातों सुनकर फिर केशव से बोले––

Funding by IKS-MoE

विष्णो ! देव ! शाश्वत ! सुनो, मेरी जैसी तुम्हारे ऊपर प्रीति है । प्रकाश, अप्रकाश, जङ्गम, स्थावर अथवा यह सारा विश्व-रूप रुद्र और नारायणमय है । मैं अग्नि हूँ तुम सोम हो, तुम रात्रि और मैं दिन हूँ । तुम ऋत हो मैं सत्य, तुम यज्ञ का मैं फल हूँ । तुम ज्ञान हो तो मैं ज्ञेय हूँ । सुकृत करने वाले जन तुम्हारा जपकर, तुमको प्रसन्न कर मुझमें भी प्रविष्ट हो जाते हैं । युगक्षय काल में हम दोनों को छोड़कर दूसरी कोई गति नहीं । तुम अपने को प्रकृति समझो और मुझे पुरुष शिव । तुम जिस प्रकार मेरे आधा शरीर हो, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा आधा शरीर हूँ । तुम हमारे महान् श्रीवत्सपदलक्षण श्यामल वाम पार्श्व हो और मैं नील-लोहित दक्षिण पार्श्व हूँ । विष्णो ! तुम मेरे हृदय हो और मैं तुम्हारे हृदय में स्थित हूँ । तुम सभी कार्यों के कर्ता और हम कार्याधिष्ठित देवता हैं । वत्स ! जलदाभ ! तुम्हारा कल्याण हो । मैं अब जाता हूँ ।" यह कहकर देवाधिदेव महादेव अन्तर्द्धान हो गये । महादेव जी के चले जाने पर प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् फिर शयन करने के लिये जल में घुस गये । तब पद्मात्, पद्मजन्मा ब्रह्मा भी प्रसन्न होकर उस पद्मगर्भ की आभावाले उपयुक्त पद्मासन पर जा बैठे । इसके बहुत दिन बाद वहाँ मधुकैटभ मामक दो अतुलनीय बलशाली भ्राताओंने तरुण सूर्य की तरह चमकनेवाले उस पद्म को हिलाना प्रारम्भ कर दिया । उन दोनों की आँखें अन्धकार में चमक रही थीं और वे दोनों ही वीर हँस-हँस कर निर्भयभाव से पद्मपत्रों को तोड़ रहे थे । उन दोनों ने ब्रह्मा से कहा—"तुम हमारे भक्ष्य बनो ।" यह कह कर वे दोनों अन्तर्द्धान हो गये । पद्मयोनि ब्रह्मा ने उनके कठोर भाव को और अपने पराक्रम को जानकर तात्कालिक रहस्य जानना चाहा; किन्तु वे तब तक उनकी गतिविधि या पद्मपत्रों का तोड़ा जाना नहीं समझ सके । वे उस कमलनाल के सहारे सीधे रसातल में उतर गये । वहाँ जल के भीतर उन्होंने कृष्णाजिन और उत्तरीयधारी विष्णु को देखा । उन्होंने विष्णु को जगाया और उनके जगने पर कहा—"देव ! हमें भूतों से भय हो रहा है, उठिये, हमें बचाइये, हमारा कल्याण कीजिये ।"

शत्रु को दमन करने वाले स्वयं भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले—कुछ चिन्ता नहीं । डरने की कोई बात नहीं है । जिस लिये पहले पहल आपने कहा कि हमें भूतों से भय हो रहा है; इसलिये उन दैत्यों का भूतादि वाक्य से आप ही विनाश करेंगे । अनन्तर भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक प्रदक्षिणा करके बैठे हुए ब्रह्मा में प्रवेश कर गए । उनके चले जाने पर अनन्त भगवान् ने विष्णु और जिष्णु नामक दो भ्राताओं को मुख से उत्पन्न कर कहा—तुम दोनों ब्रह्मा की रक्षा करो । इधर मधु-कैटभ ने विष्णु-जिष्णु की आगमन वार्त्ता जानकर विष्णु-जिष्णु की ही तरह अपना रूप बना लिया और उसी रूप में ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित होकर उन दोनों (दैत्यों) ने ब्रह्मा से कठोर स्वर में कहा—"हम दोनों परस्पर युद्ध करते हैं, बीच में तुम निर्णायक बनो" । इसके बाद उन दोनों ने जल में प्रवेश कर अपनी माथा से जल को स्तब्ध कर दिया । इसके बाद वे दोनों विष्णु जिष्णु से अभिलिषित रूप से युद्ध करने लगे । उनके युद्ध करते हुए दिव्य सौ वर्ष बीत गये, किन्तु रणमद से मत्त उनमें से कोई भी युद्ध से विरत नहीं हुआ । उनका आकार प्रकार और संस्थानादि एक प्रकार का था एवं गति

स्थिति भी उनकी समान ही थी तथा उन दोनों का स्वरूप भी एक प्रकार का ही था, इससे ब्रह्मा व्याकुल हो ध्यान करने लगे। ब्रह्मा ने तब दिव्य दृष्टि से उनके रहस्य को समझा और कमल-केसर के बने सूक्ष्म कवच द्वारा उन दोनों के (विष्णु-जिष्णु के) नाभि से ऊपर के शरीर को बाँधकर मन्त्रों का पाठ करने लगे। मन्त्र जपते हुए ब्रह्मा को एक इन्दुवदना, पद्म-सुन्दरी, प्रियदर्शना, कमलहस्ता कन्या उत्पन्न हुई। उसे देखते ही दोनों दैत्यों के प्राण सूख गये। ब्रह्मा ने उस कन्या से मधुर शब्दों में कहा—"यथार्थ सुन्दरि, कहो तुम कौन हो, मैं तुम्हें क्या समझूँ ?" उस कन्या ने वेदोक्त विधि से ब्रह्मा की पूजा कर हाथ जोड़कर कहा—मुझे आप विष्णु की आज्ञानुवर्तिनी मोहिनी माया समझें। ब्रह्मन्! आपने मेरा स्मरण किया; इसलिये मैं शीघ्र ही यहाँ पहुँच गई। सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने उसका एक गौण नाम रखा—हमारे द्वारा बुलायी जाने पर तुम आई हो इसलिये तुम्हारा एक नाम महाव्याहृति होगा। तुम हमारे सिर को भेदकर उत्पन्न हुई हो इसलिये सावित्री भी कही जाओगी। एकांनशा[१] होने के कारण तुम्हारा नाम अनेकांशा भी होगा। सुमुखि! इतने तो तुम्हारे गौण नाम हुए किन्तु हमारे प्रसाद से तुम्हारे कर्मजनित और भी असंख्य नाम होंगे। इधर युद्ध करते-करते वे दोनों दैत्य थक गये और उन दोनों ने विष्णु-जिष्णु से वर माँगा कि, खुले स्थान में हमारी मृत्यु हो एवं आप दोनों हमारे पुत्र हों। 'ऐसा ही हो' कहकर विष्णु ने कैटभ को यमसदन पहुँचा दिया और जिष्णु ने भी मधु को मार डाला। इस प्रकार विष्णु-जिष्णु के द्वारा दोनों दैत्यों के मारे जाने पर ब्रह्मा प्रसन्न होकर संसार की हितकामना में रत हो गए।

अब ईश्वर ने जिस प्रकार पुत्र रूप से आत्मदान किया, उसे सुनिये। विष्णु-जिष्णु के साथ जब मधुकैटभ का युद्ध समाप्त हो गया, जब ब्रह्मा ने विष्णु से कहा—आज सौ वर्ष पूरे हो गये। और समय भी आ गया। आप इस घोर संप्लव को समेट लें। हम भी अपने स्थान को जाते हैं। विष्णु ने ब्रह्मा के कहने पर संप्लव का संहार कर दिया और पृथ्वी को स्थावरविहीन करके जंगलों को प्रकृतिस्थ कर दिया। फिर ब्रह्मा बोले—गोविन्द! आपका कल्याण हो। आपने समुद्र को शीघ्र ही सीमित कर दिया। लक्ष्मी वर्द्धन, कहिये हम आपका कौन सा कार्य करें ?'

विष्णु बोले—स्वर्णवर्ण कमलयोनि ब्रह्मा! अच्छा, आप मेरी बात सुनिये। पुत्राभिलाषी होकर आपने जो महादेव से वरदान प्राप्त किया है, उसे सफल कीजिये और ऋण मुक्त होइये। आप चारों प्रकार के जीवों की सृष्टि और उनका विनाश कीजिये।'

पद्मयोनि पितामह ब्रह्मा गोविन्द से ज्ञान प्राप्त कर प्रजा की सृष्टि करने के लिये अत्यन्त उग्र तप करने लगे। इस प्रकार दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी कुछ नहीं हुआ, तब उन्हें दुःख हुआ। उस

१—यहां मूल पाठ भ्रष्ट जान पड़ता है—एकानंशात्तु के स्थान पर नैकांशात्तु होना चाहिये। जिसका अर्थ है एकांश न होने के कारण। इस प्रकार अर्थ संगत हो जाता है।

Funding by IKS-MoE

समय उनके क्रोध-सम्पन्न नेत्रों से अश्रुविन्दु छलक पड़े। उन अश्रुबिन्दुओं से वातपित्तकफात्मक महाविष वाले सर्प उत्पन्न हुए। वे सर्प बड़े-बड़े फन धारण किये हुए थे, स्वस्तिक और लम्बे केशों से समलंकृत एवं महासत्त्व थे। सबसे पहले सर्पों को ही उत्पन्न होते देखकर ब्रह्मा अपनी निन्दा करने लगे कि मेरी तपस्या को धिक्कार है, जिसका फल ऐसा हुआ कि प्रारम्भ में ही मैंने लोकविनाश-कारक जीवों की ही सृष्टि की। क्रोध से उन्हें भयङ्कर मूर्च्छा हो गई। मूर्च्छितावस्था में ही प्रजापति ने अपना प्राण त्याग दिया। तब अनुपमेय पराक्रमी ब्रह्मा की देह से करुणापूर्वक रोते हुए एक साथ एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। रोने के ही कारण वे रुद्र हुए और उन्होंने रुद्रत्व प्राप्त किया। जो रुद्र हैं, वे ही प्राण हैं और जो प्राण हैं, वे ही रुद्र हैं। प्राणधारी सभी भूतों में वे ही प्राण रूप से स्थित हैं। पद्मयोनि के ललाट से उत्पन्न एकादशात्मक प्रभु त्रिशूलधारी नीललोहित ने साधु आचरण करनेवाले अतिशय महान् ब्रह्मा को फिर प्राणदान दिया। आत्मज स्वरूप प्रसन्नवदन प्रभु रुद्र ने ब्रह्मा को प्राणदान दिया और प्राण के लौट आने पर ब्रह्मा से कहा—"ब्रह्मन्! अपने को स्मरण कीजिये हमसे याचना कीजिये और हम (रुद्र) को अपना पुत्र समझिये हम पर प्रसन्न होइये।" रुद्र के इस मनोनुकूल वचन को सुनकर ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न हो गये। उनके दोनों नेत्र विकसित कमल की तरह खिल गये। तपाये हुए सोने की तरह देदीप्यमान भगवान् ब्रह्मा ने प्राण के लौट आने पर स्निग्ध-गम्भीर स्वर में कहा—महाभाग! आप कौन हैं, जो हमारे मन को आनन्दित कर रहे हैं? आप गिनती में ग्यारह और विश्वमूर्त्ति की तरह विराजमान हैं? आप स्पष्ट शब्दों में कहिये। अनन्त तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा ने जब इस प्रकार कहा, तब रुद्र ने आत्मजों के साथ उनका अभिवादन करके कहा——आपने विष्णु के साथ जो हमसे वर माँगा था कि देव! आप हमारे उपयुक्त पुत्र हों अथवा आपकी तरह सुयोग्य पुत्र हों, विश्वात्मसम्भव! लोकप्रसिद्ध उन्हीं पुत्रों द्वारा हम कार्य सम्पादन करेंगे। अतः देवेश, विषाद को छोड़िये। आप संसार की सृष्टि करने के योग्य हैं। ॥ ३५–७८ ॥

इन बातों को सुनकर ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और प्रलय में नीललोहित स्वरूप में व्यक्त होने वाले रुद्र से कहा—आप हमारे कार्य में सहायता दीजिये और हमारे साथ प्रजा की सृष्टि कीजिये। आप निखिल भूत और जगत् के कारण हैं; अतएव इस कार्य के लिये उद्यत होइये। शंकर ने "ऐसा ही हो" कहकर ब्रह्मा की बात को मान लिया। अनन्तर कृष्ण मृगचर्म से विभूषित होकर ब्रह्मा ने पहले मन को फिर भूतों की धारणा को और उसके बाद जिह्वानिवासिनी विश्वरूपिणी सरस्वती को बनाया। अनन्तर भृगु, अंगिरा, दक्ष, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ आदि सात महातेजस्वी मानस पुत्रों को बनाया। इनके अतिरिक्त अपनी तरह और भी अनेकानेक जगत्-कर्ता पुत्रों की सृष्टि करने के बाद उनके मुख से गौओं की सृष्टि हुई। उसके बाद ॐकार प्रमुख वेद और उनके अभिमानी देवता बने। तब पितामह ब्रह्मा ने पूर्वोक्त दक्षादि मानस पुत्रों से कहा—"आपका कल्याण हो। आप लोग धीमान् रुद्र के साथ मिलकर प्रजा की सृष्टि करें।" तब प्रजापतिगण रुद्र के अनुगामी होकर बोले—'देव! हम लोग आपके साथ मिलकर प्रजा की सृष्टि करना चाहते हैं। महेश्वर! आपके प्रति ब्रह्मा का यही सन्देश है। उन लोगों के द्वारा इस प्रकार

कहे जाने पर भगवान् रुद्र ने उन लोगों से कहा—"ब्रह्मनन्दन देवगण ! आपमें जो अग्रज हैं, वे हमसे प्राण ग्रहणकर और ब्रह्मतनयों को साथ लेकर ब्रह्मा से लेकर तृण पर्यन्त सातों लोकों की सृष्टि करें। आप लोग हमारी आज्ञा से ऐसा कर सकते हैं। आप सबका कल्याण हो।" यह सुनकर उन लोगों ने त्रिशूल-धारी रुद्र से कहा—देव ! जैसा आप कहते हैं, वैसा ही होगा। इस प्रकार प्रजापतियों ने महादेव का अनुमोदन कर महात्मा दक्ष से कहा—"आप ही श्रेष्ठ प्रजापति हैं। आपकी जय हो। आपको ही आगे कर हम लोग प्रजा की सृष्टि करेंगे"। दक्ष ने भी "ऐसा ही हो" कहकर उनके भाषण का अनुमोदन किया और उन लोगों के साथ मिलकर प्रजाभिलाषी प्रजापति ने सृष्टि-रचना प्रारम्भ की। रुद्र देव को इस प्रकार सृष्टिकार्य में तत्पर होते देख कर ब्रह्मा भी सृष्टि करने लगे। सप्तम कल्प के अतीत हो जाने पर फिर तब तपोलोक निवासी ऋभु और सनत्कुमार उत्पन्न हुए। उसके बाद ब्रह्मा ने और भी ऋषि आदि मानस पुत्रों को उत्पन्न किया। ॥ ७९–९२ ॥

श्री वायु महापुराणान्तर्गत मधुकैटभ की उत्पत्ति और विनाश नामक
पचीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २५ ॥

छब्बीसवाँ अध्याय

स्वरोत्पत्ति निरूपण

सूतजी बोले—महामति ! आपने संसारवासियों पर दया करके जिन विस्मयकारक रहस्यों को तत्त्वतः कहा है, उनमें महादेव के अवतार के संबन्ध में कुछ हमें सन्देह रह गया है। क्या कारण है कि, अन्य पूर्व युगों को छोड़कर महादेव कठिन कलिकाल में अवतार ग्रहण करते हैं ? प्रभो ! इस वैवस्वत मन्वन्तर के प्राप्त होने पर वे क्यों अवतार ग्रहण करते हैं, हम यह जानना चाहते हैं। परलोक या इस लोक की कोई भी बात आपसे छिपी नहीं है। महामति ! महापण्डित ! हम विनयपूर्वक आपसे पूछते हैं। भक्तों को उपदेश देने के लिये यह हमें कहिये, यदि आप सुनाना उचित समझते हों।

लोमश ऋषि बोले—इस प्रकार पूछे जानेपर लोककल्याणकर्ता भगवान् वायु ने कहा—"गाधेय ! आपने जो हमसे पूछा है, वह अत्यन्त गुप्त कथा है; किन्तु हम उसे यथाक्रम कहते हैं, उसे आप सुनिये। पहले जब दिव्य हजार वर्ष पर्यन्त जगत् एकार्णवाकार था, तब प्रजा की सृष्टि करने की अभिलाषा से ब्रह्मा दुखी होकर चिन्ता करने लगे। उनके चिन्ता करते ही एक कुमार उत्पन्न हुआ। वह दिव्यगन्धी और सुधापेक्षी था, जो दिव्य श्रुति का उच्चारण कर रहा था। चतुर्मुख ब्रह्मा ने तब अशब्द स्पर्शरूपा, अगन्धा और रसवर्जिता श्रुति का उच्चारण करके उसे प्राप्त किया। फिर वे ध्यान

Funding by IKS-MoE

लगाकर भयङ्कर तप करने लगे और चिन्ता करने लगे कि यह कुमार कौन है और इसके द्वारा उच्चारित यह त्रिमूर्ति क्या है ? उनके चिन्तन करते ही शब्द स्पर्श रूपरसगन्ध रहित अक्षर प्रादुर्भूत हुआ। इसके बाद ब्रह्मा ने लोक में अक्षर और अपनी मूर्ति का दर्शन किया। ध्यान करते हुए ब्रह्मा ने फिर देखा कि देवस्वरूप अक्षर श्वेत, कृष्ण, रक्त और पीत हैं और वह न स्त्री हैं न नपुंसक। उन सम्पूर्ण अक्षरों को अच्छी तरह जान कर ब्रह्मा चिन्ता कर रहे थे कि उनके कण्ठ से एकमात्र, महाघोष, सुनिर्मल, श्वेतवर्ण अक्षर प्रकट हुआ। वही अक्षर ओंकार, वेद या साक्षात् महेश्वर था। भगवान् स्वयम्भू फिर अक्षर-विषयक चिन्ता करने लगे, तो एक रक्त अक्षर उत्पन्न हुआ। यही रक्त अक्षर आदि देवता और ऋग्वेद का आदि मन्त्र—"अग्निमीले पुरोहितम्" कहलाता है। इस ऋचा को देखकर ब्रह्मा फिर चिन्ता करने लगे कि यह क्या है ? लोकनिर्माता तेजस्वी ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता कर रहे थे कि, प्रभुत्व-सम्पन्न द्विमात्र अक्षररूप महेश्वर आविर्भूत हुए। फिर वे द्विमात्र अक्षर विषयक चिन्ता करने लगे कि, ऋक्छंदयुक्त रक्ताक्षर यजुः प्रकट हुआ। जिसके आदि में "इषे त्वोर्जे" इत्यादि मन्त्र है। ऋग्वेद एक मात्र है और यजुः द्विमात्र फिर उस अक्षर और वेद को देखकर स्वामी ब्रह्मा द्विमात्राक्षर की चिन्ता करने लगे। ब्रह्मा चिन्ता कर ही रहे थे कि ओंकार समुद्भूत हुआ। तब ब्रह्मा उस अविनाशी अक्षर ओंकार की चिन्ता करने लगे। तब उन्होंने एक पीतऋचा को देखा—"अग्न आयादि वीतये।" तब महातेजस्वी ब्रह्मा वेद को उपस्थित देखकर ब्रह्मासंज्ञित, त्रिवर्णात्मक ओंकार का त्रिसंध्य ध्यान करने लगे। यह ओंकार रूप अक्षर तीन वर्णों के संयोग से होने के कारण त्रिवर्ण, लक्ष्यालक्ष्य-प्रदृश्य, संहित, त्रिदिव स्वरूप, त्रिक, त्रिमात्र, त्रिपद, त्रियोग और शाश्वत है। इसलिये प्रभु ब्रह्मा उसी अक्षर की चिन्ता करने लगे। भगवान् स्वयम्भू ने उस प्रदीप्त तेजस्क, आत्मरूप ओंकाराक्षर को चौदह मुँहवाला देखा। प्रारम्भ में उन्होंने ओंकार को बनाया इसी से वे स्वयम्भू कहलाये। फिर चतुर्मुख ब्रह्मा के मुखों से नाना वर्णात्मक चौदह स्वर और आद्य दिव्य अक्षर प्रकट हुए। ये सब वर्ण अकार से प्रादुर्भूत हुए और साधारणतया इन वर्णों की संख्या तिरसठ है। स्वयम्भू ने जिन साधारण वर्णों को देखा, उनके आदि में वे अकार रूप से स्थित हुए और वही प्रथम स्वर हुआ। फिर उन चौदहों स्वरों में मन्वन्तराधिपति दिव्य प्रधान चौदह मनु उत्पन्न हुए। अकार ही चतुर्दश मुखवाला ब्रह्म, ब्रह्मकल्प, सर्ववर्ण और प्रजापति के रूप में ख्यात है। उनके मुख से पहले स्वायम्भुव मनु उत्पन्न हुए। ये स्वयम्भू के अकार स्वरूप हैं। इसी प्रकार द्वितीय मुख से आकार रूप स्वारोचिष मनु उत्पन्न हुए। ये पाण्डुर वर्ण हैं। फिर तीसरे मुख से इकार उत्पन्न हुआ। यह यजुःश्रेष्ठ, यजुर्मय, आदित्य स्वरूप और यही यजुर्वेद कहलाता है। ईकार प्रतापवान् साक्षात् मनु स्वरूप है। यह रक्त वर्ण है। इसी से रक्त वर्ण क्षत्रकुल प्रवर्तित हुआ है। फिर चौथे मुख से जो स्वर उत्पन्न हुआ वह उकार कहलाता है। यह ताम्र वर्ण का है और मनु तामस कहलाता है। पञ्चम मुँह से ऊकार उत्पन्न हुआ। यह पीत वर्ण का है और मनु वरिष्णु कहलाते हैं। छठें मुख से कपिल वर्ण ओंकार उद्भूत हुआ। यह महातपा वरिष्ट विजय मनु कहलाता है। सप्तम मुख से कृष्ण वर्ण ऋक

Funding by IKS-MoE

स्वरूप वैवस्वत मनु उत्पन्न हुए। आठवें मुँह से श्याम वर्ण ऋकारात्मक सावर्णि मनु उत्पन्न हुए। ये श्यामाक्षर तुल्य हैं। नवम मुख से नौवाँ ऌकार उत्पन्न हुआ। यह धूम्र वर्ण है और मनु भी धूम्र कहलाता है। दसवें मुँह से ऌकार उत्पन्न हुआ। यह भी ऌकार के तुल्य धूम्र वर्ण है और सावर्णिक मनु कहलाता है। एकादशवें मुख से विशङ्ग वर्ण एकार उत्पन्न हुआ और वर्णानुरूप पिशङ्गी मनु हुआ। बारहवें मुख से पिशङ्ग वर्ण और भस्मतुल्य ऐकार उत्पन्न हुआ एवं पिशंगी मनु कहलाया। तेरहवें मुख से पञ्च वर्ण से युक्त उत्तम वर्ण ओंकार की उत्पत्ति हुई और मनु उत्तम हुए। चौदहवें मुख से कर्बुर वर्ण औंकार उत्पन्न हुआ और मनु सावर्णि। कल्प-कल्प में इसी भाँति मनु और स्वर वर्ण का ऐसा ही रूप रहता है जो स्वर और वर्ण के अनुसार यथातत्त्व जानने योग्य हैं। चूँकि ये स्वर परस्पर समान वर्ण के अनुसार हैं इसलिए वर्ण की समानता के कारण उनका परस्पर अन्वय होता है और प्रत्येक कल्पों में इनका समान आकार और वर्ण होता है इसलिए इस प्रजालोक में सब सन्धियाँ सवर्ण होती हैं, भविष्य में भी स्वभाव और अर्थ के अनुसार ये एक प्रकृति के होंगे इसलिए उच्चारण की शीघ्रता के कारण इन स्वरों में संधियाँ भी होंगी। ॥१—५०॥

श्री वायु महापुराण का स्वरोत्पत्ति नामक
छब्बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २६ ॥

सत्ताईसवाँ अध्याय

महादेव के शरीर का वर्णन

ऋषिगण बोले—हे सूत! इस कल्प में आपने साधक मुनियों के साथ महात्मा महादेव रुद्र का प्रादुर्भाव बताया है।"

सूतजी बोले—मैंने संक्षेप में आदि सर्ग की उत्पत्ति बताई। अब विस्तार के साथ महादेव के नामों को उनके विभिन्न शरीरों के साथ कह रहा हूँ। अष्टम कल्प के बीत जाने पर जिस कल्प में महादेव ने अपनी पत्नियों में अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया, उसको अब सुनिये। कल्प के आदि में प्रभु ब्रह्मा आत्मतुल्य पुत्र का ध्यान कर रहे थे कि उनकी गोद में एक नीललोहित कुमार. प्रकट हो गया। उन्होंने उस कुमार को तेज द्वारा दग्ध करके घोर और सुस्वर बना दिया। उस नीललोहित कुमार को सहसा रोते देखकर ब्रह्मा ने पूछा—क्यों रोते हो? कुमार ने कहा—हे पितामह, आप पहले हमारा नामकरण कीजिये। पितामह ने कहा – तुम्हारा नाम रुद्र होगा। वह फिर रोने लगा और पूछे जाने पर दूसरा नाम रखने लिए कहा। यह सुनकर ब्रह्मा ने कहा—'तुम्हारा दूसरा नाम भव होगा।' पुनः उसको रोते देखकर ब्रह्मा ने उस शंकर से कहा, तुम क्यों रो रहे हो? 'शंकर ने कहा' "मेरा तीसरा नाम रखिये" यह सुनकर

Funding by IKS-MoE

उन्होंने कहा 'तुम्हारा तीसरा नाम शिव होगा' । पुनः वह रोने लगा । चौथी बार उसको रोते देखकर ब्रह्मा ने पूछा 'अब क्यों रो रहे हो ?' 'मेरा चौथा नाम रखिये' 'तुम पशुओं (प्राणियों) के पति अर्थात् पशुपति नाम से प्रसिद्ध होगे' यह चौथा नामकरण होने पर भी वह रोने लगा । उसको इस प्रकार रुदन करते देख ब्रह्मा ने पुनः रोने का कारण पूछा । तब उसने कहा 'मेरा पाँचवाँ नाम रखिये । "देव ! तुम्हारा पाँचवाँ नाम ईश होगा" । यह सुनकर वह पुनः रोने लगा । छठें बार उसको रोते देखकर ब्रह्मा ने पुनः पूछा तुम अब क्यों रो रहे हो ? 'मेरा छठाँ नाम रखिये' उसने ब्रह्मा से कहा । ब्रह्मा ने कहा—'देव ! तुम्हारा छठाँ नाम भीम होगा ।' छठाँ नाम सुनकर भी वह रोता ही रहा । उसको रोते देखकर पुनः ब्रह्मा ने पूछा । अब क्यों रो रहे हो ? उसने कहा —'मेरा सातवाँ नाम रखिए ।' तब ब्रह्मा ने कहा—'देव ! तुम्हारा सातवाँ नाम उग्र होगा ।' सातवाँ नाम सुनकर भी वह रोता ही रहा । उसको पुनः रोते देखकर ब्रह्मा ने पूछा—'अब क्यों रो रहे हो ?' उसने उत्तर दिया 'मेरा आठवाँ नाम रखिये' । ब्रह्मा ने कहा—'देव तुम्हारा आठवाँ नाम महादेव होगा' । यह कहकर ब्रह्मा चुप हो गये । ॥ १—१६ ॥

ब्रह्मा से इस प्रकार आठ नामों को प्राप्त कर नीललोहित ने कहा कि अब आप इन नामों का स्थान निर्देश कर दें । तब स्वयम्भू ने सूर्य, मही, जल, वह्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और चन्द्र आदि आठ नाम के लिए आठ मूर्तियों की सृष्टि की । ये मूर्तियाँ ब्रह्मा रूप हैं । इन मूर्तियाँ में जो रुद्र की पूजा या वन्दना करते हैं, रुद्रदेवता उनकी हिंसा नहीं करते हैं । इसके बाद ब्रह्मा ने नीललोहित से कहा—आपका दूसरा नाम मैंने भव रखा है, इसलिये आपका दूसरा शरीर जल होगा । इतना कहने पर उनके शरीर में स्थित जो रस रूप जल था, उसमें जल प्रवेश कर गया । तब जल भी भव मूर्ति हो गया । जल से सम्पूर्ण भूतसमूह उत्पन्न होता है और वह सबको उत्पन्न करता है; अतः भवन-भावन सम्बन्ध होने के कारण जल जीवों का सम्भव कहलाता है । इसलिये जल में मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये, न थूकना चाहिए और न नग्न होकर स्नान ही करना चाहिये । जल में मैथुन न करे और न शिरःस्नान करे । स्थिर या बहते हुए जल के प्रति कोई अप्रीतिजनक बात भी नहीं कहनी चाहिये । पवित्र या अपवित्र शरीर के स्पर्श से जल कभी भी दूषित नहीं होता है; किन्तु मटमैला, विरस, दुर्गन्धित और थोड़े जल को उपयोग में नहीं लाना चाहिए । समुद्र जल का उत्पत्ति स्थान है । इसलिए जलराशि समुद्र की कामना करती है । जल समुद्र को प्राप्त कर पवित्र और अमृतमय हो जाता है । बहते हुए जल को रोकना नहीं चाहिए; क्योंकि वह समुद्र में जाना चाहता है । इस प्रकार जलतत्त्व को जानकर जो जल में रहता है, उसकी हिंसा भव देवता नहीं करते हैं । इसके बाद ब्रह्मा ने फिर नीललोहित से कहा—आपका तीसरा नाम हमने शर्व कहा है, उसका शरीर भूमि होगा । ऐसा कहने पर उनके शरीर का जो अस्थि नामक स्थिर पदार्थ था, उसमें भूमि प्रवेश कर गई । इसलिये भूमि शर्व कहलाती है । इसलिये ज्ञानवान् व्यक्ति छाया, सोपान अथवा स्वच्छ स्थान में मूत्र-मल आदि का त्याग न करे । पहले सिर नवा ले और पृथ्वी पर तृण-घास रखकर मल-मूत्र त्याग करे । पृथ्वी के सम्बन्ध में जो ऐसा आचरण करता है, उसकी हिंसा शर्व देवता नहीं

हमने ईशान कहा है, उस चौथे शरीर करते हैं। ब्रह्मा ने फिर नीललोहित से कहा—आपका चौथा नाम प्राणापानादि पंच वायु थे, उनमें की चौथी मूर्ति वायु होगी। ब्रह्मा के ऐसा कहते ही उनके शरीर में जो जो व्यक्ति इस विराट वायु की स्तुति करते सांसारिक वायु प्रवेश कर गई; इसलिये ईशान वायु कहलाते हैं। हमने आपका पाँचवाँ हैं, ईशान देव उसकी हिंसा नहीं करते हैं। ब्रह्मा ने फिर धूम्रलोहित देव से कहा— ऐसा कहते ही उनके नाम पशुपति कहा है, इसलिये उस पाँचवें शरीर की पाँचवीं मूर्ति अग्नि होगी। चन्द्रमा सोम शरीरस्थ उष्ण नामक तेज में अग्नि प्रवेश कर गया। तब से अग्नि का नाम पशुपति हुआ। महादेव कहलाते हैं, उनकी आत्मा ओषधियाँ हैं। जो विद्वान् इस तत्त्व को प्रत्येक पर्व में हृदयङ्गम करता है, उसकी हिंसा नहीं करते। इसलिये महादेव की वन्दना श्रेयस्कर है। आदित्य दिन में और चन्द्रमा रात में प्रजाओं की रक्षा करते हैं। सूर्य और चन्द्रमा जिस रात्रि में एकत्र निवास करते हैं, उसे अमावास्या कहते हैं। इस अमावास्या तिथि में योग युक्त होकर रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्म में नाम रूप के साथ सारा जगत् प्रविष्ट है। वही अकेले सूर्य और चन्द्र कहलाते हैं। प्रजागण सूर्य के प्रकाश में चक्षु द्वारा देखते हैं और रुद्र देव शुक्लात्म रूप से सूर्य के मध्य में स्थित होकर किरण द्वारा जल का आकर्षण करते हैं। जो अन्न-जल आदि भोजन द्वारा शरीर में जाते हैं वे उनका आत्मसम्भव शरीर होने के कारण प्रत्येक जीव शरीर में जाकर उसको बढ़ाते हैं। भगवान् स्थिर चित्त से जिस शरीर द्वारा प्रजाओं को धारण करते हैं, वही उनकी शार्वी पार्थिव मूर्ति है। जो शरीर प्राण-वृत्ति के साथ भूतों के शरीर में निवास करता है, वही उनकी वायु रूप ऐशानी मूर्ति है और वही प्राणियों का प्राण है। जो शरीर जीवों के जठर में खाये-पिये हुए को पचाता है, वही जठराग्नि उनकी शक्तिशालिनी पशुपति मूर्ति है। वायु के संचरण के लिये देह के भीतर जितने रन्ध्र हैं, वे ही उनकी भीमा मूर्ति हैं। यज्ञ दीक्षित ब्रह्मवादियों की जो स्थिति (वृत्ति) है, वही उनकी उग्रात्मिका मूर्ति है एवं उनका वह उग्र शरीर यजमान है। देव देव का जो संकल्प सभी प्रजाओं में समभाव से वर्तमान है, वही संकल्प उनका प्राणिस्थिति सोमरूपी मानस शरीर है। इनका यह शरीर बार बार होनेवाला और नित्य नवीन है एवं देव-पितृगण के साथ इच्छानुकूल ले जाया जाता है। इसलिये भगवान् महादेव ही अमृतात्मा जलमय चन्द्रमा कहे जाते हैं। उनका जो पहला शरीर रौद्र नाम से कहा गया है, उसकी पत्नी सुवर्चला है, जिसका पुत्र शनैश्चर है। दूसरा भव शरीर जो जलात्मक है, उसकी पत्नी ऊषा है और पुत्र उशना। महादेव के शर्व नाम की मूर्ति भूमि है, उसकी पत्नी विकेशी है और पुत्र अंगारक उनके चौथे स्वर्गगत ईशान शरीर की पत्नी शिवा है और पुत्र मनोजव है। पाशुपत रूप अग्नि शरीर की पत्नी स्वाहा है और पुत्र स्कन्द। छठें आकाश रूप भीम शरीर की पत्नी दिशाएँ हैं और स्वर्ग पुत्र है। ब्राह्मणों द्वारा पूजित जो उनका सातवाँ उग्र नामक शरीर है, उसकी पत्नी दीक्षा है और पुत्र सन्तान है। चन्द्रमा रूप महान आठवें शरीर की पत्नी रोहिणी है और पुत्र बुध है। महादेव के ये शरीर हैं, जिनका नामोल्लेखपूर्वक वर्णन किया गया है। ये सब शरीर अपने नामों के साथ वन्दनीय और नमस्करणीय हैं। जो मनुष्य सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु, अग्नि, व्योम, दीक्षित और चन्द्रमा रूपी महादेव के शरीर के प्रति

भक्ति प्रदर्शित करता है, वह निश्चय ही प्रज्ञावान् होता है और शिवसायुज्य प्राप्त करता है। मैंने आप लोगों के निकट इस गुह्य और यशदायक शिवतत्त्व को कहा। इसके फल से मनुष्यों और चतुष्पदों का मंगल हो। इस प्रकार आप लोगों को नामों के साथ महादेव के शरीर वर्णन को सुना दिया। अब इसके बाद भृगुवश का वर्णन सुनिए। ॥१–६० ॥

श्री वायु महापुराण का महादेव शरीर वर्णन नामक सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २७ ॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

ऋषिवंश कीर्तन

सूतजी बोले—भृगु से ख्याति के गर्भ में सुख-दुःख के प्रभु, निखिल प्राणियों को शुभाशुभ देनेवाले, मन्वन्तर विहारी धाता और विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। लोकभाविनी श्री देवी उनकी ज्येष्ठा भगिनी थीं, जिन्होंने नारायण को पति रूप में वरण किया। उस साध्वी के गर्भ से नारायण को बल और उत्साह नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। ये ही क्यों इस साध्वी श्री देवी के वे सभी मानस पुत्र हैं, जो दिव्यचारी हैं और पुण्य कर्म करनेवाले देवों के विमानों का संचालन करते हैं। आयति और नियति नामक दो प्रसिद्ध कन्यकाएँ धाता और विधाता की भार्या थीं, उन्हें पाण्डु और मृकण्डु नामक सनातन ब्रह्मकोश स्वरूप दो दृढ़व्रत पुत्र उत्पन्न हुए। मृकण्डु से मनस्विनी के गर्भ में मार्कण्डेय का जन्म हुआ। मार्कण्डेय को मूर्धन्या से वेदशिरा नामक पुत्र हुआ। फिर पीवरी के गर्भ से वेदशिरा को बहुत से वंश बढ़ानेवाले पुत्र हुए। वे सभी मार्कण्डेय नाम से प्रसिद्ध हैं और सभी वेदपारग ऋषि हैं। पाण्डु को पुण्डरीका के गर्भ से द्युतिमान्, द्युतिमन्त और सृजवान् नामक तीन पुत्र हुए। उनके बीच द्युतिमन्त और सृजवान् के पुत्र-पौत्रों ने भार्गवों से परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया। इस प्रकार स्वायम्भुव मनु के बीत जाने पर मरीचि का वंश-विस्तार सुनिये। मरीचि की पत्नी सम्भूति ने पूर्णमास नामक पुत्र और कुष्टि, तुष्टि, त्विषा और अपचिति नामक कन्याओं को उत्पन्न किया। पूर्णमास ने सरस्वती के गर्भ से विरज और पर्वस नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। विरज को सुधामा नामक विद्वान् पुत्र हुआ। सुधामसुत वैराज ने प्राच्यदेश का आश्रय लिया। गौरीपुत्र पर्वस सुधार्मिक, प्रतापवान् और महायशस्वी हुए। लोकपाल होकर ये सर्वगण में प्रविष्ट हुए। पर्वस ने पर्वसा के गर्भ से यज्ञवास और कश्यप नामक धर्मनिर्णायक और वंश वृद्धि करने वाले दो पुत्रों को उत्पन्न किया। अङ्गिरा ने स्मृति के गर्भ से भरताग्नि और कीर्तिमान् नामक दो पुत्र और सिनीवाली, कुहू, राका एवं अनुमति नामक चार पुत्रियों को उत्पन्न किया। अग्नि का संहती से पर्जन्य नामक पुत्र हुआ। फिर हिरण्यरोमा पर्जन्य ने मारीची के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न किया, जो महाप्रलय तक रहने वाला लोकपाल हुआ। कीर्तिमान् ने धेनुका से वरिष्ठ और धृतिमान् नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों ही आंगिरस श्रेष्ठ

Funding by IKS-MoE

थे। इन दोनों को हजारों पुत्र-पौत्र हुए। अनसूया ने अत्रि से पाँच निष्पाप पुत्र और एक कन्या को उत्पन्न किया। इस कन्या का नाम श्रुति था, जो शङ्खपादकी माता और प्रजापति कर्दम ऋषि की पत्नी थी। सत्यनेत्र, हव्य, आपोमूर्ति, शनीश्वर और सोम नामक जिन पाँचों पुत्रों को अनसूया ने उत्पन्न किया था, वे स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में विद्यमान् थे। याम (नामक देवगण) के अतीत होने पर ये पाँचों अत्रिवंशधर भी विलुप्त हो गए। स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में उनके सैकड़ों हजारों पुत्र-पौत्रगण महात्मा अत्रि के साथ विद्यमान् थे। प्रीति के गर्भ से पुलस्त्य को दत्तालि नामक पुत्र हुआ। ये ही स्वायम्भुव मनु के समय पूर्व जन्म में अगस्त्य थे। उन्हें देवबाहु और विनीत नामक दो भाई और हुए। इनकी छोटी बहन का नाम सद्वती था, जो अग्नि से ब्याही गई थी और पर्जन्य की माता थी पुलस्त्य ऋषि के ज्येष्ठ पुत्र धीमान् दत्तालि ने अपनी पत्नी में सुजंघ प्रभृति बहुतेरे पुत्रों को उत्पन्न किया, जो स्वायम्भुव मन्वन्तर में पौलस्त्य नाम से विख्यात थे। पुलह प्रजापति की पत्नी क्षमा ने अनेक पुत्रों को प्रसव किया, जो अग्नितुल्य तेजस्वी और कीर्तिमान् थे। उनके नाम कर्दम, अम्बरीष और सहिष्णु थे। सहिष्णु का दूसरा नाम धनकपीवान् भी था। इनकी सुन्दरी भगिनी का नाम पीवरी था। कर्दम की पत्नी अत्रिपुत्री श्रुति ने शङ्खपाद नामक पुत्र और काम्या नाम की एक कन्या को उत्पन्न किया। वही श्रीमान् लोकपाल प्रजापति शङ्खपाद अपनी भगिनी काम्या को राजा प्रियव्रत से ब्याह कर दक्षिण दिशा की ओर चले गये। काम्या ने प्रियव्रत से स्वयम्भू तुल्य दस पुत्रों को और दो कन्याओं को प्राप्त किया। इन्हीं पुत्रों से क्षत्रकुल की वृद्धि हुई। पुलह के तीसरे पुत्र सहिष्णु या धनकपीवान् ने सुमध्यमा नामवाली अपनी पत्नी से यशोधारी कामदेव नामक पुत्र को उत्पन्न किया। ऋतु को ऋतु के तुल्य पुत्र हुआ। इसी से उनकी सन्तति चली। इन्हें न भार्या थी और न पुत्र। सभी ऊर्ध्वरेता थे। ये साठ हजार वालखिल्य कहलाते हैं। ये दिवाकर को चारों ओर घेर कर अरुण के आगे आगे जाते हैं। जब तक प्रलय नहीं होता है, तब तक ये सूर्य के साथ चलते रहते हैं। इन्हें दो छोटी बहनें थीं, जिनका नाम पुण्या और आत्मसुमती था। ये दोनों ही पूर्णमास सुत पर्वस की पुत्र बधुयें थीं। ऊर्जा के गर्भ से वसिष्ठ को सात बेटे और एक पुत्री हुई, जिसका नाम पुण्डरीका था। कृशकटि वह द्युतिमान् की माता और पाण्डु की प्रिय पत्नी थी। इसी के गर्भ से विख्यात सप्त वासिष्ठ ने भी जन्म ग्रहण किया। इनके नाम रज, पुत्र, अर्द्धबाहु, सवन, अधन, सुतपा और शुक्ल थे। ये सप्तर्षि कहलाते हैं। मनस्विनी मार्कण्डेयी ने रजस् से राजन्य, केतुमान् और प्रजापति को उत्पन्न किया। इन्होंने प्रतीची दिशा में आश्रय प्राप्त किथा था। महात्मा वासिष्ठों का वंश नाम के साथ स्वायम्भुव मन्वन्तर में लुप्त हो गया। अब अग्नि का वंश विस्तार सुमिये। यह मैंने ऋषियों का वंश-विस्तार कहा। अब और विस्तार के साथ अग्नि का वंशविस्तार अविकल रूप से कह रहा हूँ सुनिये। ॥ १–३९ ॥

श्री वायु महापुराण का ऋषिवंश-कीर्तन नामक
अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २८ ॥

Funding by IKS-MoE

उनतीसवाँ अध्याय

अग्नि वंश-वर्णन

स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में जो ब्रह्मा के मानस पुत्र अभिमानी अग्नि उत्पन्न हुए थे, उन्होंने स्वाहा से तीन पुत्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम थे पावक, पावमान या पवमान और शुचि। शुचि सौर भी कहे जाते हैं। मन्थन से निकली अग्नि पवमान है। सूर्यकिरणस्थ अग्नि शुचि है और वैद्युत अग्नि का नाम पावक है। इनके ये ही वासस्थान भी हैं। पवमान को कव्यवाहन, पावक को सहरक्ष और शुचि को हव्यवाह नामक पुत्र हुए। देवताओं के अग्नि हव्यवाहन हैं, पितरों के कव्यवाहन और असुरों के सहरक्ष अग्नि हैं। इस प्रकार इन तीनों के ये तीन अग्नि हैं। इनके पुत्र-पौत्रादि उनचास हैं। अब हम पृथक्-पृथक् नाम से इनके विभाग को कहते हैं। पहले ब्रह्मा के सुत लौकिकाग्नि वैद्युत् हुए, जिनके ब्रह्मौदनाग्नि पुत्र हुए जिनका नाम भरत हुआ। वैश्वानरमुख उनका तेज एवं जल का रस काव्य रूप से कहा गया है। पुष्करोदधि के मन्थनकाल में अमृत निकलने के बाद अथर्वण अग्नि की उत्पत्ति हुई है। ये ही अथर्वा लौकिकाग्नि हैं। इनके बेटे का नाम दध्यङ्ङ था। अथर्वा ही भृगु थे और इनके पुत्र थे अङ्गिरा। अङ्गिरा ही अथर्वापुत्र लौकिकाग्नि दध्यङ्ङ हैं। विद्वानों ने जिस मन्थन से निकली अग्नि को पवमान कहा है, वही गार्हपत्य अग्नि है। उस अग्नि के दो पुत्र हैं। पहला आहवनीय अग्नि, हव्यवाहन या शंस्य अग्नि और दूसरा शुक्राग्नि। शंस्य अग्नि को सभ्य और आवसथ्य नामक दो पुत्र हुए। ब्राह्मण लोग जिस अग्नि को अभिमानी आहवनीय हव्यवाहन कहते हैं, उसी शंस्य अग्नि ने सोलह नदियों की अभिलाषी की। कावेरी, कृष्णवेणी, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता, चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी, शतद्रु, सरयू, सीता, सरस्वती, ह्लादिनी और पावनी नामक सोलह नदियों में शंस्य अग्नि ने अपने को पृथक्-पृथक् सोलह भागों में विभक्त कर उन धीष्णियों (आधारभूत नदियों) में आसक्त हुए। अग्नि स्वयं धिष्णय हैं। और साध्वी नदियों से उन्हें अनेक पुत्र हुए, जो धिष्णी से उत्पन्न होने के कारण धिष्णय कहलाये। ये नदी-पुत्र जो धिष्णयों में उत्पन्न हुए हैं और अग्नि हैं, उनके विहार योग्य स्थानों को सुनिये हम संक्षेप में कहते हैं। ऋतु, प्रवाहण, अग्नीध्र और अपरापर धीष्णिगण यज्ञ दिवस में सवनक्रम से यथास्थान सम्मुख भाग में स्थापित होते हैं। जो अग्नि अनिर्देश्य और अवाच्य हैं अर्थात् जिनके स्थान आदि का निर्देश नहीं हुआ है, उनके क्रम को सुनिये। कृशानु नामक जो सम्राट् अग्नि हैं, वे यज्ञ के उत्तर द्वितीय वेदी पर निवास करते हैं। सम्राट् अग्नि आठ प्रकार के हैं, जिनकी ब्राह्मण लोग पूजा किया करते हैं। पूर्वोक्त आठों अग्नियों में पर्षत् अग्नि द्वितीय हैं। ये वेदी के अधोभाग में रहते हैं। भ्रतद्वोच (?) में नभ नामके अग्नि चार नामों से स्थित हैं। ब्रह्मज्योति वसु नामक अग्नि ब्रह्मस्थान में रहते हैं। हव्य और सूर्यादि से जिनका कोई संसर्ग नहीं है, वह अग्नि शामित्र कर्म में स्थापित होते हैं। समुद्राग्नि का नाम विश्वस्याय है। यह ब्रह्मस्थान में निहित होते हैं। ऋतुधामा सुज्योति अग्नि औदुम्बरी में स्थापित होते हैं। ब्रह्मज्योति वसु

Funding by IKS-MoE

नामक अग्नि ब्रह्म स्थान में रहते हैं। अजैकपाद् अग्नि पूजनीय हैं और यज्ञशालामुख में स्थापित होते हैं। अहिर्बुध्न अग्नि अनुद्देश्य हैं और गृहपति कहलाते हैं। शंस्य के सभी पुत्र ब्राह्मणों द्वारा पूजनीय कहे गये हैं। अब विहरणीय अग्नि और उनके आठों पुत्रों को कहते हैं। ऋतु, प्रवाहन, आग्नीध्र और वहाँ रहने वाले धीष्णिगण यज्ञदिवस में सवनक्रम से यथास्थान विहार करते हैं। उनके सुत हव्यवाहन अग्नि पैत्रेय कहे जाते हैं और शान्ति नामक अग्नि प्रचेता स्वरूप हैं। सत्य अग्नि द्वितीय कहे जाते हैं अर्थात् इनका दूसरा स्थान है। विश्वदेव नामक अग्नि ब्रह्म स्थान में स्थापित होते हैं। अचक्षु एवं अच्छावक अग्नि का भूमि में स्थापन होता है। सवीर्य उशीराग्नि नेष्ठीय कहे जाते हैं। अष्टम व्यरत्नि अग्नि मार्जालीय कहे जाते हैं। जो धिष्णाय सौम्य और आज्य के विहार योग्य हैं, उन दोनों के बीच पावक नामक अग्नि जलराशि के गर्भ कहे जाते हैं। जो अग्नि जल में अच्छी तरह से डूबे रहते हैं, वह अवभृथ कहलाते हैं। इनके पुत्र का नाम हृच्छय अग्नि है, जो मनुष्यों के जठर देश में वर्तमान हैं। जाठराग्नि के पुत्र विद्वान् मन्युमान् अग्नि हैं। ये भूतों के प्रभु और परस्पर व्याप्त हैं। मन्युमान् अग्नि के पुत्र घोर संवर्तक हैं। ये वड़वामुख होकर समुद्र में जल पीते हुए निवास करते हैं। समुद्रवासी वड़वामुख के पुत्र सहरक्ष हैं। सहरक्ष के पुत्र क्षाम हैं, जो मनुष्यों के घर जलाते हैं। इनके पुत्र क्रव्याद् अग्नि हैं, जो मृत पुरुषों को जलाते हैं। पावक अग्नि के इतने ही पुत्र हैं, जिनका वर्णन कर दिया। शुचि सौरि अग्नि गन्धर्व-असुरों द्वारा अरणिमन्थन करने से समिद्ध (प्रदीप्त) हुए। आयु नामक भगवान् अग्नि पशुशरीर में वर्तमान रहते हैं। आयु के पुत्र महिमान् हैं। इनके शावान नामक पुत्र हुए। जो अग्नि पाकयज्ञ में प्रतिष्ठित होते हैं, वे सवन कहलाते हैं। सवन के पुत्र महायशा अद्भुत हैं। अद्भुत अग्नि के पुत्र महाविविचि हैं। ये प्रायश्चित्त होम में हुत हवन का भक्षण करते हैं। विविचि के अर्क हैं और अर्क के पुत्र अनीकवान्, वासृजवान्, रक्षोहा, पित्तकृत और सुरभि हैं। यही स्वर्णवर्ण सुरभि अग्नि धन, रत्नादि में ज्योति रूप से प्रविष्ट हैं। ये सभी शुचि अग्नि के सन्तान हैं और संख्या में चौदह हैं। ये सभी वह्नि कहलाते हैं और यज्ञ में प्रयुक्त होते हैं। जो सभी अभिमानी अग्नि अतीत स्वायम्भुव मनु के समय आदि सर्ग में याम देवों के साथ बीत गए हैं, वे विहरणीय अग्नि कहलाते हैं। ये चेतनाचेतन सब में स्थित हैं। पहले ये काम्य, नैमित्तिक और नित्य कर्म में स्थित रहकर स्थानाभिमानी हव्यवाहन थे एवं पूर्व मन्वन्तर के बीत जाने पर प्रथम मनु के अधिकार-काल में पुण्यशाली महात्मा उज्वल याम देवों के साथ स्थित थे। यह मैंने स्थान-धारियों के स्थानों को कहा। अतीत और अनागत सभी मन्वन्तरों में अग्नियों का लक्षण इसी प्रकार कहा गया है। ये सभी तपस्वी अवभृथ, प्रजाओं के पति और ज्योतिष्मान् हैं। स्वारोचिष मनु के समय से सावर्णि मनु के अधिकार तक सातों मन्वन्तरों में नाना प्रयोजनवश वर्तमान देवों के साथ अग्नि निवास करते हैं और अनागत देवों के साथ अनागत अग्नि। हमने यह यथाप्रकार अग्नियों का निर्णय किया। अब क्रमपूर्वक पितरों का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं। ॥ १–४९ ॥

श्री वायु महापुराण का अग्नि वर्णन नामक उनतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ २९ ॥

Funding by IKS-MoE

तीसवाँ अध्याय

दक्षशाप-वर्णन

सूतजी बोले—स्वायम्भुव मन्वन्तर में भगवान् प्रजापति जब पहले प्रजा की सृष्टि करने लगे, तब पहले जल फिर देव, असुर और मनुष्यों की सृष्टि हुई। अपने को पिता की तरह मानने वाले ब्रह्मा से पितरगण उत्पन्न हुए। इनकी सृष्टि के सम्बन्ध में पहले कुछ कहा जा चुका है। अब विस्तारपूर्वक कह रहे हैं। भगवान् ब्रह्मा ने देव, असुर और मनुष्यों को देख कर कहा—हम सभी के पितातुल्य हैं। उसी समय वसन्त आदि पितरतुल्य षट्ऋतुओं का उदय हुआ। इन्हीं ऋतुओं को पितर कहा जाता है। वसन्त ऋतु पितृदेव है, यह वैदिकी श्रुति है। स्वायम्भुवादि सभी अतीत और अनागत मन्वन्तरों में पितृगण उत्पन्न होते हैं। इनके नाम अग्निष्वात्ता और वर्हिषत् हैं। इनमें कुछ गृहमेधी और अयज्वा (यज्ञ नहीं करने वाले) हैं। अग्निष्वात्ता नाम के पितर अनाहिताग्नि अर्थात् अग्नि से सम्पर्क न रखनेवाले हैं। पितरों के बीच जो यज्वा और सोमपीथी हैं वे वहिंषद् पितर अग्निहोत्री हैं। 'ऋतुगण ही पितरदेव हैं, यह शास्त्रों का निश्चित मत है। चैत्र-वैशाख रस, ज्येष्ठ-आषाढ़ ग्रीष्म, श्रावण-भाद्रपद जीव, आश्विन-कार्तिक सुधा, मार्गशीर्ष-पौष मन्यु, माघ-फाल्गुन घोर शिशिर' कहे जाते हैं। मासानुरूप षड् ऋतुओं की यही कालव्यवस्था हुई। ये ऋतुगण चेतन एवम् अचेतन कहे जाते हैं। ऋतुगण ब्रह्मा के अभिमानी पुत्र कहे गये हैं। मासार्द्ध काल में ऋतुगण आर्तव रूप में परिणत होते हैं और नियत स्थान पर रहने के कारण स्थानाभिमानी होते हैं। अहोरात्र, मास, ऋतु अयन, संवत्सर आदि अवस्था के अभिमानी काल के अवयव हैं। निमेष, कला, काष्ठा, मुहूर्त और दिन-रात आदि काल की व्यवस्था में जो स्थानाभिमानी हैं, वे उसी स्वरूप में वर्तमान रहने के कारण उन्हीं के तुल्य हैं। इनके सम्बन्ध में भी मैं कहता हूँ, सुनिये। पर्व, तिथि, सन्ध्या, महीने का आधा पक्ष, निमेष, कला, काष्ठा, मुहुर्त, दिन-रात, दो पक्षों का एक मास, दो महीने की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का अयन, दक्षिणोत्तर भेद से दो अयन और संवत्सर अथवा सुमेक होता है। ये सभी स्थानधारियों के स्थान हैं अर्थात् कालरूप अवयवी के अवयव हैं। ऋतुगण सुमेक के पुत्र हैं, जो छः या आठ भागों में विभक्त हैं। ऋतुओं के पाँच पुत्र हैं, जो प्रजागण के बीच आर्तव नाम से प्रसिद्ध हैं। यतः चर और अचर आर्तव से उत्पन्न हैं; अतः इनके पिता आर्तव हुए और ऋतुगण पितामह। सुमेक से जो प्रजागण उत्पन्न हुए वे मर गये; इसलिये सुमेक मृत प्रजाओं के प्रपितामह कहलाये। ये यथास्थान-स्थित स्थानी हैं। अतः स्थानात्मक कहे जाते हैं। उसी रूप में वर्तमान रहने के कारण वे उन स्थानों के तुल्य हैं और उसी नाम से प्रसिद्ध हैं। प्रजापति ही संवत्सर हैं और संवत्सर ही अग्नि या ऋतु हैं, ऐसा विद्वानों ने कहा है। ऋत से ऋतुओं का जन्म हुआ है, इसीलिये वे ऋतु कहलायीं। छवों ऋतुओं में मासों का समावेश हो जाता है; इसलिये मास भी ऋतु स्वरूप हैं। ऋतुओं को आर्तव नामक पाँच पुत्र हैं। द्विपद, चतुष्पद, पक्षी, सरीसृप और

स्थावरादि पांचभौतिकों का जो पुष्पकाल है, वही आर्तव कहलाता है। ऋतुत्व और आर्तवत्व पितृत्व कहलाता है; इसलिये ऋतु और आर्तव पितर कहे गये हैं। सुना है कि सकल भूत ऋतुकाल में ऋतु और आर्तव से उत्पन्न हुये हैं; इसलिये आर्तव भी पितर हैं। सभी मन्वन्तरों में ये स्थानाभिमानी और कालाभिमानी संयमपूर्वक वर्तमान रहते हैं। अग्निष्वात्ता और बर्हिषद् नामक दो तरह के पितर हैं। इन पितरों ने लोकप्रसिद्ध दो कन्याओं को उत्पन्न किया। उनका नाम था मेना और धारिणी। इन्हीं दोनों ने इस संसार को धारण किया है। ब्रह्मवादिनी और परमयोगिनी उन कन्याओं को पितरों ने धर्म के लिये दान कर दिया। अग्निष्वात्ता की मानस पुत्री मेना थी और बर्हिषद् की मानस कन्या धारिणी थी। सोमपीथी बर्हिषद् पितर ने सुन्दरी धारिणी को मेरु से ब्याह दिया और अग्निष्वात्ता ने हिमालय से मेना का ब्याह कर दिया। अब उनके पौत्रों की कथा सुनिये। हिमालय की पत्नी मेना ने मैनाक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उसे नदियों में श्रेष्ठ एक गंगा नाम की बेटी भी हुई, जो लवण-सागर की पत्नी है। मैनाक का एक छोटा भाई भी था, जिसका नाम क्रौंच था। इसी के नाम पर क्रौंच द्वीप हुआ है। मेरु-पत्नी धारणी ने दिव्य औषधियों से युक्त मन्दार नामक पुत्र को उत्पन्न किया एवं वेला, नियति और आयति नामक तीन पुत्रियों को भी जन्म दिया। इनमें आयति से धाता ने और नियति से विधाता ने ब्याह किया। स्वायम्भुव मन्वन्तर के समय इनकी सन्ततियों की चर्चा की गई है। वेला ने सागर की पत्नी होकर एक अपूर्व सुन्दरी कन्या को उत्पन्न किया। सावर्णि ने उस सामुद्री नाम की कन्या को प्राचीन बर्हिष के हाथ में सौंपा। अपने पति से उस सामुद्री ने दस पुत्रों को प्राप्त किया। वे सभी प्रचेतस धनुर्वेद के पारगामी विद्वान् थे। चाक्षुष मनु के अधिकार काल में भगवान् त्र्यम्बक के अभिशाप से स्वायम्भुव दक्ष उनके पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे॥ १—३७॥

शांशपायन ने यह कथा सुन कर सूत से पूछा—चाक्षुष मन्वन्तर में महादेव के शाप से दक्ष किस प्रकार उत्पन्न हुआ इसको कृपाकर कहिये। सूतजी शांशपायन को सम्बोधन करके महादेव जी ने जिस कारण दक्ष को शाप दिया, वह कथा कहने लगे। पहले कहा जा चुका है कि दक्ष को आठ कन्याएँ थीं, उन्हें अपने घर में लाकर दक्ष ने उनका अच्छा सत्कार किया। इस प्रकार सत्कृत होकर वे कन्याएँ पिता के घर में रहने लगीं। लेकिन दक्ष ने अपनी सबसे बड़ी लड़की सती को, जो कि महादेव से ब्याही हुई थी, नहीं बुलाया; क्योंकि दक्ष का महादेव से कुछ मनमुटाव था। बात यह थी कि किसी दिन महादेव ने दक्ष को प्रणाम नहीं किया था। यह दक्ष को बहुत बुरा लगा कि, जामाता होकर भी ये ससुर के सामने अभिमान करते हैं। सती को जब यह मालूम हुआ कि हमारी सब बहनें मायके पहुँची हुई हैं, तो वह भी बिना बुलावे के ही वहाँ पहुंच गयीं। सती वहाँ पहुंची तो सही; लेकिन पिता ने उनका वैसा सत्कार नहीं किया, जैसा कि उनकी और बहनों का किया था। क्रोध से तमक कर सती ने पिता से कहा—तात! आप छोटी बहनों का तो बड़ा सत्कार कर रहे हैं; किन्तु मेरा निरादर कर रहे हैं। मैं सब बहनों से बड़ी हूँ, श्रेष्ठ हूँ, इसलिये निरादर के योग्य नहीं हो सकती। यह सुनते

Funding by IKS-MoE

ही लाल-लाल आँखें करके दक्ष ने सती से कहा—यह सत्य है कि तू मेरी ज्येष्ठ, श्रेष्ठ और आदरणीय पुत्री हो; किन्तु मैं अपनी और लड़कियों के पतियों को बहुत अच्छा समझता हूँ। इसलिये कि वे सब के सब महादेव से ज्यादा गुणी, प्रशंसनीय, धार्मिक, महायोगी, तपस्वी और ब्रह्मकर्म को जाननेवाले हैं। वसिष्ठ, पुलस्त्य, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, भृगु और मरीचि आदि मेरे अच्छे जामाता हैं। महादेव मेरे विरुद्ध हैं और तू उन्हीं की आत्मा हो, एवं उनकी ही सेवा करती हो; इसलिये मैं तेरा सत्कार नहीं कर सकता। मूढ़चित्त दक्ष ने शाप पाने की इच्छा से सती से इस प्रकार कहा। परमर्षिगण भी ऐसा ही समझते हैं। यह सुनते ही सती ने क्रुद्ध होकर पिता से कहा—मन, वचन और कर्म से मैं पवित्र हूँ, फिर भी आप मेरा तिरस्कार करते हैं। इसलिये आपके द्वारा जो यह मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है, उसे ही मैं छोड़ देती हूँ। उस अपमान से सती को बड़ा दुःख हुआ। उसने मन ही मन महादेव को प्रणाम करके कहा—मैं जहाँ कहीं अपने इस तेजस्वी शरीर से जन्म ग्रहण करूँगी, वहाँ बिना किसी मोह-माया में फँसे ऐसा धर्माचरण करूँगी, जिससे कि मैं फिर महादेव की ही पत्नी होऊँ। इस तरह कह कर सती वहीं पर योगासन लगा कर बैठ गयीं। मन ही मन उन्होंने अग्नि की धारणा की। उस धारणा से आग्नेयी वायु उत्पन्न हुई, जिसने समूची देह में आग भड़का कर उसे राख कर दिया। शूलधारी महादेव ने जब यह सुना और उस समाचार की सत्यता पर भी विश्वास हो गया, तब वे ऋषियों और दक्ष पर बहुत क्रुद्ध हुये। उन्होंने कहा—दक्ष! तुमने जिस कारण मेरे लिये सती का तिरस्कार किया और अपनी दूसरी सब बेटियों का पतियों के साथ सत्कार किया; इसलिये तुम्हारे पक्षपाती ऋषिगण मृत्यु मुख में प्राप्त होंगे एवं वैवस्वत मन्वन्तर में मेरे द्वितीय यज्ञ से उत्पन्न होकर वे अयोनिज कहलावेंगे। चाक्षुष मनु के अधिकार काल में ब्रह्मा इन्द्र का यज्ञ करा रहे थे कि, ऋषियों को वैसा कहते हुए महादेव दक्ष के समीप पहुँचे और कहा—चाक्षुष मन्वन्तर में ही चाक्षुष नाम का एक राजा होगा, जो प्राचीन वर्हिष का पौत्र और प्रचेता का पुत्र होगा। वही राजा तुम्हें वृक्षकन्या मार्षा के गर्भ से उत्पन्न करेगा और तुम्हारा नाम दक्ष ही रखेगा।

दक्ष बोले—हे दुर्मति! मैं तुम्हारे धर्मार्थयुक्त कर्म में उस जन्म में भी बार-बार विघ्न उपस्थित करूँगा। जिस लिये तुमने मेरे कारण ऋषियों के प्रति क्रूरता का व्यवहार किया है; इसलिये द्विजगण यज्ञ में देवों के साथ तुम्हारी पूजा नहीं करेंगे। वे आहुति देने के बाद कर्म में यानी यज्ञकुण्ड में जल छोड़ दिया करेंगे और तुम स्वर्ग छोड़ कर इसी भूलोक में युगक्षय पर्यन्त निवास करोगे।

रुद्र बोले—सब लोकों में यह भूलोक ही श्रेष्ठ कहा गया है। इसका धारण मैं परमेष्ठी की आज्ञा से ही कर रहा हूँ। इस क्षितितल में भास्करोपम लोक विराजमान हैं। उन्हें मैं सदा धारण किये रहता हूँ, वह कुछ तुम्हारी आज्ञा से नहीं। देवों के बीच भी चतुर्वर्ण व्यवस्था है; पर वे सभी एक साथ ही बैठ कर खान-पान कर लिया करते हैं और मैं उनके साथ नहीं खाता; इसलिये मुझे पृथक् किया जाता है। इसीलिये वे लोग देवों के साथ मेरी पूजा न कर पृथक् पूजा करते हैं। इस तरह अत्यन्त

Funding by IKS-MoE

तेजस्वी रुद्र से शप्त होकर स्वायम्भुव मन्वन्तर के बाद मनुष्यलोक में दक्ष प्रजापति ने जन्म ग्रहण किया। अपने को ज्ञानवान् समर्थ और गृहपति जानकर दक्ष ने देवों के साथ मिल कर एक महायज्ञ आरम्भ किया। इधर वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर शैलाधिराज हिमालय ने मेना के गर्भ से देवी सती को उमा के रूप में उत्पन्न किया। वही देवी जो पहले सती थी, पीछे उमा हुई। महादेव के साथ रहना ही उसका व्रत है। वह कभी भी किसी भी मन्वन्तर में महादेव को उसी प्रकार नहीं छोड़तीं, जैसे अनुव्रता अदिति देवी मारीच कश्यप को, लक्ष्मी नारायण को, शची इन्द्र को, रुचि सूर्य को, अरुन्धती वसिष्ठ को किसी भी तरह नहीं छोड़ती हैं। दूसरे कल्पों के लौटने पर भी ये देवियाँ उन्हीं के साथ उत्पन्न होती हैं ॥३—७३॥

इधर दक्ष प्रजापति भी रुद्र के शाप से चाक्षुष मन्वन्तर में प्राचीन बर्हिष के पौत्र होकर दश प्रचेता से मार्षा के गर्भ से फिर उत्पन्न हुए यह हम लोगों ने सुना है। भृगु आदि जो महर्षि थे, वे भी वैवस्वत मनु के पूर्व त्रेतायुग के आदि में वरुण-सदृश शरीर को धारण कर महान् देवता के यज्ञ में उत्पन्न हुए। दक्ष प्रजापति और धीमान् महादेव का विद्वेष इस प्रकार जन्मान्तर में भी चलने लगा। इसलिये बैरियों के प्रति कभी भी विद्वेष नहीं करना चाहिये। शुभाशुभ कर्म से परिचालित जन्तु के आन्तरिक भाव दूसरे जन्म में भी नहीं छूटते हैं। इसीलिये यह जानकर विद्वेष नहीं करना चाहिये।

ऋषिगण बोले—सूत! वैवस्वत मन्वन्तर में प्राचेतस दक्षप्रजापति का अश्वमेध किस प्रकार नष्ट हुआ? दक्ष ने सती की मृत्यु से क्रुद्ध सर्वात्मक महादेव को किस प्रकार प्रसन्न किया और अपने यज्ञ को किस प्रकार सम्पन्न किया? यह हम जानना चाहते हैं कृपा कर कहिये।

सूतजी बोले—द्विजगण! पूर्व काल में मेरु के विश्व-विश्रुत सर्वरत्नों से विभूषित ज्योतिष नामक पवित्र शिखर पर महादेव जी इस प्रकार बैठे थे, मानो कोई पलंग पर बैठा हो। गिरिवर हिमालय का वह श्रृङ्ग सब का पूज्य, अत्यन्त विस्तृत और किसी प्रकार से उल्लंघन के योग्य न था। पार्वती भी उनकी बगल में बैठी हुई थीं। उस समय आदित्यगण, अत्यन्त पराक्रमी वसुगण, दोनों भाई वैद्यराज अश्विनीकुमार, गुह्यकों को साथ लेकर राजा वैश्रवण, सनत्कुमार आदि परमर्षि, अङ्गिरा आदि देवर्षि, विश्वावसु गन्धर्व, नारद, पर्वत, कैलास निवासी यक्षराज, महामुनि उशना और अप्सराएँ बार-बार आकर उनकी पूजा-उपासना करने लगीं। उस समय कल्याणकारक, सुखद, सुगन्धित शीतल वायु चल रही थी, सब ऋतुओं के फूलों से युक्त होकर विटप सुशोभित हो रहे थे और सिद्ध, विद्याधर तथा तपस्वी आदि महादेव पशुपति की उपासना कर रहे थे। विविध स्वरूपों को धारण करने वाले नाना प्रकार के भूत, महा भयङ्कर राक्षस, महाबली पिशाच आदि बहुविध रूपों को धारण करके और नाना प्रकार के अस्त्रों से सज्जित होकर अग्नि के समान दीप्ति को धारण कर सेवा कार्य करने लगे। भगवान् नन्दीश्वर चमकते हुए प्रज्वलित त्रिशूल को लेकर उनके निकट आदेश पालन करने जा बैठे। द्विजगण! उस समय सब तीर्थों के जल को उत्पन्न करनेवाली नदी श्रेष्ठ और देव स्वरूप को धारण करनेवाली गंगा भी उनकी सेवा करने लगीं। इस प्रकार देवर्षियों और महा भाग्यशाली देवताओं से घिरे हुए भगवान् महादेव वहाँ बैठे थे।

Funding by IKS-MoE

उसी समय दक्ष ने हिमालय के पृष्ठ देश में यज्ञ आरम्भ किया। यज्ञस्थान सिद्ध-ऋषियों से सेवित, मंगलकारक गंगाद्वार में बनाया गया। ऐसा सुना जाता है कि अग्नि के तुल्य तेजस्वी इन्द्र प्रमुख देवगण उस यज्ञ में जाने का विचार करने लगे और अग्नि के समान अपने चमकीले विमानों पर चढ़ कर वे सब महात्मा गंगाद्वार पहुँचे। भिन्न-भिन्न प्रकार की द्रुम-लताओं से आवृत्त, गन्धर्व-अप्सराओं से व्याप्त, ऋषि समूहों से घिरे हुए धर्मध्वज दक्ष प्रजापति की पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक के निवासी हाथ जोड़ कर स्तुति और प्रशंसा करने लगे। आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, मरुद्गण और विष्णु आदि यज्ञ में भाग पाने वाले वहाँ पहुँचे। उष्म, सोम, आज्य और धूम पीने वाले अश्विनीकुमार, पितर और ब्रह्मा आदि देवगण भी आये। इनके अतिरिक्त बहुतेरे जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज आदि प्राणी, सभी देव मन्त्रबल से पत्नियों के साथ बुलाये गये। वे सभी विमान विहारी देव अग्नि की तरह प्रदीप्त हो रहे थे। उन सब को देख कर सुखपूर्वक बैठे हुए दधीचि ने दक्ष से कहा—अपूज्यों को पूजने और पूज्यों को न पूजने से मनुष्य घोर पाप का भागी होता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह कह कर विप्रर्षि ने फिर दक्ष से कहा—पूजनीय प्रभु महादेव को आप क्यों नहीं बुला रहे हैं ?

दक्ष बोले—ग्यारह प्रकार के कितने ही शूलधारी कपर्दी रुद्र मेरे यज्ञ में उपस्थित हैं। यहाँ हम दूसरे महादेव को नहीं जानते !

दधीचि बोले—सब से बड़ी बात यह है कि, महादेव निमन्त्रित नहीं हुये हैं। इनसे भी बड़े कोई देवता हैं, ऐसा हम नहीं समझते। इसलिये दक्ष का यह विपुल आयोजन वाला यज्ञ सम्पन्न हो सकेगा ?

दक्ष बोले—इस यज्ञ में हम विधि विधान से मन्त्रपूत समस्त हवि को स्वर्णपात्र में रख कर विष्णु को समर्पण करेंगे। विष्णु ही नित्य हवनीय, प्रभु, विभु और अप्रतिभ हैं। इधर नगेन्द्र-नन्दिनी पार्वती ने सभी देवताओं को कहीं जाते हुए देख कर महादेव से कहा।

भगवन् ! तत्वज्ञ ! हमारे मन में कुतूहल हो रहा है कि, ये इन्द्र आदि देवता कहाँ गये हैं ? आप सब समझा कर कहें।

महादेव बोले—महाभागे ! दक्ष नामक एक उत्तम प्रजापति हैं, वे ही अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं वहाँ ये देवगण जा रहे हैं।

देवी बोली—महा भाग ! इस यज्ञ में आप क्यों नहीं गये ? किसलिए आप को वहाँ नहीं बुलाया गया है ?

महादेव बोले—महाभागे ! देवों ने ही यह सब किया है कि, किसी भी यज्ञ में हमारे लिये भाग नहीं रखा जाय। वरवर्णिनि ! उसी पूर्व व्यवस्था के अनुसार विद्वान् देवगण हमें यज्ञ में भाग नहीं देते हैं ॥ ४–११३ ॥

देवी बोली—अनघ ! भगवन् ! सभी देवों में आपका अधिक प्रभाव है, आप अधिक गुणवान् भी हैं। यही क्यों, तेज, यश और शोभा की अधिकता से आप अजेय और अधृष्य हैं, । अतः महाभाग !

Funding by IKS-MoE

आप का जो यह तिरस्कार हुआ है, इससे मुझे बहुत दुःख हुआ है, मेरा शरीर काँप रहा है। मैं कौनसा दान, नियम या तप करूँ, जिससे मेरे अचिन्तनीय भाग्यवान् पति यज्ञ में आधा अथवा तृतीय भाग प्राप्त करें। इस प्रकार बोलनेवाली अपनी दुःखी पत्नी पर प्रसन्न होकर महादेव जी ने कहा——कृशोदराङ्गि! तुम जो कह रही हो कि, मैं नहीं जानती, यह क्या ठीक कह रही हो? हम इस बात को जानते हैं कि साधु पुरुष ध्यानयोग से सब बातों को जान जाते हैं। महेन्द्र प्रमुख देवों को कौन कहे, तीनों लोक तुम्हारी माया से मोहित हो गया है। देखो, प्रस्तोता यज्ञ में हमारा ही स्तवन कर रहे हैं, रथन्तर साम गान हो रहा है। ब्राह्मण लोग ब्रह्मयज्ञ में हमारी ही पूजा कर रहे हैं और अध्वर्युगण हमारे लिये भाग कल्पित कर रहे हैं।

देवी बोली—स्त्रियों के बीच तो मामूली आदमी भी अधिक प्रशंसा कर दिया करता है और अपनी कमजोरी छिपा लिया करता है। यह पक्की बात है। क्या आप भी वही कर रहे हैं?

भगवान् बोले——देवेशि! हम झूठमूठ अपनी प्रशंसा नहीं कर रहे हैं। वरारोहे! वरवर्णिनि! तुम आकर देखो कि, अपने भाग के लिये हम किसकी सृष्टि कर रहे हैं। प्राण से भी प्रिय पत्नी को भगवान् ने ऐसा कह कर अपने मुँह से जाज्वल्यमान अग्नि की तरह एक भूत को उत्पन्न किया, जिसे हजार सिर, हजार पैर और हजार आँखें थीं। वह हजारों मुद्गर और हजारों वाणों को हाथों में रखे हुए था, शंख, चक्र, गदा और पालिश किये हुए धनुष को भी धारण किये हुए था। उसके हाथ में फरसा और खड्ग भी था। उसका रौद्र रूप देखने में भयावह जान पड़ता था; किन्तु उसका घोर रूप देदीप्यमान हो रहा था। वह अर्द्ध चन्द्र से भूषित था, रक्तमय बाघंबर पहने हुए था, उसके बड़े विकराल दाँत थे, उसका पेट और मुँह दोनों ही विशाल थे। लम्बे ओठों के बीच उसकी जीभ बिजली की तरह लपलपा रही थी। उसके कान भी बड़े-बड़े थे और वह दुरासद था। वज्र से उसके हाथ चमक रहे थे और प्रभाधिक्य के कारण केशराशि भी प्रदीप्त हो रही थी। ज्वालमाला की भाँति वह मुक्तामाला पहने हुए और प्रलयकालीन अग्नि की तरह अपनी कान्ति से दीप्त हो रहा था। उसके मुँह कान तक फटे हुए थे, जिसमें चार भयानक दाँत दिखाई देते थे। वह महाबली, महा तेजस्वी, महापुरुष, ईश्वर, विश्वहर्ता और विशाल शरीर वाला था। महान् वटवृक्ष की तरह उसका देह विस्तार था। वह शतचन्द्र के समान उज्वल और कामाग्नि की तरह दीप्यमान था। उसे चार बड़े बड़े मुँह थे, जिसमें चमकते हुए दाँत थे। तेज, बल और पौरुष की अधिकता से वह अत्यन्त उग्र था। प्रलयकालीन हजारों सूर्य और अग्नि की तरह वह भास्कर, सुमेरु, कैलास और हिमालय की तरह विशाल था, हजारों चन्द्र की निर्मल कान्ति की तरह वह कमनीय था और निखिल औषधियों से युक्त मन्दराचल की तरह प्रदीप्त था। वह युगान्तकालीन सूर्य की तरह आभावाला, महाबली, सुन्दर नासिका युक्त, महानन, प्रचण्ड-गण्ड, दीप्ताक्ष, ज्वालामुखी की तरह मुख गह्वरवाला, व्याघ्र चर्मधारी, विशाल साँपों से वेष्ठित, पगड़ी पहने हुये, चन्द्रधारी, उच्चावच,

Funding by IKS-MoE

रंग-विरंगे फूलों से शिर को सजाये हुये, बहुविध गन्ध-चन्दन को लगाये हुये, विविध रत्नों से और कितने ही प्रकार के आभरणों से भूषित था। वह कनेर की माला पहने हुए था और क्रोध से उसकी आँखें नाच रही थीं। कभी वह विचित्र भाव भङ्गी से नाच उठता था, तो कभी मधुर स्वर में बोल उठता था, कभी वह योगावलम्बन करके ध्यान करता था, तो कभी मोटी चीजों को इधर-उधर हटाता था, कभी वह विश्वात्मा गाता था, तो कभी सिसकियाँ भरता था। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तप, सत्य, क्षमा, धृति, प्रभुत्व, आत्मसंबोध और अधिष्ठान गुण से युक्त उसने भूमि पर घुटने टेक दिये और हाथ जोड़ कर बोला—देवेश! आज्ञा दीजिये कि, मैं आपका कौनसा कार्य करूँ।

महादेव ने कहा—तुम दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करो।

महादेव की आज्ञा पाकर वह महाबली वीरभद्र देवेश उमापति के चरणों की वन्दना करके पिञ्जर-मुक्त सिंह की तरह लीलापूर्वक यह सोचता हुआ चला कि, 'भगवती क्रुद्ध हैं। अतः दक्ष के उस यज्ञ विनष्ट ही समझना चाहिये, उसी समय देवी के क्रोध से एक महा भयङ्कर माहेश्वरी भद्रकाली उत्पन्न हुई, जो साथी की भाँति वीरभद्र के साथ चली। प्रेतावास में रहनेवाले और उमा के क्रोध-कारण को दूर करने वाले भगवान् वीरभद्र ने अपने रोमकूप से रौद्र नामक असंख्य गणेश्वरों की सृष्टि की। वे रुद्र के अनुगामी, महाबली, रुद्र के तुल्य पराक्रमी, रुद्र के अनुचर और रुद्र के तुल्य कान्ति वाले थे। वे सौ-सौ और हजार-हजार की संख्या में दल बाँध कर शीघ्र ही यज्ञ दिशा की ओर दौड़ पड़े। उनकी किलकारियों से आकाश गूंज उठा और उस विकट शब्द से सभी देवगण भयभीत हो गये। पहाड़ टुकड़े-टुकड़े हो गये, धरती काँप उठी, मेरु चंचल हो गया, समुद्र क्षुब्ध हो गये, अग्नि दीप्तिहीन, सूर्य तेजोहीन और गृह-नक्षत्र-तारकादि प्रकाशहीन हो गये। यज्ञ में उपस्थित ऋषि देव, दानव आदि चुप हो गये, घना अन्धकार छा गया और विमानित उन रुद्र गणों ने सब को कष्ट देना प्रारम्भ किया। वे घोर रूप महावली रुद्रगण सिंहनाद करने लगे। किसी ने यज्ञागार को उखाड़ फेंका, तो कोई यज्ञयूप को पीड़ित करने लगा, तो कोई ताण्डव करने लगा। वायु और मन के तुल्य वेग धारण कर कितने तो कूदने और दौड़ने लगे। कितनों ने यज्ञ पात्रों को और यज्ञशालाओं को तोड़-मरोड़ दिया, इससे वह यज्ञभूमि उसी प्रकार दिखाई पड़ने लगी, जिस प्रकार कि आकाश में तारागण बिखरे दीख पड़ते हैं। उन लोगों ने दिव्य भक्ष्य अन्नों के ढेर को, जलराशि को, क्षीर-नदी को, कीचड़ की तरह पड़े हुए घी और उसी तरह पड़ी हुई खीर को, दिव्य मधु और मण्डोदक-को, बालुकाराशि की तरह चीनी को, षड्रसवाहिनी असंख्य गुड़कल्या (बड़े-बड़े नाद) को, मांस के छोटे-बड़े ढेर को, विविध प्रकार के भक्ष्य वस्तुओं को, बढ़िया से बढ़िया पीने की चीजों को और चाटने-चूसने की चीजों को अपने नाना प्रकार के मुखों से खाना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने कुछ को फेंक दिया और कुछ को उलट दिया। रुद्र के कोप से उत्पन्न वे विशाल शरीरवाले, कालाग्नि सदृश रुद्रगण देवसेना को रौंदते हुए डराने लगे और विविध देह धारण कर क्रीड़ा करते हुए देवपत्नियों को भी घसीटा। रुद्रकोपोत्पन्न उन रुद्र तुल्य गणों ने देवों से रक्षित उस यज्ञ को उनके सामने ही नष्ट

Funding by IKS-MoE

कर दिया। उनमें कुछ सब को त्रास उत्पन्न करने वाले भयङ्कर शब्द करने लगे और किसी ने यक्ष के सिर को काट कर भयङ्कर चीत्कार किया। इस ध्वंस लीला में यज्ञपति दक्ष मृग रूप धारण कर आकाश की ओर भागे; किन्तु अप्रमेयात्मा वीरभद्र ने दक्ष की शक्ति को समझ लिया और आकाश में ही जाकर उनके सिर को काट लिया। दक्ष प्रजापति नष्ट हो गये, उनकी चेतना विलुप्त हो गई और क्रुध वीरभद्र ने उनके सिर को पैरों से रौंद दिया। वृद्ध दक्षप्रजापति पृथ्वी पर लोट गये। इधर विमल आत्मावाले तैंतीस करोड़ देवता भी अग्नितुल्य प्रदीप्त दृढ़ पाश में बँध गये। तब वे सब देवता महाबली महात्मा वीरभद्र के पास गये और बोले—भगवन्! रुद्र प्रसन्न हो जायँ। प्रभु! दासों पर क्रोध मत करें। तब ब्रह्मादि देवता और दक्षप्रजापति हाथ जोड़ कर बोले—महाराज, आप कौन हैं?

वीरभद्र बोले—न हम देव हैं न आदित्य हैं, न भोजन की इच्छा से आये हैं और न कुतूहल-वश देवताओं को देखने के लिये ही आये हैं। हम तो दक्ष-यज्ञ का विनाश करने के लिये यहाँ आये हैं। हमारा नाम वीरभद्र है और हम महादेव के कोप से उत्पन्न हुए हैं। यह भद्रकाली है, जो देवी के क्रोध से उत्पन्न हुई है और महादेव द्वारा यह भी इस यज्ञभूमि की ओर भेजी गई है। राजेन्द्र! आप उन्हीं उमापति की शरण में जाइये, जिनका क्रोध भी अन्य देवों के बरदान से उत्तम है। वीरभद्र के वचन को सुन कर धर्मनिष्ठ दक्ष ने देवाधिदेव शूलपाणि महेश्वर को प्रसन्न किया। उस समय यज्ञभूमि नष्ट-भ्रष्ट हो चुकी थी, यज्ञ में दीक्षित द्विजातिगण भाग चुके थे, यज्ञीय महाअनल बुझ चुका था, त्रिशूल से चोट खाये हुए अनुचरगण इधर-उधर कराह रहे थे, गाड़ा गया यज्ञयूप उखड़ा हुआ पड़ा था, मांस के लोभी गृध्र नीचे-ऊपर मँडरा रहे थे और जोर-जोर से डैने (पंख) हिला रहे थे तथा झुंड के झुंड गीदड़ चिल्ला रहे थे। उसी समय शत्रु को दमन करने वाले बहुदृष्टि देवदेवेश प्राणापान को यत्नपूर्वक अपने स्थान में रोक कर और इधर-उधर देखते हुए सहसा अग्निकुण्ड से बाहर निकल आये। संवर्तकतुल्य हजार सूर्य के समान तेजोमय शंकर ने हँस कर कहा—दक्ष, तुम्हारे अज्ञान से यज्ञ नष्ट हुआ। अब तुम्हारी प्रीति मुझसे हुई। कहो, अब तुम्हारे लिये मैं क्या करूँ? देवों और गुरुओं के साथ आपबीती को सुनाकर दक्षप्रजापति ने जिनकी आँखों से आँसू टपक कर गालों पर आ रहे थे और वे भय तथा सन्देह से घबराये हुए थे, दोनों हाथ जोड़ कर महादेव से कहा—अगर भगवान् हम पर प्रसन्न हैं, हम आपके प्रिय हुए, अनुग्रह के पात्र और वर पाने के योग्य हुए, तो हमारी जो यज्ञीय सामग्री नष्ट हुई है, भोज्य पदार्थ खा-पी लिया गया है, नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया है या बिगाड़ दिया गया है और जिसका बहुत दिनों में घोर परिश्रम करके संग्रह किया था,—वह व्यर्थ न जाय। यही वर चाहते हैं। भग के नेत्र को हरण करने वाले महादेव ने कहा—ऐसा ही हो। इस प्रकार महादेव से वर प्राप्त कर दक्ष प्रजापति घुटने के बल जमीन पर बैठ गये और उन्होंने त्रिनयन, धर्माध्यक्ष, वृषभध्वज महादेव की स्तुति आठ हजार नामों से की।

दक्ष बोले—देव-देवेश! आपको नमस्कार है। आप देवारिबलसूदन, देवेन्द्र, अमरश्रेष्ठ,

Funding by IKS-MoE

देवदानवपूजित, सहस्राक्ष, विरूपाक्ष, त्रिनयन, यक्षाधिपप्रिय, सर्वत्र अक्षिशिरोमुख, सर्वतः श्रुतिमान् और सम्पूर्ण संसार को आप ढँके हुए हैं । शङ्कुकर्ण ! आप महाकर्ण, कुम्भकर्ण, समुद्रवासी, गजेन्द्रकर्ण, गोकर्ण, और पाणिकर्ण हैं, आपको ननस्कार है । हे शतोदर ! शतावर्त, शतजिह्व और शतानन, गायत्रीजपकर्ता, आपकी स्तुति का गान करते हैं और पूजक आपकी पूजा करते हैं । आप देवदानवों के पालयिता, ब्रह्मा, इन्द्र, मूर्तीश, महामूर्ति और समुद्राम्बुधर हैं । गोष्ठ में जैसे गोगण रहते हैं, उसी प्रकार देवगण आपमें ही अवस्थित हैं । सोम, अग्नि, जलेश्वर, आदित्य, विष्णु, ब्रह्मा और वृहस्पति आपके ही शरीर स्वरूप हैं । आप क्रिया, कार्य, कारण, कर्ता, करण, असत्, सदसत्, प्रभव और अव्यय हैं । भव, पूर्व, रुद्र, वरदाता, पशुपति और अन्धक-विनाशी को नमस्कार है । आप त्रिजट, त्रिशीर्ष, त्रिशूलवरधारी, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र, त्रिपुरघ्न, चण्ड, मुण्ड, प्रचण्ड, धर, दण्डी, आसक्त कर्ण, दण्डिमुण्ड, अर्द्ध दण्डकेश, निष्क, विकृत, विलोहित, धूम्र, नीलग्रीव, अप्रतिरूप और शिव हैं, आपको नमस्कार है । आप सूर्य, सूर्यपति, सूर्यध्वज पताकी, प्रमथनाथ, वृषस्कन्ध, धन्वी, हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच, हिरण्यकृतचूड़, हिरण्यपति, यज्ञ-नाशक, दण्ड, वर्णायानपुट, स्तुत, स्तुत्य, स्तूयमान, सर्वभक्ष्याभक्ष्य, सर्वभूतान्तरात्मा, होत्र, मन्त्र, शुक्लध्वजपताकी, नम, नम्य, किलकिल, शयमान, शयिता, उत्थित, स्थित, चलमान, क्षुद्र, कुटिल, नर्तनशील, मुँह बजानेवाले, नाट्य उपहार के लोभी, गीतवाद्यरत, ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलप्रमथन, कलन, कल्प, क्षय, उपक्षय, भीम दुन्दुभिकी आवाज की तरह हँसीवाले और भीमसेन प्रिय हैं, आपको नमस्कार है । आप उग्र, दशबाहु, कपालहस्त, चिताभस्मप्रिय, विभीषण, भीष्म, भीष्मव्रतधर, विकृतवक्ष, खड्गजिह्व, उग्रदंष्ट्री, पक्वाममांसलुब्ध, तुम्बवीणाप्रिय, वृष, वृष्य, वृष्णि, वृषण, कटंकट, चण्ड, सावयव, कृष्ण, वर, वरद, वरगन्धमाल्यवस्त्र, वरातिव, वर्ष, वात, छाया, आतप, रक्त, विरक्त, शोभन, अक्षमाली, संभिन्न, विभिन्न, विविक्त, विकट, अघोररूपरूप, घोर, घोरतर, शिव, शान्त, शान्ततर, एकयात, बहुनेत्र, एकशीर्ष, वृद्ध, लुब्ध, संविभागप्रियं, पञ्चमालार्चिताङ्ग, पाशुपत मण्ड, घण्ट, घण्टाजग्धगृघ्न,[1] सहस्र-शतघण्ट, घंटामालाप्रिय, प्राणदण्ड, त्याग, हिलिहिल, हुहुङ्कार, पार, हुङ्कारप्रिय, शम्भु, गिरिवृक्षफल, गर्भमांस, शृगाल, तारक, तर, यज्ञाधिपति, द्रुत, उपद्रुत, यज्ञवाह, दान, तप्य, तपन, तट, तव्य, तड़ित्पति, अन्नद, अन्नपति, अन्नभव, सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्र, उद्यतशूल, सहस्रनयन, बालरूप, बालरूपधर, बालगोप्ता, बालक्रीडनक, शुद्ध, बुद्ध, क्षोभण, अक्षत, तरङ्गाङ्कितकेश, मुक्तकेश, षट्कर्मनिष्ठ, त्रिकर्मनिरत, वर्णाश्रमियों के लिये विधिवत् पृथक्-पृथक् कर्म बतानेवाले, घोष, घोष्य, कलकल, श्वेत-पिंगल नेत्र, कृष्ण-रक्त नेत्र, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, क्रथ, क्रथन, सांख्य, सांख्यमुख्य, योगाधिपति, रथ्य, विरथ्य, चतुष्यथरत, कृष्णाजिनोत्तरीय, सर्पयज्ञोपवीती, ईशान, वज्रसंह, हरिकेश, अविवेकैकनाण्य और व्यक्ताव्यक्त को नमस्कार है । आप काम, कामद, कामघ्न, धृष्ट, दृप्त, निषूदन, सर्व, सर्वद, सर्वघ्न, सन्ध्याराग, महाबल, महाबाहु, महासत्त्व, महाद्युति, महामेघवरप्रेक्ष, महाकाल, स्थूल, जीर्णाङ्गजटी, बल्कलाजिनधारी, दीप्तसूर्याग्निजटी, बल्कलाजिनवासा, सहस्रसूर्य

---

[1] १—घण्टाध्वनि से अभिलाषाओं को प्रदान करने वाले ।

प्रतिम, तपोनित्य, उन्मादन, सभावर्त, गंगातोयार्द्धमस्तक, चन्द्रावर्त, युगावर्त, मेघावर्त, अन्न, अन्नकर्ता, अन्नद, अन्नस्रष्टा, पक्ता, पक्वभुक्तपच, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, देवदेवेश, चतुर्विधभूतग्राम, चराचर के ब्रह्मा, प्रतिहर्ता, ब्रह्मविद्वर, जीव-जन्तुओं की योनि, वायु, जल और ज्योतिर्निधि हैं। ब्रह्मवादी आपको ऋक्, साम और ओंकार कहा करते हैं। सुरश्रेष्ठ ! साम गानेवाले ब्रह्मवादी आपको हविर्द्धानी, हव, हवि और होम की आहुति कहा करते हैं। ब्रह्मादिगण कल्पवासियों के साथ आपको ऋक्-यजु-साम और अथर्वमय कहा करते हैं। आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्यान्यवर्ण, मेघसंग, विश्वस्तनितगर्जित, संवत्सर ऋतु, मास, मासार्द्ध,कला, काष्ठा, निमेष, नक्षत्र, युग, ग्रह, वृषककुद, गिरिशिखर, मृगों के मध्यसिंह, पक्षियों के बीच गरुड़, सर्प में अनन्त, समुद्रों में क्षीरसागर, यन्त्रों में धनुष, प्रहरणों में वज्र, व्रतों में सत्य, इच्छा, द्वेष, राग, मोह, क्षाम, दम, शम, व्यवसाय, धृति, लोभ, काम, क्रोध, जय, अजय, गदी, शरी, चापी, खट्वाङ्गी, भुर्भरी, छेत्ता, भेता, प्रहर्ता, नेता, अन्तक, दश लक्षण संयुक्त धर्म, अर्थ, काम, इन्द्र, समुद्र, सरित्, पल्वल, सर, लतावली, तृण, औषधि, मृग, पक्षी, द्रव्य, कर्म, गुणारम्भ, कालपुष्प, फलप्रद, आदि, अन्त, मध्य, गायत्री, ओंकार, हरित, लोहित, कृष्ण, नील, पीत, अरुण, कद्रु, कपिल, कपोत, मेचक, सुवर्णरेता, विख्यातसुवर्ण, सुवर्णनामा, सुवर्णप्रिय, इन्द्र, यम, वरुण, धनद अनल, उत्फुल्ल, चित्रभानु, भानु, होत्र, होता, होम, हुत, प्रहुत, प्रभु, सुपर्ण, ब्रह्मा, शतरुद्रिय, पवित्रों में पवित्र, मङ्गलों में मङ्गल, गिरि, स्तोक, वृक्ष, जीव, पुद्गल, सत्त्व, रज, तम, प्रजनन, प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, उन्मेष, मेष, जृम्भित, लोहिताङ्ग, गदी, दँष्ट्री, महावक्र, महोदर, शुचिरोमा, हरित्श्मश्रु, ऊर्ध्वकेश, त्रिलोचन, गीतवादित्रनृत्याङ्ग, गीतवादनकप्रिय, मत्स्य, जली, जल, जल्य, जद-काल, फणी, कल, विकाल, सुकाल, दुष्काल, कालनाशन, मृत्यु, क्षय, अन्त, क्षमापायकर, हर, संवर्तक, अन्तक, संवर्तक-वलाहक, घट, घटिक, घटरीक, चूड़ालल, बल, बली, ब्रह्मकाल, अग्निवक्र, दण्डी, मुण्डी, दण्डधृक्, चतुर्युग, चतुर्वेद, चतुर्होत्र, चतुष्पथ, चतुराश्रमवेत्ता, चातुर्वर्ण्यकर, क्षराक्षरप्रिय, धूर्त, अगण्य, अगण्यगणाधिप, रुद्राक्षमाल्याम्बरधर, गिरिक, प्रिय, शिल्पीश, शिल्पिश्रेष्ठ, सर्वशिल्पप्रवर्तक, भगनेत्रान्तक, चन्द्र, पूषा के दाँत का विनाश करनेवाले, स्वाहा, स्वधा, वषट्कार, और नमस्कार हैं; आपको नमस्कार है। आप गूढ़ावर्त, गूढ़, प्रतिनिषेवित, तरण, तारक, सर्वभूतसुतारण, धाता, विधाता, सत्त्वनिधाता, धारण, धर, तप, ब्रंह्म, सत्य, ब्रह्मचर्य, आर्जव, भूतात्मा, भूतकृत, भूत, भूतभव्य, भवोद्भव, भूः, भुवः, स्वः इति, उत्पत्ति, महेश्वर, ईशान, उद्वीक्षण, शान्त, दुर्दान्त, दन्तनाशन, ब्रह्मावर्त, कामावर्त, सुरावर्त, कामविम्बनिहर्ता, कर्णिका, रजप्रिय, मुखचन्द्र, भीममुख, सुमुख, दूर्मुख, मुख, चतुर्मुख, बहुमुख, सदा रणाभिमुख, हिरण्यगर्भ, शकुनि, महोदधि, पर विराट, अधर्महा, महादण्ड, दण्डधार, रणप्रिय, गौतम, गोप्रतार, गोवृषेश्वरवाहन, धर्मकृत्, धर्मस्रष्टा, धर्म, धर्मवित्, उत्तम, त्रैलोक्य गोप्ता, गोविन्द, मानद, मान, तिष्ठ, स्थिर, स्थाणु निष्कम्प, कम्प, दूर्वारण, दुर्विषद, दुःसह, दुरतिक्रम, दुर्धर, दुष्प्रकम्प, दुर्विद, दुर्जय, जय, शश, शशाङ्क, शमन, शीतोष्ण, दुर्जरा, तृट्, आधि, व्याधि, व्याधिहा, व्याधिग, सह्य, यज्ञ, मृग, व्याध, व्याधिआकर, अकर, शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष, पुण्डरीकाव-

लोकन, दण्डधर, सदण्ड, दण्ड-मुण्ड--विभूषित, बिषय, अमृतप, सुराप, क्षीरसोमप, मधुप, आज्यप, सर्वप, महाबल, वृषाश्ववाह्य, वृषभ, वृषभलोचन, लोकविख्यात वृषभ और लोकसत्कृत हैं। चन्द्र और आदित्य आपके नयन हैं तथा पितामह आपका हृदय हैं। अग्नि, जल धर्मकर्म-प्रसाधक देवगण, ब्रह्मा, गोविन्द, पुराण और ऋषि आदि आपके माहात्म्य को ठीक तरह से नहीं जान पाते हैं। हे शिव! आपकी जो सूक्ष्म मूर्तियाँ हैं वे हमारे दृष्टिपथ में नहीं आती हैं। उनसे आप हमारी सदा रक्षा उसी प्रकार करें, जिस प्रकार कि, पिता अपने औरस पुत्र की रक्षा करता है। अनघ! हमारी रक्षा करें। हम सदा रक्षणीय हैं। आपको नमस्कार है। आप भक्तों पर दया करने वाले भगवान् हैं और हम आपके भक्त हैं। आप हजारों पुरुषों को लेकर समुद्रगर्भ में एकान्त शयन करते हैं, ऐसे आप हमारे रक्षक हों। निद्राविहीन होकर निश्वास वायु को जीतने वाले सत्वस्थ समदर्शी योगिगण आपकी ज्योति को देखते हैं, उसी योगात्मा को प्रणाम है। जो प्रलय उपस्थित होने पर सब जीवों का भक्षण कर जल के मध्य स्थित होकर शयन करते हैं उन्हीं जलशायी को प्रणाम है। जो राहु के शरीर में प्रवेश कर रात को सोम का ग्रास करते हैं और स्वर्भानु एवं सोमाग्नि होकर सूर्य को निगलते हैं तथा जो अंगुष्ठ मात्र पुरुष देहधारियों की देह में रहते हैं, वे हमारी सदा रक्षा करें और हमें तृप्त करें। जो अङ्गुष्ठमात्र पुरुष गर्भ से उत्पन्न हैं, स्वाहा और स्वधा उन्हें तृप्त करें, उनके लिए रुचिकर हों। जो देहस्थ होकर भी स्वयं नहीं रोते हैं, किन्तु प्राणियों को रुलाते हैं, स्वयं हृष्ट नहीं होते; किन्तु प्राणियों को प्रसन्न करते हैं, उन्हें नित्य प्रणाम है। जो समुद्र में, नदी-दुर्ग में, पर्वत में, गुहा में, वृक्ष मूल में, गोष्ठ में, गहन कानन में, चतुष्पथ में, गली में, चबूतरे पर, सभा में, हाथी-घोड़ा-रथआदि के निवासस्थान में, पुरानी वाटिका और भवनों में, पंच-तत्वों में, भूतों में, दिशा-विदिशा में, चन्द्र-सूर्य के मध्य में, चन्द्र-सूर्य की रश्मिमें, रसातलमें और इन स्थानों के अतिरिक्त भी अवस्थित हैं, वे सूक्ष्म, स्थूल, कृश, ह्रस्व आदि सब आप ही हैं। आपको बारम्बार नमस्कार है। हे देव! आप सर्व हैं, सर्वग हैं, सर्वभूतपति हैं और सब जीवों के अन्तरात्मा हैं, इसीसे हमने आपको निमन्त्रित नहीं किया। विविध दक्षिणावाले यज्ञ में आप ही यजनीय होते हैं और आप ही सबके कर्ता हैं, इसीसे आप निमन्त्रित नहीं हुए। अथवा देव! आपकी सूक्ष्म माया से हम भ्रान्त हो गये, इसी कारण आपको निमन्त्रण नहीं दिया। देवेश! प्रसन्न हों। आपही हमारी शरण हैं। आप ही हमारी गति और प्रतिष्ठा हैं। आपके अतिरिक्त हमारी दूसरी गति नहीं है। इस प्रकार महादेव की स्तुति करके दक्षप्रजापति चुप हो गये। इस स्तुति से प्रसन्न होकर महादेवजी ने भी दक्ष से कहा—हे सुव्रत दक्ष! तुम्हारी इस स्तुति से हम प्रसन्न हुए अधिक कहने से क्या, तुम मेरे समीप जाओगे।

वाक्यविशारद त्रिलोकीपति महादेव ने दक्ष को इस प्रकार सान्त्वना दे कर फिर स्पष्ट रूप से कहा—दक्ष! इस यज्ञ के विघ्न के सम्बन्ध में तुम्हें क्रोध नहीं करना चाहिये। मैंने ही इस यज्ञ का विध्वंस किया है, किसी दूसरे ने नहीं। यह तुमने स्वयं देखा है। सुव्रत! तुम हमसे फिर यह वर ग्रहण करो। तुम प्रसन्न वदन होकर एकाग्र मन से सुनो। प्रजापति! तुम हमारे प्रसाद से हजार अश्वमेध

और सौ वाजपेय यज्ञों के फलभागी होओगे। दक्ष ! छवों अङ्गों के साथ वेदों का उद्धार करके एवं पूर्ण, सांख्य-योग का उद्धार करके देवदानवों के साथ बड़ी कठिन तपस्या करके, पाँच अर्थों से संयुक्त होने के कारण जो गूढ़ सामान्य जनों की समझ के बाहर है, वह वर्णाश्रमप्रतिपादक धर्म से कहीं विपरीत और कहीं अनुकूल है, वेदाभिप्राय से संपादित करके मैंने सभी आश्रमवासियों के लिये पशुपाश-विमोचन पाशुपत व्रत उत्पन्न किया है, जो शुभ और सभी पापों को नष्ट करने वाला है। इस व्रत के करने से जो समीचीन फल होता है, उसका सम्पूर्ण फल तुम्हें हो। महाभाग ! तुम मानसिक संताप को छोड़ दो ॥११४—२९६॥

इस प्रकार कह कर अतिपराक्रमी महादेव अपनी पत्नी और अनुचरों के साथ दक्ष की आँखों से ओझल हो गये। उस समय ब्रह्मा द्वारा यथोक्त भाग को प्राप्त कर अखिल धर्मवेत्ता महादेव ने ज्वर को कई भागों में विभक्त किया। ब्राह्मणो ! सब जीवों के शान्त्यर्थ उसे सुनिये। नागों के लिये शीर्षाभिताप, पर्वतों के लिये शिलारोग, जल के लिये शैवाल और साँपों के लिये केंचुल ज्वर समझना चाहिये। गौओं के लिये खुरका रोग, पृथ्वी के लिये ऊसर, हाथियों के लिये दृष्टिव्याघात, घोड़ों के लिये रन्ध्रजनित रोग, मयूरों के लिये शिखा (चन्द्रक) विकाश का काल और कोकिलों के लिये नेत्ररोग महात्माओं के द्वारा ज्वर कहा गया है। हे विप्रो ! हम लोगों ने सुना है कि, सब बकरों के लिये पित्तभेद और सब शुकों के लिये विमिका ज्वर है एवं इसी प्रकार सिंहों के लिये भी परिश्रम ज्वर कहा गया है। सर्वज्ञ ! मनुष्यों के लिये वह ज्वर नाम से कहा गया है, जो जन्म-मरणकाल में और बीच में भी मनुष्यों के शरीर में प्रवेश करता है। यह जो अत्यन्त कठोर ज्वर है, वह महेश्वर का तेज है; अतएव यह ईश्वर ज्वर सब प्राणियों द्वारा माननीय और वन्दनीय है। जो मनुष्य सुप्रसन्न चित्त से एकाग्र होकर इस ज्वरोत्पत्ति को सदा पढ़ता है, वह रोग से छुटकारा पाकर आनन्द लाभ करता है और अपनी अभिलषित कामना को प्राप्त करता है। दक्ष द्वारा कहे गये स्तव को भी जो सुनता है या कहता है, उसको कोई अनिष्ट नहीं होता और वह दीर्घायु प्राप्त करता है। जैसे सब देवों में योगी महादेव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार स्तवों के बीच यह ब्रह्मानिर्मित स्तव श्रेष्ठ है। यश, राज्य, सुख ऐश्वर्य, धन, आयु, वित्त और विद्या की कामना करनेवाले यत्नपूर्वक, भक्तिपूर्वक इस स्तोत्र का पाठ करें। जो पीड़ित, दुःखी, दीन, चोर से डरे हुए और राजकार्य में नियुक्त हैं, वे बड़े भय से भी मुक्त हो जाते हैं। इसी देह से वे गणों के बीच गणाधिप हो जाते हैं और इस लोक में सुख प्राप्तकर शिवगण हो जाते हैं। जिस घर में इस स्तव से महादेव की स्तुति होती है, वहाँ यक्ष, पिशाच, नाग और विनायक आदि कोई विघ्न नहीं करते हैं, ब्रह्मचारिणी होकर भक्ति श्रद्धा से जो स्त्री इस स्तवराज का श्रवण करती है, वह पितृकुल और भ्रातृकुल में देवता की तरह पूज्य होती हैं। जो इस सम्पूर्ण स्तोत्र का श्रावण करता है या बार-बार पाठ करता है, उसके सभी कार्य निर्विघ्न रूप से सम्पन्न हो जाते हैं। जो इस स्तोत्र को जोर-जोर से पढ़ता है या मन-ही-मन पढ़ता है, उसके सभी कार्य स्तोत्र पढ़ने के कारण सिद्ध हो जाते हैं। कार्तिकेय के साथ नन्दीश्वर

Funding by IKS-MoE

महादेव और देवी को धन के अनुरूप नैवेद्य चढ़ाकर यम-नियम पूर्वक दक्षिणा देकर स्तोत्र में आये हुए नामों का शीघ्रता से पाठ करे। इस विधि से जो मानव इस स्तोत्र का पाठ करता है, वह अभिलषित कामनाओं को और सकल भोगों को प्राप्त करता है एवं मरने पर सहस्र स्त्रियों के साथ स्वर्ग को जाता है। जो सभी प्रकार के विषय-भोगों में लिप्त हैं या सभी पातकों से युक्त हैं, यदि दक्षकृत स्तोत्र को पढ़ें, तो वे भी सब पापों से मुक्त हो जाते हैं और मरने पर देव-दानवों से पूजित होकर गण-सालोक्य प्राप्त करते, सुसज्जित विमान पर वह इन्द्र की तरह शोभित होते और रुद्र के अनुचर होकर युगान्त पर्यन्त वर्तमान रहते हैं, पराशरसुत भगवान् व्यास ने ऐसा कहा है। बिना विचारे सहसा किसी को इसे बतलाना नहीं चाहिये और न तो सुनाना ही चाहिये। इस परम गुह्य स्तोत्र को सुनकर सभी पापात्मा वैश्य, स्त्री, शूद्र आदि रुद्रलोक प्राप्त करते हैं। जो ब्राह्मण प्रति पर्व में इसे विप्रों को सुनाता है, वह निःसन्देह रुद्रलोक प्राप्त करता है। ॥२९७—३२१॥

श्रीवायु महापुराण का दक्षस्तुति नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

देव-वंश वर्णन

सूत जी बोले—यह पापनाशिनी कथा आप लोगों को अब ज्ञात हो गई। यह दक्ष से सम्बन्ध रखने वाली कथा महादेव से प्राप्त हुई है, जो पितरों के वंशवर्णन के प्रसंग में कह दी गई है। पितृवंश वर्णन की ही तरह अब आगे हम देव वंश का वर्णन करते हैं। पहले स्वायम्भुव मनु के अधिकार काल में त्रेतायुग के आदि में याम नाम के विख्यात देव थे, जो पहले यज्ञ-तनय थे। उनमें अजित ब्रह्मा के पुत्र थे और जित, जित् तथा अजित स्वायम्भुव के पुत्र थे। ये शुक्र नामक मानस पुत्र कहलाते थे। देवों के तीन गण कहे गये हैं, जिनमें ये तृप्तिमान् गण कहलाते हैं। स्वायम्भुव मनु के तैंतीस पुत्र छन्दोग कहलाते हैं। यदु, ययाति नामक दो देव एवं दीधय, स्रवस, मति, विभास, क्रतु, प्रजापति, विशत, द्युति, वायस और मङ्गल नामक बारह देव याम कहलाते हैं। अभिमन्यु उग्रदृष्टि, समय, शुचिश्रवा, केवल विश्वरूप, सुयक्ष, (सुरक्ष) मधुप, तुरीय, निहर्युयुक्त, ग्रावाजिन, यमी, विश्वेदेवादि, यविष्ठ, मृतवान्, अजिर, विभु, विभाव, मृलिक, दिदेहक, श्रुतिशृण, बृहच्छुक्र और ऊपर कहे गये बारह देव स्वायम्भुव मन्वन्तर के काल में वर्तमान थे। ये सोम-पीने वाले महाबली और वीर्यशाली थे। ये त्विषिमान गण के कहलाते थे। विश्वभुक् प्रथम विभु उन लोगों के इन्द्र थे। उस समय जो असुर गण थे, वे भी इनके जाति-भाई थे। सुपर्ण, यक्ष, गन्धर्व, पिशाच, उरग, राक्षस और पितरों के साथ नासत्य ये आठों देवयोनि कहलाते थे। इनके प्रभाव और रूप से संयुक्त एवं आयुष्मान् तथा बलवान् सन्तानें हजारों की संख्या में स्वायम्भुव मन्वन्तर में बीत चुके हैं। उसको

Funding by IKS-MoE

विस्ता.पूर्वक नहीं कहा जा रहा है; क्योंकि उसका प्रसंग भी यहाँ नहीं है। स्वायम्भुव मनु के काल का सृष्टि विस्तार वर्तमान मनु की ही तरह समझना चाहिये। अतीत मन्वन्तर में प्रजा सृष्टि या स्वभावादि वर्तमान वैवस्वत मनु के काल की ही तरह देखा जाता है। प्रजाओं, देवताओं, ऋषियों और पितरों के साथ पहले जो उनमें सप्तर्षि थे, उनको सुनिये—भृगु, अंगिरा, मरीचि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ। स्वायम्भुव मन्वन्तर में अग्नीध्र, अतिबाहु, मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य और सवन आदि ये महाबलशाली दस पुत्र स्वयम्भु मनु के थे। वायु ने कहा है कि, प्रथम मन्वन्तर में ये ही महाबलशाली राजा थे। असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग, राक्षस, पिशाच और मनुष्यों के साथ सुपर्ण तथा अप्सराओं का जो गण था, उसका अनुक्रम से कहा जाना सौ वर्षों में भी सम्भव नहीं है, क्योंकि उन राजकुलीनों के नामों की संख्या बहुत अधिक थी। स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो व्रजकुलनामक प्रजाजन थे, वे अयन, वर्ष और युगक्रम से बहुत दिन हुआ व्यतीत हो चुके हैं। ॥१–२१॥

ऋषिगण बोले—सब जीवों का हरण करने वाले ये भगवान् काल कौन हैं? किसके पुत्र और किसके पिता हैं? तत्त्व, स्वरूप, चक्षु, मूर्ति, अवयव आदि इनके कौन से हैं? इनका क्या नाम है? कौन इनकी आत्मा है? इन प्रश्नों को हम सब पूछ रहे हैं, कहिये।

सूतजी बोले—आप लोग काल के सम्बन्ध में विशेष ध्यान पूर्वक सुनिये और सुनकर हृदय में रखिये इनके। (कालके) उत्पन्न करने वाले सूर्य हैं, इनका आदि निमेष है और ये संख्या-चक्षु कहलाते हैं। दिन-रात इनकी मूर्ति हैं, निमेष अवयव हैं और कलास्वरूप संवत्सरशत इनका नाम है। भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालस्वरूप वे प्रजापति हैं। दिन, पक्ष, मास, ऋतु और अयन नामक पाँच भागों में विभक्त कालके अवस्था भेद को सुनिये। पहला संवत्सर, द्वितीय परिवत्सर, तृतीय इद्वत्सर, चतुर्थ अनुवत्सर और पंचम युग नामक काल वत्सर कहलाता है। इनके तत्त्व को मैं कहता हूँ, सुनिये। ऋतु नामक जिस अग्नि को मैंने पहले कहा है, वही संवत्सर है और यह परिवत्सर काल-अग्नि स्वरूप है जो सूर्य से उत्पन्न तत्व है। पुराण में यह निश्चय किया गया है कि, इद्वत्सर सोम है, जो आकाश में चलनेवाला, जलोंका सार भूत और संतत शुक्ल-कृष्ण गतिवाला है। जो उनचास शरीरों से लोकों को संतप्त करते हैं और अनुप्राणित करते हैं वही वायु वत्सर हैं। अहंकारवश रोदन करनेवाले रुद्र ब्रह्मा द्वारा तीन भागों में विभक्त हुए, वही नीललोहित रुद्र रुद्रों के वत्सर कहे गये हैं। उनके तत्व को भी मैं कहता हूँ सुनिये। कालात्मा प्रपितामह अङ्ग-प्रत्यङ्ग के संयोग से ऋक्, साम और यजुः के उत्पत्ति-स्थान एवं पाँचों कालों के स्वामी हैं। वे ही अग्नि यजुः, सोम, भूत और प्रजापति हैं। विद्वानों ने सूर्य को ही अग्नि और संवत्सर कहा है। इन्हीं सूर्य से ही कालों का विभाग अर्थात् मास, ऋतु, अयन, ग्रह, नक्षत्र, शीत, ग्रीष्म, वर्षा, आयु, कर्म तथा दिवसों का विभाग होता है। विकारावस्था में ये ही प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्र प्रजापति एक-एक कर दिवस, मास और ऋतु के प्रवर्तक हैं और ये ही पितामह हैं। ये ही आदित्य, सविता, भानु, जीवन और ब्रह्मसत्कृत कहे जाते हैं, भूतों के उत्पादक और अविनाशी होने के कारण ये भास्कर हैं। तृतीय परिवत्सर ताराभिमानी है, जो सोम

और निखिल औषधियों का पति है, इसलिये यह भी प्रपितामह है। ये सभी जीवों के जीवन और योग-क्षेम करने वाले हैं। ये सदा जागरुक रहते हुए किरणों द्वारा जगत् का पोषण करते हैं। तिथि, पर्वसन्धि, पूर्णिमा, अमावास्या के ये ही उत्पादक, निशाकर और प्रजापति हैं। इसीलिये ये सोम पितृमान् एवं ऋक्-यजुर्वेद के स्वरूप हैं। ये प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानात्मक कर्म द्वारा लोक में निखिल प्राणियों की सम्पूर्ण चेष्टाओं के प्रवर्तक हैं। ये ही प्राण, अपान और समान वायु के प्रवर्तक हैं। इन पाँचों के अर्थात् इन्द्रिय, मन, बुद्धि, स्मृति और जन के यथाकाल पोषणकर्ता और इनकी क्रियाओं के सम्पादक हैं। ये प्रभंजन सर्वात्मा हैं आवह-प्रवह आदि के द्वारा सब लोकों के तथा सब भूतों के विधाता एवं पृथ्वी को धारण करने वाले हैं। ये ही प्रभंजन जल, अग्नि, भूमि, रवि और चन्द्रमा के उत्पादक हैं। ये ही वायु प्रजापति, लोकात्मा और प्रपितामह हैं। प्रजापति आदि देवगण अपने अभीष्ट फलों को पाने के लिये ओषधियों के क्षय हो जाने पर त्रिकपाल और त्र्यम्बक द्वारा भगवान की पूजा करते हैं इसलिये वे यम्बक कहलाते हैं। गायत्री, त्रिष्टुप् और जगती त्र्यम्बका नाम से ख्यात हैं, जो यज्ञयोनि या सवन की उत्पादिका है। ये ही तीनों छन्द जब अपने पराक्रम से एकत्र हो जाते हैं, तब वे ही त्रिसाधन, पुगेडाश और त्रिकपाल कहे जाते हैं। विद्वानों ने इस प्रकार पाँच वर्षों का युग कहा है। विप्रों ने जो इन पाँच प्रकार के संवत्सरों को बताया है, उनमें प्रत्येक वसन्त आदि छः ऋतुओं वाले हैं। ऋतु-पत्र, आर्तव गण पाँच प्रकार के हैं। संक्षेप में यही कथा है। यह वायु प्राणियों के जीवन को कालरूप से संहार करती हुई नदी के वेग की तरह बहने लगती है और उस समय से फिर वह वायु दिन-रात को करने वाली होती है ये सभी प्रजापति सब देहधारियों में प्रधान, सब लोकों के पिता और लोकात्मा कहे गये हैं। ध्यान करते हुए ब्रह्मा के मुख से रोते हुए रुद्र उत्पन्न हुए। ये ही ऋषि, विप्र, महादेव, भूतात्मा और प्रपितामाह हैं। ये ही सभी के ईश्वर और प्रणव के लिये उत्पन्न हुए हैं। ये ही आत्म रूप से जीवों के अंग-प्रत्यंग की उत्पत्ति के कारण हैं। ये ही अग्नि, संवत्सर, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, युगाभिमानी, कालात्म, नित्य संहार करने वाले, विभु, उन्मादक और अनुग्रह करने वाले हैं। ये ही इद्वत्सर कहे जाते हैं। क्रोधाविष्ट होकर ये ही भगवान् इस संसार में अपने तेज से आश्रय और आश्रयसंयोग के कारण अपने नामों और शरीरों से वर्तमान रहते हैं। तब उन्हीं के पराक्रम से लोकों के अनुकूल कल्याणकारक दूसरी विस्तृत सृष्टि देवों, पितरों, काल तथा अन्यान्यों की हुई। इस कारण उन उत्पन्न लोकों द्वारा वे ही भद्ररूप महादेव पूजे जाते हैं। ये नीललोहित भगवान् अधीश्वरों के अधीश्वर, प्रजाधिपों के प्रजापति, सब जीवों के उत्पादक और क्षीण औषधियों के पुनः पुनः उत्पादक हैं। इन सब के जो पुत्र हैं, वे प्रमाण में बहुत अधिक हैं और इनके पुत्र-पौत्र भी अनन्त हैं; इसलिये उनकी गणना करना शक्ति के बाहर है। जो आदमी स्थिर कीर्ति वाले महान् पुण्यकर्मा प्रजशों के इस वंश का कीर्तन करता है, वह महान् सिद्धि प्राप्त करता है। ॥२२—६१॥

श्री वायु महापुराण में देव-वंश-वर्णन नामक एकतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३१॥

Funding by IKS-MoE

बत्तीसवाँ अध्याय

युगधर्म

वायु बोले—इसके आगे अब हम प्रणव के सम्बन्ध में कहते हैं। ओंकार अक्षर ब्रह्म है। इसमें तीन वर्ण हैं। यह आदिमें स्मरण किया जाता है। जो जो जिसके वर्ण तथा देवता कहे गये हैं, वे भी ओंकार से ही उत्पन्न हुए। ऋक्, यजुः और साम, वायु, अग्नि एवं जल भी ओंकार से उत्पन्न हुए। उस अक्षर से फिर दूसरे भी उत्पन्न हुए। देवोंके बीच जो चौदह महात्मा देवता हैं, उनके भी मध्य जो सबको पानेवाले, सभी जगह जानेवाले और सब योगों को जाननेवाले हैं, वे ही लोकोंपर अनुग्रह करने के लिये ओंकार के आदि मध्य और अन्त कहे जाते हैं। सप्तर्षिगण, इन्द्र और पितरों के साथ देवगण आदि अक्षरस्वरूप देवदेव महादेव से उत्पन्न हुए हैं। इस लोक और परलोक में कल्याण के लिये ओंकार परमपद कहा गया है। मैंने पहले ही कहा है कि, कालका नाम युग भी है। कृत, त्रेता, द्वापर और कलियुग के साथ युग आदि चक्रकी तरह नीचे-ऊपर घूमते रहते हैं। देवगण तब काल के वशीभूत होकर व्यग्र हो गए और स्वयं उसकी इयत्ता (सीमा) परिमाण को निर्धारित करने में असमर्थ हो गए। आदि मन्वन्तर में वे ऋषि, देवता और इन्द्र आदि मौनावलम्बन कर हजारों वर्ष पर्यन्त चंचल मनको एकाग्र करके कठिन तपस्या करने लगे। तब कालसे डरे हुए वे देवादि महादेवकी शरण में पहुँचे। वे बोले—महेश्वर! महादेव! इस चार मुँह और चार मूर्ति धारण करनेवाले देवेश अगाध कालका पार कौन पा सकता है? महादेवजी ने उस चतुर्मुख काल को देखा और कहा—डरने की कोई बात नहीं है। कहिये, आपकी किस अभिलाषा को पूर्ण करूँ? आपके सब कार्य हो जायेगें आपका यह परिश्रम व्यर्थ है। फिर स्वयं कालस्वरूप अजेय महादेवजी बोले—काल का जो यह चार जिह्वावाला श्वेत मुख दीख पड़ता है, वह कालका कृतयुग नामक मुख है और यही मुख देवश्रेष्ठ ब्रह्मा और वैवस्वत भी कहलाता है। ब्राह्मणो! यह जो लाल रंग का, लपलपाती तीन जिह्वा वाला दूसरा मुख कहा गया है, वह त्रेता युग है। इस युग में महादेव के द्वारा ही यज्ञ करने में लोगों की प्रवृत्ति होती है। इनसे ही यज्ञ का प्रारम्भ होता है। इन्हें तीन जिह्वाएँ हैं और तीन अग्नि। ये ही अग्नि कालकी जिह्वाएँ हैं ॥१-१६॥

यह जो दो जिह्वावाला भयङ्कर लाल और पिङ्गल वर्णका मुख है, वह द्वापर नाम का युग है। इस युग में हम दो पैर वाले होंगे। यह जो चौथा काले रङ्ग का एवं लाल आँखोंवाला मुँह है, जिसमें काले रंग की एक मोटी जिह्वा बार-बार लपलपा रही है, वह सम्पूर्ण लोकों को भयत्रस्त करने वाला घोर कलियुग है। यह कल्पों का भीषण चौथा मुख है। इस युग में न सुख है और न मुक्ति एव प्रजाजन भी इस युग में काल से ग्रस्त होकर रहेंगे। कृतयुग में ब्रह्मा पूजित होते हैं, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में विष्णु और मैं चारों युगों में पूजित रहता हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और यज्ञ ये काल की तीन कलाएँ या अंश हैं; किन्तु चार मूर्तिवाले महेश्वर सभी कालों में हैं। मैं ही जन हूँ और आप लोगों का उत्पादक भी मैं ही हूँ। मैं ही काल हूँ

और काल का प्रवर्तक भी। मैं ही युगों का करने वाला, परम एवं श्रेष्ठ हूँ। इसलिये कलियुग के आने पर सांसारिकों के कल्याण के लिये और देवों को अभय देने के लिये मैं दोनों लोकों में मंगलकारक और पूजनीय रहूँगा। हे महाबली देवगण! आप लोग कलियुग को देखकर मत डरें। ऋषियों के साथ उन देवगणों से जब महादेव ने इस प्रकार कहा, तब उन लोगों ने सिर नवाकर महादेव को प्रणाम किया और कहा।

देवता और ऋषि बोले—देव, अत्यन्त तेजस्वी, दीर्घ शरीर, महाबली अतिशय दीप्तिशाली और सब जीवों के लिये भयंकर काल चार मुख वाले कैसे हुए। ॥१-२७॥

महादेव जी बोले—ये काल चार मुंह वाले, चार दाँत वाले और चार मूर्ति वाले हैं। संसार की रक्षा के लिये ये सब का अतिक्रमण कर जाते हैं अर्थात् किसी की अपेक्षा नहीं करते हैं। इस चराचरमय संसार में इनके लिये असाध्य कुछ नहीं है! काल जीवों की सृष्टि करते हैं और फिर क्रम से उनका संहार भी कर डालते हैं। सभी काल के वश में हैं; किन्तु काल किसी के भी वश में नहीं हैं। इसलिये काल ही सभी जीवों का संकलन (शासन) करते हैं। पहले कहे गये इक्कीस युग काल का एक डग हैं। घूमने वाले युगों के क्रम से वे ही मन्वन्तर कहलाते हैं। एक-एक पैर चलकर जब काल इक्कीस डग रखते हैं, तब मन्वन्तर का क्षय होता है। शंकर ने इस प्रकार देवता, ऋषि, पितर और दानवों से कहा यह सुनकर प्रसन्न हो श्रोताओं ने भगवान् को नमस्कार किया तब भगवान वहीं अन्तर्हित हो गये। भगवान काल इसी प्रकार देवता ऋषि, पितर और दानवों का बार-बार सृजन और संहार करते हैं। इसीलिये भगवान् ईश प्रति मन्वन्तर में काल के भय से डरे हुए देवता, ऋषि, पितर और दानवों से पूजित होते हैं। ब्राह्मणो! इसलिये कलियुग में खूब यत्नपूर्वक तपस्या करनी चाहिये। जो तपस्या द्वारा महादेव को प्राप्त करता है, उसे महान् पुण्य प्राप्त होता है। इसलिये देवगण भी स्वर्ग जाकर पृथ्वीतल पर उतर आते हैं और कठोर कलिकाल को पाकर वे देव-ऋषिगण धर्मरत होकर अधिक तप करने की इच्छा करते हैं। कलियुग का जब-जब अवतार होता है, तब-तब वे ऐसा ही करते हैं। इस प्रकार कालान्तर में अर्थात् वैवस्वत मन्वन्तर में जो सब हजारों की संख्या में देव राजर्षि आदि व्यतीत हो गये थे, वे सब तथा देवापि, पुरुवंशीय राजा, मनु और इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न होने वाले महा योगबल से युक्त होकर दूसरे काल में जन्म ग्रहण करते हैं। सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि के (आगामी) क्षीण हो जाने पर सप्तर्षियों के साथ फिर होने वाले त्रेतायुग में वे ही होने वाले क्षत्रियों के वंशों के कारण कहे जाते हैं। कृत, त्रेता और द्वापर युग के क्षीण हो जाने पर अर्थात् द्वापर के अन्त में क्षत्रियगण ऋषियों के साथ रहते हैं। ब्राह्मण-क्षत्रियों का जो विनाश होता है, वह कलियुग में द्विजादि के लाभ के लिये ही। इस प्रकार भी क्रमशः सभी युगों में सप्तर्षियों के साथ भावी सन्तान के लिये वे समय-समय पर उत्पन्न होते हैं। इस तरह द्विजों के लिये क्षत्रियों का विनाश होता है, जो पातकी मनुष्य हैं वे कलियुग में रहते हैं। सप्त मन्वन्तरों की सन्तानों के लिये श्रुति और स्मृति का निर्माण हुआ है। इसी प्रकार इन सब में युगों का विनाश होता रहता है।

Funding by IKS-MoE

जमदग्नि सुत परशुराम ने क्षत्रियों को मार डाला; क्योंकि वे क्षत्रिय राजा कुलटाओं की संख्या बढ़ा रहे थे। अब हम उन स्वर्गगत राजाओं का विवरण कहते हैं, सुनिये।

इक्ष्वाकु वंश का मूल ऐड़ वंश है। श्रोणिबन्ध राजागण इक्ष्वाकु वंशीय नृपगण तथा और और क्षत्रियों ने इस पृथ्वी पर ऐड़ वंश में जन्म ग्रहण किया था। उन्हीं नृपतियों से पूर्ण सौ कुलों का अभिषेक अर्थात् विस्तार हुआ था। तभी उनके कुलों से भोजकुल का वंश विस्तार में दूना था। जैसा कि कहा है, भोजकुल में प्रायः तीन सौ क्षत्रिय थे, जो चार भागों में विभक्त थे। उनमें जो राजा बीत चुके हैं, उनके बारे में कहते हैं, सुनिये। प्रतिविन्ध्य हैहय और धार्तराष्ट्र के सौ-सौ कुल अतीत हुए हैं, जनमेजय के अस्सी कुल, ब्रह्मदत्त, वीर्यी, पौल के सौ-सौ कुल तथा काशिकुश के भी सौ कुल और शशविन्दुओं के हजार कुल अतीत हुए हैं। इन सभी राजाओं ने बहुत दक्षिणा देकर अश्वमेध यज्ञों को किया है। वैवस्वत मनु के मंगल-जनक वर्तमान काल में जो सैकड़ों-हजार राजर्षि व्यतीत हो चुके हैं, उनका आवृत्ति और अधिकता के भय से विस्तार के साथ वर्णन नहीं किया जा सकता है। इसलिये उनका वर्णन संक्षेप में किया गया। हम विस्तार के साथ उनका वर्णन नहीं कर सकते, जो सब राजर्षि उन युगों के साथ व्यतीत हो चुके हैं। ये सब ययाति वंश के वंश को बढ़ाने वाले कान्तिमान संसार का पालन करने वाले कहे गये हैं। इन्होंने दुर्लभ ब्रह्म, लौकिक आयु, पुत्र, धन, कीर्ति और ऐश्वर्य-विभूति नामक पाँच वरों को प्राप्त किया था। वे अपनी प्रजा के पाँचों वर्गों की बातों को (अभियोगों को) सुना करते थे और अपनी विद्वान् प्रजा का पालन किया करते थे, इससे वे सभी राजागण ब्रह्मलोक को गये। चार हजार वर्षों का कृतयुग होता है, जिसमें उतनी ही संध्या और उतने ही संध्यांश होते हैं। कृतयुग का प्रक्रियापाद चार हजार वर्षों का कहा गया है; इसलिये चार सौ संध्याएँ और उतने ही संध्यांश होते हैं। त्रेता युग संख्या में तीन हजार वर्षों का होता है। मुनियों ने कहा कि, इसमें तीन सौ वर्ष की संध्याएँ और तीन सौ वर्ष के ही संध्यांश होते हैं। त्रेता का अनुषङ्गपाद संख्या में तीन हजार का है। द्वापर के दो हजार वर्ष कहे गये हैं। इसमें भी दो सौ वर्ष की संध्याएँ और उतने वर्षों के संध्यांश होते हैं। इस तरह तीसरा उपोद्घातपाद द्वापर का कहा गया है। संख्या जानने वाले विद्वानों ने कलियुग को एक हजार वर्षों का कहा है। इसमें भी सौ वर्ष की संध्याएँ और सौ वर्ष के संध्यांश होते हैं। कलियुग में चौथा संहारपाद होता है। संध्या और संध्यांशों के साथ चारों युग बारह हजार वर्षों के कहे गये हैं। इस तरह युगपादों का परिमाण दस हजार वर्षों का है और संध्या तथा संध्यांश दो हजार वर्षों के। इस प्रकार युगपादों का परिमाण कवियों ने बारह हजार वर्षों का कहा है। जैसे वेद चार पादों के हैं, उसी प्रकार युग भी चार पादों के होते हैं। विधाता ने जैसे युग का स्वयं चतुष्पाद विधान किया है वैसे ही ब्रह्मा ने भी पहले युग को चतुष्पाद बनाया है। ॥२८—६८॥

श्री वायु महापुराण युग का धर्म-निरूपण नामक
बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३२॥

Funding by IKS-MoE

तैंतीसवाँ अध्याय

स्वायम्भुव वंशवर्णन

सूतजी बोले—बीते हुए और आनेवाले सभी मन्वन्तरों में नाम और रूप के अनुमार समान भाव से कुछ अभिमानी देवता हुआ करते हैं। उस मन्वन्तर में अनेकानेक देवता, मन्वन्तर के स्वामी, ऋषि, मनु आदि सभी समान रूप से अभिमानी होते हैं। महर्षियों की सृष्टि पहले कही जा चुकी है अब स्वायम्भुव का वंश-विस्तार हम क्रमशः कहते हैं, सुनिये। स्वायम्भुव मनु को उन्हीं की तरह दस पोते थे। जिन्होंने उसी स्वायम्भुव मन्वन्तर के आदि त्रेतायुग में पहले पहल सातों द्वीपों और समुद्रों के साथ समूची पृथ्वी का प्रतिवर्ष कर-संग्रह किया था। प्रियव्रत के पुत्रों और स्वायम्भुव के उन पौत्रों ने योग और तपस्या के द्वारा प्रजाओं की सृष्टि के अनुसार पृथ्वी का शासन किया। वीर प्रजापति प्रियव्रत को एक सौभाग्य-शालिनी कन्या भी थी, जो कर्दम प्रजापति से व्याही गयी थी। इसके अतिरिक्त उन्हें और दो पुत्रियाँ तथा सम्राट् कुक्षि आदि सौ पुत्र थे। इन दोनों को प्रजापति की ही तरह शूर-वीर दस भाई थे। जिनके नाम थे अग्नीध्र, वपुष्मान्, मेधा, मेधातिथि, विभु, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, सवन और सव्य। प्रियव्रत ने इन सात राजाओं का उन सात भागों में बिभक्त सात द्वीपों में धर्मानुसार अभिषेक किया। उन द्वीपों के विषय में सुनिये। जम्बू द्वीप में महाबली अग्नीध्र को प्रभु बनाया और उसी प्रकार प्लक्ष द्वीप में मेधातिथि ईश्वर बनाये गये। शाल्मलि द्वीप में वपुष्मान् राजा बनाकर राज्यासन पर बैठाये गये और कुशद्वीप के ज्योतिष्मान् राजा बनाये गये। क्रौञ्चद्वीप राजा द्युतिमान् को दिया गया। हव्य को प्रियव्रत ने शाकद्वीप का स्वामी बनाया। इसके अनन्तर प्रियव्रत ने सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति बनाया। पुष्करद्वीप में सवन को महावीत और धातकि नामक दो श्रेष्ट पुत्र हुए। उस महात्मा के नाम से महावीत नाम का वर्ष चलाया गया और धातकि के नाम से वह धातकि-खण्ड कहलाया। हव्यवाहन ने शाकद्वीप में सात पुत्रों को उत्पन्न किया, जो पीछे चलकर वहाँ के शासक हुए। उनके नाम ये हैं—जलद, कुमार, सुकुमार, मणीचक्र, वसुमोद, सुमोद और महाद्रुम। इनके नामों से वहाँ सात वर्ष प्रचलित हुए। जलद के नाम पर पहला जलद वर्ष, कुमार के नाम का दूसरा कौमार वर्ष, सुकुमार के नाम का तीसरा सुकुमार वर्ष, मणीचक्र के नाम का चौथा मणीचक्र वर्ष, वसुमोद के नाम का पाँचवाँ वसुमोदक वर्ष, मोदक के नाम का छठाँ मोदक वर्ष और महाद्रुम के नाम का सातवाँ महाद्रुम वर्ष कहलाता है। क्रौंचद्वीप के स्वामी द्युतिमान् को भी कुशल, मनुग, उष्ण, पीवर, अन्धकारक, मुनि और दुन्दुभि नामक पुत्र हुए। उन्हीं के नाम से क्रौंचद्वीप के देशों का नामकरण हुआ। उष्ण का देश उष्ण कहलाया, पीवर का पीवर, अन्धकारक का अन्धकार मुनि का मुनि, और दुन्दुभि का दुन्दुभि। क्रौंचद्वीप में ये सात देश बड़े प्रसिद्ध हैं। ज्योतिष्मान् को कुशद्वीप में उद्भिद्, वेणुमान्, स्वैरथ, लवण, धृति, प्रभाकर और कपिल नामक सात बलवान् पुत्र हुए। पहला उद्भिद् वर्ष, दूसरा वेणुमण्डल, तीसरा स्वैरथाकार, चौथा लवण, पाँचवाँ धृतिमद्, छठाँ प्रभाकर और

सातवाँ कपिल नाम का वर्ष वहाँ प्रसिद्ध है। कुशद्वीप में इन पुत्रों के ही नाम पर द्वीपखण्ड हैं, जहाँ वर्णाश्रम धर्म से अनुरूप प्रजा रहती है। शाल्मलि द्वीप के अधिपति वपुष्मान् को श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित वैद्युत, मानस और सुप्रभ नामक सात पुत्र हुए। श्वेत के नाम पर श्वेत देश, रोहित के नाम पर रोहित, जीमूत के नाम पर जीमूत और हरत, वैद्युत, मानस और सुप्रभ के नाम पर हारित, वैद्युन, मानस और सुप्रभ देश हुए और ये ही सात उन सातों देशों के रक्षक भी हुए।

अब हम जम्बू द्वीप के परवर्ती अन्य सातों द्वीपों की कथा कहते हैं। मेधातिथि को सात पुत्र हुए, जो प्लक्ष द्वीप के अधीश्वर हुए। इनके बीच शान्तमय सबसे ज्येष्ठ थे। इन्हीं के नामानुसार वहाँ सात वर्ष भी हुए। शान्तमय के छोटे भाई थे—शिशिर सुखोदय, अनक, ध्रुव, क्षेमक और शिव। ये सब स्वायम्भुव मन्वन्तर के भोग काल में वर्तमान थे और इन्होंने अपने-अपने नाम के अनुसार सातों वर्षों का विभाग कर उन्हें चलाया। मेधातिथि के उन पुत्रों ने जो सातों द्वीपों में निवास करते थे—प्लक्षद्वीप में प्रजाओं को वर्णाश्रम के आचार से मुक्त कर दिया। प्लक्षद्वीप से लेकर शाकद्वीप पर्यन्त पाँच दीपों में वर्णाश्रम विभाग के अनुरूप धर्म चल रहा था। इन पाँचों द्वीपों में सुख, आयु, रूप, बल और धर्म साधारणतया सभी को प्राप्त थे। सातों द्वीपों से घिरे हुए जम्बूदीप की अब कथा सुनिये। प्रियव्रत ने महाबली ज्येष्ठ पुत्र अग्नीध्र को कन्या पुत्र के साथ जम्बूदीप का राजा बनाकर अभिषिक्त किया। अग्नीध्र के पुत्र भी प्रजापति के समान महान् बलवान् हुए। उनमें ज्येष्ठ नाभि था, जिससे छोटा किम्पुरुष हुआ। तीसरा हरिवर्ष, चौथा इलावृत, पाँचवाँ रम्य, छठाँ हिरण्मान्, सातवाँ कुरू, आठवाँ भद्राश्व और नवाँ केतुमाल, नाम का पुत्र हुआ। अब इनके देशों को सुनिये। इनमें नाभि को पिता ने हिम नामक दक्षिण देश, किम्पुरुष को हेमकूट नामक देश, हरिवर्षको नैषध देश, इलावृत को सुमेरु का मध्यदेश, रम्य को नील नामक हिरण्मान् को उत्तर का श्वेत देश, कुरु को भी उत्तर दिशा में शृङ्गवान् देश, भद्राश्व को माल्यवान् देश और केतुमाल को गन्धमादन देश दिया। देशों के ये ही बड़े-बड़े नौ विभाग हैं। धर्मात्मा अग्नीध्र उन सभी देशों में यथाक्रम अपने पुत्रों को राजा बना कर स्वयं तपस्या करने चले गये। स्वायम्भुव के पौत्र और प्रियवत् के उन सातों पुत्रों ने इस प्रकार संपूर्ण सातों द्वीप में राज्य स्थापित किया। किंपुरुष आदि जिन शुभदायक आठ देशों को हमने कहा है, वहाँ बिना यत्न किये ही सिद्धि अनायास आ जाती है। वहाँ न किसी प्रकार का परिवर्तन है और न बुढ़ापा या मृत्य का डर। वहाँ धर्म है, अधर्म नहीं। उत्तम, मध्य और अधम का भेद नहीं है। उन सभी क्षेत्रों में कभी भी युगानुकूल अवस्था नहीं होती है।

अब हम हिमक्षेत्र के अधिपति नाभि के वंश विस्तार को कहते हैं। नाभि ने मरुदेवी में ऋषभ नामक एक पुत्र उत्पन्न किया, जो अत्यन्त तेजस्वी, राजाओं में श्रेष्ठ और सभी क्षत्रियों का पूर्वज था। ऋषभ से वीर भरत की उत्पत्ति हुई, जो अपने सौ भ्राताओं में ज्येष्ठ थे। ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को राजगद्दी पर बैठा कर स्वयं संन्यास ले लिया। उन्होंने भरत को हिम नामक दक्षिण देश दिया। इस कारण विद्वान् लोग उनके नाम से उस देश को भारतवर्ष कहते हैं। भरत के पुत्र सुमति हुए, जो विद्वान् और धार्मिक

Funding by IKS-MoE

थे । तब भरत ने सुमति को राज्य दे दिया और बेटे को राज्य भार सौंपने के बाद स्वयं जंगल चले गये । सुमति को तैजस नामक पुत्र हुआ । इन्द्रद्युम्न के मर जाने पर स्वयं परमातमा उसके वंश में प्रतिहार नाम से उत्पन्न हुए । प्रतिहार को प्रतिहर्ता नाम का बुद्धिमान् और विख्यात पुत्र हुआ । प्रतिहर्ता को उन्नेता, उन्नेता को भुव, भुव को उद्गीथ, उद्गीथ को प्रस्तावि, प्रतावि को विभु, विभु को पृथु, पृथु को नक्त, नक्त को गय, गय को नर, नरको विराट्, विराट्को महावीर्य, महावीर्यको धीमान्, धीमान्को महान्, महान्को भौवन, भौवन को त्वष्टा, त्वष्टा को अरिज, अरिजको रजस, रजस को शतजित् और शतजित् को सौ राजा पुत्र हुए । संसार भर में अपनी कीर्ति को फैलाने वाले उन राजाओं ने यहाँ की प्रजाओं को समृद्ध किया और उन्होंने ही भारतवर्ष को सात खण्डों में पहले विभक्त किया था । उन्हीं के वंशजों द्वारा यह भारत भूमि कृत, त्रेता आदि इकहत्तर चौयुगी में उपभुक्त हुई है । पहले स्वायम्भुव मन्वन्तर के काल में सहस्रों राजागण जो उन युगों के साथ अतीत हो गये हैं, वे भी उन्हीं के वंशज थे । ऐसा स्वायम्भुव मनु का वंश-विस्तार है । ऋषियों, देवों, पितरों, गन्धर्वों, राक्षसों, यक्षों, भूतों, पिशाचों, मनुष्यों, मृगों और पक्षियों के साथ उन्हीं के वंशजों ने इस जगत को पूर्ण किया है । संसार में उनकी यह सृष्टि युगों के साथ चलती रहेगी । ॥ ३१-६५ ॥

श्री वायु महापुराण का स्वयाम्भुव वंश-वर्णन नामक तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३३ ॥

चौंतीसवाँ अध्याय

जम्बूद्वीप का वर्णन

ऋषिगण बोले—पंडित ऋषिश्रेष्ठगण जब इस प्रकार प्रजाओं की कथा सुन चुके, तब सूत से पूछा कि, पृथिवी की परिधि और विस्तार क्या है ? प्रभो ! कितने द्वीप और समुद्र हैं ? कितने पर्वत, कितने देश हैं ? उनमें कितनी नदियाँ हैं, और वे किन किन नामों से प्रसिद्ध हैं ? लोकालोक का प्रमाण क्या है ? महाभूतों का प्रमाण क्या है ? चन्द्र सूर्य की गति तथा उनकी परिधि और विस्तार क्या है ? यह हम लोगों को विस्तार के साथ क्रमशः सुनाइये ।

सूतजी बोले—इसके आगे हम पृथ्वी की परिधि विस्तार, समुद्रों की संख्या, द्वीपों का विस्तार, देश और वहाँ की नदियों के नाम, महाभूतों का प्रमाण, लोकालोक तथा सूर्य-चन्द्रों की गति और उनका परिमाण क्रमशः कहते हैं । सातों द्वीपों के अन्तर्गत हजारों उपद्वीप हैं, जिनका प्रमाण के साथ पृथक् पृथक् वर्णन सौ वर्षों में भी नहीं हो सकता है । इस समय चन्द्र, सूर्य और ग्रहों के साथ केवल सातों द्वीपों का ही वर्णन करते हैं । मनुष्यगण तर्क द्वारा इनका प्रमाण कहा करते हैं, किन्तु जो अचिन्तनीय विषय हैं, उनके सम्बन्ध में तर्क नहीं करना चाहिये । जो प्रकृति से अतीत परम वस्तु है, वही नित्य कहलाता है । जो हो, हम नौ देशों वाले जम्बूद्वीप का यथारूप वर्णन करते हैं । वृत्ताकार इस द्वीप का

Funding by IKS-MoE

विस्तार जितने योजनों का है, सो सुनिये । इस द्वीप का परिमाण एक हजार एक सौ योजन का है । इस द्वीप में कितने ही देश हैं और विविध भांति के सुन्दर पुरों से तथा सिद्ध, चारण, गन्धर्व एवं पर्वतों से सुशोभित हैं । यहाँ के पर्वतों में नाना प्रकार की धातुएँ भरी पड़ी हैं, शिलाखण्डों से और पर्वतीय नदियों से सब पर्वत सुशोभित हो रहे हैं । इस प्रकार यह शोभा-सम्पन्न विशाल जम्बूद्वीप नौ देशों में विभक्त और भूतभावन देवों द्वारा व्याप्त है तथा चारों ओर से लवण सागर से घिरा हुआ है । चारों ओर से जम्बूद्वीप के विस्तार के ही अनुसार पूर्व की ओर अधिक लम्बे, और सुन्दर शिखरों से युक्त छः वर्ष पर्वत हैं । वे सब दोनों ओर फैलकर पूर्व-पश्चिम समुद्रों में डूबे हुए हैं । इन छवों देश-विभाजक पर्वतों के नाम हैं—तुषारावृत, हिमवान्, हेममय, हेमकूट, बाल सूर्य के समान सुनहला निषध और चातुर्वर्णमय सुवर्ण-मण्डित मेरु । मेरु सबसे उच्चतम कहा गया है । इसका प्रमाण प्लुताकृति (ऊबड़-खाबड़), चौकोर और बहुत ऊँचा है । इसके चारों ओर भिन्न-भिन्न वर्ण के मनुष्य निवास करते हैं; अतएव यह प्रजापति के गुणों से युक्त है । अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के नाभि बन्धन से यह उत्पन्न हुआ है । पूर्व में यह श्वेत वर्ण है; अतः उससे इसका ब्राह्मणत्व जाना जाता है । दक्षिण ओर से यह पीत है; अतः उससे इसका वैश्यत्व प्रकट होता है । यह महावज्री मेरु पश्चिम की ओर भृंगपत्र की तरह काला है; अतः उससे इसकी शूद्रता देखी जाती है और उत्तर की ओर यह स्वभाव से ही लाल वर्ण का है, उससे इसका क्षत्रिय होना व्यक्त होता है । नाना वर्ण मय होने के कारण यह चातुर्वर्ण्य कहा गया है । स्वभाव, वर्ण और परिमाण के कारण यह व्यक्त कहा गया है । नीलगिरि वैदूर्य (मूंगा) और हिरण्यमय है । इसके शिखर उज्ज्वल हैं । मयूरपिच्छ की तरह यह सुन्दर है और इसके शिखर सुवर्णमय हैं । ये पर्वतराज हैं, जो सिद्ध-गन्धर्वों से सेवित हैं । इनका अन्तर विष्कम्भ नौ हजार योजन का कहा जाता है । इन पर्वतों के बीच इलावृत नाम का देश है, जिसका वर्ष-पर्वत नौ हजार योजन का है और जो मेरु को चारों ओर से घेरे हुए हैं । मेरु इनके बीच वैसा ही मालूम पड़ता है, जैसे बिना धुएँ की अग्नि । मेरु के दक्षिणार्द्ध और उत्तरार्द्ध के रूप में दक्षिण वेदी और उत्तर वेदी है । इनके बीच जो सात देश हैं, उनके वर्ष पर्वतों का विस्तार दो-दो हजार योजनों का है । उनका विस्तार जम्बूद्वीप के विस्तार के अनुसार कहा जाता है अथवा जम्बूदीप से वे अधिक बड़े हैं । उनके मध्य में स्थित नील और मध्य नामक पर्वत दो हजार दो सौ योजनों के हैं । इनकी अपेक्षा 'और जो श्वेत, हेमकूट, हिमवान्, शृङ्गवान् आदि हैं, वे छोटे हैं । इन पर्वतों का परिमाण बयासी हजार बानबे योजनों का है । उनके बीच जो देश हैं, वे सात भागों में विभक्त हैं । वे सब देश दुर्गम पर्वतों से घिरे हुए हैं । और अनेकानेक नदियों से परस्पर अगम्य हैं । वहाँ नाना जाति के जीव विभाग क्रम से निवास करते हैं ।

यह हैमवत वर्ष (देश) भारत के नाम से विख्यात है । इसके आगे हेमकूट और हेमकूट के आगे किंपुरुष देश है । नैषध हेमकूट हरिवर्ष कहलाता है । हरिवर्ष और मेरु के आगे इलावृत है । इलावृत के आगे नील रम्यक देश है । रम्यक के आगे श्वेत देश है, जो हिरण्मय भी कहलाता है । हिरण्मयके आगे शृङ्गवान् है, जो

Funding by IKS-MoE

कुरु कहलाता है। दक्षिणोत्तर दिशाओं के दो देश धनुषाकार में स्थित हैं। वहाँ चार बड़े-बड़े देश हैं; किन्तु इलावृत मध्यम है। निषध-पर्वत के पूर्व भाग में दक्षिण आधी वेदी है और नील पर्वत के पर भाग में उत्तर आधी वेदी है। दक्षिण वेद्यर्ध में तीन और उत्तर वेद्यर्द्ध में भी तीन देश स्थित हैं। उन दोनों के बीच अर्थात् नील के दक्षिण और निषध के उत्तर मेरु के मध्य इलावृत स्थित है। महाशैल माल्यवान् नाम का पर्वत उत्तर दिशा में फैला हुआ है। निषध और नील पर्वतों से यह हजार योजन उन्नत है इसका विस्तार तैंतालीस हजार योजन है। इसके पश्चिम गन्धमादन नाम का पर्वत है। यह लम्बाई और विस्तार में माल्यवान् के ही तुल्य है। दोनों परिमण्डलों (घेरे) के बीच मेरु ही उत्तम पर्वत है। क्योंकि वह चतुर्वर्णमय है, चारों ओर से उन्नत, सुन्दर और अव्यक्त धातुओं से भरा है। जल की भी वहाँ कमी नहीं है। अव्यक्त से पृथिवीपद्म उत्पन्न हुआ है और मेरुगिरि उसका कर्णिका स्थान है। इसी से चारों पथ उत्पन्न हुए हैं और पाँचों महान् गुण प्रकट हुए हैं। इसी से सभी वृत्तियाँ और द्विजगण उत्पन्न हुए हैं। अनेक कल्पों में पहले जिन लोगों ने विविध पुण्यों का उपार्जन किया है वे ही कृतात्मा यहाँ निवास करते हैं। विनीतात्मा, महात्मा, पुरुषोत्तम, महादेव, महायोगी, जगज्ज्येष्ठ, सर्वलोक व्यापक अनन्त महेश्वर अमूर्त रूप में यहाँ ही उत्पन्न हुए हैं। मांस, मेद और अस्थि से उत्पन्न होने वाली प्राकृत मूर्ति उन्हें नहीं है। ऐश्वर्य और योग प्रभाव से वे सर्वान्तर्यामी हैं। उन्हीं के लिये यह सनातन संसार-पद्म उत्पन्न हुआ है। कल्पान्त में शेष रहने वाले काल स्वरूप महादेव की ऐसी ही आदि गति है। उसी पद्म से देवाधि देव, चतुर्मुख, संसार के स्वामी, ईशान, प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुए हैं। उस कमल की बीज सृष्टि सत्यमूलक है। ॥१—४५॥

अब सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि को हम विस्तार के साथ कहते हैं। वह कमल जो विष्णु की नाभि से उत्पन्न हुआ है उसी से वन-वृक्षों से सुशोभित यह पृथ्वी पद्म के रूप में समुत्पन्न हुई है। वह लोक-पद्म किस तरह प्रकाशित हुआ उसका विभागानुसार क्रमशः वर्णन हम विस्तार के साथ कह रहे हैं। ब्राह्मणो ! आप लोग सुनिये। पंखड़ी की तरह चार विख्यात महाद्वीप उसके चारों ओर हैं और बीच में महाबली मेरु कर्णिक (पद्म केशर) की तरह है। मेरु का पार्श्व प्रदेश नाना वर्णों का है। पूर्व में श्वेत, दक्षिण में पीत, उत्तर में रक्त और शिखर में कृष्ण वर्ण है। इस प्रकार शोभा बढ़ाने वाले वर्णों से समन्वित होकर स्वयं शुभ्र वर्ण का मेरु राजा की तरह वर्तमान है। उसकी कान्ति बाल सूर्य की तरह चमक रही है, जान पड़ता है कि, जैसे बिना धुएँ की आग हो। यह चौरासी हजार योजन ऊँचा कहा गया है। इसका विस्तार सोलह योजनों का है और उतने ही परिमाण में यह पृथ्वी में भी प्रविष्ट है। इसके मस्तक का विस्तार बारह योजनों का है और पूरब की ओर यह वाण के रूप में दीख पड़ता है। इसके चारों ओर की परिधि इसके विस्तार से तीन गुनी अधिक है। मण्डल के प्रमाण से इसके मूर्धज आधे हैं। उस त्रिकोण शिखर का परिमाण अड़तालीस हजार योजन है। चारों ओर इसका विस्तार चौंसठ हजार योजन है। यह पर्वत अत्यन्त दिव्य है। दिव्यौषधियों से युक्त और सुन्दर सुवर्णमय भुवनों से घिरा हुआ है। उस शैलराज के ऊपर सुन्दरी अप्सराओं के गण, सभी देवगण एवं गन्धर्व, उरग राक्षसादि

Funding by IKS-MoE

देखे जाते हैं। वह मेरु जीवों की सृष्टि करने वाले भुवनों से घिरा हुआ है एवं उसके चारों ओर चार देश बसे हुए हैं। उनके नाम ये हैं—भद्राश्व, भरत, पश्चिम केतुमाल और उत्तर कुरु। इस उत्तर कुरु में पुण्यवान् लोग रहा करते हैं। चारों ओर से परिमण्डलाकार उस पद्म की कर्णिका (पद्मकोष) छियानबे हजार योजनों की है। उसका अन्तराल चौरासी योजनों और उसके केशरजाल तीन सौ हजार योजनों में फैले हुए हैं। वे चारों पद्म-पत्र जो चारों दिशाओं में फैले हुए हैं उनका आयाम-विस्तार सौ हजार अस्सी योजनों का है। मुनिगण! हमने पहले जिसको कर्णिका कहा है, उसका संक्षेप से वर्णन करते हैं, आप लोग एकाग्र मनसे सुनिये। अत्रि मुनि उसे शताश्रि और भृगुऋषि सहस्राश्रि मानते हैं। सावर्णि उसे अष्टाश्रि मानते हैं और भागुरि चतुरस्र। वार्षायणि उसे समुद्राकार मानते हैं और गालव शरावाकार। गार्ग्य उसे ऊर्ध्व वेणी के आकार का और क्रोष्टुकि परिमण्डलाकार मानते हैं। उस पर्वताधिपति के जिस-जिस पार्श्व भाग में जो ऋषि रहते हैं, वे उसे वैसा ही मानते हैं। इसे अच्छी तरह से केवल एक ब्रह्मा ही जानते हैं। उसे ही पर्वतों में उत्तम मेरु समझिये, जो मणियों और रत्नों से भरा हुआ है जो विविध भाँति के वर्णों की प्रभा से युक्त, अनेक वर्णों को धारण किये हुये सुवर्ण और अरुणकी कान्ति के समान शोभाशाली, कमनीय, हजार सन्धियों या स्तरों वाला, जल फेकने वाली हजार कन्दराओं से युक्त और हजारों पद्मपुष्पों से शोभायमान है। मेरु की प्रत्येक ग्रन्थि में (गण्डशैल) श्रीसम्पन्न सैकड़ों देवगण विमान-विहार द्वारा उसे दीप्तियुक्त करते हैं। मेरु स्वयं सुवर्ण-मणियों से अंग-अंग में खचित है और देवों के विमान भी मणि-रत्नों के खम्भों से ही बनाये गये हैं, उनके चबूतरों में भी मणियों से ही पच्चीकारी की गई है। उन पर मूंगे के तोरण झूल रहे हैं, इससे मेरुकी प्रभा पार्श्व भाग में भी छिटकती रहती है। मेरुके सहस्रों गण्डशैलों पर विविध भाँति के जीव आश्रय लिये हुए हैं और अनेकानेक देवगण वहाँ निवास कर रहे हैं। देवताओं में अग्रगण्य और ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ देवाधिदेव चतुर्मुख ब्रह्मा भी स्वयं उसके ऊपर के एक भाग में निवास करते हैं। सम्पूर्ण कर्म फलों को देने वाले महाभुवनों से परिपूर्ण हजारों पुर इस पर्वत पर विद्यमान हैं, जो सभी दिशाओं में फैले हुए हैं। वहाँ ब्रह्मर्षियों से सेवित एक मनोहारिणी ब्रह्म-सभा है जिसका नाम मनोवती है और जो सभी लोकों में विख्यात है। इस पर्वत पर महाविमान में स्थित ईशान देवका भी एक आवास स्थान है, जो उनकी महिमा के ही अनुरुप है। वहाँ देवता, ऋषि और स्वयं चतुरानन विराजते रहते हैं। देवों द्वारा अधिष्ठित वह स्थान तेजों की राशि कहा गया है। यहाँ शोभासम्पन्न श्रीमान् सहस्राक्ष इन्द्र भी निवास करते हैं, जिनकी महायोगी देवर्षि और देव सेवा करते हैं। वहाँ सूर्य के समान तेजस्वी लोक-पति महाराजा महेन्द्र का स्थान है, जो निखिल सिद्धों द्वारा वन्दनीय है। वह इन्द्रलोक संसार की श्रेष्ठ सम्पत्तियों से युक्त और अमर पुँगवों से नित्य सेवित होने के कारण दीप्त है।

पूरब-दक्खिन की ओर उसके दूसरे किनारे पर विविध धातुओं से चित्रित सुन्दरसा चमचमाता हुआ अग्निदेव का एक भास्वर विमान विद्यमान है। जिसमें रत्नमणियों से जड़ी हुई कितनी ही छतें हैं, जो अनेका-

नेक खंभों पर टिकी हुई हैं। उसमें सोने का ही उद्यान है, जिसमें रत्नमणियों की क्यारियाँ बनी हैं, बहुतेरे कूटागार और उत्तम-उत्तम भवन बने हैं। अग्निदेव की ऐसी ही तेजोवती नाम की महासभा है। वहीं साक्षात् अग्निदेव विराजमान रहते हैं। ये ही अग्निदेव देवों के मुख हैं। जो हजारों शिखावाले ज्वालामाली अग्नि देवों और ऋषियों द्वारा वन्दनीय हैं और हवन द्वारा पूजित हैं। ब्राह्मण लोग उन्हें विशिष्ट अधिदेव कहा करते हैं। अग्नि ही सम्पूर्ण तेजों की समष्टि हैं, इसमें सन्देह नहीं है। अनेक भागों को प्राप्त कर वे अद्वितीय तेजोनिधि विभु रूप में वर्तमान हैं। किन्तु कार्य-कारण के अनुसार उनका युक्तिपूर्वक विभाग किया जाता है। इसी प्रकार मेरु के तीसरे तट पर वैवस्वत की भी एक महासभा है, जो संसार में सुसंयमा नाम से विख्यात है। चौथी ओर रक्षोपति धीमान् विरुपाक्ष की कृष्णाङ्गना नामकी सभा है। इसी प्रकार पाँचवें तट पर वैवस्वत की शुभवती नाम की महासभा है। वहीं जलाधिपति महात्मा वरुण की सती नाम की महासभा है। इस सभा की उत्तर दिशा में छठें तट पर वायु की सर्वगुणसम्पन्न गन्धवती नाम की सभा है। मेरु के सातवें तट पर चन्द्रमा की महोदया नाम की सभा है, जिसमें शुद्ध वैदूर्य मणि की वेदी बनी हुई है। आठवें स्तर पर महात्मा ईशान की तपाये सोने की तरह चमकनेवाली यशोवती नाम की सभा है। इन्द्र आदि आठ प्रमुख महात्मा देवों के ये आठ विमान आठों दिशाओं में कहे गये हैं। महाभाग्यशाली ऋषिगण, देवगण, गन्धर्वों, अप्सराओं और महासर्पों से ये सदा सेवित हैं। वेदवेदांग जाननेवाले नाक, दिव, स्वर्ग आदि पर्याय वाची शब्दों से जिसे कहते हैं, वह कृतात्मा देवों का निवासस्थान यही है। वेदों में भी कहा गया है कि, इसी पर्वत पर देवलोक है। विविध यज्ञ, नियम और अनेक जन्म सञ्चित बहुत पुण्यों के फल से मानव यह देवलोक प्राप्त करता है। यही देवलोक स्वर्ग कहलाता है। ॥४६-६६॥

श्री वायु महापुराण का जम्बूद्वीप वर्णन नामक

चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

जम्बूद्वीप का वर्णन

सूतजी बोले—मैंने पहले जिस कर्णिकामूल की चर्चा की है, उसके नीचे का भाग सात हजार योजनों का है। उसके मण्डल का परिमाण अड़तालीस हजार योजनों का है। वह शैलराज को चारों ओर से घेरे हुए है और मनोहर मेरुमूल के नाम से प्रसिद्ध है। उन हजारों पर्वतों में अनेक बड़े ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं, जो सभी दिशाओं में फैले हुए हैं एवं मर्यादा-पर्वत कहलाते हैं। ये ही पर्वत सीमा-विभाजक हैं। ये पर्वत निकुंज, कन्दर, नदी, गुहा और झरनों से शोभित हैं। इनके मध्य भाग वाले तट पर अनेक कोठे बने

हुए हैं, जो फूलों से सुशोभित हैं। इनके मध्य भाग में पुष्पमालाओं की ढेरी लगी हुई है, शिखर धातुओं से मण्डित हैं जिनसे पीले काले पानी वाले झरने झरते रहते हैं और बड़े दृढ़ रत्नों से ये पर्वत जटित हैं। वहाँ कितने ही सुन्दर कुञ्ज हैं, जिनमें हजारों पक्षी हैं, सिंह व्याघ्र शरभ आदि जीव पड़े हुए हैं, चामर, हस्ती आदि विविध पशु एवं नाना वर्ण और आकृति वाले जीव-जन्तुओं से वे भरे हुए हैं। पूर्व दिशा में जठर और देवकूट नामक दो पर्वत हैं, जो दक्षिणोत्तर भाग में लम्बे हैं और नील, निषध पर्वत तक फैले हुये हैं। दक्षिण और उत्तर में कैलास और हिमवान् नाम के पर्वत हैं, जो पूरब से पच्छिम तक फैले हुए हैं और दोनों ओर समुद्र में प्रविष्ट हैं। द्विज श्रेष्ठ! यह जो अत्युच्च कनकाचल मेरु है, उसके विष्कम्भ (विस्तार) के सम्बन्ध में कहते हैं, सुनिये। ॥१–१०॥

मेरु की चारों दिशाओं में चार बड़े-बड़े स्तम्भपाद हैं, जो सातों द्वीपवाली पृथ्वी को पकड़े हुए हैं, जिससे कि पृथ्वी इधर उधर नहीं हिलने पाती है। इन पर्वत पादों का विस्तार दस हजार योजनों का कहा गया है। इनके नीचे अनेक झरनों से युक्त नाना रत्नों से शोभित देव-गन्धर्व-यक्षों की अनेक रमणीय कन्दराएँ बनी हुई हैं। मध्य देश में पुष्पों की ढेरी लगी हुई है, जिनसे सुशोभित शिखर चित्रित से जान पड़ते हैं। वहाँ मैनशिल की कन्दराएँ हैं। सुवर्ण तथा मणियों से चित्रित गुफाएँ हैं। सिद्धों के निवास स्थान की छतें हरिताल की बनी हैं जो हिंगुल, सुवर्ण और अन्यान्य धातुओं से मंडित हैं। प्रवाल और सुवर्ण से उनमें चित्रकारी की गई है। वहाँ सर्वत्र आनन्द और उल्लास जान पड़ता है। इस प्रकार शोभासंपन्न अनेक प्रासाद और विमान पर्वत पर विराजमान हैं। उसके दक्षिण में गन्धमादन, पूर्व में मन्दर, पश्चिम में विपुल और उत्तर में सुपार्श्व नाम के पर्वत हैं। उनके हजारों शृङ्गसमूहों पर दीपपताका की तरह चार महान् वृक्ष शोभित हैं, जिनके नीचे हीरक और वैदूर्य मणि की वेदी बनी हुई है। जिनके काले और चिकने पत्ते की घनी छाया से अनेकानेक आश्रम ढके हुए हैं। जहाँ सिद्ध-चारण-यक्षगन्धर्व आदि सदा विराजमान रहते हैं। जिनकी हजारों शाखाएँ अनेक योजनों की ऊँचाई में फैली हुई हैं, एवं जिनमें फल-फूल सर्वदा लगे रहते हैं। उन वृक्षों के मूल देश अत्यन्त दृढ़ है। उस मन्दर वृक्ष के शिखर पर एक केतुराट् नामक महा-वृक्ष विद्यमान है। जिसकी शाखाओं से कन्दरायें, लघु पादप औरशिखर आवृत हैं। उन शाखाओं में घट की तरह बड़े-बड़े फल लगे हुए हैं और विकसित केसरों से युक्त सभी ऋतुओं में खिलने वाले, अत्यन्त सुगन्धित रमणीय पुष्प सुशोभित रहते हैं। मन्द मारुत के झकोरों से वे पुष्प अपनी गन्ध से हजार योजन से भी दूर की दिशा को सुरभित करते रहते हैं। ब्राह्मणो! वही वरकेतु देश भद्राश्व के नाम से भी प्रसिद्ध है, जहाँ साक्षात् हृषीकेश भगवान् सिद्धों द्वारा पूजित हुए हैं। मानवश्रेष्ठ! उसी देश के रुद्र कदम्ब वृक्ष के नीचे श्वेत अश्व पर अमरश्रेष्ठ हरि पहले स्वयं उपस्थित हुए थे और उन्होंने सम्पूर्ण द्वीप को देखा था, इसी से उस देश का नाम भद्राश्व पड़ा। दक्षिण शैल के शिखर पर देवों द्वारा सेवित, माला से शोभित और सदा फलने-फूलने वाला एक जम्बू वृक्ष है। जिसकी जड़ें और तना विशाल हैं। जो चिकने और नये पत्तों से सुशोभित हैं। जिसमें सदा फल-फूल लगे रहते हैं और जो अपनी विशाल शाखाओं से

शोभित है। उसके सुस्वादु, कोमल अमृत तुल्य बड़े-बड़े फल पहाड़ के शिखर से टपकते रहते हैं, जिस कारण उस पर्वत श्रेष्ठ के एक गण्ड देश से जम्बू नाम की नदी बह निकली है, जिसमें मधुतुल्य रस प्रवाहित होता रहता है। उस नदी से अग्नि के समान कान्तिवाला जाम्बूनद नाम का पापविनाशी सुवर्ण उत्पन्न होता है, जो देवों के अनुपम अलङ्कार के काम आता है। देव, दानव, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग आदि अमृततुल्य मधुर उस जम्बू रस को पीते रहते हैं। दक्षिण द्वीप में वह केतुस्वरूप जम्बू वृक्ष निखिल जम्बूलोक में विख्यात है, जिसके नाम पर ही वह द्वीप सदा से जम्बू द्वीप कहा जा रहा है। ॥११—३२॥

महात्मा स्वरूप उस विशाल शैल के पश्चिम शृङ्ग पर एक बहुत बड़ा पीपल का वृक्ष है। उसमें लटकती हुई एक माला टँगी है। उसका तना और शाखाएँ बहुत बड़ी-बड़ी और ऊँची हैं। भाँति-भाँति के जीव उसके नीचे और ऊपर बसेरा लिये हुए हैं। उसके नीचे की भूमि सुवर्ण और मणियों से खचित है। सभी ऋतुओं में घड़े के समान बड़े-बड़े सुस्वादु फल उसमें लगे रहते हैं। देव-गन्धर्व भी उस वृक्ष की सेवा किया करते हैं। वह वृक्ष केतुमाल देश की ध्वजा के समान है। विप्रो! सुनिये उस देश का नाम केतुमाल क्यों पड़ा। क्षीर सागर के मथन काल में जब दैत्य पक्ष पराजित हो गया, तब इन्द्र ने अपने गले से माला उतार कर इसी पीपल वृक्ष के स्कन्ध में उसे लटका दी वह माला समर में दैत्यों द्वारा फेंके गये वृक्षों से चोट खाकर मुर्झा गई थी। सर्वसिद्धप्रदायिनी वह अति सुरभित माला अम्लान भाव से से अब तक वहाँ टँगी है। उस महाभाग्यशालिनी माला की पूजा अभी भी सिद्ध, चारण आदि करते हैं। उस केतु रूप वृक्ष पर देवराज द्वारा टाँगी हुई माला सदा विराजती रहती है और वायु के झोंके से हिलने पर उससे मनोहर गंध निकलती रहती है। इसलिये केतु और माला से चिन्हित होने के कारण पश्चिम में विस्तृत द्वीप स्वर्ग तथा मृत्युलोक में केतुमाल नाम से प्रसिद्ध है। उसी के पार्श्व में उत्तर शिखर पर एक बड़ा वट वृक्ष भी है, जो अनेक योजनों में फैला हुआ है। विविध गन्धयुक्त माला-कलाप से सुशोभित उस वृक्ष की सिद्ध-चारण सदा सेवा करते रहते हैं। घड़े के सदृश लाल-लाल मीठे फलों से वह सदा युक्त रहता है और उत्तर कुरु का केतु वृक्ष कहलाता है। सनत्कुमार आदि महाभाग श्रेष्ठ ब्रह्मपुत्रों के नामानुसार ही उसका कुरु नाम पड़ा है। उन पुण्य कीर्तिवाले ब्रह्मज्ञानी महात्माओं ने उस अविनाशी, मंगलास्पद तथा शाश्वत लोक को प्राप्त किया। उन्हीं सातों महात्माओं के नाम पर उस द्वीप का नामकरण हुआ है और वह इस लोक तथा स्वर्ग में उत्तर कुरु के नाम से विख्यात है। ॥३३—४७॥

श्री वायु महापुराण का जम्बूद्वीपवर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३५॥

Funding by IKS-MoE

छत्तीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—अब हम यथाक्रम से उन चारों पर्वतों के रमणीय स्थानों का वर्णन करते हैं। सभी कालों में वहाँ ऋतुकालीन फल पुष्प लगे रहते हैं। वहाँ सर्वत्र सारिका, मयूर, चकोर, मदोत्कट, शुक और चित्र-विचित्र भृङ्गराज विचरण करते रहते हैं। जीवंजीवक, हेमक, मत्तकोकिल, वल्गु, सुकण्ठ काञ्चन, कलविंक आदि पक्षियों के मधुर निनाद से उनके प्रान्तर भाग सदा गुंजित और सुरम्य बने रहते हैं। मतवाले अतएव अलसाये मधुकरों, भ्रमरों से तथा किन्नरों से भी कहीं-कहीं वह बन मुखरित रहता है। कोमल पल्लवों से सुशोभित सब वृक्ष वहाँ मन्द मारुतसे कँपाये जाने पर सदा पुष्पवृष्टि करते हुए देखे जाते हैं। फूलों के गुच्छे, मंजरियाँ और लाल-लाल पत्ते मन्दवायु के झोंके से सदा हिलते हुए ऐसे जान पड़ते हैं मानों हिंडोले पड़े हों। ब्राह्मणो! नाना धातुओं से विचित्र अतएव रमणीय शत-शत शिलाएँ और शल्ल (पपड़ियाँ) इधर-उधर पड़े हुए हैं, जिससे सारा वन-प्रान्त सुशोभित रहता है। जहाँ-तहाँ सिद्ध, देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पन्नग, सिद्ध और अप्सरागण भी वहाँ घूमते-फिरते रहते हैं। वहाँ देवताओं के चार क्रीड़ावन हैं जो रमणीय और विस्तृत हैं। उनके नामों को सुनिये—पूर्व में चैत्ररथवन, दक्षिण में नन्दनवन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सवितृवन है। इन चारों वनों का भीतरी स्थान-संनिवेश बड़ा ही मनोहर है। वहाँ सदा ही पक्षिकुल कलरव करता रहता है। उन वनों में बड़े-बड़े तीर्थ, पुण्य-स्थान हैं। जहाँ बड़े-बड़े नाग निवास करते हैं और महात्मा भी विराजते रहते हैं। वहाँ के जलाशयों, का जल सुमधुर, निर्मल, सुखद और मंगलकर है; क्योंकि वहाँ की जलराशि सिद्धों, देवों और राक्षसों आदि के द्वारा स्पर्श की गई है। छाते की तरह बड़े-बड़े मनोहर, सुगन्धित और बड़ी पंखड़ियोंवाले पुण्डरीक और उत्पलों से वे जलाशय शोभायमान हैं। वहाँ बड़े-बड़े चार सरोवर भी हैं। उनके नामों को भी सुनिये। पूर्व में अरुणोद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शीतोद और उत्तर में महाभद्र नामक चार सरोवर हैं। अरुणोद सरोवर के पूर्व में जो पर्वत आदि हैं, उनके तत्त्व का हम विस्तार से वर्णन करते हैं, सुनिये। शीतान्त, कुमुञ्ज, सुधीर, विकङ्क, मणिशील, कृष्ण, महानील, सबिन्दु, मन्दर, रेणुमान्, सुमेध, निषध और देवाचल। इतने तथा अन्यान्य और भी पर्वतगण मन्दर के पूर्व में वर्तमान हैं, जो सिद्धों के आवास हैं। मानसरोवर के दक्षिण में जो पर्वत हैं, जिनके बारे में हम पहले कह चुके हैं, उनके भी नामों को सुनिये—श्रीशिखर, नगोत्तम शिशिर, कलिङ्ग, पतङ्ग, रुचक, सानुमान् ताम्राभ विशाख, श्वेतोदर, समूल, विषधार, रत्नधार, एकशृङ्ग, महामूल, गजशैल, पिशाचक, पंचशैल, कैलास और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्। ये उत्तम पर्वत देवस्वभाव के और श्रेष्ठ कहे गये हैं और ये सब देवता के समान तेजस्वी मेरु के दक्षिण में स्थित हैं। ब्राह्मणो! शीतोद सरोवर के अपर भाग में जो उत्तम पर्वत हैं, उनके सम्बन्ध में भी कहते है, सुनिये। सुवक्षा, शिखिशैल, काल, वैदूर्यगिरि, कपिल, पिंगल, रुद्र, सुरस, कुमुद, मधुमान, अंजन,

मुकुट, कृष्ण, पाण्डर, सहस्रशिखर, परिजात और शैलराज त्रिशृङ्ग । इतने ये श्रेष्ठ पर्वत पश्चिम दिशा में हैं । शोभासम्पन्न महाभद्र सरोवर के उत्तर में जिन पर्वतों को हमने बताया है, उन्हें यथाक्रम से कहते हैं, सुनिये । महाशैल शंकुकूट, वृषभ, हंसपर्वत, नाग, कपिल, सानुमान् इन्द्रशैल, नील, कनकशृङ्ग, शतशृङ्ग, पुष्पक, मेघशैल, अचलोत्तम विराज और शैलेन्द्र जारुधि । उत्तर में स्थित इतने पर्वतों के नाम गिनाये गये हैं । इन पर्वतश्रेष्ठों के मध्य जितनी स्थली, अन्तर्द्रोणी और सरोवर-आदि हैं, उन्हें सुनिये ॥१-३३॥

श्रीवायुमहापुराणान्तर्गत भुवनविन्यास नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३६॥

सैंतीसवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

सूतजी बोले—शीतान्त और कुमुञ्ज पर्वतों के बीच एक द्रोणी (घाटी) है, जहाँ पक्षिगण कलनाद करते रहते हैं और नाना भाँति के जीव निवास करते हैं । यह तीन सौ योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी है । उसमें एक सरोवर भी है, जिसका जल रमणीय, निर्मल और सुस्वादु है । द्रोणी के विस्तार के अनुकूल सुगन्धित पुण्डरीक और हजार पंखड़ीवाले पद्मों से वह सुशोभित है । उसमें विशाल शरीरवाले दुर्धर्ष महासर्प निवास करते हैं और देव-दानव जिसके शुभजल में सदा स्नान किया करते हैं । यह पवित्र श्रीसर स्वर्ग और मृत्युलोक में विख्यात है । यह सदा निर्मल जल से परिपूर्ण रहता और सब देहधारियों का शरण दाता है । वहाँ पद्मवन के मध्य में एक महापद्म है, जिसमें करोड़ पंखड़ियाँ हैं और जो तरुण सूर्य की तरह प्रकाशपूर्ण है । यह सर्वदा विकसित रहता है, कभी भी मुर्झाता नहीं, इसमें कोमल केसरजाल भरे हैं जिनके लोभ से मतवाले भौंरे गूँजते रहते हैं । उस पद्म में साक्षात् लक्ष्मी सदा निवास करती हैं । मूर्तिमती लक्ष्मी का वह निवासस्थान है, इसमें कोई सन्देह नहीं है । उस सरोवर के पूर्वीय तट पर सिद्धगण निवास करते हैं । वहाँ फूल-फलों से लदा हुआ एक मनोहर और विस्तृत बिल्ववन है । वह सौ योजन चौड़ा और तीन सौ योजन लम्बा है । आधे कोस ऊँचे, बड़े-बड़े हजारों वृक्ष उसमें खड़े हैं । उनके बड़े विशाल तने हैं, जो हजारों शाखाओं से सुशोभित हैं और उनमें सोने के समान पीले, हरे और पाण्डुर वर्ण के फल लगे हुए हैं । ये सभी फल सुगन्धित, अमृत की भाँति स्वादिष्ट और भेरी बाजे के बराबर बड़े-बड़े हैं । जब ये पक कर धरती पर गिरते हैं, तो वनप्रान्त भर जाता है । संसार में वह श्रीवन के नाम से प्रसिद्ध है, जहाँ गन्धर्व, किन्नर, यक्ष और महानाग सदा विचरण किया करते हैं । बिल्व फल की आशा से सिद्धगण और विविध भाँति के जीव वहाँ पड़े रहते हैं । उस वन में साक्षात् भगवती लक्ष्मी देवी स्वयं नित्य निवास करती हैं, जिन्हें सिद्धगण प्रणाम किया करते हैं । विकंक और मणिशैल पर्वतों के बीच में सौ योजन लम्बा और दो योजन चौड़ा बड़ा सा चम्पक वन है । यहाँ भी सिद्ध-चारण निवास किया

Funding by IKS-MoE

करते हैं। फूलों की शोभा से वह वन सदा जलता हुआ सा मालूम पड़ता है। विशाल तनेवाले उन वृक्षों के पत्तों के भार से झुकी शाखाएँ आधे कोस तक ऊपर फैली हुई हैं, जिनमें सदा फूल खिले रहते हैं। इससे वह वन पिंजड़े की तरह शोभित रहता है। पाण्डु वर्ण के केसरों से युक्त और मनःशिला के चूर्ण की तरह वर्णवाले, खिले हुए, मनोहर, सुगन्धित तीन हाथ लंबे और दो हाथ चौड़े पुष्पों से वह वन सदा व्याप्त रहता है। उन फूलों पर भौंरे मँड़राते रहते हैं, जिससे वन स्वयं मुखरित सा जान पड़ता है। यह वन भी दानव, देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस किन्नर, अप्सरा और महानागों द्वारा सदा सेवित रहता है। यहां भगवान् कश्यप प्रजापति का आश्रम भी है, जहाँ सिद्ध और साध्यजन भरे पड़े हैं और जहाँ चारों वेदों का पाठ होता रहता है। महानील और कुमुंज पर्वतों के बीच भी सुखदायिनी महानदी के सिद्ध सेवित तट पर पचास योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक मनोहर तालवन है। वहाँ के ताड़ के पेड़ आधे-आधे कोस लंबे हैं। वहाँ के वृक्ष भी कुमुद और अंजन पर्वत की ही तरह दृढ़ जान पड़ते हैं। उन दृढ़ पेड़ों का मूल भाग खूब मोटा और स्थिर है। सभी वृक्ष एक में सटे हुये हैं जिनमें सुगन्धित और रसीले फल लगे हुए हैं। सिद्धगण इन फलों को खाया करते हैं। इन्द्र के गजराज ऐरावत का वासस्थान यही वन कहा गया है। यह बात तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। वेणुमन्त और सुमेध पर्वतों के बीच सत्तर हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा एक मैदान है, जहाँ वृक्ष, गुल्म, लता, निकुंज आदि कुछ भी नहीं हैं, जीवजन्तुओं का निवास भी वहाँ नहीं है। वहाँ केवल हरी-हरी दूबें उगी हुई हैं। निषधशैल और देवशैल के उत्तर में हजार योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी एक शिलाखण्डमय भूमि है। यहाँ भी वृक्षलता आदि नहीं है। हाँ, थोड़ा सा पानी सभी जगह फैला हुआ है। ब्राह्मणो! मैंने उन नाना आकार प्रकार की स्तर द्रोणियों को क्रमशः बता दिया जो मेरु के पूर्व में स्थित हैं ॥१-३०॥

श्रीवायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

सूतजी बोले—अब आगे हम दक्षिण दिशा की उन द्रोणियों का जहाँ सिद्ध गण सदा आसन जमाये रहते हैं—क्रमशः वर्णन कर रहे हैं, सुनिये। शिशिर और पतङ्ग पर्वतों के मध्य में एक रमणीय उदुम्बर-वन है। वहाँ की भूमि चिकनी है, लताएँ पादपों पर चढ़ी हुई हैं, ऊँचे शिखर वाले स्थूल वृक्षों पर पक्षिवृन्द बसेरा लिये हुये हैं, मूँगे की तरह लाल-लाल पके हुए रसीले बड़े-बड़े मनोहर फलों से वह वन जगमग हो रहा है। यक्ष गन्धर्व, किनर, उरग और विद्याधर आदि नित्य ही वहाँ उन फलों को बड़ी प्रसन्नता से खाया करते हैं। निर्मल और मीठे जल वाली कितनी ही अगाध नदियाँ वहाँ बहती रहती हैं,

इधर-उधर कितने ही निर्मल तथा मीठे जलवाले सरोवर भी दीख पड़ते हैं। वहाँ भगवान् कर्दम प्रजापति का रमणीय आश्रम है, जहाँ देवगण विराजमान रहते हैं। वह वन बड़ा ही मनोहर है। उसका मण्डल-विस्तार सौ योजनों का है। ताम्रवर्ण और पतङ्ग पर्वत के बीच सौ योजन लम्बा और दो योजन चौड़ा एक महापुण्य सरोवर है। उसमें तरुण सूर्य की तरह पुण्डरीक, सहस्रपत्र और महापद्म चारों ओर खिले हुए हैं। भ्रमरों से आन्दोलित, सुगन्धित शत पत्रों से युक्त खिले हुए रक्त, नील वर्ण के बड़े-बड़े कमलों से उसका जल सुशोभित हो रहा है। जिसमें इधर-उधर शैवाल भी फैले हैं। देव दानव और महोरग उस जल का सदा उपयोग किया करते हैं। उसी के बीच सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक देश है, जो गेरु से विभूषित है। वहाँ एक बड़ी सी रथ्या (सड़क) है, जिसके चारों ओर तोरणों से सजी ऊँची दीवारें हैं। स्त्री-पुरुषों से खचाखच भरी वह रथ्या अपनी श्री पर अभिमान करती है। उस देश के मध्य भाग में विद्याधरों का एक सुसज्जित नगर है। वहाँ अत्युत्तम और अत्युन्नत अट्टालिकाओं की पंक्तियाँ शोभा को बढ़ा रही हैं, जिनमें सुन्दर ओलतियाँ लटक रही हैं। महलों में मणियों की पच्चीकारी की गई है और अट्टालिकाओं की दीवारों पर रत्नों से चित्र बनाये गये हैं। वे अट्टालिकाएँ बाहर से अत्यन्त स्वच्छ तथा रंग-बिरंगी दीख पड़ती हैं। वहाँ विद्याधरों के स्वामी पुलोमा नाम से विख्यात हैं, जो इन्द्र के समान कान्ति वाले हैं और अपने को वेश-भूषा और मालाओं से सदा सजते रहते हैं। उस राज-राज को भड़कीले वस्त्र और भूषण धारण करने वाले सूर्य की तरह तेजस्वी सहस्रों विद्याधर घेरे रहते हैं। ॥१—१७॥

विशाल और पतङ्गाचल के बीच ताम्रवर्ण सरोवर के पूर्व तीर पर सम्पूर्ण ऋतुओं में फलने वाला एक विशाल आम्रवन है। इस वन पर कामदेव ने मानो अपने बाण चला दिये हैं। इसकी शोभा निखरी सी रहती है, सुन्दर वर्णों से सुशोभित उस वन के वृक्षों की शाखाएँ भी एक-से-एक बढ़कर हैं। जिनमें सोने की तरह पीले, सुगन्धित और घड़े के बराबर बड़े-बड़े रसदार फल लगे हुए हैं। उस आम्र फल के सुस्वादु और अमृतोपम रस को यक्ष गन्धर्व, किन्नर, नाग, विद्याधर आदि बड़े चाव से पिया करते हैं। वहाँ आम्र के रस को पीकर प्रसन्न हृदय महात्मागण सन्तुष्ट होकर सदा आनन्द ध्वनि किया करते हैं जो ध्वनि उस वन में सदा सुनाई देती है। विप्रो! समूल और वसुधार पर्वतों के बीच एक बिल्वस्थली है, जो समतल, सुगन्ध से परिपूर्ण शुद्ध और फल के भार से झुके हुए वृक्षों से सुशोभित है। वह तीस योजन लम्बी और पचास योजन चौड़ी है। खगकुल वहाँ सर्वदा कलरव किया करते हैं। मूंगे की तरह लाल, सुस्वादु और बड़े-बड़े बेल गिर-गिर कर वहाँ की भूमि को गीली बनाये रखते हैं। वहाँ पर यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, नाग आदि बहुतेरे जीव नित्य विल्वफल को खाकर ही जीवन बिताते हैं। वसुधार और रत्नधार पर्वतों के बीच तीस योजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा एक किंशुक वन (पलाश वन) है। वहाँ के वृक्ष सदा पुष्पित और सुगन्धित रहते हैं और फूलों की शोभा से सदा जगमगाते रहते हैं। फूलों की दिव्य गन्ध से वहाँ का प्रदेश सुवासित होता रहता है। उस वन भूमि की कौन बात कहे सौ योजन दूर तक वह गन्ध फैली रहती है। उस मनोहर किंशुक वन की शोभा जलाशय और बढ़ा देता है, जहाँ सिद्ध-चारण और अप्सराएँ सदा

निवास किया करती हैं। वहाँ भगवान् सूर्य देव का एक सुविशाल देदीप्यमान भवन है, जहाँ प्रजापति सूर्य प्रत्येक मास में उतरा करते हैं। समय का विभाग करने वाले सहस्र किरणधारी सुरश्रेष्ठ, सब देवों के पूज्य भगवान् सूर्य देव को वहाँ सिद्धगण प्रणाम किया करते हैं। पंचकूट और कैलास शिखरों के बीच की वन भूमि सौ योजन लम्बी और तिरसठ योजन चौड़ी है। मामूली जीव वहाँ नहीं जा सकते हैं, सामान्य देहधारियों के लिये वह दुर्गम और भयङ्कर है। वहाँ की भूमि उज्ज्वल और पाण्डुर वर्ण की है। दक्षिण दिशा में स्थित, सिद्ध समूह द्वारा सेवित इतनी ही अन्तर द्रोणियाँ हैं जिनका हमने क्रमशः वर्णन कर दिया। ॥१८—३५॥

द्विज श्रेष्ठ! अब पश्चिम दिशा में जो अन्तर द्रोणियाँ हैं और उनका जो विस्तार है, उनका हम भली भाँति वर्णन कर रहे हैं, सुनिये। सुवक्ष और शिखिशैल पर्वतों के मध्य एक शिलाखण्डमय भूमि है जिसकी परिधि सौ योजन की है, जो सर्वदा गर्म रहती है। महाभयङ्कर उस भूमि को छूते ही लोगोंके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। सभी जीवों के लिये वह अगम्य तो है ही, समर्थों के लिये भी वह भयावह है। उस शिलास्थली के बीच तीस योजन के घेरे में हजारों लपटों को फेंकनेवाले अग्नि देव का एक भयङ्कर स्थान है। बिना इन्धन के ही वहाँ शिखाशाली विभावसु अग्निदेव सदा जलते रहते हैं। देवता के निमित्त जिस अग्नि को भाग दिया जाता है, वे ही लोक संवर्तक अग्निदेव वहाँ सदा जलते रहते हैं। देवापि और गय नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच दस योजन की एक मातुलुंग स्थली है। मधुमय व्यञ्जनों से और सुरस तथा सुवर्ण सदृश पके हुए फलों से वह वनस्थली सर्वत्र सुशोभित है। वहाँ वृहस्पति का एक महापवित्र आश्रम है, जो सिद्धसमूह से भरा हुआ, सुखद और सभी कामनाओं को सिद्ध करनेवाला है। उसी प्रकार कुमुद और अञ्जनाचल नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच बहुत योजनों में फैली हुई एक केसर द्रोणी है। वहाँ का वन सभी ऋतुओं में खिलनेवाले कुसुमों से रंगविरंगा सा शोभित होता है। वे खिले हुए फूल डेढ़ हाथ लम्बे चौड़े, चन्द्रमा की तरह श्वेत हैं और उन पर मतवाले भौंरे गूँजते रहते हैं। वहाँ सुरगुरु विष्णु का एक देदीप्यमान महान् मन्दिर है, जो तीनों लोकों में प्रकाशमान और सब के द्वारा वन्दनीय है। कृष्ण और पाण्डुर नामक श्रेष्ठ पर्वतों के बीच नब्बे योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा एक देश है, जिसमें चिकनी सी एक ही शिला एक छोर से दूसरे छोर तक बिछी है। लता वृक्ष आदि वहाँ कुछ नहीं हैं। चलनेवालों के लिये वहाँ बड़ी सुविधा है; क्योंकि ऊबड़ खाबड़ भूमि वहाँ कहीं भी नहीं है। उसके बीच एक सरोवर है; जिसमें एक रमणीय स्थल-पद्मिनी है। खिले हुए सहस्रपत्र वाले कमलों से वह सरोवर मालूम पड़ता हैं मानो अनेक छत्रों से वह अलंकृत है। इस सरोवर में मनोहर गन्धों से युक्त महापद्म, पुण्डरीक और खिले हुए शतपत्र, उत्पल, नीलपत्र एवं मदमत्त भ्रमर तथा मदमत्त मधुकर सुशोभित हैं। कोमल गद्गद् कण्ठवाले किन्नरों के गीतों से यह पद्मवन सदा निनादित रहता है। यह स्थल-पद्मिनी अतीव विस्तीर्ण है। यक्ष गन्धर्व यहाँ विचरण करते रहते हैं और सिद्ध-चारण उसकी देख-रेख करते रहते हैं। उस पद्मवन के बीच पाँच योजन की परिधि में अनेक

शाखा-प्रशाखाओं से युक्त विशाल स्कन्धवाला एक न्यग्रोध का (वट) वृक्ष है । वहाँ असुरनिहंता श्रीमान् सहस्रमुखधारी नीलाम्बर देव विराजमान हैं । इनकी कान्ति चन्द्रमा की तरह है और इनके मुख की कान्ति भी पूर्णचन्द्र की ही तरह है । ये अपराजित महाभाग उस पद्ममालामण्डित स्थली के मध्य में यक्ष गन्धर्व और विद्याधरों से सदा पूजित होते हैं । उस स्थान में साक्षात् नित्य नारायण सिद्धचारणों द्वारा विविध भाँति के पद्मोपहार से पूजे जाते हैं । वह स्थान सब लोकों में अनन्त सदन के नाम से विख्यात है और पद्ममालाओं तथा अन्यान्य मालाओं से मंडित है । सहस्रशिखर और कुमुद पर्वतों के बीच सौ योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा तथा फेंका गया तीर जितना ऊपर जा सकता है उतना ही ऊँचा पर्वतशिखर है । वहाँ विविध विहंग सदा कलरव करते रहते हैं । वह चारों ओर से मधु टपकानेवाले वृक्षों से मण्डित है । उन वृक्षों के फल हाथी की देह के समान बड़े-बड़े, सुगन्धित और सुस्वादु हैं । उस शिखर पर पुण्यकर्मा भगवान् शुक्राचार्य का एक आश्रम है । वह आश्रम पवित्र, देवर्षियों से सेवित, विख्यात और देदीप्यमान है । शङ्कुकूट और वृषभ पर्वत के बीच एक अनेक योजन विस्तृत परूषकस्थली है, जिसके बेल के समान बड़े-बड़े, सुन्दर,सुगन्धित और सुस्वादु पुरूष फल टहनियों से टपक-टपक कर वहाँ की भूमिको पंकिल बनाये रहते हैं । मान के धनी चारणगण परूष के रस को पीकर उत्मत्त बने फिरते हैं और किन्नर, उरग तथा साधुगण उस स्थली में सदा विचरण किया करते हैं । कपिंजल और नागशैल के अन्तराल में नानावनों से विभूषित एक मनोहर स्थली है, जो दो सौ योजन लम्बी और सौ योजन चौड़ी है । वह विविध भाँति के फल-फूलों वाले नाना प्रकार के वनों से सुशोभित है । जहाँ किन्नर और उरग विचरण क्रिया करते हैं । और जहाँ रमणीय द्राक्षावन, नागवन, खर्जूरवन, नील, अशोक-वन, स्वादिष्ट दाड़िमों के वन, अखरोट के वन, अतसी-तिलक, वन, कदलीवन और सुन्दर स्वादवाले वदरीवन हैं । मधुवन और शीतल जलवाली नदियों से भी वह स्थली शोभित है । पुष्पक और महामेघ पर्वतों के बीच सौ योजन चौड़ी और साठ योजन लम्बी एक भूमि है, जो हथेली की तरह समतल कठोर, पाण्डुर और घन है । वहां वृक्ष, लता, गुल्म तृण आदि का सर्वथा अभाव है और एक भी जीव जन्तु वहां नही हैं । वह भूमि अत्यन्त भयङ्कर और कठोर है । इसका नाम काननस्थली है । वहां कितने महासरोवर, महावृक्ष और अति कमनीय महावन है । प्रजापति द्वारा बनाये गये वहाँ के क्षुद्र सरोवरों, वनों और स्थलों की गणना नहीं हो सकती है । इन छोटे-मोटे सरोवरों आदि की तो बात ही छोड़िये वहां के प्रसिद्ध प्रसिद्ध स्थल, द्रोणी और सरोवरों की भी गिनती नहीं है, जो सात आठ, दस, और बारह योजना को लम्बाई चौड़ाई में हैं । उस प्रदेश में स्थान स्थान पर कितनी ही कृष्ण वर्ण की कंदराएँ और घाटियां है, जहां कभी भी सूर्य की किरणें नहीं पहुँचती हैं, जिससे वे सदा ठढी रहती हैं और जहां कोई जा नहीं सकता है । ब्राह्मणो ! वहा कितने ही सरोवर है, जो सहस्रों की संख्या में पर्वतों के कुक्षि में वर्तमान हैं । इन सरोवरों का जल सदा खौलता रहता है ॥३६-७८॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक अड़तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३८॥

Funding by IKS-MoE

उनतालीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—इसके आगे अब हम पर्वतों के जिन-जिन शिखरों पर विविध देवों के उत्तमोत्तम गृह बने हुए हैं, उनकी कथा कहते हैं। पर्वतों के बीच शीतान्त नाम का एक विस्तृत महागिरि है, जो बहुविधि गैरिकादि धातुओं से चित्रित और अनेक प्रकार के रत्नों को उत्पन्न करनेवाला है। उसके मध्य भाग में पुष्पों के ढेर लगे हुए हैं और वह सब प्रकार के सत्त्वगुणों का आलय है। बहुमूल्य मणियों से जटित और सोने के बाँसों से वह सुशोभित है। उस पहाड़ के मध्य भाग में भौंरे सर्वदा गूँजते रहते हैं, किनारे-किनारे फूलों के ढेर लगे हुए हैं, जहाँ भौंरों की गुंजार होती ही रहती है, वहाँ की भूमि की पच्चीकारी सोने और मूँगे से की गई है। पहाड़ की चोटियों पर लताओं ने ही मानो बेल-बूटे बना दिये हैं और इधर-उधर बिखरी हुई लाल-पीली धातुएँ चित्र की भाँति दीख पड़ती हैं। वहाँ फूलों की कोई गिनती नहीं है। मीठे और स्वच्छ पानी के कितने ही झरने झर रहे हैं। फूलों से लदी हुई झाड़ियाँ या कुंजें वहाँ की शोभा को और बढ़ा देती हैं। वहाँ कुछ छोटी-बड़ी नदियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें फूलों से सजी हुई नावें तैरती रहती हैं। गुफाओं की भी कमी नहीं है, जिनके चारों ओर किन्नर लोग टहलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त और भी बहुत सी गुफाएँ हैं, जिनमें यक्ष-गन्धर्व आदि आनन्द से निवास किया करते हैं। सघन और संकटपूर्ण वनों के रहते हुए भी वे स्थान सुखपूर्वक निवास करने के योग्य हैं। विविध भाँति के पुष्पों और फलों से युक्त वृक्ष वहाँ विराजमान हैं, खाने-पीने की सुविधा पाकर जिन पर अनेकानेक जीव निवास करते हैं। उस पर्वत के उदर में कितनी ही कन्दाराएँ हैं, जिनमें लोग आश्रम बनाये हुए हैं। वहाँ निखिल विलास साधनों से युक्त देवराज इन्द्र का एक क्रीड़ावन है और वहीं उनका तीनों लोकों में विख्यात प्रसिद्ध पारिजात वन भी हैं। श्रुतियाँ भी इसका समर्थन करती हैं। तरुण सूर्य की तरह प्रकाशमान और मनोहर गन्धवाले पुष्पों से वह पर्वतराज सदा देदीप्यमान रहता है। महेन्द्र के वन से बाहर निकलनेवाली वायु उस पारिजात की गन्ध को सौ योजन तक उड़ा ले जाती है। वहाँ बहुत सी बावलियाँ भी हैं, जिनमें सोने के कमल खिले हुए हैं। उन कमलों के नालदण्ड वैदूर्य के और केसर हीरे के हैं जिन पर मदमत्त भ्रमर गुंजार करते रहते हैं। उनकी गन्ध से वापीका जल सुवासित रहता है। खिले हुए मनोहर शतपत्र और महापत्र पंकजों से भी वहाँ की वापिकाएँ विभूषित हैं। सुवर्ण और मणियों से भूषित हजारों चंचल आँखों वाली मछलियाँ पानी के भीतर से उगती और डूबती रहती हैं। सुवर्ण और रत्नों से परिष्कृत अनेक प्रकार के कछुए पानी को चीरकर इधर-उधर आते जाते रहते हैं, जिससे पानी भी चित्रित-सा जान पड़ता है। बुद्धिमान् सहस्राक्ष इन्द्र का वह रमणीक वन विविध रंगवाले पक्षियों के कूजन और उनके उन्मत्त विचरण से सुन्दर दीख पड़ता है। उन पक्षियों के पंखों में कहीं रत्न गुथे हैं, तो कहीं सुवर्णपुष्प खचित हैं। किन्हीं-किन्हीं पक्षियों की चोचों में मणि भी पिरोये हुए हैं। मत्त भ्रमरों के गुंजन और पक्षियों के कूजन से वह महान्

क्रीड़ावन नित्य आनन्दमय रहता है और इसीसे वह क्रीड़ावन भी कहलाता है। इस क्रीड़ावन के पर्वत मणिमुक्ताओं से युक्त हैं। उनके पार्श्वदेश सुवर्ण के हैं और शिखरों से मणियों के कण झरते रहते हैं। विविध वर्ण के वानरों से जिनके लोम रत्नों से गुथे हुए हैं—और अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं से वह वन व्याप्त हैं। पारिजात पुष्प के वृक्ष और छोटी-छोटी लतिकाएँ बयार के हल्के धक्के से ही पुष्पवृष्टि करने लगती हैं। विप्रो! इन्द्र के उस वन में कितनी ही विहारभूमियाँ हैं जो रत्नों से विभूषित विविध शयन और आसनादि से भरी पड़ी हैं। वहाँ न गर्मी रहती है न सर्दी क्योंकि वहाँ सूर्य सदा एक समान रहते हैं। विविध पुष्पों की गन्ध से सुवासित उन्माद-जनक वसन्तकालीन वायु वहाँ सदा बहती है। वह वायु स्पर्श सुख से आनन्द उत्पन्न करनेवाली तथा थकावट और क्लेश को सदा हरनेवाली है। उस सुन्दर इन्द्रवन में देव, दानव, पन्नग, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, महाबली गन्धर्व, विद्याधर, सिद्ध, किन्नर और अप्सराएँ प्रसन्नचित्त से सदा क्रीड़ा करती रहती हैं। उस पर्वतराज के पूर्व पार्श्व में कुमुञ्ज नाम का एक पर्वतराज है, जिसमें अनेक झरने और कन्दराएँ हैं। उनकी धातुओं से चित्रित चोटी पर दानवों के अतिविस्तृत आठपुर हैं। अनेक शिखर-कन्दराओं से युक्त वज्रक पर्वत पर भी राक्षसों के निवास स्थान हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष रहते हैं। वहाँ महाबली और पराक्रमी भयंकर कामरूपी नीलक नाम के राक्षस भी नित्य निवास करते हैं। उस महानील पर्वत पर घोड़े की तरह मुँहवाले महात्मा किन्नरों के भी पन्द्रह पुर हैं। महाबाहु देवसेन और बली इन्द्रादि गर्वीले पन्द्रह किन्नरराज वहाँ के अधिपति हैं। उस पर्वतराज पर जो नगर बसे हुए हैं, उनमें कितने ही गुप्तद्वार हैं और विविध वर्णों की सोने की परिखासे वह नगर घिरा है। उस नगर में सैकड़ों विषैले अजगर (साँप) निवास करते हैं, जिनके देखते ही विष चढ़ जाता है। वे अत्यन्त भयङ्कर, दुर्धर्ष और क्रोधित होने पर अग्नि की तरह देदीप्यमान हो जानेवाले हैं। परन्तु वे सुवर्ण के वशवर्ती भी हैं। सर्पों के रहने पर भी वहाँ उस पर्वतपर हजारों दैत्यगण निवास करते हैं, जिनकी अट्टालिकाओं और कोठों पर तोरण लगे हैं एवं जो ऊँची परिखाओं से घिरे हैं। वेणुमान नामक पर्वत पर पचास योजन लंबे और तीस योजन चौड़े विद्याधरों के तीन पुर हैं। उनके इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, महाबली उलूक, रोमश और महानेत्र नामक विद्याधर अधिपति हैं। वैकंक नामक पर्वत के शिखरपर गरुड़पुत्र सुग्रीव निवास करते हैं। उस पर्वत का शिखर ऊँचा, रत्न-धातुओं से चित्रित और निर्झर कन्दराओं से युक्त है। वहाँ सुग्रीव नामक अत्यन्त बली, वायु के समान शीघ्रगामी, दुर्धर्ष और सापों के निहन्ता गरुड़-पुत्र हैं। वह पर्वत महाबली, पराक्रमी एवं विशालकाय सर्पहन्ता पक्षियों से आवृत है। करंज शैल पर साक्षात भूतपति, योगियों के प्रभु, वृषभाङ्क, भगवान् महादेव शंकर निवास करते हैं। उस करंज पर्वत पर नाना प्रकार के वेश धारण करनेवाले, दुर्धर्ष प्रमथगण चारों ओर विराजमान हैं। वसुधार पर्वत पर अमित तेजस्वी महात्मा वसुगणों के पूज्यतम आठ आयतन (घर) विद्यमान हैं। गिरिवर रत्नधातु के ऊपर महात्मा सप्तर्षियों के सात आश्रम हैं, जो सिद्धों के भवनों से युक्त और पवित्र हैं। हेमशृङ्ग पर्वतपर महाप्रजापति चतुर्मुख ब्रह्मा का निवास स्थान है, जो सब जीवों के पूज्य हैं। गजशैल पर भगवान् रुद्र नाना भूतगणों से युक्त होकर प्रसन्न

Funding by IKS-MoE

मन से नित्य निवास करते हैं। सभी जीव इनका नमस्कार करते हैं। शैलेन्द्र सुमेध विविध धातु रंगों से रंजित है, वह देखने में मेघ की तरह मालूम पड़ता है। उस पर कितनी ही कन्दराएँ, वन और कुंजें हैं। वहाँ अत्यन्त पराक्रमी आदित्य, वसु, रुद्र और अश्विनीकुमार के उत्तमोत्तम महल बने हुए हैं। इस श्रेष्ठ पर्वत पर और भी सिद्ध देवों के कितने ही निवासस्थान हैं, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि नित्य ही जिनकी पूजा किया करते हैं। हेमकक्ष नामक पर्वतराज पर एक सुसमृद्ध गन्धर्व नगरी है, जो अस्सी देवपुर की तरह शोभाशालिनी, विशालाकार परिखा और तोरण से युक्त है। अपत्तन नामक सिद्ध गण और युद्ध प्रेमी गन्धर्वगण यहाँ निवास करते हैं, जिनके अधिपति राजराज कपिंजल हैं। अनल पर्वतपर राक्षसों का और पंचकूट पर दानवों का निवास है। ये राक्षस और दानव महाबली पराक्रमी और देवों के शत्रु हैं। शतशृंग पर्वत पर अत्यन्त बली यक्षों के सौ पुर हैं और ताम्राभ पर्वतपर कद्रुनन्दन तक्षक की उत्तम पुरी है। अनेक परिखा और कन्दराओं से युक्त विशाख पर्वत पर गुहा में रहनेवाले गुह (कार्तिकेयजी) का एक विशाल निवास स्थान है। श्वेतोदर नामक महाशैलपर गरुड़पुत्र महात्मा सुनाभ का पुर है, जिसमें अनेक भवन बने हुए हैं। पिशाच नामक गिरिवरपर कुबेर का विशाल भवन है, जिसमें कोठे और छत भी हैं एवं यक्ष-गन्धर्व जहाँ विचरण किया करते हैं। हरिकूट शैलपर सर्वभूत-नमस्कृत हरिदेव विराजमान हैं। उनके प्रभाव से वह पर्वत देदीप्यमान हो रहा है। कुमुद पर्वतपर किन्नरों का आवास है, अंजन पर्वत पर उरगगण रहते हैं और कृष्ण पर्वतपर विशाल भवन बनाकर गन्धर्वगण निवास करते हैं। मनोहर शिखरवाले पाण्डुर पर्वतपर विशाल भवनों से युक्त विद्याधरों का पुर है, जिसमें चारों ओर ऊँची परिखाएँ और तोरण लगे हैं। सहस्रशिखर नामक पर्वतपर भयंकर कर्म करनेवाले दैत्यों की सुवर्णमण्डित सहस्रपुरी है। मुकुट पर्वतपर पन्नगों के अनेक शैलावास हैं पुष्पक पर्वत पर मुनिगण नित्य आनन्द से युक्त होकर रहते हैं। सुपक्ष नामक पर्वतपर वैवस्वत, सोम, वायु और नगाधिप के चार निवासस्थान हैं। इन पूर्वोक्त स्थानों या पुर-भवनों के गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, नाग, विद्याधर और सिद्ध आदि अपने-अपने इष्ट देवों की पूजा किया करते हैं। ॥१-६४॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक उनतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

चालीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—श्वेतवर्ण के देवकूट नामक मर्यादा पर्वत के विस्तृत शिखर पर श्रीमान् विनितानन्दन सुपर्ण का स्थान है। वह जन्मक्षेत्र चारों ओर से सौ योजन के विस्तार में है जहाँ अनेक विशाल भवन बने हुए हैं। शाल्मलिद्वीप में निवास करनेवाले, वायु की तरह महावेगशाली महात्मा पक्षिराज गरुड़ का वही प्रथम भवन है, जहाँ महाबली, सर्पनिहंता शीघ्रगामी अनेकानेक गरुड़ के वंशज

Funding by IKS-MoE

विशाल पक्षिगण निवास करते हैं । सुन्दर शिखायुक्त उस पर्वतराज की दक्षिण दिशा में विचित्र प्रकार के सात श्रृङ्ग हैं, जिन पर सन्ध्या कालीन मेघ की तरह देवों द्वारा बनाये गये कितने ही बड़े बड़े भव्य भवन हैं जो सोने के प्राकार—तोरण से सुशोभित हैं । चालीस योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े वहाँ गन्धर्वों के सात नगर हैं, जिनमें स्त्री-पुरुष निवास करते हैं । आग्नेय नामक महाबली और पराक्रमी कुबेर के अनुचर गन्धर्वगण उन उत्तम भवनों के अधिपति हैं । ब्राह्मणो ! सुनिये । उस भुवन महागिरि के उत्तर शिखर पर देवशत्रु सैंहिकेयों का निवास है । उस वैभवशाली नगर का परिमण्डल तीस योजन का है, वह शत्रुओं के लिये अगम्य है । वहाँ कितने ही कोठे, अट्टालिकाएँ, उद्यान और वन हैं । वहाँ बड़ी-बड़ी परिखाएँ हैं, चारों ओर तोरण लगे हुए हैं, सैकड़ों प्रकार के बाजे बजते रहते हैं, जिससे वाटिकाओं में आनन्द उमड़ता रहता है । नागों से वह नगर भरा हुआ है । देवकूट पर स्थित वह नगर सिद्ध और देवर्षियों का विहार-स्थल है । ब्राह्मणश्रेष्ठ ! दूसरे मर्यादा पर्वत पर विविध वर्ण के विशाल भवन समूह से युक्त कालिकेय नामक असुरों का एक दुर्गम नगर है, जिसमें सुवर्ण और मणियों से चित्रित तथा अलंकृत अनेक भवन और बड़े-बड़े राजपथ हैं, जिनमें सदा मंगल, उत्सव होता रहता है, जो सदा नर-नारियों से भरे रहते हैं, जिनकी परिखाओं से तोरण लटकते रहते हैं । वह सौ योजन लंबा और साठ योजन चौड़ा सुनास नामक नगर महामेघ के समूह की तरह दीख पड़ता है । उसीके दक्षिण शिखर पर बासठ योजन लंबा और बीस योजन चौड़ा औत्कच नामक राक्षसों का महापुर है । इच्छा के अनुसार शरीरधारण करनेवाले, हृष्ट-पुष्ट और सगर्व राक्षस वहाँ निवास करते हैं । वह पुर सुवर्ण की परिखा और तोरण से युक्त है, जो देवकूट पर्वत के मध्य शिखर पर सुशोभित है जो सुवर्ण मणिमय शिलाखण्डों से चित्रित, चिक्कन और भव्यतम हैं । उस महापुर के ऊँचे भवनों में सौ-सौ और हजार-हजार डगोवाली सीढ़ियाँ बनी हुई हैं । उसी देवकूट पर्वत पर दस योजन विस्तृत एक भूतवट नाम का वृक्ष है, जिसके पत्ते चिकने, जड़ें विशाल, अनेक तने और जिसकी घनी छाया है । उस महावृक्ष पर नीचे-ऊपर अनेक जीव निवास करते हैं । त्रिनयन महात्मा महादेव का वहाँ तीनों लोकों में विख्यात एक भास्वर स्थान है । सुअर, हाथी, सिंह, भालू, बाघ, करभ, गीध, उल्लू, भेड़ा, ऊँट और बकरे की तरह मुँहवाले उग्र पराक्रमी तथा अनेक प्रकार के भयङ्कर मुँहवाले, विकट, स्थूल, लम्बे केशोंवाले, नाना वर्ण और आकृति धारण करनेवाले, देदीप्यमान भूत-प्रेतादि से और महापरिषदों से वह स्थान सदा भरा रहता है । भूतगण वहाँ भूतपति महादेव की पूजा नित्य किया करते हैं । झाँझ, शङ्ख, नगाड़ा, भेरी, डमरू, गोमुख आदि बाजे बजाकर नाच-गाना और भयंकर कोलाहल के साथ प्रमथादि गणेश्वर वहाँ महादेव की पूजा करके प्रसन्नता प्राप्त करते और क्रीड़ा किया करते हैं । इस प्रकार साक्षात् लोककल्याण-कारक महादेव की उस स्थान में सिद्ध, देव, गन्धर्व, यक्ष और नाग सदा पूजा किया करते हैं ॥१-२६॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

सूतजी बोले—उस देवकूट पर्वत के कुन्द तुल्य उज्वल रमणीय मध्यम शिखर पर कैलाश बसा हुआ है। यह सौ योजन लम्बा और पचास योजन चौड़ा है। इसका शिखर शङ्ख की तरह उज्वल, विस्तृत, शान्त, और मनोहर है। अनेक सुकृतकर्मा भक्त वहाँ निवास करते हैं। सुवर्ण-मणियों से चित्रित अनेक विशाल भवन-पंक्तियों से भूषित वहाँ एक लंम्बा-चौड़ा नगर है, जो धनाधिपति महात्मा कुबेर देव का है। वह नगर शत्रु के आक्रमण से सुरक्षित होते हुए भी भव्य और वैभवसम्पन्न है। उस नगर के बीच अनेक स्तम्भ वाला, तोरणों से युक्त और बहुविध सुवर्ण से भूषित एक मनोहर विपुला नामक सभा-भवन है। वहीं नाना रत्नों से विभूषित पुष्पक नामक एक सुन्दर सा महाविमान है, जो सभी भोग्य पदार्थों से युक्त, मन की तरह शीघ्रगामी, इच्छामात्र से चलने वाला और सोने के तारों से मँढ़ा हुआ है। यही विमान यक्षराज महात्मा कुबेर की सवारी में काम आता है। वहाँ सब भूतों के पूज्य यक्षेन्द्र एकपिंगल देव स्वयं निवास करते हैं, जो महादेव के सखा हैं। देवोत्तम वह महात्मा कुबेर यक्ष गन्धर्व, किन्नर, सिद्ध, चारण और अप्सराओं के साथ सतत निवास करते रहते हैं। महात्मा कुबेर की सभा में पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, कुमुद, शङ्ख, नील और निधि-श्रेष्ठ नन्दन नामक आठ अक्षय दिव्य महानिधि (कोषागार) स्थित हैं जहाँ रत्न संचित रहते हैं। जहाँ वकेश्वर कुबेर का आवास स्थान है, उसी के पास इन्द्र, अग्नि यम आदि देवों और अप्सराओं का निवास है। सब से पहले महात्मा यक्षेन्द्र की पूजा करके परिचारकगण उनके पीछे-पीछे चला करते हैं। वहाँ गंभीर जल वाली एक मनोरम मन्दाकिनी नामक नदी भी है जिसमें मणियों के घाट बँधे हैं और तरह-तरह के सुगन्धित फूल खिले हैं। जो गन्ध और स्पर्श गुण से युक्त सुवर्ण के पद्मों से तथा नील-वैदूर्य के पत्र वाले गंधयुक्त महापद्मों और असंख्य कुमुदखण्ड एवं महापद्मों से अलंकृत है। उसमें यक्ष, गन्धर्वों की स्त्रियाँ और अप्सरायें सदा स्नान करती हैं; उस मन्दाकिनी के जल को देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पन्नग सदा पिया करते हैं। इसके अतिरिक्त अलकनन्दा और नन्दा नामकी भी दो नदियाँ वहाँ बहती हैं, जो सुधा के समान जल से युक्त हैं और जिनका सेवन सदा देवर्षिगण किया करते हैं। उसी शैलराज के पूर्व शिखर पर हजार योजन लम्बे और तीस योजन चौड़े गन्धर्व के दस नगर हैं। उन नगरों की समृद्धि का कोई ठिकाना नहीं है। वहाँ बड़े-बड़े महलों की कितनी ही श्रेणियाँ हैं। तप्त अङ्गार के सदृश तेजस्वी, पराक्रमी सुबाहु, हरिकेश, चित्रसेन और जर आदि दस गन्धर्व राज वहाँ के अधिपति हैं। इस शैल के सिद्ध तथा सुरसेवित शत-शत धातुरंजित कुन्द तथा इन्दु तुल्य शुभ्रकान्तिमय पश्चिम शृङ्गपर अलग अलग यक्षों के भवन बने हैं। वह स्थान अस्सी योजन लम्बा और तीस योजन चौड़ा है। वहाँ कितने ही बड़े-बड़े भवन हैं। सुनिये, यहाँ महाशयों के ऋद्धि-सम्पन्न तीस भवन हैं। उन भवनों में सदा आनन्द की धारा बहती रहती है महामाली, सुनेत्र और मणीवर आदि तीस यक्षराज वहाँ के उदार प्रभु हैं। वायु और अग्नि के

सनान तेजस्वी उपर्युक्त यक्षों के अधिपति श्रीमान् वैश्रवण हैं । उसी कैलास के दक्षिण पार्श्व में नगाधिराज हिमालय स्थित है । जिसमें कितने ही कुंज हैं । झरनों और गुफाओं की भी गिनती नहीं है । चोटियाँ दर्रे और मैदान भी वहाँ अनगिनत हैं । यह हिमालय पूर्वीय समुद्र से लेकर पश्चिमीय समुद्र तक फैला हुआ है । इसके किसी-किसी स्थान पर किन्नरों के नगर बसे हुए हैं, जो गिनती में सौ के लगभग हैं अनगिनत शिखरों वाले शैलाधिराज हिमालय के मध्य-उदर में ये सब नगर विराजमान हैं, जहाँ के स्त्री पुरुष सदा प्रसन्न और प्रजा हृष्ट पुष्ट रहती है । द्रुम, सुग्रीव, सैन्य और भगदत्त प्रमुख सौ राजा उन बलशाली तेजस्वी किन्नरों के अधिपति हैं । इसी पर्वत पर महादेव रुद्र का उमा के साथ ब्याह हुआ था । वराङ्गना उमा देवी ने यहीं कठोर तप किया था । किरात के वेश में महादेव ने यहीं क्रीड़ा की थी । इसी पर्वत पर से महादेव और पार्वती ने समस्त जम्बूद्वीप का अवलोकन किया था । वहाँ जो रुद्र देव की क्रीड़ा भूमि है, वह विविध भूतगणों से युक्त विचित्र पुष्प-फल-सम्पन्न और आनन्दमय है । इस शैलदेश में गिरि-गुहा-निवासिनी, मनोहारिणी, प्रसन्नवदना, सुनयना, कृशोदरी, सुन्दरी किन्नरियाँ सदा रमण किया करती हैं । जहाँ विशालाक्ष यक्ष, सुन्दर गन्धर्व और अन्यान्य अप्सराएँ सदा आनन्द मनाती रहती हैं । वहीं सब लोगों में विख्यात उमावन है । जहाँ भगवान शङ्कर ने आधे शरीर से नर और आधे से नारी रूप धारण किया था । वहीं शरवन भी है, जहाँ कार्तिकेय उत्पन्न हुए । यहीं रहकर उन्होंने क्रौंच शैलवन को विदारण करने के लिये उत्साह प्रकट किया था । श्रीमान् कार्तिकेय का इसी स्थान पर एक सिंहरथ है, जो ध्वजापताका से युक्त और किंकिणी जाल से सुशोभित है । चित्र-विचित्र पुष्प कुंजों से युक्त क्रौंच पर्वत प्रान्त में देवशत्रुओं के संहारकर्त्ता कार्तिकेय ने यहीं अपनी शक्ति छोड़ी थी । यहीं पर इन्द्रादि श्रेष्ठ देवों द्वारा कार्तिकेय देवों के सेनापति बनाये गये थे और उनका अभिषेक हुआ था । वे बारह सूर्य की तरह देदीप्यमान थे । ब्राह्मणो ! भूत-यूथों से व्याप्त यहाँ कार्तिकेय के कितने ही स्थान और भवन हैं । हिमालय के मनोहर पृष्ठ भाग में जो नाना भूतों से संकुल है, कुमार कार्तिकेय की पाण्डु शिला नामक एक क्रीड़ाभूमि है । उसके रमणीय पूर्वीय प्रान्त में सिद्धों का निवास-स्थान कहा गया है, जिसका नाम विद्वानों ने कलापग्राम रखा है । मृकंड, वसिष्ठ, भरत, नल, विश्वामित्र, उद्दालक आदि विप्रर्षियों के तथा कठोर तपस्या करनेवाले कितने ही पवित्रात्मा ऋषियों के उस हिमालय पर सैकड़ों,हजारों आश्रम हैं । वहाँ बहुतेरे सिद्धों के आवासस्थान और आयतन हैं । यक्ष-गन्धर्व वहां विचरण करते हैं, विविध म्लेच्छ जातियों का भी वहाँ निवास है । यह गिरिराज कितने ही प्रकार के रत्नों की खजानों से परिपूर्ण है । कितने ही प्रकार के जीव-जन्तु वहाँ रहा करते हैं । उस श्रेष्ठ पर्वत से अनगिनत हजारों नदियाँ निकलती हैं ॥१-४७॥

ब्राह्मणो ! सुनिये । पश्चिमाचल निषध का अब हम यथार्थ रूप से वर्णन करते हैं । स्वर्ण-धातु से विभूषित उसके विस्तृत मध्यम शिखरपर विष्णु का देदीप्यमान मन्दिर है, जो सिद्ध ऋषियों से सेवित और यक्ष, अप्सरा, गन्धर्व आदि से व्याप्त है । वहाँ साक्षात पीताम्बरधारी देवाधिदेव हरि भगवान निवास करते हैं, जो सतातन, सृष्टिकर्ता और वरदाता हैं सिद्ध जिनकी सदा सेवा किया करते हैं । उसी निषध पर्वत

Funding by IKS-MoE

के नाना धातु से विभूषित और चिकने शिलातल वाले भीतरी शिखर पर उल्लंघी नामक राक्षसों का एक सुन्दर नगर है। वहाँ चाँदी-सोने के निर्यूह (द्वार) और चमकीले सोने के तोरण हैं, ओलती, गली, कूटागार आदि से वह नगर भरा है। कोठे और महल खरे सोने की भाँति जगमगा रहे हैं, महलों और कोठों का ताँता लगा हुआ है, स्थान-स्थान पर विविध बाटिकायें सुशोभित हैं। साँपों से वह नगर परिपूर्ण है। (साँप ही प्रवेश द्वार पर रखवाली करते हैं); इसीसे शत्रु वहां प्रवेश नहीं कर सकते हैं। वह नगर तीस योजन का है और सदा हरा-भरा आनन्दमय रहता है। उसीके दक्षिण पार्श्व में बहुतेरे दैत्य निवास करते हैं और उसी शैल के मध्य उदर में दुष्प्रवेश्य नगर है। इस नगर में प्रवेश करने का मार्ग एक गुफा है। उसीके पश्चिम पारिजात-शिलाखण्ड वाले शिखर पर देव, दानव और नागों के वैभव सम्पन्न नगर हैं। उस पर्वत की महातट भूमि पर एक सोमशिला है, जिस पर प्रत्येक मास में चन्द्रमा उतरा करते हैं। ऋषि, किन्नर और गन्धर्वगण अन्धकारविनाशी, सुन्दरतम, श्रीमान् साक्षात् तारापति चन्द्र की वहां उपासना किया करते हैं। उस पर्वत का शिखर ब्रह्मपार्श्व कहलाता है। स्वर्ग में वह सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा का स्थान कहा जाता है। यक्ष, गन्धर्व और दानव आदि भजन-पूजन और नमस्कार के द्वारा वहां महात्मा ब्रह्मा की उपासना किया करते हैं। वहीं वह्नि देव का निवास स्थान है, जो सब लोकों में विख्यात है। सिद्ध चारण आदि वहां देहधारी वह्नि की उपासना किया करते हैं। उसी श्रेष्ठ पर्वत के उत्तर रमणीय त्रिकूट पर, जहां ऋषि, सिद्ध और नाना प्रकार के भूतगण निवास करते हैं, हेमचित्र नामक एक त्रिलोक-विख्यात नगर है। वहां तीनों देवों के तीन स्थान हैं। ब्राह्मणो! पूर्व शिखर पर नारायण का, बीच में ब्रह्मा का और पश्चिम में महादेव का स्थान है। पूज्य वे बलशाली दैत्य, दानव, गन्धर्व और यक्ष-राक्षसों द्वारा सदा पूजे जाते हैं। श्रेष्ठ पर्वत के उन तीनों शिखरों पर कहीं-कहीं किसी स्थान में यक्ष-गन्धर्व और नागों के भी रमणीय पुर हैं। उसी के उत्तर जातुधि नामक देवपर्वतपर जिसके अनेक शृङ्ग हैं और जिनपर साधु विराजते रहते हैं— हजारों यक्षों, किन्नरों, गन्धर्वों, नागों, राक्षसों और दैत्यों के भी अनेक मन्दिर हैं। उस पर्वत के रमणीय रत्न धातुओं से विभूषित मध्यम शिखर पर सिद्ध-संघ देवर्षि सदा निवास करते हैं। वहीं अत्यन्त पवित्र जलवाला आनन्द जल नामक एक सरोवर है। उसका जल सदा निर्मल रहता है, सिद्धगण उसमें स्नान करते हैं, विविध भांति के जीवों से वह भरा हुआ है। वह पक्षियों के समूह से भरा हुआ और अति शोभा-शाली है। हंस, कारण्ड और मतवाले भ्रमर वहाँ विचरण करते रहते हैं। वह विकसित पद्म, उत्पल, सौगन्धिक और कुमुद से शोभित है और उसमें बढ़िया घाट बँधे हुये हैं। वह लम्बाई-चौड़ाई में तीस योजन का है। वहाँ चण्ड नामक एक अत्यन्त दुर्धर्ष और भयंकर नागपति निवास करते हैं, वे महाभाग सौ सिरवाले हैं और उन सिरों पर विष्णुचक्र चिह्नित हैं। इन्हीं आठों को विचित्र देवपर्वत समझना चाहिये। अनेकानेक पवित्रपुर, मन्दिर, पवित्र जलवाले सरोवर, अनेक सोने-चाँदी के पर्वत, नाना रत्नप्रभा मण्डित अगणित मणिपर्वत, बहुत से हरिताल शैल, असंख्य हिंगुल-कांचन, अरुणाभ विशुद्ध भास्वर मनः शिला समूह, नानाधातुरंजित अनगिनत मणिपर्वत एवं नदी, कंदरा, शिलाखण्ड और विचित्र शिखरों से युक्त अनेक

Funding by IKS-MoE

पर्वतों से यहाँ की सम्पूर्ण भूमि परिपूर्ण है। उन नाना वर्ण के हजारों पर्वतों पर दैत्य, दानव, गन्धर्व और यक्षों के भव्य भवन बने हुए हैं। इन शैलों पर दैत्य, राक्षस, साधु, किन्नर, उरग, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, अप्सरा आदि निवास करते हैं। सारांश यह कि, ये विस्तृत पर्वत पुण्यात्माओं से परिपूर्ण हैं। मेरु के केसर की तरह बिखरे हुए ये पर्वत-जाल ही सिद्धलोक कहलाते हैं। ये विचित्र विविध आश्रमयुक्त और सुकृतात्माओं के विहारस्थल हैं। यह उदार कर्मा सिद्धों की मध्यमा प्रतिमा कहा गया है। यह मेरु ही स्वर्ग कहा गया है। उसका संस्थान-क्रम का वर्णन इस प्रकार किया गया है। नाना वर्ण-प्रमाण, नाना वर्णबल, नाना भक्ष्य, अन्न, पान, आच्छादन, भूषण और विविध भाँति के निवासी प्रजाजनों से युक्त यह पृथ्वी चार द्वीपों वाली कही गई है। अनेक वर्णों से युक्त भद्र, भरत, केतुमाल और उत्तर कुरु नामक चार महाद्वीप विख्यात हैं। इन द्वीपों में पुण्यात्मा लोक निवास करते हैं। ब्राह्मणो! यहाँ हमने चारों महाद्वीपों और नाना द्वीपों से युक्त पद्माकार संपूर्ण पृथ्वी का वर्णन किया है। इस प्रकार की अन्तर द्वीप, शैल, वन, कानन से युक्त अत्यन्त विस्तृत सम्पूर्ण पृथ्वी पद्मा कही गई है। ब्रह्मलोक से लेकर देव असुर और मनुष्यलोक तक यह सब जीव-जन्तुओं के द्वारा त्रिलोक कहा जाता है। चन्द-सूर्य से जो आलोकित होता और रूप-रस-गन्ध-स्पर्श और शब्द गुणों से जो युक्त है, वही जगत है। इसी को लोकपद्म कहते हैं और श्रुति इसको पद्म कहती है। सभी पुराणों में पृथ्वी के वर्णन का क्रम इसी प्रकार है॥ ४८—९० ॥

श्री वायु महापुराण का भुवन विन्यास नामक एकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—सरोवरों से जो-जो जिस प्रकार पवित्र जलवाली देवनदियाँ और गम्भीरजल वाली नदियाँ प्रवाहित हुई हैं, उनका वर्णन यथाक्रम से कर रहा हूँ सुनिये—जो आकाश-समुद्र के चन्द्र कहे जाते हैं, जो सब जीवों के आधार और जो देवताओं के सुधारक हैं, उन्हींसे एक विमल जलवाली पुण्यसलिला आकाशगामिनी नदी निकलकर सप्तम वायुपथ की ओर गई है। यह नदी ज्योतिष्मण्डल पर्यन्त प्रवाहित होती है और करोड़ों तारिकाओं तथा ज्योतिष्क पिण्डों से व्याप्त है। आकाश में फैली हुई आकाशपथ में विचरण करने वाले इन्द्र के ऐरावत द्वारा क्रीड़ाकाल में इस नदी का जल विक्षुब्ध हो जाता है। सिद्धगण जब विमानों पर चढ़कर आकाश में विचरण करते हैं, तब इसके पवित्र जलका वे सब आचमन और स्पर्श किया करते हैं। सूर्य जिस प्रकार प्रत्येक दिन परिवर्तित होते हैं, उसी प्रकार वायु द्वारा प्रेरित होने पर यह नदी भी अनेक स्थानों में घूमती रहती है। वह नदी चौरासी योजनों की है और यह सदा वेग से मेरु की प्रदक्षिणा किया करती है तेजोमय अनिल और अन्यान्य प्रकार के सलिल द्वारा छिन्न होने पर

मेरु के उत्तरीय चार शिखरों पर गिरती है। मेरु के उत्तम शिखरों से टकरा कर जब वह पुनः लौटती है तब इसका जल तितर-बितर हो जाता है, जिससे यह चार भागों में विभक्त होकर बहने लगती है। मेरु के चारों ओर साठ हजार योजनों में यह महाभागा पवित्र नदी बिना अवलम्ब के आकाश में घूमती हुई मेरु के पादप्रान्त में चार भागों में विभक्त होकर मनोहर रूप से मन्दर के पूर्व भाग में गिरती है। यह सुन्दर गतिवाली नदी पूर्व भागसे सिद्धों और देवों के आवासवाले अनेक निर्झर, कन्दराओं तथा सुवर्ण चित्रित कंटकों से युक्त पर्वतराज मेरु के साथ सुन्दर-कंदरा वाले मन्दर को और वनदेवों के ताप को मिटाने वाले स्फटिक निर्मल जलसमूह से रमणीय चैत्ररथ को सींचती हुई और प्रदक्षिणा करती हुई अरुणोद सरोवर में प्रवेश करती है। वही आकाश नदी अरुणोद सरोवर से निकलने के बाद सिद्ध सेवित रम्य निर्झर वाले शीतान्त शैल पर गिरती है। तब उसका नदियों में श्रेष्ठ पुण्यसलिला सीता नाम पड़ता है। फिर निकुंजों में रुक जाने के कारण उसकी अनेक धाराएँ हो जाती हैं। शीतान्त पर्वत के शिखर से निकलकर वह श्रेष्ठ पर्वत मुकुंज पर गिरती है। फिर यह महाभागा वहाँ से सुमंज पर गिरती है वहाँ से निकलकर माल्यवान् पर्वत को प्लावित करती हुई यह श्रेष्ठ नदी वैकंक पर्वत पर आती है। वैकंक पर्वत से मणिशैल पर और मणिशैल से अनेक कन्दराओं वाले महाशैल ऋषभ पर यह निपतित होती है। इस प्रकार यह महानदी हजारों शैलों को फाड़ती हुई सिद्ध-सेवित महाशैल जठर के ऊपर गिरती है। वहाँ से भी वह तरङ्गशालिनी नदी पर्वतराज देवकूट पर गिरती है। इस देवकूट का पार्श्वभाग समुद्र तक फैला हुआ है; इस प्रकार यह नदी क्रमसे पृथ्वी पर उतरती है। वह महाभागा नदी सहस्रों स्थलियों, सैकड़ों पर्वतों, विचित्र वनों और विविध सरोवरों को प्लावित करके हजारों नदियों से मिलकर विमल तरङ्गमाला धारण करती हुई बहती है। वह श्रेष्ठ सरिता महानदी प्रधान-प्रधान द्वीपों को और भद्राश्ववर्ष को सींचती हुई पहले पूर्व सागर में मिलती है। ॥ १—२४ ॥

दक्षिण दिग्वर्ती पर्वतराज गन्धमादन पर जो नदी उतरती है, वह विचित्र प्रपातों और अनेक तरंगमालायुक्त जल प्रवाह को धारण करती हुई देवराज के नन्दनवन को सींचती है एवं गन्धमादन की प्रदक्षिणा करती हुई चलती है। सभी लोग उसे अलकनन्दा कहा करते हैं। यह देवों के मानस रूप उत्तर मानसरोवर में प्रवेश करती है। वहाँ से रमणीय तीन शिखरवाले शैलराज त्रिकूट पर गिरती है और त्रिकूट के शिखर से कलिंग के शिखर पर गिरती है। वहाँ से उतर कर रुचक पर गिरती है। रुचक से निषध पर और निषध से ताम्राभ पर गिरती है। फिर ताम्राभ से श्वेतोदर पर्वत पर, वहाँ से सुमूल पर्वत पर, सुमूल से वसुधार पर, वसुधार से हेमकूट पर, हेमकूट से देवशृङ्ग पर, देवशृङ्ग से शैलश्रेष्ठ पिशाचक पर, पिशाचक से पंचकूट पर और पंचकूट से देवनिवास कैलाश पर गिरती हुई एवं उसके शिखरकन्दरामय पार्श्व देश से बहती हुई अचलोत्तम हिमालय पर गिरती है। वह महानदी हजारों शैलों को फाड़ती हुई, सैकड़ों स्थलों को सींचती हुई, हजारों वनों को और सैकड़ों कन्दराओं को भिगोती हुई तीव्र वेग से दक्षिण समुद्र में गिरती है। ॥ २५—३५ ॥

Funding by IKS-MoE

जो रम्य नदी योजन परिमित चौड़ी और शैलकुक्षि में घिरी हुई है, महात्मा देवाधिदेवशङ्कर ने जिसको अपने शिर पर धारण किया है, वह घोर पापियों को भी पवित्र करनेवाली एवं धीमान् शङ्कर के अग-स्पर्श से द्विगुण पवित्र, पवित्र-सलिला महानदी गंगा है। ब्राह्मणो! यह हिमालय पर्वत के चारों ओर से निकलकर अनेक शाखाओं में विभक्त हो गयी है, जो भिन्न-भिन्न नामों से सहस्र-सहस्र नदी रूपों में विख्यात है। यह महानदी गंगा नाम से प्रसिद्ध है। जो सिद्धों से सेवित है। जिन देशों के बीच से होकर यह रुद्र, साध्य, वायु और आदित्य से सेवित यशश्विनी गंगा प्रवाहित होती है, वह देश धन्य और श्रेष्ठ है। ॥ ३५ — ॥४० ॥

अब हम मेरु से पश्चिम दिशा में स्थित सुविस्तृत प्रत्यन्त पर्वत की कथा कहते हैं। वह नाना रत्नों का आकर, पुण्यमय, पुण्यकर्ताओं से सेवित, अतिविस्तृत एवं विपुल कुक्षि और कन्दराओं द्वारा सुशोभित है। उसका भीतरी प्रदेश नितम्बस्थित कुंजों और विमल कटकों (पर्वत का मध्य भाग) से मंडित है। भगवान् त्रिलोचन ने जिसको धारण किया है, देवगण जिसके जल का उपयोग करते हैं, जो वायु की तरह वेगगामिनी, बहुदेशव्यापिनी और लता की तरह घूमती हुई मेरु के शृंग से गिरती है, जिसके जल का आस्वाद कितने ही जीवों ने किया है; जिसका जल अत्यन्त विस्तृत और निर्मल वस्त्र की तरह है, वह स्वर्नदी मेरु शिखर पर सिद्ध-चारणों द्वारा सेवित हो इस प्रकार बहती है मानो प्रदक्षिणा करती है। वह शैल शिखर के मध्य से होकर बहती हुई अन्त में देवभ्राजवन में गिरती है। नाना पुष्प-फलों से युक्त जलवाली यह महाभागा नदी क्रम से देवभ्राज, महाभ्राज और वैभ्राज्य प्रभृति महावनों को प्रदक्षिणा क्रम से सींचकर एवं नाना वनों का मन्थन करके पश्चिम दिग्वर्ती विमल जल सितोद सरोवर में प्रविष्ट होती है। सितोद से निकलकर वह सुपक्षपर्वत पर जाती है। देवर्षियों द्वारा सेवित वह पुण्य सलिला महाभागा सुपक्षशिखर-गामिनी महानदी फिर वहाँ से रमणीय शिखिपर्वत पर गिरती है। शिखि पर्वत से कंक पर, कंक से वैदूर्य पर्वत पर, वैदूर्य से कपिल शैल पर, कपिल से गन्धमादन पर, फिर श्रेष्ठ गन्धमादन पर्वत से शैलश्रेष्ठ पिंजर पर पिंजर से सरोवर में, उससे कुमुदाचल पर, वहाँ से मधुमान पर, मधुमान से मुकुट पर, मुकुट से कृष्णपर्वत पर, कृष्ण से महानाग विभूषित श्वेतशैल पर, और श्वेतशैल से शैलेन्द्र सहस्र-शिखर पर उतरती है। इस प्रकार यह नदी सहस्र-सहस्र खण्ड, शत-शत पर्वत श्रेष्ठ बहुत से विचित्र वन एवं सरोवर को प्लावित करके, अनेक नदियों के जल से पूर्ण होकर बड़े बेग से महाशैल पारिजात पर गिरती है। अनेक निर्झर, नदी, गुहा और शिखरों से युक्त उस महाशैल पारिजात के मध्य उदर में घूमती हुई वह नदी गण्डशेलों से टकराती हुई पृथ्वी पर उतरती है और नाना म्लेच्छों के आवास स्थान केतुमाल महाद्वीप को सींचती हुई पश्चिम समुद्र में मिल जाती है। पवनान्दोलित जलशालिनी पूर्वोक्त महानदी हेमकूटतट से गिरकर मेरु गिरि के उत्तर दिग्वर्ती सुवर्ण चित्रित सुपार्श्व शोभित विशाल, विचित्र, महासत्त्वसंकुल पाददेश में पतित होती है। आकाश में यह विस्तृताकार और टेढ़ीमेढ़ी होकर साठ हजार योजनों में निरालम्ब भाव से बहती है। वहाँ से माला की तरह जल को बिखेरती हुई वह महानदी गिरती है अनेक देवर्षियों से सेवित विविध कूट

Funding by IKS-MoE

तटों से गिरकर अनेक पुष्प नौकाओं को धारण करनेवाली एवं जल को बिखेरने वाली यह नदी नाना रत्नमय देश, अरण्य, सवित्रृवन और अन्यान्य महावंन को प्रदक्षिणा क्रम से प्लावित करती हुई यह महाभागा कल्याणी शुभ्रसलिला नदी महाभद्र नामक एक महापुण्य सरोवर में मिलती हैं। वहाँ से निकलने पर वह महापुण्या महानदी भद्रसोमा नाम से विख्यात होती है। वह भद्रसोमा बहुविस्तृत और अत्यन्त वेगवती है। यह शीघ्रगामिनी नदी शंखकूट तटके अनेक निर्झरों और वप्रों को पार करती हुई उसी शंखकूट गिरि के तट पर गिरती है, शंखकूट तट को छोड़ वह वृष पर्वत पर गिरती है, फिर वहाँ से नागशैल पर जाती है और नाग शैल से पर्वतश्रेष्ठ वर्षपर्वत नील पर उतरती है। वहाँ से वह नदी कपिंजल पर और कपिंजल से नीचे की ओर बहकर इन्द्रनील पर एवं इन्द्रनील से महानील हेमश्रृंग पर गिरती है। हेमश्रृंग से श्वेत पर, श्वेत से सुनगपर और सुनग से वह महानदी शत श्रृंग पर जाती है। शतश्रृंग से पुष्पमण्डित महाशैल पुष्कर पर, पुष्कर से महाबली महाशैल द्विजराज पर, वहाँ से वराह पर्वत पर, वहाँ से शिलोच्चय मयूर पर, मयूर से अनेक कन्दराओं वाले, एक शिखर जातुधि नामक पर्वत के शिखर पर वह शीघ्रगामिनी नदी गिरती है। इस प्रकार यह महानदी सहस्रों पर्वतों को विदीर्ण करती हुई शिखर संयुक्तत्रिश्रृंग नामक मर्यादा पर्वत पर गिरती है। इसके बाद महाभागा नदी त्रिश्रृंग के तट से भ्रष्ट होकर पवन द्वारा प्रेरित होने पर मेरुकूट के तट से भी च्युत होती है। तब यह विमल जलशालिनी पर्वत श्रेष्ठ वीरुध पर गिरती है और वहाँ के प्रदेश को प्लावित करती हुई यह महाभागा पश्चिम समुद्र में मिलती है। मेरु के उत्तर पार्श्व में सुपार्श्व नामक, नानाजीव संकुल सुवर्णमय पाद देश में वह अनेक भागों में विभक्त होकर और फैलकर गिरती है। अनन्तर कन्दरा के बीच से निकलकर वह विशाल आकारवाली और कल्याणकारी नदी पुष्पों की विचित्र नौका को धारण करती हुई पृथ्वी पर उतरकर उत्तर कुरु को प्लावित करती हुई महाद्वीप के बीचोबीच बहकर उत्तर समुद्र में जाकर मिल जाती है। इस प्रकार विमल जल वाली वे चारों नदियाँ महागिरि तट से निकलकर चारों दिशाओं में प्रवाहित हुई हैं। विप्रगण! इन शब्दों में अत्यन्त विस्तृत पृथ्वी की कथा प्रायः कह दी गयी। यह पृथिवी मेरु आदि शैलों द्वारा चारों ओर से व्याप्त है। इसमें चार महाद्वीप और चार क्रीड़ा कानन हैं। केतुस्वरूप चार महावृक्ष और चार सरोवर भी हैं। इस पृथ्वी पर चार महाशैल हैं और आठ उत्तर महाशैल तथा आठ अवर पर्वतों से युक्त यह भूमण्डल चार महानागों के आधार पर टिकी है॥ ४१-८१॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक बयालीसवाँ अध्याय समाप्त॥४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—गन्धमादन पर्वत के बगल में एक परिष्कृत गण्डशिला है। पूरब-पश्चिम में यह बत्तीस हजार योजनों में फैली है एवं इसका विस्तार प्रमाण चौंतीस हजार योजनों का है। वहाँ शुभ

Funding by IKS-MoE

कर्म करनेवाले केतुमाल देशवासी निवास करते हैं। वहाँ के रहने वाले पुरुष महावीर्यशाली, बलशाली और काले रंग के होते हैं; किन्तु स्त्रियाँ कमल-दलसी कोमल और देखने में मनोहर होती हैं। वहाँ कटहल का एक दिव्य विशाल वृक्ष है, जिसके फलों में छवों रसों का स्वाद है। वह वृक्ष ब्रह्मा का पुत्र, ईश्वर, कामचारी और मन की तरह वेगशाली है। वहाँ के निवासी उसके फलों के रस को पीकर हज़ारों वर्ष जीते हैं। उसी प्रकार माल्यवान के पूर्व भाग में दूसरी पूर्व-गण्डशिला है, जिसकी लम्बाई-चौड़ाई भी पहली गण्ड-शिला के ही बराबर है। भद्राश्ववासी लोग वहाँ नित्य प्रसन्नता पूर्वक रहते हैं। वहाँ भद्र नामक एक सालवन है, जहाँ के विशाल वृक्ष कालाम्र नाम से प्रसिद्ध हैं। वहाँ के पुरुष श्वेतवर्ण के महावीर्यशाली और बलशाली होते हैं। स्त्रियाँ भी कुमुद के रंग की, सुन्दरी और देखने में भली मालूम पड़ती है। वे स्त्रियाँ चंन्द्र के समान आभा पूर्ण, गौर वर्ण की,शीतलांगी, कमल-गन्धा और पूर्ण चन्द्र की तरह मनोहर मुख वाली हैं। वहाँ के लोग दस हजार वर्षों तक स्वस्थ और निःशंक होकर जीते हैं और कालाम्र के रस को पीकर सदा युवक बने रहते हैं ॥१–९॥

ऋषियों ने कहा—आपने चारों द्वीपों के निवासियों के वर्ण, आयु और प्रमाण को यथार्थ रूप में बता दिया हैं; किन्तु विस्तार पूर्वक न कहकर संक्षेप में कहा है।

सूतजी बोले—महायशस्वियो! ऋषियों! भद्राश्ववासियो का जो स्वरूप हमने बताया है, उसे पहले के सिद्धों ने जैसा कहा है,उसीके अनुरूप हम विस्तार के साथ कहते हैं उसे आप सब सुनें। प्रसिद्ध देव-कूट गिरि के पूर्व की ओर से चारों ओर वर्तमान पाँचों कुल पर्वतों,नदियों और देशों का वर्णन जैसा हमने देखा और सुना है वैसा कह दिया है। शैवाल, वर्णमालाग्र, कोरञ्ज, शवेत और नील ये पाँच कुल पर्वत हैं। इनके सन्तान के रूप में सैकड़ों, हजारों और करोड़ों विशाल-विशाल पर्वत हैं। इन पर्वतों से युक्त कितने ही देश हैं, जहाँ भाँति-भाँति की जातियाँ और जीव निवास करते हैं, जिनका पालन अनेक राजाओं द्वारा होता है। उन देशों में कितने ही स्वनामधन्य बल-विक्रमाशाली, श्रीमान्, पुरुषपुंगव निवास करते हैं, जिनसे सुशोभित वे देश सर्वत्र प्रसिद्ध हो रहे हैं। पर्वतों के बीच में सम और विषम स्थानों में स्थित उन विविध देशों के नाम इस प्रकार हैं—सुमङ्गल, शुद्ध, चन्द्रकान्त, सुनन्दन व्रजक, नीलमौलेय सौवीर, विजयस्थल, महास्थल, सुकाम, महाकेश, सुमूर्द्धज, वातरंह, सोपासङ्ग, परिवाय, पराचक, समवक्र महानेत्र, शैवाल, स्तनप, कुमुद, शाकमुण्ड, उरःसंकीर्ण, भौमक, योमक, वत्सक, वाराह, हारवाहक, शङ्ख, भाविमन्द्र, उत्तर, हैमभौम, कृष्णभौम, सुभौम और महाभौम। इन देशों के अतिरिक्त वहाँ कितने ही दूसरे भी विख्यात देश हैं। उन देशों के निवासी महापुण्या महानदी, महागंगा का जल पीते हैं। वह महागंगा पहले शीतलजल वाहिनी शीता नाम से विख्यात थी। गंगा की ही तरह वहाँ और भी महानदियाँ हैं, जो नायिका कहलाती हैं। जैसे-हंसवति, महाचक्रा, चक्रा, वर्त्ता, कांची, सुरसा, शाखावती इन्द्रनदी, मेघा, अङ्गार वाहिनी, कावेरी, सोमावर्ता,हरितोया, सुवर्णा, पंचवर्णा, वसुष्मती, मणिवप्रा, सुवप्रा, ब्रह्मभागा, शिलाशिनी, कृष्णतोया, पुण्योदा,

Funding by IKS-MoE

शत ह्दा, वनमाला वसुमती, पम्पा, पम्पावती, नागपदी, शैवालिनी, मणितटा, क्षारोदा, अरुणावती, विष्णुपदी,महापुण्या, महानदी, हिरण्यवाहिनी, नीला, स्कन्दमाला, सुरावती, वामोदा, पताका और बेताली। इनके अतिरिक्त वहाँ सैकड़ों और हजारों क्षुद्र नदियाँ हैं। पूर्व द्वीप में बहनेवाली इन पुण्य- नदियों को हमने कहा। इनके नाम-कीर्तन से लोग पवित्र हो जाते हैं ऐसी मेरी धारणा है। उस भद्राश्ववर्ष के राष्ट्र समृद्ध, स्फीत, विविध जनपदों से युक्त हैं जिनमें विविध प्रकार के वृक्ष, घनेवन और विवधि पर्वत हैं। वहाँ की प्रसन्नमुख नर-नारियाँ सदा मंगलोत्सव मनाया करती हैं। उस भद्राश्व वर्ष में सदा फलने-फूलने वाले कितने ही वन हैं, अनेक राजा राज्य कर रहे हैं और वहाँ बहुमूल्य-प्रशंसनीय रत्नों की अनेकों खदाने भी हैं। उस देश में सुवर्ण-कमल-दल के समान प्रभा धारण करनेवाले पुरुष-पुंगव निवास करते हैं। वे पुरुष विशाल काय और महाबली हैं। वहाँ के पुण्यशाली मनुष्य देवों के साथ बैठते, बात-चीत का आनन्द लूटते और उनका दर्शन सुख प्राप्त करते हैं। इनकी आयु दस हजार वर्षों की कही गई है। उन महात्माओं में धर्माधर्म की कुछ भी विशेषता नहीं है। वे स्वभावतः सत्यवक्ता और अहिंसक होते हैं। वे सब भक्तिपूर्वक प्रतिदिन देव-देव शंकर और परम वैष्णवी गौरी देवी की पूजा-अर्चा और नमस्कार किया करते हैं। ॥१०-३८॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४३॥

चौआलीसवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

सूतजी बोले— भद्राश्ववासियों का यह स्वाभाविक वर्णन हमने यथार्थ रूप से कर दिया। अब केतुमाल देशवासियों का वर्णन विस्तार से सुनिये। पश्चिम दिग्वर्ती महात्मा निषधाचल से पश्चिम-संपूर्ण दिशाओं में जो सात कुल पर्वत, नदियाँ और देश आदि हैं, उनका वर्णन विस्तार पूर्वक सुनिये। विशाल, कंबल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत, अशोक और वर्धमान ये सात कुल पर्वत हैं। इनसे उत्पन्न अनेकानेक सैकड़ों, हजारों और करोड़ों बड़े-बड़े पर्वत भी वहाँ हैं। इन पर्वतों से युक्त कितने ही देश हैं, जहाँ विविध प्रकार की जातियाँ बसी हुई हैं और जिनका पालन अनेक राजाओं द्वारा हो रहा है। स्वनाम धन्य बल-मशाली अनेक जनपदवासियों के वे देश सुशोभित और बसे हुये हैं; अतः वे संसार में प्रसिद्ध हैं। पर्वतों बीच के सम-विषम स्थानों में स्थित वहाँ से विविध देशों के नाम इस प्रकार कहे गए हैं—सुख, भ्रमर, यूथ के माहेय, अचलकूटक, सुमौल, स्तावक, क्रौंच, कृष्णांग, मणिपुंजक,कूटकवल, मौषीय, समुद्रान्तरक, कुरंभव, कुच, श्वेत, सुवर्णकटक, शुभ, श्वेतांग, कृष्णापद, विह, कपिलकर्णिक, अत्याकराल, गोज्वाल, हीनाना, बनपातक, महिव, कुमुदाभ, करपाट, सहोत्कच, शुनकास, महानास, वनास, गजभूमिक, करंज, मंजम, वाह,

Funding by IKS-MoE

किष्किण्डी, पाडुभूमिक, कुवेर, धूमज, जंग,वंग, राजीव-कोकिल, वाचांग, महांग मधौरेय सुरेचक, पित्तल, काचल, श्रवणा, मत्तकाच्िक, गोदाव, वकुल, वाँग, वंगकामोद और कला। ये देश गो,मनुष्य, कपोतों से यानी चतुष्पद द्विपद और पक्षियों से परिपूर्ण हैं। यहाँ के भाग्यशाली लोग विशाल पर्वतों से उत्पन्न पवित्र सलिला, सुतट वाली महानदियों का जल पिया करते हैं। उन नदियों के नाम ये हैं--कंवला, तामसी, श्यामा, सुमेधा, वकुला, विकीर्णा, शिखिमाला, दर्भावती, भद्रानदी, शुकनदी, पलाशा, महानदी, भीमा, प्रभंजना, कोची, पुण्या, कुशावती, दशा, शाकवती, पुण्योदा, भारती, महानदीं चन्द्रावती, सुमूला, ऋषमा, समुद्रमाला, चम्पावती, प्राह्मा, पुफला, वाहा, सुवर्णा, नन्दिनी, कालिन्दी, पुण्योदा, भारती, नदी सीतोदा पातिका, ब्राह्मी, महानदी विशाला, पीवरी, कुंभकारी, रुषा, महिषी, दण्डा और नदनदी इन नदियों का तथा अन्यात्य श्रेष्ठ नदियों का जल वहाँ के लोग पिया करते हैं। ये नदियाँ पवित्र जलवाहिनी शुभकारक, पाप विनाशिनी और देव-देवर्षियों द्वारा सेवित हैं। वह पश्चिम दिग्वर्ती महाद्वीप केतुमाल घन-धान्यों से परिपूर्ण, सत्कर्म करने वाले नर-नारियों से व्याप्त, उदार, विविध देशों से मनोहर, महा नदियों से विभूषित, नाना रत्न से समृद्ध, सदा आनन्दमय और नित्य मंगलकारक है। केतुमालवासियों का उपर्युक्त चरित्र वर्णन जो कि अभी आप लोगों को सुनाया गया है स्वभावसिद्ध है। ॥१-२५॥

श्री वायुमहापुराण का भुवनविन्यास नामक चौआलीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४४ ॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

शांशपायन बोले—हे महाराज! आपने पूर्व और पश्चिम दिशा के दो देशों का वर्णन किया। अब उत्तर तथा दक्षिण दिशा के देशों का और वहाँ के पर्वतों पर रहनेवाले लोगों का क्रमशः पूर्ण रूप से वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

सूतजी बोले--श्वेत पर्वत के दक्षिण और नील पर्वत के उत्तर रमणक नामक एक देश है। वहाँ जो मनुष्य उत्पन्न होते हैं वे सभी अनुकूल कामफल का उपभोग करते हैं। वे बूढ़े नहीं होते न तो उनके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। उनका परिवार भी विशुद्ध होता और वे स्वयं सुन्दर होते हैं। वहाँ रोहिण नामक एक महान् और दिव्य वट वृक्ष है, जिसके फलों के रस को पीकर वहाँ के निवासी जीवन धारण करते हैं। वे महाभाग्यशाली नर श्रेष्ठ सदा प्रसन्न रहते हैं और दस हजार दस सौ पाँच वर्ष की आयु के होते हैं। श्वेताचल के उत्तर और शृंगाचल के दक्षिण हिरण्वत नामका एक देश है,जहाँ हैरण्वती नदी बहती है। वहाँ के लोग महाबली, तेजस्वी, जीवट धनी, सुरूप और सभी ऋतुओं में समान काम फल का

उपभोग करनेवाले हैं। वहाँ के पराक्रमी लोग ग्यारह हजार दस सौ पाँच वर्ष की आयु तक जीवित रहते हैं। उस देश में छवों रसों से युक्त बड़हर का एक महान् वृक्ष है। वहाँ के मानव उसीके फल के रस को पोकर जीते हैं। वहाँ शृङ्गवान् गिरि के तीन बड़े और ऊँचे शृङ्ग हैं, जिनमें एक मणि का है, दूसरा सोने का और तीसरा भाँति-भाँति के रत्नों से भरा है। उनपर महल भी बने हुए हैं। उत्तर समुद्र के अन्त में दक्षिण ओर सिद्धों से सेवित पुण्य शाली कुरुवर्ष है। वहाँ के वृक्षों में मीठे फल लगे रहते और फूल खिले रहते हैं। वे वृक्ष फलों के साथ-साथ वस्त्र और भूषण भी दिया करते हैं। कितने ही मनोहर वृक्ष तो वहाँ सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाले हैं और सुगंधित मनोहर मधु टपकाते रहते हैं। दूध देनेवाले भी वहाँ दूसरे वृक्ष हैं, जो देखने में मनोहर हैं और सदा अमृत तुल्य षड़रसमय दूध बहाया करते हैं। वहाँ की भूमि मणियों से युक्त है, जहाँ सोने की बालू बिखरी रहती है। कीचड़ का कहीं पता नहीं है। कहीं पर धूलि का पता नहीं, धरातल छूने पर अत्यन्त कोमल जान पड़ता है। देवलोक से च्युत होने पर ही वहाँ मानव जन्म ग्रहण करते हैं। वहाँ सभी चिर युवक और शुद्ध परिवार वाले हैं। वहाँ सुन्दर नारियाँ जुड़वाँ सन्तान पैदा करती हैं, जो दूध-वृक्ष के अमृततुल्य दूध को पिया करते हैं। वहाँ वाले जुड़वाँ जनमते हैं साथ ही बढ़ते, स्वभाव-रूप में भी एक से होते है और साथ ही मरते भी हैं। वे रोग-शोक से रहित होकर सदा सुखी रहते हैं और आपस में उसी प्रकार अनुरक्त रहते हैं, जैसे चकवा-चकई। वहाँ वालों को पराई स्त्री की चाह नहीं रहती है। वे महाबली तेरह हजार दस सौ पाँच वर्ष तक जीवित रहते हैं॥ १—२०॥

शैलराज जारुधि के उत्तर जो उत्तर कुरु है, उसका वर्णन विस्तार से सुनिये। यह उत्तर कुरु सभी दिशाओं में प्रसिद्ध है। वहाँ बड़े ऊँचे-ऊँचे दो कुल पर्वत हैं, जो अनेक कन्दराओं, दरियों, गुहाओं और झरनों से मण्डित हैं, अनेक कुंज और वनों से युक्त, विचित्र धातुओं से विभूषित वे अनेक प्रकार की विविध धातुओं से रंजित; पुष्प, मूल और फूलों से युक्त और सिद्ध चरणों से सुशोभित हैं। उन दोनों पर्वतों के सैकड़ों शिखरों से वह द्वीप शोभित हो रहा है। इन दोनों पर्वतों के नाम चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त है जिनके बीच से महानदी भद्रसीमा बहती है। और भी वहाँ हजारों नदियाँ हैं। जिनके जल को कुरु देश सी स्नान-पान आदि के कामों में लाते हैं। इन नदियों में निर्मल मीठा जल पर्याप्त मात्रा में भरा रहता है। वैसी भी हजारों महानदियाँ हैं, जिनमें दूध, मधु, मदिरा और घी बहा करता है। दही के वहाँ सैकड़ों तालाब हैं, सुस्वादु अन्नों के पर्वत की तरह ढेर लगे हुए हैं। अमृत की तरह स्वादवाले सुन्दर फल तो भाँति-भाँति पड़े हैं। वहाँ गन्ध वर्ण और रसों से युक्त ऐसे-ऐसे फल-मूल हैं, जिनकी सुगन्ध बीस कोस दूर से ही जान पड़ने लगती है, भाँति-भाँति के रंग विरंगे हजारों फूल खिले रहते हैं, जो उपभोग के योग्य और महान् कल्याणकारक हैं। गन्ध, वर्ण और रसों से युक्त तथा सुख स्पर्श वहाँ तमाल, अगरु तथा चन्दनों के वन हैं, जहाँ भ्रमर प्रसन्न हो गाते रहते हैं। प्रफुल्लित वृक्ष द्रुम और लताओं से युक्त कितने ही और सुखदायक वन हैं, जहाँ भौंरे गुंजार करते रहते और

Funding by IKS-MoE

चिड़ियाँ चहचहाती रहती हैं। ब्राह्मणो! वहाँ हजारों सरोवर हैं, जहाँ असंख्य पद्म और उत्पल के वन हैं। सभी ऋतुओं में सुख देनेवाली रमणीय विहार भूमि में खाने की वस्तुयें, माला, अनुलेपन, शयन, आसनादि उपभोग सामग्रियाँ प्रस्तुत रहती हैं, मनोहर मुखवाले चित्र-विचित्र पक्षियों का कलरव होता रहता है और वे विहारभूमि अनेक गुणों से युक्त हैं। वहाँ स्वर्ण और मणियों से परिष्कृत एव सभी प्रकार से सम्पन्न उद्यान, शिलागृह, वृक्षगृह और श्रेष्ठ कदलीगृह हैं। सभी प्रकार के सुख देनेवाले कितने ही लतागृह हैं। शङ्खकी तरह उज्ज्वल कितने ही भूमिगृह भी हैं, जिनमें सोने और मणियों से चित्र बने हैं एवं सोने और मणियों की ही खिड़कियाँ हैं। वे भवन भी बड़े-बड़े हैं। वहाँ बड़े-बड़े हजारों वृक्ष, विविध प्रकार के मूल्यवान् और सुख पहुँचानेवाले महीन कपड़े हैं। मृदङ्ग, वेणु, पणव, वीणा आदि बाजे बजते रहते हैं। वहाँ हजारों सैकड़ों कल्पवृक्ष हैं, जो इच्छानुसार फल देते हैं। सभी जगह उद्यान हैं, सभी जगह नगर हैं, सम्पूर्ण द्वीप आनन्ददायक है, जहाँ सुखी नर-नारी निवास करते हैं। वहाँ की वायु में विविध फूलों की सुगन्ध रहती है, जिसके स्पर्श से शरीर में सुख और आह्लाद उत्पन्न हो जाता है। क्लान्ति-नाशक उस द्वीप में स्वर्ग से भ्रष्ट होकर मानव जनमते हैं, क्योंकि वह द्वीप उत्तम गुणों के कारण भूमिका स्वर्ग कहलाता है। पूर्वतट में चन्द्रकान्त पर्वत के निकट रहनेवाले नरपुंगव श्याम वर्ण के और सूर्यकान्त पर्वत के निकट रहनेवाले श्याम-अवदात वर्ण के होते हैं। वहाँ के उत्तम निवासी सदा सुखी रहते हैं। उस देश के श्रेष्ठ मनुष्य देवताकी तरह पराक्रमी, तेजस्वी और इच्छाधीन विहार करनेवाले हैं। वलय, अंगद, केयूर, हार, कुण्डल, माला, चित्रकारी किये हुए मुकुट और रंग-बिरंगी चादर पहननेवाले वहाँ के सदा युवक बने रहने वाले लोग हजारों वर्षों तक जीवित रहते हैं। वहाँ की प्रजा देखने में सुन्दर और भली है। प्रजा को न प्रसव होता है और न उनको वंशक्षय होता है; क्योंकि वहाँ के वृक्ष ही नर-नारियों के जोड़े को उत्पन्न करते हैं इसमें बाधा नहीं पड़ती है। सभी समान वैभववाले हैं। किसी को भी सम्पत्ति पर ममता नहीं है। वहाँ धर्म-अधर्म आदि कुछ भी नहीं है। वहाँ न रोग है, न बुढ़ापा है, न कुमति है और न थकावट। जीवन-काल को पूर्णकर वे पानी के बुलबुले की तरह समाप्त हो जाते हैं। वे अत्यन्त सुखी हैं, उन्हें कोई भी दुःख नहीं है। वे कभी भी अनुरक्त होकर धर्म नहीं करते हैं। दुःख की अवस्था में ही धर्म किया जाता है। उत्तर कुरु के दक्षिण पार्श्व में चन्द्रद्वीप है। यह पाँच हजार योजना विस्तीर्ण और देवलोक से भी बढ़कर है। यहाँ चन्द्रमाका मण्डल स्थित है जहाँ समुद्र की तरङ्ग-मालाएँ सदा लहराती रहती हैं, जिनके तरह-तरह के शब्दों से यह द्वीप मुखरित होता रहता है। इसका घेरा चारों ओर से हजार योजनों का है और लंबाई-ऊँचाई भी सौ-सौ योजनों की है। यहाँ भाँति-भाँति के फल-फूल लगे हुए हैं-और यहाँ अपार वैभव है। उसके बीच कुमुदप्रभ नामक एक पर्वत है। जहाँ सिद्धचारण निवास करते हैं। वह पर्वत चन्द्रमा के तुल्य प्रभासम्पन्न, कमनीय, सुलक्षण और चन्द्रतुल्य श्वेत-वैदूर्य मणि तथा कुमुद से चित्रित है। वहाँ अनेक विचित्र विचित्र उद्यान, विविध निर्झर-कन्दराएँ हैं और वह पर्वत विविध विशाल शिखर, दरी और कुंजों से विभूषित है। उस पर्वत से चन्द्रावर्ता नाम की एक उत्तम

Funding by IKS-MoE

नदी प्रवाहित होती है। यह अत्यन्त पवित्र है और इसका जल चन्द्रमा की किरण की तरह निर्मल है। वह नक्षत्रों के अधिपति चन्द्रमा का श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ गृह-नायक चन्द्रमा सदा उतरा करते हैं। वहाँ चन्द्रमा के नाम का एक विख्यात पर्वत है। वह महाद्वीप चन्द्रद्वीप स्वर्गलोक और मृत्युलोक में प्रकाशित (प्रसिद्ध) है। वहाँ की प्रजा चन्द्रमा की भाँति कान्तिमान्, पूर्ण चन्द्र के समान मुखमण्डलधारी, चन्द्रमा के समान विमल, चन्द्रपूजक, अत्यन्त धार्मिक, सौम्य, सत्य प्रतिज्ञ, तेजस्वी और सदाचारी रहकर हजार वर्ष जीवित रहती है। पश्चिम दिग्वर्ती उस द्वीप के पश्चिम भद्राकर नाम का एक द्वीप है। यह समुद्र से चार हजार योजन दूर है। यह दस हजार योजनों में फैला हुआ है। यह तरह-तरह के पुष्पों से शोभित, धन धान्यों से समृद्ध, अनेक राजाओं द्वारा पालित, सदा प्रसन्न, निर्मल और विशाल पर्वतों से युक्त है। यहाँ वायु देव का नाना रत्नों से मण्डित एक सुन्दर आसन है, जहाँ शरीरधारी - वायुदेव सदा पर्वों में पूजे जाते हैं। वहाँ के लोग तपाये हुए सोने की तरह रंगवाले होते हैं और उसी रंग के भूषण पहनते हैं। वे देवता की तरह शोभित हैं। वे नाना रंग के कपड़े और माला पहनते हैं। वे वीर्यशाली, सत्यप्रतिज्ञ, आनन्द सम्पन्न और वायुपूजक होकर पाँच सौ वर्षों तक जीते हैं।

सूतजी बोले—परम तत्वज्ञ ऋषियों ने जैसा देखा है वैसा ही हमने देशों का स्वभाव सिद्ध वर्णन कर दिया है। अब और आगे हम आप लोगों को क्या कहें? इस प्रकार धीमान् सूतपुत्र द्वारा कहे जाने पर फिर कुछ सुनने की इच्छा से ऋषियों ने पूछा। ।।५१-६८।।

ऋषिगण बोले—हे सत्तम। यह जो भारतवर्ष है, जहाँ प्रजासृष्टि के व्यापार क्रम में स्वायम्भुवादि चौदह मनु उत्पन्न हुए हैं, इसे हम जानने की इच्छा करते हैं कहिये। पवित्रात्मा ऋषियों की बात सुनकर पुराण-पण्डित कथावाचक लोमहर्षणजी स्थिर चित्त से फिर विस्तार के साथ ऋषियों से कहने लगे।

सूतजी बोले—हे द्विजगण! कुरुवर्ष की स्वाभाविक स्थिति को हमने यथार्थ रूप से कह दिया। अब भारतवर्ष के सम्बन्ध में कहते हैं, सुनिये—पूरब से पश्चिम की तरफ लम्बायमान हिमालय पहाड़ के दक्षिण पुण्य तीर्थ भारतवर्ष है। इस देश का जैसा विस्तार है, उसे सुनिये। अब हम आप लोगों को भारतवर्ष की प्रजा का वर्णन करेंगे। यह मध्यम स्थान विचत्र है, शुभाशुभ फलों का यहाँ उदय होता है। समुद्र के उत्तर और हिमालय के दक्षिण जो देश है, वह भारतवर्ष कहलाता है। यहाँ भारती प्रजा रहती है। प्रजाओं का भरण-पोषण करने के कारण यहाँ के मनु भरत कहे गये हैं। भरत नाम की इस प्रकार निरुक्ति होने के कारण यह भारतवर्ष कहलाया। यहीं से स्वर्ग मोक्ष, मध्य तथा अन्त गति प्राप्त होती है। इस स्थान को छोड़कर मृत्युलोक वासियों के लिये दूसरी जगह कहीं कर्म करने की व्यवस्था नहीं है। इस भारतवर्ष के नौ भेद कहे गये हैं। ये नव द्वीप समुद्र से घिरे हुये हैं; अतः परस्पर अगम्य हैं। इन्द्रद्वीप, कसेरु, ताम्रवर्णी, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गंधर्व और वारुण के अतिरिक्त नौवाँ यह भारतवर्ष सागर द्वारा घिरा हुआ है। यह द्वीप दक्षिण से उत्तर हजार योजन का है।

Funding by IKS-MoE

यह कुमारी से लेकर हिमालय तक तिर्यग भाव से उत्तर ओर नं हजार योजन विस्तीर्ण है। यह द्वीप इस प्रकार बसा हुआ है कि, इसके अन्त में म्लेच्छ, पूर्व में किरात, पश्चिमान्त में यवन रहते हैं और मध्य में विभक्त होकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र निवास करते हैं। ये वर्णचतुष्टय यज्ञ, युद्ध एवं व्यापारादि के द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। इन वर्ण चतुष्टयों का अपने-अपने कर्मों में परस्पर व्यवहार धर्म, और काम के अनुरूप होता है। इसी देश में स्वर्ग और अपवर्ग के लिए संकल्पजन्य पाँच आश्रम ? यथाविधि प्रति पालित होते हैं और इन आश्रमों में मनुष्यों की स्वभावतः प्रवृत्ति है। जो यह नवम द्वीप टेढ़ा और लम्बा कहा गया है, उसे जो संम्पूर्ण जीत लेता है, वही यहाँ सम्राट् कहलाता है। वह इस लोक में सम्राट् अन्तरिक्ष में विराट् और अन्यलोक में स्वराट्कहलाता है जो हो हम इसके आगे की बातें विस्तार पूर्वक कहते हैं। सुन्दर पर्व (गाँठ का स्तर) वाले महेन्द्र, मलय, सत्य, शुक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और पारियात्र यहाँ के सात कुल पर्वत हैं। इनके समीप में भी अन्यान्य हजारों पर्वत हैं। ये सभी सब गुणों से युक्त, बृहत विचित्र शिखर सम्पन्न और रमणीय हैं। पर्वतश्रेष्ठ मन्दर, वैहार, दर्दुर, कोलाहल, ससुरस, मैनाक, वैद्युत, पातन्धम, पाडुर, गन्तुप्रस्थ, कृष्णगिरि, गोधनगिरि, पुष्पगिरि, उज्जयन्त, रैवतक, श्रीपर्वत, कारु, कूटशैल आदि अनेक पर्वतों के अतिरिक्त छोटे-छोटे भी कितने ही पहाड़ हैं। इन पर्वतों के पाददेश में कितने ही देश हैं, जहाँ आर्य और म्लेच्छ निवास करते हैं। वे सब इन नदियों का पानी पिया करते हैं—गंगा, सिधु, सरस्वती, शतद्रु, चन्द्रभागा, यमुना, सरयू, इरावती, वितस्ता, विपाशा, देविका कुहू, गोमती, धुतपापा, बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी, तृतीया, गंडकी, निश्चीरा, इक्षु और लोहित। ये नदियाँ हिमालय के पाददेश से निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, वर्णाशा, चन्दना, सतीरा, महती, परा, चर्मण्वती, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा, अवन्ती आदि नदियाँ पारियात्र पहाड़ से निकली हैं। महानद शोण, नर्मदा, सुमहाद्रुमा, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पला, श्रोणी, करतोया, पिशाचिका, नीलोत्पला, विपाशा, जम्बुला, बालुबाहिनी, सितेरजा, शुंक्तिमती, मक्रुणा और त्रिदिवा क्रम से ऋक्ष पर्वत से उत्पन्न हुई हैं और इनका जल मणि के तुल्य है। तापी, पयोष्णी, निर्वन्ध्या, मद्रा, निषधा, वेन्या, वैतरणी, शितिबाहु, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तशिला विन्ध्य के पाद देश से उत्पन्न हुई हैं और ये नदियाँ पुण्य सलिला हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणी, वञ्जुला, तुंगभद्रा, सुप्रयोगा और कावेरी नामकी नदियाँ दक्षिण देश की नदियाँ है और ये सह्य पर्वत के पादमूल से बाहर आयी हैं कृतमाला, ताम्रपर्णी, पुष्यजाती और उत्पलावती मलयाचल से निकली हैं। इन नदियों का जल शीतल और शुभ कारक है। ॥ ८१—१०५ ॥

त्रिसामा, ऋतुकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, लांगूलिनी और वंशधरा महेन्द्र पर्वत से निकली हैं। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कूपा, पलाशिनी, शूक्तिमान् पहाड़ से उत्पन्न हुई हैं। गंगा, सरस्वती आदि सभी नदियाँ समुद्र में जाकर गिरी हैं। ये सभी नदियाँ पवित्र, संसार के पाप को नष्ट करने वाली और संसार की माता स्वरूप हैं। इन नदियों की हजारों-सैकड़ों उपनदियाँ हैं। इनमें कुरु कुरुपांचाल, शाल्व जांगल, शूरसेन, भद्रकार, बोध, सतपथेश्वर, वत्स, सिण्ण, कुल्य, कुन्तल, काशिकोशल, तैलंग और

मगध में बहती हैं। मध्यम प्रदेश के देश प्रायः ये ही कहलाते हैं। सह्यपर्वत के उत्तरार्द्ध में जहाँ गोदावरी नदी बहती है, वह प्रदेश संपूर्ण पृथ्वी में मनोहर है। यहाँ इन्द्र ने गोवर्द्धन नामक स्वर्गपुर का निर्माण किया है। भरद्वाज मुनि ने रामचन्द्र की प्रिय कामना से वहाँ वृक्ष और औषधियों को उगाया है। वह वन रामचन्द्र के अन्तःपुर के उद्देश्य से बनाया गया है, अतः मनोहर बना है। उत्तर की ओर इतने देश हैं—वाह्लीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरीत, शूद्र, पह्लव चर्मखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, भद्रक, शक, रुद्र, कुलिन्द, परित, हारपूरिक, रमट, रद्धकटक, केकय, दशमानिक। ये क्षत्रियोपनिवेश हैं। वैश्य-शूद्र कुलों से युक्त देश काम्बोज, दरद, वर्वर, प्रियलौक्कि, पीन तुषार, पह्लव, वाह्यतोदर, आत्रेय, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरुक, लम्पाक, स्तनय, पीड़िक, जुहुड़, अपग, अलिमद्र, किरातजाति, तोमर, हंसमार्ग, काश्मीर, तंगण, चुलिक, आहुक, और पूर्णदर्व हैं। पूरब दिशा के देशों को सुनिये—आन्ध्रवाक, सुजरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्रवंग, वंग, मालय, मानवर्ती, बहवोत्तर, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमर्थक, प्राग्ज्योतिष, मुण्ड, विदेह, ताम्रलिप्तक, माला, मगध और गोविन्द। इसके बाद दक्षिण दिशा के देश और वहाँ के निवासी ये हैं—पाण्ड्य, केरल, चौल्य, कुल्य, सेतुक, मुषिक, कुमन, वनवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग आभीर, सहचैषीक, आटव्य, वर, पुलिन्द, विन्ध्यमूलिक, वैदर्भ, दण्डक, पौनिक, मौनिक, अस्मक, भोगवर्द्धन, नैर्गिक, कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिद और नलकालिक। इतने तो दक्षिण दिशा के देश हुए, और जो अन्यदेश हैं उन्हें भी सुनिये—सुर्पाकार, कौलवन, दुर्ग, कालितक, पुलेय, सुराल, सपस, तापस, तुरसित, परक्षर, और नासिक्य प्रभृति एवं इनके अतिरिक्त नर्मदानदी के तीरवर्ती आन्यान्य देश—भानुकच्छ, समाहेय, सहस, शाश्वत, कच्छीय, सुराष्ट्र, आनर्त, अर्वुद, और संपरीत। अब विन्ध्याचलस्थ देशों का नाम सुनिये—मालव, करुष, रोकल, उत्कल, उत्तमार्ग, दशार्ण, भोज, किष्कन्धक, तोसल, कोसल, त्रैपुर, वैदिक, तुमुर, तुंबुर, षट्सुर, निषध, अनूप, तुंडिकेर, वीतिहोत्र और अवन्ती। इतने ये देश विन्ध्याचल के पृष्ट देश में अवस्थित हैं। इसके आगे हम अब पहाड़ी देशों को बताते हैं—निगर्हर, हंसमार्ग, क्षुपण, तङ्गण, खस, कुशप्रावरण, हूण, दर्व, सहूदक, त्रिगर्त, मालव, किरात और तामस हैं। विद्वानों ने भारतवर्ष में कृत, त्रेता, द्वापर और कलि नामक चार युग बताये हैं। इनका पूरा परिचय तथा स्वभाव आदि का वर्णन बाद में किया जायगा ऐसा आप लोग समझिये। ॥ १०९—१३७ ॥

श्री वायुमहापुराण का भुवन विन्यास नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४५ ॥

छियालीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—ऋषियों ने इस प्रकार उत्तर सुनकर आनन्द से युक्त होकर कुछ और सुनने की इच्छा से लोमहर्षण से पूछा।

Funding by IKS-MoE

ऋषिगण बोले—जिस प्रकार आपने भारतवर्ष के बारे में बताया है, उसी प्रकार किंपुरुषवर्ष और हरिवर्ष के संबन्ध में भी कहिये। ब्राह्मणों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर उनके निर्दिष्ट प्रश्नों का पुराण-सम्मत याथातथ्य उत्तर देने के लिये सूतजी बोले।

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! आप लोग जो सुनना चाहते हैं उसे आनन्दपूर्वक सुनिये। किंपुरुषवर्ष में नन्दन कानन के समान एक महान प्लक्षखण्ड है। वहाँ के लोगों की आयु दस हजार वर्षों की है। पुरुषों का रंग सोने का-सा होता है और स्त्रियाँ अप्सरा के समान होती हैं। वहाँ तपाये हुये सोने की तरह रंगवाले मानव रोग-शोक से रहित और शुद्ध हृदय के होते हैं। उस पवित्र किंपुरुषवर्ण में मधु बहाने वाला एक प्लक्ष का वृक्ष है, वहाँ के निवासी उसके उत्तम रस को पिया करते हैं। अब किंपुरुष के बाद हरिवर्ष का वर्णन करते हैं। वहाँ के लोगों का रंग चाँदी के समान होता है। वहाँ वाले सभी देवलोक से परिभ्रष्ट हुये हैं; अतः सभी देवस्वरूप हैं। वहाँ के सब लोग ईख का मधुर रस पिया करते हैं। हरिवर्ष में लोग प्रसन्नतापूर्वक आनन्दित हृदय से ग्यारह हजार वर्षों तक जिया करते हैं। वहाँ किसी को भी बुढ़ापा नहीं सताती है और न वहाँ के लोग बड़े ही होते हैं। हमने जो मध्यम इलावृत वर्ण का नाम कहा है, वहाँ सूर्य की किरणें न तो कभी तीक्ष्ण होती हैं और न कोई वहाँ बूढ़ा होता है। इलावृत में चन्द्र-सूर्य और नक्षत्रों का प्रकाश नहीं होता है। वहाँ के लोग पद्म-कान्ति, पद्मवर्ण, पद्मनयन और पद्मपत्र की तरह सुगन्ध धारण करने वाले होते हैं। वहाँ के सभी मनुष्य देवलोक से परिभ्रष्ट हुये हैं अतः अजर और अमर हैं। जो जामुन के फल और रसको खा कर सदा प्रसन्न रहते हैं। स्वयं नियम-बन्धन रचने वाले मनस्वी भागों के उपभोग करनेवाले और सुन्दर कर्म के फल का भोग करने वाले हैं। वे नरोत्तमगण तेरह हजार वर्षों के आयुप्रमाण से उस इलावृतवर्ण में जीवन धारण करते हैं, जो मेरु की प्रति दिशा में नौ हजार योजन विस्तृत है। उसका विस्तार छब्बीस हजार योजनों का है। वह चारों ओर से चौकोर है और शराव की तरह स्थित है। मेरु के पश्चिम भाग में नौ हजार योजन दूर गन्धमादन पर्वत है जो चौंतीस हजार योजनों का है। उत्तर और दक्षिण की ओर वह नील और निषध पर्वतों तक फैला हुआ है एवं पृथ्वीतल से चालीस हजार योजन ऊपर बढ़ा हुआ है। वह हजार योजन पृथ्वी के भीतर धँसा है और उतने ही योजनों में अधिष्ठित है। इसके पूर्व माल्यवान् पर्वत है, जिसका परिमाण कहा जा चुका है। नील के दक्षिण, निषध के उत्तर और पूर्वोक्त पर्वतों के बीच विशालकाय महामेरु स्थित है। वह वैसा जान पड़ता है, मानो सब पर्वत उसमें डूबे हुए हों। उसका विस्तार-प्रमाण नियुत योजन का है। समुद्र वृत्ताकार है और पृथ्वीमंडलस्थ सुमेरु उससे कुछ छोटा है; इसलिये कि चौकोर का विस्तार जब कि वह वृत्ताकार के रूप में परिणत किया जाता है कुछ कम हो जाता है। तब उसका मध्यभाग भी न्यून पड़ जाता है। मेरु के दक्षिण और निषध के उत्तर अंजन की तरह जम्बूरसवती नदी है। वहाँ सुदर्शन नाम का एक पुराना जामुन का वृक्ष है। जिसमें फलफूल सदा लगे रहते हैं और सिद्ध-चारण उसकी सेवा किया करते हैं। उसीके नामानुसार जम्बूद्वीप में एक विशाल वनस्पति है। वह महावृक्ष सौ हजार योजन का है। उसका शिखर स्वर्ग को स्पर्श करता है।

Funding by IKS-MoE

तत्त्वदर्शी ऋषिगण कहते हैं कि इस वृक्ष के प्रत्येक फल का प्रमाण आठ सौ साठ अरत्नि है। ये फल पृथ्वीतल पर गिर कर महान् शब्द उत्पन्न करते हैं और उनका रस नदी बनकर बह निकलता है। यह नदी मेरु की प्रदक्षिणा कर फिर उसी वृक्ष के मूल देश में प्रवेश कर जाती है। वहाँ वाले प्रसन्न होकर जामुन के फल और रस को पिया करते हैं। उस रस को पीने के कारण वे कभी वृद्ध नहीं होते हैं। यही क्यों, रोग, क्रोध और मृत्यु भी उन्हें प्राप्त नहीं होती है। वहाँ देवों के भूषणयोग्य जाम्बूनद नाम का सुवर्ण है, जो इन्द्रगोप कीट की तरह चमकीला होता है। उन सभी वृक्षों का वह शुभ फलरस शुक्र रूप में क्षरित होकर देव भूषणोचित सुवर्ण बन जाता है। उनका मूत्र और पुरीष भी विभागक्रम से सभी दिशाओं में बिखर जाता है। ईश्वर की कृपा से भूमि उस मृत्तिका को ग्रस लेती है। रक्ष, पिशाच और यक्षगण हिमालय पर गन्धर्व और अप्सराएँ हेमकूट पर एवं शेष, वासुकि, तक्षकप्रभृति समस्त नाग निषधाचल पर स्थित हैं। तैंतीस याज्ञिक सुरगण महामेरु के ऊपर भ्रमण करते हैं। वैडूर्यमय नीलाचल पर विशुद्ध ब्रह्मर्षि और सिद्ध लोग रहते हैं। दैत्य और दानवों के लिये श्वेतपर्वत नियत किया गया है। श्रेष्ठ शृङ्गवान पर्वत पितरों का भ्रमणस्थान है। विभागक्रम से अवस्थित इन नवों देशों में गतिशील भूतगण नित्य निवास करते हैं। इन भूतों की वृद्धि देव-मानुष के रूप में अधिकतर देखी जाती है। विशेष अनुसंधान करने पर भी उनकी गणना नहीं की जा सकती है। ॥ ११-३७ ॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक छियालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

सूतजी बोले—हिमालय के वाम पार्श्व में कैलाश नामक पर्वत है। वहाँ श्रीमान् कुबेर राक्षसों के साथ निवास करते हैं। अलकाधिपति वहाँ अप्सराओं के साथ आमोद किया करते हैं। कैलाश पर्वत के पाद देश शरत्कालीन जल के समान पवित्र, सुखद शीतल मन्द नामक जल उत्पन्न होता है। उससे दिव्य और शुभावह मन्दाकिनी नाम की नदी उत्पन्न होती है। उसी के किनारे नन्दन नाम का एक दिव्य महावन है। कैलाश के पूरब-उत्तर ओर दिव्य सत्त्व और औषधियों से युक्त, देवोचित धातुओं से मण्डित और विचित्र सुवर्ण पर्वत के पास शुद्धरत्न के तुल्य चन्द्रप्रभ नाम का एक पर्वत है। उसीके मूलदेश में अच्छोद नाम का सरोवर है। जिस सरोवर से आच्छोदा नाम की नदी निकलती है। इस आच्छोदा के तीर पर एक चैत्ररथ नाम का महादिव्य वन है। उस चन्द्रप्रभ पर्वत पर यक्ष सेनापति मणिभद्र अपने अनुचरों के साथ निवास करते हैं। वहाँ क्रूर प्रकृति गुह्यक भी उसके परिवार की भाँति रहते हैं। पवित्र मन्दाकिनी और आच्छोदा नाम की नदी महिमण्डल के बीच से बहती हुई महासमुद्र में प्रविष्ट हुई है। कैलाश के दक्षिण

Funding by IKS-MoE

पश्चिम शिवभक्त जीवों और औषधियों से युक्त, मनःशिलामण्डित एवं विशाल और दिव्य जो पिशाङ्गपर्वत है, उसके आसपास सुवर्णश्रृङ्ग से युक्त रक्तवर्ण का सूर्यप्रभ नामक एक महान् पर्वत है। उसीके मूलदेश में लोहित नामक महादिव्य सरोवर है। इसी सरोवर से लौहित्य नामक एक पुण्यशील महानद प्रवाहित हुआ है। उसीके तट पर विशोक नामक एक महावन है, जो देवों का लीलावन है। उसी पर्वत पर जितेन्द्रिय मणिवर नामक कोई यक्ष निवास करता है, जो शान्त धार्मिक गुह्यकों से पारिवारिक सद्भाव रखता है। कैलाश के दक्षिण भाग में क्रूर जीव और औषधों से युक्त एवं तीन शिखरवाले वृत्रासुर की देह से उत्पन्न अंजनाचल के समीप सर्वधातु संपन्न वैद्युत नामका एक महान् पर्वत है, जिसके मूलदेश में सिद्धसेवित और पवित्र मानस नाम का सरोवर है। इससे लोकपावनी पवित्र सरयू प्रवाहित हुई है, जिसके तीर पर वैभ्राज नाम का एक दिव्य वन है। वहाँ एक अत्यन्त पराक्रमी ब्रह्मपात नामक राक्षस निवास करता है। वह कुबेर का अनुचर और प्रहेता का पुत्र है। वह स्वयं इन्द्रियजित् और अन्तरिक्षगामी सैकड़ों भयानक निशिचरों से घिरा रहता है। कैलाश के पश्चिम प्रान्त में मुख्य-मुख्य जीवों और औषधियों से युक्त एक सुवर्णमय अरुण नामक श्रेष्ठ पर्वत है, जिसके पास सुवर्णमय, विशुभ्र शिलाओं से आच्छन्न, मेघतुल्य, शिव-प्रिय श्रीमान् पर्वत अवस्थित है। शतसंख्यक हेमश्रृङ्गों से युक्त यह स्वर्ग को छू रहा है। यह दुर्गम विशाल पर्वत देव-भोग्य और हिममय है। इस पर्वत पर गिरीश धूम्रलोहित निवास करते हैं। उस पर्वत के मूलदेश में शैलोद नामक सरोवर उत्पन्न हुआ है, जिससे दिव्य शैलोदा नाम की एक नदी निकलती है। यह चक्षु और सीता नामकी नदियोंके मध्य से लवण-सागर में प्रविष्ट हुई है। उसके तीर पर दिव्य और प्रसिद्ध सुरभि नामक वन है। कैलाश के उत्तर मङ्गलमय प्राणी और औषधियों से युक्त गौर नामक एक पर्वत है। हरितालमय इस पर्वत के शिखर सुवर्णमय हैं। वह एक महान् स्वर्गीय मणिमय पर्वत है। उसके पाददेश में एक रमणीय सुवर्ण-बालुकामय बिन्दु सरोवर है, जहाँ राजा भागीरथ गये हुए थे। उस राजर्षि ने गङ्गा के लिये वहाँ बहुत दिनों तक इसलिये निवास किया था कि गंगाजल से पवित्र होकर उनके पूर्वज स्वर्गगमन करें। गङ्गा-देवी वहाँ पहले से ही प्रतिष्ठित थीं। यह सोमपाद से उत्पन्न होकर सात भागों में विभक्त हुई हैं। वहाँ मणिमय यज्ञयूप और सोने की चितियाँ हैं। वहाँ इन्द्र ने सब देवों के साथ मिलकर यज्ञ कर स्वर्ग प्राप्त किया था। अन्तरिक्ष में नक्षत्र मण्डल के बीच रात में जो चमकीला छायापथ दीख पड़ता है, वह त्रिपथगा ही है। वही त्रिपथगा जब अन्तरिक्ष और स्वर्ग को प्लावित करती हुई पृथ्वी पर आई, तब वह पहले महादेव के ही सिर पर गिरी और महादेव ने उसे योगमाया से वहीं रोक रखा। क्रोध से तमतमाई गङ्गा की जो कुछ बूँदें उछलकर पृथ्वी पर गिरीं, उन्हीं से विन्दुसर बन गया। गंगा मन में कह रही थीं कि, मैं अपने प्रवाहवेग में शङ्कर को बहाती हुई सब कुछ तोड़तीफोड़ती पाताल चली जाऊँगी। महादेव गंगा देवी के क्रूर कर्म और अभिप्राय को समझ कर वेग से पृथ्वी पर गिरनेवाली गंगा को सिरपर रोक रखा। उस नदी के गर्व को समझ कर महादेव क्रुद्ध हो गये और उसे अपने सिर में ही छिपा लेना चाहा। इसी बीच महादेवने राजा भगीरथ को सामने खड़ा देखा, जिसकी धमनी क्षीण हो चली थी और भूख से इन्द्रिय

विकल हो रही थीं। गंगा के निमित्त राजा ने पहले ही महादेव को प्रसन्न कर लिया था; अतः उनके वरदान का ध्यान कर महादेव ने क्रोध को शान्त कर दिया। इसी बीच ब्रह्मा ने भी महादेव को प्रतिज्ञा-पालन के लिये स्मरण कराया। तब उन्होंने अपने तेजसे निरुद्ध गंगा नदी को छोड़ दिया; क्योंकि कठोर तपस्या के द्वारा वे सन्तुष्ट भगीरथ की भलाई करने के लिये कृतसंकल्प थे। छूटनेपर गंगा सात धाराओं में बहीं। उनमें तीन धाराएँ पूरब की ओर और तीन पच्छिम की ओर चलीं। इस प्रकार गंगा का स्रोत सात भागों में विभक्त हुआ। नलिनी, ह्लादिनी और पावनी नामक तीन धाराएँ पूरबकी तरफ गयीं एवं सीता, चक्षु और सिन्धु नामक तीन धाराएँ पच्छिम को। सातवीं धारा भगीरथ के पीछे दक्षिण तरफ चली। इसलिये उस धारा का नाम भागीरथी हुआ और वह लवण-सागर में प्रविष्ट हुई। ये सातों धाराएँ हिमवर्ष को प्लावित करती हैं। ये कल्याणी सातों नदियाँ विन्दुसर से उत्पन्न हुई हैं। ये विविध म्लेच्छ देशों को सर्वथा प्लावित करती हैं। ये सभी वहाँ जाती हैं, जहाँ मेघ बरसता रहता है, जैसे सिरीन्ध्र, कुन्तल, चीन, बर्वर, हवन, द्रुह, रुषाण, कुलिन्द और श्रेष्ठ अङ्गलोक। सिन्धु और अरु को दो टुकड़ों में विभक्त कर सीता नदी पशिचम समुद्र में गिरी है चीन, अरु, तङ्गन, सर्गमूलिक, अन्धु, तुषार, स्तम्पाक, पह्लव, दरद और शक नामक जनपद को प्लावित करके चक्षु समुद्र में गिरी है। दरद, काश्मीर, गांधार, वरप, ह्रद, शिवपौर, इन्द्रहास, वदाति, विसर्जय, सैन्धव, रन्धूकरक, भ्रमर, आभीर, रोहक, शुनामुख, ऊर्द्ध्व मनु, सिद्धचारणसेवित देश, गन्धर्वकिन्नरयक्ष-राक्षस-विद्याधर-उरग आदि के निवास देश, कलापग्राम, पारद, सीगण, खस, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पांचाल, काशि, मत्स्य, मगध, अंग, ब्रह्मोत्तर, वंग और ताम्रलिप्त आदि शुभ आर्य देशों को प्लावित करती है। फिर वह विन्ध्य पर्वत से टकरा कर दक्षिण सागर में प्रवेश करती है। वहाँ से वह पवित्र आह्लादिनी धारा पूरब की ओर बहती है। कितने ही देशों और निषधों, धीवरों, ऋषिकों, नीलमुखों, केरलों, उष्ट्रकर्णों, किरातों, कालोदरों, विवर्णों और स्वर्णभूषित कुमारों को प्लावित करती हुई वह समुद्रमण्डल में पूर्व की ओर विलीन हो गई है। पार्वती धारा भी पूरब दिशा को ही बही है। यह अपथों को, इन्द्रद्युम्न सरोवर को, खरापथ को, इन्द्रशङ्कुपथ को और कुथप्रावरण प्रभृति स्थानों को प्लावित करती हुई इन्द्रद्वीप समुद्र के निकट लवण-सागर में प्रविष्ट हुई है। नलिनी भी पूरब की ओर वेग से बहती है। यह भी तोमर, हंसमार्ग, हुहुक और अन्यान्य पूर्वीय देशों को प्लावित करती हुई, अनेकानेक पर्वतों को फोड़ती हुई, कर्णप्रावरण, अश्वमुख, सिकतापर्वत, अरु प्रभृति स्थानों में गमन करती हुई विद्याधर के देश में उपस्थित हुई है। यह नेमिमण्डल कोष्ठ के पास महासागर में प्रविष्ट हुई है। इन नदियों की सैकड़ों हजारों उपनदियाँ हैं। वे इनसे ही निकल कर फिर इनमें ही इस प्रकार मिलती हैं, जिस प्रकार मेघ समुद्र से जल लेकर बरसाता है और वह जल फिर समुद्र में ही मिल जाता है। वस्वोकसा के तीर पर प्रसिद्ध सुरभि वन में हरिशृङ्ग के ऊपर विद्वान् वशी कौबेरक रहते हैं। वहाँ जितेन्द्रिय यज्ञोपेत, अमितौजा, सुमहान और सुविक्रम नामक कुबेर के चार अनुचर निवास करते हैं। ये अगस्त्य वंशीय विद्वान् ब्रह्मराक्षसों द्वारा सेवित और कुबेर के ही समान है।

Funding by IKS-MoE

पर्वतवासियों की समृद्धि इसी प्रकार प्रसिद्ध है। वे धर्म, अर्थ और काम के सम्बन्ध में परस्पर द्विगुणित समृद्धि-सम्पन्न हैं। हेमकूट के पीछे सायन नामक एक सरोवर है, जिससे मनस्विनी ज्योतिष्मती उत्पन्न हुई है। यह आगे पीछे दोनों ही भागों से पूर्व-पश्चिम समुद्रों में प्रवेश करती है। पर्वतोत्तम निषध पर विष्णुपद नामक सरोवर है। इससे गान्धर्वी और नलवली नामक नदियाँ निकली हैं। मेरु के पीछे चन्द्रप्रभ नामक एक महान ह्रद है। वहाँ पाविनी जाम्बू नदी बहती है, जिसमें शुभावह सुवर्ण होता है। नीलाचल पर शुभ्र पुण्डरीक युक्त पयोद नाम का सरोवर है। उसीसे पुण्डरीका और पयोदा नामकी नदियाँ निकली हैं। श्वेत पर्वत से उत्तर मानस नामक पुण्य सरोवर उत्पन्न हुआ है। ज्योत्स्ना और मृगकान्ता नामक नदियाँ उससे निकली हैं। भवदेव द्वारा निर्मित रुद्रकान्त नामक वहाँ एक और सरोवर है, जो मधु रस से परिपूर्ण, पद्म-मीन-पक्षियों से युक्त, कल्पवृक्षों से व्याप्त, सुखसम्पन्न और पवित्र है। और भी पद्म-मीन-पक्षियों से युक्त यहाँ कितने ही ह्रद हैं। वे सब जय कहलाते हैं और मालूम पड़ते हैं जैसे बारह समुद्र हों। उनसे शान्ती और माध्वी नामक दो नदियाँ निकली हैं। किंपुरुषादि देशों में वृष्टि नहीं होती है। वहाँ की श्रेष्ठ नदियाँ उद्भिज्ज जलराशि को बहाया करती हैं। ये भाग्यशालिनी नदियाँ पूरब की तरफ लम्बी होकर लवण-सागर में गिरी हैं। ऋषभ, दुन्दुभि, महागिरि धूम्र, चन्द्रकंक तथा प्राणादि शिलोच्चयों के उत्तर बहती हुई ये नदियाँ उत्तरी सीमा तक जाकर महासमुद्र में गिरी हैं। सोमक, वराह और नारद नामक महीधर पश्चिम और लम्बायमान होते हुए लवणसागर में मिल गये हैं। बक, बलाहक, और मैनाक पर्वत दक्षिण दिशामें लम्बायमान होकर दक्षिण सागरमें मिलगये हैं, दक्षिण दिशा में चन्द्र और मैनाक पर्वत के बीच संवर्तक नामक एक अग्नि है, जो समुद्रजल को पिया करता है। इस अग्नि का नामान्तर समुद्रप, वड़वामुख और श्रीमान और्व है। ये बारह पर्वत इस भय से कि कहीं इन्द्र उनके पक्ष न काट डालें लवणोदधि में प्रविष्ट हैं। श्वेत चन्द्र में यह जो काला शशांक देखा जाता है, वह नवधा भिन्न भारतवर्ष का ही प्रतिबिम्ब है। इस देश में ही उदित चन्द्र के मध्य यह देखा जाता है, दूसरी जगह नहीं। उत्तरोत्तर क्रम से इन देशवासियों के प्राणी आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ और काम आदि गुणों में उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्व देशस्थ लोगों की अपेक्षा अधिक समृद्ध हैं। नाना जातियों के प्राणिसमूह उल्लिखित देशों में निवास करते हैं। इसी प्रकार यह पृथ्वी सम्पूर्ण विश्व को अपने वक्षस्थल पर लोकस्थिति के लिये धारण करती है। ३४-८०

श्री वायु महापुराण में भुवनविन्यास नामक सैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

भुवनविन्यास

सूतजी बोले—भारतवर्ष के दक्षिण दस हजार योजन का एक महासागर है जिसमें तीन हजार योजन विस्तीर्ण तीन भागों में विभक्त एक द्वीप है ज नाना भाँति के फल पुष्पों से समृद्ध है। वहाँ विद्युद्वान्

Funding by IKS-MoE

नामक एक महाशैल कुल पर्वत है, जिसके अनेक शिखरों से वह द्वीप सुशोभित है। वहाँ हजारों नदियाँ हैं, जिनका जल निर्मल और सुस्वादु है। उस द्वीप की वापियों का जल भी निर्मल है। उस पर्वत के अनेकों विस्तीर्ण और चौड़े दर्रों में विभिन्न वर्ण और आकृति के अनेकों प्रसन्न हृदय स्त्री-पुरुष रहा करते हैं। उस पर्वत के बीच तलदेश में उनके सैकड़ों-हजारों पुर हैं, जो परस्पर एक में एक मिले और एक ही द्वार वाले हैं। वहाँ वाले बड़ी-बड़ी दाढ़ी और मूँछ रखते हैं तथा मेघ के समान नीलवर्ण के होते हैं। और सभी अस्सी वर्ष की आयु वाले होते हैं। वानरों की तरह फल-मूल खाकर जीवन-यापन करते हैं और पशुओं की तरह शौच आदि आचार-विचार से विहीन हैं। इस प्रकार के असभ्य मनुष्यों से वह द्वीप परिपूर्ण है। इसी प्रकार इन अन्तर द्वीपों के विषय में यथा क्रम वर्णन किया गया है। ये बीस, तीस, पचास, साठ सौ और हजार योजनों लंबे चौड़े अन्तर द्वीप हैं। वहाँ भाँति-भाँति के प्राणी निवास करते हैं। जम्बू द्वीप में विविध वस्तुओं को धारण करने वाले और भी छः द्वीप, वर्हिण द्वीप-पुञ्ज तथा हजारों क्षुद्र द्वीप भी हैं। यहाँ के द्वीप पृथ्वीतल में विविध रत्नों को धारण करने के कारण विख्यात हैं। कुछ द्वीपों के नाम हैं—अंग, यम, मलय, शङ्ख, कुश और बराह। अंगद्वीप नाना प्राणी-संघ से व्याप्त, विभिन्न म्लेच्छों से युक्त और अत्यन्त विस्तृत है। वहाँ पृथ्वीतल में सुवर्ण-विद्रुम आदि रत्नों की खाने हैं। वह नदी, शैल और वनों से सुशोभित एवं लवण सागर की तरह है। जिसकी गुफा में नाना प्रकार के जीव निवास करते हैं। नाग देश के मध्य में वह महागिरि अनेक प्रदेशों में फैला है। उसके कटि देश में अनेकों पर्वत हैं जो समुद्र तक फैले हुए हैं। यमद्वीप के नाम से जो द्वीप कहा गया है। वह भी नाना रत्नों की खानों से पूर्ण है, वहाँ धातुओं से मण्डित द्युतिमान् नाम का एक पर्वत है। इसी पर्वत से वहां की नद-नदियां निकलती हैं और सुवर्ण भी इसी से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार मलय द्वीप भी है। वहां मणि, रत्न और सुवर्ण की खानें हैं। चन्दन के वृक्ष भी अधिकाधिक होते हैं और समुद्र भी वहां अनेकों हैं। उस द्वीप में विभिन्न प्राकार के म्लेच्छ रहते हैं और नदी-पर्वतों से वह द्वीप भरा हुआ है। वहाँ मलय नामक एक शोभासम्पन्न पर्वत है, जिसमें चाँदी की खानें हैं महामलय नाम का भी एक विख्यात और श्रेष्ठ पर्वत है। दूसरा मन्दर नाम का एक पर्वत है, जो इस पृथ्वी तल पर विख्यात है। यह रमणीय पर्वत अनेक फल-पुष्पों से युक्त, है जहाँ देवर्षि निवास करते हैं। यहाँ अगस्त्य ऋषि का भवन है, जिसकी वन्दना देवता और असुर दोनों ही किया करते हैं। मलय की ही तरह वहाँ एक और कांचनपाद नाम का पर्वत है, जहाँ महात्माओं के अनेक आश्रम हैं जो निकुंज, तृण और सोमलता से बने हुए हैं। वह पर्वत नानाविध फलपुष्पों से युक्त और स्वर्ग से भी बढ़ा-चढ़ा है। वहाँ प्रत्येक पर्वत पर मानो स्वर्ग सदा उतरा करता है। इसके अनन्तर वहाँ नाना धातुओंसे विभूषित त्रिकूट पर्वत है, जिसके शिखर अनेक योजन ऊँचे हैं जिनमें गृह के तुल्य अनेक विचित्र कन्दराएँ हैं। इस त्रिकूट के रमणीय शिखर पर सुवर्णमय परकोटे, तोरणों से सजाये गए द्वारों, वलभियों, कोठो और अटारियों से सुशोभित सौ योजन लंबी तथा तीस योजन चौड़ी लंका नामक महापुरी है। यह पुरी धन धान्य से समृद्ध और प्रसन्न नर नारियों से स्वयं हंसती सी जान

Funding by IKS-MoE

पड़ती है। यह लंका इच्छानुरूप स्वरूप धारण करने वाले देवशत्रु बलशाली महात्मा राक्षसों का निवासस्थान है। यहाँ कोई राक्षसों को बाधा नहीं पहुँचा सकता। मनुष्य लोग इस महापुरी में किसी भी प्रकार नहीं जा सकते हैं। उस द्वीप के पूर्वी समुद्रतट पर गोकर्ण महादेव का विशाल मन्दिर है। ॥ १–३० ॥

इसके बाद शङ्खद्वीप में सौ योजन विस्तीर्ण एक विशाल राज्य है जहाँ बहुतेरे म्लेच्छों का निवासस्थान है। वहाँ निर्मल धुले शङ्ख की तरह उज्वल एक शङ्खगिरि नामक पवित्र पर्वत है। उस पर विविध रत्नों की खानें हैं, जिस पर पुण्यशाली जन निवास करते हैं। उसी पर्वत से शङ्खनागा नाम की एक पवित्र नदी निकली है। जहाँ शङ्खमुख नामक नागराज निवास करते हैं। कुमुदद्वीप में तरह-तरह के फूल खिले रहते हैं। अनेकानेक ग्राम और रत्नों की अनेकों खानें हैं। वहाँ महादेव की महाभागा कुमुदा नाम की भगिनी हैं जो अपनी ज्योति के कारण सर्वपूजित हैं। जिनके दर्शन से चित्त दोष दूर हो जाते हैं। वाराह द्वीप में नाना प्रकार के म्लेच्छ लोग और कितनी ही जाति के लोग शहर-गाँवों में घर बनाकर बसे हुए हैं। वह द्वीप धन-धान्यों से समृद्ध और धार्मिक जनों से व्याप्त है। वहाँ नदी-पर्वत-वनों से रमणीय और फल पुष्पों से युक्त मनोहर शिला वाला एक वाराह नाम का पर्वत है, जिसमें अनेक कन्दरा, दरी, गुहा और झरने हैं। उससे निर्मल जल वाली वाराही नाम की पवित्र तीर्थ तथा तरङ्ग धारण करने वाली नदी निकली है। वाराह रूपधारी विष्णु को ही वहां की प्रजा नमस्कार करती है और किसी भी देव को नहीं। इस प्रकार मैंने चारों दिशाओं में वर्तमान छः अनुद्वीपों का वर्णन किया। भारतद्वीप दक्षिण दिशा में अति विस्तीर्ण द्वीप है। इस एक ही भारतवर्ष में कितने ही द्वीप हैं, जो समुद्र से पृथक होकर कितने ही भागों मे विभक्त हो गये हैं। इस प्रकार अन्तर द्वीप से सुशोभित चार महाद्वीप हैं। अनुद्वीपों के साथ जम्बू द्वीप का वर्णन मैंने पहले ही कर दिया है। ॥३१–४३॥

श्री वायु महापुराण का भुवनविन्यास नामक अड़तालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४८ ॥

उनचासवाँ अध्याय

भुवन विन्यास

सूतजी बोले—ब्राह्मणो! अब मैं अपने ज्ञान के अनुसार प्लक्ष द्वीप का उसी के अनुरुप रहस्यमय वर्णन कर कहा हूँ, आप लोग सुनें। जम्बू द्वीप से प्लक्ष द्वीप का विस्तार दुगुना है और उसकी अपेक्षा इसकी सीमा की लम्बाई तिगुनी अधिक है। लवण सागर को यह द्वीप चारों ओर से घेरे हुए है। यहाँ के निवासी अत्यन्त पवित्र और दीर्घायु होते हैं। न वहाँ दुर्भिक्ष होता है और न किसी को बुढ़ापा या रोग सताता है। वहाँ मणियों से भूषित शुभ्र वर्ण के सात पर्वत और रत्नों को उत्पन्न करने वाली नदियाँ हैं। इनके नामों को भी कह रहा हूँ, सुनिये। इन प्लक्षआदि सात द्वीपों में सीधे-सीधे और

Funding by IKS-MoE

बड़े-बड़े सात पर्वत चारों ओर वर्तमान हैं। पहले हम प्लक्ष द्वीप के सातों महाचलों को कहेंगे। यहा मेघ के तुल्य पहला गोमेदक नाम का पर्वत है। उसी के नाम पर वह देश गोमेदक कहलाता है। दूसरे पर्वत का नाम है चन्द्र। इस पर सब औषधियाँ मिलती हैं। अमृत के लिये सब औषधियाँ यहाँ अश्विनी कुमारों के द्वारा स्थापित हुई हैं। तीसरे पर्वत का नाम नारद है। यह ऊँचा पर्वत दुर्गशैल नाम से भी प्रसिद्ध है। इसी पहाड़ पर पूर्व काल में नारद और पर्वत ऋषि उत्पन्न हुए थे। चौथे पर्वत का नाम है दुन्दुभि। इसी पर्वत पर पहले देवों ने वह नगाड़ा बजाया था, जिसकी ध्वनि सुनते ही जीव मर जाते थे। रज्जुदार, और शाल्मल आदि असुर यहीं मारे गये हैं। पांचवाँ सोमक नामक पर्वत है, जिसपर प्राचीन काल में देवों ने अमृत रखा था और गरुड़ ने उसे अपनी माता के लिये हर लिया था। छठें पर्वत का नाम सुमना या ऋषभ है। यहीं वराह भगवान ने हिरण्याक्ष को मारा था। सातवें पर्वत का नाम है वैभ्राज। यह महा पर्वत दीप्तिमान् और स्फटिकमय है। अपनी प्रभा से ही भासमान होने के कारण इसका नाम वैभ्राज पड़ा। वहाँ के देशों को भी हम यथाक्रम कहते हैं। प्रथम गोमेद पर्वत का प्रदेश शान्तमय कहा गया है। चन्द्रका शिखर, नारद का सुखोदय, दुन्दुभि का आनन्द, सोम का शिव, ऋषभका क्षेमक और वैभ्राज का प्रदेश ध्रुव कहा गया। इन स्थानों में देव गन्धर्व सिद्ध और चारणगण रमण करते हुए और विहरते हुए देखे जाते हैं। इन सातों देशों में समुद्र गामिनी सात नदियाँ हैं। इन महा नदियों को सप्त गंगा कहते हैं। इनके नाम हैं—अनुतप्ता, सुतप्ता, निष्पापा, मुदिता, ऋतु, अमृत और सुकृता। ये सातों द्वीप सब नदियों में श्रेष्ठ हैं। इनमें हजारों नदियाँ निकल कर बहती रहती हैं। ये नदियाँ विपुल जलवाली और वेगवती हैं इसलिये कि देवराज यहीं अधिक वृष्टि किया करते हैं। वहाँ के निवासी उन्हीं नदियों के जल को पीकर प्रसन्न रहते हैं। शुभ, शान्तवहा, प्रमोदा, शिवा, आनन्दा, ध्रुवा और क्षेम का यथाक्रम से उन देशों की नदियाँ हैं। यहाँ की प्रजा वर्णाश्रम धर्म से युक्त, नीरोग, बलिष्ठ और आधिव्याधि से रहित हैं। उनके विचार न अत्युच्च है और न अति नीच। प्लक्ष आदि पाँच द्वीपों में सदा त्रेता युग के समान काल व्यतीत होता है। वहाँ सत्ययुग आदि चारों युग नहीं होते हैं। देशाचार और काल-महात्म्य से वहाँ के निवासी पाँच हजार वर्ष जीवित रहते हैं। वहाँ वाले सुरूप, सुवेष, नीरोग और बली होते हैं। प्लक्ष आदि द्वीपों की ही भांति शाक द्वीप में भी सुख, आयु, बल, रुप आरोग्य आदि सभी गुण-धर्म हैं। श्रीसम्पन्न प्लक्ष द्वीप, कीर्तिमान, और धन धान्य से सभी प्रकार पूर्ण है। ब्राह्मणो! प्लक्ष द्वीप दिव्यौषधि, और फलों से युक्त तथा सर्वौषधि वनस्पतियों से पूर्ण है। हजारों ग्राम्य और जंगली पशु वहां पाये जाते हैं। जम्बू वृक्ष की ही तरह उस देश के भी मध्य में प्लक्ष नामक एक महा वृक्ष है। उसी के नाम से वह प्लक्ष द्वीप कहलाता है। उस देश के पूज्य देवता हैं स्थाणु। बह प्लक्ष द्वीप ईख-रस के सागर से घिरा हुआ है। ब्राह्मणो! आप लोगों के निकट हमने प्लक्ष द्वीप की विपुलता और देश विभाग को विस्तार के साथ कह दिया। अब शाल्मल द्वीप का वर्णन संक्षेप में सुनिये॥ १–२९॥

Funding by IKS-MoE

द्वीपों में उत्तम तीसरा शाल्मल द्वीप है । ईख रस के सागर को यह शाल्मल द्वीप घेरे हुए है । प्लक्ष द्वीप से यह दुगना अधिक बड़ा है । यहाँ भी रत्नों को उत्पन्न करने वाले सात पर्वत हैं और उन सातों बर्ष-पर्वतों से रत्न को उत्पन्न करने वाली सात नदियां निकली हैं । पहला सूर्य की तरह तेजोमय कुमुद पर्वत है । इसके अनेक धातुमय शिखरों से अनेकानेक शिलामालायें उत्पन्न हुई हैं । दूसरा पर्वत उन्नत नाम से विख्यात है । इसके आकाश छूने वाले शिखर हरिताल के हैं । तीसरे पर्वत का नाम वलाहक है । यह अपने अञ्जनतुल्य शिखरों से आकाश को छू रहा है । चौथे पर्वत का नाम द्रोण है । इस पर विशल्यकरणी और मृत संजीवनी आदि बलदायिनी औषधियाँ हैं । पाँचवें पर्वत का नाम कंक है । यह दिव्य फल-पुष्प वाले वृक्षों और लताओं से घिरा हुआ है । छठां मेघ की तरह महिष नाम का पर्वत है । इस पर जल से उत्पन्न महिष नामक अग्नि निवास करते हैं । सातवें ककुद्मान नामक रत्नमय पर्वत पर वासव उस समय स्वयं वर्षा करते हैं जब कि प्रजापति पहले पहल प्रजा उत्पन्न करना चाहते हैं । शाल्मल द्वीप में ये ही सात मणिभूषित पर्वत हैं यहाँ के सातों शुभ देशों को भी अब बता रहे हैं । कुमुद का देश श्वेत, उन्नत का लोहित, वलाहक का जीमूत, द्रोण का हरित, कंक का वैद्युत, महिष का मानस और ककुद का सुप्रभ देश है । ये सातों सात भागों में विभक्त हैं । इतने ही देश और पर्वत हैं । अब नदियों का नाम सुनिये । पाणितोया, वितृष्णा, चन्द्रा, शुक्रा, विमोचनी और निवृत्ति, ये ही सात नदियाँ उन देशों की हैं । श्रद्धेय ब्रह्मणो ! उन नदियों के समीप में बहनेवाली और भी सैकड़ों हजारों नदियाँ हैं । उनकी गणना नहीं की जा सकती हैं । इस प्रकार शाल्मल द्वीप की स्थिति के विषय में आप लोगों को कह दिया । प्लक्ष वृक्ष की ही तरह यहाँ भी बीच में सेमल (शाल्मलि) का एक वृक्ष है, जिसका तना खूब-मोटा है । इसीके नाम से यह देश शाल्मल द्वीप कहलाता है । यह द्वीप सुरासागर से चारों ओर घिरा हुआ है और विस्तार में भी चारों ओर से शाल्मलि के ही अनुरूप है । ॥३०-४५॥

धर्मज्ञ ब्राह्मणो ! इससे उत्तर द्वीप में प्रजागण जिस प्रकार निवास करते हैं, उसको जैसा हमने सुना है, वैसा ही कहते हैं, सुनिये । चौथे कुश द्वीप का वर्णन हम संक्षेप में कहते हैं । यह कुशद्वीप चारों ओर से सुरासागर को घेरे हुए है । यहाँ भी सात पर्वत हैं । उनका वर्णन सुनिये । शाल्मल द्वीप से यह दूना बड़ा है । कुश द्वीप का पहला पर्वत विद्रुमोच्चय है, दूसरा हेम पर्वत, तीसरा मेघसदृश द्युतिमान् गिरि, चौथा पुष्पवान् , पाँचवा कुशेशय; छठाँ हरिगिरि और सातवाँ मन्दराचल है । जल का एक नाम मन्दा है और जल का भेदन कर यह पर्वत निकला है, इसी से इसका नाम मन्दर पड़ा है । इन पर्वतों के बीच का विस्तार दूने परिमाण का है । पहला उद्भिद, दूसरा वेणुमण्डल, तीसरा स्वैरथाकार, चौथा लवण, पाँचवाँ धृतिमान् , छठाँ प्रभाकर, सातवाँ कपिल नामक देश वहाँ बसे हैं । इन पर्वतों या पार्वत्य प्रदेशों में ईश्वरीय शक्तिसम्पन्न देव-गन्धर्व रमण करते और विहरते हुए देखे जाते हैं इन देशों में दस्यु या म्लेच्छ कोई भी नहीं हैं । वहाँ के निवासी गौर वर्ण के होते हैं और उनकी मृत्यु क्रमानुसार ही होती है । वहाँ भी पापों को दूर करनेवाली और शुभ सात नदियाँ हैं । जिनकी शाखा नदियाँ भी पवित्र हैं । वहाँ की मृत्तिका

Funding by IKS-MoE

पवित्र और पृथ्वी तेजोमय है । इन नदियों से और भी सैकड़ों-हजारों नदियाँ निकली हैं । इन नदियों में वासव सदा बरसते रहते हैं, इसी से ये सदा बहा करती हैं । यह कुश द्वीप घृतसागर से चतुर्दिक् घिरा हुआ है । उसका विस्तार भी कुशद्वीप के समान है । इस प्रकार हमने कुश द्वीप की स्थिति को कह दिया । ॥४५-५६॥

इसके बाद अब हम क्रौंच द्वीप के विस्तार को कहते हैं । कुशद्वीप से यह क्रौंचद्वीप दूना बड़ा है । यह द्वीप घृत सागर को घेरे हुये है । इस द्वीप का पहला पर्वत क्रौंच है और यह सबसे श्रेष्ठ है । क्रौंच के बाद वामनक, वामनक के बाद अन्धकारक, अन्धकारक के बाद दिवावृत, दिवावृत के बाद दिविन्द, दिविन्द के बाद पुण्डरीक और पुण्डरीक के बाद दुन्दुभिस्वन नामक पर्वत है । क्रौंचद्वीप के ये सातों पर्वत रत्नमय हैं । इन पर्वतों पर अनेक फल-पुष्पवाले वृक्ष और लताएँ हैं । इन पर्वतों के मध्य की भूमि क्रमशः दूनी अधिक है । यहाँ के देशों के नाम को भी कहते हैं, सुनिये । क्रौंच का देश कुशल है, वामन का मनोनुग, मनोनुग के बाद तीसरा देश उष्ण, उष्ण के बाद प्रावरक, प्रावरक के बाद अन्धकारक, अन्धकारक के बाद मुनिदेश और मुनिदेश के बाद दुम्दुभिस्वन नामक देश हैं । ये देश सिद्ध-चारणों से भरे हैं और यहाँ के निवासी गौर वर्ण के होते हैं । यहाँ भी सातों देशों में गौरी, कुमुद्वती, सन्ध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका ये सातों नदियाँ बहती हैं । इन नदियों के समीप में बहनेवाली और भी कितनी ही अधिक जलवाली बड़ी-बड़ी नदियाँ हैं, जो समुद्र में जाकर गिरती हैं । क्रौंचद्वीप दधिमण्डोदक समुद्र से घिरा हुआ है । यह समुद्र भी क्रौंचद्वीप के ही बराबर है । प्लक्ष आदि इतने द्वीपों का वर्णन हमने संक्षेप से कर दिया । इन द्वीपों की स्वाभाविक अवस्था का क्रमिक वर्णन और प्रजाजन की उत्पत्ति या संहार का विस्तार के साथ सांगोपांग वर्णन सौ वर्षों में भी नहीं किया जा सकता है ।

इसके अनन्तर अब हम शाकद्वीप का वर्णन करते हैं । सम्पूर्ण शाकदीप के विषय में जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त है, उसे हम यथार्थ रूप से कहते हैं, आप सब सुनें । क्रौंचदीप से शाक दीप दूना बड़ा है । दधिमण्डोदक समुद्र को यह घेरे हुए है । वहाँ के निवासी पवित्र और चिरायु होते हैं । वहाँ न दुर्भिक्ष होता है और न रोग-शोक का हो भय होता है । मणियों से भूषित शुभ्र वर्ण के सात पर्वत हैं और मणियों को उत्पन्न करनेवालीं नदियाँ हैं । इनके नामों को हमसे सुनिये । देवर्षियों और गन्धर्वों से युक्त प्रथम मेरु नामक पर्वत है । दूसरा सुवर्णमय उदय नामक पर्वत है । यह पूरब की ओर लम्बा है । यहाँ ही मेघ उत्पन्न होते हैं और वृष्टि करने के लिये दूसरे स्थानों को जाते हैं । उसके पश्चात् विशालकाय जलधार नामक महागिरि है । इसी पर्वत से वासव अत्युत्तम जल को नित्यग्रहण करते हैं और वर्षाकाल में प्रजाजन के बीच उसे बरसाते हैं । जलधार के बाद रैवतक नामक पर्वत है । इस पर्वत पर रेवती नक्षत्र सदा वर्तमान रहता है । यह स्वर्ग के समान है और पितामह ब्रह्मा के द्वारा बनाया गया है । रैवतक के बाद अति विशाल श्याम नामक महागिरि है । यहीं प्रजाओं ने सबसे पहले श्यामता को पाई है । इस गिरि के बाद बृहदाकार अस्तगिरि है । यह चाँदी का पर्वत है । हिममय और दुर्गम आम्बिकेय पर्वत अस्तगिरि के बाद स्थित है ।

आम्बिकेय पर्वत के बाद सम्पूर्ण ओषधियों से युक्त रम्य पर्वत है। इस पर्वत को लोग केशरी भी कहते हैं। वायु यहीं से बहा करती है। अब यहाँ के प्रदेशों का भी अक्षरशः वर्णन और नाम सुनिये। उदय का जलद, जलधार का सुकुमार, रैवतक का कौमार, श्याम का मणीचक्र, अस्त का शुभ कुसुमोत्तर और आम्बिकेय का मोदाक और केशर का महाद्रुम वर्ष या देश है। इस द्वीप के बड़े-छोटे का परिमाण भी शाकद्वीप के ही समान है। इसके बीच एक विख्यात वनस्पति है, जिसका नाम शाक है। वहाँ वाले इस वृक्ष को आदर की दृष्टि से देखते हैं। देवता, गन्धर्व सिद्ध, चारण आदि इन स्थानों में विहार और रमण किया करते हैं। वहाँ के पवित्र देशों में चारों वर्णों के लोग बसे हुए हैं। वहाँ के सातों देशों में सात नदियाँ हैं, जो समुद्र की ओर बहा करती हैं। वे नदियाँ सप्त गंगा कहलाती हैं। उनके नामों को सुनिये। पहली शिवजला सुकुमारी गंगा है। यह नदी अनुतप्ता नाम से भी विख्यात है। इसी प्रकार दूसरी कुमारी या सिद्धा, तीसरी नन्दा या पार्वती, चौथी शिवेतिका या त्रिदिवा, पाँचवीं इक्षु या ऋतु, छठी धेनुका या मृता। ये सप्त गंगा नाम की नदियाँ वहाँ प्रति देश में कल्याणकारक जल को धारण कर बहा करती हैं और शाकद्वीपियों को पवित्र किया करती हैं। विपुल जल को धारण करनेवाली हजारों नदियाँ इनमें सम्मिलित हुई हैं; क्योंकि मेघ यहाँ सदा वृष्टि किया करते हैं। इन नदियों के नामों और परिमाणों का वर्णन नहीं किया जा सकता है; किन्तु वे सभी नदियाँ श्रेष्ठ और पवित्र हैं। इन नदियों के जल को पीकर वहाँ वाले सदा प्रसन्न रहा करते हैं। शांशपायन! नदियों के जल से आवृत और मेघतुल्य पर्वतों से घिरा हुआ यह विस्तीर्ण द्वीप चक्र की तरह स्थित है। विविध धातुओं से विचित्र, मणि-विद्रुमों से मण्डित, विविध भाँति के समृद्ध पुरों और देशों से तथा फल-फूल वाले वृक्षों से धनधान्यवान शाकद्वीप चारों ओर से क्षीरसागर से घिरा हुआ है। इस सागर का विस्तार शाकद्वीप के ही समान है। पर्वतों के अन्तराल में बसे हुए वहाँ के पवित्र देशों की संख्या सात है। वहाँ सभी वर्णाश्रम धर्म के पालन करनेवाले हैं। न वहाँ कोई वर्णसंकर है न कोई वर्णाश्रम धर्म का उल्लंघन करता है। वहाँ व्यभिचार का नाम तक नहीं है; अतः धर्म का पालन करने के कारण वहाँ की प्रजा अत्यन्त सुखी है। वहाँ के लोगों को न लोभ है, न माया, न ईर्ष्या, न डाह, न अधीरता है और न कर्त्तव्य संकरता। ऐसा ही उन लोगों का स्वभाव है। वहाँ वाले कर (मालगुजारी) नहीं देते। उन लोगों को न कोई दंड देता है और न कोई दंड देनेवाला ही है। वे सब धर्म को जानते हैं, अतः धार्मिक आचार-विचार के ही द्वारा वे एक दूसरे की रक्षा करते हैं। शाकद्वीपवासियों का वर्णन यहाँ तक मैंने अपनी ज्ञानशक्ति के अनुसार किया।

सातवाँ पुष्कर द्वीप है। इसके सम्बन्ध में भी कहते हैं, सुनिये। पुष्कर द्वीप से क्षीरसागर चारों ओर घिरा हुआ है। यह शाकद्वीप से दुगुना बड़ा है। इस द्वीप में शोभा सम्पन्न एक महाशिल नाम का पर्वत है, जिसके समुन्नत शैलशिखर मणियों द्वारा चित्रित है। इस द्वीप के पूर्वार्द्ध भाग में इसका एक विचित्र सानुदेश (चोटी) स्थित है, जिसका घेरा या विस्तार पचीस हजार योजन का है और ऊँचाई चौंतीस हजार योजन की। द्वीपार्द्ध के परिमाण के बराबर एक उत्तम मानस पर्वत है, जो समुद्र तट पर उगे हुए

नवीन चन्द्रमा की भाँति वर्तमान है। यह पचास हजार योजन ऊँचा है और इसका घेरा या विस्तार भी उतना ही है। इस द्वीप के पश्चात् अर्द्ध भाग में पृथ्वी को धारण करनेवाला मानस पर्वत है। इसे एक ही विशालकाय शिखर है, जो देश भेद से दो भागों में विभक्त है। मीठे जलवाले समुद्र से यह घिरा हुआ है। पुष्करद्वीप के विस्तार के अनुरूप ही उसका भी विस्तार है। इस द्वीप में पवित्र और शुभकारक दो देश हैं। ये दोनों देश मानस पर्वत के निम्नभाग में मण्डलाकार अवस्थित हैं। मानस के बाहर जो देश है, वह महावीत कहलाता है और जो देश भीतर है, वह धातकी खण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। वहाँ लोग दस हजार वर्ष तक जीते हैं। वहाँ के लोगों को मानसी सिद्धि प्राप्त है। वे सभी नीरोग तथा सुखी हैं। उन दोनों देशों के लोग आयु तथा रूप में एक समान ही हैं। वहाँ ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं है। रूप-स्वभाव में सभी बराबर हैं। वहाँ न वंचकता है, न वचना है, न डाह, न चोरी, न भय, न बल-प्रयोग, न दण्ड, न लोभ है और न दान आदि की समस्या। पुष्करद्वीप के दोनों देशों में सच-झूठ, धर्म-अधर्म, वर्णाश्रम विषयक बात, पशुपालन, क्रय-विक्रय त्रयी विद्या, दण्डनीति, सेवावृत्ति और दुर्वाक्य या शस्त्र प्रयोग की समस्या नहीं है। वहाँ न नदी है, न वर्षा होती है, न गर्मी-सर्दी है, न उद्भिज्ज, न जल है और न झरने हैं। वहाँ का काल सदा उत्तर कुरु की तरह रहता है। वहाँ सर्वत्र सुख ही सुख है। लोगों को न थकावट आती है और न बुढ़ापा ही। पुष्करद्वीप के महावीत और धातकी खण्ड का इस प्रकार हमने क्रम से सम्पूर्ण वर्णन कर दिया। सुस्वादु दधिसागर से यह पुष्कर सागर घिरा हुआ है। विस्तार और घेरे में यह पुष्कर द्वीप के ही बराबर है। इस प्रकार सातों द्वीप सात समुद्रों से घिरे हुए हैं। द्वीपों को जो समुद्र घेरे हुए हैं, वे उसीके बराबर हैं। द्वीपों और समुद्रों की परस्पर वृद्धि या संस्थान इसी प्रकार का होता है। जल का समुद्रेक या वृद्धि होने के कारण सागरों का नाम समुद्र पड़ा है। चातुर्वर्ण्य प्रजा और ऋषिगण देश में निवास करते हैं इसलिए देश को वर्ष कहते हैं। यह वर्ष प्रजाजन को सुख देनेवाला होता है। जिस प्रकार ऋष् धातु से ऋषि शब्द बना है, उसी प्रकार शक्तिप्रबन्धन-बोधक वृष् धातु से वर्ष पद सिद्ध होता है। वृष शब्द से ही "वर्ष" हुआ है। शुक्लपक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि के अनुसार समुद्र बढ़ता है और कृष्णपक्ष में जब चन्द्रमा क्षीण होते हैं, तब समुद्र भी घटता है। समुद्र स्वतः अपने को जल से भरता है और जब उसका जल घटता है, तब भी उसीमें समाकर रह जाता है। वर्तन में रखा हुआ जल आग पर चढ़ाये जाने से जैसे खौलकर बढ़ जाता है, उसी प्रकार समुद्र का जल भी बढ़ता है। शुक्ल और कृष्णपक्ष में चन्द्रमा के उदय और अस्त के हिसाब से नियमपूर्वक—न कम न अधिक जल बढ़ा करता है। सारांश यह है कि, चन्द्रमा की क्षय-वृद्धि के अनुसार ही समुद्र के जल का भी क्षय और वृद्धि होती है। पर्वों में समुद्र का जल एक सौ पन्द्रह अंगुल तक बढ़कर घटा करता है, ऐसा देखा गया है। दोनों ओर जल बहने के कारण और सभी तरफ जल से घिरे रहने के कारण द्वीपों की "द्वीप" संज्ञा पड़ी है। जिस कारण समुद्र में जल रहा करता है, इसीलिए उसे उदधि कहते हैं। बिना पर्व गाँठ या स्तर-वाले गिरि कहलाते हैं और पर्ववाले पर्वत कहलाते हैं। इसी नियम के अनुसार प्लक्षद्वीप में जो गोमेद है, वह पर्वत है। शाल्मलद्वीप में

शाल्मलि नामक महावृक्ष पूज्य है। कुशद्वीप में कुश नामक तृण है; अतः उसीके नाम पर वह द्वीप कुशद्वीप कहलाता है। क्रौंच द्वीप के मध्यदेश में क्रौंच नामक पहाड़ है। शाकद्वीप में शाकवृक्ष है, अतः वह शाकद्वीप कहलाता है। पुष्करद्वीप में एक वटवृक्ष है, जिसकी वन्दना सब किया करते हैं। यहाँ त्रिभुवनेश्वर महादेव और ब्रह्मा पूजित होते हैं। वहाँ साध्यों के साथ प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं और तैंतीस महर्षियों के साथ देवगण उपासना किया करते हैं। वहाँ देवों के द्वारा देवाधिदेव ब्रह्मा पूजित होते हैं। जम्बूद्वीप में विविध भाँति के रत्न उत्पन्न होते हैं। उक्त समस्त द्वीपों में प्रजागण क्रमशः सर्वज्ञता धारण करके ब्रह्मचर्य, सत्य और दम के द्वारा आरोग्य तथा द्विगुण आयु प्राप्त करते हैं। इस पुष्करद्वीप में हमने जिन दो देशों को बताया है, उनकी रक्षा वहाँ के साधु स्वभाव प्रजागण स्वयं करते हैं। विष्णु, शिव, सूर्य और पितरों के साथ स्वयं ब्रह्मा दण्डविधान से वहाँ का शासन करते हैं। वहाँ वाले बिना प्रयत्न के ही षड्रस और बलशाली भोजन प्राप्त करते हैं। यह पुष्करद्वीप स्वादु जलवाले समुद्र से घिरा हुआ है। इसके आगे एक बड़ी भारी कांचनपुरी है, जहाँ की भूमि एक शिला की तरह सम और घनी बसी हुई है। इसके आगे सीमान्त में एक पर्वत है, फिर मण्डल है। उसके बाद लोकालोक है, जिसकी एक दिशा में प्रकाश और दूसरी दिशा में अन्धकार है। आलोक पूरब की दिशा में और अन्धकार पश्चिम दिशा में है। यह दस हजार योजन ऊँचा है। इसका विस्तार भी उतना ही है। पृथ्वी के बीच यह पर्वत इच्छाधीन गति वाला है। इसकी जिस दिशा में आलोक है, उसीको लक्ष्य कर लोक शब्द बना है। अन्धकारवाले भाग की ओर भी लोक हैं। आलोक के ही कारण लोक हुआ है। अन्धकार बाहर है। बाहर में भी जहाँ तक आलोक है, वहाँ तक लोकों का विस्तार है। इसके बाद जल के द्वारा सब ढँका हुआ है। निरालोक के बाद जो भाग है, वह अण्ड लोक मण्डल ब्रह्मा को ढँके हुए है। अण्ड के मध्य में यही सातों द्वीप वाली पृथ्वी है, इसके अतिरिक्त, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक भी हैं। लोकों के विषय में इतना ही ज्ञान प्राप्त है, इसलिए इतने ही लोकों को समझना चाहिए। इसके बाद कुछ भी नहीं है। ॥९०—१४९॥

पश्चिम दिशा में जिस प्रकार शुक्लपक्ष की प्रतिपदा को चन्द्रमा कुम्भस्थायी होकर रहते हैं, उसी प्रकार अण्ड का शरीर है। इस प्रकार के हजारों करोड़ों अण्ड हैं, जो अव्ययात्मा कारण के ऊपर, नीचे और बीच में स्थित हैं। ये प्रत्येक सात-सात प्रकृत कारणों द्वारा आवृत हैं। इनमें एक दूसरे से दस गुने बड़े हैं और हरएक दूसरे को धारण किये हुए और ढँके हुए हैं; क्योंकि सभी एक दूसरे की सहायता से उत्पन्न हुए हैं। इन अण्डों के चारों ओर घनीभूत सागर इस प्रकार अवस्थित है कि उसके जल द्वारा ही सभी धारण कर लिए गये हैं और इस घनीभूत जल का भी जो ऊँचा या तिरछा मण्डल है, वह बाहर की ओर से घनीभूत तेज के द्वारा धारण कर लिया गया है। यही क्यों लौहगोलक की तरह मण्डलाकार होकर अग्नि इसके चारों ओर है, जो घनीभूत वायु के आधार पर स्थित है। इसी घनीभूत वायु ने आकाश को भी धारण किया है। आकाश भूतादि महान् को और महान् भूतादि को धारण किये हुए है और यह महान् अव्यक्त

Funding by IKS-MoE

अनन्त द्वारा व्याप्त है। यह अपरिव्यक्त अनन्त दस प्रकार का है—सूक्ष्म, अकृतात्मा अनादिनिधन, असीम, घोर, अनालम्ब, अनामय, बहु सहस्र योजन दूरस्थ, अन्धकाराच्छन्न, अन्धकार की भाँति अदर्शनीय, निःसीम, अदेशिक, देवों के द्वारा भी अविदित और व्यवहार-रहित। अन्धकार के अन्त में और आकाश के शेष भाग में अर्थात् सीमा प्रान्त में शिव का एक देदीप्यमान विख्यात आयतन या मन्दिर है। वह दिव्य स्थान है, जहाँ देवगण भी नहीं जा सकते हैं। देवाधिदेव महादेव के आयतन की सीमा में चन्द्र-सूर्य की किरण से प्रतप्त जो लोक हैं, उन्हें पण्डित लोने जागतिक लोक कहते हैं। द्विजगण! पृथ्वी में रसातल के ऊपर या नीचे सात-सात लोक हैं। ब्रह्मसदन पर्यन्त वायु के सात स्कन्ध हैं। वहाँ पाताल से लेकर स्वर्गपर्यन्त वायु की गति पाँच प्रकार की है। यही जगत् का प्रमाण है और यही संसार-सागर कहलाता है। अनेक जातियों की उद्भव-भूमि यह अनादि-अनन्त जगत्परम्परा इसी प्रकार चलती रहती है। जगत की यह अस्थिर प्रवृत्ति सचमुच विचित्र है। इसकी भौतिक सृष्टि का अत्यधिक विस्तार है, जिसे अतीन्द्रिय महाभाग सिद्धगण भी नहीं जान सकते हैं। ब्राह्मणो! इस जगत में अग्नि, वायु, महान्, तम, ईश्वर और देव अनन्त का क्षय, परिणाम या अन्त नहीं होता है। ये सभी स्थानों में अनन्तनाम से अभिहित हैं। नामों के वर्णन-प्रसङ्ग में हमने पहले ही इस सम्बन्ध में कह दिया है। जो शिव नाम से प्रसिद्ध हैं, उनके नामानुकीर्तन-प्रसङ्ग में हमने विस्तार के साथ कह दिया है। ये ही सर्वगामी हैं और सभी स्थानों में अर्थात् भूमि, रसातल, आकाश, पवन, अग्नि, समुद्र और स्वर्ग में पूजित होते हैं, इसमें कुछ संशय नहीं है। ऐसा जाना जाता है कि, ये तपस्या में रत हैं और महाद्युति-सम्पन्न हैं। ये ही महायोगी प्रभु महेश्वर अनेक रूपों में विभक्त होकर सभी लोकों में लोकेश नाम से पूजित होते हैं। जिस प्रकार विकार विकारी को धारण करता है, उसी प्रकार आधाराधेय भाव से परस्पर उत्पन्न लोक एक दूसरे को धारण करता है। पृथ्वी आदि वैकारिक पदार्थ परस्पर परिच्छिन्न अर्थात् अलग-अलग हैं; किन्तु एक दूसरे से महान् होने पर भी आपस में मिले हुए हैं। जिस कारण वे परस्पर मिले हुए हैं; उसी कारण से उन्होंने स्थिरता भी पाई है। पहले ये सामान्य रूप से वर्तमान थे, पीछे परस्पर संनिवेश करने के लिए अर्थात् मिलने के लिए वे विशेष भाव से स्थिर हुए। पृथ्वी से लेकर वायुपर्यन्त तीनों विकार पृथक् हैं। इन तीनों का पार्थक्य परस्पर गुणों के अपचय के अनुसार है। शेष विकारों का पार्थक्य सूक्ष्मता के कारण नहीं जाना जाता है। उन भूतों से परे एक आलोक है। आलोकमय आकाश में सभी भूत उसी प्रकार भेदभाव से स्थित हैं, जैसे बड़े पात्र में छोटा पात्र ढँक जाता है और दूसरे की अपेक्षा एक हीन मालूम पड़ता है। उसी प्रकार आलोकमय आकाश में पृथ्वी अदि भूतों का भेद जाना जाता हैं। ये चारों भूत परस्पर एक दूसरे क्रमशः से अधिक हैं। जितने भूत हैं या प्राणी हैं, उतनी ही सृष्टि है। जन्तुओं का संस्कार स्थूल भूत के ही अनुसार कहा गया है। पंचभून के बिना कार्यों की उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिए महदादि जितने कार्यात्मक भेद देखे जाते हैं वे सभी कारणात्मक हैं। कार्य और कार्यात्मक भेदों को परिच्छिन्न समझना चाहिए। ब्राह्मणो! इस प्रकार हमने सातों द्वीपों और समुद्रोंवाली पृथ्वी का विभाग और संनिवेश (कैसे बसी हुई है)

Funding by IKS-MoE

यथार्थ रूप से बता दिया। विस्तार और मंडल की परिसंख्या से विश्वरूपिणी प्रकृति का यह आंशिक परिमाण हुआ। यह समस्त जगत उसी जगत को उत्पन्न करनेवाले ईश्वर का निवास-स्थान है। इस प्रकार भूतगण इन सातो लोकों में परस्पर आश्रित हैं। लोक सन्निवेश के विषय में इतना ही कहने की शक्ति रखता हूँ। पार्थिव! आप भी मुझसे इतना ही सुनने की इच्छा करें। जिन सातों प्रकृतियों ने परस्पर एक दूसरे को धारण किया है और जो ऊपर, नीचे या बीच में अनेकानेक प्रकृतियाँ हैं, उनमें से कुछ का थोड़ा सा वर्णन मैं यहाँ करता हूँ। ताराओं का संनिवेश और जितने दिव्य मंडल हैं तथा सीमाप्रान्त में जितने भूमि के अनुमंडलों के संनिवेश हैं, उन सबके संबन्ध में मैं अब आगे कहूँगा। ॥१५०-१८६॥

श्री वायु महापुराण में भुवनविन्यास नामक उनचासवाँ अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

पचासवाँ अध्याय

ज्योतिष्प्रचार

सूतजी बोले—अब पृथ्वी के नीचे और ऊपर के भागों का प्रमाण सुनिये। यह पृथ्वी मृत्तिका, वायु, आकाश, जल और ज्योतिःस्वरूप पंचभूतों से परिव्याप्त है। ये ही अनन्त धातुओं के कारण हैं और व्यापक कहे गये हैं। सभी भूतों को धारण करनेवाली यह पृथ्वी सम्पूर्ण जीवों की जननी है। इस पर अनेकानेक देश, नगर और भवन हैं। अपरिमित नद नदियाँ, पहाड़ और अनगिनत जातियों के जीवों से यह बड़ी लम्बी-चौड़ी पृथ्वी व्याप्त है। इस पृथ्वी देवी का अन्त नहीं है। नदी, नद, समुद्र, क्षुद्र जलाशय, पर्वत, आकाश और भूमि के नीचे सर्वत्र जल विद्यमान है; इसीलिए इसे अनंन्त समझना चाहिए। सार्वलौकिक अग्नि सब का उत्पादक और व्यापक है; अतः इसे भी अनन्त कहते हैं। इसके अनन्तर आकाश निरालम्ब है, रमणीय है और नानाविध वस्तुओं का आश्रय है; अतः यह भी अनन्त कहा गया है और आकाश से उत्पन्न होनेवाली वायु भी अनन्त है। पृथ्वी के ऊपर जल और जल के ऊपर पृथ्वी है, फिर आकाश है। आकाश के नीचे पृथ्वी है, फिर जल है। इस प्रकार अनन्तानन्त भौतिक सृष्टियाँ हैं। प्राचीन काल में देवों ने निश्चय करके ऐसा ही मत प्रकट किया है। सप्तम रसातल पर्यन्त पहले भूमि है फिर जल है तब आकाश है। इसी परम्परा से लोक-स्थिति समझनी चाहिए। दस हजार योजन की एक रसातल भूमि है। पण्डितों ने अत्यन्त विस्तार के साथ प्रत्येक की व्याख्या की है। प्रथम अतल, द्वितीय सुतल, तदनन्तर अत्यन्त विस्तृत वितल है। वितल के बाद गभस्तल फिर महातल है। उसके अनन्तर श्रीतल है और सातवाँ पाताल कहा गया है। पहले भूमि भाग की मृत्तिका कृष्णवर्ण की है, दूसरे की पाण्डुवर्ण, तीसरे की रक्तवर्ण, चौथे की पीतवर्ण, पाँचवें की शक्कर के रंग की, छठें का भूमिभाग शिलामय और

Funding by IKS-MoE

सातवें का तलप्रदेश सुवर्ण के रंग का है । इनमें प्रथम के निम्नदेश में भयङ्कर शब्द करनेवाले इन्द्रशत्रु नमुचि का निवास स्थान और मन्दिर है । इस तरह प्रथम कृष्णभौम के तल देश में शङ्कुकर्ण का पुर, कबन्ध का मन्दिर, प्रसन्न जनों से व्याप्त निष्कुलाद का पुर है और भीम राक्षस तथा शूलदन्त का भी नगर है । इसके अतिरिक्त लोहिताक्ष, कलिङ्ग, श्वापद, धनंजय, महात्मा महेन्द्र, कालिय नाग और कलस आदि अनेक नाग, दानव और राक्षसों के हजारों पुर हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । ब्राह्मणो ! दूसरे तल में भी पहले ही विशलक्ष दैत्येन्द्र महाजम्भ का नगर है । हयग्रीव, कृष्ण, निकुम्भ, शङ्ख, गोमुख, नीलराक्षस, मेघ, क्रथन, कुकुपाद, महोष्णीष, कम्बलनाग, अश्वतर, कद्रुपुत्र महात्मा तक्षक आदि नाग, दानव, और राक्षसों के दूसरे पाण्डुभौमतल में हजारों पुर, नगर और आलय हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । ॥१—२४॥

तीसरे तल में महात्मा प्रह्लाद और दैत्येन्द्र महात्मा अनुह्लाद का पुर है । वहाँ तारक और त्रिशिरा के पुर हैं तथा प्रसन्न जनों से युक्त शिशुमार का भी पुर है । च्यवन राक्षस का मन्दिर भी वहीं है तथा खर और राक्षसेन्द्र कुम्भिल के भी वहाँ पुर हैं । विराध, क्रूर और उल्कामुख के पुर तथा हेमक और पाण्डुरक नाग के भी वहाँ पुर हैं । वहाँ मणिमन्त्र का पुर, कपिल का मन्दिर तथा उरगपति नन्द और विशाल के भी मन्दिर हैं । ब्राह्मणो ! इस तीसरे पीत-भौमतल में नाग, दानव, राक्षसों के हजारों पुर हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है । चौथे तल में दैत्यसिंह महात्मा कालनेमिका, गजकर्ण एवं कुंजर का नगर है । वहाँ राक्षसेन्द्र सुमालि का एक विस्तीर्ण पुर तथा लोकनाथ मुंज और वृकवक्त्र के आलय हैं । इसी चौथे रसातल में वैनतेय गरुड़ का हजारों योजन लंबा-चौड़ा एक नगर है, जो पक्षियों से भरा हुआ है । पाँचवें अनेक योजन विस्तीर्ण शर्कराभौम में दैत्यसिंह धीमान् विरोचन का नगर है । वैदूर्य, अग्निजिह्व, हिरण्याक्ष, धीमान् राक्षस विद्युज्जिह्व, महामेघ और राक्षसेन्द्र शालि के भी पुर वहीं हैं । इसके अनन्तर कर्मार, स्वस्तिक और जय नामक नाग वहाँ निवास करते हैं । इस प्रकार पाँचवें शक्कर की तरह मृत्तिकावाले तल में नाग, दानव, राक्षसों के हजारों पुर हैं । ॥२५—३७॥

छठें तल में दैत्यपति केसरि का उत्तम नगर है । वहाँ सुपर्वा, पुलोमा और महिष के नगर एवं महात्मा उत्क्रोश राक्षस का भी पुर वहीं है । शतशीर्ष सुरसापुत्र वहाँ आनन्द से रहा करते हैं और कश्यपतनय श्रीमान् वासुकि नामक नागराज भी निवास करते हैं । इस प्रकार शिलाभौम नामक छठें रसातल में नाग, दानव, राक्षसों के हजारों पुर हैं । सब के पच्छिम या पीछे सातवाँ पाताल तल है । यहाँ बलि का नर-नारियों से युक्त आनन्ददायक नगर है । यह असुरों तथा नागों से पूर्ण और उत्कट देवशत्रुओं से व्याप्त है । यहीं मुचुकुन्द दैत्य का महानगर है । यह तल दितिपुत्रों के अनेकानेक विशाल पुरों तथा धनसम्पन्न हजारों नाग नगरों एवं दैत्य-दानवों के बड़े-बड़े महापुरों से और राक्षसों के अनेकानेक विशाल भवनों से भरा पड़ा है । हे ब्राह्मणो ! बहुयोजन विस्तीर्ण पाताल के अन्त में सर्पगण निवास करते हैं । ये महात्मा कुण्डली लाल कमल की तरह आँखवाले, अजर-अमर, धौत शंख की तरह (उज्ज्वल) शरीरवाले, नील वस्त्र को धारण करनेवाले और विचित्र माला को धारण करनेवाले हैं । ये विशाल भुजावाले और विशाल

शरीर वाले हैं। ये कान्तिमान् प्रभु कुण्डली, निर्मल, सुवर्ण शृङ्गमय, और प्रदीप्त हजारों मुखों से वहाँ सुशोभित रहते हैं। ये नागराज अग्नि की चंचल शिखा की तरह अनगिनत जिह्वाओं से ज्वाला-माला को फेंकते रहने के कारण कैलास की तरह दीख पड़ते हैं। चिकने शरीर से (कुंडली बाँधे हुए) नागराज बाल सूर्य की तरह ताम्रवर्ण वाले अपने दो हजार नेत्रों से वहाँ सुशोभित हो रहे हैं। कुन्द और इन्दु के समान उज्ज्वल नागराज के नयनों की पंक्ति उसी तरह बिराजती है, जैसे श्वेत पर्वत के मस्तक पर तरुण सूर्य की पंक्ति। जिस समय ये सोते या बैठते हैं, उस समय द्युतिमान नागराज जटाओं के द्वारा अत्यन्त भयङ्कर मालूम पड़ते हैं। उस समय ऐसा जान पड़ता है कि, मानो हजार शिखरवाला विशाल पर्वत पृथ्वी पर पड़ा है। विशाल शरीर, महाभाग्य, अतुलबल और महानाग होने के कारण वह महातेजस्वी महानागपति सबके द्वारा पूजित हो रहे हैं। सभी नागों के राजा वे महाद्युतिमान् शेष भगवान् हैं। यह विष्णु का ही सर्परूपी शरीर है, जो पृथ्वी की सीमा पर स्थित है। देव, असुर महानाग और राक्षसों के निवास से युक्त व्यावहारिक सातों रसातलों का ऐसा ही वर्णन है। इसके आगे ऐसे स्थान हैं जहाँ पर न तो साधु ही जा सकते हैं, न तो देवता। यहाँ तक कि वे अब तक न तो सिद्धों द्वारा देखे ही गए हैं और न तो देवता ही उनको जान पाये हैं। ब्राह्मणो! महर्षिगण पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु और आकाश का महत्त्व इसी प्रकार बताते हैं, इसमें सन्देह नहीं। ॥३६–५५॥

इसके आगे अब हम सूर्य और चन्द्र की गति बतलाते हैं। ये चन्द्र और सूर्य अपने मण्डल (कक्षा) में वर्तमान रह कर सदा घूमते रहते हैं और अपनी प्रभा से प्रकाश किया करते हैं। सातों समुद्रों और द्वीपों का वही विस्तार है, जो पृथ्वी का है। चन्द्र-सूर्य बहिर्भागस्थ परिधि परिमाण में प्रकाश करते हैं। यह आकाशमण्डल भूमि के परिधि परिमाण के समान है। घूमते हुए सूर्य जिस कारण तीनों लोकों को प्रकाशित करते हैं; इस कारण प्रकाशार्थक 'अव' धातु से प्रकाश करने के कारण 'रवि' शब्द बना है। इसके आगे अब हम चन्द्र-सूर्य के प्रमाण को कहते हैं। इस भारतवर्ष में मही शब्द 'महितत्वात्' अर्थात् पूज्यत्व के कारण निपातन से सिद्ध हुआ है। इस भारतवर्ष का विस्तार सूर्य के विस्तृत मण्डल के समान है। अब इसके बाद इनके विस्तार का प्रमाण सुनिये।। सूर्य का विस्तार नौ हजार योजन है। इस विस्तार से इनके मण्डल की विशालता तीन गुनी अधिक है एवं सूर्य से चन्द्रमंडल का विस्तार दुगुना अधिक है। अब हम सातों द्वीपों और समुद्रों वाली पृथ्वी का विस्तार और मंडल-प्रमाण योजनों में कहते हैं। वर्तमान अभिमानी देवों द्वारा संख्यात और पुराणानुमोदित जो परिमाण है, उसे ही हम कह रहे हैं। वर्तमान कालिक देवगण रूपों और नामों में अतीत अभिमानी देवों के ही समान हैं। इसलिये वर्तमान कालिक देवों के साथ पृथ्वीतल और आकाश के संनिवेश को पूर्ण रूप से कह रहे हैं। मेरुमध्य से चारों ओर इस सम्पूर्ण पृथ्वी का विस्तार-प्रमाण पचास करोड़ योजन है। पृथ्वी का बाध विस्तार मेरुमध्य से एक योजन आगे से कहा गया है और मेरु के मध्य में प्रत्येक ओर करोड़ योजन कहा गया है। फिर पृथ्वी का बाध विस्तार एक करोड़ पचास हजार नवासी योजन है। पृथ्वी के संपूर्ण विस्तार को योजनों में सुनिये। चतुर्दिक् इसका विस्तार तीन

Funding by IKS-MoE

करोड़ एक लाख उनासी हजार योजन है। सातों द्वीपों और समुद्रों वाली पृथ्वी का यही विस्तार है। पृथ्वी के अन्त का मंडल इस विस्तार से तिगुना अधिक है। इस प्रकार गिना गया है कि, समण्डल पृथ्वी का विस्तार ग्यारह करोड़ एक लाख सैंतीस योजन है। इस प्रकार पृथ्वी के अन्त तक के मंडल की नाप की गई है। आकाश में जहाँ तक तारागण और उनका मंडल है, पृथ्वी के सन्निवेश का मंडल भी वहाँ तक कहा गया है। भूमि के विस्तार-परिमाण के ही अनुसार आकाश का भी परिमाण है। सातों लोकों का ऐसा ही मान कहा गया है। पर्याप्त परिमाण के अनुसार मंडलानुक्रम से सातों लोक छत्र की तरह ऊपर-ऊपर घेरे हुए हैं। इन्हीं लोकों में सभी जन्तु रहा करते हैं। अंण्डकटाह का यही प्रमाण कहा गया है। इस अंडकटाह के मध्य में ही सप्तद्वीपा मेदिनी है। सातों लोकों के नाम इस प्रकार हैं—भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक। ये सातों लोक छत्राकार रूप से अवस्थित हैं। ये सातों लोक अपने सूक्ष्म आवरणों से आवृत होकर पृथक्-पृथक् स्थित हैं। ये बहिः स्थित आवरण परस्पर दस-दस गुना अधिक हैं। ये परस्पर उत्पन्न हुए हैं; किन्तु एक से दूसरा विशेषता लिए हुए है और इन्हींके द्वारा सातों लोकों का धारण हो रहा है। इस अंडे के चारों ओर घनीभूत समुद्र है। इसी सघन जल के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी का धारण किया गया है। इस घनीभूत समुद्र के बाद सघन तेज है। बाहर से यह घनीभूत तेज नीचे ऊपर मंडलाकार होकर पृथ्वी को धारण करता है। इके बाद चारों ओर घनीभूत वायु है, जिसके द्वारा भी पृथ्वीमंडल का धारण किया गया है। घनीभूत वायु के बाद महा आकाश है। इस महा आकाश के द्वारा निखिल भूतादि आवृत हैं और भूतादि के द्वारा आकाश घिरा हुआ है। एवं यह महा आकाश प्रधान अव्ययात्मा अनन्त के द्वारा आवृत है। ॥५५–८५॥

अब हम यथाक्रम से लोकपालों के पुर का और ग्रह-नक्षत्रादि के गतिविषयक प्रमाण को कहते हैं। मेरु से पूरब और मानस के शिखर प॰ धनधान्यपूर्ण और सुवर्ण की तरह परिष्कृत पवित्र इन्द्रपुरी है। मेरु से दक्षिण और मानस के शिखर पर ही संयमन नामक पुर में वैवस्वत यमराज निवास करते हैं। मेरु से पश्चिम और मानस के शिखर पर ही वरुण देवता की रमणीय सुखा नामक पुरी है। मेरु से उत्तर और मानस के शिखर पर इन्द्रनगरी के समान सोम की विभावरी नामक पुरी है। मानस के उत्तरीय गंडशैल पर चारों ओर लोकपालगण धर्म की व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए और लोकों की रक्षा करने के लिए टिके हुए हैं। लोकपालों से ऊपर रहनेवाले सूर्य जब दाक्षिणायन हो जाते हैं, तब उस दिशा में वर्तमान सूर्य की जो गति है, उसे सुनिये। दक्षिण दिशा में सूर्य की गति धनुष से फेंके गये बाण की तरह हो जाती है। उस समय सूर्य-मंडल के साथ-साथ ज्योतिष्चक्र भी साथ-साथ चलने लगता है। जब सूर्य अमरावती के बीचोबीच आ जाते हैं तब यमराज के संयमन पुर में सूर्योदय होता है। जब सूर्य सुखा पुरी में आ जाते हैं, तब वहाँ आधी रात हो जाती है। वरुण देवता की इसी सुखा पुरी से सूर्य का उदय देखा जाता है। सूर्य के विभावरी नगरी में जाने से आधीरात और इन्द्रपुरी में जाने से अस्त काल होता है। उस समय दक्षिण-पूर्व दिशा में अपराह्ण और इस दक्षिण दिशा में अपर देशों में पूर्वाह्ण हो जाता है। जो जन उत्तरापथ में निवास

Funding by IKS-MoE

करते हैं, उनके लिये वह रात्रि का शेष काल, और जो उत्तर-पूर्व देश में निवास करते हैं, उनके लिये वह रात्रि का पूर्व काल कहलाता है । जब सूर्य उत्तरीय भवन में विराजते हैं और जब वे वरुण की सुखा नामक पुर में जाते हैं, तब मध्याह्न होता है एवं जब वे चन्द्र की विभावरी नगरी में जाते हैं, तब उदय होता है । उस समय अमरावती में आधी रात और यम के नगर में सूर्यास्त होता है । जब चन्द्र की विभावरी पुरी में मध्याह्न और इन्द्र की अमरावती में उदय होता है, उस समय संयमन पुर में आधी रात और वरुण की सुखा नगरी में अस्त होता है । सूर्य जब शीघ्र गति से भ्रमण करते हैं, तब जान पड़ता है कि नक्षत्रगण चक्राकार जलते हुए अँगारे की तरह सूर्य के पीछे घूम रहे हैं । इस प्रकार सूर्य दक्षिण दिशा होकर चारों द्वीपों में भ्रमण करते हैं और बारम्बार उदय-अस्तकाल में उदित और अस्त होते हैं । सूर्य अपनी किरणों से स्वर्गीय दोनों देवालयों में से एक पूर्वार्द्ध को पूर्वाह्न में और परार्द्ध को पराह्न में तपाते हैं एवं मध्याह्न में प्रत्येक को प्रतप्त करते हैं । सूर्य उदय से लेकर मध्याह्न पर्यन्त अपनी किरण को बढ़ाते हैं और मध्याह्न से अस्त पर्यन्त धीरे-धीरे किरणों का ह्रास करते हुए अस्त हो जाते हैं । उदय और अस्त से ही पूर्व तथा पश्चिम दिशाओं का ज्ञान होता है । सूर्य जिस प्रकार आगे तपते हैं या प्रकाश का दान करते हैं, उसी प्रकार पीछे दोनों (पार्श्व) बगलों में भी जहाँ सूर्य उदित हुए देखे जाते हैं वही उदयाचल कहलाता है और जहाँ वे अदृश्य हो जाते हैं, वही अस्ताचल कहलाता है । सब लोगों से उत्तर में मेरु है और दक्षिण में लोकालोक । बहुत दूर जाने के कारण यह स्थान भूमि की रेखा की तरह प्रतीयमान होता है । सूर्य की किरणें रात को क्षीण हो जाती हैं; अतः यह दिखाई नहीं पड़ता है । ग्रह, नक्षत्र, तारा और सूर्य के दर्शन तथा अस्त ऊँचे स्थानों से जाने जाते हैं । अग्नि और जल की छाया शुक्ल वर्ण की होती है तथा पृथ्वी की छाया कृष्ण वर्ण की । बहुत दूर रहने के कारण उगते हुए सूर्य किरणों से हीन मालूम पड़ते हैं । क्षीणकिरण होने के कारण उस समय सूर्य में उतनी गर्मी भी नहीं रहती है और वे लोहित वर्ण हो जाते हैं । रेखा पर स्थित सूर्य जहाँ-जहाँ से देखे जाते हैं, वहाँ से वे हजार योजन ऊपर रहते हैं । सूर्य के अस्त हो जाने पर उनकी किरणों का एक भाग अग्नि में प्रवेश कर जाता है । इसीसे अग्नि रात को बहुत दूर से मालूम पड़ती है । फिर जब सूर्य का उदय होता है, तब उनके अस्तकालीन तेज के साथ अग्नि का तेज भी सूर्य में मिल जाता है । इसीसे सूर्य दिन में अधिक तपते हैं । सूर्य का प्रकाशमान तेज और अग्नि का उष्ण तेज परस्पर मिलकर सम्पूर्ण लोगों को दिनरात सन्तुष्ट करते हैं । उत्तर भूम्यर्द्ध में अथवा दक्षिण भूम्यर्द्ध में जब सूर्य उगते हैं, तब रात्रि जल के बीच प्रवेश कर जाती है इस लिये दिन में रात के प्रवेश करने से जल ताम्र वर्णका हो जाता है । फिर जब सूर्य अस्त हो जाते हैं, तब दिन भी जल में प्रवेश कर जाता है । इसी कारण जल में दिन के प्रवेश कर जाने से रातको जल उज्वल हो जाता है । सूर्य के प्रकाश से युक्त दिन है और अन्धकारमयी रात्रि है । इसीलिये सूर्य को देखकर ही अर्थात् सूर्य के उदय-अस्त से ही दिन-रात की व्यवस्था होती है । इस प्रकार जब सूर्य पुष्कर के बीच विचरण करते हैं । तब पृथ्वी के तीन अंश को वे एक मुहूर्त में ही पार कर जाते हैं सूर्य एक मुहूर्त में जितने योजन जाते हैं, उसको सुनिये । सूर्य प्रति मुहूर्त में

Funding by IKS-MoE

एकतीस लाख पचास हजार योजन चला करते हैं। इस गति से जब सूर्य दक्षिण दिशा में जाते हैं, तब वे माघ महीने तक उस दिशा में रहते हैं। अब दक्षिण दिशा में उनकी जो गति है, उसको सुनिये। इस दिशा में सूर्य दिन-रात में नौ करोड़ एक लाख पैंतालीस हजार योजन चला करते हैं। क्षीरोद समुद्र के उत्तर उदित होकर चलते हुए सूर्य जब दक्षिण दिशा से लौटकर विषुव रेखापर स्थित होते हैं, उस काल में विषुव-मण्डल के योजन-प्रमाण को सुनिये। इस विषुव का विस्तार तीन करोड़ एकासी लाख योजन है। छठें शाकद्वीप के उत्तर उदित होकर विचरण करते समय जब सूर्य श्रावण मास में उत्तर दिशा में चले जाते हैं, तब उत्तरीय दिशा के मण्डल-प्रमाण को विद्वानों ने एक करोड़, अस्सी नियुत अठावन योजन बताया है। सूर्यके गमनमार्ग के दो नाम हैं नागवीथी और अजवीथी। उत्तरवाली नागवीथी है और दक्षिणवाली अजवीथी। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नामक तीनों नक्षत्रों में जब सूर्य उदित हैं, तब उसका नाम अजवीथी होता है एवं अभिजित से लेकर तीन नक्षत्रों में जब उदय होता है, तब उसका नाम नागवीथी रहता है। इन दोनों दिशाओं में जो अन्तर है उसे हम योजनों में बताते हैं। यह दोनों दिशाओं का अन्तर एकतीस लाख तैंतीस सौ तैंतीस योजन का हैं, किन्तु इसकी संख्या एक योजन ऊपरसे की गयी है। दक्षिण और उत्तर दिशाओं के रेखामध्यगत अन्तर की संख्या भी हम योजनों में बताते हैं, सुनिये। इन दोनों रेखाओं में एक से दूसरे का अन्तर एकहत्तर नियुत एक हजार पचहत्तर योजन है। दोनों दिशाओं की बाहरी और भीतरी रेखाओं का परिमाण एकसा ही कहा गया है। सूर्य जब उत्तर की ओर रहते हैं, तब वे भीतरी मण्डल में परिभ्रमण करते हैं और जब दक्षिण में रहते हैं तब बाहरी मण्डल की परिक्रमा करते हैं। इसी क्रम से वे सदा एक सौ अस्सी मण्डलों के भीतर-बाहर घूमा करते हैं। दक्षिण दिशा में भी सूर्य इसी प्रकार चला करते हैं। यहाँ के मण्डल का परिमाण भी संक्षेप से योजनों में सुनिये। इस मण्डल का प्रमाण इक्कीस हजार दो सौ इक्कीस योजन कहा गया है। मण्डल का विष्कम्भ या विस्तार वक्र है। सूर्य प्रति दिन मण्डलक्रम से अर्थात् एक के बाद दूसरे पर विचरण किया करते हैं। कुम्हार का चक्का जैसे शीघ्र घूम आता है, उसी प्रकार सूर्य भी दक्षिण दिशा में जाकर शीघ्र लौट आते हैं। सूर्य थोड़े ही काल में अर्थात् बारह घड़ियों में ही दक्षिण दिशा की उत्तमोत्तम भूमि में विचर आते हैं। दिन में सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रों का परिभ्रमण कर लेते हैं और रात में वे अठारह मुहूर्तों में फिर उतने ही नक्षत्रों का परिभ्रमण करते हैं। कुम्हार के चक्के के बीच का हिस्सा जिस प्रकार धीरे-धीरे घूमता है, उसी प्रकार उत्तरायण होने पर सूर्य का भी पराक्रम मन्द हो जाता है, और वे धीरे-धीरे चलने लगते हैं। इस समय सूर्य अधिक देर में थोड़ी सी ही दूरी तय कर पाते हैं। उत्तरायण काल में पश्चिम दिशा में मन्द पराक्रम वाले सूर्य अठारह मुहूर्तों में चौदह नक्षत्रों का परिभ्रमण दिन में करते हैं। फिर रात में भी वे उतने ही नक्षत्रों का परिभ्रमण अठारह मुहूर्तों में ही करते हैं। फिर चक्र की गति धीमी पड़ जाने से जैसे उसके बीच का मृत्पिण्ड घूमता रहता है उसी प्रकार दोनों दिशाओं के मध्य में अवस्थित ध्रुव भी उस समय घूमा करता है। ध्रुव तीस मुहूर्तों में एक अहोरात्र का परिभ्रमण कर दोनों दिशाओं के मध्य में स्थित मण्डलों की परिक्रमा करता है। कुम्हार

Funding by IKS-MoE

के चक्के का नाभि-देश जैसे जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है, उसी प्रकार ध्रुव भी एक स्थान पर ही वर्तमान रहते हैं। ॥११०–१५०॥

दोनों दिशाओं के मध्य में मंडलों का परिभ्रमण करने वाले सूर्य की गति दिन में मन्द और रात में तीव्र हो जाती है। चन्द्रमा की उत्तर दिशा में गति होने से दिन की गति मन्द पड़ जाती है और उसी उत्तर दिशा में सूर्य की गति होने से रात की गति तीव्र हो जाती है। चन्द्रमा के दक्षिण जाने से दिन की गति तीव्र हो जाती है और सूर्य के दक्षिण जाने से रात की गति मन्द हो जाती है। इस प्रकार अपने गति-विशेष से दिन-रात का विभाग करते हुए वे सम और विषम मार्ग से विचरण किया करते हैं। लोकालोक पर्वत के चारों ओर जो लोकपालगण अवस्थित हैं, उनके ऊपर होकर अगस्त्य वेग से चला करता है और यही अपने गति विशेष से दिन-रात का विभाग किया करता है। नागवीथी के दक्षिण और लोकालोक के उत्तर एवं वैश्वानर पथ के बाहर लोक को तारने वाला अगस्त्य वर्तमान है। लोकालोक पर्वत के पृष्ठ भाग और अग्रभाग में सूर्य की जितनी प्रभा चमकती है, उतनी ही उसके दोनों पार्श्वों में, पृष्ठ भाग में और सभी स्थानों में चमकता है। सारांश यह है कि सूर्य उस पर्वत के दो भागों को प्रकाशित करते हैं, तो अगस्त्य भी उसके दो भागों को प्रकाशित करता है। यह पर्वत एक हजार दस योजन ऊँचा है। यह एक ओर से प्रकाशवान् और दूसरी ओर से अन्धकारपूर्ण एवं चारों ओर मंडलाकार है। चन्द्र-सूर्यादि नक्षत्र ग्रह ताराओं के साथ इस लोकालोक पर्वत के भीतर ही प्रकाशित होते हैं। यहाँ तक तो लोक है, उसके बाद निरालोक है। लोकालोक एक ही है; किन्तु निरालोक की गणना नहीं की जा सकती है। जिस कारण सूर्य भ्रमण करते समय लोकालोक का संधान करते हैं, इसी कारण उषा और व्युष्टि के मध्य को द्विजगण संध्या कहा करते हैं एवम् उषा को रात्रि कहते हैं और व्युष्टि को दिन। एक बार संध्या काल में दुरात्मा राक्षसों ने सूर्य को खा जाना चाहा; किन्तु प्रजापति ने उन्हें शाप दे दिया, जिससे उनकी (तात्कालिक) मृत्यु हो गई; परन्तु उनकी देह सदा के लिये अक्षय हो गई। ये मन्देह नामक राक्षस संख्या में तीन करोड़ हैं। ये दुरात्मा प्रति दिन उदय काल में सूर्य को खा जाना चाहते हैं और उन्हें पीड़ा पहुँचाते हैं। तब सूर्य के साथ उन राक्षसों का घनघोर युद्ध होता है। ब्राह्मणों के साथ श्रेष्ठ देवतागण और ब्रह्मा उस समय सन्ध्या की उपासना करने लग जाते हैं एवं गायत्री तथा ओंकार से अभिमन्त्रित कर महाजल प्रदान करते हैं। उस वज्रभूत जल से वे दैत्यगण जल जाते हैं। इतना ही नहीं ब्राह्मण लोग भी सर्वत्र अग्निहोत्र में यथाविधि आहुतियाँ देने लग जाते हैं, जिससे सहस्र किरण वाले प्रभा-सम्पन्न सूर्य जगमगा उठते हैं। तब फिर महातेजस्वी, अत्यन्त द्युतिमान और महापराक्रमी सूर्य सौ हजार योजन ऊपर उठ जाते हैं। इतना हो जाने के बाद भगवान् ब्रह्मा कार्य सम्पन्न करने वाले मुनियों, ब्राह्मणों और मरीचि तथा वालखिल्य ऋषियों के साथ अपने स्थान को लौट जाते हैं ॥१५१–१६८॥

पन्द्रह निमेषों की काष्ठा, तीस काष्ठा की कला, फिर तीस कला का मुहूर्त और तीस मुहूर्तों का रात-दिन होता है। भाग के अनुसार दिवसों का यथाक्रम वृद्धि और ह्रास होता रहता है, किन्तु

सन्ध्या का परिमाण सदा एक मुहूर्त रहता है। दिन के न्यूनाधिक होने का प्रभाव इस पर नहीं पड़ता है। सूर्य जब अपनी रेखा पर उदय काल से तीन मुहूर्त तक चल चुकते हैं, तब वह काल प्रातस्तन कहलाता है और वह दिन का पाँचवाँ भाग होता है। उस प्रातस्तन काल के बाद तीन मुहूर्त तक संगव काल कहलाता है। उस संगव काल के बाद तीन मुहूर्त तक मध्याह्न काल कहलाता है। उस मध्याह्न काल के बाद तीन मुहूर्त तक अपराह्न रहता है। अपराह्न बीत जाने के बाद का समय सायाह्न कहलाता है। यह सायाह्न पन्द्रह मुहूर्तों के बाद तीन मुहूर्तों तक रहता है। जब विषुवत् रेखा पर सूर्य स्थित रहते हैं, तब पन्द्रह मुहूर्तों का दिन और पन्द्रह मुहूर्तों की ही रात होती है। सूर्य के उत्तरायण और दक्षिणायन होने पर रात और दिन घटते-बढ़ते रहते हैं। इसीसे कभी दिन रात को ग्रस लेता है और कभी रात दिन को। शरद और वसन्त काल के मध्य में सूर्य विषुवत् रेखा पर चले जाते हैं, उस समय विषुव अर्थात् दिन-रात बराबर होता है। पन्द्रह दिनों का एक पक्ष, दो पक्षों का एक मास, दो महीनों की एक ऋतु, तीन ऋतुओं का एक अयन और दो अयनों का एक संवत्सर होता है। निमेषादि के द्वारा काल का विभाग किया जाता है! पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा और तीस काष्ठाओं की कला एवं बयासी कलाओं की मात्रा होती है। निन्यानवे (?) छत्तिस, बाँसठ और तेईस मात्राओं की चला होती है। चालीस हजार आठ सौ सत्तर या नब्बे मात्राओं की विद्युति होती है। चार सौ विद्युत् परिमाणों का सरांश या नलिका होती है। पाँच प्रकार के जो संवत्सरादि हैं, उनका चतुर्विध मान कहा गया है। सभी काल में युगादि का भी निश्चय इसी प्रकार होता है। वत्सरों की विशेष संज्ञा इस प्रकार कही गई है—पहला संवत्सर, दूसरा परिवत्सर, तीसरा इद्वत्सर चौथा अनुवत्सर और पाँचवाँ वत्सर। बीस सौ पर्वोंके पूर्ण हो जाने पर एक सूर्य युग होता है। यह सूर्य के अठारह और तीस (अड़तालीस) बार उदय होने पर होता है। सूर्य के दस अयन तीस ऋतुओं के होते हैं। इस प्रकार के पैंतीस सौ अयनों के सूर्य के साठ महीने होते हैं। सूर्य के एक महीने में तीस दिन-रात होते हैं। इस प्रकार के एकसठ अहोरात्र का एक दनु होता है। भानु का भुवन-भ्रमण मान एक सौ तिरासी दिनों का है। सौर, सौम्य, नाक्षत्र और सावन नामक चार प्रकार के मान सभी पुगणों में कहे गए हैं।

श्वेत पर्वत के उत्तर शृङ्गवान नाम का एक पर्वत है, जिसके तीनों शृङ्ग आकाश को छूते रहते हैं। उन्हीं शृङ्गों के कारण उसका शृङ्गवान् नाम विख्यात है। इसका विस्तार तथा विष्कम्भ आदि पहले ही बताया जा चुका है। इसका पूर्व-शृङ्ग सोने का है और दक्षिण ओर चाँदी का शिखर है, जो स्फटिक की तरह है, उत्तर दिशा में एक अत्युत्तम शृङ्ग है, जो सभी रत्नों से परिपूर्ण है। इन्हीं तीनों शिखरों से वह पर्वत शृङ्गवान् कहलाता है। शरद् और वसन्त काल में मध्यम गति अवलम्बन कर के भगवान् भास्कर उस पर्वत के उस शिखर का अवलम्बन करते हैं, जो विषुव रेखा के सन्निकट है। उन दिनों सूर्य दिन रात्रि को बराबर बना देते हैं। सूर्य के महारथ में हरित् वर्ण के अर्थात् हरे रङ्ग के दिव्य घोड़े जुते हुए हैं, जिनके शरीर की कान्ति पद्मराग मणि के समान है। मेष और तुला राशि पर सूर्य के जाने पर रात

तथा दिन पन्द्रह-पन्द्रह मुहूर्तों के ही होते हैं। सूर्य जिस समय कृत्तिका नक्षत्र के प्रथम चरण में पहुँचते हैं, उस समय चन्द्रमा विशाखा के चतुर्थ चरण में वर्तमान रहते हैं। जब सूर्य विशाखा के तीसरे अंश या चरण में जाते हैं, तब तक चन्द्रमा कृत्तिका के शिर पर पहुँच जाते हैं। महर्षिगण इसी को विषुव काल कहा करते हैं। चन्द्र-सूर्य की गति से ही इस विषुव काल का ज्ञान होता है। जब दिन और रात का मान बराबर हो जाता है, तब विषुव होता है। इस समय पितरों के निमित्त दान देना चाहिये। यह दान विशेष कर ब्राह्मणों को देना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मण ही देवों के मुख कहे जाते हैं। कला, काष्ठा और मुहूर्तादि के भेद से ऊनरात्र और अधिक मास होते हैं। अनुमति और राका नामक दो प्रकार की पूर्णिमा तथा सिनीवाली और कुहू नामक दो प्रकार की अमावास्या होती है। माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ उत्तरायण है, एवं श्रावण, भाद्रपद, आश्विन, कार्तिक, मार्गशीर्ष पौष दक्षिणायण। इन्हीं बारह महीनों का एक संवत्सर होता है। पञ्चाब्द या पञ्च संवत्सर ब्रह्मतनय कहलाता है। ऋतुयें इन्हीं से उत्पन्न हुई हैं और इन्हींका अंश कहलाती हैं। इस कारण देव पितरों का कार्य पर्वानुमुख अमावास्या में करना चाहिये और अमावास्या की अपेक्षा विषुव में करना श्रेष्ठ है। मानव इस विषुव रहस्य को जान कर कभी भी देव-पितरों के कार्य में प्रमाद न करे, इसलिये सभी प्रजा को यह विषुव तत्त्व जान लेना चाहिये। आलोक का जहाँ तक अन्त है, वहाँ तक लोक है; लोकान्तपर्यन्त लोक कहलाता है। सारांश यह कि लोकालोक पर्वत आलोक के शेष भाग में वर्तमान है। इस लोकालोक के मध्य में लोकपालगण स्थित हैं। वैराज सुधामा, शङ्खपाभिधेय कर्दम, पर्जन्य हिरण्यलोमा और केतुमान् रजत नामक चार महात्मा लोकपाल वहाँ प्रलयकाल तक रहते हैं। ये लोकपाल वहाँ चारों ओर निर्द्वन्द्व, निरभिमान, शासनविहीन और परिजन शून्य होकर निवास करते हैं। अगस्त्य के उत्तर और अजवीथी के दक्षिण एवं वैश्वानर मार्ग के बाहर जो मार्ग है वह पितृयान है। उस पितृयान मार्ग में लोक विस्तारक, प्रजावान्, अग्निहोत्रकर्ता मुनिगण निवास करते हैं। ये सब प्रजाजन की वृद्धि करने की अभिलाषा से आशीर्वाद द्वारा जीवों के प्रारब्ध कर्म को पुष्ट या आरम्भ करते हैं। इनका दक्षिण पथ है। सन्तान, तपस्या, मर्यादा और शास्त्र ज्ञानादि द्वारा ये प्रत्येक युग में विचलित धर्म का पुनः संस्थापन करते हैं। इनके पूर्ववर्ती वंशधरों के घर में जिस प्रकार परवर्ती वंशधरों का जन्म होता है, उसी प्रकार परवर्ती वंशधर के घर में पूर्ववर्ती वंशधर के मरण होने पर जन्म होता है। इसी प्रकार इनका परिवर्तन होता रहता है और प्रलय काल तक ये वर्तमान रहते हैं। अठासी हजार गृहस्थ मुनिगण सूर्य के दक्षिण मार्ग में चन्द्रतारा आदि जबतक रहते हैं, तब तक रहते हैं। ये क्रियावान रूप से जन्म ग्रहण करके श्मशान में आश्रय ग्रहण करते हैं। लोक व्यवहार, भूतों का आरम्भ, इच्छा-द्वेषादि युक्त प्रकृति, मैथुन कर्म और कायकृत विषय-भोग-जनित दोष आदि कारणों से सिद्धगण श्मशान का सेवन करते हैं। इन मुनियों ने प्रजा कामना से द्वापर युग में जन्म ग्रहण किया था।

नागवीथी के उत्तर और सप्तर्षि के दक्षिण एवं सविता के उत्तर जो मार्ग है, वह देवयान कहलाता

Funding by IKS-MoE

है। वहाँ निवास करने वाले विमल, सिद्ध ब्रह्मचारी गृहस्थ धर्म को सदा हेय समझते हैं। इसीसे वे मृत्युंजय हैं। इनके अनन्तर अठ्ठासी हजार ऊर्ध्वरेता ऋषिगण हैं, जो सूर्य के उत्तर पथ में प्रलयकाल तक वास करते हैं। ये लोक व्यवहार से विरत हैं, मैथुन नहीं करते, इच्छा-द्वेषादि का संग्रह भूतों का आरम्भ (सृष्टि) नहीं करते, इच्छापूर्ति से विरक्त और शब्दादि दोष का दर्शन (आप्त वाक्य में दोष) भी नहीं करते हैं। अतएव इन शुद्ध कारणों के द्वारा इन्होंने अमृतत्व लाभ किया है और प्रलयकाल तक अमृतत्व का उपभोग करतें हैं। यही तीनों लोकों की स्थिति का काल है। पुनर्जन्म से रहित मुक्त व्यक्ति अथवा ब्रह्महत्या करने वाले पापी, अश्वमेध करने वाले पुण्यात्मा और ऊर्द्ध्वरेता मुनिगण इस महा प्रलयकाल तक रहते हैं। इसके बाद इन सबका क्षय हो जाता है। सप्तर्षि मण्डल के ऊपर ध्रुव तक विष्णुपद कहलाता है। यह आकाश में दिव्य और प्रकाशवान् तीसरा पदार्थ है। यहाँ जाने पर फिर कोई चिन्ता नहीं सताती है। यह विष्णु का परम पद है। लोक साधक ध्रुव आदि इसी विष्णुपद के सहारे टिके हुए हैं ॥१८९–२२३॥

श्रीवायु महापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक पचासवाँ अध्याय समाप्त ॥५०॥

एकावनवाँ अध्याय

ज्योतिष्प्रचार

सूतजी बोले—स्वायम्भुव मन्वन्तर के वर्णन-प्रसङ्ग में भूतकालिक वृत्तान्त कह चुके हैं। अब हम अनुक्रम से भविष्य की बातों का विवरण सुनाते हैं। यह सुन कर मुनियों ने लोमहर्षण सूत से पूछा कि सूर्य-चन्द्र आदि ग्रहों की गति किस प्रकार की होती है ?

ऋषिगण बोले—यह ज्योतिश्चक्र गगनमण्डल में किस प्रकार घूमता है। यह व्यूहाकार टेढ़ा-मेढ़ा घूमता हुआ भी आपस में टकराता नहीं है। इसे कौन घुमाता है ? अथवा यह स्वयं घूमता है ? यह सब हम जानने की इच्छा करते हैं; क्योंकि यह कथा जीवों को भ्रम में डाल देने वाली है; इसीसे सुनने की इच्छा होती है। सूतसत्तम ! आप हम लोगों को यह कथा सुनावें।

सूतजी बोले—जीवों को आश्चर्य चकित करने वाली यह कथा हम कहते हैं, आप लोग सुनें। यह ज्योतिश्चक्र प्रत्यक्ष होते हुए भी अज्ञेय होने के कारण भ्रम में डाल देता है। आकाश में जो यह चारों ओर सौरमण्डल स्थित है, उसके पुच्छ भाग में उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव मेधिस्तम्भ (केन्द्र) के रूप में वर्तमान हैं। ये स्वयं घूमते हैं और ग्रहों के साथ चन्द्र-सूर्य को भी घुमाते हैं। घूमते हुए ध्रुव का नक्षत्र-समूह चक्र की तरह अनुसरण करता है। ध्रुव के ही अनुकूल सूर्य, चन्द्र, तारा, नक्षत्र, ग्रह आदि नक्षत्र

Funding by IKS-MoE

मण्डल घूमा करते हैं। वायु समूह के बन्धन द्वारा यह नक्षत्रमण्डल ध्रुव में बँधा हुआ है। उनका योग, भेद, कालाचार, अस्त, उदय, उत्पात, दक्षिणोत्तर अयन, विषुव और ग्रहवर्ण ध्रुव से ही उत्पन्न होते हैं। वर्षा, घर्म, हिम, रात, दिन और सन्ध्या तथा प्रजाजन का शुभाशुभ व्यापार ध्रुव से ही उत्पन्न होते हैं। सभी नक्षत्रादि ध्रुव के ही अधिकार में हैं। सूर्य केवल उन्हें आवृत करते हैं। वही प्रदीप्त किरण ध्रुव कालाग्नि और दिवाकर भी हैं। विप्रो! परिवर्तन क्रम से सूर्य वायुयुक्त किरण द्वारा दिशाओं को आलोकमय कर सम्पूर्ण जगत् का जल शोषण करते हैं। वह सूर्य द्वारा खींचा हुआ जल अग्निमय सूर्य से वायुयुक्त नाड़ी द्वारा सोम में संक्रान्त होता है। फिर लोक रक्षा के लिये वृष्टि रूप में परिवर्तित होता है। सोम से जो जल स्रवित होता है, वह आकाश में या मेघ में ठहरता है। फिर वायु के धक्के से मेघ जल बरसाया करते हैं। इसी प्रकार जल की वृष्टि और शोषण होता है। जल का कभी भी नाश नहीं होता है; प्रत्युत ऐसा ही परिवर्तन हुआ करता है। जीवों की रक्षा के लिये विधाता के द्वारा यह माया निर्मित की गई है। इसी माया के द्वारा सचराचर तीनों लोक व्याप्त हैं। देव दिवाकर ही विश्वेश, लोककर्ता, सहस्रांशु, प्रजापति, सम्पूर्ण लोकों के धारणकर्ता, प्रभु और विष्णु हैं। सार्वलौकिक जो जल है, वह सोम से मेघमंडल में ही द्रवित हुआ है; इसलिये यह सम्पूर्ण जगत चन्द्र के ही द्वारा प्रतिष्ठित है। यह हमने यथार्थ बात कही है। सूर्य से ताप निकलती है और चन्द्र से शीतलता। ये ही शीतोष्ण तत्व पृथ्वी को धारण करते हैं। पवित्र और विमल जलवाली गंगा नदी का आधार चन्द्र है। विप्रो! और महानदियाँ भी चन्द्रपुत्र की पुरोवर्तिनी हैं। सभी जीव-जन्तुओं के शरीर में जल है; अतः स्थावर-जंगम जब दग्ध होते हैं, तब उनके शरीर से जल भाफ होकर निकल जाता है। उस से मेघ बनते हैं; क्योंकि मेघ ही जल का आधार स्थान है। सूर्य का तेज किरणजाल द्वारा जीव-जन्तुओं से जल ग्रहण कर लेता है समुद्र के जल को भी किरणों के द्वारा वायुवेग से खींच लेता है। फिर सूर्यदेव ऋतु परिवर्तन होने पर स्वयं नवीनता धारण करते हैं और मेघों को निर्मल जल किरणों द्वारा प्रदान करते हैं। तब वायु द्वारा प्रेरित होने पर मेघों में रुका हुआ जल चारों ओर बरसने लगता है। इसी तरह सभी जीवों के कल्याण के लिये वायु-सम्बन्धी गर्जना और अग्निसम्बंधी विद्युत् को साथ करके छः महीने तक मेघ बरसते रहते हैं। 'मिह' धातु क्षरणार्थक है। इसीसे मेघ शब्द निष्पन्न हुआ है और मेघत्व को प्रकट करता है। जिससे जल भ्रष्ट नहीं होता है, अतः उसे पण्डित लोग अभ्र कहते हैं। मेघ तीन प्रकार के हैं; अतः उनकी उत्पत्ति भी तीन प्रकार हुई है। आग्नेय, ब्रह्मज और पक्षज नाम से मेघ पृथक्-पृथक् तीन प्रकार के हैं। उनकी उत्पत्ति इस प्रकार हुई है—आग्नेय मेघ जल से उत्पन्न हुए हैं; क्योंकि शीतलता, वायु और दुर्दिन आदि जो गुण उनमें वर्तमान हैं, वे जल से उत्पन्न होने के कारण ही उनमें आये हैं। ये मेघ, भैंस, सुअर या मतवाले हाथी का रूप धारण कर पृथ्वी के निकट आते हैं और चक्कर लगाया करते हैं। उन मेघों का नाम जीमूत है, जो देर तक बरसते रहते हैं जो बिजली चमकाना नहीं जानते हैं और जो वृष्टि द्वारा जीवजन्तुओं को बढ़ाया करते हैं। ये मेघ शब्द-विहीन, विशाल-शरीर और वायु के वशवर्ती हैं। ये एक

कोस अथवा आधा कोस ऊपर से बरसा करते हैं। ये पर्वतों के कटिभाग में भी बरसा करते और घूमते रहते हैं। ये वलाका (बगुला) को गर्भदान करते हैं; इसलिये ये वकपङ्क्ति के गर्भदाता भी कहलाते हैं। ब्रह्म के निःश्वास से उत्पन्न मेघों का नाम है ब्रह्मज। ये गरजते हैं, कौंधते हैं और इनका गर्जन बड़ा भला जान पड़ता है। इनके शब्द को सुनकर भूमि उस प्रकार पुलकित हो जाती है, जैसे राज्याभिषेक होने से रानी पुलकित होकर नवीन यौवन सुख का अनुभव करती है। चराचर जीवों के कल्याण के लिये पृथ्वी इन मेघों से प्रेम करती है। जीवनोत्पादक जीमूत नामक मेघ द्वितीय प्रवह नामक वायु का आश्रय ग्रहण कर स्थित हैं। ये एक योजन, आधा योजन या चौथाई योजन ऊपर से मूसलधार वृष्टि किया करते हैं। इनके बरसने का यही ढंग है। पुष्करावर्तकादि मेघ पक्षसम्भव हैं। पूर्व काल में चराचरों का कल्याण चाहनेवाले इन्द्र ने महाबलशाली, विशालकाय और इच्छानुरूप गमन करनेवाले पर्वतों का पक्ष काट दिया था। वे ही विशाल पक्ष जलपूर्ण होकर मेघाकार हो गये। उन मेघों का नाम हुआ पुष्कर। इसी कारण वे पुष्करावर्तक नाम से प्रसिद्ध हैं। ये मेघ नाना रूप को धारण करने वाले, महा भयङ्कर, कल्पान्त में वृष्टि करने वाले और संवर्तक अग्नि के नियामक हैं ॥२०-४०॥ ये तृतीय श्रेणी के मेघ कल्पान्त में वृष्टि करते हैं और विविध रूप धारण कर महीमण्डल को पूर्ण कर देते हैं एवं परावह वायु का आश्रय लेकर कल्पों को बदल दिया करते हैं। चार मुँहवाले स्वयम्भू ब्रह्मा, जिस प्राकृत अण्डकपाल से उत्पन्न हुए हैं, उसी अण्डकपाल से सभी मेघ हुए हैं। सभी मेघों को धूम आप्यायित यानी तृप्त करते हैं। उन सभी मेघों में पर्जन्य श्रेष्ठ हैं और दिग्गज चतुष्टय। गज, पर्वत, मेघ और साँपों का कुल पृथक् होने पर भी एक ही है; क्योंकि इन सब का उत्पत्ति-स्थान जल ही कहा गया है। हेमन्त काल में सम्पूर्ण सस्यों की वृद्धि करने के लिये शीत सम्भव दिग्गज और पर्जन्य तुषार वृष्टि किया करते हैं। श्रेष्ठ परिवह वायु इन सबका आश्रय-स्थान है। यही भगवान् परिवह वायु स्वर्गपथ में तीन धाराओं में बहने वाली, दिव्य, पवित्र और अमृत की तरह जल वाली आकाश-गङ्गा को धारण करने वाले हैं। आकाश-गङ्गा के जल को दिग्गजगण अपनी मोटी सूँड़ों से फुहारे की तरह उछालते हैं। वही जलकण नीहार कहलाता है। सुमेरु के दक्षिण और हिमालय के उत्तर हेमकूट नामक एक पर्वत है। इसके निकट पुण्ड् नामक एक प्रसिद्ध नगर है। वहाँ तुषार की ही वृष्टि हुआ करती है। तब फिर आवह नामक वायु उस तुषार को अपने सामर्थ्य से बटोर कर उस महाशैल से महागिरि हिमालय पर बरसा देते हैं। यह वृष्टि हिमालय तक ही समाप्त हो जाती है। इसके बाद अन्य देशों में वैसी वृष्टि नहीं होती; किन्तु जो कुछ भी होती है, उसीसे सस्य-वृद्धि होती है। मेघ और उनकी वृद्धि-वृत्तान्त इस प्रकार कहा गया; किन्तु वास्तव में वृष्टि करने वाले सूर्य ही बताये गये हैं। सूर्य के द्वारा वृष्टि होती है और वायु के द्वारा वृष्टि रोकी जाती है; इसलिये ध्रुव से आवेष्टित सूर्य और वायु ही वृष्टि करने वाले और वृष्टि को रोकने वाले हैं। वायु सूर्य ग्रह से निकल कर सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल का परिभ्रमण कर दिन के अन्त में पुनः ध्रुव द्वारा परिवेष्टित सूर्य में ही प्रवेश कर जाता है। अब सूर्य के रथ का संनिवेश सुनिये। इस रथ में एक चक्का, पाँच अरायें और तीन नाभियाँ हैं। अन्धकार आच्छन्न पथ पर इस

Funding by IKS-MoE

हिरण्मय अत्यन्त भास्वर, महावेगशाली, षड्विध नाभिवाले और तेजोमय रथ के चक्र से अन्धकार को नष्ट करते हुए भगवान् सूर्य गमन करते हैं। इस रथ का विस्तार दस हजार योजन है। इस रथ के मध्य स्थान से ईषादण्ड का प्रमाण दुगुना है। प्रयोजन वश या सूर्य के लिये ब्रह्माने इस रथ का निर्माण किया है। यह रथ असङ्ग, सुवर्णमय, दिव्य और परम वेगगामी अश्वों से युक्त है। छन्दः स्वरूप अश्वों से युक्त यह रथ जहाँ शुक्र हैं, वहाँ ठहरा है एवं लक्षण में वरुण के रथ के समान है। इसी चमकीले रथ के द्वारा सूर्य आकाश-मार्ग में गमन करते हैं। सूर्य-रथ के जितने अवयव हैं, वे संवत्सर के अङ्गों द्वारा यथाक्रम कल्पित हुए हैं। सूर्य-रथ का नाभि-स्थान दिन है। यही एकचक्र भी कहलाता है। पाँचो ऋतुएँ उसकी अरायें हैं और छः ऋतुएँ नेमि कही गई हैं। रथ का मध्य-स्थान वर्ष, दोनों जुए अयन, बन्धुर मुहूर्त, युगकील कला, घोणा काष्ठा, ईषादण्ड क्षण, अनुकर्ष निमेष, ईषा लव, वरूथ रात्रि, समुन्नत ध्वज धर्म्म, युग और अक्षकोटि अर्थ तथा काम एवं गायत्री, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, शक्ति, बृहती, जगती, उष्णिक् आदि सातों छन्द सप्त अश्व हैं। रथ के अक्ष में चक्र मिला हुआ है और चक्र ध्रुव से मिला हुआ है; इसलिये अक्ष के साथ ही चक्र घूमता है और चक्र के साथ-ही-साथ ध्रुव घूमा करता है। ध्रुव की प्रेरणा से चक्र के साथ अक्ष भी घूमा करता है। प्रयोजनवश सूर्य के रथ का इस प्रकार संगठन किया गया है। उस रथ का संघठन इस प्रकार किया गया है कि, उसमें अतिशय प्रभा आ गई है। उसी रथ के द्वारा सूर्य भगवान् वेगपूर्वक आकाश में गमन करते हैं। रथ के युग और अक्षकोटि में इस प्रकार की दो किरणें जुड़ी हुई हैं, जो ध्रुव द्वारा परिचालित होने पर आकाश तल में रथ को मण्डलाकार बना देती हैं। उस रथ के दक्षिण भाग में जो युगाक्षकोटि है, वह ध्रुव द्वारा संगृहीत या संलग्न होने पर उस तरह दीखती हैं, जैसे श्वेततन्तुओं के दो चक्र हों। रथ की युगाक्षकोटि में लगी हुई वे दोनों किरणें वायुमय हैं, जो घूमते हुए ध्रुव का अनुसरण करती हैं। खूंटे से बँधा हुआ धागा जैसे चारों दिशाओं में घूमता है, उसी प्रकार रश्मियाँ घूमती हैं; किन्तु उत्तरायण होनें पर किरणें कुछ घट जाती हैं और दक्षिणायन होने पर बढ़ जाती हैं। इस तरह मण्डलाकार घूमते हुए रथ की किरणों को ध्रुव जब खींचता है, तब सूर्य भी खिंच जाते हैं। ध्रुव जब उन दोनों किरणों को खींचता है, तब सूर्य भीतरी मण्डल में घूमते हैं। उस समय सूर्य दोनों दिशाओं के एक सौ अस्सी मण्डलों का चक्कर लगाते हैं। फिर जब ध्रुव दोनों रश्मियों को छोड़ देता है, तब सूर्य बाहरी मण्डल में घूमने लगते हैं। उस समय वे वेग से मण्डलों को आवृत करते हुए घूमते हैं ॥४१–७६॥

श्री वायु महापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक एकावनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

बावनवाँ अध्याय

ज्योतिष्प्रचार

सूतजी बोले—उस रथ पर देव, आदित्य, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी (शिल्पी), सर्प और राक्षस निवास करते हैं। ये सब क्रम से दो-दो महीना सूर्य के रथ पर रहते हैं। धाता-अर्यमा आदित्य, पुलस्त्य-पुलह प्रजापति, वासुकि-संकीर्णार सर्प, तुम्वुरू-नारद गायक श्रेष्ठ गन्धर्व, ऋतु-स्थली-पुञ्जिकस्थला अप्सरायें, रथ कृच्छ्र-उर्ज ग्रामणी यानी शिल्पी, हेति-प्रहेति यातुधान राक्षस चैत्र-वैशाख में सूर्य के गण होकर उनके साथ रहते हैं। फिर ज्येष्ठ-आषाढ़ में यानी वसन्त के बाद ग्रीष्म-ऋतु में मित्र-वरुण आदित्य, अत्रि-वसिष्ठ ऋषि, तक्षक-रम्भसर्प, मेनका-सहजन्या अप्सरा, हाहा-हूहू गन्धर्व, रथस्वन, रथ चित्र ग्रामणी तथा पौरुषेय-वध नामक यातुधान राक्षस सूर्य के साथ निवास करते हैं। सावन-भादों में उनके साथ दूसरे-दूसरे देवता निवास करते हैं। जैसे, इन्द्र विवस्वान् आदित्य, अंगिरा, भृगु मुनि, एलावर्ण, शंखपाल सर्प, विश्वावसु उग्रसेन गन्धर्व, प्रातः-वरुण ग्रामणी, प्रम्लोचा-निम्लोचा अप्सरा और व्याघ्र-श्वेत राक्षस। आश्विन-कार्तिक (शरद ऋतु) में आगे कहे हुए देव-मुनिगण सूर्य के साथ निवास करते हैं—पर्जन्य-पूषा आदित्य, भरद्वाज गौतम मुनि, विश्वावसु-सुरभि गन्धर्व, विश्वाची-घृताची अप्सरा, ऐरावत-धनंजय सर्प, सेनाजित्-सुषेण ग्रामणी और आप-वात नामक राक्षस। फिर हेमन्त ऋतु के अगहन-पूष मास में सूर्य के साथ अंश-भग आदित्य, कश्यप-ऋतु मुनि, महापद्म-कर्कोटक सर्प, चित्रसेन-ऊर्णायु गन्धर्व, उर्वशी-विप्रचित्ति अप्सरा, ताक्ष्र्य-अरिष्टनेमि सेनानी या ग्रामणी, विद्युत्-स्फूर्ज राक्षस रहते हैं। फिर शिशिर ऋतु के माघ-फागुन महीने में ये सब देव दो मास सूर्य के साथ निवास करते हैं—त्वष्टा-विष्णु आदित्य, जमदग्नि-विश्वामित्र ऋषि, काद्रवेय-कँवलाश्वतर सर्प, धृतराष्ट्र-सूर्यवर्चागन्धर्व, देवी तिलोत्तमा और मनोहारिणी रम्भा अप्सरा, विश्वविख्यात ऋतजित्-सत्यजित् ग्रामणी एवं ब्रह्मोपेत-यज्ञोपेत राक्षस। सात श्रेणी के ये बारह देवता अर्थात् चौरासी देवता स्थानाभिमानी कहलाते हैं। ये अपने तेज से उत्तम तेज वाले सूर्य को समृद्ध करते हैं। मुनिगण अभिमत वचनों द्वारा सूर्य की स्तुति करते हैं, गन्धर्व और अप्सराएँ नृत्य-गीतों से उपासना करती हैं, ग्रामणी यक्ष भूतादि भयङ्करता का संग्रह करते हैं, सर्पगण सूर्य को ढोते हैं, राक्षस उनकी रक्षा करते हैं और बालखिल्य ऋषिगण उदय होते ही सूर्य की परिचर्या करने लगते हैं और उन्हें अस्ताचल पहुँचा देते हैं। इन देवों का जैसा वीर्य, तप, योग, सत्य, धर्म और बल है, उसी के अनुसार सूर्य उनके तेज द्वारा तप्त होते हैं ये सब दो-दो महीने सूर्य के निकट निवास करते हैं। ऋषि, देव, गन्धर्व, सर्प, अप्सरा, ग्रामणी, यक्ष और राक्षसगण ही तपते हैं, बरसते हैं, चमकते हैं, वायु की तरह बहते हैं और जीवों के शुभाशुभ कर्म का उत्पादन करके उसका विनाश भी करते हैं। कभी ये मानवों के शुभ कर्म का अपहरण करते हैं और कभी पापियों के पापका नाश करते हैं। वायु के समान वेगवाले ये देवगण दिव्य विमान पर चढ़कर सूर्य के साथ प्रतिदिन गमन करते हैं। प्रलयकाल पर्यन्त ये सभी जीवों की रक्षा करते हैं और प्रजाजन

को वृष्टि तथा ताप द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥३३॥ इन स्थानाभिमानी देवों का यह स्थान भूत, भविष्य और वर्तमान सभी मन्वन्तरों में एक-सा रहता है। ये देव सप्तक चौदहों मन्वन्तर के समय में सूर्य के चारों तरफ इसी प्रकार निवास करते हैं। भगवान् भुवन-भास्कर ऋतुकाल के अनुसार किरणों को बदल-बदल कर देवता, पितर और मनुष्यों को तृप्त किया करते हैं। वे ग्रीष्म ऋतु में घाम, जाड़े में ठंढक और बरसात में पानी बरसा कर दिन-रात का भी विभाग किया करते हैं। सूर्य देव अपनी सुषुम्न किरण द्वारा चन्द्रमा को बढ़ाते हैं और देवों को अमृत पिलाकर सन्तुष्ट करते हैं। दिवसक्रम से जब चन्द्रमा शुक्लपक्ष में पूर्ण हो जाते हैं, तब कृष्णपक्ष में देवगण उन्हें अर्थात् उनके अमृत को पी जाते हैं। पिये जाने पर दो कलामात्र शेष सोम कृष्णपक्ष के बीतने पर जिस किरण का रक्षण करते हैं, उस अमृतरूपी किरण को पितर लोग स्वधा समझकर पीते हैं और देवगण उसे कव्य समझकर पीते हैं। फिर सूर्य की किरणों से ही जल उत्पन्न होता है। वृष्टि से औषधि और अन्न उत्पन्न होते हैं, जिनसे मानव अपनी क्षुधा शान्त करते हैं। देवों को अमृत से अर्द्ध मास तक तृप्ति होती है और पितरों को भी स्वधा से आधे मास तक। किन्तु मनुष्यों को अन्न के द्वारा सदा तृप्ति मिलती है, क्योंकि सूर्य किरणों से अन्न को पुष्ट किया करते हैं। सूर्य हरिद्वर्ण के अश्व पर चढ कर किरणों द्वारा जलका शोषण करते हैं। फिर वर्षाकाल में जल बरसाकर सूर्यदेव चराचर का पोषण करते हैं। सूर्य हरिद्वर्ण के घोड़े पर चढ़कर हजारों किरणों से जल का शोषण करते हैं फिर हरिद्वर्ण के घोड़े पर घूमते हुए वे जल बरसा देते हैं। इस प्रकार प्रलयकाल तक सूर्य देव एक चक्के के रथ पर सवार होकर मंगलकारक बलिष्ठ अश्वों द्वारा वेग से आकाश में भ्रमण करते हैं। सूर्य एकचक्र रथ द्वारा समुद्रान्त सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी का भ्रमण दिन-रात किया करते हैं। उनके छन्दः स्वरूप सातों घोड़े चक्के की ओर जुते हुए, इच्छाधीन शरीर धारण करनेवाले, मन की तरह अतिशय वेगवाले, ब्रह्मवादी, समर्थ, हरितपिङ्गल वर्ण के और रथ में एक ही बार जोते गये हैं। वे घोड़े एक वर्ष में एक सौ अस्सीमंडल का परिभ्रमण किया करते हैं ॥२६–४६॥ कल्प के आदि में घोड़े एक बार जोते गये हैं और कल्पान्त तक वे रथ को खींचते रहते हैं। इस तरह वे दिवसक्रम से बाह्य और आभ्यन्तर मण्डलों का परिभ्रमण बालखिल्य ऋषियों द्वारा आवृत होकर दिन-रात किया करते हैं। अग्रगामी महर्षि अभिमत वचनों द्वारा उनकी स्तुति करते हैं और गन्धर्व-अप्सराएँ नृत्य-गीत से उनकी सेवा करती हैं। इस प्रकार आकाशगामी दिन नामक सूर्य अश्वों के साथ भ्रमण करते हैं ॥२७–४८॥ चन्द्रमा भी नक्षत्रों की गलियों में चला करते हैं। इनकी किरणों का भी सूर्य की तरह वृद्धि और नाश हुआ करता है। चन्द्रमा के रथ में तीन चक्के हैं और दोनों तरफ घोड़े जुते हुए हैं। इनका यह रथ अश्व और सारथि के साथ जल के भीतर से उत्पन्न हुआ है। इस रथ में एक सौ अरायें, तीन चक्के और उज्ज्वल वर्ण के उत्तम घोड़े जुते हुये हैं। ये दिव्य अश्व गिनती में दस हैं। ये मन की तरह वेगवान्, कृश, असङ्ग और कल्पादि में एक बार जोते गये हैं, जो युगान्त पर्यन्त रथ का वहन करते हैं। रथ में जुते हुए उज्ज्वल वर्ण के वे अश्व शङ्ख के समान कान्तिवाले चन्द्र के रथ को आकाश में खींचते रहते हैं।

Funding by IKS-MoE

चन्द्रमा के दसों घोड़ों का नाम हैं —ययु, त्रिमना, वृष, राजबुन, वाम, तुरण्य, हंस, व्योमी और मृग । ये घोड़े चन्द्रदेव को कल्पांत पर्यन्त वहन करते हैं । देवों और पितरों द्वारा सेव्यमान होकर चन्द्रमा इसी प्रकार गमन करते हैं । शुक्ल पक्ष में सूर्य चन्द्रमा के आगे रहते हैं और देवों द्वारा पिये गये चन्द्र को दिवस क्रम से नित्य प्रति परिपुष्ट कर तृप्त करते हैं । इस प्रकार पन्द्रह दिन पिये गये चन्द्र को सूर्य एक सुषुम्न किरण द्वारा दिवसक्रम से प्रतिदिन एक-एक भाग करके पूर्ण करते हैं । तब सुषुम्न किरण द्वारा परिपूर्ण चन्द्रमा की कला उज्ज्वलतर हो जाती है । अतः कृष्णपक्ष में चन्द्र का ह्रास होता है और शुक्ल पक्ष में वे परिपूर्ण होते हैं । इस प्रकार सूर्य के सामर्थ्य से चन्द्रमा का शरीर बढ़ता-घटता है । शुक्लपक्ष में दिन क्रम से चन्द्रदेव परिपुष्ट हो जाते हैं और वे पूर्णिमा को उज्ज्वल परिपूर्ण मण्डल से प्रकाशित होने लगते हैं । फिर कृष्णपक्ष की द्वितीया से लेकर चतुर्दशी पर्यन्त देवगण जल के सार स्वरूप और रसमय चन्द्र के जल प्रधान और सुधामय सुन्दर मधु का पान करते हैं । वह अमृत सूर्य के तेज से आधे मास में संचित होकर पूर्णमासी में देवों के भोजन के लिये कल्पित होता है । कृष्णपक्ष के आदि में एक रात देवता, पितर और महर्षिगण भास्कराभिमुखवर्ती चन्द्र का पान करते हैं । पीने पर उनकी कला फिर धीरे-धीरे क्षीण होने लगती है । तैंतीस हजार तैंतीस सौ तीन देवता चन्द्र के मधु का पान करते हैं । इनके द्वारा पी जाने पर चन्द्रमा की कृष्णपक्ष की कला फिर बढ़ने लगती है । इसीलिये कृष्णपक्ष में इनकी कला क्षीण होती है और शुक्ल पक्ष में बढ़ने लगती है । इसी प्रकार देवगण प्रतिदिनक्रम से आध मास तक चन्द्रमा को पीकर अमावास्या को प्रस्थान करते हैं । पुनः अमावास्या आते ही पितर लोग चन्द्रमा के निकट आ जाते हैं । चन्द्रमा की पन्द्रहवीं कला का जो अवशेष रह जाता है, उसे पितर लोग मध्याह्न काल में पीते हैं । उस अवशिष्ट कला से जो स्वधा रूपी अमृत क्षरित होता है, उसको द्विकलात्मक कालमात्र में पान कर पितर लोग एक महीने तक तृप्त रहते हैं । सौम्य, वर्हिषद्, अग्निष्वात्त और कव्य पितर ही हैं । विद्वानों ने जिसे पंचाब्द संवत्सर कहा है, वही कव्य है । ऋतु सौम्य, मास वर्हिषद और ऋतु अग्निष्वात्त हैं । ब्राह्मणो ! पितृसर्ग यानी पितरों की व्यापार-वार्ता इसी प्रकार की है । अमावास्या में पितरों द्वारा पीत चन्द्र की पन्द्रहवीं कला के परिपूर्ण भाग का जब तक क्षय होता है, तब तक उनका अन्तिम भाग पूर्ण हो जाता है । अर्थात् सोलहवीं कला का नाश नहीं होता है । पक्षादि में चन्द्रमा का वृद्धि-क्षय इसी प्रकार होता रहता है । चन्द्रमा की जो यह क्षय-वृद्धि होती है, उसका मुख्य कारण सूर्य ही है । अब हम तारकादि ग्रहों और राहु के रथ के सम्बन्ध में कहते हैं । बुध का रथ शुभ्रवर्ण और जलीय तेज से युक्त अर्थात् उसमें जल का तेज वर्तमान है । वायु की तरह वेगवान् पिशंग वर्ण के आठ घोड़े उसमें जुते हुए हैं । वह रथ मेघ की तरह है, जिस पर ध्वजा-पताका फहरा रही हैं, तरकस रखे हुए हैं । उस दिव्य रथ के नीचे काठ लगा हुआ है और ऊपर से फौलादी चादर कढ़ी हुई है । उस रथ का सारथी भी दिव्य है । शुक्र का रथ तेज में सूर्य की तरह और शोभासम्पन्न है । इसमें पृथ्वी से उत्पन्न नाना वर्ण के मोटे-मोटे वायु की तरह वेगशाली दस घोड़े जुते हुए

Funding by IKS-MoE

हैं । ये घोड़ों में श्रेष्ठ महाभाग अश्व श्वेत, पिशङ्ग, सारंग, नील, लोहित, पीत, कृष्ण, हरित, पृषत और पृश्नि रंग के हैं । मंगल का रथ सोने का है, जिसमें आठ घोड़े जुते हुए हैं । यह रथ अत्यन्त शोभासम्पन्न है । इनके लोहित वर्ण के बेजोड़ घोड़े अग्नि से उत्पन्न हुए हैं और सर्वत्र गमन करने वाले हैं । मंगल इन्हीं पर आरोहण कर सीधी और टेढ़ी गति से राशिचक्र का भ्रमण करते हैं । अंगिरातनय देवाचार्य विद्वान् बृहस्पति सोने के रथ पर घूमा करते हैं । इनके दिव्य घोड़े लाल रंग के हैं और रथ सर्वत्र गमन करने वाला है, जिसमें वायुकी तरह वेगशाली आठ घोड़े जुते हुए हैं । ये एक राशि पर एक वर्ष निवास करते हैं ॥४७-७८॥ शनैश्चर का रथ काले लोहे का बना है । इनके चितकबरे घोड़े आकाश से उत्पन्न हुए हैं । वे अपने रथ पर चढ़कर धीरे-धीरे चला करते हैं । राहु के तमोमय कृष्णवर्ण के रथ में मन की तरह वेगशाली काले रंग के आठ घोड़े एक ही बार जोत दिये गये हैं । ये रथ को सदा खींचा करते हैं । राहु पर्व के दिन सूर्यमण्डल से निकल कर चन्द्र मण्डल में प्रवेश करते हैं और फिर पर्व में ही चन्द्रमंडल से निकलकर सूर्यमंडल में प्रवेश किया करते हैं । केतु के रथ के घोड़े वायु की तरह वेगशाली, गधे की तरह धूसर वर्ण, चितकबरे और धान के भूसे के धुएँ की तरह हैं । ये गिनती में चौंसठ हैं । यह हमने ग्रहों के घोड़ों और रथों का वर्णन किया । ये सभी वायु किरणों द्वारा ध्रुव से संलग्न हैं । अदृश्य वायुकिरणों द्वारा ये रथ-घोड़े या ग्रहगण घुमाये जाते हैं और यथावकाश भ्रमण करते हैं । वायुकिरणों द्वारा आबद्ध चन्द्र-सूर्यादि ग्रहगण आकाश में घूमते हैं और घूमते हुए ध्रुव का अनुगमन करते हैं । नदी जल में जैसे नौका जल पर स्थित रहती है, उसी प्रकार ये देवालय वायुकिरणों के आधार पर रुके रहते हैं । इसी कारण आकाश में देवगण का दर्शन सभी कर सकते हैं । जितने तारे हैं , उतनी ही वायु की किरणें हैं । ये सभी ध्रुव से संलग्न हैं, स्वयं घूमते और ध्रुव को घुमाते हैं । कोल्हू का चक्का जैसे स्वयं घूमता हुआ दूसरे को घुमाता है उसी प्रकार वायु द्वारा आबद्ध ज्योतिर्मण्डल सर्वत्र घूमता है । वायुचक्र द्वारा चालित होकर ज्योतिमंडल अलातचक्र की तरह घूमता है । यतः वायुचक्र ज्योतिर्मण्डल का वहन करता है, इसीसे वह प्रवहन् कहलाता है । इस प्रकार ध्रुव से मिलकर ज्योतिः समूह चला करता है । वह तारामय ध्रुव शिशुमार (ज्योतिर्मण्डल) की तरह आकाश में प्रतिष्ठित है । रात में ध्रुव को देखने से दिनभर का किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है । आकाश में जितने तारे उस ज्योतिर्मण्डल में हैं, उतने बरसों तक ध्रुव को देखने वाला जीवित रहता है । यह शिशुमार सब काल में रहने वाला है, नित्य है । इस प्रकार विभाग द्वारा इसे जानना चाहिये । उत्तानपाद इसकी निचली ठुड्डी, यज्ञ अधर, धर्म मस्तक, नारायण हृदय, अश्विनीकुमार पूर्व दो पाद, वरुण-अर्यमा पश्चिम दो-पाद, मित्र गुह्यदेश और पूँछ अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप, तथा ध्रुव हैं । इस संवत्सरात्मक शिशुमार का अस्तोदय नहीं होता है । ग्रह-ताराओं के साथ चन्द्र-सूर्यादि नक्षत्र आकाश में नीचे या ऊपर मुँहकर मंडलाकार स्थित हैं । ये सभी ध्रुव के द्वारा धारण किये गए हैं और सभी मेंधस्तम्भ (दौंनी का खम्भा) स्वरूप श्रेष्ठ ध्रुव की ही प्रदक्षिणा करते हैं । ध्रुव, अग्नि और कश्यपों में ध्रुव ही श्रेष्ठ हैं । यही एक ध्रुव ही मेरु पर्वत के मस्तक पर अधोमुख होकर मेरु को देखते हुए भ्रमण करते हैं और साथ-ही-साथ सदा ज्योतिर्म-

Funding by IKS-MoE

एडल का भी आकर्षण करते रहते हैं॥ ६१-६६ ॥

श्रीवायु महापुराण का ज्योतिष्प्रचार नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त ॥५२॥

तिरपनवाँ अध्याय

ज्योतिः संनिवेश

शशिपायन बोले—यह सुनकर मुनियों ने संशय युक्त होकर फिर लोमहर्षण सूत से कहा।

ऋषिगण बोले—आपने जो देवों के विख्यात गृहों का वर्णन किया है, वे घर कैसे हैं और उनकी कान्ति कैसी है ? यह सब और ज्योतिमण्डल का वृत्तान्त हमें कहिये। ऋषियों के वचन को सुनकर सुस्थिर होकर सूतजी बोले—"इस विषय में ज्ञान-बुद्धि वाले महापण्डितों ने जैसा कहा है, तदनुसार हम आप लोगों से कहते हैं। देवों का और चन्द्र-सूर्य का जैसा घर है एवं चन्द्र-सूर्य का जैसा संस्थान है, सब कुछ आप लोगों को सुना रहे हैं, किन्तु इसके पहले हम त्रिविध अग्नि की उत्पत्ति बताते हैं। अग्नि तीन तरह के हैं—दिव्य, भौतिक और पार्थिव। अव्यक्त जन्मा ब्रह्मा की रात्रि के बीत जाने पर, जब नैश अन्धकार से सब आच्छन्न था, कहीं कुछ सृष्टि नहीं हुई थी, केवल चार भूत ही अवशिष्ट थे, उस समय जो सर्व प्रथम अग्नि हुए वे पार्थिव कहलाये। जो अग्नि सूर्य में रहकर तपते हैं या ताप दान करते हैं, वे शुचि अग्नि कहलाते है। वैद्युत अग्नि भी इन्हीं का नाम है। इनका अब लक्षण कहते हैं। वैद्युत, जाठर और सौर अग्नि जल से उत्पन्न हुए हैं; इसीलिये जब किरणों द्वारा सूर्य जल का पान करते हैं, तब ये आकाश में अधिक प्रकाशमान हो जाते हैं। वैद्युत अग्नि अगर वृक्ष में चले जाते हैं, तो पानी से नहीं बुझते हैं। उसी प्रकार मनुष्यों के पेट में जो अग्नि देव हैं, वे भी पानी से नहीं बुझते हैं। पेट में रहने वाले जो जाठर अग्नि हैं, वे अतिशय ज्योतिष्मान् हैं, और जो यह मण्डलाकार बिना गर्मी वाला शुक्र नामक अग्नि प्रकाशित होता है, वह दिन की अपेक्षा रात में दूर से ही प्रकाशित होता है, इसलिये कि सूर्य की किरण अस्तकाल में एक एक चरण से उसमें प्रवेश कर जाती है ॥१-११॥ फिर सूर्योदय होने पर पार्थिव अग्नि की उष्णता एक चरण से सूर्य में प्रवेश कर जाती है इस कारण सूर्य तृप्त होते हैं। प्रकाश और उष्णता गुण सम्पन्न सूर्य और अग्नि का तेज परस्पर प्रवेश करके एक दूसरे को दिन-रात तृप्त करते हैं। उत्तरीय भूगोलार्द्ध में अथवा दक्षिणीय भूगोलार्द्ध में जब सूर्य उदित होते हैं, तब रात्रि जल में प्रवेश कर जाती है; इस कारण दिन में रात्रि के प्रवेश कर जाने से जल ताम्र वर्ण का हो जाता है। फिर सूर्य के अस्त होने पर दिन जल में प्रवेश कर जाता है, इस कारण रात को जल उज्ज्वल हो जाता है। इसी तरह दक्षिणोत्तर भूगोलार्द्ध में सूर्य के उदय-अस्त होने पर क्रमपूर्वक रात और दिन जल में प्रवेश किया करते हैं। ताप वितरण करने वाले सूर्य की किरणों से जो जल पिया करते हैं, वे निमिश्र पार्थिव अग्नि हैं। ये ही दिव्य शुचि अग्नि

Funding by IKS-MoE

भी कहलाते हैं। ये हजार किरणवाले और घड़े की तरह गोल हैं। ये हजार किरणों से चारों ओर का जल खींचा करते हैं। नदी, समुद्र, कूप, बिल, स्थावर जंगम आदि के जल को ये खींच लिया करते हैं। हिरण्मय सूर्य गर्मी, शीत और वर्षा बरसाने वाली हजार किरणों से युक्त है। उनमें विचित्र रूप वाली चार सौ किरणें वृष्टि किया करती हैं। वृष्टि करने वाली वे सभी किरणें वन्दन, वन्द्य, ऋतन, नूतन और अमृत नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके बाद तीन सौ दूसरी शीतल किरणें हैं, जो पीले रंग की हैं। इन्हीं से शीत उत्पन्न होता है। इनके नाम दृश्य, मेघ्य, बाह्य, ह्लादिनी और चन्द्र हैं। फिर शुक्ल, ककुभ, विश्वभृत् आदि शुक्ल वर्ण की ताप बरसाने वाली तीन सौ किरणें हैं। सूर्य इन किरणों से मनुष्य, देवता और पितरों का समान भाव से पोषण करते हैं। औषधों से मनुष्यों को, स्वधा से पितरों को और अमृत द्वारा देवों को इस प्रकार त्रिविध किरणों से सब को तृप्त करते हैं। वे हेमन्त और शिशिर में तीन सौ किरणों द्वारा शीत बरसाते हैं, वसन्त और ग्रीष्म में तीन सौ किरणों द्वारा ताप वितरण करते हैं और बरसात तथा शरद में चार सौ किरणों द्वारा वृष्टि संपादन करते हैं। वे औषधियों को बल देते, स्वधा द्वारा पितरों को तृप्त करते और अमृत द्वारा अमरत्व का विधान करते हैं। इस प्रकार वे तीनों किरणों से तीनों को तृप्त करते हैं। इस तरह सूर्य की हजारों किरणों से केवल लोकों का उपकार ही होता है। वे किरणें ऋतुक्रम से उत्ताप, शीतलता और जल प्रदान किया करती हैं। शुक्ल और प्रभावान् सूर्य मण्डल नक्षत्र, ग्रह और चन्द्रमा का प्रतिष्ठा स्थान तथा उद्भव-स्थान है। नक्षत्र, ग्रह और चन्द्र सभी सूर्य से ही उत्पन्न हुए हैं। चन्द्रमा नक्षत्राधिपति हैं और सूर्य ग्रहराज हैं। शेष पाँचों ग्रह इच्छाधीन शरीर वाले और सर्वसमर्थ हैं। ऐसा कहा जाता है कि अग्नि आदित्य हैं और जल चन्द्रमा है। शेष ग्रहों की प्रकृति का भी वर्णन करते हैं, सुनिये।

देव सेनापति कार्तिकेय मंगल ग्रह कहे जाते हैं। ज्ञानवान् लोग नारायण को बुध कहते हैं। लोक में रुद्र देवता ही साक्षात् वैवस्वत धर्मराज कहे जाते हैं और ये ही द्विजश्रेष्ठ मन्दगामी महाग्रह शनैश्चर हैं। देवगुरु और असुरगुरु दोनों ही प्रकाशवान् महाग्रह हैं। ये दोनों ही शुक्र-बृहस्पति प्रजापति के पुत्र हैं। इन दोनों के प्रभाव से ही दैत्यपति और सुरपति प्रतापवान् हैं। तीनों लोकों का मूलकारण सूर्य ही हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। देवता, असुर और मनुष्यों से पूर्ण यह सम्पूर्ण जगत् सूर्य का ही है। विप्रो! रुद्र, इन्द्र, उपेन्द्र और चन्द्रादि देवों का जो तेज है, वह सूर्य का ही तेज है। ये ही सर्वात्मा, सर्वलोकेश और मूलभूत परम देवता हैं। सूर्य से ही सब उत्पन्न हुए हैं और सूर्य में ही सब लीन होते हैं। पूर्वकाल में लोकों की उत्पत्ति और विनाश सूर्य से ही हुआ है। विप्रो! इसलिये यह जगत् ही ग्रहमय है और सूर्य दीप्तिमान् सुन्दर ग्रह हैं। जहाँ से बारम्बार क्षण, मुहूर्त, दिन, रात, पक्ष, मास, संवत्सर, ऋतु, वर्ष और युग आदि उत्पन्न होकर जिसमें लय प्राप्त करते हैं, वह सूर्य ही हैं। सूर्य को छोड़कर दूसरे से काल की संख्या नहीं की जाती है। और बिना काल और समय के न शास्त्र, न दीक्षा और न दैनिक कृत्य हो सकते हैं। तब न ऋतुओं का विभाग होगा, न पुष्प खिलेंगे, न फल-मूल की उत्पत्ति होगी, न सस्य होगा न ओषधियाँ बढ़ेगी। संसार को प्रतप्त करने वाले और जल का अपहरण करने वाले सूर्य के बिना

Funding by IKS-MoE

यहाँ क्या, स्वर्ग में भी देवों का व्यावहारिक कार्य रुक जायगा। विप्रो! सूर्य ही काल हैं, अग्नि हैं और द्वादशात्मा प्रजापति हैं। ये ही तीनों लोकों के चराचर को प्रतप्त किया करते हैं। सूर्यदेव परम तेजस्वी हैं और लोकवालों के आत्मा हैं। ये उत्तम वायुमार्ग का अवलम्बन करके किरणों द्वारा ऊपर-नीचे पार्श्व भाग और सभी जगहों में ताप दान करते हैं। हमने पहले सूर्य की जिन हजार किरणों को बताया है, उनमें ग्रहों को उत्पन्न करने वाली सात किरणें प्रधान हैं। सातों किरणें ये हैं— सुषुम्न, हरिकेश, विश्वकर्मा, विश्वश्रवा, संयद्वसु, अर्वाग्वसु, और स्वराड्। सूर्य की सुषुम्न किरण क्षीण हुए चन्द्रमा को बढ़ाती है। यह सुषुम्न किरण वक्र होकर ऊपर की ओर जाती है। हरिकेश किरण आगे की ओर रहती है। ये नक्षत्रों का उत्पत्ति स्थान कहलाती हैं। दक्षिण ओर रहकर विश्वकर्मा किरण बुध को परिपुष्ट करती है। पश्चाद्भाग में रहने वाली विश्वश्रवा किरण शुक्र का उद्भवस्थान है। संयद्वसु किरण मंगल को उत्पन्न करने वाली है। छठीं अर्वाग्वसु किरण से बृहस्पति उत्पन्न हुए हैं और स्वराट् किरण शनैश्चर को तृप्त करने वाली है। इस प्रकार सूर्य के प्रभाव से ही ग्रह-नक्षत्र-तारा आदि वृद्धि प्राप्त करते हैं, यह सर्व विदित है। यह सम्पूर्ण संसार ही सूर्य के द्वारा प्रकट हुआ है। यतः ये क्षीण नहीं होते हैं, उसीसे इनका नाम नक्षत्र पड़ा है। पहले किरणों द्वारा इन क्षेत्रों में पतित होते हैं, और उनके क्षेत्रों को ग्रहण करते हैं; अतः सूर्य भी नक्षत्र कहलाते हैं। ये तारागण सुकर्म द्वारा विस्तृत हैं और सुकर्म द्वारा ही ग्रहों का आश्रय लेते हैं इसीसे ये तारका कहलाते हैं और शुक्ल होने के कारण भी इनका नाम तारका पड़ा है। दिव्य, पार्थिव और निशा सम्बन्धी अन्धकार का सब प्रकार से विनाश करने के कारण महान् तेजोराशि का नाम आदित्य हुआ है। "सु" धातु का अर्थ होता है, स्फुरण या क्षरण। तेज और जल का क्षरण करने के कारण सूर्य सविता भी कहलाते हैं। 'चदि' धातु का आह्लादन, शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व आदि अनेक अर्थ हैं। इसी धातु से चन्द्र शब्द बना है। चन्द्र और सूर्य का दिव्य मण्डल, आकाश में वर्तमान है देदीप्यमान, तेजोमय, जाज्वल्यमान, शुक्ल और घड़े की तरह गोल है। उन मण्डलों में जलप्रधान चन्द्रमंडल और तेजः प्रधान उज्ज्वलाकार सूर्यमंडल है। सभी मन्वन्तरों में नक्षत्र-ग्रहों के साथ देवगण इन स्थानों में प्रवेश करते हैं। इसीलिये ये देवगृह कहलाते हैं। जो जिस घर में आश्रय प्राप्त करते, उसका वही नाम कहलाता है। सूर्य सौर स्थान में, सोम सौम्य स्थान में, शुक्र शौक्र स्थान में प्रवेश करते हैं। शुक्र सोलह किरण वाले और प्रतापवान् हैं। बृहस्पति बृहत् स्थान में, लोहित (मंगल) लोहित स्थान में और शनैश्चर देव शानैश्चर स्थान में प्रवेश करते हैं। वे सभी स्थान सूर्य किरण द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। सूर्य मंडल का विष्कम्भ-विस्तार नौ हजार योजनों का है और मंडल का विस्तार-प्रमाण उससे तिगुना अधिक है। सूर्य के विस्तार से चन्द्रमा का विस्तार दूना है। इनके बराबर राहु भी इन दोनों के नीचे-नीचे चलता है। वह मंडलाकार राहु पृथ्वी की छाया द्वारा निर्मित हुआ है। राहु का अन्धकारमय बृहत् स्थान है। यह पूर्णिमा को सूर्यमंडल से निकलकर चन्द्रमण्डल में जाता है और अमावास्या को पुनः चन्द्रमण्डल से निकलकर सूर्यमण्डल में चला आता है। जिस कारण यह अपनी किरणों को प्रेरित करता है, इसीसे

Funding by IKS-MoE

स्वर्भानु कहलाता है। चन्द्रमा का सोलहवाँ भाग शुक्र है। बृहस्पति शुक्र से एक चौथाई छोटा और विस्तारमण्डल में एक योजन बड़ा है। फिर शनैश्चर और मंगल बृहस्पति से एक चरण (चतुर्थांश) कम हैं। उसी तरह इन दोनों से बुध विस्तार-परिमाण में एक चरण कम है। जो तारा नक्षत्रादि स्थूलाकार देखे जाते हैं, उनका विस्तार-मण्डल प्रायः बुध के समान है। ये नक्षत्रादि प्रायशः चन्द्रमा के ही निकटवर्ती हैं। इस विषय को तत्वज्ञानी ऐसा ही समझें। तारा-नक्षत्रादि परस्पर दो, तीन, चार-पाँच सौ योजनों के व्यवधान पर स्थिर हैं। इनमें कोई बड़े हैं और कोई छोटे। एक दूसरे से कोई भी आधा योजन के भीतर नहीं है। शनि, गुरु और मंगल सभी ग्रहों के ऊपर धीरे-धीरे विचरण करते हैं। ये दूर तक गमन करने वाले और इनकी गति वक्र होती है। इनके नीचे सूर्य, सोम, बुध और शुक्र नामक और भी चार महाग्रह हैं, जो शीघ्रगामी हैं। साधारण बात तो यह है कि, जितने तारे दीख पड़ते हैं, उतने ही नक्षत्र हैं। वीथी के नियम से नक्षत्रों का मार्ग भी व्यवस्थित है। अयन क्रम से सूर्य उसी मार्ग से अधः, उर्ध्व होकर गमन करते हैं। पर्व में जब चन्द्रमा उत्तरायण मार्ग पर वर्तमान रहते हैं, तब बुध-बुधस्थान में, राहु राहुस्थान में और सब नक्षत्र नक्षत्र-स्थान में वर्तमान रहते हैं। पुण्यात्मा ग्रहों के ही सब ज्योति स्वरूप घर हैं। ब्रह्माने कल्प के आदिकाल में इन स्थानों का निर्माण किया है और ये प्रलयकाल तक वर्तमान रहते हैं। सभी मन्वन्तरों में ये देवगृह अभिमानी देवों के साथ वर्तमान रहते हैं। ये स्थान वारंवार होते और विनष्ट होते हैं। बीते हुए देवों के साथ वे स्थान बीत गये, आने वालों के साथ उत्पन्न होंगे और वर्तमान देवगण उन स्थानों में निवास कर रहे हैं। इस मन्वन्तर में ग्रहगण विमानों पर रहा करते हैं। वैवस्वत मन्वन्तर में अदिति के पुत्र विवस्वान् सूर्य, धर्मपुत्र त्विषिमान् वसु चन्द्रमा, असुरों के पुरोहित भृगुपुत्र शुक्र देव, देवों के पुरोहित अंगिरा के पुत्र महातेजस्वी बृहस्पति, त्विषिपुत्र मनोहर बुध, अग्नि के विकल्प से उत्पन्नयुवा मङ्गल और नक्षत्रों का अनुगमन करने वाले दाक्षायणीगण एवं भूतों को पीड़ित करने वाले सिंहिका पुत्र असुर राहु हैं। इस तरह हमने चन्द्र-सूर्य-नक्षत्रादि अभिमानी देवों के सम्बन्ध में कहा। ये ही इन स्थानों के देवता हैं और ये ही इनके स्थान हैं। सहस्र किरण विवस्वान का स्थान अग्निमय शुक्लवर्ण है और हजार किरणवाले चन्द्रमा का भी स्थान शुक्लवर्ण है; लेकिन जलमय है। पाँच किरणवाले बुध का स्थान जलमय और कृष्णवर्ण है। सोलह किरणवाले शुक्र का भी स्थान जलमय है। नौ किरणवाले मङ्गल का स्थान लाल रंग का और जलमय है। बारह किरणवाले बृहस्पति का स्थान बृहत् और हरिद्वर्ण है। आठ किरणवाले शनि का स्थान जलमय और कृष्णवर्ण है। राहु का स्थान जीव-जन्तुओं को पीड़ा पहुँचाने वाला और तमोमय है। इनके बाद जो तारे हैं, वे एक किरणवाले हैं और उनका स्थान जलमय है। ये तारे पवित्र कीर्तिवालों के आश्रय हैं, शुक्लवर्ण हैं, जलमय हैं और कल्प के आदि काल में विधाता द्वारा वेदोक्त विधान से निर्मित हुए हैं। ये बहुत दूर रहने पर भी स्पष्ट किरणों द्वारा शीघ्र दीखने लगते हैं। सूर्य जब दक्षिणायन होकर नागवीथी में विचरण करते हैं, तब भूमि लेखा द्वारा आवृत होकर अमावास्या और पूर्णिमा में नहीं मालूम पड़ते हैं; क्योंकि इनका अस्त शीघ्र ही हो

जाता है। चन्द्रमा जब उत्तरीय मार्ग में विचरण करते हैं, तब ये दीख पड़ते हैं; किन्तु दक्षिण होते ही कभी ये दीख पड़ते हैं और कभी नहीं। नक्षत्रों की गति के अनुसार सूर्य और चन्द्र दोनों ही जब विषुवद्रेखा पर आते हैं; तब दोनों का ही अस्त और उदय समान काल में ही होता है। फिर उत्तरवीथी में जब वे वर्तमान रहते हैं, तब पूर्णिमा और अमावास्या में ज्योतिश्चक्र का अनुवर्तन करने वाले उन दोनों के अस्त और उदय काल में अन्तर आ जाता है। जब तेजस्वी सूर्य दक्षिण दिशा के मार्ग में गमन करते हैं, तब वे सब ग्रहों के नीचे से चलते हैं। उस समय चन्द्रमा सूर्य के ऊपरी भाग में अपने मण्डल का विस्तार कर गमन करते हैं और नक्षत्र-मण्डल चन्द्रमा से और ऊपर विचरण करता है। नक्षत्र से ऊपर बुध, बुध से ऊपर बृहस्पति, बृहस्पति से ऊपर शनि, शनि से ऊपर सप्तर्षिमण्डल और सप्तर्षिमण्डल से ऊपर ध्रुव रहते हैं। तारा-ग्रहों का अन्तर ऊपर की ओर यथाक्रम से दो लाख योजनों का है। चन्द्र, सूर्य और ग्रह आदि दिव्य तेज के द्वारा आकाश में नियमक्रम से नित्य संयुक्त होते हैं और पृथक् होते हैं। ग्रह, नक्षत्र, सूर्यादि समागमकाल में या निम्न-उच्च होने के समय में मृदुभाव धारण कर लेते हैं, जिससे सब कोई उन्हें एक बार ही देख लेते हैं। यदि परस्पर में इनका संयोग भी होता है, तो ये तिल-तण्डुल की तरह पृथक् ही रहते हैं। विद्वानों को ऐसा ही समझना चाहिये। यह हमने पृथिवी, ज्योतिश्चक्र, द्वीप, सागर, पर्वत, वर्ष, नदी, और इनके निवासियों का वर्णन किया। ये सब ग्रह पहले नक्षत्र-समूह में समुत्पन्न हुए हैं। अदितिपुत्र विवस्वान् सूर्य जो ग्रहों में आदि ग्रह हैं, वे चाक्षुष् मन्वन्तर में विशाखा में उत्पन्न हुए हैं। धर्मपुत्र, त्विषिमान्, सोम, विश्वावसु, शीतरश्मि, निशाकर कृत्तिका में उत्पन्न हुए हैं। सूर्य की उत्पत्ति के बाद सोलह किरण वाले भृगुपुत्र शुक्र, जो ताराग्रहों में श्रेष्ठ हैं, वे पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न हुए हैं। अंगिरा के पुत्र बारह किरणवाले जगद्गुरु बृहस्पति फल्गुनी में उत्पन्न हुये हैं। नौ किरणवाले प्रजापति तनय मङ्गल पूर्वाषाढ़ में उत्पन्न हुए। श्रुति ऐसा ही कहती है। सात किरणवाले सूर्यपुत्र शनि रेवती में उत्पन्न हुए हैं एवं चन्द्र-सूर्य को पीड़ा पहुँचाने वाले राहु-केतु भी रेवती में ही उत्पन्न हुए हैं। शुक्र प्रमुख ये तारा ग्रह आदि जन्मकालिक नक्षत्र के वश यदि विगुण या दुष्ट हो जाते हैं, तब वे उसी दोष के कारण क्लेश पहुँचाने लगते हैं। वह पीड़ा उनमें भक्ति करने से ही शान्त हो जाती है। सभी ग्रहों में आदि ग्रह सूर्य कहे जाते हैं और ताराग्रहों में आदि शुक्र हैं एवं केतु समस्त केतुग्रहों में आदि हैं। चारों दिशाओं में विभक्त ग्रहों के बीच कील स्वरूप ध्रुव श्रेष्ठ हैं। नक्षत्रों के बीच श्रविष्ठा और अयनों में उत्तरायण श्रेष्ठ है। पाँचों वर्षों में संवत्सर प्रथम है। ऋतुओं में शिशिर, मासों में माघ, पक्षों में शुक्ल, तिथियों में प्रतिपदा और दिन-रात में दिन आदि कहा गया है। मुहूर्तों के बीच रौद्र मुहूर्त और काल-समूह के बीच निमेषात्मक काल ही आदि है। यह कालज्ञ पण्डितों का मत है। श्रवण से लेकर श्रवण तक पाँच वर्षों का एक युग होता है, जो सूर्य के गतिविशेष से चक्के की तरह घूमता रहता है। इसी कारण सूर्य ही काल कहे गये हैं। इन्हींको ईश्वर समझना चाहिये। ये ही चारों प्रकार के चराचरों के प्रवर्तक और निवर्तक हैं। लौकिक व्यवहार को सुशृंखलित करने के लिये ईश्वर ने इस प्रकार ज्योतिश्चक्र

Funding by IKS-MoE

का निर्माण किया है । हमने भी अर्थानुसंधान करके ज्योतिश्चक्र का विवरण इस तरह बतला दिया । ये ज्योतिश्चक्र अन्त तक सभी दिशाओं में वृत्ताकार में विस्तीर्ण हैं, ये आणा में उत्पन्न हुए हैं और ध्रुव में संलग्न हैं । भगवान् ने कल्प के आदिकाल में बुद्धिपूर्वक इन सभी आश्रयवान् अभिमानियों का संस्थान किया है । यह ज्योतिश्चक्र विश्वरूपात्मिका प्रकृति का एक अद्भुत विपरिणाम है । ज्योतिर्मण्डल का ठीक-ठीक वर्णन कोई भी मनुष्य चर्मचक्षु से देखकर नहीं कर सकता है । इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य शास्त्र, अनुमान और प्रत्यक्ष एवं उपपत्ति (युक्ति) द्वारा निपुणतापूर्वक परीक्षा कर इनमें भक्ति और श्रद्धा करे । बुद्धिमान् विप्रो ! ज्योतिस्तत्त्व के निर्णय में चक्षु, शास्त्र, जल, लिखित ग्रन्थादि और गणित ये ही पाँच कारण कहे गये हैं । ॥ १०४–१२३॥

श्री वायु महापुराण का ज्योतिः संनिवेश नामक तिरपनवाँ अध्याय समाप्त ॥५३॥

चौअनवाँ अध्याय

नीलकण्ठ की स्तुति

ऋषिगण बोले—महाद्युति वाले ! किस देश में और किस काल में ब्रह्मपुरोगामियों का पवित्र और उत्तम आख्यान घटित हुआ है । तपोधन ! यह घटना जिस तरह घटी है, उसे हमें अच्छी तरह से कहें ॥१॥

सूतजी बोले—व्रतानुष्ठान करने वाले द्विजश्रेष्ठ ! हजार वर्ष के यज्ञ में संसार के आयुःस्वरूप वायु देव ने पूर्वकाल में जिस प्रकार बताया है और हमने जैसा सुना है, वैसा ही आप लोगों से कहते हैं कि, कैसे देवाधिदेव महादेव का कंठ नीलवर्ण का हुआ है । शैलाधिराज हिमालय के उत्तर सरोवर, नदी, ह्रद, पवित्र उद्यान, तीर्थ, देवालय, गिरिशिखर, कन्दरा, उपवन आदि स्थानों में उत्तम व्रत करने वाले देवभक्त महात्मा मुनिगण विधि-नियम से महादेव की स्तुति किया करते हैं । वे ऋक्-यजुः वेद-विधान से, सामवेद के गान से, नृत्य-गीत से, पूजा से, ओंकार के उच्चारण से और नमस्कार आदि के द्वारा शिव की पूजा सदा किया करते हैं । किसी समय सूर्य ज्योतिर्मण्डल के बीच में आ गये । सभी नियतात्मा देवता इस कथा की आलोचना करने लगे । नियमानुष्ठान में प्रवृत्त मुनियों की दशा बिगड़ गयी । पीड़ा से सबको घोर कष्ट होने लगा । इसी समय वायु ने कहा—“नीलकण्ठ को नमस्कार है ।” यह सुनकर नियम-व्रत करने वाले पवित्रात्मा बालखिल्य मुनियों ने वायु से पूछा । वे मुनिगण ऊर्ध्वरेता, वायु और पत्तियों को खाने वाले, सूर्य के साथ गमन करने वाले एवं गिनती में अठासी हजार थे ।

Funding by IKS-MoE

ऋषिगण बोले—सुकृतात्माओं में श्रेष्ठ पवन! आपने जो यह 'नीलकण्ठ' शब्द का उच्चारण किया है, यह पवित्रात्माओं के लिये पुण्य-जनक और परम गुह्य है। यह कथा हम आपकी कृपा से सुनना चाहते हैं कि अम्बिकापति महादेव का कण्ठ किस कारण से नील वर्ण का हुआ है यह कथा हम विशेषरूप से आपके मुँह से सुनना चाहते हैं, क्योंकि वायु द्वारा प्रेरित होने पर ही वचनों के उच्चारण में सार्थकता आती है। वायु! वर्ण स्थान में जब आप जाते हैं, तब शब्दों का उच्चारण होता है। आपसे ही पहले ज्ञान, उत्साह और प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। शरीर से आपके निकल जाने पर वर्णों का उच्चारण समाप्त हो जाता है, वचन नहीं निकलते और क्या कहा जाय, देह धारण करना भी कठिन हो जाता है। अनिल! आपका सबसे सद्भाव है। आपकी सर्वत्र गति है। समीरण, आपके अतिरिक्त और कोई भी देवता सर्वत्र गमन करने वाले नहीं हैं। अनिल! यह जीवलोक आपका प्रत्यक्ष करता है, आपको मन का नायक, ईश्वर और वाचस्पति देव समझता है। हे वायु! आप बतावें कि, किस प्रकार नीलकण्ठ के कण्ठ में विकार उत्पन्न हुआ? ॥१—१७॥

पवित्रात्मा ऋषियों के वचन को सुनकर लोक-पूज्य और महातेजस्वी वायु बोले—

ब्राह्मणो! पहले कृतयुग में प्रजापति के मानस पुत्र विद्वान् और धर्मात्मा वसिष्ठ नाम के ब्राह्मण थे। उन्होंने भक्तिपूर्वक कार्तिकेय से पूछा। कार्तिकेय का मयूर उत्तम वाहन है, वे महिषासुर की स्त्रियों के नयनों से काजल हर लाये हैं, वे उमा के मन को प्रसन्न करने के लिये छद्मरूपधारी बालक हैं, क्रौंच के जीवन का हरण करने वाले, पार्वती के हृदय-नन्दन, महात्मा और सेनानायक हैं।

वसिष्ठजी बोले—हरनन्दन! आपको नमस्कार है। उमागर्भ! अग्निगर्भ! गंगागर्भ! आपको नमस्कार है। शरगर्भ! कृत्तिकासुत! आपको नमस्कार है। आपको छः मुख और बारह नेत्र हैं, आपको नमस्कार है। हे शक्ति पताका और दिव्य घंटा धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। इस प्रकार स्तुति कर उन्होंने मयूर वाहन सेनापति कार्तिकेय से पूछा। "यह जो शिवजी के कुन्द और इन्दु के सदृश उज्ज्वल कण्ठ में काजल की तरह शुभ नीलिमा दीख पड़ती है, यह क्या है? महाभाग! इस पापनाशिनी मंगलमय पवित्र कथा को आप हमारे कल्याण के लिये विस्तार से कहें। हम आपके भक्त हैं, आपमें हमारी श्रद्धा है, अतः हम पूछ रहे हैं, महात्मा वसिष्ठ के वचन को सुनकर राक्षस सेनापर विजय पाने वाले महातेजस्वी कार्तिकेयजी बोले—बोलनेवालों में श्रेष्ठ! पार्वती की गोद में बैठकर हमने जैसा सुना है, उसको हम कहते हैं, सुनिये। देवाधिदेव महादेव का पार्वती के साथ जो संवाद है, उसे हम आपके कल्याण के लिये कह रहे हैं। महामुनि! नाना धातुओं से युक्त, चित्रमय, तरुण सूर्य की तरह प्रकाशवान्, तप्त सुवर्ण की तरह दीप्त, हीरा और स्फटिक की सीढ़ियों से युक्त, चित्रित शिलातल से मनोहर, नाना धातुओं से जटित, दिव्य, सुवर्णमय, विविध द्रुम-लताओं से आच्छादित, चक्रवाक से शोभित, भ्रमरों से गुंजित, वृष्टि से निनादित, मतवाले क्रौंच और मयूरों के नाद से जिसकी कँदरा मुखरित हो रही है, अप्सराओं से व्याप्त, किन्नरों से शोभित, जीवंजीवक और जातिलतिकाओं से रमणीय, कोकिल की 'कुहू-कुहू'

से मधुर, सिद्ध-चारण से सेवित, नन्दी के निनाद से जिस कैलास का रमणीय शिखर निनादित हो रहा है। कहीं मेघ के गर्जन से, कहीं गजवदन के भय से कन्दराओं को छोड़ हाथी चिंघाड़ रहे हैं और कहीं श्रवण-सुखद वीणा-वादन का निर्घोष हो रहा है। कहीं स्त्रियाँ हिंडोले पर चढ़ी हुई हैं, जिनके संपात से ध्वजा में लटकने वाली घंटियाँ बज रही हैं। कहीं पहलवान मुँह बजा रहे हैं, कहीं ताल ठोक रहे हैं। मन्दिरों में क्रीड़ा का मधुर रव हो रहा है। कहीं महादेव के गण हँस रहे हैं, जिससे उनके विकराल मुँह भयावह हो रहे हैं। उनकी देह से विचित्र गन्ध निकल रही है, जिससे गणेश्वर क्रीड़ा कर रहे हैं। हीरा और स्फटिक की सीढ़ियों पर और चित्रित शिलातल पर बाघ, सिंह, हाथी, घोड़ा, बिल्ली, सियार आदि की तरह मुँह वाले प्रमथ गण बिराज रहे हैं। ऐसे स्थान पर छोटे, बड़े, दुबले, मोटे, लम्बे-विशाल पेटवाले, छोटी, जाँघवाले, लम्बे ओठ वाले, ताड़के आकार की जाँघवाले, गोकर्ण, एककर्ण, महाकर्ण, अकर्ण एवं अनेक पैरवाले, विशाल पैरवाले, एक पैरवाले, बिना पैरवाले बिना सिरवाले एक सिरवाले, विशाल सिरवाले, अनेक सिरवाले, अनेक नेत्र वाले, विशाल नेत्र वाले, एक नेत्र वाले और अंधे भूत गणों द्वारा सहयोगी भूतपति महादेव जी घिरे हुए हैं। ऐसे समय में विशुद्ध मणि-मुक्ता-रत्न भूषित, सुवर्णमय, मनोहर शिलातल पर सुखपूर्वक बैठे हुए कामदेव के शरीर को जलाने वाले महादेव जी से पार्वती ने पूछा।

पार्वती ने कहा—हे सांसारिकों का कल्याण करने वाले वृषभध्वज महादेव! भगवन्! आपके कण्ठ में यह जो मेघ की तरह और नीले काजल की ढेरी की तरह दीख हो रहा है, जो न अत्यन्त शुभ है और न अत्यन्त स्पष्ट है, वह क्या है? हे काम के शरीर को जलाने वाले महादेव! आपके कण्ठ में यह जो नीलिमा है, यह किस कारण से हुई है? यह सब आप हमसे भली भाँति कहें। हमें यह जानने का बड़ा कौतूहल हो रहा है।

देवी के वचन को सुनकर पार्वती प्रिय शंकर ने उस मङ्गल-दायिनी कथा को इस प्रकार कहा—पहले किसी समय देव-दानव मिलकर अमृत निकालने के लिये क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे। किन्तु अमृत निकलने के पहले काल और अग्नि के समान प्रभावाला विष निकल आया। वरानने! उस विष को देखकर देव-दानवों के मुँह सूख गये और वे सब ब्रह्मा के निकट पहुँचे। महा तेजस्वी ब्रह्मा ने डरे हुए देवों को देख कर कहा—"महाभाग! आप सब डरे हुए क्यों हैं, आपका चित्त उद्विग्न क्यों हो रहा है? सुरसत्तम! हमने आप लोगों के ही लिये अष्ट गुण ऐश्वर्य की सृष्टि की है। फिर किसने आपके उस ऐश्वय का अपहरण किया है? आप सब त्रैलोक्य के ईश्वर हैं, आप सबको कोई सन्ताप नहीं होता है। हम यह भी देख रहे हैं कि, हमारी सृष्टि में कोई भी ऐसा नहीं है, जो हमारी आज्ञा का उल्लंघन करे। आप सब स्वच्छन्द गामी विमान-विहारी हैं और प्रजाजन से आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैनिक कर्म विपाक को भी बदल देने में समर्थ हैं। यह सब होते हुए भी फिर क्यों आप सब इस तरह डरे हुए हैं, जैसे सिंह से पीड़ित हरिण हो। क्या दुःख है, कौन शोक है, यह भय कहाँ से आया है? यह सब आप हमें शीघ्र बतलावें।

Funding by IKS-MoE

महात्मा ब्रह्मा की बातों को सुनकर ऋषि प्रमुख देव-दानवगण बोले—"महात्मा देव-दानवों द्वारा क्षीर-सागर मथा जा रहा था कि एक भयङ्कर विष निकला, जो संवर्तक अग्नि की भाँति प्रभावाला और भुजङ्ग, भृङ्ग एवं नील मेघ की तरह काला है। वह विष काल-मृत्यु की तरह, युगान्त काल में तीनों लोकों को जलाने वाली सूर्य की प्रतप्त किरण की तरह सभी दिशाओं में प्रस्फुरित हो रहा है। उस विष से जो कालाग्नि के समान कान्ति निकल रही है, उससे लाल और गोरे शरीर वाले विष्णु काले हो गये हैं। लाल और गोरे विष्णु को काला होते देखकर हम सभी देवगण डर गये हैं और आपकी शरण में आये हैं। ॥२–६॥

महा तेजस्वी ब्रह्मा ने देव-दानवों की बात सुनकर संसार के कल्याण के लिये कहा—हे तपोधन ऋषियों और सभी देवो आप लोग सुनें, सागर के मथे जाने पर आपके आगे ही जो कालाग्नि के समान काल कूट विष निकला है और जिसने निकलते ही विष्णु को काला बना दिया है, उस विषके वेग को हम, विष्णु या आप देवगण नहीं सह सकते हैं। हाँ, उसके वेग को शङ्कर भगवान् सहन कर सकते हैं। यह कह कर पद्मगर्भ की तरह आभावाले पद्मयोनि होने पर भी अयोनि; लोकपितामह ब्रह्मा ने स्तुति करना प्रारम्भ किया। हे अनेक नेत्र वाले विरूपाक्ष, हे पिनाक और वज्र धारण करने वाले! आपको नमस्कार है। हे त्रैलोक्यनाथ! हे भूतपति। हे त्रिनयन। आप तपस्वी और देवशत्रुओं के विनाशकर्ता हैं, आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं। सांख्य-योग और भूतग्राम आपसे ही प्रतिष्ठित हुआ है, आपको नमस्कार है। आप कामदेव के शरीर का दहन करने वाले, कालकाल, रुद्र, सुरेश और देवदेव हैं, आपको नमस्कार है। आप कपर्दी, कपाली, कराल, शङ्कर, विरूप, एकरूप, शिव और वरद हैं, आपको नमस्कार है। आप त्रिपुरारि, वन्दनीय, माताओं के पति, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त और आपके अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं है, आपको नमस्कार है। आप कमल धारण करने वाले, नग्न, शिखण्डी, तीनों लोकों के विधाता, चन्द्रमा और वरुण हैं, आपको नमस्कार है। आप अग्र, उग्र विप्र, अनेक चक्षु, सत्त्व, रज, तम और अव्यक्त योनि हैं, आपको नमस्कार है। आप नित्य, अनित्य, नित्यानित्य, व्यक्त, अव्यक्त, व्यक्ताव्यक्त, चिन्त्य, अचिन्त्य, चिन्त्याचिन्त्य और भक्तों की पीड़ा नाश करने वाले नर-नारायण हैं। आप उमाप्रिय, शर्व, नन्दिचक्र से अंकित शरीर वाले, पक्ष, मास, अर्धमास, संवत्सर, बहुरूप, मुण्डी, दण्डी, वरूथी, कपालहस्त, दिग्वस्त्र और शिखण्डी हैं। आप ध्वजी, रथी, यमी, ब्रह्मचारी, ऋग्यजुः सामवेद, पुरुष और ईश्वर हैं। देव! आप इस प्रकार के अन्यान्य गुणों से विभूषित हैं, आपको नमस्कार है।

महादेवजी बोले—"पार्वती! ब्रह्मा ने इस प्रकार स्तुति और प्रणाम कर फिर कहा—जिनका मस्तक गंगाजल से प्लावित हो रहा है, वही अति सूक्ष्म और योग द्वारा अचिन्त्य देव-देव महादेव हमारी भक्ति जानकर आविर्भूत हों, जैसे चन्द्रमा प्रत्यक्ष रहने पर भी किसी का आह्वान नहीं चाहते हैं। इस प्रकार लोककर्ता ब्रह्मा द्वारा विविध प्रकार के वेद-वेदाङ्ग से अनुमोदित स्तोत्रों द्वारा स्तुति किये जाने

Funding by IKS-MoE

पर हम प्रसन्न हो गये और महात्मा पितामह ब्रह्मा से सूक्ष्म वचन में कहा—"भगवन् ! भूतभव्येश ! लोकनाथ ! जगत्पति ! सुव्रत ! ब्रह्मा ! आपका कौन सा कार्य है, जिसे हम करें।" इस तरह की बात सुनकर कमल-नयन ब्रह्मा ने उत्तर दिया—नाथ ! चराचर के कल्याणकर्ता कारण रूप ईश्वर ! सुनिये—देव-दानव मिलकर क्षीरसागर का मन्थन कर रहे थे कि, नीले मेघ की तरह भयङ्कर विष उत्पन्न हुआ। उसकी कान्ति चारों ओर छिटक रही थी, संवर्तक अग्नि की तरह वह प्रज्ज्वलित हो रहा था, जान पड़ता था कि, प्रलयकाल आ गया है और सूर्य की किरणें तीनों लोकों को जलाने के लिये उद्यत हो चुकी हैं। काल और मृत्यु सामने खड़ी है। इस तरह काल और अग्नि की तरह प्रभावाले विष को उपस्थित देखकर हम सभी डर से विह्वल हो गये हैं। अतः कमल-नयन महादेव ! आप संसार के कल्याण के लिये उसे पीजिए। आप श्रेष्ठ हैं, प्रभु हैं और आप ही पङ्क्तिपावन हैं। महादेव ! आपके अतिरिक्त कोई दूसरा पुरुष तीनों लोकों में समर्थ नहीं कहा जा सकता है, जो इस विष के वेग को सहन करे। वरानने ! परमेष्ठी ब्रह्मा के वचन को सुनकर हमने स्वीकार कर लिया और देवों के लिये भी भयदायक काल की तरह महाघोर विष को पी गया। उसके पान से हमारा कण्ठ तत्क्षण कृष्ण वर्ण का हो गया ॥६१-९०॥

कमलपत्र के समान और लपलपाते नागराज तक्षक की तरह उस विष को कण्ठ में लगा देखकर लोक पितामह ब्रह्मा ने कहा—सुव्रत ! महादेव ! इस कण्ठ के द्वारा आप अत्यधिक शोभा पा रहे हैं। ब्रह्मा के वचन को सुनकर देव-दानवों, यक्ष-गन्धर्व-भूतों और पिशाच-उरग एवं राक्षसों के सामने ही हमने उस घोर विष को कण्ठ में धारण कर लिया। सुमुखि गिरिराज पुत्रि ! तब से हम नीलकण्ठ कहलाते हैं। पर्वत राज पुत्रि ! उस कालकूट के समान तेज विष को जब हमने कण्ठ में रख लिया तब देव और दानव यह देखकर अत्यन्त विस्मित हो गये। गजगामिनि ! तब सभी दैत्य-उरग-राक्षस और देवगण हाथ जोड़कर बोले—अहो, आपका बल, वीर्य और पराक्रम धन्य है, आपका योगबल और प्रभुत्व धन्य है। देवदेव ! गंगाजल की तरंग से आपके मस्तक का केशपाश खुल गया है। आप विष्णु हैं, ब्रह्मा हैं, मृत्यु हैं और वरदाता भी हैं। आप सूर्य, चन्द्र, भूमि, जल, यज्ञ, नियम, भूत, भविष्य, आदि, अन्त, स्थूल, सूक्ष्म और पुरुष हैं। आप सूक्ष्मातिसूक्ष्म परात्पर, वह्नि, पवन, चराचरात्मक जगत् के कर्ता और प्रलय काल में सब के रक्षक हैं।

देवों ने इस प्रकार स्तुति की और सिर झुका कर महादेव को प्रणाम किया। फिर वे सब महात्मा अपने-अपने वेगगामी विमानों पर चढ़कर मेरुप्रस्थ की ओर चले गये। यह लोक-विश्रुत, विख्यात नीलकण्ठोपाख्यान परम गुह्य और पवित्रतम है। स्वयं स्वयंभूने इस पाप नाशिनी कथा को कहा है। ब्रह्मा द्वारा कही गई इस कथा को जो व्यक्ति नित्य पढ़ा करता है, उसे अत्यधिक जो फल प्राप्त होता है। उस फल को हम कहते हैं। सुश्रेणि ! वरारोहे ! शरीर में स्थावर-जंगम आदि किसी भी प्रकार का विष प्रवेश कर जाय, वह इस कथा के प्रभाव से शीघ्र नष्ट हो जाता है। यह कथा अशुभ, भयङ्कर दुःस्वप्न को नष्ट करती है। राज सभा में और स्त्रियों के बीच सम्मान देती है, विवाद में जय प्राप्त कराती है, युद्ध में

Funding by IKS-MoE

वीरता आती है, मार्ग सुख कर होता है और घर धान्य-धन्य से परिपूर्ण हो जाता है । वरानने ! जो व्यक्ति नीलकण्ठ, हरित्श्मश्रु, शशांकांकितमूर्धज, त्र्यक्ष, त्रिशूलपाणि, वृषयान और पिनाकधृक् नाम को शरीर में धारण करता है, वह नन्दि के तुल्य बलवान् और पराक्रमी होकर श्री सम्पन्न हो जाता है । वह हमारी आज्ञा से सम्पूर्ण लोकों में विचरण करता है । उसकी गति को कोई नहीं रोक सकता है, जैसे आकाश में वायु का वेग कहीं नहीं रुकता । वह मेरे तुल्य बलवान् होकर प्रलय काल तक रहता है । वरारोहे ! जो मनुष्य हममें भक्ति रखकर हमारी कथा का श्रवण करता है, इस लोक और उस लोक में वह कैसा सामर्थ्यवान् हो जाता है उसको सुनो । ब्राह्मण वेदाध्यायी होता है, क्षत्रिय जय लाभ करता है, वैश्य धन लाभ प्राप्त करता है और शूद्र सुख पाता है । रोगी रोग-मुक्त और वन्दी बन्धन-मुक्त होजाता है । गर्भिणी पुत्र-प्रसव करती है और कन्या सुन्दर पति पाती है । इस लोक और परलोक में नष्ट द्रव्य प्राप्त होता है । विधान पूर्वक एक लाख गौओं के दान करने से जो पुण्य होता है । वह महादेव की इस दिव्य कथा को सुनने से प्राप्त होता है । सम्पूर्ण, आधा या एक चरण ही जो इस कथा का नित्य पाठ करता है, वह शिवलोक को जाता है । पार्वती ! हमने चतुरानन ब्रह्मा के प्रति प्रसन्न होकर पुण्य फल देने वाली इस कथा को कहा था । वही आज तुम्हारे आगे भी कही गई है । इसके बाद कार्तिकेय को प्यार करने वाले चन्द्रशेखर महादेव इस पुण्य फल देने वाली कथा को पार्वती से कहकर और उनके साथ नन्दी पर सवार होकर किष्किन्धक गुहा की ओर चले गए । ब्राह्मणो ! वायुदेव पाप नाश करने वाली, महापद देने वाली, सुलक्षण इस कथा को मुनियों से कहकर आदित्य पथ की ओर चले गये और हमने भी इस कथा को तदनुरूप हो आप लोगों से कह दिया । ॥९१-१११॥

श्री वायु महापुराण का नीलकण्ठ-स्तुति नामक चौअनवाँ अध्याय समाप्त ॥५४॥

पचपनवाँ अध्याय

लिंगोद्भव-स्तव

ऋषिगण बोले—बोलने वालों में श्रेष्ठ ! गुण, कर्म और प्रभाव में कौन श्रेष्ठ हैं एवं किनका ऐश्वर्य सबसे अधिक है ? इस बात को हम लोग अच्छी तरह से सुनना चाहते हैं ।

सूतजी बोले—इस विषय में भी हम एक प्राचीन इतिहास बतलाते हैं । देव-देव महादेव का क्या महात्म्य है और उनका क्या प्रभुत्व है इस सम्बन्ध में विष्णु ने भी त्रैलोक्य विजय-काल में पहले इस प्रकार कहा है । त्रैलोक्याधिपति महाबली विष्णु ने जब बलि को बाँध दिया, तब इन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हो

Funding by IKS-MoE

गए; क्योंकि राक्षस सब मारे जा चुके थे। उस समय भगवान् को देखने के लिये इन्द्र प्रभृति देवगण क्षीर सागर के समीप गये। वहाँ जाकर विश्व रूपात्मा आदि पुरुष हरि की वे सब स्तुति करने लगे। वहाँ सिद्ध, ब्रह्मर्षि, यक्ष, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, देवर्षि, नदी और पर्वत आदि सभी स्तवन काल में उपस्थित थे। विष्णु! आप धाता हैं, कर्ता हैं, लोकों के स्रष्टा हैं और आपके ही प्रसाद से तीनों लोकों को अविनाशी कल्याण प्राप्त होता है। आपने बलि को बाँध कर सब असुरों को जीत लिया है।

इस प्रकार जब देवों और सिद्धों के द्वारा विष्णु की स्तुति की गई तब वे पुरुषोत्तम सब देवों से बोले—देवो! हम इसका कारण बताते हैं, आप सब सुनें। जो सब जीवों के स्रष्टा हैं, काल हैं, काल के भी स्रष्टा प्रभु हैं। जिन्होंने माया का विस्तार कर ब्रह्मा के साथ सब लोकों की सृष्टि की है, उन्हीं के प्रसाद से हमने समर में जय लाभ किया है। पूर्व काल में जब तीनों लोक अन्धकार से व्याप्त था और जीवगण हमारे उदर में निवास कर रहे थे। उस समय हम भी हजार सिर, हजार नयन और हजार चरण धारण कर एवं शङ्ख, चक्र, गदा से सुशोभित होकर विमल जल में शयन कर रहे थे। उसी समय हमने एक योगी पुरुष को दूर से देखा। देखा कि वे अत्यन्त प्रभा से युक्त, सौ सूर्य की तरह दीप्तिमान्, अपनी प्रभा से प्रकाशवान्, चतुरानन, सुवर्ण की तरह दीप्तिमान् तथा कृष्ण चर्म और कमण्डलु से विभूषित हैं। वे पुरुषोत्तम एक निमेष के भीतर ही हमारे निकट उपस्थित हो गए। तब सब लोकों के द्वारा नमस्कृत ब्रह्मा ने हमसे कहा—विभो! आप कौन हैं और कहाँ से आकर यहाँ निवास करते हैं? यह आप हमसे कहें। हम चतुरानन, लोकों के कर्ता और स्वयम्भू हैं। ॥१-१५॥

इस प्रकार ब्रह्मा द्वारा कहे जाने पर हमने ब्रह्मा से कहा—हम सभी लोकों के कर्ता और बार-बार संहार करने वाले हैं। इस प्रकार हम दोनों बोल रहे थे और परस्पर जय पाने की अभिलाषा कर ही रहे थे कि, हम दोनों ने उत्तर की ओर एक जलती हुई ज्योति को देखा। पवित्र मुनियो, उस ज्वाला को देखकर हम दोनों ही विस्मित हो गये; क्योंकि उस तेज के प्रभाव से समूची जलराशि जगमगा उठी। वह अद्भुत तेज धीरे-धीरे बढ़ने लगा और हम दोनों शीघ्र ही उसका अन्त देखने के लिये उत्सुक हो उधर गये। हम दोनों ने देखा कि, वह ज्वालामाला पृथ्वी और स्वर्लोक को पार कर रही है। उस ज्वाला मण्डल के मध्य में अत्यन्त प्रभा-पूर्ण चमचमाता हुआ एक वितस्ति परिमाण का अस्पष्ट शिव-लिङ्ग था। मध्य में सुशोभित वह लिङ्ग न तो सोने का था, न चाँदी का और न तो पत्थर का ही। वह अपरिचित, अचिन्त्य, कभी लक्ष्य तो कभी अलक्ष्य होने वाला, अत्यन्त ओजपूर्ण, महाघोर, प्रतिक्षण अधिकाधिक बढ़ने वाला, सब प्राणियों को भय-त्रस्त करने वाला और अपनी ज्वाला की अधिकता से विशाल जान पड़ता था। यह देखकर मैंने कहा कि इस भयङ्कर रूपवाले लिंग का जो कि अपनी ऊँचाई से आकाश को फोड़ता सा जान पड़ता है—पता लगाना चाहिये। यह सुनकर ब्रह्मा ने मुझसे कहा—आप आलस्य-त्याग कर इसके निम्न भाग की ओर जाइये, किसी न किसी प्रकार इस रहस्यमय लिंग का अन्त जानना चाहिये। मैं स्वयं इसका पता लगाने लिये ऊपर की ओर जा रहा हूँ जब तक इसका अन्त

न होगा, ऊपर की ओर बढ़ता ही जाऊँगा । इस प्रकार संकल्प कर हम दोनों ऊपर और नीचे की ओर गये । तत्पश्चात् मैं (विष्णु) एक सहस्र वर्ष तक नीचे की ओर चलता ही गया परन्तु उसका अन्त न देख सका । तब तो सचमुच ही मैं डर गया । उधर ब्रह्मा की भी यही गति थी । वे भी चलते-चलते थक गये परन्तु पार न पा सके । तब विवश हो वे भी लौट पड़े और मेरे ही साथ उसी महासागर में निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचे । हम दोनों उस महात्मा शिव की माया से मोहित होकर किं कर्त्तव्य विमूढ़ से हो गये, चेतना लुप्त सी हो गई । निदान उस विश्वतोमुख, अव्यय, शक्तिशाली लोक के स्रष्टा एवं विनाशक प्रभु शंकर का ध्यान करने लगे और अञ्जलि बाँधकर उस शर्व, शूली, महा भैरव शब्द करने वाले, भीमरूप, दंष्ट्री, अव्यक्त और महान शंकर की स्तुति करने लगे—

हे देव ! लोक और देव दोनों के ईश ! आपको नमस्कार है, भूतपति ! महान्त ! आपको नमस्कार है, शाश्वत ! सिद्ध योनि ! आपको नमस्कार है । सब जगत् की प्रतिष्ठा करने वाले ! नमस्कार है । आप परमेष्ठी, परब्रह्म, अक्षर और परम पद हैं । आप श्रेष्ठ हैं, वामदेव, रुद्र-स्कन्द, शिव और प्रभु आपही हैं । आपही यज्ञ, वषट्कार, ओंकार और परमपद हैं, स्वाहाकार, नमस्कार, सब कर्मों के संस्कार, स्वधाकार, जपनीय, व्रत, नियम, वेद, लोक, देव और सर्वव्यापी भगवान् आप ही हैं । आकाश का शब्द गुण, समस्त प्राणियों के अव्यय आदि कारण आप ही हैं । महेश्वर ! आप भूमि में गन्धस्वरूप, जल में रस और तेजोरूप हैं । वायु का स्पर्श गुण एवं चन्द्रमा रूप आपही हैं, देवेश ! आप प्रकृति के बीजरूप से वर्त्तमान हैं । आपही ज्ञानरूप और ज्ञानी भी हैं, आप समस्त भूतों के बनानेवाले और अन्त करनेवाले काल अन्तक (यम) हैं, आपही तीनों लोकों को धारण करते और सृष्टि भी करते हैं । ॥१–३७॥

अपने पूर्व मुख से तुम इन्द्र रूप में प्रकाशित होते हो, प्रभो ! दक्षिण मुख से सभी लोकों का विनाश करते हो, अर्थात् यम रूप में विद्यमान् हो, पश्चिममुख से वरुण का कार्य करते हो एवं उत्तर मुख से चन्द्रमा का धर्म तुममें व्यवस्थित है । देव ! इस प्रकार तुम अनेक रूपों द्वारा इस समस्त जगत् के उत्पादक रूप में शोभित होते हो, तुम्हारा कभी नाश नहीं होता । देवेश ! बारह आदित्य, आठों वसु, ग्यारहों रुद्र उनचासों मरुत्, दोनों अश्विनी कुमार एवं इनके अतिरिक्त जो साध्य, विद्याधर, नाग, चारण, तपस्वी, बालखिल्य प्रभृति महात्मा तपोनिष्ठ हैं, वे सभी तुमसे उत्पन्न हुए हैं । अन्य जितने जगत् में तपोनिष्ठ व्रतधारी हैं, वे सब भी तुमसे उत्पन्न हुए है । उमा, सीता, सिनीवाली, कुहू, गायत्री, लक्ष्मी, कीर्ति, धृति, मेधा, लज्जा, शान्ति, वपु, स्वधा, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, वाग्देवी सरस्वती, संध्या, रात्रि—ये सभी तुमसे उत्पन्न हुई हैं । दस सहस्र सूर्य से भी अधिक प्रभावशाली तुम्हें हमारा नमस्कार है । हे सहस्रों चन्द्रमा के समान कान्तिशालिन् ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं । पर्वत के समान विशाल स्वरूप धारण करने वाले, सर्वगुणों के आकर स्वरूप तुम्हें हम नमस्कार करते हैं । हे पट्टिश के धारण करने वाले, चर्म एवं विभूति से विभूषित तुम्हें हमारा नमस्कार है । तुम रुद्र हो, पिनाकपाणि हो, सायक तथा चक्र धारण करने वाले हो, तुम्हें हमारा नमस्कार है । हे भस्म से विभूषित अंगों वाले !

Funding by IKS-MoE

कामदेव के शरीर को नष्ट करने वाले तुम्हें हम नमस्कार करते हैं देव ! तुम स्वर्णिम वस्त्र धारण करने वाले हो, हिरण्य बाहु हो, हे हिरण्यरूप, तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है, हे हिरण्यनाभ ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे सहस्रों नेत्रों से विचित्र आकृति वाले, हिरण्यरेता देव ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, नमस्कार है। हे देव ! तुम हिरण्य के समान वर्णवाले हो, हिरण्यगर्भ हो। हे देव ! तुम हिरण्य का चीर धारण करने वाले हो, हिरण्य दान करने वाले हो, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे हिरण्य की माला धारण करने वाले देव ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, देव ! तुम हिरण्यवाही हो, तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। हे देव ! तुम हिरण्यवर्मा हो, अतिभीषण नाद करने वाले तुम्हें हमारा नमस्कार है, नमस्कार है। हे भीषण वेगशाली ! शंकर ! नीलकण्ठ ! तुम्हें हमारा नमस्कार है। हे दिव्य सहस्र बाहु धारण करने वाले ! नृत्य एवं वाद्य को पसन्द करने वाले ! तुम्हें हमारा बारम्बार नमस्कार है। ॥३७–५०॥

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर महा बुद्धिमान्, कोटि सूर्य के समान कान्ति वाले, महायोगी भगवान् प्रकट हुए। उस समय प्रसन्नचित्त महेश्वर महादेव प्रार्थियों की ओर मुख कर कुछ बोलते हुए शतकोटि मुखों द्वारा आकाश को निगलते हुए से शोभित हो रहे थे। उस समय भगवान् पिनाकपाणि अति शोभायुत हो रहे थे। उनके एकमात्र कण्ठ था, जटा एक थी, शरीर विविध आभूषणों से विभूषित था, विविध रत्नों से अंगों की शोभा चित्र विचित्र हो रही थी, शरीर पर विविध प्रकार के पुष्प चन्दन सुशोभित हो रहे थे। वृषभ पर समासीन थे, हाथ में शूल धारण किये थे, दण्ड एवं कृष्णमृग का चर्म धारण किये कपाल लिये हुए थे। उस समय उनकी आकृति अतिघोर थी, सर्प का यज्ञोपवीत धारण किया था; पर ऐसा स्वरूप होते हुए भी वे देवताओं के लिए भयंकर नहीं प्रतीत हो रहे थे। उनके स्वर दुन्दुभि के एवं बादलों की गड़गड़ाहट के समान भीषण तथा गम्भीर थे। उस समय शंकर ने भीषण अट्टहास किया जिससे आकाशमण्डल व्याप्त हो गया। महात्म शंकर के उस भीषण नाद से हम लोग भयभीत हो गये। तदनन्तर महायोगी शंकर ने कहा, देवताओं में श्रेष्ठ ! मैं तुम दोनों पर प्रसन्न हूँ। भय को छोड़कर मेरी महामाया को देखो, पूर्वकाल में तुम दोनों सनातन पुरुष मेरे शरीर से ही उत्पन्न हुए हो। यह लोकपितामह ब्रह्मा मेरे दाहिने हाथ हैं, और यह नित्य युद्ध में स्थित रहने वाले विष्णु मेरे बाएँ हाथ हैं। मैं तुम दोनों पर अति प्रसन्न हूँ, और मनोऽभिलाषित वरदान दे रहा हूँ। शिव की ऐसी बातें सुनकर निष्पाप महात्मा ब्रह्मा, विष्णु अति प्रसन्न मन से शिव के चरणों पर बारम्बार प्रणत हुए और बोले। देव ! यदि सचमुच हम पर आपकी प्रीति उत्पन्न हुई है और वरदान देने के लिए प्रस्तुत हैं तो सुरेश्वर ! आपमें हमारी भक्ति सर्वदा बनी रहे। ॥५१–६०॥

भगवान् जी बोले :—महाभाग्यशाली ! जैसा तुम दोनों कह रहे हो, वैसा ही हो, विविध प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि करते जाओ। भगवान् शंकर इतना कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये। मैंने उन योगी शंकर के प्रभाव का यह वर्णन तुम लोगों को सुना दिया उन्हीं भगवान् ने इस समस्त चराचर जगत की सृष्टि की है, हम लोग तो हेतुमात्र हैं। ये भगवान् स्वरूप रहित हैं, अज्ञात हैं, अव्यक्त हैं, लोक में उनकी

'शिव' नाम से प्रसिद्धि है, वे अचिन्त्य हैं, अदृश्य हैं, ज्ञान चक्षु पण्डितजन ही उन्हें देख सकते हैं। उन देवाधिपति को हम नमस्कार करते हैं जिनके द्वारा ज्ञान चक्षु पण्डित जन सूक्ष्म एवं अचिन्त्य पदार्थों का दर्शन करते हैं। हे महादेव ! तुम्हें हमारा नमस्कार है, महेश्वर ! हम तुम्हें नमस्कार करते हैं, सभी सुरासुरों में श्रेष्ठ ! मनोहंस ! तुम्हें हमारा नमस्कार स्वीकार हो। ।।६१–६५।।

सूतजी बोले—इस प्रकार की बातें सुनकर सभी देवगण महात्मा शंकर को नमस्कार करते हुए अपने-अपने वास-स्थान को चले गये। जो मनुष्य महात्मा शंकर के इस उपर्युक्त स्तोत्र का पाठ करता है, वह सभी मनोरथों को प्राप्त करता है तथा सभी पापों से विमुक्त होता है। इस प्रकार महामहिमामय सनातन ब्रह्म भगवान् विष्णु ने महादेव की कृपा से इन उपर्युक्त बातों की चर्चा की। और वह सब महेश्वर की पराक्रम प्रकट करने वाली बातें मैंने तुम लोगों को सुनाईं ।।६१–६८।।

श्री वायु महापुराण का लिङ्गोद्भव स्तव नामक पचपनवाँ अध्याय समाप्त ।।५५।।

छप्पनवाँ अध्याय

पितरों का वर्णन

शांशपायन ने कहा:— सूतजी ! प्रत्येक मास की अमावास्या तिथि को इडा[1] का पुत्र पुरुरवा किस प्रकार स्वर्ग को जाता था और किस प्रकार पितरों का तर्पण करता था ?

सूत ने कहा:– शांशपायन ! उस महात्मा इलापुत्र राजा पुरुरवा का प्रभाव आपको बतला रहा हूँ, चन्द्रमा का सूर्य के साथ संयोग, जल के सारभूत चन्द्रमा की शुक्ल और कृष्ण पक्ष में ह्रास और वृद्धि, पितरों के पक्ष का निर्णय, चन्द्रमा से अमृत की प्राप्ति, पितरों का तर्पण, कव्यों को वहन करने वाले अग्नि और आत्तसोम पितरों का दर्शन इलापुत्र पुरुरवा ने पितरों का तर्पण किस प्रकार किया, इसका विवरण तथा पर्वों का वर्णन— इन सब विषयों को क्रमानुसार बतला रहा हूँ। ।।२–५।।

जिस समय चन्द्रमा तथा सूर्य एक ही रात्रि तथा एक ही मण्डल में समान नक्षत्र पर होते हैं, उसे अमावास्या कहते हैं, प्रत्येक अमावास्या को पुरुरवा अपने नाना तथा पितामह सूर्य तथा चन्द्रमा को देखने जाता था, और उन्हें प्रणाम कर समय की प्रतीक्षा करता हुआ स्थित रहता था। प्रसन्न हुए चन्द्रमा से पितरों के लिए अमृत का परिस्रवण होता था। इला का पुत्र विद्वान् पुरुरवा इस प्रकार

---

[1] पुरुरवा इला का पुत्र था, संस्कृत में ड और ल में भेद नहीं माना जाता।

Funding by IKS-MoE

प्रयत्नपूर्वक प्रत्येक मास की अमावास्या को स्वर्गलोक में उपस्थित रहकर पितरों समेत चन्द्रमा की उपासना करता था। दो लव[२] कुछ मात्र पर्यन्त ही वे दोनों (पितर और सोम) रहते हैं अर्थात् कव्य ग्रहण करते हैं, अतः सिनीवाली के प्रमाण-काल के भीतर ही सिनीवाली का प्रेमी उपासक पुरुरवा चतुर्दशी युक्त अमावास्या तथा प्रतिपदा युक्त अमावास्या—इन दोनों को भली भाँति उपासना योग्य समझकर अमावास्या और कुहू की उपासना करता था, उस समय वह भानुमती (सूर्ययुक्त अमावास्या) के एक काल की प्रतीक्षा करता हुआ वहाँ निवास करता था। पितरों की एक मास की तृप्ति के लिए चन्द्रमा से सुधामृत का प्रस्रवण होता है। कृष्णपक्ष में पन्द्रह सुधामृत की प्रस्रवण करने वाली सूर्य की किरणों द्वारा चन्द्रमा से दुहे गये सुधामृत का पान होता है। नृपतिवर पुरुरवा इस शीघ्र स्रवित चन्द्रमा के अमृत द्वारा पितरों की विधि से निर्वापण कर पितरों को तृप्त करता था, सौम्य वर्हिषद, काव्य और अग्निष्वात्त, ये पितर हैं। ऋतु जो अग्नि कहा गया है, वही संवत्सर माना गया है उसीसे ऋतुगणों की उत्पत्ति हुई, उन ऋतुगणों से आर्तवों की उत्पत्ति हुई। वे आर्तव अर्धमास नाम से प्रसिद्ध वर्ष के पुत्र पिता कहे जाते हैं। ऋतुगण पितामह हैं, वे भी मास नाम से प्रसिद्ध तथा वर्ष के पुत्रगण कहे जाते हैं। ब्रह्मा के पुत्र पंचाब्द नाम से प्रसिद्ध जो देवगण हैं, वे प्रपितामह नाम से प्रसिद्ध हैं। सौम्य नामक पितरगण सौम्य से उत्पन्न जानने चाहिये, काव्य नामक पितर कवि (भृगु) के पुत्र हैं। सोम से उत्पन्न होने वाले सोमपायी पितरगण उपहूत नाम से स्मरण किये जाते हैं, आज्य (घृत) पान करने वाले पितरगण काव्य कहे जाते हैं—और इस प्रकार ये पितरवर्ग तृप्ति लाभ करते हैं। काव्य, वर्हिषद और अग्निष्वात्त—पितरों के ये तीन भेद हैं। यज्ञकर्त्ता गृहस्थ ऋतु और वर्हिषद (पितरों की श्रेणी है) होते हैं एवं वे ही गृहस्थ अग्निष्वात्त तथा आर्तव पितर भी होते हैं। अष्टकापति, काव्य, पञ्चाब्द नामक पितर कहे जाते हैं। इनके संवत्सर का नाम अग्नि है, सूर्य परिवत्सर हैं, चन्द्रमा इद्वत्सर है, वायु अनुवत्सर है, और रुद्र वत्सर है, जो युगात्मक पाच वर्ष कहे गये हैं, वे लेखा ऊष्मपा और दिवाकीर्त्य नाम से स्मरण किए जाते हैं। ये प्रत्येक मास में अमावास्या तिथि को आकाश में सुधा का पान करते हैं। राजा पुरुरवा जब तक जीवित था इसी प्रकार सुधा द्वारा उन पितरों को तृप्त करता था। प्रत्येक मास में चन्द्रमा से यतः प्रस्रवित होता था अतः सोमपायी पितरों के लिये वह सुधा अमृत था, इस प्रकार क्षरित वह अमृत सौम्य, सुधा और मधु नाम से प्रसिद्ध है। कृष्णपक्ष में क्रमशः चन्द्रमा की पन्द्रह कलाओं को, जो जलमयी हैं, छन्द से उत्पन्न होने वाले तैंतीस देवगण पान करते हैं, और इस प्रकार सुधामृत को एक मास पान करने के उपरान्त चले जाते हैं। देवताओं द्वारा इस प्रकार पान किया गया चन्द्रमा अमावास्या को पन्द्रहवें भाग में स्थित रह कर गमन करता है। सुषुम्ना द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुए चन्द्रमा के सुधामृत को क्रमशः पितरगण अमावास्या को दो कला मात्र समय तक पान

---

[२] दो काष्ठा, अर्थात् ३६ निमेष का अल्प समय।

करते हैं। और इस प्रकार देवताओं के पान द्वारा चन्द्रमा के क्षीण हो जाने पर सूर्य अपनी उसी सुषुम्ना नामक रश्मि से सोमपान करने वाले पितरों की तृप्ति करता है। कलाओं से निःशेष हो जाने पर सूर्य चन्द्रमा को पुनः पूर्ण करता है। सुषुम्ना द्वारा पूर्ण चन्द्रमा की कलाओं के एक-एक भाग को क्रमशः देवगण पान करते हैं। वे कलायें क्षीण होकर कृष्ण और पूर्ण होने पर शुक्ल कहाती हैं, और इस प्रकार क्रमशः चन्द्रमा क्षीण और पूर्ण होता है। इस प्रकार सूर्य के पराक्रम से चन्द्रमा का शरीर पूर्ण होता है, और पूर्णमासी तिथि को उसका सम्पूर्ण मण्डल श्वेत दिखाई पड़ता है। शुक्ल और कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा की ह्रास और वृद्धि इसी प्रकार होती रहती है। पितृमान् चन्द्रमा इस प्रकार क्रमशः इद्वत्सर स्मरण किया गया है, और वह सुधामृत को प्रस्रवित करने वाली पन्द्रह किरणों से घिरा हुआ है। ॥ ६–३१ ॥

अब इसके उपरान्त पर्वों की संधियों का वर्णन कर रहा हूँ। जिस प्रकार ईख और बाँसों के पोर गाँठों वाले होते है, उसी प्रकार आधे मास पर होने वाली शुक्ल पक्षीय और कृष्ण पक्षीय तिथियों को भी काल का पर्व कहा गया है। पूर्णिमा और अमावास्या के भेद से उनकी ग्रन्थि और संधियाँ कही गई हैं। तृतीया आदि तिथियाँ आधे मास की पर्व तिथियाँ हैं, अग्न्याधान आदि सत्क्रियाएँ इसीलिए इन पर्वों की संधियों में की जाती हैं। सायंकाल के समय अनुमति का दो लव काल तथा राका का तीसरे पहर का दो लव काल सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा तिथि को भी अपराह्न काल में सत्क्रियाओं के योग्य माना गया है। सायंकाल के समय यदि कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा की प्रवृत्ति होती है तो वह समय पूर्णमासी का है। चन्द्रमा और सूर्य परस्पर युग मात्र के व्यवधान पर अवस्थित रह विषुव रेखा के ऊपर समसूत्र में जब उदित होते हैं तो परस्पर दर्शन होता है। इसीका नाम व्यतीपात है। पूर्णमासी को भी इस प्रकार परस्पर दर्शन होता है। सूर्य को ही आधार मानकर समय के विषय में विशेष संख्याओं की कल्पना की जाती है। सूर्य ही समय का मार्ग प्रदर्शक है और समय के ही अधीन सत्क्रियाओं का विधान माना गया है। जिस रात्रि के संधिभाग में पूर्णिमा तिथि हो, पूर्ण चन्द्रमा का प्रकाश हो, उसे अनुमती[१] पूर्णिमा कहा गया है क्योंकि पितरगण देवताओं के साथ उसे देखते हैं। पूर्णिमा तिथि को चन्द्रमा अत्यन्त सुप्रकाशित होता है अतः चन्द्रमा के रंजन के कारण ही उसे कवि लोग राका कहते हैं। जिस पन्द्रहवीं रात्रि को एक ही नक्षत्र में चन्द्रमा तथा सूर्य एक साथ विराजमान रहते हैं उसे अमावास्या कहते हैं। जिस दिन के तीहरे पहर में चन्द्रमा और सूर्य पूर्णरूप में व्यतीपात की भाँति परस्पर एक दूसरे को देखते हैं,

---

[१] जिस पूर्णिमा में एक कला न्यून चन्द्रमा सूर्यास्त से कुछ पहिले उदय होता है, वह अनुमती कहलाती है। यह पूर्णिमा चतुर्दशी युक्त होने के कारण देवताओं और पितरों—दोनों को अनुमत है, अतः अनुमती नाम से प्रसिद्ध है। सूर्यास्त के उपरान्त अथवा सूर्यास्त के साथ ही जिस तिथि को पूर्णचन्द्र उदित होता है वह राका कहलाती है। चन्द्रमा की रंजनकारिका होने के कारण यह राका है—देवी पुराण से।

उसे पूर्णिमा कहते हैं ? ऊपर कही गई जिस अमावस्या तिथि को चन्द्रमा और सूर्य एक ही स्थान में समागत होकर एक दूसरे को देखते हैं उसे दर्श कहा जाता है । अमावस्या तिथि के दो लव तथा पर्व संधियों के दो लव काल—केवल कु हू इन दो अक्षरों के उच्चारण में जितना काल लगता है—सत्क्रियाओं के योग्य माना जाता है । मध्याह्न में सूर्य के साथ संगत होकर अमावास्या को, जब कि चन्द्रमा नहीं दिखाई पड़ता, दिन के आधे भाग से रात्रि के आधे भाग तक चन्द्रमा सूर्य के साथ अवस्थित रहता है । तदनन्तर सूर्य से मुक्त होता है । प्रातःकाल के समय दो कला काल तक चन्द्रमा के साथ रहकर मध्याह्न के समय सूर्य चन्द्रमण्डल से बाहर निकलता है । और इस प्रकार शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि से सूर्य मण्डल से चन्द्रमा मुक्त हो जाता है, छोड़े जाते हुए उन दोनों सूर्य और चन्द्र मण्डलों के संगम का त्याग काल आहुति और वषट् क्रिया (यज्ञ और तर्पण) का उत्तम काल है । इस पर्व का—अमावास्याकाल का—ही नाम ऋतुमुख जानना चाहिये । अमावास्या के दिन चन्द्रमा की कला का अधिकाधिकरूपेण क्षय हो जाता है । इसलिये उस दिन सूर्य ही ग्रहण किया जाता है, यही कारण है कि अमावस्या के दिन ही सूर्य राहु और केतु के द्वारा ग्रस लिया जाता है । उन मान्य कलाओं के आधार पर ही बुद्धिमान् विद्वानों ने तिथियों का नामकरण किया है । उस तिथि (अमावस्या) को सूर्य और चन्द्रमा परस्पर एक दूसरे को देखते हैं । उसी दिन से चन्द्रमा सूर्य मण्डल से क्रमशः निकल कर पृथक् होता है । चन्द्रमा दो लव काल मात्र सूर्यमण्डल का स्पर्श करता है, वह उतना काल अमावस्या के निमित्त होने वाले यज्ञ एवं वषट् क्रिया के उपयुक्त है । कोकिल की 'कुहू' यह आवाज जितने समय में सम्पन्न होती है, उतने ही काल वाली अमावास्या कुहू नाम से स्मरण की जाती है । जिस अमावास्या तिथि को क्षीण चन्द्रमा सिनीवाली[1] के प्रमाण से सूर्य के मण्डल में प्रवेश करता है अतः उसे सिनीवाली नाम से स्मरण करते हैं । अनुमती, राका,[2] सिनीवाली और कुहू—इन सबों के दो लव काल केवल कुहू मात्र प्रशस्त माने गये हैं, इस प्रकार पर्व की संधियों का यह दो लव काल प्रशस्त माने गये हैं, सब पर्व तिथियों का पूर्वकाल समान रूप से प्रशस्त है और वषट् क्रिया के लिये प्रशस्त है । चन्द्र और सूर्य का व्यतीपात योग पर संयोग और पूर्णिमा दोनों तुल्यफलदायी माने जाते हैं । प्रतिपदा और पूर्णिमा का पर्वकाल द्विमात्रिक होता है, कुहू और सिनीवाली का पर्वकाल द्विलवात्मक होता है । चन्द्रमा के सूर्य और अग्निमण्डल से युक्त रहने पर जो पर्वकाल होता है वह कलाश्रम मात्र होता है । इस प्रकार रात्रि की पर्वसन्धियों में सम्पूर्ण मण्डल वाला श्रीमान् चन्द्रमा उपरक्त होता है (ग्रहण लगता है) जिस कारण से सोम पूर्णिमा के दिन पञ्चदश कलाओं के साथ बढ़ते हैं (पूर्ण होते हैं) इसीलिये उसको पूर्णिमा कहा जाता है । दिनों के अनुसार पाँच और दश कलाओं से ही वे बढ़ते हैं इसलिये सोम में पन्द्रह कलायें ही होती हैं सोलह कलायें नहीं होतीं । इसीलिये पञ्चदशी (कला या पूर्णिमा) में ही

---

[1] चतुर्दशी युक्त अमावास्या । [2] इन दोनों का परिचय पूर्व में आ चुका है ।

चन्द्रमा का महात्त्य (ग्रहण) होता है। ये ऊपर कहे गये सोमपायी और सोमवर्धक पितागण और गण हैं। वे ऋतु और आर्तवदेव परस्पर एक दूसरे की सहायता एवं पुष्टि भी करते हैं।

इसके अनन्तर मासश्राद्ध के भोग करने वाले पितरों का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी गति, उनका पराक्रम और उनको श्राद्धीय वस्तुओं की प्राप्ति कैसे होती है इसका भी वर्णन कर रहा हूँ सावधान हो सुनिये। मृत व्यक्तियों के आवागमन का हाल कोई योग दृष्टि सम्पन्न महातपस्वी भी नहीं जान सकते, तो फिर मेरे समान चर्म चक्षु वाले साधारण व्यक्ति कैसे जान सकते हैं ? उन श्राद्धदेव पितरों को लौकिक पितर कहा जाता है। सब अयोनिज और सौम्यदेव, एवं यज्ञ करने वाले पितर देव तुल्य हैं ऐसे पितरों की देवगण मनुष्य और पितर भी पुष्टि करते हैं अर्थात् सम्मान करते हैं। पिता, पितामह उसी प्रकार प्रपितामह और जो सोम से यज्ञ करने वाले हैं वे सोमवन्त कहे जाते हैं। जो यज्ञ करने वाले होते हैं वे मनुष्य मर कर बर्हिषद् पितर होते हैं। जो यज्ञ आदि सत्कर्मों के अनुष्ठान में रहते हैं वे पुनर्जन्म ग्रहण करने के समय तक तृप्त रहते हैं। उनमें से जो होमपरायण, यज्ञाधिकारियों से यज्ञ करने वाले हैं वे अग्निष्वात्त कहे गये हैं। जो अपने आश्रम-धर्मानुसार विहित अनुष्ठानों में निरत रहते हैं वे धर्मसाम्य के कारण योग्य ब्राह्मणों द्वारा अग्निष्वात्त ही कहे जाते हैं। जो श्रद्धायुक्त कर्मों को करते हैं और ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, प्रजोत्पत्ति, श्रद्धा, विद्या और दान—इन सात श्रेष्ठकर्मों में जीवन भर निरत रहते हैं वे मृत्यु के बाद भी कष्ट नहीं प्राप्त करते प्रत्युत सोमपान करने वाले, सूक्ष्म-शरीर देवों और पितरों के साथ स्वर्ग में जाकर आनन्द प्राप्त करते हैं और पितरों को सन्तुष्ट करते हैं। क्रियावान् और प्रजावान् जन ही सिद्ध और प्रशंसनीय हैं। पितरों के निमित्त दिये हुये दान से, उनके कुलों में उत्पन्न एवं बन्धुजनों द्वारा दिये गये श्राद्धान्न से सोम लोक में रहने वाले श्राद्धभोजी पितर एक महीने तक तृप्त रहते हैं ऐसे ही पितरों को मासश्राद्धभुक् पितर कहते हैं। ऊपर कहे गये पितर मनुष्यों के पितर कहे जाते हैं जो कि मास-मास में श्राद्ध भोग करते हैं। उनसे अतिरिक्त जो हैं वे अपने संकीर्ण कर्मों के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। वे आश्रम-धर्मभ्रष्ट स्वधा स्वाहा (पितृकर्म, देवकर्म) विमुख दुरात्मा शरीर नष्ट होने पर यमपुरी में प्रेत बनकर भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनायें सहते हुये, कृतकर्मों पर पश्चाताप करते हैं। दीर्घ आयु वाले वे अतिकृश-काय, वस्त्र रहित, क्षुधा और पिपासा से व्याकुल हो इधर-उधर भटकते फिरते हैं। नदी, तालाब, वापी आदि जलाशयों के जल की इच्छा से वहाँ-वहाँ जाते हैं और दूसरों के दिये हुये अन्न की प्राप्ति की इच्छा रखते हुये इधर-उधर घूमते रहते हैं। वे भीषण नरकपुरी के यातनास्थानों में—अर्थात् शालमली, वैतरणी, कुम्भीपाक, करम्भवालुका, असिपत्रवन, शिला संपेषण, आदि घोर नरकों में स्वकर्मानुसार गिराये जाते हैं। ऐसे प्रेतात्माओं के परिवार वालों को चाहिये कि वे उन प्रेतात्माओं के नाम गोत्रादि का उच्चारण कर अपसव्य हो पृथ्वी पर कुशा के ऊपर उनके निमित्त तीन पिण्ड दें। ऐसा करने से उन प्रेतस्थानों में यातना पाने वाले पितरों को परम शान्ति मिलती है। जो अपने कर्मों के अनुसार इन यातना स्थानों को न जाकर इस पृथ्वी पर पशु, स्थावर आदि पाँच प्रकार की योनियों में अथवा भूतों एवं नाना रूपात्मक जीव श्रेणी

या तिर्यग्योनियों में उत्पन्न हो गये हैं, उनके लिये श्राद्ध में दिया हुआ अन्न उन योनियों के उपयुक्त आहार बनकर उनको मिलता है। श्रेष्ठकाल में विधिपूर्वक सत्पात्र को श्राद्ध-निमित्त दिया हुआ पदार्थ किसी भी योनि में गये हुये पितर को प्राप्त होता है। जिस प्रकार गौओं में छिपी हुई अपनी माँ को (गौ का) बछड़ा प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार श्राद्ध में मन्त्र द्वारा जिस पितर के उद्देश से अन्न दिया जाता है वह उसको अवश्य प्राप्त होता है। इस प्रकार सर्वाङ्ग पूर्ण श्राद्ध, और मन्त्र द्वारा श्राद्ध में दिये गये पदार्थों की प्राप्ति के विषय में प्रेतों के आवागमन विद्या को जानने वाले (प्रेतविद्याभिज्ञ) सनत्कुमार ने अपने दिव्यचक्षुओं से देखकर बतलाया है। ये पितर बह्लीक, उष्मपा और दिवाकीर्त्या नाम से भी कहे जाते हैं। कृष्ण पक्ष उन पितरों का दिन और शुक्ल पक्ष विश्राम (शयन) करने के लिये रात्रि है। ये इतने पितृ देवता और देव पितर, ऋत और आर्तव सब एक दूसरे के पितर (जनक) हैं। ये जितने पितर देवता हैं औ जो मानुष पितर हैं, उनके श्रद्धायुक्त कर्म से और उनकी प्रसन्नता से सभी देव पितर भी प्रसन्न रहते हैं। इस प्रकार सोमपायी पितरों के भी पितर पुराणों में कहे गये हैं। इन पितरों का महत्व पुराणों में निश्चित रूप से कहा गया है। इस प्रकार से सूर्य, चन्द्रमा, पितर और पुरुरवा का समागम, सुधा, अमृत की प्राप्ति, पितरों की तृप्ति, पूर्णिमा अमावास्या का पुण्यकाल, पितरों का स्थान आदि का वर्णन संक्षेप में तुमसे कहा है, यही सनातन सर्ग है। यद्यपि इन सबका विस्तार अधिक है फिर भी मैंने इनके एक देश का वर्णन किया है, इसकी अलग-अलग गणना नहीं की जा सकती। ऐश्वर्य चाहने वाले मनुष्यों को इस प्रकार श्रद्धा करनी चाहिये। यहाँ पर मैंने विस्तार पूर्वक यथार्थरूप से स्वाम्भुव मनु के सृष्टि तत्व का वर्णन किया है। अब आप लोग और क्या सुनना चाहते हैं ॥१—९३॥

श्री वायुमहापुराण में पितृ वर्णन नामक छप्पनवाँ अध्याय समाप्त ॥५६॥

सत्तावनवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा:—सूत जी! पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में जो चार युग थे उन सबों के स्वभाव एवं तत्त्व को विस्तारपूर्वक सुनने के हम इच्छुक हैं।

सूत ने कहा:—ऋषिवृन्द! पृथ्वी आदि के वर्णन प्रसङ्ग में मैंने जिन चारों युगों का वर्णन पहिले किया था उनको विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये। प्रत्येक युगों का मान संख्याओं से परिगणित कर युग, युगभेद, युगधर्म, युगसंधि, युगांश, तथा युगसंधान—इन छः प्रकार के युगों को तत्त्वतः बतला रहा हूँ। मानव वर्ष लौकिक प्रमाण से माना गया है, उसी मानव वर्ष के प्रमाण से इन चारों युगों का

प्रमाण बतला रहा हूँ। निमेषकाल, काष्ठा, कला और मुहूर्त—ये लौकिक काल के मापक हैं। एक लघु अक्षर के उच्चारण में जितना समय उपेक्षित है उसे निमेषकाल के बराबर जानना चाहिये। पन्द्रह निमेष की एक काष्टा होती है, तीस काष्ठा की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त होता है, और तीस मुहूर्त का एक दिन रात होता है। मनुष्य और देव दोनों के दिन रात का विभाजन सूर्य करता है, उसमें से दिन तो कर्म विधान के लिए और रात्रि शयन के लिए बनाई गई है। पितरों का एक दिन रात एक मास का होता है, उसमें से कृष्ण पक्ष तो उनका दिन और शुक्ल शयन के लिए रात्रि रूप है इस प्रकार मानव का तीस मास पितरों का एक मास कहा गया है और तीन सौ साठ मानव मास का पितरों का एक वर्ष होता है। मानव वर्ष के मान के अनुसार उसके सौ वर्ष का पितरों का तीन वर्ष और चार मास कहा गया है। लौकिक मान से मानव के एक वर्ष का देवताओं का एक दिन इस शास्त्र में निश्चित माना गया है। इस दिव्य (देवताओं के) वर्ष का विभाग इस प्रकार है, उसमें उत्तरायण तो दिन है और दक्षिणायन रात्रि। ये जो दिव्य दिन रात कहे गये हैं, उसके तीस दिन रात का एक दिव्य मास होता है अर्थात् मानव के तीस वर्षों का एक दिव्य मास कहा जाता है। और इस प्रकार सौ मानव वर्ष के तीन मास दस दिन देवताओं के जानना चाहिये। यह देवताओं के वर्ष का प्रमाण स्मरण किया गया है। मानव के तीन सौ साठ वर्षों का एक दिव्य वर्ष कहा गया है। मानव के तीन सहस्र और तीस वर्षों का एक सप्तर्षिवत्सर कहा गया है और नव सहस्र नब्बे वर्ष का एक क्रौंच संवत्सर स्मरण किया गया है। मानव के छत्तीस सहस्र वर्षों का देवताओं का एक सौ वर्ष स्मरण किया जाता है[१]—यह देवताओं के वर्ष की गणना का क्रम कहा गया है। तीन नियुत साठ सहस्र मानव वर्षों का एक सहस्र दिव्य वर्ष संख्याविद् लोग जानते हैं। इस प्रकार ऋषियों ने दिव्य संख्या द्वारा दिव्य प्रमाण से युग की अवधि की कल्पना की है। भारतवर्ष में कवियों ने युगों की संख्या चार बतलाई है, इन चारों युगों में सर्वप्रथम कृतयुग तदनन्तर त्रेता, द्वापर और कलियुग की कल्पना हुई है। उनमें कृतयुग को चार सहस्र वर्षों का कहा गया है, और उसकी संध्या तथा संध्यांश का प्रमाण चार सौ वर्षों का है। अन्य तीनों युगों के प्रमाण, संध्या तथा संध्यांश में क्रमशः एक-एक सहस्र तथा एक-एक सौ वर्षों की न्यूनता रहती है। इस प्रकार त्रेता युग का प्रमाण तीन सहस्र वर्षों का कहा गया है और उसकी संध्या तथा संध्यांश का प्रमाण तीन सौ वर्षों का है। पण्डित जन द्वापरयुग का प्रमाण दो सहस्र वर्षों का बतलाते हैं उसकी सध्या तथा संध्यांश की संख्या भी दो-दो सौ वर्ष की मानी गई है। इसी प्रकार विद्वानों ने कलियुग का प्रमाण एक सहस्र वर्ष का और उसकी भी संध्या तथा सध्यांश एक-एक सौ वर्षों का माना है। यह बारह सहस्र वर्षों की संख्या सतयुग त्रेता द्वापर तथा कलियुग इन चारों युगों की कही गई है, यह दिव्य वर्षों का प्रमाण है। इस संसार में संवत्सरों की कल्पना मानव वर्ष के प्रमाण

---

[१] आनन्दाश्रम की प्रति में इस श्लोक के मध्य में 'षष्टिश्चैव सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु' इतना पाठ अधिक दिया गया है, जो अयुक्त है। क्योंकि इस प्रकार साठ सहस्र मानव वर्ष का अर्थ होता है जो अशुद्ध है। गणित करने पर छत्तीस सहस्र मानव वर्ष का एक शत दिव्य वर्ष होता है।

Funding by IKS-MoE

से हुई है, अतः उसीके द्वारा कृतयुग का प्रमाण बतला रहा हूँ, वह कृतयुग चौदह लाख चालीस सहस्र मानव वर्ष का कहा गया है, कलियुग[1] का प्रमाण तो ....। चारों युगों का प्रमाण इसी प्रकार संध्या और संध्यांश से विहीन छत्तीस नियुत वर्ष अर्थात् छत्तीस लाख वर्ष स्मरण किया गया है तथा तैंतालीस नियुत अर्थात् तैंतालीस लाख तथा बीस सहस्र मानव वर्षों का संध्या और संध्यांशों समेत चारो युगों का प्रमाण कहा गया है। इसी प्रकार सतयुग त्रेता द्वापर और कलियुग—इन चारों युगों का इकहत्तर गुना काल एक मन्वन्तर का कहा गया है। मन्वन्तर के वर्षों की सख्या का प्रमाण इस प्रकार है, सुनिये। तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस सहस्र मानव वर्ष को एक मन्वन्तर का समय कहा गया है, काल की संख्या को जानने वाले द्विजगण संधिकाल को छोड़कर मन्वन्तर की यही संख्या स्मरण करते हैं। युगों के साथ मन्वन्तर के समय का वर्णन इस प्रकार कर चुका। ॥२—३६ ॥

जैसा कि पहले कह चुका हूँ इन चारों युगों में कृतयुग का प्रमाण चार सहस्र दिव्य वर्षों का है, इसके अतिरिक्त त्रेता, द्वापर तथा कलियुग को बतला रहा हूँ। इसके पहिले ऋषियों के वंश वर्णन के प्रसंग में व्यग्रतावश मैं इन युगों के प्रमाणों का निरूपण कर चुका हूँ। एक प्रसंग में आये हुए संयुक्त अर्थ का वर्णन दो प्रकार से अलग-अलग नहीं किया जा सकता, और क्रमशः इनके वर्णन को तो मैं तुम्हें सुना भी चुका हूँ। उस त्रेता युग के आदिम काल में ब्रह्मा द्वारा निर्दिष्ट किये गये श्रौत एवं स्मार्त धर्मों का प्रचार मनु और सप्त ऋषियों ने किया था। सातों ऋषियों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद से अनुमत स्त्री परिग्रह, अग्निहोत्रादि श्रौत धर्म का उपदेश किया था। परम्परा से चले आनेवाले वर्णाश्रम से अनुपम आचार व्यवहार के पोषक स्मार्त धर्म का प्रचार स्वायम्भुव मनु ने किया था। उस त्रेतायुग के आदिम काल में उन परम तपस्वी सातों ऋषियों और मनु के सत्य, ब्रह्मचर्य, ज्ञान एवं तपस्या के कारण वेदोक्त क्रम से बुद्धि व्यापार एवं कर्मण्यता के बिना ही उन मंत्रों की अभिव्यक्ति हुई। आदिकल्प में वे मंत्र तारकादि निदर्शनों द्वारा देवताओं को स्वयमेव प्राप्त हुए थे किन्तु सिद्धियों के नष्ट हो जाने पर उनका फिर से प्रवर्तन हुआ। वे सहस्रों मंत्र बीते हुये कल्पों में विद्यमान थे, उन्हीं ऋषियों की प्रतिभा से उनका पुनः आविर्भाव हुआ। ऋक्, यजुः, साम एवं आथर्वण—इन सभी मंत्रों को सातों ऋषियों ने प्रचारित किया और स्मार्त धर्म का उपदेश स्वायम्भुव मनु ने किया। त्रेता के आदिम काल में वेद अति संक्षिप्त केवल धर्म तथा कर्मकाण्ड से युक्त थे, द्वापर युग में आयु की अल्पता एवं विघ्नपूर्णता के कारण उनका विभाग किया गया। कलियुग तथा द्वापर के आदि काल में सर्व प्रथम स्वयम्भू ब्रह्माजी ने तपस्या के बल से दिव्य गुण युक्त आदि अन्त विहीन ऋषियों तथा देवताओं की सृष्टि की। प्रत्येक युगों में समान अर्थ वाले वेदों के वाक्य समूह युगों के स्वभाव के क्रम से धर्म, प्रजा एवं अपने विविध अंगों

---

[1] कई मूल पुस्तकों में इस स्थल का पाठ भिन्न-भिन्न है, किसी में आधा श्लोक है ही नहीं, अतः अनुवाद की गति भंग हो जाती है आनन्दाश्रम-की प्रति में जोड़ा गया अर्धश्लोक संगति विहीन है, अतः उसका अनुवाद नहीं किया गया।

Funding by IKS-MoE

समेत विकार को प्राप्त हो जाते हैं। क्षत्रिय लोगों का उद्योग यज्ञ, वैश्यों का हवनीय यज्ञ, शूद्रों का तीनों श्रेष्ठ वर्णों की सेवा रूप यज्ञ तथा ब्राह्मणों का जप यज्ञ प्रधान माना गया था। उस त्रेतायुग में धर्म से रक्षित ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोग आनन्द युक्त रहते थे। वे सर्वदा सत्कर्म परायण, सन्तानयुक्त, समृद्ध तथा सुखी रहते थे। क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों की आज्ञा का पालन एवं उनकी सेवा एवं शुश्रूषा में तत्पर रहते थे, इसी प्रकार वैश्य लोग क्षत्रियों का तथा शूद्र लोग वैश्यों का आज्ञापालन करते थे। अर्थात् सभी एक दूसरे की सुख सुविधा का ध्यान रखते थे। सभी वर्णों के लोगों की कल्याणमय कार्यों में प्रवृत्ति रहती थी, सभी लोग वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। उस त्रेतायुग में मन के संकल्प करने से, वचन कहने से तथा अपने कर्मों द्वारा सम्पूर्ण कार्य अविकल रूप से सम्पन्न हो जाते थे, अर्थात् सबकी मनसा, वाचा कर्मणा कार्यसिद्धि होती थी। आयु, बुद्धि, बल, स्वरूप, आरोग्य, धर्मशीलता—ये सभी सर्वसाधारण को त्रेतायुग में प्राप्त थे। ब्रह्माने उन सभी प्रजाओं के लिए वर्णाश्रम की व्यवस्था बाँध रखी थी; किन्तु अज्ञानवश प्रजाओं ने वर्णाश्रम धर्म का अनुपालन नहीं किया और परस्पर धर्म विषयक विवादों को खड़ाकर पुनः मनु के पास सभी लोग गये। प्रजापति स्वायम्भुव मनु ने उनको अपने पास समुपस्थित देख यथार्थ का चिन्तन किया और ध्यान निमग्न हो शतरूपा नामक अपनी पत्नी में उस पुरुष ने सर्वप्रथम प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों सर्वप्रथम राजा हुए उसी समय से धरातल पर राजा लोग दण्ड की व्यवस्था करने वाले उत्पन्न होने लगे। प्रजावर्ग का रंजन करने के कारण वे लोग राजा नाम से प्रसिद्ध हुए। गुप्त रूप से पापाचरण करने वाले मनुष्य पृथ्वी पर वशीभूत न हो सके अतः उनको वश्य करने के लिये धर्म की मर्यादा के स्थापनार्थ वर्णों का विभाग, तपोमय मंत्र एवं संहिताओं का ऋषियों और ब्राह्मणों ने त्रेतायुग में प्रचार किया। उसी समय देवताओं ने शुक्र, हवन, जप, एवं अन्यान्य सामग्रियों समेत यज्ञ का प्रचलन किया। इस प्रकार स्वाम्भुव मन्वन्तर में देवताओं ने विश्वभुक् महातेजस्वी देवराज इन्द्र के साथ यज्ञों का सर्वप्रथम प्रवर्तन किया त्रेतायुग में सत्य, जप, तपस्या एवं दान—ये प्रमुख रूपेण धर्म कहे जाते थे, किन्तु क्रिया (अनुष्ठान) धर्म का ह्रास था, केवल सत्यधर्म की प्रतिष्ठा थी। उस त्रेतायुग में शूरवीर, दीर्घायु, महाबलवान्, योग्य दण्ड देने वाले महान भाग्यशाली, यज्ञपरायण एवं ब्रह्मवादी राजा उत्पन्न हुये थे। उनके नेत्र कमल के दल की भाँति विस्तृत एवं मनोरम रहते थे, वक्षस्थल विशाल थे वे चुस्त एवं फुर्तीले थे, सिंह के समान पराक्रमशाली, वेगवान्, मत्तगयंद के समान गमन करनेवाले थे, वे सभी चक्रवर्त्ती तथा महा धनुर्धर थे। राजाओं के सभी लक्षण उनमें विद्यमान थे। वे सब के सब न्यग्रोध परिमण्डल वाले थें। दोनों बाहुओं तथा व्याम[1] को न्याग्रोध कहते हैं, जिस शरीरधारी के शरीर की ऊँचाई अपने व्याम के परिमाण के समान होती है, अर्थात् जिसकी ऊँचाई और दोनों बाहुओं के विस्तार समान होते हैं, उसके उस शुभ लक्षण को न्याग्रोधमण्डल जानना चाहिये। चक्र, रथ, मणि, स्त्री, निधि (कोष) अश्व

---

[1] फैलाई गई दोनों भुजाओं के बीच के परिमाण को व्याम कहते हैं।

और हस्ती—ये सात प्रमुख रत्न सभी चक्रवर्त्ती राजाओं के मुख्य माने गये हैं। चक्र, रथ, मणि, खड्ग, धनुष, केतु और निधि—ये सात प्राणहीन रत्न कहे गये हैं। स्त्री, पुरोहित, सेनापति, रथकार, मन्त्री, अश्व और गज शावक—ये सात प्राणधारी रत्न कहे गये हैं। ये उपर्युक्त चौदह प्रकार के रत्न दिव्य एवं सिद्धि प्रदान करने वाले हैं, जो सब के सब चक्रवर्त्ती राजाओं के लिए प्रयोजनीय हैं। सभी व्यतीत हुए एवं आने आनेवाले मन्वन्तरों में चक्रवर्त्ती राजागण इस पृथ्वी मण्डल पर भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न होते हैं। त्रेताप्रभृत्ति युगों में जितने भी चक्रवर्त्ती सम्राट् उत्पन्न हो गये हैं, वर्तमान हैं अथवा भविष्य में होंगे—उन सभी महीपालों के लिए ये दिव्य रत्न कल्याणकारी एवं प्रयोजनीय हैं। इनके अतिरिक्त चार तो अति अद्भुत् रत्न हैं, बल, धर्म, सुख एवं धन। राजागण इन अद्भुत रत्नों को एक दूसरे के बिना विरोध हुये ही प्राप्त करते हैं, अर्थात् एक ही राजा अपने गुणों से इन चारों अद्भुत रत्नों को एक ही समय प्राप्त करता है। वे चक्रवर्त्ती राजागण अपने धन समृद्धि, धर्म, काम, यश, विजय, ऐश्वर्य, अणिमा प्रभृति सिद्धियाँ, प्रभुशक्ति, अन्न एवं तपस्या से ऋषियों को भी पराभूत करते हैं। तथा अपने बल एवं तपस्या से वे देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों को पराजित करते हैं। वे अपने शरीर के अनुपम दिव्य लक्षणों से समन्वित उत्पन्न होते हैं, उनकी केशराजि में ललाट पर ऊर्णा[1] होती है, जिह्वा स्वच्छ और चिकनी होती है, होंठों और दाँतों की कान्ति ताम्रवर्ण की होती है। रोमराजि ऊर्ध्वमुखी होती है, वे श्रीवत्स चिह्नयुक्त रहते हैं, उनके विशाल बाहु घुटने पर्यन्त लंबित रहते हैं; हाथ में जाल और वृषभ के चिह्न अंकित रहते हैं, वे सब न्यग्रोध परिणाह[2] वाले होते हैं, उनके विशाल स्कन्द सिंहों के समान विस्तृत होते हैं, सुन्दर शिश्नवाले तथा गजेन्द्र के समान मन्दगति से गमन करने वाले होते हैं, उनके चिबुक सुडौल, विशाल, और सुन्दर होते हैं, उनके पाद-तल में चक्र और मत्स्य का चिह्न रहता है, दोनों हाथों में शङ्ख और पद्म के आकार अंकित रहते हैं। वे चक्रवर्त्ती सम्राट् पचासी सहस्रवर्ष बिना वृद्धावस्था के जीवित रहते हैं। उन चक्रवर्तियों के चार स्थानों की गति अकेली होती है, आकाश में, समुद्र में, पालन में एवं पर्वत में, अर्थात् इन स्थानों पर जाते समय वे अकेले रहते हैं। त्रेतायुग में यज्ञाराधन, दान, तपस्या और सत्याचरण—ये प्रमुख धर्म कहे जाते हैं, उसी त्रेतायुग में वर्णाश्रम धर्म के विभाग की व्यवस्था सम्पन्न होती है, मर्यादा के स्थापनार्थ उसमें दण्ड की व्यवस्था की जाती है। उस त्रेतायुग में सब प्रजा हृष्ट, पुष्ट, नीरोग और स्वस्थ चित्तवृत्ति वाली होती है। उस त्रेतायुग में एक ही वेद चार भागों में विभक्त होकर प्रसिद्ध हुआ—ऐसा स्मरण किया जाता है। उसमें मनुष्य तीन सहस्र वर्ष जीवन प्राप्त करते हैं। सब लोग पुत्र पौत्रादि से भरे पुरे रहते हैं और क्रम के अनुसार मृत्यु प्राप्त करते हैं, अर्थात् पिता के सामने पुत्र पौत्रों की मृत्यु नहीं होती यह तो त्रेतायुग का स्वभाव बतलाया गया है, अब त्रेता के संधिकाल का विवरण सुनिये। त्रेतायुग का

---

[1] १. एक भ्रमरी, जो चक्रवर्तियों के ललाट भाग में होती है।

[2] २. ऊपर परिचय दिया जा चुका है।

स्वभाव सन्ध्या के स्वभाव के एक पाद समेत रहता है और सन्ध्या का स्वभाव युग के स्वभाव का एक पाद रहता है । ॥ ३७–८५ ॥

शांशपायन ने कहा—सूतजी ! पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर के त्रेतायुग के प्रारम्भ काल में यज्ञ का प्रचलन किस प्रकार हुआ ? उसको विस्तारपूर्वक बताइये । जब सतयुग के साथ उसकी सन्ध्या समाप्त हो गई, और त्रेतायुग के साथ कलामात्र उसकी संधि प्रारम्भ हुई, उस समय ऋषियों ने तथा मनु ने किस प्रकार पुनः वर्णाश्रम की व्यवस्था सम्पन्न की ? और किस प्रकार उन सभी यज्ञीय सम्भारों को एकत्र कर यज्ञ का प्रचलन किया ? शांशपायन की यह जिज्ञासाभरी बात सुनकर सूतजी ने कहा हे शांशपायन ! जिस प्रकार त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में यज्ञ की प्रथा प्रचलित हुई, उसे मैं बतला रहा हूँ सुनो ! जब त्रेता के प्रारम्भ में वृष्टि होने के उपरान्त सभी प्रकार की औषधियाँ पृथ्वी पर उत्पन्न हो गईं, लोग घर, द्वार, आश्रम और नगर की वार्ता में लीन हो गये, उस समय विश्वभोक्ता देवराज इन्द्र ने वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था कर ऐहिक एवं पारलौकिक निश्रेयस् की प्राप्ति के लिये मन्त्रों एवं संहिताओं का प्रचार कर एवं उनको तत्तत् कर्मों में नियंत्रित कर सभी देवताओं के साथ सम्पूर्ण सामग्रियों एवं उपकरणों समेत यज्ञ की प्रथा प्रचलित की; उस समय अश्वमेघ यज्ञ का कार्य जब प्रारम्भ हुआ सभी महर्षि गण आ आकर उनमें सम्मिलित हो गये, और मेध्य पशुओं द्वारा यज्ञ का कार्य प्रारम्भ सुनकर सभी लोग दर्शनार्थ उपस्थित हुए, उस समय जब सभी पुरोहित गण उस निरन्तर चलने वाले यज्ञकर्म में व्यस्त हो गये, उच्च सुमधुर स्वर में वेद की ऋचाओं का गायन होने लगा, यज्ञकर्म में व्यस्त रहने के कारण प्रमुख-प्रमुख अध्वर्युगण इधर उधर शीघ्रता में घूमने फिरने लगे, हवनीय पशुओं का वध होने लगा, देवताओं के होता गण अग्नि में हविष् की आहुति देने लगे, यज्ञ में भाग पाने वाले देवता एवं महात्मागण आवाहित होने लगे, देवता लोग प्रत्येक कल्पों में यज्ञ में भाग प्राप्त करने के अधिकारी इन्द्रियात्मक देव गणों की पूजा करने लगे, ठीक उसी समय यज्ञ मण्डल में समागत महर्षिगण अध्वर्युगण को पशुओं के स्नानादि में समुद्यत देखकर उन पशुओं की दीनता से करुणार्द्र होकर इन्द्र से बोले कि यह तुम्हारे यज्ञ की कैसी विधि है ? हिंसामय धर्म कार्य करने को इच्छुक तुम यह महान अधर्म कर रहे हो, सुरोत्तम ! तुम्हारे जैसे देवराज के यज्ञ में यह पशुवध कल्याणकारी नहीं है । इन दीन पशुओं की हिंसा से तुम अपने संचित धर्म का विनाश कर रहे हो, यह पशुहिंसा कदापि धर्म नहीं है, हिंसा कभीभी धर्म नहीं कहा जाता । यदि तुम्हें यज्ञ करने की अभिलाषा है तो वेद विहित यज्ञ का अनुष्ठान करो हे सुरश्रेष्ठ ! वेदानुमत विधि से किया गया यज्ञ अक्षयफल दायी होगा, उन यज्ञ बीजों से तुम यज्ञ प्रारम्भ करो, जिनमें हिंसा का नाम नहीं है । इन्द्र ! प्राचीन काल में तीन वर्ष के पुराने रखे गये अंकुर रहित बीजों द्वारा ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था, यह महान् धर्ममय यज्ञाराधन है । इस प्रकार उन तत्त्वदर्शी समागत मुनियों के कहने पर विश्वभोक्ता इन्द्र को यह संशय उत्पन्न हो गया कि अब हमें स्थावर एवं जंगम इन दो प्रकार के उपकरणों में से किस के द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये—ऐसा कहा जाता है । इन्द्र के साथ इस विषय के विवाद में पड़े हुये

Funding by IKS-MoE

उन तत्त्वदर्शी महर्षियों ने इन्द्र के साथ समझौता करके इस विषय की मीमांसा के लिए राजा वसु से पूछा। ॥ ८६—१०३ ॥

ऋषिगण बोले—हे परम बुद्धिमान्! राजन्! आप परम धार्मिक राजा उत्तानपाद के पुत्र तथा स्वयं महा महिमशाली हैं, अतः हम लोगों के इस संशय को दूर करें। कृपया यह बतावें कि आप ने यज्ञों कि विधि किस प्रकार की देखी है। ऋषियों की ऐसी बानी सुनकर राजा ने बलाबल का कुछ भी विचार न करके केवल वेदों एवं शास्त्रों के यज्ञ विधिपरक वचनों का स्मरण करके यज्ञ तत्त्व के बारे में यह कहा कि शास्त्रीय उपदेशों के अनुसार यज्ञाराधन करना चाहिये। शास्त्रों का ऐसा वचन है कि मेध्य पशुओं द्वारा, अथवा बीजों या फलों द्वारा यज्ञाराधन करना चाहिये; यज्ञ का स्वभाव हीं हिंसा है, ऐसा मुझे वेद वाक्यों से मालूम हुआ है। परम तपस्वी योगी महर्षियों द्वारा आविष्कृत मन्त्र समूह हिंसा के द्योतक हैं, और तारकादि दर्शनों द्वारा भी यज्ञों का हिंसामूलक होना अनुमित है, इन्हीं प्रमाणों के आधार पर मैंने उपर्युक्त बातें कही हैं, अतः यदि आपको ये अनुचित भी प्रतीत हों तो मुझे क्षमा करेंगे। हे महर्षि गण! यदि उन मन्त्रादिकों के वचन प्रमाणित हैं तो हिंसामूलक यज्ञ अनुष्ठान आप लोग करें अन्यथा मेरी बातें असत्य समझें। राजा वसु की ऐसी बातों से निरुत्तर होकर उन योगयुक्त तपस्वी ऋषियों ने उस से कहा कि हे राजन्! तू राजा होकर भी मिथ्या बातें कह रहा है अतः चुप रह, ऐसा कहने के बाद उन्होंने नीचे की ओर बने हुए एक भवन की ओर देखा और पुनः कहा कि अब तू रसातल में प्रवेश कर। मुनियों के ऐसा कहते ही राजा वसु आकाशचारी होते हुए भी रसातल गामी हुआ, अर्थात् तुरत रसातल को प्रविष्ट हुआ। अपने उसी वाक्य के कारण धार्मिक बातों में संशय को दूर करने वाला वह राजा वसु आकाश से वसुधातल पर आ गया। अतः बहुज्ञ एवं पण्डित व्यक्ति को भी अकेले कभी धार्मिक बखेड़ों में व्यवस्थापक नहीं बनना चाहिये। क्योंकि धर्म के अनेक द्वार होते हैं, इसकी सूक्ष्म गति का वास्तविक ज्ञान अतिशय गूढ़ है। इसलिए केवल स्वायम्भुव मनु को छोड़कर देवताओं एवं ऋषियों में से कोई भी निश्चित रूप से धर्मतत्त्व का निर्णय नहीं दे सकता। इसलिये महर्षियों ने जीवहिंसा को धर्म का द्वार नहीं माना है, प्राचीन काल में सहस्र कोटि ऋषिगण अपने अपने सत्कर्मों के प्रभाव के कारण स्वर्गगामी हुए हैं। यही कारण है कि महर्षिगण दान अथवा यज्ञ की प्रशंसा नहीं करते। अपनी शक्ति के अनुरूप तुच्छ मूल फल, शाक, जलपात्रादि का दानकर तपस्वी लोग स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। किसी से द्रोह न करना, निर्लोभ रहना, दमन, सभी जीवों पर दया भाव, तपस्या, ब्रह्मचर्य, सत्य, करुणा, क्षमा और धैर्य—ये सब सनातन धर्म के मूल हैं, जो अति कठिनता से प्राप्त किये जाते हैं। यज्ञ धर्म मंत्रों द्वारा सिद्ध होते हैं, तपस्या अनशन द्वारा साध्य होती है, यज्ञ से मनुष्य देवत्व की प्राप्ति करता है और तपस्या द्वारा वैराग्य की प्राप्ति होती है। कर्मों के सन्यास से ब्राह्मण्य (ब्रह्म की प्राप्ति), वैराग्य से लय और ज्ञान से कैवल्य पद की प्राप्ति होती है—ये पाँच गातियाँ स्मरण की जाती हैं। इस प्रकार पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में ऋषियों और देवताओं के बीच में यज्ञ की प्रथा प्रचलित होने के अवसर पर बहुत बड़ा विवाद हुआ था।

तदनन्तर उस अश्वमेध महायज्ञ में समुपस्थित ऋषिगण उक्त प्रकार के हिंसात्मक यज्ञ के अद्भुत धर्मपथ को देखकर राजा वसु की कही गई बातों को अनादर करके जहाँ जहाँ से आये थे, वापस चले गये। इस प्रकार ऋषियों के वापस चले जाने के बाद देवताओं ने यज्ञ का कार्य समाप्त किया। ऐसा सुना जाता है कि प्राचीन काल में प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुमेधा, विरजा, शंखपाद, रज, प्राचीनबर्हि, पर्जन्य, एवं हविर्धान प्रभृति अनेकानेक तपःसिद्ध ब्राह्मण महात्मा एवं क्षत्रिय राजागण, जो महातेजस्वी एवं कीर्तिशाली हो गये हैं, अपने तप के बल से सिद्धि प्राप्त कर स्वर्गगामी हुए। इन्हीं सब कारणों से सभी स्थलों पर यज्ञ की अपेक्षा तपस्या विशेष फलदायिनी है। प्राचीनकाल में ब्रह्माजी ने इस निखिल विश्व की सृष्टि तप के भरोसे की है। यज्ञ कभी भी तप की अपेक्षा श्रेष्ठ नहीं हो सकता, इस समस्त चराचर जगत का मूल तप ही है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में इस प्रकार यज्ञ की प्रथा प्रचलित हुई थी, तभी से लेकर प्रत्येक युगों में यह यज्ञ होता चला आ रहा है। ॥ १०४—१२५ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते यज्ञ प्रवर्त्तनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

सूतजी बोले—अब इसके उपरान्त मैं द्वापर युग के स्वभाव का वर्णन करता हूँ। त्रेता युग के क्षीण होने के बाद द्वापर युग का समय आता है इस द्वापर युग के आदिमकाल में मनुष्यों को त्रेतायुग में जो सिद्धियाँ प्राप्त रहती हैं, वे युग की समाप्ति के साथ समाप्त हो जाती है। तदुपरान्त द्वापर में उन्हीं प्रजाओं के मन में लोभ, अधैर्य, वणिक् वृत्ति, युद्ध-वृत्ति, युद्ध, तत्त्वों का अनिश्चय, ब्रह्मादि वर्णों में पारस्परिक मतभेद, कार्याकार्य का अनिर्णय, याचना, वध, पण (नौकरी या पैसे पैदा करने के अन्य उपाय), दण्ड, मद, दम्भ, अक्षमा, निर्बलता—इन सभी अवगुणों की रजोमय एवं तपोमय प्रवृत्तियाँ पाई जाने लगती हैं--ऐसा कहा गयाहै। आदिमयुग कृत में धर्म नहीं था, त्रेतायुग में उसकी प्रवृत्ति होती है; द्वापर में वह व्याकुलित होकर कलियुग में विनष्ट हो जाता है। उसमें वर्णों एवं आश्रमों का विध्वंस हो जाता है, तथा श्रुतियों एवं स्मृतियों के दुविधा के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। श्रुतियों तथा स्मृतियों के द्वैधीभाव के कारण किसी विषय का निश्चय नहीं होता एवं अनिश्चय परिणाम यह होता है कि धर्म तत्त्वों का सर्वथा विलोप हो जाता है। और उनमें भिन्न भिन्न मनुष्यों के भिन्न भिन्न मत हो जाते हैं। दृष्टि विभ्रम के कारण परस्पर भिन्न भिन्न मत रखने वाले उन मनुष्यों के बीच में 'यह धर्म है, यह अधर्म है', इस बात का निश्चय नहीं हो पाता। कारणों की विकलता (अपूर्णता) एवं अनिश्चि बुद्धि के कारण भिन्न भिन्न मति रखने वाले उन मनुष्यों में दृष्टि विभ्रम का हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। उन विभ्रान्त दृष्टिवाले मनुष्यों से शास्त्र बेचारे व्याकुल हो जाते है, एक वेद का त्रेतायुग में चार चरण करके चार विभाग किया गया है। द्वापरादि युगों में मनुष्यों की अल्पायु के कारण वेदव्यासों

Funding by IKS-MoE

ने वेद को चार भागों में विभक्त किया। उसके बाद भी दृष्टिविभ्रम के कारण ऋषिपुत्रों द्वारा उन वेदों का विभाग हुआ, जिनमें स्वर और वर्ण के विपर्यय से मंत्र और ब्राह्मण——दो भाग हुए। भ्रान्त दृष्टि वाले उन वेदाभ्यासी ऋषियों ने कहीं कहीं सामान्य ढंग से और कहीं कहीं बुद्धि की विकृत के कारण ऋक्, यजु और साम की संहिताओं का विपर्यय कर दिया। परिणाम स्वरूप ब्राह्मण, कल्पसूत्र, मन्त्र, प्रवचन आदि सभी विपर्यस्त हो गये। उनमें से कुछ तो तीर्थों से दूर कर दिये गये और कुछ उन पर आस्थाशील बने रहे। द्वापर युगों में आश्रम धर्म का विपर्यय हो जाता है, द्विजादिगण अपने अपने आश्रमधर्मों से एवं आचारों से च्युत हो जाते हैं, प्राचीन काल में केवल एक आध्वर्यव[1] था, जिसका बाद में चलकर दो विभाग हो जाता है। सामान्य अर्थों के स्थान पर विपरीत अर्थ समझने के कारण यह शास्त्र ही एकदम से अस्त-व्यस्त हो जाता है, इस प्रकार आध्वर्यव के विभिन्न प्रस्तावों के कारण उसका मूलरूप विकृत हो जाता है। इसी प्रकार अथर्ववेद, ऋग्वेद और सामवेद में भी अतर्क्य विकल्पों के कारण भिन्न भिन्न दृष्टि वाले ऋषिओं द्वारा द्वापर युग में अस्तव्यस्तता आ जाती है। उनविकल्पों का परिणाम यह होता है कि द्वापर युग में उन के अगणित भेद अभेद हो जाते हैं और कलियुग आते आते वे पुनः एकदम से विलुप्त हो जाते हैं। द्वापर युग में इस प्रकार प्रजावर्ग के कर्मों में विपर्यय हो जाता है, जिससे अनावृष्टि, मरण, विविध प्रकार की व्याधियाँ, अनेक उपद्रव, मानसिक, वाचिक एवं कर्म सम्बन्धी दोषों से उत्पन्न होने वाले कष्टों के कारण प्रजा के मन में पश्चात्ताप होता है, जिसके कारण उनके मन में उन दुःखों से मुक्ति पाने का विवेक उत्पन्न होता है। दुःख मोक्ष के उपाय चिन्तन से सांसारिक विषयों से वैराग्य हो जाता है, और वैराग्य के कारण अपने दोषों पर दृष्टि जाती है, इस प्रकार दोष दर्शन से ज्ञान की उत्पत्ति द्वापर युग में होती है। ॥१-२२॥

इस प्रकार पूर्व स्वायम्भुव मन्वन्तर के द्वापर युग में उन मानी प्रजावर्गों के पूर्वज शास्त्रों के परिपन्थी (विरोधी) उत्पन्न हुए। आयुर्वेद, वेदों के सभी अंग, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, हेतुशास्त्र, (न्याय शास्त्र) स्मृति शास्त्र एवं अन्यान्य सभी प्रकार के शास्त्रों में मतभेदों के कारण विकल्प हो जाते हैं, सभी मनुष्यों में मतभेद हो जाते हैं। द्वापर में कायिक मानसिक वाचिक व्यवहारों से अतिकष्ट के साथ जीविका निर्वाह होता है और सभी जीवों में शारीरिक कष्टों की अधिकता पाई जाती है। लोभ, अधैर्य, वाणिज्य बुद्धि, युद्धतत्त्वों का अनिश्चय, वेदों एवं शास्त्रों का मनमानी प्रणयन एवं सम्पादन, धार्मिक व्यवहारों में परस्पर विपर्यय——ये सभी कार्य द्वापर में अबाध रूप से प्रचलित हो जाते हैं, जिससे राग लोभ, मारण, वर्णाश्रम का विध्वंस, काम और द्वेष की अधिकता हो जाती है। मनुष्य की अधिक से अधिक आयु दो सहस्र वर्ष की होती है। इस प्रकार द्वापर के समाप्त हो जाने पर उसकी अवधि के चतुर्थ अंश में उसकी सन्ध्या प्रवृत्त होती है। उस सन्ध्या के समय में द्वापर युग का स्वभाव अपने गुणों से कुछ विहीन हो कर स्थित रहता है, सन्ध्या के समाप्त

---

[1] यजुर्वेद का अध्वर्यु सम्बन्धी कर्म।

Funding by IKS-MoE

हो जाने पर सन्ध्या की पाद परिमित अवधि के लिए सन्ध्यांश की प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार द्वापर युग के स्वभाव का वर्णन कर चुका अब कलियुग के स्वभाव का वर्णन सुनो। द्वापर युग के सन्ध्यांश की निवृत्ति हो जाने के उपरान्त कलियुग की प्रवृत्ति होती है। हिंसा, असूया, असत्य भाषण, माया, तपस्वियों का संहार, ये कलियुग के स्वभाव हैं, उस युग की प्रजाएँ कालधर्म के अनुसार इनका पालन करती हैं। इन उपर्युक्त कलि धर्मों के कारण वेदानुमत धर्म सम्पूर्ण रूप से विनष्ट हो जाता है। मनसा, कर्मणा एवं स्तुति द्वारा अथक प्रयत्न करने पर भी लोगों की जीविका निष्पन्न होने में सन्देह बना रहता है। उस कलियुग में महामारी रोग, निरन्तर क्षुधा की व्याधियाँ, दुर्भिक्ष आदि, घोर अनावृष्टि का भय तथा देशों में उथल-पुथल सर्वदा मची रहती है, उन स्मृतियों का लोक में कोई प्रमाण नहीं रह जाता, जिनका प्रत्येक युगों में मान था, कोई गर्भ में ही मर जाता है तो कोई जवानी में। इसी प्रकार वृद्धावस्था, कुमारावस्था में भी कलियुग में प्रजाएँ मृत्युलाभ करती हैं। कलियुग में सभी लोग धर्मविहीन, अनाचारी, अज्ञानी, क्रोधी, अल्प बुद्धिवाले, एवं निरन्तर असत्यभाषी उत्पन्न होते हैं। उस कलियुग में ब्राह्मण जाति की कुशिक्षा, दुष्ट उपायों से यज्ञाराधन करने, असत् उपायों से जीविका उत्पन्न करने, दुराचारी एवं दुर्व्यसनी होने के कारण प्रजावर्ग को भय उत्पन्न होता है। उस कलियुग में सभी जीवों में हिंसा, माया, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, अक्षमाशीलता, असत्य भाषण, राग एवं लोभ प्रभृत्ति दोषों का प्रादुर्भाव हो जाता है। उस कलियुग के प्राप्त होने पर प्रत्येक जीवों में अतिशय क्षोभ उत्पन्न हो जाता है उस समय द्विजाति-वर्ग न तो वेदों का अध्ययन करते हैं और न ठीक से यज्ञों का अनुष्ठान ही करते हैं तथा क्षत्रिय वैश्यों समेत सभी मनुष्य नष्ट होने लगते हैं। इस कलिकाल में शूद्र एवं अन्त्यज वर्णों के साथ ब्राह्मणों का शयन आसन एवं भोजनादि में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। राजा लोग अधिकतर शूद्र जाति के होते हैं, और पाखण्ड को बढ़ानेवाले होते हैं, प्रजावर्ग में गर्भ-हत्या आदि घोर पाप होते रहते हैं। सभी लोगों की आयु, बुद्धि, बल, रूप, एवं कुल का विनाश हो जाता है, शूद्र लोग ब्राह्मणों की भाँति एवं ब्राह्मण लोग शूद्रों की भाँति आचार-व्यवहार करने लगते हैं। इसी प्रकार चोर लोग राजाओं की भाँति प्रजावर्ग पर शासन एवं दण्डादि की व्यवस्था करते हैं और राजा लोग चोरों की तरह चोरी से प्रजा के धनादि का अपहरण करते हैं। उस कलिकाल में नौकर लोग स्वामि-भक्ति से रहित हो जाते हैं। स्त्रियाँ अतिशय दुःशील, व्रतादि में निष्ठा न रखनेवाली, मदिरा एवं मांस को पसन्द करनेवाली, केवल मायाविनी होने लगती हैं, हिंस्र जीवों का उस कलियुग में प्राबल्य एवं गौओं का ह्रास होने लगता है। उस कलियुग में साधु प्रकृति के लोगों का एक प्रकार से सर्वथा अभाव ही समझना चाहिये। इस प्रकार उस कलिकाल में सूक्ष्म किन्तु महान् फल देनेवाला, अतिशय दुर्लभ दानमूलक धर्म चारों आश्रमों के शिथिल होने के कारण विचलित हो जायगा। उस समय अति प्रभावशालिनी पृथ्वी अल्प फलदायिनी, शूद्र लोग तपस्या में निरत हो जायँगे, किन्तुः उस युग का एक दिन का धर्म द्वापर के एक मास एवं त्रेता के एक वर्ष के धर्म के समान फलदायी होगा। उस युगान्तकाल में राजा लोग केवल अपनी रक्षा में तत्पर रहकर

प्रजावर्ग के अरक्षक एवं कर ग्रहण करनेवाले होंगे। वे राजागण क्षत्रिय जाति के न होकर अन्य नीच जातियों में से होंगे। उस कलिकाल में वैश्यगण शूद्रों के समान जीविका अर्जित करनेवाले तथा सभी ब्राह्मण लोग शूद्रों के नमस्कार करनेवाले होंगे। उस कलियुग में बहुतेरे सन्यासी का वेश धारण कर जीविका चलानेवाले होंगे, उस समय जब कि युग समाप्ति सन्निकट होगी, दैव विचित्र वृष्टि करेगा, अर्थात् कहीं पर बहुत अधिक, कहीं पर कुछ भी नहीं, कहीं पर अकाल में वृष्टि और कहीं पर वर्षाकाल में भी अनावृष्टि होगी। उस अधम कलियुग के सभी मनुष्य प्रायः वाणिज्य व्यवसाय करनेवाले होंगे। शूद्र लोग संन्यासियों का बाना धारण कर कौपीन धारण कर तपस्या निरत होंगे और सभी लोग दूसरे की स्त्री में चित्त लगाकर अपने धर्म-पथ से भ्रष्ट होंगे। व्यवसायी लोग प्रायः कपटपूर्ण तौल द्वारा वस्तुओं का विक्रय कर क्रेताओं को वंचित करेंगे। व्यर्थ के बाहरी पाषण्डों में अभिरुचि रखनेवाले प्रायः सभी प्राणी अतिशय दुःशील एवं अनाचारी होंगे। उस युगान्त के समय पुरुषों की कमी और स्त्रियों की अधिकता होगी। लोगों में एक दूसरे से याचना करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ जायगी। लोग कच्चा मांस खाने लगेंगे, कटुभाषी होंगे, अतिशय कुटिल व्यवहार करनेवाले तथा परनिन्दक होंगे। उपकार करनेवालों का प्रत्युपकार कोई भी नहीं करेगा। सभी लोग शरीर से अति क्षीण होंगे और घोर पतित व्यवहारों में भी उन्हें आशंका नहीं होगी—यही युगान्त का लक्षण समझिए। सारी पृथ्वी मनुष्यों से रहित होकर प्रायः सूनी हो जायगी देशों और नगरों में मण्डलों की स्थापना होगी। सारी वसुन्धरा अल्प जल से युक्त तथा अल्प फलवाली हो जायगी। पृथ्वी के रक्षक कहानेवाले राजागण उस समय रक्षा करने में असमर्थ हो जायँगे, राज्य में शासन व्यवस्था का सर्वथा अन्त हो जायगा। वे दुष्ट नृपतिगण दूसरे लोगों के रत्नों के छीननेवाले तथा दूसरों की स्त्रियों के साथ बलात्कार करनेवाले होंगे। अधर्म में साहस दिखानेवाले वे दुरात्मा नृपति अति कामुक तथा विद्याबुद्धि से सर्वथा शून्य होंगे। उस युगान्त के समय के पुरुष अपने केशों को बिखराये हुए चूल धारण करनेवाले होंगे, सोलह वर्ष से भी अल्प अवस्था में वे सन्तानोत्पत्ति करेंगे। युगान्त के आने पर श्वेत दातोंवाले, अपने को जितेन्द्रिय प्रकट करनेवाले शूद्र लोग, मुण्डित शिर हो काषाय वस्त्र धारण कर धर्मकार्य करेंगे। उस समय अन्न की चोरी करनेवाले तथा वस्त्र की चोरी करनेवाले चोर होंगे, चोरों के घर में भी चोरी करने वाले तथा डाकुओं को भी लूटनेवाले लोग उत्पन्न होंगे। इस प्रकार बुद्धि एवं सत्कर्म के सर्वथा निवृत्त हो जाने पर सभी लोग अकर्मण्य हो जायँगे, उस समय कीट, पतंगे, मूस और सर्पादि जीव भी मनुष्यों को पीड़ित करेंगे। सुभिक्ष, कल्याण, आरोग्य एवं सामर्थ्य, ये सभी चीज़ें लोगों को दुर्लभ हो जायँगी, ऐसे समय में जब कि सारा देश क्षुधा के कारण सन्तप्त एवं भयभीत रहेगा, उल्लू के समूह वहाँ निवास करेंगे। इन दुःखों से पीड़ित कलियुग के मनुष्यों की अधिक से अधिक आयु सौ वर्ष की होगी, सभी वेद शास्त्र कहीं पर तो दिखाई पड़ेंगे, कहीं पर नहीं। धर्म कार्य के सर्वथा विलोप हो जाने के कारण यज्ञों की परम्परा नष्ट हो जायगी। उस समय गेरुआ वस्त्र धारण कर, बिना पढ़े-लिखे, कापालिक धर्म की व्यवस्था देंगे, कोई वेदों का विक्रय करेगा तो कोई तीर्थों

का । इसी प्रकार अन्यान्य वर्णाश्रम धर्म के विरोधी पाषण्डो उस कलियुग के आने पर उत्पन्न होंगे, उस समय ब्राह्मण लोग वेदशास्त्रों का अध्ययन छोड़ देंगे । शूद्र लोग धर्म के पण्डित माने जायेंगे । शूद्र कुल में उत्पन्न होनेवाले राजा लोग अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान नहीं करेंगे । उस कलियुग में प्रजावर्ग स्त्री हत्या, गोहत्या, परस्पर मारपीट एवं एक दूसरे का बध करके किसी प्रकार जीवनयापन करता है । इन सब घोर पापों से होनेवाले दुःखों की अधिकता से लोग अल्पायु होते हैं, देश का विनाश हो जाता है, अनेक प्रकार की व्याधियाँ, रुग्णता, अज्ञान, ग्लानि, कृत्रिम सुख की अभिलाषा और तामसिक मनोवृत्ति , इन सब की कलियुग में प्रधानता कही गई है । प्रजावर्ग में गर्भहत्या का घोर पाप अन्धाधुन्ध होता है, इन्हीं सब घोर पापों के कारण उस युग में आयु, बल, एवं रूप, इन सब का विनाश हो जाता है । उस समय के अनेक दुःखों से पीड़ित लोगों की अधिक से अधिक आयु सौ वर्ष की होती है । उस घोर कलिकाल में सभी वेद शास्त्र कहीं तो दिखाई पड़ेंगे और कहीं नहीं । घोर अधर्म के कारण यज्ञादि सत्कर्मों का विलोप हो जाता है । किन्तु उस युग में लोग थोड़े समय में ही सिद्धि प्राप्त करते हैं, उस युगान्त में धर्माचरण करनेवाले उत्तम द्विजगण धन्य हैं, जो श्रुतियों एवं स्मृतियों से अनुमोदित कर्म का बिना किसी प्रकार की निन्दा किये अनुष्ठान करते हैं । त्रेता युग में एक वर्ष में प्राप्त होनेवाला जो धर्मफल है वह द्वापर युग में एक एक मास में प्राप्त किया जाता है, किन्तु उसी धर्मफल को अपनी शक्ति के अनुरूप कलियुग में अनुष्ठान करने पर मनुष्य केवल एक दिन में प्राप्त करता है । यह कलियुग की अवस्था है । अब सन्ध्यांश का वर्णन मुझसे सुनिये । ॥ २३—७२ ॥

प्रत्येक युगों में सिद्धियाँ पूर्व युग की अपेक्षा पिछले युग में अपने तीन चरणों से हीन हो जाती हैं, अर्थात् केवल एक चरण मात्र विद्यमान रहती हैं, इसी प्रकार युग के स्वभाव से उसकी सिद्धियाँ सन्ध्या में एकपाद रहती हैं और सन्ध्यांश में सन्ध्या के स्वभाव की एक पाद शेष रहती हैं । इस नियम के अनुसार स्वायम्भुव मन्वन्तर के आदि कलियुग के सन्ध्यांश के समुपस्थित होने पर उन असत्पुरुषों को दण्ड देने वाला भृगु वंशियों की मृत्यु के उपरान्त उसी वंश में उत्पन्न हुआ, चन्द्रमा के गोत्र का प्रमति नामक राजा भगवान् विष्णु के अंश से उत्पन्न होता है, वह समस्त पृथ्वी मण्डल पर सैकड़ों सहस्र शस्त्रास्त्रधारी ब्राह्मणों को साथ लेकर एक विशाल वाहिनी की सहायता से पूरे बीस वर्ष तक भ्रमणकर सहस्रों म्लेच्छों का संहार करता है । सभी स्थलों पर जाने वाले उस अमित तेजस्वी ने उन शूद्र कुल में उत्पन्न होने वाले राजाओं को मारकर सभी प्रकार के फैले हुए पाषण्डों का निराकरण कर जो लोग धर्म में अधिक विश्वास करने वाले नहीं थे उन सब को एक दम से विनष्ट करता है । इसके अतिरिक्त वर्णसंकर एवं उनके सहायकों का भी समूल विनाश कर देता है । उदीच्य, मध्यदेशीय, पार्वतीय, प्राच्य, प्रतीच्य तथा विन्ध्यगिरि के पृष्ठ पर बसने वाले, सीमान्त प्रदेशीय, दाक्षिणात्य, द्राविड़, सिंहलद्वीप निवासी, गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, तुषार, वर्वर, चीन, शूलिक, दरद, खस, लम्बक, केत और किरात प्रभृति म्लेच्छ जातियों को वह सभी भूतों से न पराजित होने वाले म्लेच्छों का घोर शत्रु प्रमति अपनी सेना को साथ ले विनष्ट करता है । चन्द्रमा

Funding by IKS-MoE

के गोत्र में उत्पन्न, विष्णु का अंशीभूत, पूर्वजन्म की विधियों को जानने वाला, स्मृति नामक परम पराक्रमी वह अमित तेजस्वी प्रभु अपनी बाईस वर्ष की अवस्था में बीस वर्ष तक अनवरत पृथ्वी प्रदक्षिणा कर सभी जीव जन्तुओं एवं मनुष्यों का विनाश करता है और इस प्रकार अपने प्रचण्ड कर्म द्वारा समस्त पृथ्वी मण्डल को पराक्रम शून्य कर निमित्तवश एवं आकस्मिक क्रोध से उन अधार्मिक शूद्रों को दण्ड दे गङ्गा और यमुना के मध्य भाग में अपने अनुगामियों समेत शरीर त्याग करता है। तदुपरान्त उस सन्ध्यांश काल में सहस्रों शूद्रवंशीय राजाओं एवं सभी म्लेच्छों को ध्वस्त कर सैनिकों एवं मंत्रियों के समेत प्रमति के स्वर्गस्थ हो जाने पर यत्र तत्र स्थान स्थान पर थोड़ी संख्या में प्रजाएँ शेष बच रहती हैं। किसी शासक के अभाव में बिना नियन्त्रण के उन सभी लोगों की चेष्टाएँ एक दूसरे के मारने लूटने खसोटने की ओर हो जाती हैं। इस प्रकार उस युगान्त में अराजकता के समय जब कि जीवन का संशय उपस्थित हो जाता है, सभी लोग एक दूसरे के भय से विह्वल एवं परिश्रान्त होकर घर द्वार स्त्री बच्चों को छोड़कर अपने अपने प्राणों का ध्यान करते हुये इधर उधर भटकते हुए करुणा से रहित होकर अति दुःख का अनुभव करते हैं। उस समय श्रौत स्मार्त धर्मों के विनष्ट हो जाने पर मर्यादा, दया, लज्जा एवं स्नेह रहित सारे लोग एक दूसरे से युद्ध करते हुये मृत्यु प्राप्त करते हैं। उस समय के लोग लघुकाय के तथा पचीस वर्ष की छोटी उम्र वाले होते हैं, वे अपने पुत्र स्त्री प्रभृति परिवार के लोगों को छोड़कर विषाद से व्याकुलेन्द्रिय रहते हैं। घोर अनावृष्टि से पीड़ित होकर वे जीविका की आशा छोड़ देते हैं और अपने अपने जनपदों को छोड़कर समीपस्थ देशों में निवास करते हैं। उस समय वे प्राणी नदियों, सागरों, जलप्राय स्थलों एवं पर्वतों पर अति दुःखित जीवन बिताते हुए मधु, मांश मूल तथा फलों से जीविका निर्वाहित करते हैं। चीर एवं चर्म को धारण कर स्त्री पुत्रादि से विरहित, निमर्याद वर्णाश्रम धर्म से च्युत घोर संकरवर्ण में उत्पन्न होने वाले वे प्राणी जो कि बहुत थोड़ी संख्या में शेष रह जाते हैं, इस कष्ट की अन्तिम सीमा को पहुँचकर जरा व्याधि एवं क्षुधा की पीड़ा से अतिशय सन्तप्त होकर दुःख के कारण जीवन से विरक्त हो जाते हैं। इस प्रकार जीवन से विरक्त होने पर उन्हें विवेक उत्पन्न होता है, विवेक से सभी जीवों पर समानता का व्यवहार करते हैं, इस साम्यावस्था में उन्हें संबोध (वास्तविक ज्ञान) की प्राप्ति होती है और संबोध से उनकी प्रवृत्तियाँ धर्म की ओर उन्मुख होती हैं। और इस प्रकार कलियुग की उन अल्प धर्मशील प्रजाओं के शेष रह जाने पर केवल एक दिन रात के भीतर ही युग परिवर्त्तन होता है। उस समय उन अल्प शेष प्रजाओं के चित में संमोह उत्पन्न कर के ? भवितव्यता वश सतयुग की प्रवृत्ति होती है, सतयुग के प्रवृत्त हो जाने पर कलियुग की शेष अल्पसंख्यक उन प्रजाओं से ही सतयुग की प्रजाओं की उत्पत्ति होती है। उस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र—इन चारों वर्णों की उत्पत्ति के बीज स्वरूप जो स्मरण किये गये हैं, वे लोग तथा वे सिद्धगण जो अतिहर्ष के साथ सदा विचरण किया करते हैं, तथा वे सातों ऋषिगण—उन अवशेष कलियुगीन प्रजाओं के साथ निर्विशेष भाव से सम्मिलित होकर परस्पर व्यवहार करते हैं। उन में वे सप्तर्षि गणं अन्य सभी लोगों को वर्णाश्रमाचार युक्त इन दो प्रकार के श्रौत एवं स्मार्त धर्मों का उपदेश करते हैं। जिससे

Funding by IKS-MoE

सतयुग की वे प्रथायें उनके उपदेशानुसार श्रौत-स्मार्त धर्मों का पालन करती हैं इस प्रकार सतयुग में उत्पन्न होने वाले लोगों का श्रौत स्मार्त धर्म उन्हीं सप्तर्षियों द्वारा प्रदर्शित होता है। प्रत्येक मन्वन्तरों में सप्तर्षिगण युगत्रय पर्यन्त धर्म की व्यवस्था के लिये उन प्रजाओं में विद्यमान रहते हैं। जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतु में भस्म हुए तृण समूहों के मूल भाग से वर्षाऋतु में पुनः नवाङ्कुर उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार उन अल्पशेष कलियुगी धार्मिक प्रजाओं से सतयुग की प्रजाओं की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार प्रत्येक मन्वन्तर के अवसान पर्यन्त एक युग के समाप्त हो जाने पर दूसरे युग की प्रज़ाओं का उन्हीं आद्य युगीन प्रजाओं से उत्पत्ति एवं विस्तार होता है। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ, काम—ये सभी प्रत्येक युगों में अपने अपने स्वभाव के अनुरूप एक एक चरण न्यून होते जाते हैं। और युगों की धर्मसिद्धियाँ अपने संन्ध्या एवं सन्ध्यांश में तो प्रायः विलुप्त हो जाती हैं। हे ऋषिगण! यह युगों की प्रतिसंधि मैं आप लोगों को बतला चुका। इसी के द्वारा सभी युगों के स्वभावादि का तात्त्विक ज्ञान होता है। इन चारों युगों के एक सहस्र बार व्यतीत हो जाने पर ब्रह्मा का एक दिन और उतने ही बार व्यतीत होने पर एक रात्रि होती है। युग पर्यन्त उसमें सरलता एवं जड़ता सभी जीवों में विद्यमान पाई जाती हैं। यही सभी युगों का लक्षण कहा गया है। इन्हीं चारों युगों की आवृत्ति जब इकहत्तर बार समाप्त हो जाती है तब मन्वन्तर कहा जाता है। एक चतुर्युग में जिस प्रकार की घटनाएँ जिस क्रम से घटित होती हैं, उसी प्रकार की घटनाएँ उसी क्रम से दूसरे चतुर्युग में घटित होती हैं। परन्तु एक सृष्टि की अपेक्षा दूसरी सृष्टि में जो भेद पाये जाते हैं, वे संख्या में पच्चीस होते हैं, न इससे न्यून न अधिक और कल्प तथा युग—ये भी समान लक्षण वाले होते हैं इसी प्रकार सभी मन्वन्तरों का भी यही लक्षण जानना चाहिये। इसी प्रकार स्वभाववश सभी युगों का परिवर्त्तन भी चिर प्रवृत्त सनातन जानना चाहिये, विनाश एवं उत्पत्ति—इन दो विशेष अवस्थाओं में परिवर्तित जीव समूह सर्वदा एक अवस्था में अवस्थित नहीं रह सकता। बीते हुए एवं भविष्य में आने वाले सभी मन्वन्तरों में युगों के लक्षणों का मैं संक्षेप में वर्णन कर चुका। बीते हुये मन्वन्तरों की घटनाओं द्वारा बुद्धिमान मनुष्य भविष्य में आने वाले सभी मन्वन्तरों की घटनाओं का भी अनुमान कर सकता है। यहाँ पर मैंने केवल एक मन्वन्तर का वर्णन किया है, उसके द्वारा अन्यान्य मन्वन्तरों की घटनाओं का भी वर्णन हो चुका समझना चाहिए। इसी प्रकार एक कल्प के वर्णन से अन्य कल्पों की घटनाओं का भी अनुमान कर लेना चाहिए। इनके अभिमानी जो मन्वन्तरों के स्वामी आठ प्रकार के देव, ऋषि तथा मनु गण हैं, वे सभी नाम तथा रूप से समान प्रयोजन सिद्ध करने वाले होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक युगों में वर्णाश्रमों का विभाग होता है। भगवान् विधाता सर्वदा युगों के स्वभाव के अनुसार तत्तद्युग की कार्य सिद्धि के लिए वर्णाश्रम के आचार व्यवहार से युक्त सृष्टि का विधान सम्पादित करते हैं। युगों के पारस्परिक सम्बन्ध आदि का वर्णन मैं कर चुका अब सृष्टि का वृत्तान्त सुनिये। मैं विस्तार पूर्वक क्रमशः सभी युगों की स्थिति का विवरण बतला रहा हूँ। ॥ ७३—१२५ ॥

श्री वायु महापुराण का नीलकण्ठ-स्तुति नामक अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त ।।५८।।

उनसठवाँ अध्याय

ऋषियों के लक्षण

सूतजी ने कहा—प्रत्येक युगों में जो प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, उनका विवरण सुनिये। असुर, सर्प, गौ, पक्षी, पिशाच, यक्ष, राक्षसादि प्रजावर्ग जिस युग में जन्म लेकर जितने दिनों तक जीवन धारण करते हैं, उसे बतला रहा हूँ। पिशाच, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सर्प—इन सब प्राणधारियों का यदि कोई वध न करे तो ये पूरे युग भर जीवित रहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी और स्थावर जीव गण अपने युग धर्म के अनुसार सभी युगों में पूर्ण आयु तक जीवित रहते हैं। केवल कलियुग में मनुष्यों की आयु में अस्थिरता (अनिश्चितता) देखी जाती है। इस कलियुग में मनुष्य की अधिक से अधिक आयु केवल सौ वर्ष की कही गई है। देवताओं और असुरों की ऊँचाई प्रमाण से मानव की ऊँचाई सात-सात अंगुल न्यून होती है। कलियुग में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों के एक सौ अट्ठावन अंगुल की ऊँचाई देवताओं और असुरों की होती है। कलियुग में उत्पन्न मनुष्य के चरण से लेकर मस्तक तक की ऊँचाई अपने चौरासी अंगुल की होती है। मनुष्यों की ऊँचाई का यह मान युगान्त में और भी न्यून हो जाता है। व्यतीत एवं भविष्यत्कालीन सभी युगों में मानव अपने अंगुलों से आठ ताल[1] ऊँचाई का बतलाया जाता है। जो व्यक्ति चरण से लेकर मस्तक तक अपने अंगुल मान से नव ताल ऊँचा हो, और जिसके बाहु घुटने पर्यन्त लम्बे एवं सघन हों, वह देवताओं द्वारा भी पूजनीय होता है। गौ, अश्व, हस्ती, भैंस और स्थावर जीव गणों की प्रत्येक युगों में क्रमशः निम्नलिखित परिमाणगत ह्रासवृद्धि होती है। गौओं की ऊँचाई पाद से लेकर ककुद् (डिल) पर्यन्त छिहत्तर अंगुल की होती है। हाथियों की ऊँचाई पूरी एक सौ आठ अंगुल की कही गई है। अश्वों की ऊँचाई पचास अंगुल की तथा वृक्षों की ऊँचाई नव सौ साठ अंगुल की स्मरण की जाती है। मनुष्यों के शरीर का गठन एवं अवयव संस्थान जिस प्रकार का होता है उसी प्रकार का गठन देवताओं के शरीर का भी समाधि द्वारा देखा जाता है। इसके अतिरिक्त देवताओं का शरीर अतिशय बुद्धि एवं चेतना से संयुक्त बतलाया जाता है, मनुष्यों का शरीर देवताओं की अपेक्षा अल्प-चेतना युक्त एवं लघुशक्ति सम्पन्न कहा गया है। देवताओं और मनुष्यों के स्थूल भेदों का निरूपण मैं कर चुका, अब इसके उपरान्त पशु पक्षी एवं स्थावरादि जीवों के बारे में सुनिये। इस संसार में उत्पन्न होने वाले गौ, बकरे-भैंसें, अश्व, हस्ती, पक्षी एवं वृक्षादि जीवगण यज्ञादि क्रियाओं के साधनभूत हैं और इनका सामान्य नाम यज्ञिय (यज्ञादि कार्यों के उपकरण) है। देवताओं को अतिप्रिय लगने वाले अतिकमनीय स्वरूप सम्पन्न ये जीव तद्रूप होकर उनके (देवताओं) निवास स्थानों में पुनः उत्पन्न होते हैं और इनका पुनः देवताओं द्वारा उपभोग होता है। स्थावर एवं जंगम जीवों के उपर्युक्त प्रमाणों के अनुरूप तथा उन्हीं के स्वरूप के अनुसार मनोहारि स्वरूप धारण कर ये जीवगण सुख का तात्त्विक अनुभव करते हैं। ॥१–१८॥

---

[1] देशी भाषा में उसे बित्ता कहते हैं।

Funding by IKS-MoE

अब इसके उपरान्त मैं सन्तों, साधुओं एवं शिष्ट पुरुषों के बारे में बतला रहा हूँ। 'सत्' यह ब्रह्मवाची शब्द है, जो लोग ब्रह्मवान् (ब्रह्मनिष्ठ) होते हैं तथा ब्रह्म का अत्यन्त सायुज्य प्राप्त करते हैं, वे सन्त कहलाते हैं। जो लोग दस प्रकार के विषयों एवं आठ प्रकार के कारणों में फँसकर कभी क्रुद्ध और हर्षित नहीं होते वे जितात्मा कहे जाते हैं। यतः सामान्य और विशेष इन दोनों प्रकार के धर्मों से अनुमोदित आचरण करते हैं, अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग द्विजाति कहलाते हैं। वर्णाश्रमाचार योग युक्त स्वर्ग, तीर्थ एवं मंत्रात्मक श्रुति स्मृति से अनुमोदित धर्म का ज्ञान वास्तविक धर्म कहलाता है। गुरु का हित करने वाला ब्रह्मचर्य व्रत परायण विद्यार्थी विद्या की साधना में तन्मय रहने के कारण साधु कहा जाता है। सत्क्रियाओं के साधन में लीन रहने से गृहस्थाश्रम में रहने वाला व्यक्ति साधु कहाता है। घोर जङ्गल में तपस्या की साधना में निरत रहने वाला वैखानस साधु कहा जाता है। योगाभ्यास में परायण यति योग की साधना में लीन रहने के कारण साधु कहा जाता है। इसी प्रकार आश्रम धर्म के पालन करने वाले अपने अपने धर्मों के पथ पर अडिग रहने के कारण साधु कहे जाते हैं, वे चाहे गृहस्थ हों, चाहे ब्रह्मचर्य व्रत में विद्याभ्यास करने वाले विद्यार्थी हों चाहे वानप्रस्थाश्रम में दीक्षित होकर भिक्षाटन पर निर्भर हों। तो न देवता, पितर, न मुनिगण और न मनुष्य—इनमें से कोई भी—भिन्न-भिन्न मतों के कारण 'यह धर्म है, यह अधर्म है' ऐसा कहने में समर्थ नहीं हो सकते। इस जगत् में धर्म तथा अधर्म ये दो शब्द जो कहे गये हैं, वे क्रियात्मक अर्थात् वैसा आचरण करने पर निष्पन्न होते हैं, कुशलता एवं अकुशलता सम्पादित करने वाले कर्म ही धर्म और अधर्म के नाम से विख्यात हैं, अर्थात् जिसके आचरण करने से कुशल हो उसे धर्म तथा जिसके आचरण से अमंगल की प्राप्ति हो उसे अधर्म कहते हैं। धारणार्थक 'धृ' धातु से धर्म शब्द की निष्पत्ति होती है। जो धारण करने योग्य नहीं है, जिसके आचरण से महत्व की प्राप्ति नहीं होती, उसे अधर्म कहते हैं। इस प्रसंग में आचार्य लोग उसे धर्म कहते हैं, जिसके आचरण से इष्ट की प्राप्ति हो। जो वृद्ध, लोभ विहीन आत्मनिष्ठ, दम्भरहित, विपुल विद्यावान्, विनम्र तथा सरल हों, उन्हें आचार्य कहते हैं। यतः वे आचार्य गण सभी नियमों एवं संयमों के साथ स्वयम् उन आचरणीय धर्म कार्यों का अनुष्ठान करते हैं, तथा लोक को प्रवृत्त करने के लिए मर्यादा स्थापित करते हैं, शास्त्रों के अर्थों को संगृहीत करते हैं, अतः उन्हें आचार्य कहते हैं। सप्तर्षि गण पूर्व कल्पों में उत्पन्न होने वाले लोगों को ऋक्, यजु, साम आदि श्रुतियों एवं वेदाङ्गों का उपदेश कर श्रौत धर्म का ज्ञान लाभ कराते हैं ऐसा सुना जाता है। बीते हुए मन्वन्तरों में उत्पन्न होने वाले लोगों के आचारों का स्मरण कर वे वर्तमान मन्वन्तर के लोगों को उपदेश करते हैं अतः वर्णाश्रम के विभागों से संयुक्त उस धर्म को स्मार्त धर्म कहते हैं। इस प्रकार लोक में ये दो श्रौत एवं स्मार्तधर्म शिष्टाचार नाम से प्रसिद्ध हैं। शेष शब्द से शिष्ट शब्द की निष्पत्ति होती है और उन्हीं शिष्ट लोगों के आचारों को शिष्टाचार कहा जाता है। प्रत्येक मन्वन्तरों की समाप्ति के असवर पर जिन धार्मिक प्रवृत्ति वाले मनु एवं सप्तर्षि प्रभृति महानुभावों की सत्ता लोक में सन्तानोत्पत्ति के बीजारोपण एवं धर्म की मर्यादा व्यवस्था स्थापन के लिए शेष रह जाती है, उन्हें ही वास्तव में शिष्ट कहा जाता है। मनु प्रभृति जिन शिष्ट

महानुभावों का वर्णन मैं अभी-अभी थोड़ी देर पहिले कर चुका हूँ, उन्हीं लोगों द्वारा प्रत्येक युगों में भली तरह आचरण किया गया धर्म श्रौत तथा स्मार्त के नाम से प्रसिद्ध है। त्रयीवार्ता दण्डनीति, यज्ञाराधन, वर्णाश्रम व्यवस्था—इनसब का यतः मनु और पूर्वकालीन शिष्ट ऋषिगण आचरण करते हैं, और बहुत दिनों से उनकी परम्परा अक्षुण्ण चली आती है, अतः वही शाश्वत (सर्वदा वर्तमान रहने वाला) शिष्टाचार है। दान सत्य, तपस्या, लोभनिवृत्ति, विद्याध्ययन, यज्ञाराधन, सन्तानोत्पत्ति और दया—ये आठ शिष्टों के आचरण शिष्टाचार के लक्षण हैं। यतः सभी मन्वन्तरों में मनु, सप्तर्षि तथा शिष्ट लोग इन धर्मों का पालन करते हैं अतः इन्हें शिष्टाचार कहते हैं। इन धर्मों को श्रवण (सुनने) द्वारा ज्ञात होने के कारण श्रौत और स्मरण द्वारा ज्ञात होने के कारण स्मार्त जानना चाहिये। इनमें यज्ञाराधन वेदाध्ययन प्रभृति धर्म कार्यों को श्रौत और ब्राह्मणादि चारों वर्ण एवं गृहस्थाश्रम प्रभृति चारों आश्रमों के अनुकूल किये जाने वाले धर्म कार्यों को स्मार्त जानना चाहिये। अब मैं धर्म के प्रत्येक अंगों के लक्षण एवं उनकी व्याख्या कर रहा हूँ। ॥१९—३९॥

जो व्यक्ति घटित घटना को देखकर पूछे जाने पर कुछ भी नहीं छिपाता और वास्तविक बात को ज्यों का त्यों प्रकट कर देता है, उसके इस व्यवहार को सत्य कहा गया है। ब्रह्मचर्य, जप मौन, और निराहार—ये अति कठिन तथा दुर्लभ तपस्या के मूल हैं। पशु, द्रव्य हवनीय पदार्थ, ऋक्, साम, और यजुर्वेद के मंत्र, पुरोहित और दक्षिणा—इन सब के संयोग का नाम यज्ञ कहा जाता है। हित एवं अहित करने वाले सभी प्रकार के जीवों में अपने समान दृष्टि रखना दया का लक्षण कहा गया है। जो दूसरों द्वारा गाली फटकार पाने पर अथवा मार पीट खा जाने पर भी अपकर्त्ता को गाली फटकार नहीं देता अथवा उसे नहीं मारता तथा मनसा, वाचा, कर्मणा उन सब अपकारों को सहन कर लेता है, उसके इस व्यवहार का का नाम क्षमा कहा गया है। स्वामी द्वारा न रखाई जाने वाली एवं छोड़ी गई या पड़ी हुई परकीय वस्तु को ग्रहण न करना निर्लोभिता के लक्षण कहे गये हैं। मैथुन (स्त्री पुरुष संयोग) का व्यवहार न करना, मन से भी उसकी चिन्तना एवं कल्पना न करना तथा भोग विलास विषयक अन्य वस्तुओं से सच्ची निवृत्ति प्राप्त कर लेना ब्रह्मचर्य कहा गया है। और उसका पूर्ण रूपेण पालन करना दम है। अपने लिए अथवा पराये के लिए जिसकी इन्द्रियाँ मिथ्या विषयों में अभिनिविष्ट नहीं होतीं उसके इस व्यवहार का नाम शम है। जो व्यक्ति दसों प्रकार के ऐन्द्रियक विषयों एवं आठ प्रकार के लक्षणों में फँसकर या प्रतिहत होकर भी क्रोध नहीं प्रकट करता वह जितात्मा कहा जाता है। जो जो अपने को अति प्रिय लगने वाली वस्तु हो, तथा जिसकी प्राप्ति न्याय मार्ग से हुई हो, उसे गुणवानों को समर्पित करना दान का लक्षण है। दान तीन प्रकार के होते हैं, कनिष्ठ, ज्येष्ठ और मध्यम। उनमें निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति के लिये किया गया दान ज्येष्ठ और स्वार्थ सिद्धि के लिए किया गया दान कनिष्ठ कहलाता है। सभी जीवों तथा अपने बन्धु बान्धवों में करुणावश दिया गया दान मध्यम कहलाता है। श्रुतियों एवं स्मृतियों से अनुमोदित, वर्णाश्रम सम्बन्धी शिष्टाचारानुमत, सत्पुरुषों एवं साधुओं द्वारा आचरित सत्कर्म का नाम धर्म है। अनिष्ट विषयों एवं पदार्थों से द्वेषाभाव, इष्ट में आनन्द का अभाव, प्रसन्नता, सन्ताप एवं विषादों से भली भाँति छुटकारा प्राप्त कर

Funding by IKS-MoE

लेना विरागियों का धर्म है। अपने द्वारा किये गये और न किये गये सभी प्रकार के कर्मों का एवं शुभाशुभ का सर्वथा परित्याग कर देना ही त्याग कहा जाता है। अव्यक्त एवं अविशेष से अचेतन में जो चेतनात्मक विकार प्रादुर्भूत होते हैं, उनके चेतनत्व, अचेतनत्व एवं अनन्यत्व के सम्यक् ज्ञान को ही वास्तविक ज्ञान कहते हैं। धर्म के प्रत्येक अंगों का यही लक्षण पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में वर्तमान, धर्म के तत्त्वों को जानने वाले ऋषियों ने बतलाया है। ॥ ४०—५५ ॥

अब इसके उपरान्त आप लोगों को मैं मन्वन्तर की विधि बतला रहा हूँ, और यह भी बतला रहा हूँ कि उसमें चारों वर्णों के अपने-अपने तथा परस्पर एक दूसरे के साथ कैसे व्यवहार होते रहे हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में समस्त श्रुतियों का विभिन्न ढंग से विधान होता है। शतरुद्रिय को छोड़कर ऋक्, यजु, साम, देवता, स्तोत्र, विधि, हवन—ये सभी पहिले ही की तरह प्रवर्तित होते हैं। द्रव्यस्तोत्र, गुणस्तोत्र, कर्मस्तोत्र और आभिजनिक स्तोत्र—ये चार प्रकार के स्तोत्र कहे गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरों में जिस प्रकार के देवगण विद्यमान रहते हैं, उन्हींके अनुकूल भगवान् ब्रह्मा उपर्युक्त चार प्रकार के स्तोत्रों का प्रवर्तन करते हैं—इस प्रकार अथर्व, यजुष् और सामवेद में पृथक्-पृथक् विविध गुणसम्पन्न मंत्रों की चार प्रकार की उत्पत्ति होती है। पूर्व मन्वन्तरों में विद्यमान रहने वाले अति घोर तपस्या में निरत ऋषियों के अन्तःकरण में ईश्वरेच्छा वश तारकादि दर्शन से परितोष, भय, दुःख, सुख एवं शोक से—इन पाँच कारणों से सभी मंत्रों की उत्पत्ति हुई। अब इसके बाद मैं अतीत एवं भविष्यत्कालीन ऋषियों के ऋषित्व का लक्षण बतला रहा हूँ। वे ऋषिगण पाँच प्रकार के कहे गये हैं। उन ऋषियों के आर्ष धर्म की उत्पत्ति के बारे में बतला रहा हूँ। सभी चराचर जगत् के विनाश हो जाने पर जब कि सत्त्व, रज एवं तम—इन तीनों गुणों की साम्यावस्था हो जाती है, देवताओं के अस्तित्व का भी कोई पता नहीं रहता, उन दोनों का एक रूप अतिदेश हो जाता है, उस समय उस प्रधान तत्त्व में बिना बुद्धि व्यापार के किये ही (स्वतः) चेतना की स्फुरणा होती है। जिस प्रकार मत्स्य और उसका अधिष्ठान जल एक ही रूप में रहता हुआ भी परस्पर भिन्न-भिन्न है उसी प्रकार वे प्रधान एवं अप्रधान तत्त्व परस्पर एक रूप में वर्तमान रहते हैं। इस प्रकार चेतनाधिष्ठित प्रधानतत्त्व में गुणों की विषमता प्राप्त होती है तब उसके कारण होने से कार्य की प्रवृत्ति होती है। विषय में विषयित्व और अर्थ में अर्थित्व की कारणता से काल के द्वारा क्रमशः महदादि को व्यक्त होने का अवसर प्राप्त होता है। उस महतत्त्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है और अहंकार से पंच तन्मात्रा की उत्पत्ति होती है। उस पंच तन्मात्रा से स्थूल पंच भूतों का आविर्भाव होता है। संसिद्धकारण[1] शीघ्र ही कार्यरूप में विवर्तित[2] हो जाता है जिस प्रकार जलता हुआ काष्ठ का लुआठा ऊपर से गिरते हुए एक ही समय में सभी दिशाओं में अपना प्रकाश विकीर्ण कर देता है। उसी प्रकार क्षेत्रज्ञ कालकर्म द्वारा विवर्तित होकर एक ही समय में सर्वत्र

---

[1] स्वभाव से ही सिद्ध होनेवाला कारण।

[2] कारण द्वारा अन्य स्वरूप में उत्पन्न हुआ कार्य।

व्याप्त हो जाता है। निविड़ अन्धकार में खद्योत की चमक के समान अव्यक्त में महत्तत्व का विवर्तन अतिशीघ्र परिलक्षित होता है। सम्पूर्ण ज्ञान का आधार वह महान् शरीर समेत जहाँ पर पूर्व में व्यवस्थित था, वहीं पर महागृह के द्वार देश में वह स्थित रहता है। वह महान् तमोराशि के पार व्यवस्थित रहकर उसकी अपेक्षा अपनी विलक्षण ज्योति के कारण इस रूप में प्रकट होता है। सर्वज्ञानाधार महान् की स्थिति वहीं अन्धकार के अवसान स्थल पर है—ऐसी श्रुति है। महान् के विवर्तित होने पर ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म—ये चार प्रकार की बुद्धि उत्पन्न हुई। उसकी यह बुद्धि स्वाभाविक तथा सर्वाधिक प्रभाव शालिनी होती है। शरीरयुक्त महत्तत्व के विवर्त से ही सिद्धि प्राप्त होती कही जाती है। जो अव्यक्त नाम से प्रसिद्ध उस पुरी में शयन करता है। तथा उस पुरी का स्वामी है, एवं जिसको उस क्षेत्र का सम्यक् ज्ञान है, उसे पुरुष कहते हैं। क्षेत्र के सम्यक् ज्ञान होने के कारण ही उसे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। मनन करने के कारण वह भगवान् एवं अखण्ड बुद्धि के साथ संयुक्त रहने के कारण बोधात्मक कहा जाता है। वह अचेतन प्रकृति के स्वाभाविक गुण एवं परिमाणवश व्यक्ताव्यक्त सभी पदार्थों में संसिद्धि (लोक-सिद्धि) के लिये परिगत (व्याप्त) रहता है। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित क्षेत्रज्ञ शक्ति इस प्रकार स्वयं निष्क्रिय रहकर क्षेत्रज्ञ द्वारा भोग्यविषय रूप में परिज्ञात होती है। ऋष् धातु गमन, मोक्ष, प्राप्ति, ज्ञान, श्रुति, सत्य एवं तपस्या—इन अर्थों में प्रयुक्त होता है, जो इन अर्थों से समन्वित होकर पर ब्रह्म में निरत रहता है वह ऋषि कहा जाता है। जो ऋषि सांसारिक विषयों से निवृत्ति प्राप्त करते समय उस अव्यक्त परम तत्त्व में निवेश करता है वह परम (महा) ऋषि कहा गया है। गमन अर्थ में प्रयुक्त होने वाले ऋष् धातु से ऋषि शब्द की निष्पत्ति होती है, सृष्टि के आदि काल में यतः स्वयमेव समुत्पन्न हुए थे अतः इनको भी ऋषि कहते हैं। परम ऐश्वर्य सम्पन्न ब्रह्मा के मानस पुत्र ऋषिगण आदि काल में स्वयमेव उत्पन्न हुए थे। जो किसी मान (परिमाण) द्वारा नापा नहीं जा सकता अर्थात् जिसके परिमाण की कोई सीमा नहीं है, वही महान कहा जाता है। जो बुद्धि के पारदर्शी (परम बुद्धिमान्) तथा धैर्यशाली विद्वान् गण, सभी ओर से सभी गुणों में महान् का अवलम्बन करते हैं अथवा उस (महान्) के सान्निध्य को प्राप्त करते हैं। वे महर्षि कहे जाते हैं। उन परम ऐश्वर्यशाली महर्षियों के और तथा मानस पुत्रों ने भी अहंकार एवं अज्ञान का परित्याग कर ऋषित्व की प्राप्ति की। इस प्रकार सभी चराचर जीवों में तत्त्व के दर्शन करने वाले ऋषि कहलाये और उन ऋषियों के मैथुन द्वारा गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्र गण ऋषीक कहलाये। जो सत्य के परम पुजारी एवं महातेजस्वी ऋषिगण पंच तन्मात्राओं एवं सत्य पर निर्भर रहने वाले हैं; वे सप्तर्षि कहलाते हैं। ऋषियों के पुत्र गण, जो कि ऋषीकों के नाम से विख्यात हैं, शास्त्रों के तत्व पर विशेष अधिकार रखते हैं अतः श्रुत ज्ञान (शास्त्रीय ज्ञान) के सम्यक् विश्लेषण करने के कारण वे श्रुतर्षि नाम से विख्यात हैं। अव्यक्तात्मा, महात्मा, अहंकारात्मा, भूतात्मा तथा इन्द्रियात्मा—ये ऋषिगण पाँच प्रकार के ज्ञान का अनुशीलन करते कहे जाते हैं। ऋषियों की यह जाति पाँच प्रकार की है, जिनको नाम सहित बतला रहा हूँ। सुनिये। भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष वसिष्ठ और पुलस्त्य—ये दस ऋषि गण अति ऐश्वर्यशाली एवं ब्रह्मा के मानस पुत्र कहे गये हैं, जो सृष्टि के

Funding by IKS-MoE

आदिकाल में स्वयमेव अविर्भूत हुए थे। यतः महान् स्वयमेव उन समस्त ऋषियों के रूप में परिणत हो कर आविर्भूत होता है अतः उन्हें महर्षि कहते हैं, इन परमैश्वर्य सम्पन्न ऋषियों के पुत्र अन्य ऋषियों के बारे में बतला रहा हूँ, सुनिये। काव्य, बृहस्पति, कश्यप, उशना, उतथ्य, वामदेव अयोज्य, औशिज, कर्दम, विश्रवा, शक्ति, वालखिल्य, धरा—ये समस्त ऋषिगण अपने ज्ञान बल से ऋषित्व को प्राप्त हुये कहे जाते हैं। ऋषि के पुत्र ऋषीकों को गर्भ से उत्पन्न हुआ समझिये। वत्सर, नग्नहू, भारद्वाज, बृहदुत्थ, शरद्वान्, अगस्त, औशिज, दीर्घतमा, बृहदुक्थ, शरद्वत, बाजश्रवा, सुवित्त, सुवाक्, वेष परायण ? दधीच, शङ्खवान्, राजा वैश्रवण—ये समस्त ऋषीकगण अपने सत्य के बल पर ऋषित्व को प्राप्त हुए कहे जाते हैं। इन समस्त ऋषिपुत्र ऋषीकों के अतिरिक्त अन्य जो ऐश्वर्यवान् ऋषिगण कहे गये हैं, वे भी मंत्रों के निर्माण करने वाले हैं, उन सब को मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। भृगु, काव्य, प्रचेता, दधीच, आत्मवान्, और्व, जमदग्नि, विंद, सारस्वत, अर्ष्टिषेण, अरूप, वीतहव्य, सुमेधस, वैन्य, पृथु, दिवोदास, पश्वास्य, गृत्समान् और नभ—ये उन्नीस मंत्रवादी ऋषि कहे गये हैं। अंगिरा, वेधस, भारद्वाज, बाष्कलि, अमृत, गार्ग्य, शैनी, संहृति, पुरुकुत्स, मांधाता, अम्बरीष, युवनाश्व, पौरुकुत्स, त्रसदस्यु, सदस्युमान्, आहार्य, अजमीढ़, ऋषभ, वलि, पृषदश्व, विरूप, कण्व, मुद्गल, उतथ्य, भरद्वाज, बाजश्रवा, आयाप्य, सुवित्तिक वामदेव, औगज, बृहदुक्थ, दीर्घतपा, और कक्षीवान्—ये तैंतीस अंगिर वंशीय श्रेष्ठ ऋषि हैं, जो सब के सब मंत्रकर्ता हैं। अब कश्यप वंशीय ऋषियों को सुनिये। कश्यप, वत्सार, विभ्रम, रैभ्य, असित और देवल-ये छः कश्यप वंशीय ब्रह्मवादी ऋषि हैं। अत्रि, अर्चिसन्, श्यामावान्, निष्ठुर, बुद्धिमान् बल्गूतक तथा पूर्वातिथि—ये अत्रि वंशीय मंत्रकर्त्ता महर्षि कहे गये हैं। हे ऋषिगण! वसिष्ठ, शक्ति, पराशर, इन्दुप्रमति, भरद्वसु, मैत्रावरुण, और कुण्डिन,—ये सात ऋषि ब्रह्मक्षेत्र के निवासी कहे गये हैं। यह[1] ब्रह्मक्षेत्र तीर्थ लोक पितामह ब्रह्मा द्वारा सेवित परम पवित्र कुरुक्षेत्र में अवस्थित है, प्राचीन काल में स्वयं ब्रह्मा जी ने इस महातीर्थ का निर्माण किया था। उस परम पवित्र तीर्थ में एक बार देवताओं, ऋषिओं, तथा मुनियों का विराट् समागम था। उस अवसर पर ब्रह्मा जी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि वायु देवता कहाँ देखे जाते हैं? आप लोग बतलाइये। ऋषियों ने कहा, हम लोगों ने तो वायु देवता का दर्शन नहीं किया है। इस प्रकार की बात चीत चल ही रही थी कि इसी बीच एक अणु दिखलाई पड़ा। वह अणु एक पुर के रूप में परिणत दिखाई पड़ने लगा जिसका वायुपुर नाम पड़ा। उस सनय उस विस्तृत वायुपुर में अठारह सहस्र ब्राह्मणों का निवास स्थान निर्मित हुआ था। परम प्रभावशाली वायु देवता ने ब्राह्मणों की संख्या से द्विगुणित संख्या में शूद्रों की स्थापना की और उन सब से कहा कि तुम सब लोग मेरे भक्त हो और मेरे ही नाम से तुम सब ख्याति प्राप्त करोगे, अतः तुम प्रत्येक दो व्यक्ति ब्राह्मणों की अनुचर वृत्ति स्वीकार कर उनकी सेवा करते जाओ। आप लोगों का गोत्र ग्यारह शाखाओं में विभक्त होगा, और विवाह के अवसर पर आप लोगों के यहाँ चबूतरे के

---

[1] यहाँ से अगले पृष्ठ पर " " चिह्न तक का पाठ कई मूल पुस्तकों में नहीं है।

Funding by IKS-MoE

ऊपर मंगल स्नान सम्पन्न होगा। उस स्नान के अवसर पर म्यान रहित नंगी तलवारें हाथ में लेकर बलवान् मनुष्यों को बाहर रखवाली के कार्य पर नियुक्त करना चाहिये, जिससे इस मांगलिक विधि को अन्य लोग न देख सकें। उस अवसर पर अपने गोत्र में उत्पन्न स्त्रियों को अलग-अलग नैवेद्य से पूजित करे तथा चार अन्य सुन्दरियों द्वारा आदर पूर्वक कुण्डन कार्य सम्पन्न कराये। आप लोगों के कुलाचार के सम्बन्ध में ये कुछ बातें मैंने आप लोगों को बतलाई हैं। यह बावली स्नान करने पर सांसारिक सन्तापों को शान्त करने वाली है। हे नरपुङ्गव वृन्द! इस बावली में स्नान करने का अधिकार किसी अन्य को नहीं है। मेरे नाम से प्रसिद्ध छः स्थानों का दर्शन करके मनुष्य पवित्र हो जाते हैं। वह पावन तीर्थ समस्त पृथ्वी मण्डल में विख्यात है, जहाँ पर हनुमान् ने जीवन ग्रहण किया था। ब्रह्मवादी वायु देवता ने उस स्थान पर धर्म की रक्षा के लिये तीनों देवताओं के आदेश से उन ब्राह्मणों की स्थापना की थी। उसी स्थान पर भगवान् रुद्र स्थायी रूप से सभी दिशाओं में मूर्तमान रहते हुए अवस्थित रहते हैं। वायु ने उसी अवसर पर वहाँ देवताओं में ऐश्वर्यशाली वाडादित्य की प्रतिष्ठा की थी। वे परम प्रतापशाली भगवान् सूर्य सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, सर्वदायी, ऐश्वर्ययुक्त एवं परम प्रभु हैं। सभी प्रकार के शस्त्रास्त्रों से विभूषित, सहस्र किरण वाले, रत्नादेवी से संयुक्त वे श्रीमान् भगवान् सूर्य त्रयीमय (सत्त्व, रज, तमोगुण युक्त) तथा समस्त त्रिलोकी के आधारभूत हैं। उसी परम पुनीत स्थल में ऐसे भगवान् सूर्य का एक कुण्ड है, उसी के समीप ब्रह्म कुण्ड तथा विष्णु कुण्ड, रुद्र कुण्ड भी हैं, इस प्रकार ये चार कुण्ड वहाँ विराजमान् हैं। उस पावन क्षेत्र की रक्षा के लिए वहाँ नव दुर्गा स्थित हैं, उनमें से विष्णु की दो, रुद्र, की तीन और ब्रह्मा की चार हैं। विवाह कार्य, व्रत एवं चूडा संस्कार में उनको कर दिया जाता है। वहाँ के निवासी उन वाडवों के लिये प्रयत्न साध्य अनेक आचार कहे गये हैं। शूद्रगण उन ब्राह्मणों के द्विगुणित क्या उतने भी नहीं रह गये जितनी संख्या ब्राह्मणों की थी। पहले ब्राह्मण लोग कुश रूप में थे, उसके अनन्तर वे शरीरधारण कर रहने लगे। शास्त्रों के पारगामी एवं मंत्रकर्त्ताओं में श्रेष्ठ उन ब्राह्मणों ने अपने अमोघ मंत्रों द्वारा वहाँ अनेक बावली, कूप, तडाग, देवमन्दिर आदि का निर्माण किया। वायु के उस महान् पुर में धर्मशालाओं की भरमार थी, उसमें सुवर्ण एवं रत्नों से पूर्ण अमृत जलवाहिनी गंगा की धारा बहा करती थी। उस पुनीत गंगा का नाम कलियुग में दृषद्वती हुआ, जो घोर पाप समूहों का नाश करने वाली है। पापों को विनष्ट करने वाले उस परम पुनीत क्षेत्र की स्थापना इस प्रकार वायु देवता ने की थी। उसी क्षेत्र में राजर्षियों द्वारा सेवित अति रमणीक सुनन्दन नामक वन है। इस प्रकार उस स्थान के विविध तीर्थों का परिचय मैंने संक्षेप में कह दिया वाय द्वारा स्थापित उन ब्राह्मणों की उपमा किसी से नहीं दी जा सकती, हे देवेशि! केवल उन्हीं ब्राह्मणों से ही उनकी उपमा दी जा सकती है, अर्थात् उनके समान वे स्वयम् हैं,[1] अन्य

---

[1] कई मूल पुस्तकों में " " चिह्नों से अंकित तक का पाठ नहीं है, जो समुचित प्रतीत होता है। क्योंकि ऋषियों की सातवीं संख्या के बीच में इस कथा का कोई सम्बन्ध ठीक-सा नहीं जँचता। पर अधिकांश पुस्तकों के पाठ के अनुरोध पर मैंने इस असम्बद्ध अंश का भी अनुवाद कर दिया है। अनुवादक।

Funding by IKS-MoE

कोई नहीं" । उन मंत्रकर्त्ता ऋषियों में सुद्युम्न आठवें, बृहस्पति नवें तथा भरद्वाज दसवें ऋषि हैं, जो सब के सब मंत्र एवं ब्राह्मण भाग की रचना करने वाले तथा विधर्म के विध्वंस करने वाले हैं। सब शास्त्रों के मर्मज्ञ मनीषियों ने ब्राह्मण के यही लक्षण कहे हैं। हि धातु से हेतु शब्द की निष्पत्ति कही जाती है, जिसका अर्थ है, दूसरे के व्यक्त किये गये मत का प्रतिवाद या खण्डन करना, अथवा एक दूसरे हि धातु से, जिसका अर्थ गमन करना है, हेतु शब्द की निष्पत्ति होती है; जिसके द्वारा दूसरे के व्यक्त किये गये मत में दोषारोपण करके अपने मत का निश्चय किया जाय, वह हेतु है। आचार्य लोग केवल दोष प्रदर्शन पूर्वक दूसरे के वाक्य की भर्त्सना या स्पष्ट शब्दों में निन्दा करने को निन्दा कहते हैं। प्र उपसर्ग पूर्वक शंस् धातु से प्रशंसा शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है गुणवत्ता प्रकट करना। यह वस्तु यह है, यह वस्तु यह नहीं है, इस प्रकार का अनिश्चय करना संशय कहा जाता है। यही करना चाहिये— इस प्रकार के निश्चयात्मक वाक्य को विधि कहते हैं। दूसरे दूसरे द्वारा उक्त होने के कारण उसको (उस विधि को) विद्वानों ने परकृति कहा है। जो अत्यन्त प्राचीनकाल व्यतीत हो चुका है, उसे पुराकल्प कहते हैं, पुरा शब्द के प्राचीन अर्थ के द्योतक होने के कारण पुराकल्प शब्द की निष्पत्ति हुई। उस पुराकल्प में घटित होनेवाली घटनाएँ शुद्ध, सुविस्तृत मंत्र ब्राह्मणकल्प निगम आदि द्वारा निश्चित नहीं होतीं, केवल अनिश्चय भाव से ही उनके निश्चय की कल्पना की जाती है। जिस प्रकार इस (व र्मान) कल्प में घटित हो रहा है, उसी प्रकार वह प्राचीन कल्प भी है, और जैसा वह कल्प था वैसा ही यह भी है—यह ब्राह्मण का दसवाँ उपदेश है। प्राचीनकाल में बुद्धिमानों ने ब्राह्मण का यही लक्षण बतलाया है, और पीछे से ब्राह्मणों ने उसकी व्याख्या भी वृत्ति रूप में कल्पित की। इसके अतिरिक्त उन्हीं ब्राह्मणों ने विधि पूर्वक सम्पन्न होनेवाले कर्मों में मंत्रों की कल्पना की। मंत्र धातु से मंत्र शब्द की निष्पत्ति होती है, ब्रह्मा के आदेशों को पालन करने के कारण ब्राह्मण नाम पड़ा। थोड़े-से अक्षरों में सन्देह रहित व्यर्थ के आडम्बरों एवं दोषों से शून्य विस्तृत सार अर्थ को प्रकट करने वाले वाक्य को सूत्रवेत्ता लोग सूत्र कहते हैं। ॥ ५६–१४२ ॥

इति श्री महापुराणे वायप्रोक्ते ऋषि लक्षणं नामोनषष्ठ्यध्यायः ॥ ५९ ॥

साठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा[1]—इस प्रकार की बातें सुनने के उपरान्त ऋषियों ने परमज्ञानी सूतजी से पूछा कि हे महामते! प्राचीन काल में वेदों के विभाग किस प्रकार हुए—वह वृत्तान्त हम लोगों को बतलाइये ॥ १ ॥

सूत ने कहा—परम बुद्धिमान ऋषिवृन्द! स्वायम्भुव मन्वन्तर में द्वापर युग में इसी वृत्तांत को ब्रह्मा ने मनु से कहा था, उसे ही हम बतला रहे हैं। (ब्रह्मा ने मनु से कहा:—) हे तात! युग परिवर्तन

---

[1] यह अयुक्त है।

होने पर ब्राह्मणों का पराक्रम एवं तेज अल्प हो जाता है, क्योंकि युगदोष के कारण सभी ब्राह्मणादि वर्ण क्रमशः अल्प पराक्रमी तथा अल्प तेजस्वी हो जाते हैं और इस प्रकार एक युग की अपेक्षा दूसरे युग में और दूसरे युग की अपेक्षा तीसरे युग में क्रमशः अल्प होते होते उनके वे पराक्रमादि अन्तिम युग में तो बहुत ही अल्प परिमाण में शेष रह जाते हैं। इस प्रकार सतयुग की अपेक्षा लोगों के पराक्रम, तेज, बल और वाक्य—ये सभी दस सहस्रवें भाग में शेष रहते हैं और अन्त में तो एकदम से विनष्ट हो जाते हैं। अतः वेदों का विनाश जिस प्रकार न हो उसके लिए एक वेद का अनेक भागों में विभाग होना चाहिये। क्योंकि वेदों के विनष्ट हो जाने पर यज्ञ का विनाश हो जायगा, और यज्ञों के विनष्ट होने पर देवताओं का विनाश हो जायगा—जिससे सभी का विनाश हो जायगा। पहले यह वेद चार पादों तथा एक लाख सूक्तों में पूर्ण कहा जाता था, उसके बाद सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले यज्ञों के लिए उन सब की दस गुनी वृद्धि हुई। ब्रह्मा की ऐसी बातें सुनकर लोकहित में निरत भगवान् मनु ने 'वैसा ही होगा' कहकर उस चार पाद वाले एक वेद को चार भागों में विभक्त किया। इस समय आप लोगों के सामने जो वेद समूह विद्यमान हैं, उसे ब्रह्मा के कथनानुसार लोक कल्याण की भावना से मनुजी ने चार भागों में विभक्त किया। इसी मन्वन्तर द्वारा जिसे बतला रहा हूँ, अन्यान्य मन्वन्तरों के बारे में भी वेद विभाग, एवं उनके कर्त्ताओं को जानना चाहिये। इस युग में परमतपस्वी पराशर के पुत्र द्वैपायन व्यासजी ने, जो भगवान् विष्णु के अंश कहे गये हैं, ब्रह्मा के अनुरोध पर इस वेद का विभाग किया। व्यास ने वेद का प्रचार करने के लिए अपने प्रमुख चार शिष्य बनाये, जिनके नाम हैं जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन और पैल। इन शिष्यों के अतिरिक्त लोमहर्षण नामक एक पाँचवाँ शिष्य भी था। परम तेजस्वी भगवान् वेदव्यास ने द्विजवर्य पैल को ऋग्वेद का व्याख्याता, वैशम्पायन को यजुर्वेद का, जैमिनि को सामवेद का तथा ऋषिवर्य्य सुमन्तु को अथर्ववेद का अंगीकार किया। इतिहास और पुराण की व्याख्या के लिए उन्होंने मुझे नियुक्त किया। पहिले यजुर्वेद एक ही था, उसे पीछे चलकर चार भागों में विभक्त किया गया, इस प्रकार उसमें चातुर्होत्र की कल्पना हुई, जिससे यज्ञों का प्रचलन किया। यजुर्वेद के मंत्रों से आध्वर्यव, ऋक्वेद के मंत्रों से हवन, सामवेद के मंत्रों से उद्गात्र और अथर्ववेद के मंत्रों से ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा की। इस प्रकार यज्ञों में जितने ब्रह्मकार्य हैं वे अथर्ववेद द्वारा प्रतिष्ठित हैं। तदनन्तर उन्होंने ऋचाओं का उद्धार करके ऋग्वेद का सम्पादन किया। जिसके द्वारा जगत् के कल्याण करने वाले, हवनीय पदार्थों के वाहक होताओं की कल्पना हुई। साम के स्फुट मंत्रों के संग्रह से सामवेद का संग्रह एवं सम्पादन किया, जो उद्गात्रों (सामवेद के गान करने वाले वटु समूह) को विशेष रुचिकर हुआ, अथर्ववेद द्वारा राजाओं के परमावश्यक समस्त कर्मकाण्डों का विधान कराया। इसी प्रकार पुराणों के तात्पर्य को भलीभाँति समझने वाले द्वैपायन ने आख्यान, उपाख्यान, गाथाओं एवं कुलाचार की परम्परा द्वारा पुराणों की विस्तृत कथाओं की रचना की। यजुर्वेद में जो भाग शेष रहा उससे यज्ञों का विधान किया। जिसके द्वारा यज्ञों की क्रियायें सम्पन्न होती हैं, वही यजुर्वेद है, शास्त्रों का यही निचोड़ है। वेदों के पारगामी अन्यान्य विद्वान ऋषियों

के संसर्ग से स्फुट यजुर्वेद के मंत्र एवं पद समूहों को एकत्र संगृहीत किया और उनका विधिवत् संकलन किया। उन्हीं यर्जुर्वेद के मंत्रों द्वारा अश्वमेध यज्ञ का प्रचलन हुआ। परम तेजस्वी पैल ऋषि ने ऋक्समूहों को एकत्र संगृहीत कर दो भागों में विभक्त किया, और उनमें से एक-एक भाग को दो शिष्यों को सौंपा, एक इन्द्रप्रमति को दूसरा बाष्कल को। द्विजश्रेष्ठ बाष्कलि ने सेवा में निरन्तर निरत रहने वाले, कल्याण भाजन अपने चार शिष्यों को, उसका चार संहिताओं में विभाग करके पढ़ाया। जिनमें से पहिली शाखा की बोध्य को, दूसरी शाखा की अग्निमाठर को, तीसरी शाखा की पाराशर को और चौथी शाखा की याज्ञवल्क्य को शिक्षा दी। ब्राह्मणों में श्रेष्ठ इन्द्रप्रमति ने एक संहिता का सम्पादन कर परम यशस्वी और भाग्यशाली मार्कण्डेय मुनि को उसकी शिक्षा दी। महान यशस्वी मार्कण्डेय मुनि ने उसे सत्यश्रवा नामक अपने ज्येष्ठ पुत्र को और सत्यश्रवा ने सत्यहित नामक शिष्य को उसकी शिक्षा दी। परम ऐश्वर्यशाली सत्यहित ने अपने पुत्र सत्यतर (सत्यरत) को और सत्यतर ने सत्यपरायण धर्मश्रेष्ठ महात्मा तत्यश्री को उसकी शिक्षा दी। विद्वान् सत्यश्री के शास्त्राभ्यास में तत्पर रहने वाले परम तेजस्वी तीन शिष्य हुए जिनमें से प्रथम का नाम शाकल्य दूसरे का नाम रथान्तर और तीसरे का नाम बाष्कल का पुत्र भरद्वाज था। ये ही ऋषिगण वेद की शाखाओं के प्रवर्त्तक कहे गये हैं। अपने ज्ञान के अहंकार से गर्वित होकर शाकल्य वेदमित्र नामक द्विज राजा जनक के यज्ञ में विनाश को प्राप्त हुए। ॥१-३२॥

शांशपायनजी ने कहा—सूतजी! ज्ञान के गर्व से गर्वित वे मुनि किस प्रकार विनाश को प्राप्त हुए, राजा जनक के अश्वमेध यज्ञ में क्योंकर वादविवाद उठा था? किस लिए वह बेकार का वादविवाद बढ़ा था और किसके साथ हुआ था? ये सभी बातें आपको विस्तारपूर्वक ज्ञात हैं, हमें बतलाइये। सूत ने ऋषियों की बातें सुनने के बाद कहा:— ॥३३-३४॥

सूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द! राजर्षि जनक के उस अश्वमेध यज्ञ में महान् जनसमागम एकत्र हुआ था, विविध देशों एवं स्थानों से यज्ञ के दर्शनार्थी ऋषिगण सहस्रों की संख्या में आ-आकर उसमें सम्मिलित हुए थे। समागत विशाल ब्राह्मण समुदाय को देखकर राजा जनक के मन में यह स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि इन तमाम ब्राह्मणों में कौन सर्वश्रेष्ठ है—इसका निश्चय मुझको किस प्रकार होगा? राजा ने ऐसा मन में विचार कर एक युक्ति का सहारा लिया। एक सहस्र गौएँ, एक सहस्र से अधिक सुवर्ण, अनेक ग्राम, बहुमूल्य रत्न और दास दासियों के समूह को साथ लेकर मुनियों से राजा ने कहा:—परमभाग्यशाली ऋषिवृन्द! आप सब लोगों को मैं शिर झुकाकर नमस्कार कर रहा हूँ। आप लोगों में से जो मुनि सर्वश्रेष्ठ हों, वे मेरे इस लाये हुए द्रव्यादि समूह को ग्रहण करें, क्योंकि श्रेष्ठ ब्राह्मण लोग एक मात्र विद्या के धनी होते हैं, अर्थात् उनकी श्रेष्ठता का परिचय विद्या से होता है। राजर्षि जनक की ये बातें सुनकर वेद विशारद उन मुनियों ने उस बहुमूल्य धनराशि को अपनाने की अभिलाषा से अपने-अपने वेदज्ञान के मद से उन्मत्त होकर एक दूसरे को वादविवाद के लिए ललकारा। उस समय अनेक के मन में यह भाव उठ रहे थे कि यह सब धन हमारा है, कोई-कोई यह सोच रहे थे कि सब कुछ मेरे ही लिए है। कोई अपने दूसरे साथी से पूछ

Funding by IKS-MoE

रहा था कि बोलो यह हमारे ही लिए है न, अथवा किसी दूसरे के लिए। बोलो, क्या विकल्प कर रहे हो। इस प्रकार उन ऋषियों में उस धनराशि के लोभ के कारण अनेक तरह के वादविवाद उठ खड़े हुए। ठीक इसी अवसर पर वहाँ ब्रह्मवाहसुत, कवि, परमतेजस्वी, ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, महान् तपस्वी याज्ञवल्क्य नामक एक दूसरे ऋषि, जो ब्रह्मा के अंग से समुत्पन्न हुए थे, अपने शिष्यों से उच्च स्वर में बोले—अरे जी ! जाकर इस धनराशि को उठा लो। वत्स ! जाओ सब को उठाकर घर ले चलो, अरे, यह सब हमारे ही हैं, इसमें सन्देह मत करो। सभी वेदों में मैं ही एकमात्र अधिकारी प्रवक्ता हूँ, मेरे समान वेदों पर अधिकार रखने वाला दूसरा कोई नहीं है। जिस किसी ब्राह्मण को मेरी यह बात अच्छी न लगती हो वह सामने आ जाय, विलम्ब करने की कोई आवश्यकता नहीं है ? याज्ञवल्क्य की बातें सुनकर ब्राह्मण समुदाय प्रलय कालीन समुद्र की भाँति क्षुब्ध हो गया; पर स्वस्थ मनोवृत्ति सम्पन्न मुनिवर याज्ञवल्क्य हँसते हुए से बोलते रहे। वे फिर बोले :—विद्वद्वृन्द ! आप लोग हमारे ऊपर क्रुद्ध न हों, आप सभी सत्यवादी हैं। मैं सच कह रहा हूँ, आप लोग परस्पर विचार कर इसका निश्चय करें। तदनन्तर वहाँ पर उन में परस्पर अनेक वादविवाद होने लगे, धन लोभ से युक्त उन महात्मा ऋषियों में लौकिक, वैदिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर सूक्ष्म दर्शन (अनुभूति) जनित सहस्रों कल्याणकारी अर्थों के नवीन-नवीन आविष्कार से युक्त विवाद होने लगे, उस समय कोई किसी की बुद्धि की निन्दा कर रहे थे तो कोई किसी की युक्ति की उत्तम गुणों से प्रशंसा कर रहे थे। वे विस्तृत वादविवाद राजाओं के समूहों को नष्ट करने वाले थे। उस महान् वादविवाद में एक ओर सब के सब ऋषि सम्मिलित हुए थे और दूसरी ओर अकेले याज्ञवल्क्य थे। उन सभी ऋषियों से एक-एक करके याज्ञवल्क्य ने प्रश्न किये किन्तु किसी ने भी ठीक उत्तर नहीं दिया। तदुपरान्त ब्रह्मराशि, परम शोभासम्पन्न याज्ञवल्क्य ने उन सभी ऋषियों को पराजित कर विवाद करने में प्रमुख भाग लेने वाले शाकल्य नामक ऋषि से शीघ्रतापूर्वक कहा :—शाकल्य ! क्या विचार कर रहे हो, अपनी जड़ता के कारण तुम वायु से भरी हुई भाथी की तरह अभिमान से फूले हुए हो, बोलो, चुप क्यों बैठे हो। याज्ञवल्क्य द्वारा इस प्रकार अपमानित होने पर शाकल्य का मुख और नेत्र क्रोध से लाल हो गये। सभी ऋषियों के समीप में ही उन्होंने कठोर वाणी में कहा, याज्ञवल्क्य ! 'तुम हमें और इन श्रेष्ठ ऋषियों को तृण की भाँति जीत कर इस अतिमूल्यवान विद्याधन को अकेले अपने ही लेना चाहने हो।' शाकल्य के ऐसा कहने पर याज्ञवल्क्य ने सभी मुनियों के सामने कहा, अच्छे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण का बल उनका विद्या का तत्त्वार्थ ज्ञान समझो, यतः काम (इच्छा) का सम्बन्ध अर्थ (धन) से पड़ता है, इसीलिए मैं भी धन की कामना करता हूँ। ब्राह्मण लोग इच्छानुकूल प्रश्न करने वाले होते हैं, मैंने भी अपनी अपनी इच्छा के अनुकूल प्रश्न आप लोगों से किया। राजर्षि जनक का प्रण भी यही था कि जो विप्र विद्या आदि में सर्वश्रेष्ठ सिद्ध हो, वही पूज्य है, इसीलिए मैंने इस धनराशि को ग्रहण किया। याज्ञवल्क्य की ऐसी बातें सुनकर शाकल्य मुनि ने क्रोध से मूर्च्छित होकर अपनी इच्छा के अनुरूप उनसे प्रश्न किया। अब मेरे इष्ट प्रश्नों का यथार्थ उत्तर बोलो। तदनन्तर उन दोनों ब्रह्मज्ञानी ऋषियों में महान् विवाद हुआ। शाकल्य ने याज्ञवल्क्य से एक सहस्र प्रश्न किये, जिनका उसी अवसर पर

याज्ञवल्क्य ने सभी ऋषियों को सुनते हुए उत्तर दिया। इस प्रकार प्रश्न कर चुकने पर जब शाकल्य चुप हो गये तब याज्ञवल्क्य ने कहा, शाकल्य! अब तुम मेरे केवल एक अभीष्ट प्रश्न का उत्तर दो; किन्तु इस शास्त्रार्थ में एक बाजी यह रहेगी कि यदि प्रश्न का उत्तर न दे सकोगे तो मृत्यु को प्राप्त होगे। परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य के प्रश्न का तात्पर्य शाकल्य की बुद्धि में नहीं आया; परिणाम स्वरूप वे शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गये। याज्ञवल्क्य के प्रश्न और व्याख्यान से पीड़ित होकर शाकल्य मुनि की मृत्यु हुई थी। इस प्रकार उन धनराशि के चाहने वाले ऋषियों एवं मुनियों के साथ याज्ञवल्क्य का महान् विवाद हुआ था। उस अवसर पर उन सभी मुनियों के सैकड़ों क्या सहस्रों जटिल प्रश्नों की भली भाँति व्याख्या करके महाबुद्धिमान्, जितेन्द्रिय याज्ञवल्क्य ने समुचित उत्तर दिया था और अपने यश का विस्तार कर सभी शिष्यों के साथ उस धनराशि को लेकर प्रसन्न मन से अपने निवास की ओर प्रस्थान किया था। परम बुद्धिमान्, पदों के अर्थों को जानने वाले मुनियों में सर्वश्रेष्ठ, विप्रवर्य्य देवमित्र शाकल्य ने पाँच संहिताओं का प्रणयन किया था, उनके मुद्गल, गोलक, खालीय, मत्स्य और शैशिरेय नामक पाँच शिष्य थे। द्विजश्रेष्ठ शाकपर्ण रथीतर ने तीन संहिताओं का उपदेश किया था और फिर निरुक्त का प्रणयन किया, जो उनकी चौथी रचना थी। उनके केतव, दालकि, धर्मशर्मा और देवशर्मा नामक चार द्विज शिष्य थे, जो सब के सब तपस्वी एवं विद्याव्रती थे। ॥३५–६६॥

शाकल्य की मृत्यु के उपरान्त सभी ऋषियों को ब्रह्महत्या का पाप लगा, जिससे अति चिन्तित होकर वे ब्रह्मा के समीप गये। मन से ही उन सबों की अभिलाषाओं को समझकर ब्रह्मा ने उन्हें पवनपुर को भेज दिया और कहा तुम लोग वहाँ जाओ, वहाँ जाने से शीघ्र ही तुम सबों का पाप नष्ट हो जायगा। वहाँ पर बारहों सूर्य, बालुकेश्वर, ग्यारह रुद्र, विशेषतया वायुपुत्र को नमस्कार करके तथा चारों कुण्डों में स्नान कर ब्रह्म हत्या से तुम लोग मुक्त हो जाओगे। ब्रह्मा की बातें सुन ऋषिगण वायुपुर के लिए शीघ्रता से प्रस्थित हुए और वहाँ जाकर उन्होंने विधिपूर्वक स्नान एवं देवताओं के दर्शन किये। वाडवों की कृपा से उत्तरेश्वर को नमस्कार करके वे सभी पापमुक्त हो गये और सूर्यमण्डल को चले गये। तभी से वह वायुपुर नामक पावन तीर्थ पापों का विनाश करने वाला हो गया, जिसका पूर्वकाल में वायु ने निर्माण किया था। जिस समय अञ्जनी के गर्भ से उत्पन्न होनेवाले पवनपुत्र हनूमान्, जिनका पराक्रम कभी मिथ्या (व्यर्थ) नहीं होता, उत्पन्न हुए थे, उसी समय ब्रह्मयोनि वायु ने उस पावन तीर्थ का निर्माण किया था। पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले, ब्राह्मणों के सेवक जो शूद्रगण उस पुर में उत्पन्न हुए थे, उनके ऊपर ब्राह्मणों ने अपने जीविका निर्वाह तथा ब्रह्मयज्ञ को सम्पन्न करने के लिए महान् कर लगाया था। इस प्रकार उस पुर में ब्राह्मणों की महती शासन व्यवस्था प्रचलित हुई थी, गोहत्या करनेवाला, कृतघ्न, मद्यप अथवा गुरु स्त्री गामी—ऐसे कठोर पाप करनेवाले भी वाडादित्य को नमस्कार कर सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। ॥६७–७५॥

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्ते महास्थान तीर्थ वेदशाखा प्रणयन वर्णनं नाम षष्ठ्यध्याय ॥६०॥

Funding by IKS-MoE

इकसठवाँ अध्याय

ऋषियों ने कहा—भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, गालकि, सालकि, बुद्धिमान् शतबलाक, ब्राह्मणश्रेष्ठ नैगम, और बाष्कल के पुत्र भारद्वाज इन लोगों ने तीन संहिताओं का निर्माण किया था। रथीतर ने पुनः जिस निरुक्त की रचना की थी, वह चतुर्थ था। उसके महान्, सर्व गुणसम्पन्न, तीन शिष्य हुए, जिनमें से परम बुद्धिमान् नन्दायनीय प्रथम, पन्नगारि द्वितीय और परम तपस्वी आर्यव नामक तृतीय शिष्य था। ये तीनों शिष्य वीतराग, महातेजस्वी तथा संहिताओं के पारगामी विद्वान् थे, यतः इन्होंने संहिताओं का विस्तारपूर्वक प्रवर्तन किया था। अतः वह्वृच के नाम से भी विख्यात हैं। यजुर्वेद की परम कल्याणप्रद छियासी संहिताओं का प्रणयन करने वाले वैशम्पायन जी यजुर्वेद के उद्धारक कहे गये हैं। वैशम्पायन ने उन संहिताओं की शिक्षा अपने समस्त शिष्यों को दी और उन लोगों ने विधिपूर्वक उन्हें ग्रहण किया, महातपस्वी मुनिवर याज्ञवल्क्य ही केवल एकमात्र उनकी शिक्षा से बच रहे। वे भी यजुर्वेद की छियासी संहिताओं की रचना करनेवाले हुए। इसके अतिरिक्त उनके सभी शिष्यगणों में भी तीन भेद कहे जाते हैं। इस प्रकार नव भेद युक्त संहिता के उदीच्य (उत्तरी) मध्यदेशीय और प्राच्य (पूर्वीय) ये तीन प्रमुख भेद कहे गये हैं। उनमें से उत्तर देशवसियों में श्यामार्यान, मध्यदेशवासियों में आरुणि और त्र्योदश्यादि, पूर्वीय देशवासियों में आलम्बि प्रधान माने गये हैं। वे सभी संहिताओं के जानने वाले द्विज गण चरक नाम से प्रसिद्ध हैं। ऋषियों ने इस प्रकार सूत की बातें सुन कर जिज्ञासा प्रकट की कि ये अध्वर्युगण किस कारण चरक नाम से पुकारे जाते हैं। इसका वास्तविक कारण हमें बतलाइये कि इन्होंने ऐसे कौन से आचरण किये थे, जिसके कारण चरकत्व की प्राप्ति हुई। ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत ने वह कथा बतलाई जिस प्रकार उन्हें चरकत्व की प्राप्ति हुई थी। ॥१—११॥

सूत ने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ वृन्द! प्राचीन काल में एक समय ऋषियों को कोई एक ऐसा कार्य आ पड़ा जिसमें सुमेरु पर्वत पर जाकर वे सब सम्पत्ति के लिए उपस्थित हुए थे। उस समय उन्होंये यह प्रण किया था कि जो ब्राह्मण सात रांत के बीच में हमारी इस मंत्रणा में सहयोग देने के लिए नहीं आ जाता है वह ब्रह्महत्या का पाप ग्रहण करेगा, ऐसी हमलोगों की प्रतिज्ञा है। ऋषियों की ऐसी प्रतिज्ञा सुनकर सभी ऋषिमुनि अपने-अपने शिष्यादि को साथ ले लेकर वहीं उपस्थित हुए, जहाँ पहुँचने के लिए प्रतिज्ञा की गई थी केवल वैशम्पायन ऋषि वहाँ नहीं गये। और इस प्रकार समान ब्राह्मणों के वचनानुसार वे ब्रह्महत्या के भागी हुए। वैशम्पायन ने उस अवसर पर अपने शिष्यों को बुलाकर कहा—द्विजवर्यवृन्द! तुम सब लोग मिलकर मेरें लिए इस ब्रह्महत्या के पाप का भोग करो, कहो, क्या यह मेरी बात हितकर नहीं है? १२-१६॥

याज्ञवल्क्य जी बोले—"मैं इस ब्रह्महत्या का अनुभव करूँगा ये मुनिगण आपके साथ ही रहें अपनी तपस्या द्वारा पराक्रम संचय करके मैं उसका अनुभव करने में समर्थ होऊँगा।" याज्ञवल्क्य के ऐसा कहने पर वैशम्पायन ने क्रुद्ध होकर उनसे कहा:—तुमने जो कुछ मुझसे अध्ययन किया है

Funding by IKS-MoE

वह सत्र लौटा दो। वैशम्पायन के इस प्रकार कहने पर ब्रह्मज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ मुनिवर याज्ञवल्क्य ने वमन द्वारा रुधिर से भींगे हुए समस्त यजुर्वेद को मूर्त रूप में गुरु के सम्मुख प्रत्यर्पण कर दिया। द्विजवृन्द! तदनन्तर याज्ञवल्क्य मुनि ने ध्यान लगाकर सूर्य की आराधना की, उस समय आकाशमण्डल में जितने ऊपर जाकर सूर्य रूप ब्रह्म प्रतिष्ठित था उतने ही ऊपर उठ उठकर वह समस्त यजुर्वेद सूर्यमण्डल में आश्रय लेने लगा। जिससे सन्तुष्ट होकर मार्तण्ड सूर्य देव ने सभी यजुर्वेद को अश्वरूप धारण करनेवाले, ब्रह्मज्ञानी, परम बुद्धिमान् याज्ञवल्क्य को प्रदान किया। अश्वरूप धारण करनेवाले याज्ञवल्क्य को दिये गये उस यजुर्वेद का अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण अश्वरूपधारी हुए। जिन वैशम्पायन के शिष्यों ने उनके साथ ब्रह्महत्या का अनुभव किया था, वे चरण (अनुभव करने) के कारण चरक नाम से प्रसिद्ध हुए। चरकों का वृत्तान्त वर्णन कर चुका अब याज्ञवल्क्य के शिष्यों का जो अश्व रूपधारी थे, वृत्तान्त सुनिये। कण्व, वैधेयशाली मध्यन्दिन, शापेयी, विदिग्ध, आप्य, उद्दल, ताम्रायण, वात्स्य, गालव, शैषिरी, आटवी, पर्णी, वीरणी और सपरायण—ये पन्द्रह वाजि (अश्वरूप धारी) जल कहे गये हैं। समस्त यजुर्वेद में एक सौ एक विकल्पक (संहिता भाग) देखे जाते हैं ॥ १२-२६ ॥

जैमिनि ने अपने पुत्र सुमन्तु को समस्त यजुर्वेद का अध्ययन कराया था। परम ऐश्वर्यशाली सुमन्तु ने अपने पुत्र सुत्वा को उसे पढ़ाया। प्रभु सुत्वा ने अपने पुत्र सुकर्मा को उसकी शिक्षा दी। सुकर्मा ने इन सहस्र सहिताओं का अल्प समय में अध्ययन कर सूर्य के समान तेजस्वी अपने एक सहस्र शिष्यों को उसका अध्ययन कराया। किन्तु अनध्याय के दिन अध्ययन करने के कारण इन्द्र ने उन सभी शिष्यों का संहार कर डाला, जिससे दुःखी होकर शिष्यों के लिए सुकर्मा प्रायोपवेश[1] करने पर उतारू हो गये। सुकर्मा को इस प्रकार क्रुद्ध देखकर इन्द्र ने उन्हें फिर वरदान दिया कि तुम्हारे अग्नि के समान परम तेजस्वी एवं महान् पराक्रमी दो शिष्य होंगे। हे द्विजसत्तम! वे आपके दोनों महाभाग्यशाली शिष्य महान् पण्डित होंगे और इन सहस्र संहिताओं का विधिवत अध्ययन करेंगे, आप क्रोध न करें। परम यशस्वी द्विजश्रेष्ठ से ऐसी बातें कहकर और उनके क्रोध को शान्त देखकर श्रीमान् इन्द्र वहीं पर अन्तर्धान हो गये। हे द्विजवर्य्यवृन्द! उन सुकर्मा के परम बुद्धिमान पौष्यञ्जी नामक प्रथम और हिरण्यनाभ राजा कौशिल्य नामक द्वितीय शिष्य हुआ। जिनमें से पौष्यञ्जी ने पाँच सौ संहिताओं को अपने शिष्यों को पढ़ाया। पौष्यञ्जी के वे कल्याण भाजन शिष्य सामान्यतः उदीच्य के नाम से विख्यात थे। पराक्रमी कौशिल्य ने भी पाँच सौ संहिताओं की शिक्षा अपने शिष्यों को दी। हिरण्यनाभ नराधिप कौशिल्य के शिष्यगण प्राच्य सामग के नाम से विख्यात हुए। अब पौष्यञ्जी के लोकाक्षी, कुथुमि, कुशीती और लाङ्गलि नामक जो चार शिष्य हो गये हैं, उनके भेदों को सुनिये। तण्डिपुत्र, राणायनीय, सुविद्वान् मूलचारी, कैतिपुत्र, और सात्यपुत्र——ये सभी लोकाक्षी के शिष्यों के नाम हैं। कुथुमि के औरस, रसपासर और तेजस्वी भागवित्ति नामक

---

[1] किसी घोर पाप का प्रायश्चित पूर्वकाल में विना कुछ खाये पीये एक स्थान पर बैठकर प्राण त्याग कर के किया जाता था, उसी को प्रायोपवेश कहा जाता है!

तीन पुत्र थे, जो तीनों कौथुम नाम से प्रसिद्ध थे। शौरिघु और शृङ्गिपुत्र ये दो परम तपस्वी एवं व्रतपरायण थे, राणायनीय और सौमित्रि ये दो सामवेद के विशारद थे। महान् तपस्वी शृङ्गपुत्र ने तीन संहिताओं का उपदेश किया। हे द्विजसत्तम ! चैल, प्राचीन योग, सुराल और कुथुमि के शिष्य पाराशर्य ने छः संहिताओं का उपदेश किया। आसुरायण, वैशाख्य, वेदवृद्ध परायण, प्राचीन योगपुत्र, बुद्धिमान् पतञ्जलि ये कुथुमि के शिष्य पाराशर्य के छः भेद कहे गये हैं। लाङ्गलि और शालिहोत्र ने छः छः संहिताओं का उपदेश किया। भालुकि, कामहानि, जैमिनि, लोमगायिनि, कण्डु और कीहल—ये छः लाङ्गल नाम से स्मरण किये जाते हैं। ये सब के सब लाङ्गलि के शिष्य हैं, जिन्होंने संहिताओं का प्रचार किया। हिरण्यनाभ ने, जो राजा का पुत्र एवं अति उत्तम प्रकृति का मनुष्य था—चौबीस संहिताओं का प्रणयन किया और उन सब को अपने जिन शिष्यों का पढ़ाया, उन्हें सुनिये। राड, महवीर्य, पञ्चम, वाहन, तालक, पाण्डक, कालिक, राजिक, गौतम, आजवस्त, सोमराज, पृष्ठघ्न, परिकृष्ट, उलूखलक, यवीयस, वैशाल, अङ्गुलीय, कौशिक, सालिमञ्जरि, सत्य, कापीय, कानिक और धर्मात्मा पराशर, ये सभी अतीत कालीन ऋषिगण सामवेद के उपदेशक थे। समस्त सामवेदीय ऋषियों में पौष्यञ्जि और कृति—ये दो श्रेष्ठ कहे गये हैं, जो विविध संहिताओं के प्रवर्तक थे। विप्रवृन्द ! आचार्य सुमन्तु ने अथर्ववेद के दो विभाग कर सब की कबन्ध नामक शिष्य को शिक्षा दी, अब क्रमशः उसका वर्णन सुनिये। कबन्ध ने पुनः उसके दो विभाग किये, जिनमें से एक को पथ्य नामक शिष्य को तथा दूसरे को वेदस्पर्श नामक शिष्य को उपदेश दिया। तदन्तर वेदस्पर्श ने उसके चार भाग किये, मोद, ब्रह्मबल, पिप्पलाद तथा धर्मज्ञ शौष्कायनि—ये चार वेदस्पर्श के सुप्रसिद्ध शिष्य हैं जो सभी दृढ़ व्रतधारी थे। पथ्य के उत्तम शिष्यों की संख्या तीन जानिये उनके जाजलि, कुमुदादि और शौनक नाम प्रसिद्ध हैं। विद्वान् शौनक ने दो विभाग कर एक संहिता को बभ्रु को दिया और दूसरी सैन्धवायन नामक शिष्य को समर्पित किया। सैन्धव ने मुञ्जकेश को उपदेश दिया, जिसके द्वारा वह पुनः दो भागों में द्विभक्त हुई। प्रथम नक्षत्र कल्प, द्वितीय वैतान, तृतीय संहिताविधि, चतुर्थ आङ्गिरस कल्प तथा पंचम शान्तिकल्प हैं। अथर्ववेद की संहिताओं के ये विकल्प श्रेष्ठ माने गये हैं। हे ऋषिवर्य्यवृन्द ! मैंने भी पुराणों का छः प्रकार के विभागों में उपदेश किया है। अत्रि गोत्रोत्पन्न बुद्धिमान् सुमति, कश्यपगोत्रीय अकृतव्रण, अग्नि के समान तेजस्वी भरद्वाज, वशिष्ठ मित्रयु, सावर्णि सोमदत्ति और सुशर्मा शांशपायन हैं ! हे विप्रवृन्द। ये हमारे पुराणों में शिष्य हैं, जो सब के सब दृढ़ व्रतधारी हैं। इनमें से तीन शिष्यों ने संहिता के तीन विभागकर पुनः तीन भाग किये, जो संहिताकर्त्ता काश्यप, सावर्णि और शांशपायन के नाम से प्रसिद्ध हैं। सामिका नामक चौथी संहिता है जो पूर्व संहिता के नाम से विख्यात है। ये सभी संहिताएँ चार-चार पादों वाली एवं एक अर्थ की वाचिका हैं। वेद शाखाओं की भाँति पठानन्तर में भिन्न-भिन्न हैं। शांशपायन की संहिता को छोड़कर इन सब की संख्या चार सहस्र है। इन समस्त वेदशाखाओं में लोमहर्षण की शाखा ही मुख्य है, उसके बाद कश्यप की शाखा की महत्ता मानी गई है, सावर्णिक शाखा का तृतीय स्थान है, ये शाखाएँ यजुर्वेद की हैं जिन्हें उसके पण्डित लोग जानते हैं। इनके अतिरिक्त जो शांशपायन की शाखा है

वह प्रेरणात्मक अर्थ से विभूषित है, उसकी ऋचाओं की संख्या आठ सहस्र छः सौ है । ये समस्त संहिताएँ, इसके अतिरिक्त पन्द्रह यथा दस-दस संहिताएँ, जो बालखिल्य सहप्रैरव एवं सावर्णि की संहिताओं के नाम से कही गई हैं, आठ सहस्र साम, चौदह सहस्र साममंत्र हवन मंत्र समेत आरण्यक — इन सब को साम के गायन करने वाले ऋषि लोग गाते हैं । इसके अतिरिक्त व्यासदेव ने यजुः और ब्राह्मण के बारह सहस्र छन्दों का विभाग किया, जो ग्राम्य एवं आरण्यक संहिताओं एवं मंत्रकरणक के साथ आध्वर्यव के नाम से स्मरण किये जाते हैं इसके उपरान्त कथाओं का पूर्वा यह विशेषण कहा जाता है । ऋक्, ब्राह्मण और यजु ये तीन मंत्रों के साथ ग्राम्य और अरण्य के नाम से स्मरण किये जाते हैं । हारिद्रवीय के खिल उपखिल तथा तैत्तिरीय के पर और क्षुद्र भाग भी दो-दो प्रकार के स्मरण किये जाते हैं । इसके अतिरिक्त दो सहस्र में एक सौ कम वाजसनेयी संहिता की ऋचाओं को तथा उसके चतुर्गुणित ब्राह्मण को परिगणित किया । आठ सहस्र आठ सौ अस्सी यंजु और ऋक् की संख्यायें कही गई हैं; इनके पादों की संख्या इससे अधिक है । यह संख्या शुक्र एवं याज्ञवल्क्य की कही गई संख्या के अनुसार कही गई है । इसके उपरान्त चरणविधा की संहिता तथा उसके प्रमाण को सुनिये । इस चरणविधा की कथाओं की संख्या छः सहस्र छब्बीस है । अब इसके उपरान्त यजुः के विषय में विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ । ग्यारह सहस्र बीस **यजुर्वेद की ऋक** संख्या है, दस सहस्र तीन सौ अस्सी ऋचाओं की तथा एक सहस्र मंत्रों की ऋक संख्या का प्रमाण है । इतनी ही भृगु द्वारा विस्तारित बहुतेरी अथर्व की संहिताएँ हैं । अथर्व की ऋक संख्या पाँच सहस्र निश्चित हुई है, एक सहस्र में बीस कम अन्य ऋचाओं की संख्या ऋषि लोग और बतलाते हैं । यह अंगिरा ऋषि के कहे हुए अथर्व के मंत्रों की तथा अरण्यक की संख्या है । इस प्रकार वेदों के मंत्रों एवं ऋचाओं की संख्या, शाखा भेद, शाखाओं के कर्त्ता, एवं उनके पारस्परिक भेद के कारण आदि को मैं बतला चुका । सभी मन्वन्तरों में वेदों के शाखा विभाग एक समान स्मरण किये गये हैं । प्रजापति की श्रुति नित्य है, उसके विकल्प ये ही कहे जाते हैं । देवताओं के अनित्य (विनश्वर) होने के कारण पुनः-पुनः मंत्रोत्पत्ति होती है, मनवन्तरों के भेद से देवताओं के नाम का निश्चय होता है । ये जो ऊपर श्रुति के भेद बतलाये गये हैं । वे प्रत्येक द्वापर युग में कहे गये हैं । उस द्वापर युग में इस प्रकार वेदों का विभाग करके ऋषिश्रेष्ठ व्यास अपने शिष्यों को उसे सौंपने के बाद तपस्या करने के लिए जङ्गल को प्रस्थित हुए । उनके शिष्यों तथा शिष्यों के शिष्यों ने इन उपर्युक्त वैदिक शाखाओं का इस प्रकार विभाग किया । छहो वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) चारों वेद (ऋक्, साम, यजु और अथर्व) मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण— ये चौदह विद्याएँ हैं । इनके अतिरिक्त आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद एवं अर्थशास्त्र इन चारों को मिलाकर विद्याओं की संख्या अठारह होती है । ॥२७-७९॥

सर्वप्रथम ब्रह्मर्षियों को जानना चाहिये, उनसे देवर्षियों को तथा देवर्षियों से राजर्षियों को जानना चाहिये, ये तीन ऋषियों के उत्पत्तिकर्ता हैं । इन्हीं से समस्त ऋषिगणों की उत्पत्ति होती है ।

जो भली भाँति नियमों का पालन करने वाले ऋषियों के संतानें हैं। कश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अंगिरा और अत्रि इन पाँचों गोत्रों में ब्रह्मवादी ऋषियों की उत्पत्ति होती है। यतः वे ब्रह्म तक पहुँचने वाले हैं, ब्रह्मवेत्ता हैं, अतः ब्रह्मर्षि नाम से स्मरण किये जाते हैं। धर्म, पुलस्त्य, क्रतु, पुलह, प्रत्यूष, प्रभाष और कश्यप— इनके पुत्रों को देवर्षि कहा जाता है, अब उनके नाम सुनिये। धर्म के दो पुत्र राजर्षि नर और नारायण हैं। बालखिल्य गण क्रतु के पुत्र हैं, पुलह के पुत्र का नाम कर्दम है। पुलस्त्य के पुत्र कुबेर हैं, प्रत्यूष के अचल हैं, पर्वत और नारद—ये दोनों कश्यप के पुत्र हैं। यतः ये देवताओं तक पहुँचते हैं, अतः देवर्षि के नाम से प्रसिद्ध हैं। मनु द्वारा प्रवर्तित वैषय एवं ऐड वंश में होनेवाले ऐड, ऐक्ष्वाक और नाभाग—इनको राजर्षि जानना चाहिये। यतः वे प्रजाओं का रंजन करते हुए उनकी बुद्धि एवं भावनाओं तक पहुँचनेवाले होते हैं, अतः राजर्षि नाम से प्रसिद्ध हैं। जो लोग ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं वे ब्रह्मर्षि माने जाते हैं। कल्याणकारी, देवलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले ऋषिगण देवर्षि नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्द्रलोक में प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले सभी ऋषि राजर्षि नाम से विख्यात हैं। उत्तम कुल में उत्पत्ति, तपस्या और मंत्रों की व्याख्या अथवा उपदेश करने से दिव्यगुण सम्पन्न रजर्षिगण भी ब्रह्मर्षि—कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जो अन्य देवर्षि कहे गये हैं, उनके लक्षण बतला रहा हूँ। अतीत, भविष्यत् एवं वर्तमान—तीनों कालों के ज्ञाता, सत्यभाषी, स्वयं को जाननेवाले तथा अपने में सम्बद्ध, तपस्या से इन्द्रलोक में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाले, गर्भावस्था में ही अज्ञानांधकार के नष्ट हो जाने से जिनके ज्ञान का प्रकाश हो जाता है, ऐसे मंत्रवेत्ता; एवं अपने ऐश्वर्य से सर्वत्र समान गति रखनेवाले देवता, द्विज एवं राजा लोग भी देवर्षि नाम से प्रसिद्ध होते हैं। इन उपर्युक्त विषयों के अध्ययन करने वाले अर्थात् उनसे सम्पन्न ऋषि माने गये हैं। दीर्घायु सम्पन्न मंत्रकर्त्ता, ऐश्वर्यशाली, दिव्य दृष्टि सम्पन्न, ज्ञानी, प्रत्यक्ष धर्मपरायण एवं गोत्रप्रवर्त्तक— जो ये सात ऋषिगण हैं, वे अपने इन सातों गुणों से ऋषि कहे जाते हैं। वे ऋषिगण नित्य षट्कर्मों[1] में प्रवृत्त रहनेवाले, समृद्ध, गृहस्थाश्रमी, कर्मफल रूप अदृष्ट को मानने वाले एवं तदनुरूप व्यवहार करनेवाले, शिष्ट व्यवहार द्वारा जीवन यापन करनेवाले, आत्मज्ञान रस में परिपुष्ट होनेवाले, कुटुम्बी, सम्पत्तिशाली, एवं बाह्य तथा आभ्यन्तर में निवास करनेवाले होते हैं। सतयुग आदि समस्त युगों में सर्वप्रथम ये ऋषिगण पुनः पुनः वर्णों एवं आश्रमों की व्यवस्था सम्पादित करते हैं। पुनः त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर वे ही सप्तर्षिगण इस पृथ्वी पर अशेष रूप से वर्णाश्रम धर्म का पुनः प्रवर्त्तन करते हैं। उन्हीं ऋषियों के वंशों में वीरगण पुनः पुनः उत्पन्न होते हैं। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता और पिता के उत्पन्न होने पर पुत्र—(अर्थात् पुत्र पिता से और पिता पुत्र से जन्म ग्रहण करता है) इस प्रकार विना विच्छेद (काल व्यवधान) के वे ऋषिगण युगक्षय पर्यन्त वर्त्तमान रहते हैं। गृहस्थाश्रम में रहनेवाले मुनियों की संख्या अठासी सहस्र कही गई है। सूर्य के उत्तरायण होने पर जो मुनिगण पितृयाण (पितरों का मार्ग) का आश्रय लेते हैं, एवं स्त्री के साथ

---

[1] यज्ञ करना यज्ञ कराना, पढ़ना, दान देना और दान लेना—ये छः ब्राह्मणों के कर्म कहे गये हैं।

Funding by IKS-MoE

सम्बन्ध करते तथा अग्निहोत्र के उपासक होते हैं, वे सन्तानोत्पत्ति के लिए कहे गये हैं। वे गृहस्थाश्रमियों के भीतर गिने जाने योग्य हैं। इसके अतिरिक्त जो सूर्य के उत्तरायण होने पर प्राण त्याग कर श्मशान का आश्रय लेते हैं, उन मुनियों की संख्या अठासी सहस्र है। जो ऊर्ध्वरेता (अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रतपरायण ऋषि-गण उत्तरायण में मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग को प्राप्त करते सुने जाते हैं वे युग समाप्ति के अवसर पर मंत्र एवं ब्राह्मण भाग के कर्त्ता के रूप में पुनः जन्म ग्रहण करते हैं। इस प्रकार द्वापर युग में चक्राकार करते हुए वे विविध शास्त्रकर्त्ता ऋषिगण बारम्बार जन्म ग्रहणकर भाष्य विद्या आदि का प्रवर्त्तन करते हैं। एवं त्रेतादि युगों में उन विद्याओं का विवरण प्रस्तुत करते हैं। भविष्य द्वापर युग में परमतपस्वी द्रौणि द्वैपायन वेदव्यास उत्पन्न होंगे, उनके द्वारा भविष्य में वेदों की विभिन्न शाखाओं का प्रणयन होगा। उन्हें परम तपस्या द्वारा अविनाशी ब्रह्मपद की प्राप्ति होगी। तपस्या द्वारा कर्म की प्राप्ति होती है, कर्मों से यश मिलता है, यश से सत्य की प्राप्ति कर सत्य द्वारा अव्यय शाश्वत पद कीं प्राप्ति होती है, इस अव्यय पद से अमृत, अमृत से शुक्र अथवा समस्त पदार्थों की प्राप्ति होती है। एकमात्र अक्षर ब्रह्म ही अपनी अन्तरात्मा में व्यवस्थित रूप से विद्यमान है, वह अति बृहत होने एवं समस्त चराचर जगत् का पालन करने के कारण ब्रह्म कहलाता है। वह ब्रह्म सर्वप्रथम प्रणव 'ॐकार' में अवस्थित रहता है, पश्चात् 'भूर्भुवः स्वः' भी वही स्मरण किया जाता है। ऋक् यजु साम और अथर्व भी उसके विकसित स्वरूप हैं, ऐसे उसे हम नमस्कार करते हैं। इस चराचर जगत् की उत्पत्ति तथा प्रलय का जिसे कारण बतलाया जाता है, उस महान् से भी महत्तम एवं परम गुह्य सुब्रह्म को हमारा नमस्कार है। जिसक पार कोई नहीं पाता, जो कभी विनष्ट नहीं होता, जिसका अवसान कोई नहीं देखता, जो समस्त जगत् का सम्मोहन करने वाला है, जिसके प्रकाश और प्रवृत्ति से पुरुषार्थ का प्रयोजन सिद्ध होता है, जो सांख्य शाशालियों की निष्ठा एवं गति का आश्रय है, जो अपना संग देनेवाला है, जो अव्यक्त, अमृत, प्रकृति, ब्र शाश्वत, प्रधान, स्वयम्भू, परमगुह्य एवं सत्त्वगुणमय है, जिसका विभाग नहीं है, उस शुक्र, अविनाशी, बहुवा परमब्रह्म को हमारा नित्य बारम्बार नमस्कार है। सत्युग में किसी प्रकार के कर्म के करने की कोई प्रवृत्ति नहीं थी, अकार्य के करने की प्रवृत्ति तब किस प्रकार से हो सकती थी, लोक में जो कुछ भी कृताकृत अच्छे या बुरे कार्यकलाप हैं उन सब को एक बार में ही उस परब्रह्म ने किया। सुनने योग्य, सुना हुआ, साधुत्व, असाधुत्व, जानने योग्य, न जानने योग्य, मानने योग्य, स्पर्श करने योग्य, भोजन करने योग्य, देखने योग्य, सुनने योग्य, जानने योग्य आदि-अदि जितने भी कृताकृत कार्य कलाप इस जगत् में हैं, वे सभी उस पर ब्रह्म के किये हुए हैं। भगवान् ने सब प्रकार के ज्ञान, सभी वेद एवं सम्पूर्ण संहिताओं का उपदेश एवं देवताओं और ऋषियों को जो ज्ञान प्रदर्शित किये हैं, जो कुछ दिखलाया है उसका अनुसन्धान दूसरा कौन कर सकता है? इसके अतिरिक्त जब-जब अन्यान्य शास्त्रवेत्तागण जिन-जिन ज्ञानों एवं पदार्थों का तत्त्व चिन्तन करते हैं, वे सब भी उसी अव्यय ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित हुए हैं। जो लोग कहीं पर किसी समय में जिस किसी वाङ्मय के ज्ञानपथ का आविष्कार करते हैं, वे सब भी उसी ब्रह्म के द्वारा विरचित हैं। वास्तव में सभी कर्त्ताओं का वही आदिकर्त्ता है। विरक्त,

अतिरिक्त, ज्ञान, अज्ञान, प्रिय, अप्रिय, धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, मृत्यु. अमरता, ऊर्ध्व, तिर्यक् और अधोभाग–ये सभी उस ब्रह्म के अदृष्ट कारण से सम्बद्ध हैं। इस पृथ्वीतल पर प्रत्येक त्रेतायुग में सर्वप्रथम विधाता परमेष्ठी पितामह के पुत्र स्वायम्भुव मनु ही एकमात्र समस्त विद्याओं के ज्ञाता होकर द्वापर युग में उस एक विद्या का विभाग करते हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तर में सर्वप्रथम ब्रह्मा ही इस समस्त विद्या का उपदेश करते हैं। तदनन्तर प्रत्येक युग में पिता से पुत्र एवं पुत्र से पिता इस प्रकार परस्पर उत्पन्न होने पर बारम्बार संहिताओं का प्रवर्तन करते हैं। जिन अट्ठासी सहस्र वेदज्ञ ऋषियों की चर्चा ऊपर स्मरण की गई है, वे ही इन संहिताओं का प्रत्येक युग में प्रवर्तन करते हैं। दक्षिणायन में सूर्य के अवस्थित होने पर जो श्मशान वास करने वाले मुनि गण हैं वे ही प्रत्येक युग में उन शाखाओं का विभाग करते हैं। इस प्रकार सभी द्वापर युगों में श्रुतिज्ञाता ऋषियों द्वारा संहिताओं की रचना होती है, उन्हीं के गोत्रों में उत्पन्न होनेवाले वेद की शाखाओं का पुनः पुनः विभाजन करते हैं। वेद की वे शाखाएँ तथा उनके रचयिता गण युग क्षय होने पर भी विद्यमान रहते हैं। अतीत एवं भविष्यत्कालीन सभी मन्तन्तरों में इसी प्रकार वैदिक शाखाओं का प्रणयन होता है। अतीत काल में जो ऋषिगण होते हैं वे वर्तमान काल में भी वर्तमान रहते हैं, एवं भविष्यत्काल में जो ऋषिगण उत्पन्न होंगे वे भी वर्तमान काल में वर्णित होते हैं। अतीत द्वारा भविष्यत्काल की घटनाओं को जान लेना चाहिये इसी प्रकार वर्तमान द्वारा अतीत तथा भविष्य—दोनों की जानकारी होनी चाहिये—इसी क्रम द्वारा मन्वन्तरों का निश्चय करना चाहिये। देवता, पितर, ऋषि और मनु गण सभी मंत्रों के साथ ऊर्ध्व लोक को गमन करते हैं, और उन्हीं मंत्रों के साथ पुनः इहलोक में वापिस आते हैं। सभी देवगण इस मर्त्यलोक से पशुकल्प पर्यन्त पुनः पुनः पर्याप्त समय व्यतीत होने पर जन्म ग्रहण करते हैं,..............(?)। अवश्य घटित होनेवाले विधि के विधान से सम्बन्ध रख वे रागादि वश हो दोषपूर्ण जन्म का दर्शन करते हैं, अर्थात् विधिवश उन्हें भी पापयोनि में जन्म ग्रहण करना पड़ता है। उनकी यह परिपाटी अपने पापों के फलों का अनुभव कर लेने पर निवृत्त हो जाती है और इस प्रकार दस देवयुगों तक उन पापयोनियों में भ्रमण कर वे निवृत्त होते हैं। जनलोक से वे तपोलोक को जाते हैं, जहाँ से पुनः नहीं लौटते। इस प्रकार सहस्रों देवयुग इस पृथ्वी पर व्यतीत हो चुके हैं। मुनियों के साथ मृत्यु लाभ कर वहाँ से वे ब्रह्मलोक को जाते हैं। विस्तारपूर्वक उनका क्रमिक वर्णन काल के अनादि एवं असंख्य होने के कारण नहीं किया जा सकता। जो मन्वन्तर, प्राचीन काल में कल्प तथा युगादि अपने समय में होनेवाले, पितरों, मुनियों देवताओं एवं सप्तर्षियों के साथ काल की महिमावश व्यतीत हो चुके हैं, उसी प्रकार एवं उसी क्रम से अपने समय में होनेवाली प्रजाओं के साथ सैकड़ों, सहस्रों अन्य कल्प तथा मन्वन्तर भी व्यतीत हो चुके हैं। एक मन्वन्तर की समाप्ति पर सब का संहार हो जाता है, और संहार के बाद फिर देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा मनु सब की पुनः सृष्टि (उत्पत्ति) होती है। इस संहार एवं सृष्टि का विस्तारपूर्वक समग्र क्रमबद्ध वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता। मन्वन्तर की संख्या मनुष्य के वर्षों से बतला रहा हूं, सुनिये। देवताओं तथा ऋषियों की संख्या को भली भाँति जानने वाले द्विजगण मन्वन्तर के वर्ष की संख्या

इस प्रकार बतलाते हैं। तीस करोड़, सड़सठि नियुत (एक नियुत को दस लाख माना गया है।) बीस सहस्र वर्ष संधिकाल के बिना एक मन्वन्तर की अवधि मानी गई है। मन्वन्तर की यह संख्या मानव परिमाणों से बतलाई गई है, अब दिव्य (देवताओं के) वर्षों से मन्वन्तर का प्रमाण बतला रहा हूँ। आठ लाख बावन सहस्र दिव्य वर्ष की संख्या स्मरण की जाती है। इस कालावधि का चौदह गुना काल महाप्रलय का है, जब कि एक सहस युग बीत जाते हैं—इसे ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है। उस समय सभी जीव समूह सूर्य की किरणों से जब भस्म होने लगते हैं तब देवताओं, ऋषियों और दानवों के साथ ब्रह्मा को आगे कर सुरश्रेष्ठ देवदेव महादेव के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। वे देवदेव महेश्वर प्रत्येक कल्प के प्रारम्भ में सभी जीव समूहों की पुनः पुनः सृष्टि करते हैं। देवताओं और ऋषियो के साथ मनु की स्थिति की वह कालावधि मैं बतला चुका अब सभी मन्वन्तरों में होनेवाली प्रतिसंधि को सुनिये। निष्पाप ऋषिगण उस प्रतिसंधि को सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग के नाम से पहिले ही मैं इसी प्रसंग में बतला चुका हूँ। सतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग – ये चार युग स्मरण किये गये हैं—इसका इकहत्तर गुना काल एक मनु का अधिकार काल भगवान ने बतलाया है। इसी प्रकार सभी मन्वन्तरों के लक्षण बतलाये गये हैं, वर्तमान मन्वन्तर द्वारा अतीत एवं भविष्य में होनेवाले मन्वन्तरों का वर्णन भी हो चुका। स्वायम्भुव मनु का सृष्टिक्रम इस प्रकार कहा जा चुका। अब उस स्वायम्भुव मन्वन्तर तथा अन्याय मन्वन्तरों की प्रतिसंधि का वर्णन कर रहा हूं। अवश्य घटित होनेवाली विधि की इच्छा (भवितव्यता) से प्रेरित ऋषियों और देवताओं के साथ पूर्वकाल में जिस प्रकार मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं, उसी प्रकार भविष्य में भी होंगे। प्राचीन काल में इस मन्वन्तर में समस्त त्रैलोक्य के ऐश्वर्यशाली जो सप्तर्षि, देवगण, पितर तथा मनुगण रहते हैं वे मन्वन्तर के समस्त काल में सृष्टि व्यापार के साधक होते हैं, तदनन्तर अपने समय का दूसरा पक्ष आया जान अधिकार से च्युत हो महर्लोक की ओर गमन करते हैं। मन्वन्तर में अधिकारच्युत होनेवाले वे देवगण सम्पूर्ण स्थितिकाल में एक सतयुग तक विद्यमान रहते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य मन्वन्तरों में होनेवाले ऐश्वर्यशाली जितने देवता, पितर, ऋषि और मानवगण हैं, वे भी उत्पन्न होंगे। सभी मन्वन्तरों में कलियुग में उत्पन्न होनेवाली उन शेष प्रजाओं में ही सतयुग की प्रवृत्ति होती है। जिस प्रकार बुद्धिमान् लोग सत्ययुग की प्रजाओं के पूर्व कलियुग की प्रजाओं का अस्तित्व मानते हैं, उसी प्रकार एक मन्वन्तर के पूर्व दूसरे मन्वन्तर की सृष्टि का अस्तित्व रहता है। पूर्व मन्वन्तर की समाप्ति होने पर जब कि पिछला मन्वन्तर प्रारम्भ होता है, सत्ययुग के प्रारम्भ में जो कलियुग के शेष सप्तर्षि गण तथा मनु मन्वन्तर की व्यवस्था तथा सृष्टि विस्तार के लिए काल की प्रतीक्षा करते हुए स्थित रहते हैं तथा तपस्या में निरत हो अगले मन्वन्तर की प्रतीक्षा में अपना काल यापन करते हैं। उस समय पहिले की तरह सृष्टि हो जाने पर जब औषधियाँ पृथ्वी पर उत्पन्न हो जाती हैं, स्त्री पुरुष अपने अपने कर्मों में पूर्ववत् प्रवृत्त हो जाते हैं, कहीं कहीं पर प्रजाएं अपना अपना निवास स्थान बनाकर निवास करने लगती हैं, जीविका का प्रश्न चलने लगता है, स्थावर जङ्गम जगत् के नष्ट हो जाने पर सब लोग आनन्द रहित जीवन बिताने लगते हैं,

Funding by IKS-MoE

वर्णाश्रम की व्यवस्था नहीं रह जाती, ग्राम एवं नगरों का अस्तित्व नहीं रह जाता, तब पूर्व मन्वन्तर के बचे हुए परम धार्मिक प्रवृत्ति वाले सप्तर्षि तथा मनु, सन्तानोत्पत्ति के लिए उद्यमशील होते हैं, और इसके लिए परम कठोर तप करते हैं। सत्र का विनाश हो जाने पर इस पृथ्वी पर देवता, असुर, पितर, मुनि, मनुष्य, सर्प, भूत, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, राक्षसादि की उत्पत्ति होती है। ॥८०—१६३॥

इस प्रकार उस समय मन्वन्तर के प्रारम्भ में उन बची हुई प्रजाओं में जो शेष रह जाते हैं वे शिष्टाचार का उपदेश करते हैं, तथा सातों ऋषिगण, मनु और मनुष्यगण देवताओं के साथ सृष्टि का कार्य प्रारम्भ करते हैं, तदनन्तर त्रेता युग के प्रारम्भ होने पर जब चारों ओर धर्म की प्रतिष्ठा हो चुकती है, सर्वप्रथम देवगण तदनन्तर वे अवशिष्ट मानव गण ब्रह्मचर्य व्रत द्वारा ऋषियों के ऋण से, सन्तानोत्पत्ति करके पितरों के ऋण से, और यज्ञ द्वारा देवताओं के ऋण से मुक्त होते हैं। वे लोग इस प्रकार एक लाख वर्ष तक वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था में व्यवस्थित रह त्रयी, वार्ता, दण्डनीति, वर्णाश्रम धर्म आदि की प्रतिष्ठा कर तथा चारों आश्रमों की विधिवत् स्थापना कर स्वर्ग गमन के लिए विचार किया। पूर्वकाल में उन्हीं प्रमुख देवताओं के स्वर्गलोक के लिए प्रस्थित हो जाने पर पहिले देवगण तदनन्तर वे लोग धर्म के साथ पूर्णतः संयुक्त हुए। मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर वे सब लोग अपना स्थान छोड़कर मंत्रों के साथ अनामय महर्लोक को प्रस्थित हो जाते हैं। विकार-विहीन मानसिक सिद्धियों से सम्पन्न, जितेन्द्रिय वे लोग इस प्रकार महाप्रलय पर्यन्त अवस्थित रह कर मन्वन्तर का परिवर्तन देखते हैं। तदन्तर उन सभी देवताओं के विगत हो जाने पर जब त्रैलोक्य में सभी देवताओं के स्थान शून्य में परिणत हो जाते हैं तब उनमें अन्य जो स्वर्गवासी देवगण हैं वे उपस्थित होते हैं। और अपने सत्य, ब्रह्मचर्य, शास्त्रज्ञान तथा तपस्या के बल पर उन शून्य स्थानों की पूर्ति करते हैं। सातों ऋषि, मनु, देवगण और पितरगण—इनमें से पूर्वकाल में जो हो चुके हैं, वे भी भविष्य में होनेवालों के साथ ही मृत्यु को प्राप्त करते हैं। उन सबों का अत्यन्त विच्छेद इस लोक में एक मन्वन्तर के व्यतीत होने पर घटित होता है। मन्वन्तरों में इस प्रकार पूर्व के मन्वंन्तरों के समान प्रलयकाल पर्यन्त निश्चित परिवर्तन के साथ सृष्टि की स्थिति होती है। इस प्रकार व्यतीत एवं भविष्य में आनेवाले मन्वन्तरों के प्रतिसंधान का लक्षण स्वायम्भुव ने बतलाया है। बीते हुए मन्वन्तरों में भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों का साधन इस प्रकार महाप्रलय पर्यन्त अत्यन्त विच्छिन्न होता है। मन्वन्तरों के परिवर्तन होने पर सभी महर्लोक को प्राप्त होते हैं, फिर महर्लोक के बाद क्रमशः जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक में प्राप्त होते हैं। उन उनके नानात्व दर्शन एवं प्रत्यय के कारण मन्वन्तरों के परिवर्तन के उपरान्त वे उस सत्यलोक को छोड़ देते हैं और तदनन्तर प्रमाण रहित (अप्रमेय) नारायण भगवान् के शरीर में प्रविष्ट होते हैं। विधि की इच्छा से चिरकाल से प्रवृत्त मन्वन्तरों के इन परिवर्तनों में विनाश और उत्पत्ति द्वारा बँधा हुआ परिवर्तनशील जीवसमूह एक क्षण भी कहीं पर स्थिर नहीं रहता। इस प्रकार ऋषियों द्वारा सम्मानित, दिव्यदृष्टिसम्पन्न धर्मात्मा मनुगण के जीवन विवरण को, जिसका वायु ने वर्णन किया है, कहीं पर व्यास (विस्तारपूर्वक) और पर समास (संक्षेप) शैली में वर्णन

Funding by IKS-MoE

किया जा चुका, इसे दिव्य बल से लोग देख सकते हैं। ये सारे विवरण राजर्षियों, देवर्षियों ब्रह्मर्षियों, देवताओं तथा सर्पों के कथानक से संयुक्त हैं, सुरेश्वर इन्द्र सातों ऋषि, पितरों, प्रजापतियों एवं भली तरह होनेवाले परिवर्तनों से युक्त हैं। अति उदार वंश एवं कुल में उत्पन्न होनेवाले, परम कान्ति, सूक्ष्म बुद्धि, सत् कीर्ति, द्युति, ख्याति आदि से सम्पन्न ऐश्वर्यशाली महापुरुषों का यशोगान अति पुण्यप्रद है। अति गोपनीय परम पवित्र, स्वर्ग प्रदान करनेवाले, पुत्रप्रद एवं सर्वश्रेष्ठ इस चरित्र को बड़े-बड़े पर्वों के अवसरों पर जपना चाहिये, ऐसा करने से दुःस्वप्नों की शान्ति एवं दीर्घायु की प्राप्ति होती है। प्रजापति, मनु, देवर्षिगण एवं अजन्मा ब्रह्मा की पुण्यप्रद सुप्रसिद्ध सान्तानों के उत्पत्ति विवरण से संयुक्त, महेश्वर के तत्त्वपूर्ण आख्यान से संवलित, हमारे यश को बढ़ानेवाले इस महापुराण के श्रवण से आप लोग सिद्धियाँ प्राप्त करें। स्वायम्भुव मन्वन्तर का वृत्तान्त इस प्रकार क्रमशः विस्तारपूर्वक कहा जा चुका अब इसके बाद क्या वर्णन करूँ ? ।। १६४-१८६ ।।

श्री वायु पुराण में प्रजापति वंशानुकीर्तन नामक इकसठवाँ अध्याय ॥६१॥

बासठवाँ अध्याय

शांशपायन ने कहा:—अब मैं मन्वन्तरों का क्रम एवं उन उन मन्वन्तरों में होनेवाले समान देवताओं के विषय में जानना चाहता हूँ।॥१॥

सूत ने कहा:—अतीत एवं भविष्यत्काल में होनेवाले जितने मन्वन्तर हैं, उनका यथासम्भव संक्षेप और विस्तारपूर्वक में वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। मनुओं में सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु हैं, तदनन्तर स्वारोचिष मनु का कार्यकाल आता है, इसी प्रकार उनके बाद औत्तम, तामस, रैवत, एवं चाक्षुष मनु के कार्यकाल, ये छः अतीत कालीन मनु हैं, आठ भविष्यकालीन मनुओं के बारे में बतला रहा हूँ। सावर्ण, पञ्चरौच्य, भौत्य और वैवस्वत—इन चार मन्वन्तरों का विवरण वैवस्वत मनु के वर्णन के साथ करूँगा। पूर्ववर्णित उन पाँच मनुओं का वर्णन सुनिये, जो व्यतीत हो चुके हैं। उनमें से सर्वप्रथम स्वायम्भुव मनु का वर्णन तो किया जा चुका है, अतः अब महात्मा स्वारोचिष मनु के कार्यकाल की प्रजासृष्टि का संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ, जो दूसरे मनु हैं। उस स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित तथा विद्वान पारावत नामक देवगण थे—ये दो गण उक्त मन्वन्तर के स्मरण किये गये हैं। तुषिता के गर्भ से समुत्पन्न स्वारोचिष क्रतु के पुत्र पारावत और शिष्ट हैं, जो बारह बारह के गण रूप में कहे गये हैं, छन्दज देवगण स्वारोचिष मन्वन्तर में चौबीस स्मरण किये गये हैं। धैवशस्य, वामान्य, गोप, देवायत, देव भगवान, अज, महाबलवान् दुरोण, महाबाहु आप, महापराक्रमी महौजा, चिकित्वान् निभृत एवं अंश ये बारह तुषित नाम से पुकारे जाते हैं, इनमें अज बारहवें हैं। ये सभी क्रतु के पुत्र स्वारोचिष मन्वन्तर में सोमपान करते थे। प्रचेता, विश्वदेव, समञ्ज, विश्रुत, अजिह्म, अरिमर्द्दन, विद्वान् अजिह्मान और महीयान, महाभाग्यशाली अज, उप, महाबलवान् यवीय, होता

एवं यज्वा—ये परम पराक्रमी पारावतगण हैं। ये स्वारोचिष मन्वन्तर के देव समूह थे। ये उपर्युक्त चौबीस देवता उस समय सोमपान करने वाले थे। लोकप्रसिद्ध वैध इन देवताओं का इन्द्र (स्वामी) था। वसिष्ठ के पुत्र ऊर्ज, कश्यप के पुत्र स्तम्भ, भृगु के पुत्र द्रोण, अंगिरा के पुत्र ऋषभ, पुलस्त्य के पुत्र दत्तात्रि, अत्रि के पुत्र निश्चल तथा पुलह के पुत्र धावान्—ये सात ऋषि कहे गये हैं। चैत्र, कविरुत, कृतान्त, विभृत, रवि, बृहत, द्रुह, नव और शुभ थे नव स्वारोचिष मनु के वंश वृद्धि करने वाले पुत्र पुराणों में परिगणित कहे जाते हैं यह द्वितीय मन्वन्तर का वृत्तान्त है। सातों ऋषि, मनु, देवगण और पितर—ये चार प्रत्येक मन्वन्तर के मूल माने गये हैं, इनके अतिरिक्त जो प्रजाएँ हैं, वे सब इन्हीं के अवान्तरभूत हैं। देवगण ऋषियों के पितरगण देवताओं के तथा ऋषिगण देवताओं के पुत्र कहे गये हैं—ऐसा शास्त्रों का निश्चय है। मनु से क्षत्रिय और वैश्यों की तथा सातों ऋषियों से द्विजातियों की उत्पत्ति कही गई है—यही मन्वन्तर का विस्तृत नहीं प्रत्युत संक्षिप्त विवरण समझना चाहिये। स्वायम्भुव मनु द्वारा जिस प्रकार सृष्टि विस्तार हुआ है, उसी प्रकार स्वारोचिष मनु द्वारा भी सृष्टि विस्तार समझना चाहिये। प्रत्येक कुलों में प्रजाओं के उत्पन्न होने के कारण तथा एक ही प्रकार के नाम पड़ने के कारण विस्तारपूर्वक उसका वर्णन सैकड़ों वर्षों में भी नहीं किया जा सकता। अब इसके उपरान्त तृतीय मनु औत्तम की कार्यावधि का वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तर में पाँच देवगण कहे गये हैं, सुनिये। सुधामा, देव, प्रतर्दन, शिव और सत्य ये पाँच देवगण कहे गये हैं, जिनमें प्रत्येक की संख्या बारह है। सत्य, धृति, दम, दान्त, क्षम, क्षाम, धृति, शुचि, ईष, ऊर्ज्ज, ज्येष्ठ, और वपुष्मान्—ये बारह सुधामा नामक देवगण कहे गये हैं। सहस्रधार, विश्वात्मा, शतधार (शमितार) बृहत्, वसु, विश्वकर्मा, मनस्वन्त, विराट् यश, ज्योति, विभाक, और कीर्तिमान् ये वंश की वृद्धि करने वाले हैं। अन्य, अनाराधित, देव, वसु, धिष्ण, विवस्वसु, दिन, क्रतु, सुधर्मा, धृतवर्मा, यशस्वी और केतुभान—ये प्रतर्दन गण नाम से कहे गये हैं। हंस, स्वर, अहिहा, प्रतर्दन, यशस्कर, सुदान, वसुदान, सुमञ्जस, विष, हव्यवाह, सुवित्त और सुनय—इन्हें शिव के नाम से जानना चाहिये। यज्ञिय बारह दूसरे हैं। अब सत्य के अनुगामियों के नाम सुनिये, दिवपति, वाक्पति, विश्व, शम्भु, स्वमृड़ीक, अधिप, वर्चोधा, मुद्य, वासव, सदाश्व, क्षेम और आनन्द—ये बारह सत्यगण के नाम से विख्यात हैं। यज्ञिय बारह दूसरे हैं। ये उपर्युक्त देवगण औत्तम मनु की कार्यावधि में कहे गये हैं। अज, परशु, दिव्य, दिव्यौषधि, नय, अनुपम वीर देवानुज, महोत्साह, औशिज, विनीत, सुकेतु, सुमित्र, सुबल, और शुचि—ये तेरह महात्मा औत्तम मनु के पुत्र कहे गये हैं, जो क्षत्रियवंश की वृद्धि करने वाले थे—यह तृतीय मन्वन्तर का संक्षिप्त विवरण है। स्वारोचिष मनु की कार्याविधि में जिस प्रकार सृष्टि विस्तार हुआ था उसी प्रकार औत्तम मनु की सृष्टि का भी विस्तार हुआ कहा गया है। अब इसके उपरान्त तामस मनु की सृष्टि का विवरण विस्तारपूर्वक क्रमशः सुनिये। चतुर्थ तामस नामक मन्वन्तर में सत्य, स्वरूप, सुधी, और हरि, इन चार नामों वाले देवगण थे। इनमें से एक-एक गण में पच्चीस देवता थे। इस तामस मनु की कार्याविधि में पुलस्त्य पुत्र के पुत्रों का प्रदुर्भाव हुआ था। सत्य प्राण, परम

श्रेष्ठ मुनिगण जिन एक सौ इन्द्रियों को तथा आठवें तम को स्वीकार करते हैं, उनमें से वे ही इन्द्रिय समूह उस मन्वन्तर के देवगण स्मरण किये गये हैं। और जो उनका प्रभु प्रतापशाली शिवि था वही उस मन्वन्तर का इन्द्र था। हे सत्तम ! इसके अनन्तर उस मन्वन्तर के सप्त ऋषियों को सुनिये। कवि के पुत्र हर्ष, कश्यप के पुत्र पृथु, अत्रि के पुत्र अग्नि, भृगु के पुत्र ज्योतिर्धामा, पुलह के पुत्र वनपीठ, गोत्र वासिष्ठ और पुलस्त्य के पुत्र चैत्र—ये तामस मन्वन्तर के सात ऋषि हैं । हे ऋषिगण ! जनघण्ट, शान्ति, नर, ख्याति, भय, प्रियभृत्य, अविक्ष, दृढ़ और उद्यमशील पृष्ठलोढ, ऋत, और ऋतबन्धु—ये तामस मनु के पुत्र कहे गये हैं । अब पाँचवें पर्याय क्रम से आगत चरिष्णु नामक मन्वन्तर में होने वाले सुप्रसिद्ध देवताओं के गणों को सुनिये । उस चरिष्णु नामक वसिष्ठ प्रजापति के अमृतात्मा, आभूतरज, विकुण्ठ और सुमेधा नाम से विख्यात चार सुपुत्रगण थे । इन चारों सुप्रसिद्ध गणों में से एक-एक की संख्या चौदह थी । ये भास्कर नाम से भी ख्यात है। स्वप्न, विप्र, अग्नि, मास, प्रत्येतिष्ठ अमृत, सुमति, वाविराव, उद श्रवा, प्रविराशी, वाद और प्राश—ये देवगण चारिष्ण नामक मन्वन्तर में अमृता नाम से विख्यात थे । मति, सुमति, ऋत, सत्य, आवृति, विवृति, मद्र, विनय, जेता, जिष्णु, सह, द्युतिमान, और श्रव, ये नाम आभूतरज नामक गण के विख्यात हैं । वृषभेत्ता, जय, भीम शुचि, दान्त, दश, दम, नाथ विद्वान, अजेय, कृश, गौर, और, ध्रुव, ये विकुण्ठ नामक देवगण हैं अब सुमेधागण को सुनिये । मेधा, मेधातिथि, सत्यमेधा, पृश्निमेधा, अल्पमेधा भूयोमेधा प्रभृति ऐश्वर्यशाली, दीप्ति मेधा, यशी मेधा, स्थिरमेधा, सर्वमेधा, अश्वमेधा, प्रतिमेधा, मेधावान और मेधहर्त्ता ये चौदह सुमेधा नाम से पुकारे जाते हैं । उस पाँचवें मन्वन्तर में उन देवगणों में परम पराक्रमी तथा पुरुषार्थी विभु नामक इन्द्र था । पुलस्त्य पुत्र वेदबाहु, कश्यप पुत्र यजु, अंगिरा पुत्र हिरण्यरोमा, भृगुपुत्र वेदश्री, वसिष्ठ पुत्र ऊर्ध्ववाहु, पुलहपुत्र पर्जन्य, तथा अत्रिपुत्र सत्यनेत्र—ये सात ऋषि उस रैवत नामक पाँचवें मन्वन्तर में थे । महापुराण संभाव्य-प्रत्यङ्ग परहा शुचि, बलबन्धु, निरामित्र, केतुभृंग, दृढव्रत,—ये चरिष्णाव के पुत्र थे— पाँचवें मन्वन्तर के वृत्तान्त का वर्णन कर चुका । ॥ १-५५ ॥

स्वारोचिष, औत्तम, तामस और रैवत—ये चार मनु प्रियव्रत के वंश में उत्पन्न हुए हैं। अब पयार्य क्रम से छठें चाक्षुष नामक मन्वन्तर में जो देवगण हो गये हैं उनका वर्णन कर रहा हूँ । आक्ष, प्रसूत, भाव्य पृथुक और लेखा ये पाँच महानुभाव देवगण उस मन्वन्तर के स्मरण किये गये हैं । देवताओं की यह सृष्टि माताओं के नाम से पुकारी जाती है । प्रजापति अत्रि के पुत्र आरण्य ऋषि के ये समस्त देवगण नाती माने गये हैं । उन देवताओं के पाँचों गणों में एक-एक गण के अन्तर्गत आठ देवता स्मरण किये गये हैं । अन्तरिक्ष, वसु, हय, अतिथि, प्रियव्रत, श्रोता, मन्ता और सुमन्ता—ये आद्य के नाम से विख्यात हैं । श्येन-भद्र, पश्य, महायशस्वी पश्यनेत्र, सुमना, सुवेता, रेवत, सुप्रचेता, और महाबलवान द्युति—ये प्रसूति के पुत्रगण कहे गये हैं । विजय, सुजय, मन, उद्यान, सुमति सुपरि, विसात, और अर्थपति—ये भाव्य नामक देवगण के नाम से विख्यात हैं, अब पृथुकों को सुनिये । अजिष्ट, शाक्यन, वानपृष्ठ, शांकर, सत्यधृष्णु, विष्णु, विजय, तथा महाभाग्यवान् अजित ये पृथुक नामक देवगण हैं । अब लेखा नामक देवताओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।

मनोजव पुवास, महायशस्वी प्रचेता, वात, ध्रुवक्षिति, पराक्रमी अद्भुत, अवन और बृहस्पति—ये लेखा नाम से पुकारे जाते हैं। उस छठें मन्वन्तर में उन देवगणों का स्वामी इन्द्र महापराक्रमी मनोजव था। भृगु गोत्रोत्पन्न उन्नत, अंगिरापुत्र हविध्मान, कश्यपपुत्र सुधामा, वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न विरज, पुलस्त्य गोत्रीय अतिमान, पुलहगोत्रोत्पन्न सहिष्णु, और अत्रिगोत्रोत्पन्न मधु—ये चाक्षुष मन्वन्तर के सात ऋषि हैं। उरु, पुरुशतद्युम्न, तपस्वी सत्यवाक्, कृति, अग्निष्णुत्, अतिरात्र और सुद्युम्न ये नव तथा दसवें अभिमन्यु—ये चाक्षुष मनु के दस पुत्र हैं जो नाड्वलेय नाम से भी विख्यात हैं, छठवें मन्वन्तर का यही विवरण है। इस महात्मा चाक्षुष मनु का सृष्टि क्रम वैवस्वत मनु की भाँति कहा जाता है। द्विजगण! उसका विस्तृत वृत्तान्त मैं क्रमशः आप लोगों को सुना चुका। ॥५६-६९॥

ऋषियों ने कहा :—सूतजी! चाक्षुष मनु के उत्तराधिकारी कश्यप के गोत्र में उत्पन्न हुए, उसके गोत्र में जो अन्य लोग उत्पन्न हुए, उन्हें यथार्थतः बतलाइये। ॥७०॥

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द! चाक्षुष मनु का वंश वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। उसके वंश में वेन का पुत्र प्रतापी पृथु नामक एक सम्राट् उत्पन्न हुआ। इसके अतिरिक्त अन्यान्य प्रजापति गण प्रादुर्भूत हुए। जिनमें प्राचेतस दक्ष नामक प्रजापति थे। प्रजापति अत्रि ने उत्तानपाद नामक पुत्र को ग्रहण किया। इस दक्ष प्रजापति का पुत्र राजा था। स्वायम्भुव मनु ने उसे अत्रि के लिए दिया था। हे द्विजगण! चाक्षुष नामक भविष्यत्कालीन मन्वन्तर का, जो कि छठाँ मन्वन्तर माना गया है, मैं विस्तार पूर्वक पुनः वर्णन कर रहा हूँ। धर्म की विख्यात धर्मज्ञा सुनृता नामक जो कन्या थी, उस परम चतुर, वित्तभाविनी सुनृता के संयोग से राजा उत्तानपाद को ध्रुव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह सुनृता परम धार्मिक तथा ध्रुव की कल्याणी माता थी, वह सुन्दर हँसने वाली धर्म की लक्ष्मी नामक पत्नी में उत्पन्न हुई थी। राजा उत्तानपाद ने ध्रुव, कीर्तिमान्, अयस्मान तथा वसु नामक पुत्रों को तथा दो परम सुन्दरी मनस्विनी और स्वरा नामक कन्याओं को उत्पन्न किया—जिनके पुत्रों का वर्णन पहिले किया जा चुका है। परम पराक्रमी ध्रुव ने देवताओं के दस सहस्र वर्षों तक विपुल यश की कामना से निराहार रहकर घोर तप किया। स्वायम्भुव मनु के पौत्र ध्रुव प्रथम त्रेता युग में योगबल से आत्मा को स्ववश रख महान् यश की लिप्सा से परम कठोर तप में जब निरत थे, तब प्रसन्न हो ब्रह्मा ने उन्हें ज्योतिगणों का परम श्रेष्ठ स्थान प्रदान किया, जो महाप्रलय पर्यन्त स्थायी, हृदय को हरने वाला तथा अस्त एवं उदय से विवर्जित है। ध्रुव की इस परम उन्नति, सम्पत्ति एवं महिमा को देख समस्त असुर तथा दानवों के आचार्य शुक्र ने उनका यशोगान किया। अहो ध्रुव की परम कठोर तपस्या और पराक्रम को धन्य है, इसके शास्त्रज्ञान, एवं इसके हवनादि सत्कार्य धन्य हैं, जिनके कारण सातों ऋषियों के ऊपर निश्चल पद इसने प्राप्त किया है। परम ऐश्वर्यशाली दिनपति भगवान् भास्कर भी आकाशमण्डल में इस ध्रुव का आश्रय ग्रहण करते हैं। भूमि ने ध्रुव के संयोग से पुष्टि और भव्य नामक दो नरपतियों को उत्पन्न किया। परम ऐश्वर्यशाली पुष्टि ने अपनी छाया को (परछाई) कहा कि तू स्त्री हो जा। उस समय पुष्टि के इस प्रकार के सत्य एवं आग्रहपूर्ण आदेश पर छाया शीघ्र ही दिव्य आभूषणों से विभूषित दिव्य

Funding by IKS-MoE

अंगावयवों से सुशोभित स्त्री के रूप में परिणत हो गई। पुष्टि ने अपनी उस छाया नामक पत्नी में प्राचीन गर्भ[१], वृषक, वृक, वृकल और धृति नामक पाँच पुत्रों को उत्पन्न किया, जो सब के सब निष्पाप थे। प्राचीन गर्भ की सुवर्चा नामक पत्नी ने राजा उदारधी नामक पुत्र को समुत्पन्न किया, जो पूर्व जन्म में इन्द्र के पद पर अभिषिक्त था। उस परम प्रतापी तथा ऐश्वर्य सम्पन्न राजा ने एक सहस्र वर्ष बीत जाने पर केवल एक बार भोजन कर एक मन्वन्तर पर्यन्त इन्द्र पद की प्राप्ति की थी। भद्रा ने उदारधी के संयोग से दिवंजय नामक पुत्र को उत्पन्न किया। दिवंजय के संयोग से वराङ्गी ने शत्रुओं को जीतने वाले रिपु नामक पुत्र को उत्पन्न किया। वृहती ने रिपु के संयोग से परम तेजस्वी चाक्षुष नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उस चाक्षुष का पुत्र परम विद्वान मनु हुआ जो ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों का प्रवर्त्तक हुआ। उस रिपु ने धर्मार्थ के जानने वाले परम प्रसिद्ध उस चाक्षुष मनु को वरुण की पुत्री पुष्करिणी में उत्पन्न किया था। हे महाभाग्यशालियो! वैराज नामक प्रजापति महात्मा अरण्य की नड्वला नामक कन्या में उस चाक्षुष मनु के संयोग से दस शुभकारी पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम उरु, प्ररु, शतद्युम्न, तपस्वी, सत्यवाक्, कवि, अग्निष्टुत, अतिरात्र, सुद्युम्न, और अभिमन्यु ये दस पुत्र नड्वला में मनु से उत्पन्न हुए थे। उरुकी पत्नी आग्नेयी ने उरुके संयोग से अतिशय तेजस्वी छः पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम अङ्ग, सुमनस्, स्वाति, क्रतु, अंगिरा और शिव थे। अङ्ग की पत्नी सुनीथा ने अंग के संयोग से एकमात्र वेन नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जब वेन के अत्याचारों से प्रजावर्ग में घोर असन्तोष फैल गया तब ऋषियों ने सन्तानोत्पत्ति के लिए उसके दाहिने हाथ का मन्थन किया। उस समय वेन के हाथों के मथने पर परम प्रतापी पृथु नाम से विख्यात सम्राट् उत्पन्न हुआ। क्षत्रियों का अग्रज वेन का पुत्र पृथु अपने असह्य तेज से जलते हुए की भाँति धनुष और कवच धारण किये हुए उत्पन्न हुआ था, और अपने अपार साहस से समस्त लोक की रक्षा की थी। राजसूय यज्ञ से अभिषिक्त राजाओं में समस्त वसुधा का स्वामी वह पृथु ही सर्वप्रथम था, उसकी स्तुति करने के लिए दो निपुण सूत और मागध उत्पन्न हुए थे। परम बुद्धिमान् उस महाराज पृथु ने वृत्ति की अभिलाषिणी प्रजाओं के लिए ऋषियों देवताओं, पितरों, दानवों, गन्धर्वों, अप्सराओं, सभी पुण्यात्मा पुरुषों, वृक्षों तथा पर्वतों के समूहों के साथ गौ रूप धारिणी पृथ्वी से अन्नराशियों का दोहन किया। दोहन के समय पृथक्-पृथक् पातों में दुही गई वसुन्धरा ने दुहने वाले को यथाभिलषित क्षीर प्रदान किया, जिसके द्वारा समस्त लोकों की रक्षा हुई। ॥७१-९८॥

ऋषियों ने कहा :—महामते सूतजी! आप पृथु के जन्म वृत्तान्त का वर्णन विस्तार पूर्वक कीजिये और वह समस्त वृत्तान्त बतलाइये जिस तरह उस महात्मा ने प्राचीन काल में वसुन्धरा का दोहन किया। देवताओं, नागों, ब्रह्मर्षियों, यक्षों, गन्धर्वों तथा अप्सराओं के साथ जिस प्रकार एवं विधान से पृथ्वी का दोहन किया गया, उनके जो जो विशेष पात्र रहे, उन-उन समूहों में जो प्रमुख दोग्धा (दुहने वाला) रहा, जिस प्रकार का क्षीर हुआ, जो जो वत्स (बछड़े) बने उन सब का वर्णन हमें बतलाइये, जानने की इच्छा

---

[१] पहिले कृति नाम आया है।

है। जिस कारण से प्राचीन काल में राजा वेन का हाथ मथा गया, तथा क्रुद्ध महर्षियों ने जिस कारण वश उसे मृत्यु का शाप दिया है—वह सब हम लोगों को बतलाइये। ॥९९–१०२॥

सूत बोले—विप्रवृन्द! वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म वृत्तान्त का वर्णन मैं कर रहा हूँ, द्विजोत्तमगण! आप लोग एकाग्र और शान्तचित्त हो सुनिये। यह पवित्र जीवन चरित कभी किसी अपवित्रात्मा, अशिष्य, अहितकारी, एवं व्रतादि से उन्मुख रहनेवाले व्यक्ति को नहीं बतलाऊँगा। ऋषियों द्वारा वर्णित यह पवित्र वृत्तान्त स्वर्ग प्रदान करनेवाला, यशोवर्द्धक, आयुप्रद, वेदसम्मत, एवं परमगोपनीय है, जो अनसूयक (कभी किसी की निंदा न करनेवाला तथा गुण को गुण रूप में स्वीकार कर उसकी प्रशंसा करनेवाला) इसे सुनता है, अथवा जो मनुष्य वेनपुत्र राजा पृथु के जन्म वृत्तान्त को ब्राह्मणों को नमस्कार कर किसी को सुनाता है, उसे अपने कृताकृत (पुण्य-पाप अथवा जो कुछ किया है और जो कुछ नहीं किया है।) का शोच नही करना पड़ता। अत्रि के समान परमप्रभावशाली वह राजा धर्म का सर्वतोभावेन रक्षक तथा परम-ऐश्वर्यशाली था। ॥१०३–१०६॥

महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न अंग नामक एक प्रजापति हुए, जिसका पुत्र वेन हुआ। वेन परम धार्मिक राजा नहीं था। वेन मृत्यु की पुत्री सुनीथा में उत्पन्न हुआ था अतः अपने नाना के दोषों के कारण वह क्रूर प्रकृति का था। धर्म को पीछे रखकर कामनाओं से घिरकर वह लोभी हो गया और धर्म विरुद्ध मतों की उसने स्थापना की। वेदशास्त्र की आज्ञा का उल्लंघन कर अधर्म में रत हो गया। उस विधर्मी राजा के शासनकाल में प्रजाएँ स्वाध्याय एवं वषट्कार से विहीन हो गईं, देवता यज्ञों में हुने गये हवनीय द्रव्यों का भक्षण एवं सोम रस का पान करने को तरस उठे। उस प्रजापति वेन के राजत्वकाल में विनाश का अवसर उपस्थित होने पर यह क्रूर प्रतिज्ञा हुई कि कोई भी प्रजा न तो यज्ञ कर सकती है—न हवन कर सकती है। यह भी प्रतिज्ञा उसकी थी कि ब्राह्मण लोग सभी प्रकार के यज्ञों में एकमात्र मेरी पूजा करें, मेरा सम्मान करें, मेरे ही उद्देश्य से यज्ञों की क्रियाएँ सम्पन्न करें, मेरे ही उद्देश्य से हवनादि करें। इस प्रकार प्राचीन मर्यादा के अतिक्रमण करनेवाले, अनुचित ढंग से पूजा आदि ग्रहण करनेवाले अत्याचारी वेन से मरीचि आदि प्रमुख महर्षियों ने कहाः—हे वेन! हम लोग अनेक सौ वर्षों तक तुम्हें धर्म का उपदेश तथा दीक्षा देंगे अतः तुम अब अधर्म मत करो, जो तुम करते हो वह सनातन धर्म नहीं है, तुम निश्चय यह मान लो कि अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त उत्पन्न हुए हो तुम पहिले ही प्रतिज्ञा कर चुके हो कि 'मैं प्रजाओं का पालन करूँगा।' इस प्रकार की बातें करनेवाले सभी ब्रह्मर्षियों से उस समय उस परम दुर्बुद्धि एवं बातें करने में निपुण वेन ने हँस कर कहा, धर्म का बनानेवाला मेरे सिवा इस जगत् में दूसरा कौन है? मैं किसकी बातें सुनूं। अथवा इस संसार में पराक्रम, शास्त्रज्ञान, तपस्या तथा सैन्य आदि साधनों में मेरे समान भला इस पृथ्वी पर कौन है। तुम लोग मुझे यथार्थतः सभी साधनों से परिपूर्ण तथा महात्मा जानो। मुझे सभी लोगों का तथा विशेषकर सभी प्रकार के धर्मों का उत्पत्तिकर्त्ता समझो। मैं अपनी इच्छा मात्र से इस सारी पृथ्वी को चाहूँ तो जला दूँ, या जल से डुबा दूँ। या इसकी अभिनव सृष्टि कर दूँ या निगल जाऊँ—इसमें

Funding by IKS-MoE

तनिक भी सन्देह मत करो। इस प्रकार जब अनेक बार के समझाने बुझाने पर भी, दम्भ, एवं अभिमान के कारण मोहित वेन ठीक मार्ग पर नहीं लाया जा सका तब क्रुद्ध होकर महर्षियों ने अग्नि की लपटों की तरह फड़कते हुए उस महाबाहु को पकड़कर उसके बायें हाथ का अत्यन्त कुपित हो मन्थन किया। हे द्विजगण! मन्थन करते समय उसके बाएँ हाथ से एक अति अल्पकाय, कृष्णवर्ण एवं दीन-हीन चेष्टावाला पुरुष पहिले उत्पन्न हुआ। अति भयभीत दशा में वह हाथ जोड़े हुए स्थित था, सभी इन्द्रियाँ व्याकुल थीं। उसे इस प्रकार आर्त दशा में देख मुनियों ने कहा 'निषीद, 'बैठ जाओ।' फलस्वरूप अनन्त विक्रम सम्पन्न वह पुरुष निषाद्र वंश का कर्त्ता हुआ और वेन के पापों से उत्पन्न होनेवाले धीवरों को उसने उत्पन्न किया। जो विन्ध्य-पर्वत पर निवास करनेवाले, स्तुम्बुर, खस, खवर जाति वाले अधर्मी लोग हैं, उसी वेन के पाप से उत्पन्न हुए हैं। तदनन्तर पुनः महर्षियों ने वेन के दाहिने हाथ का अतिशय कुपित हो वेगपूर्वक अरणी की भाँति मन्थन किया। तब हाथों के शीघ्रतापूर्वक घर्षण के कारण समुत्पन्न तेज से पूर्ण उस दाहिने हाथ से पृथु उत्पन्न हुआ। पृथु के 'करतल' अर्थ होते हैं, उसी करतल से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम भी पृथु पड़ा। वह अपने शरीर की अनुपम कान्ति से साक्षात् अग्नि की तरह देदीप्यमान हो रहा था। सर्वप्रथम उसने प्रचण्ड ध्वनि करनेवाले, आजगव नामक महाधनुष को तथा बाणों को प्रजा के रक्षार्थ ग्रहणकर अतिशय द्युति से दमकते हुए कवच को धारण किया। उसके उत्पन्न होने पर सभी जीव समूह अतिहर्षित हुए। महाराज पृथु के उत्पन्न होने पर वेन का स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार उस परम बुद्धिमान एवं सच्चरित्र पुत्र पृथु के उत्पन्न होने के कारण पुरुष व्याघ्र राजर्षि वेन पुन नामक नरक में जाने से बच गया। सभी नदी तथा समुद्रगण सभी प्रकार के बहुमूल्य रत्नादि तथा पवित्र जल को ले लेकर अभिषेक के लिए पृथु के समीप उपस्थित हुए। तदनन्तर सभी देवताओं तथा अंगिरा आदि मुनियों के साथ भगवान् ब्रह्मा ने विपुल राजकीय सामग्रियों द्वारा आकर वेनपुत्र राजा पृथु का अभिषेक किया। इसी प्रकार सभी स्थावर जंगम जीवों ने भी उस अमित तेजस्वी कान्तिमान राजाधिराज पृथु का अभिषेचन किया। देवताओं और अंगिरा के पुत्रों द्वारा अभिषेक किये जाने पर वेनपुत्र आदिराज महाराज पृथु का प्रताप अधिक बढ़ गया। पिता से अप्रसन्न रहने-वाली प्रजाओं को उसने अतिप्रसन्न किया, जिससे प्रजा के ऊपर अधिक अनुराग रखने के कारण उसका 'राजा' यह नाम पड़ा। समुद्र पर अभियान (आक्रमण) करते समय जल समूह स्तम्भित हो जाते थे, पर्वत समूह विशीर्ण हो जाते थे। कभी ध्वजाओं का भंग नहीं होता था। पृथ्वी बिना किसी कष्ट के ही केवल चिन्तनमात्र से प्रचुर परिमाण में अन्न उत्पन्न करती थी। गौएँ सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली थीं, पत्रों के प्रत्येक पुटकों में मधु मिलता था। ठीक इसी समय पितामह के पवित्र महायज्ञ का प्रारम्भ हुआ था जिसमें उसी दिन सूती के गर्भ से परम बुद्धिमान सूत उत्पन्न हुए। उसी महायज्ञ में बुद्धिमान मागध भी उत्पन्न हुए। जिस समय सामवेद का गायन हो रहा था उस समय असावधानी के कारण विश्वदेव के स्रुक और पात्र में इन्द्र की हवि के साथ बृहस्पति की हवि मिल मिल गई, और देवताओं ने उस हवि को इन्द्र के लिए हवन किया जिससे सूत की उत्पत्ति हुई। सामगान के अवसर पर उत्पन्न होने के कारण वे लोग मागध

कहे गये। इस प्रकार की असावधानी से शिष्य की हवि के साथ गुरु की हवि मिल जाने के कारण वह तिरस्कृत हुई और नीच ऊँच के पारस्परिक संयोग से पापाचरण समझा गया, जिससे सूत और मागधों के वर्णों में विकार आ गया। हीन योनि क्षत्रियों की हवि के साथ ब्राह्मण की हवि का यत संयोग हुआ था अतः पूर्व (ब्राह्मण) जाति के साधर्म्य के कारण सूत उसी के तुल्य धर्मवाले कहे जाते हैं। सूत का मध्यम धर्म क्षत्रियों के समान जीविका अर्जन करना हुआ, रथ और हाथियों का परिचालन और औषधि आदि निन्द्य कामों को भी वे करने लगे। देवताओं और ऋषियों ने राजाधिराज पृथु के लिए उन दोनों सूत और मागधों को बुलाया, और उनसे कहा कि राजा की स्तुति करो और इसके अनुरूप जो भी कार्य करने पड़ें करो, यह तुम्हारी स्तुति करने के सर्वथा योग्य हैं। ऐसा कहने पर सूत और मागध ने वहाँ समुपस्थित सभी ऋषियों से कहा, हम दोनों अपने-अपने कार्यों से सभी देवताओं और ऋषियों को प्रसन्न रखेंगे; द्विजगण! किन्तु हम लोग महाराज के कार्यों को कुछ भी नहीं जानते, न इनके लक्षणों का ही हमें ज्ञान है, न उनके यश के बारे में ही हमको कुछ मालूम है, जिससे ऐसे तेजस्वी राजा की स्तुति कर सकूँ। ऋषियों ने उनसे कहा कि इसके द्वारा भविष्यत्काल में होनेवाले जो कार्यकलाप हैं, उनका गान करते हुए स्तुति करो। यह राजा नित्य दान तथा धर्म में रत रहनेवाला, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, ज्ञानशील, परम दाता तथा संग्राम भूमि में विजयी होनेवाला है। परमबलवान इस पृथु ने भूतकाल में जिन कामों को किया है वे सभी शील सदाचार से सम्बद्ध हैं, उन्हींका वर्णन करते हुए इसकी स्तुति करो। सूत और मागधों ने इस प्रकार राजा पृथु की स्तुति की। स्तुति करने के बाद प्रजेश्वर महाराज पृथु ने परमप्रसन्न होकर सूत के लिए अनूप (जलतटवर्ती प्रान्त) तथा मागधों को मगध प्रदेश दान किया। तभी से पृथ्वीपति राजाओं की ये सूत तथा मागधगण स्तुति किया करते हैं, और तभी से वे लोग सूतों, मागधों एवं वन्दियों के आशीर्वादों द्वारा प्रातःकाल नींद से जगाये जाते हैं। ॥१०७-१४८॥

राजा पृथु को देखकर परम प्रसन्न महर्षियों ने प्रजाओं से कहा यह पृथु तुम लोगों को वृत्ति देनेवाला है और यही नराधिप होगा। महर्षियों की ऐसी बातें सुन सारी प्रजाएँ उस महाभाग्यशाली वेनपुत्र पृथु की ओर दौड़ पड़ीं और कहने लगीं कि महर्षियों के कथनानुसार तुम हम लोगों की जीविका का प्रबन्ध करो। प्रजाओं के इस प्रकार शीघ्रतापूर्वक दौड़कर अपने समीप आने पर उस बलवान ने उनकी हितकामना से धनुष और बाणों को लेकर वसुधा को अतिशय पीड़ित किया। उसके पीड़न से संत्रस्त होकर पृथ्वी गौ का रूप धारण कर बड़े जोरों से भगने लगी। भागती हुई उस गौ रूप धारिणी पृथ्वी के पीछे राजा पृथु भी धनुष बाण लेकर दौड़े। पृथु के भय से संत्रस्त होकर पृथ्वी ब्रह्मलोक प्रभृति लोकों में घूम आई तब आगे उद्यत धनुष को धारण किये हुए पृथु को देखा। उस समय पृथु जलते हुए अति तीक्ष्ण बाणों की चमक से अतिशय तेजोमय हो रहा था। तब अपने त्राण का कोई अन्य उपाय न देख देवताओं से भी पराजित न होने वाले, परम योगी, अपने कर्त्तव्यपथ से च्युत न होने वाले पृथु की ही शरण में वह गई। तीनों लोकों द्वारा सर्वथा पूजित पृथ्वी ने अंजलि बाँधकर वेनपुत्र पृथु से कहा, हे राजन्! क्या तुम एक स्त्री के वध

Funding by IKS-MoE

करने में पाप नहीं समझ रहे हो ? मेरे बिना तुम प्रजाओं का पालन किस प्रकार कर सकोगे। हे राजन् ! मुझमें ही समस्त लोक स्थित हैं, मैंने ही समस्त जगत् को धारण किया है। हे नृपसत्तम् ! मेरे बिना सभी प्रजाएँ विनष्ट हो जायँगी, यदि तुम अपनी प्रजाओं का कल्याण करना चाहते हो तो मुझे मत मारो, मेरी बातें सुनो। उपाय द्वारा आरम्भ किये जाने पर सभी अध्यवसाय सिद्ध होते हैं, हे राजन् ! मुझे मारकर भी तुम प्रजाओं के पालन में किसी प्रकार समर्थ नहीं हो सकते। हे अतिशय शोभासम्पन्न राजन् ! मैं अन्न रूप में परिणत हो जाऊँगी। तुम अपना क्रोध दूर करो। हे पृथ्वीपाल ! ऋषिगण पशु कीट पतंग आदि सैकड़ों तिर्यक् योनियों में भी स्त्री के वध का निषेध करते हैं, ऐसा मानकर तुम धर्म से च्युत न हो।' पृथ्वी की अनेक प्रकार की बातें सुन कर महामनस्वी धर्मात्मा राजा पृथु ने अपने क्रोध को वश में किया और पृथ्वी से कहा, जो अकेले एक व्यक्ति के लिए, वह चाहे अपने लिये हो अथवा किसी दूसरे के लिए हो, किसी एक का अथवा अनेक लोगों के प्राणों का हरण करता है हे भद्रे ! उसे घोर पातक सहन करने पड़ते हैं। किन्तु हे शुभे ! यदि एक व्यक्ति के मारे जाने पर बहुतेरे लोगों को सुख मिलता है, उसके मारे जाने पर पातक क्या थोड़ा भी पातक नहीं लगता। हे वसुन्धरे ! सो मैं तो इतनी सारी प्रजाओं के कल्याणार्थ तुम्हारा बध कर रहा हूँ, यदि जगत के हित में तत्पर मेरी बातों को तू नहीं मानती तो अपने शासन से विमुख रहनेवाली तुझको वाणों से मारकर यहाँ अपने शरीर का विस्तार कर सारी प्रजाओं का पालन करूँगा। हे धार्मिकों में श्रेष्ठ ! अतः तू मेरी बातें स्वीकार कर प्रजाओं का नित्य पालन कर, तू उनके पालन करने में सशक्त है—इसमें सन्देह नहीं। तू मेरी कन्या बनने को स्वीकार कर ले—यही महान् वरदान तेरे लिए है। हे कठोर दिखाई पड़ने वाली ! मैं तुम्हें धर्म कार्यों में नियुक्त करने के लिए ऐसा कर रहा हूँ। वेनपुत्र पृथु के ऐसा कहने पर साध्वी पृथ्वी ने कहा—हे राजन् ! आप जैसा कह रहे हैं मैं वैसा ही करूँगी—इसमें सन्देह नहीं, मुझे एक बछड़ा दीजिये जिसके वात्सल्य स्नेह से मैं क्षीर-प्रस्रवण करूँ। हे धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ! मुझे चारों ओर से बराबर करो, जिससे बहता हुआ मेरा क्षीर चारों ओर समरूप में प्रवाहित हो। तदनन्तर वेनपुत्र राजा पृथु ने अपने धनुष की छोर से पृथ्वी पर फैले हुए पर्वतों को चारों ओर से हटा कर भिन्न-भिन्न स्थानों में रख दिया, जिससे उन उन स्थानों पर पर्वतों की ऊँचाई अधिक हो गई। बीते हुए मन्वन्तरों में पृथ्वी अत्यन्त दुर्गम तथा स्वाभाविक ढङ्ग पर कहीं समान, कहीं विषम थी। इस प्रकार के विषम पृथ्वीतल पर पूर्व सृष्टि काल में पुरों और ग्रामों का कोई विभाग नहीं था। न अन्न पैदा होते थे, न पशुपालन, न कृषि अथवा वाणिज्य आदि व्यवसाय ही था। चाक्षुष मन्वन्तर में पृथ्वी की यही दशा थी। वैवस्वत मन्वन्तर में इन सभी कार्यों का प्रचलन हुआ। जहाँ-जहाँ पर पृथ्वी समान रही वहाँ-यहाँ पर प्रजावर्ग आ आकर अपना निवास बनाकर रहते थे। आहार, फूल, मूल आदि थे, बड़ी कठिनाई से उनका जीवन चलता था—ऐसा हमने सुना है। किन्तु पृथु के कार्यकाल से इस पृथ्वी लोक में सभी वस्तुएँ उत्पन्न होने लगीं। पृथ्वी तल से नष्ट होकर लुप्त होने वाली औषधियों की बड़ी कठिनाई से उसने पुनः रक्षा की। फिर उस परम ऐश्वर्यशाली पृथु ने चाक्षुष मनु को बछड़ा बनाकर अपने करतल में अन्न राशि को पृथ्वी से

दोहन किया। इस प्रकार वेन पुत्र राजा पृथु ने गौ रूप धारिणी पृथ्वी से चाक्षुष मनु को बछड़ा बना कर पृथ्वी के पात्र में अन्नों का दोहन किया और उसी अन्न से उस समय की सभी प्रजाओं की जीविका चलायीं। सुना जाता है कि इसके बाद ऋषियों ने वसुन्धरा का पुनः दोहन किया, उनके समूह में बछड़े चन्द्रमा तथा दुहने वाले बृहस्पति बने थे, दुहने का पात्र गायत्री आदि सभी प्रकार के छन्द समूह थे, उन ऋषियों का क्षीर शाश्वत ब्रह्म एवं तप था। तदनन्तर इन्द्र आदि प्रमुख देवगणों ने वसुन्धरा की प्रार्थना कर सुवर्णमय पात्र लेकर पृथ्वी से अमृत का दोहन किया, उसी अमृत के भरोसे इन्द्रादि देवगण विद्यमान रहते हैं। नागों ने स्तुति कर विष रूप क्षीर पृथ्वी से दुहा, उनमें दुहने वाले वासुकि थे तथा उनके साथ कद्रू के सभी तेजस्वी पुत्रगण थे। हे द्विजश्रेष्ठ! सभी नागों एव सर्पों में परम तेजस्वी, जो विशालकाय अति तीक्ष्ण विष वाले सर्पगण हैं, वे उसी विष से वर्तमान रहते हैं। उसी का आहार करते हैं, उसी के अनुरूप आचार करते हैं, उसी के भरोसे पराक्रमशाली तथा उसी के आश्रय में आश्रित हैं। तदनन्तर पुनः पुण्यकर्त्ता यक्षों द्वारा अर्न्तधान होकर पृथ्वी का दोहन कच्चे पात्र में किया गया, जिसमें बछड़ा वैश्रवण नामक यक्ष था, दुहनेवाला जतुनाभ था, जो मणिवर नामक यक्ष का पिता था। वह यक्षपुत्र महान् तेजस्वी जितेन्द्रिय तथा महाबलवान था। उसी क्षीर द्वारा वे लोग जीविका चलाते हैं। तदनन्तर राक्षसों और पिशाचों ने वसुन्धरा का पुनः दोहन किया। उनमें दुहने वाला ब्रह्मज्ञानी कुवेरक, बछड़ा सुमाली नामक बलवान राक्षस तथा क्षीर के स्थान पर रक्त हुआ। राक्षसों ने कपाल में अर्न्तधान होकर पृथ्वी का दोहन किया था। उसी क्षीर पर आज भी राक्षसगण सब ओर अपनी जीविका निर्वाहित करते हैं। पितरों ने चांदी के पात्र में पृथ्वी की स्तुति कर दोहन किया, उनका अमृत स्वधा हुआ, दुहने वाले अर्यमा नामक पितर हुए, बछड़ा यमराज बने। उस स्वधा रूप क्षीर से उन देवताओं की महीने भर की तृप्ति होती है। गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूहों ने कमल के पात्र में चित्ररथ को तथा शुचि गन्धों को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया, उनमें मुनि का पुत्र परम पवित्रात्मा, गन्धर्वराज, महात्मा सूर्य के समान तेजस्वी विश्वावसु दुहने वाला था। तदनन्तर वसुन्धरा देवी का दोहन पर्वतों ने किया, उस दोहन कार्य में मूर्तिमती औषधियाँ तथा विविध रत्न क्षीर रूप में थे। उन पर्वतों में बछड़ा हिमालय तथा दुहने वाला महागिरि सुमेरु था, दोहन का पात्र तो पर्वत ही था, उन औषधियों से पर्वत की प्रतिष्ठा हुई। तदनन्तर वृक्षों और लताओं ने पलाश के पत्तों को लेकर प्ररोहों के तोड़ देने पर गिरने वाले दुग्ध का दोहन किया, जिसमें दुहने वाला पुष्पित पर्वत तथा वत्स पर्वत का पक्ष हुआ। सभी मनोरथों को पूर्ण रखनेवाली, भूतभाविनी (जीव समूहों को उत्पन्न करनेवाली) यशस्विनी वसुन्धरा सब को धारण करनेवाली, पालन करनेवाली तथा सभी प्रकार का विधान करनेवाली है, उस पृथ्वी का दोहन लोकहित के लिए राजा पृथु ने किया—ऐसा हमने सुना है। वह पृथ्वी सभी चराचर जीवों की आश्रयभूत तथा उत्पन्न करने वाली है। ॥१४९—१९३॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते पृथ्वी दोहनं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥

तिरसठवाँ अध्याय

सूत बोले :—यह समुद्र पर्यन्त फैली हुई वसुन्धरा मेदिनी (मेद—चर्बी से उत्पन्न होने वाली) इस नाम से विख्यात है। एवं वसु धन अथवा अन्न धारण करने के कारण यह वसुधा नाम से भी पुकारी जाती है। पूर्वकाल में यह मधु तथा कैटभ नामक दानवों की चर्बी से आकीर्ण थी। यही कारण है कि समुद्र पर्यन्त फैली हुई यह पृथ्वी मेदिनी नाम से विख्यात हुई। राजा पृथु की पुत्री होने के कारण उसे पृथ्वी नाम से भी लोग पुकारते हैं। उस परम बुद्धिमान् राजा द्वारा वह वसुन्धरा प्रसिद्ध की गई, अनेक भागों में विभक्त की गई, शोभित की गई, विविध प्रकार के अन्नों और आकरों (खनि) से समन्वित की गई, बड़े-बड़े नगर समूहों से संयुक्त की गई, ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोगों से आकीर्ण की गई तथा रक्षित हुई। राजाओं में श्रेष्ठ, वेन पुत्र राजा पृथु इस प्रकार का अमित्त प्रभावशाली सम्राट् था। सभी जीव समूह उसे नमस्कार करते थे, पूजा करते थे। वेदों एवं वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् एवं महाभाग्यशाली ब्राह्मणों द्वारा नमस्कार करने योग्य एकमात्र राजा पृथु ही था क्योंकि वह ब्रह्म से समुद्भूत था, तथा उसका प्रभाव कभी नष्ट होने वाला नहीं था। उस प्रतापशाली आदि राजा वेन पुत्र पृथु की परमभाग्यशाली नृपसमूहों द्वारा प्रार्थना की जाती थी। वास्तव में वह सर्वथा नमस्कार के योग्य था। संग्राम भूमि में उस महाराज पृथु की विजय की प्रार्थना बड़े-बड़े योद्धा लोग करते थे और वह वास्तव में विजय प्राप्त करता था, मनुष्यों का सर्वप्रथम पालक वह पृथु ही नमस्कार का पात्र था। जो वीर पुरुष राजा पृथु के यशों का कीर्तन कर रणभूमि को जाता है वह कल्याण भाजन यशस्वी योद्धा विकट संग्राम में भी विजय लाभ करता है। वैश्य वृत्ति (व्यापार) करने वालों का भी वह महायशस्वी राजर्षि पृथु नमस्कार का पात्र था, क्योंकि उन्हें भी वह वृत्ति देता था। पृथ्वी दोहन के समय ऊपर कहे गये बछड़े, दुहने वाले, दुग्ध, पात्रादि सभी का वर्णन मैं क्रमशः सुना चुका। ॥१—११॥

प्राचीन काल में सर्वप्रथम भगवान् ब्रह्मा ने पृथ्वी का दोहन किया था, उस समय वायु को बछड़ा बनाकर पृथ्वी तल पर बीजों को दुहा गया था। उसके बाद पुनः स्वायम्भुव मनु को बछड़ा बनाकर आग्नीध्र ने पृथ्वी का दोहन किया था। तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में परम बुद्धिमान् चैत्र ने स्वारोचिष मनु को बछड़ा बनाकर अन्नों का दोहन किया था। उत्तम मन्वन्तर में परम बुद्धिमान् सर्वश्रेष्ठ देवभुज ने उत्तम मनु को बछड़ा बनाकर सभी प्रकार के अन्नों का दोहन किया था। पुन पाँचवें तामस नामक मन्वन्तर में बलबन्धु से तामस मनु को बछड़ा बनाकर यह पृथ्वी दुही गई थी। तदन्तर पुनः चारिष्णाव नामक मन्वन्तर के आने पर पुराण ने चारिष्णाव को बछड़ा बनाकर पृथ्वी का दोहन किया। पुनः चाक्षुष नामक मन्वन्तर में भी पुराण ने चाक्षुष मनु को बछड़ा कर पृथ्वी का दोहन किया। चाक्षुष नामक मन्वन्तर के बीत जाने पर जब पुनः वैवस्वत नामक मन्वन्तर प्रारम्भ हुआ तब वेन पुत्र राजा पृथु ने जिस प्रकार इस पृथ्वी का दोहन किया था, उसका वर्णन मैं कर चुका। बीते हुए मन्वन्तरों में इन्हीं उपर्युक्त देवताओं मनुष्यों तथा भूतादि ने पृथ्वी का दोहन किया था। व्यतीत एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों में इसी प्रकार उन्हीं देवताओं को जान लेना चाहिये,

जिनका वर्णन मैं कर चुका। अब इस राजा पृथु की प्रजाओं के विषय में मुझसे सुनिये। उस राजा पृथु के अन्तर्धि और पाली नामक दो महान् बलशाली पुत्र हुए। जिनमें अन्तर्धान से शिखण्डिनी ने हविर्धान नामक पुत्र उत्पन्न किया। आग्नेयी धिषणा ने हविर्धान के संयोग से प्राचीन बर्हिस्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन नामक छः पुत्रों को उत्पन्न किया। परम ऐश्वर्यशाली प्राचीन बर्हिस् एक महान् प्रजापति था वह अपने बल, शास्त्र ज्ञान, तपस्या और पराक्रम से समस्त पृथ्वीमण्डल का एकच्छत्र सम्राट् था। यज्ञादि कार्यों में उसके कुशों के अग्र भाग पुराने पड़ जाते थे अतः प्राचीन बर्हिस् नाम से वह प्रसिद्ध हुआ। महान् अज्ञानान्धकार से पार हो जाने पर उस प्रजापति एवं सम्राट ने समुद्र-पुत्री सवर्णा से विवाह संस्कार किया। समुद्र-कन्या सवर्णा ने उसके संयोग से दस पुत्रों को जन्म दिया जो सब के सब प्रचेता के नाम से विख्यात होकर धनुर्वेद में पारंगत थे। एक ही प्रकार के धर्माचरण करने वाले उन प्रचेताओं ने दस सहस्र वर्षों तक समुद्र के जल में शयन कर परम कठोर तप किया। जिस समय प्रचेता गण तप कर रहे थे उस समय बिना रखवाली तथा काट छाँट के वृक्षों ने समस्त पृथ्वीमण्डल पर बढ़ बढ़कर आकाश तक ढँक लिया, जिससे प्रजाओं का विनाश होने लगा। उस चाक्षुष मन्वन्तर में इस प्रकार प्रजाओं के ऊपर घोर विपत्ति आ गई, सारा आकाशमण्डल वृक्षों से घिर उठा, औ[illegible]सहस्र वर्ष तक प्रजाएँ निश्चेष्ट पड़ी रहीं अर्थात् उन बेतरतीब बढ़े हुए वृक्षों के काटने छांटने का साहस उन्हें नहीं हुआ। तपोबल द्वारा प्रजाओं की इस घोर विपत्ति की चर्चा सुनकर सभी प्रचेताओं ने अति क्रुद्ध होकर अपने-अपने मुख से एक साथ ही वायु और अग्नि को छोड़ा। वायु ने उन सभी वृक्षों को उखाड़ कर सुखा दिया और तब अग्नि ने उन सब को भस्म कर दिया—इस प्रकार उन वृक्षों का विनाश हो गया। उन बढ़े हुए वृक्षों के विनाश हो जाने पर जब कहीं कहीं थोड़ी संख्या में कुछ वृक्ष शेष रह गये तब उन प्रचेताओं के समीप जाकर राजा सोम ने कहा—"प्रचेता गण! लोगों को उत्पन्न होने वाली संततियों के नित्य आने वाले सभी प्रयोजनों को देखकर आप लोग क्रोध छोड़ दें, क्योंकि आप सब राजा हैं और बर्हिस् के पुत्र हैं। पृथ्वी पर शेष बचे हुए ये वृक्ष अब नये वृक्षों को उत्पन्न करेंगे। अतः अग्नि और वायु को अब आप लोग शान्त कर दें। यह परम सुन्दर दिखाई पड़ने वाली रत्नभूत कन्या वृक्षों की है, भविष्य में घटित होनेवाली घटनाओं को जानकर मैंने अपनी किरणों द्वारा इसको बढ़ाया है, इसका नाम मारिषा है, वृक्षों ने ही इसको उत्पन्न किया है। सोम के (मेरे) गर्भ में बढ़ने वाली यह सुन्दरी कन्या तुम सबों की स्त्री होगी। तुम लोगों के आधे तेज से तथा मेरे आधे तेज से इसमें परम विद्वान् दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न होगा। तुम सबों के तेजोबल के कारण एवं अग्नि द्वारा अग्नि के समान परम तेजस्वी हो वह इस जलकर नष्ट हुई वसुधा को तथा सारी प्रजाओं का पालन पोषण करेगा।१२—२६।"

चन्द्रमा के ऐसा करने पर प्रचेताओं ने वृक्षों पर से अपना क्रोध हटा लिया और धर्मपूर्वक मारिषा को पत्नी रूप में वरण किया। तदनन्तर उन सबों ने मानसिक संकल्प से मारिषा में गर्भाधान किया। उन दस प्रचेताओं के अंश से मारिषा में दक्ष नामक प्रजापति उत्पन्न हुए, जो चन्द्रमा के अंश के कारण परम पराक्रमी तथा महान तेजस्वी थे। प्राचीन काल में सर्वप्रथम उन दक्ष ने केवल मानसिक संकल्प से प्रजा सृष्टि

Funding by IKS-MoE

की, स्त्री-पुरुष सम्भोग द्वारा नहीं। उन दक्ष ने पहले अचरों को, चरों को, द्विपदों (मनुष्यों) को तथा चतुष्पदों को मानसिक संकल्प द्वारा उत्पन्न कर तदन्तर स्त्रियों की सृष्टि की। उनमें से दस धर्म को, तेरह कश्यप को, तथा समय के विभाजन में नियुक्त सत्ताईस कन्याओं को चन्द्रमा को दिया। इन सब को देने के बाद चार कन्याओं को अरिष्टनेमि को, दो बाहुपुत्र को, दो अङ्गिरा को तथा एक कृशाश्व को दिया। अब उनके पुत्र-पौत्रादिकों का विवरण सुनिये। इस अवधि में छठवाँ चाक्षुष नामक मन्वन्तर व्यतीत हो गया और सातवें प्रजापति वैवस्वत मनु का भी कार्यकाल समाप्त हुआ। उन दक्ष की कन्याओं में देवता, पक्षी, नाग, दैत्य, दानव, गन्धर्व, अप्सरायें, एवं अन्यान्य जातियाँ उत्पन्न हुईं। इसके उपरान्त इस पृथ्वी लोक में प्रजाएँ सम्भोग के द्वारा उत्पन्न होने लगीं। उनके पूर्व उत्पन्न होने वालों की सृष्टि संकल्प, दर्शन एवं स्पर्श से होती कही जाती है।२८–४५॥

ऋषियों ने कहा:—सूतजी! देवताओं, दानवों तथा देवर्षियों की उत्पत्ति तुमने महात्मा दक्ष की उत्पत्ति के पूर्व बतलाई है और प्रजापति दक्ष का जन्म प्राण से बतलाया है, उस महातपस्वी ने फिर किस प्रकार प्रचेताओं के पुत्र होने का गौरवपूर्ण पद प्राप्त किया—हम लोगों के इस सन्देह को तुम दूर करो, तथा यह भी बतलाओ कि वह चन्द्रमा का दौहित्र (नाती) है फिर उसका श्वसुर कैसे हुआ।४६–४८॥

सूत ने कहा:—ऋषिवर्यवृन्द! यह जन्म और निरोध (विनाश वा निवृत्ति) सर्वदा सर्वसामान्य जीवों में हुआ करते हैं, ऋषिगण तथा विद्वान् लोग इस विषय में कभी मोह को नहीं प्राप्त होते। हे द्विजगण! ये दक्षादि प्रजापति गण प्रत्येक युग में उत्पन्न होते रहते हैं और फिर से वे विनाश को प्राप्त हो जाते हैं—इस विषय में विद्वानों को मोह नहीं होता। हे द्विजोत्तम वृन्द! पूर्वकाल में इन सबों में ज्येष्ठ और कनिष्ठ का भी भाव नहीं रहा है, केवल तपस्या ही इनकी महत्त्वपूर्ण मानी जाती थी तथा इनके व्यक्तिगत प्रभाव ही इनकी महत्ता के कारण होते रहे। चाक्षुष मनु की इस चराचर सृष्टि-वृत्तान्त को जो व्यक्ति भली भाँति जानता है वह अपनी सारी आयु सुखपूर्वक समाप्त कर अन्त में स्वर्ग लोक में पूजित होता है। चाक्षुष मन्वन्तर की सृष्टि का संक्षेप में वर्णन कर चुका। इन उपर्युक्त छ मन्वन्तरों का, जो स्वायम्भुव मनु से आरम्भ कर चाक्षुष मनु के अन्त तक चलते हैं, संक्षेप में क्रमिक वर्णन किया जा चुका। हे द्विजवर्यवृन्द! इन सृष्टि वृत्तान्तों को अपनी जानकारी के अनुसार मैं आप लोगों को बतला चुका, इनका विस्तार पूर्वक वर्णन वैवस्वत मन्वन्तर के समान जान लेना चाहिये। वैवस्वत मनु के सभी सृष्टि कार्य आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ एवं काम सभी दृष्टियों से अनन्त तथा दूसरे सर्गों के समान ही हैं, जो असूया (गुणों में दोषारोपण करने की प्रवृत्ति) भाव को छोड़कर इसको पढ़ता है वह आरोग्य, आयु, धर्म, अर्थ एवं काम इन सभी मनोरथों को प्राप्त करता है। अब सम्प्रति वर्तमान महात्मा वैवस्वत के सृष्टि क्रम का यथावसर संक्षेप और विस्तार में वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये।४९–५६॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते पृथु-वंशानुकीर्तनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्याय : ॥६३॥

चौसठवाँ अध्याय

वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि का वर्णन

सूतजी ने कहा—ऋषिवृन्द ! सातवें वैवस्बत नामक मन्वन्तर में मरीचि-पुत्र कश्यप से देवताओं एवं महर्षियों की उत्पत्ति हुई। उसमें आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण, साध्यगण, विश्वेदेवगण, मरुद्गण, भृगुपुत्र एवं अंगिरापुत्र—ये आठ देवगण स्मरण किये जाते हैं। इनमें आदित्यगण, मरुद्गण और रुद्रगण—ये कश्यप के पुत्र हैं। साध्यगण, वसुगण एवं विश्वेदेवगण—ये तीन गण धर्म के पुत्र कहे गये हैं। भृगु के भार्गव एवं अंगिरा के अंगिरस गण पुत्र हैं, इस वैवस्वत मन्वन्तर में ये सुर गण छन्दों से उत्पन्न होने वाले कहे गये हैं। महाप्रलय पर्यन्त ये लोग भी सृष्टि के कार्यों के साथ चलेंगे अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त इनकी भी सत्ता विद्यमान् रहेगी। यह शुभ वर्तमान देव-पद्धति मरीचिनन्दन कश्यप के वंशधरों की जानना चाहिये, इन सबों का स्वामी इन्द्र साम्प्रत नामक महाबलशाली है। अतीत, भविष्यत् तथा वर्तमान कालीन जो मन्वन्तरों के इन्द्रगण हैं, वे सभी लक्षणों में एक समान हैं। वे सब के सब भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान काल के स्वामी हैं, सहस्र आँखोंवाले तथा पुरन्दर हैं, मघवान् हैं, शृङ्गी हैं, तथा वज्र धारण करनवाले हैं। सभी सौ यज्ञों को पूर्ण करनेवाले तथा व्यक्तिगत सैकड़ों गुण समूहों से सम्पन्न हैं। तीनों लोकों में जितने भी शक्तिशाली, गतिमान् अथवा निर्बल प्राणी हैं, इन्द्र उन सबों से—धर्मादि कार्यों में भी—बढ़े-चढ़े रहते हैं। तेज से, तप से, बुद्धि से, बल, शास्त्रीय ज्ञान तथा पराक्रम से वे सभी प्राणियों में श्रेष्ठ होते हैं वे जिस प्रकार अत्यन्त प्रभावशाली तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान के स्वामी होते हैं, उन सब का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। ॥१–६॥

ब्राह्मणों ने भूत, भव्य एवं भविष्य—ये तीन लोक बताये हैं। भूर्लोक यह पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष (आकाशमण्डल) भुवर्लोक स्मरण किया गया है। स्वर्गलोक भव्य नाम से स्मरण किया गया है, उनके लक्षणों को बतला रहा हूँ। पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा से ब्रह्मा ने ध्यानावस्थित होकर सर्वप्रथम 'भूः' इस अक्षर का उच्चारण किया, उसी समय यह भूलोक हुआ। भू धातु का सत्ता अर्थात् विद्यमान रहने अर्थ में प्रयोग होता है तथा लोक-दर्शन, (लोगों के देखने योग्य) अर्थ में भी उसकी प्रसिद्धि है, विद्यमान रहने एवं लोगों के दृष्टिगोचर होने के कारण यह भूमि भूलोक नाम से प्रसिद्ध हुई। यही कारण है कि ब्राह्मणों ने इसे विद्यमान होने के कारण प्रथम लोक माना है। इस भूलोक के आविर्भाव हो जाने पर ब्रह्मा ने फिर 'भवत्' ऐसा दूसरा उच्चारण किया। उत्पन्न (उच्चारित) होने वाले इस भवत् शब्द के द्वारा वर्तमान काल में होने वाले का अवगम (बोध) होता है, निरुक्त[1] के जानने वाले लोग भवन (होने वाले) इस शब्द से भुवर्लोक की निरुक्ति करते हैं। अतः अन्तरिक्ष द्वितीय भुवर्लोक के नाम से कहा जाता है। भुवर्लोक के

---

[1] १—प्रकृति-प्रत्यय आदि अवयवों के अर्थ को निचोड़ कर एक अर्थ को प्रतिपादन करने वाला वेद का एक अंग अथवा व्याकरण।

आविर्भूत हो जाने पर ब्रह्मा ने 'भव्य' इस तृतीय शब्द का उच्चारण किया, जिससे भव्यलोक का आविर्भाव हुआ। यह भव्य शब्द भविष्यत्काल के अर्थ में आता है, इसी से यह लोक भव्य लोक हुआ, नाम से यह दिव (स्वर्ग) लोक से स्मरण किया जाता है। तदनन्तर ब्रह्मा ने अन्य तीसरे 'स्वः' इस शब्द का उच्चारण किया, जिससे भाव्य लोक का प्रादुर्भाव हुआ। भाव्य इस धातु का भविष्यत्काल के अर्थ में प्रयोग होता है। यह भूमि भूलोक के अर्थ में, अन्तरिक्ष भुवलोक के अर्थ में तथा स्वर्गलोक भाव्य लोक के अर्थ में कहे गये हैं—यही तीनों लोकों के समूह हैं। इन्हीं तीनों लोकों के संयुक्त उच्चारणों से तीनों (भूः भुवः स्वः) महाव्याहृतियाँ हुईं। धातु के जानने वाले लोग नाथ धातु को पालन करने अर्थ में स्मरण करते हैं। यतः वे इन्द्रगण भूतलोक, भव्य लोक एवं भवत् लोक--इन तीनों लोकों के पालक हैं अतः ब्राह्मण गण उन्हें भूत भव्य और भवत् तीनों का नाथ कहते हैं। प्रत्येक मन्वन्तर में जो देवगण यज्ञ भाग के भोक्ता होते हैं, उन सबों में ये इन्द्र प्रधान तथा गुणों में भी सर्वश्रेष्ठ होते हैं। सभी यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, सर्प तथा दानव गण इन्हीं देवेन्द्रों की महिमा स्वरूप कहे जाते हैं। वे इन्द्र देवताओं के स्वामी, गुरु, नाथ, राजा, एवं पितर-सब कुछ हैं, वे सुरोत्तम धर्मपूर्वक सभी प्रजाओं का पालन करते हैं। देवेन्द्रों का यह संक्षिप्त लक्षण मैं बतला चुका अब उन सातों ऋषियों का लक्षण बतला रहा हूँ, जो सम्प्रति स्वर्गलोक में अवस्थित हैं। इन सातों में परम बुद्धिमान्, कुशिक गोत्रीय, गाधि के पुत्र विश्वामित्र महान् तपस्वी हैं। भृगु गोत्रीय प्रतापशाली उरु पुत्र जमदग्नि हैं। बृहस्पति के पुत्र परम तपस्वी भारद्वाज हैं, परम धार्मिक एवं उतथ्य के पुत्र गौतम शरद्वान हैं, स्वयम्भू ब्रह्मा के पुत्र ब्रह्मपरायण भगवान् अत्रि इन ऋषियों में पाँचवें ऋषि हैं, छठें वसिष्ठ के पुत्र लोक विख्यात वसुमान नामक ऋषि हैं, सातवें कश्यप गोत्रीय वत्सार हैं—ये सत्पुरुषों द्वारा सम्माननीय इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के सिद्ध सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नाभाग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, नाभ, उद्दिष्ट, करूष, पृषध्र और वसुमान ये नव* वैवस्वत मनु के पुत्र कहे गये हैं। सातवें मन्वन्तर का वृत्तान्त वर्णन मैं कर चुका। हे द्विजगण ! इस द्वितीय चरण का मैं विस्तारपूर्वक क्रमिक वर्णन कर चुका, अब आगे किस विषय का वर्णन करूँ ? ॥१०–३०॥

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्ते वैवस्वत सर्ग वर्णनं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

द्वितीय अनुषङ्ग (सम्बन्ध) पाद समाप्त।

---

*गणना से यहाँ पुत्रों की संख्या दस हो रही है। वास्तव में वैवस्वत के दस पुत्र थे, जैसा कि अन्य पुराणों में वर्णित है। अतः यहाँ नव की जगह दस होना चाहिये। नवमः के स्थान पर 'दशमः' स्मृतः' होना चाहिये।

[तृतीय उपोद्घात पाद]

पैंसठवाँ अध्याय

प्रजापति के वंश का वर्णन

ऋषियों ने कहा – परम बुद्धिमान् सूत के मुख से दूसरे पाद को सुन लेने के बाद शांशपायन ने तीसरे पाद के विषय में पूछा। शांशपायन ने कहा, सूत जी आपके मुख से अनुषङ्ग नामक द्वितीय पाद को हम सुन चुके, अब तीसरे उपोद्घात नामक पाद को विस्तारपूर्वक हमें सुनाइये। शांशपायन के ऐसा कहने पर अन्तरात्मा से अतिशय हर्षित होकर सूत बोले। ॥१–२॥

सूत ने कहा—ऋषिवृन्द ! अब मैं उपोद्घात नामक तीसरे पाद का वर्णन विस्तारपूर्वक कर रहा हूँ, उसे अविकल रूप से सुनिये। महात्मा वैवस्वत मनु के इस सृष्टि क्रम का विस्तारपूर्वक क्रमशः वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। पहिले ही इस बात का वर्णन कर चुका हूँ कि एक मन्वन्तर का कार्यकाल इकहत्तर बार चारों युगों के बीत जाने पर समाप्त होता है। देवगणों, ऋषियों, दानवों, पितरों, गन्धर्वों, यक्षों, राक्षसों, भूतों, मर्त्यों, पशुओं, पक्षियों एवं स्थावरों के साथ इस वैवस्वत मन्वन्तर के सृष्टि क्रम का विस्तृत वर्णन एवं भविष्यत्काल में घटित होने वाले अनेक आख्यानों को मैं विवस्वान को प्रणाम कर कह रहा हूँ। प्रथम स्वायम्भुव नामक मन्वन्तर में जो सृष्टि कार्य के प्रवर्तक सात ऋषि वर्तमान थे, चाक्षुष मन्वन्तर के बीत जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर प्रारम्भ होता है उस काल में भी महेश्वर के शापवश पुनः प्रादुर्भूत होते हैं। दक्ष प्रजापति, भृगु प्रभृति परम तेजस्वी एवं महात्मा ऋषियों का भी प्रादुर्भाव होता है। वे ही सातों ऋषि पुनः ब्रह्मा के सात मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं, स्वयं स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा ही उन्हें अपने पुत्र रूप में नियुक्त करते हैं। उत्पन्न होकर वे महात्मा सप्तर्षिगण विविध प्रजाओं एवं सन्ततियों की कामना से पुनः सृष्टि का कार्य उसी पुराने क्रम के अनुरूप प्रारम्भ करते हैं। उन विशुद्ध ज्ञान एवं विशुद्ध कर्म वाले उन महात्माओं की सन्ततियों का क्रमशः वर्णन संक्षेप और विस्तारपूर्वक मैं कर रहा हूँ, जिनके वंश में उत्पन्न होने वालों से ग्रहों एवं नक्षत्रों से विमण्डित इस चराचर जगत् की सृष्टि पुनः पूरित की जाती है। सूत की ऐसी बातों से जब मुनियों के मन में बहुत सन्देह हुआ तब संशय से युक्त सद्व्रत परायण मुनियों ने सूत जी का अति सत्कार कर जिज्ञासा प्रकट की। ॥३–१४॥

ऋषियों ने पूछा :—'हे सत्तम ! पूर्वकाल में वे सप्तर्षि गण किस प्रकार मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुए और किस प्रकार ब्रह्मा के पुत्र माने गये—इस वृत्तान्त को हमें बतलाइये।' ऋषियों की ऐसी बातें सुन कर पुराणों के विशेषज्ञ महातेजस्वी सूत ने उस शुभ कथा को बतलाया। ॥१५॥

सूत ने कहा :—किस प्रकार स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे सप्तर्षिगण सिद्धि को प्राप्त हुए और फिर वैवस्वत मन्वन्तर में महादेव के शाप से अपनी सिद्धिदात्री तपस्या से च्युत हुए और मर्त्यलोक में आकर उत्पन्न हुए—इसका वर्णन मैं कर रहा हूँ। वे सप्तर्षि गण जन लोक में एक बार जन्म धारण करते,

Funding by IKS-MoE

हैं। जन लोक में आकर उन महाभाग्यशाली सप्तर्षियों ने आपस में यह सलाह की और एक दूसरे से कहा कि वरुण यज्ञ के समाप्त हो जाने पर चाक्षुष मन्वन्तर में चलकर हम सभी पितामह ब्रह्मा जी के आत्मज होगें तब फिर हमारा कल्याण होगा। स्वायम्भुव मन्वन्तर में सत्य आचरण के लिये वे महर्षि गण शिव द्वा अभिशप्त किये गये थे और पुनः जन्म धारण कर जनलोक से स्वर्गलोक को गये थे। देव के महान् यज्ञ में वरुण का शरीर धारण कर सन्तानोत्पत्ति की कामना से अपने वीर्य को अग्नि में हवन करते समय ब्रह्मा से ऋषियों का द्वितीय बार प्रादुर्भाव हुआ—यह हम लोगों ने सुना है। भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, पुलस्त्य प्रलह, क्रतु, अत्रि और वसिष्ठ ये आठ ब्रह्मा के पुत्र हैं। वरुण के उस विशाल यज्ञ में सभी देवता सम्मिलित हुए थे, यज्ञ के सभी अंग एवं वषट्कार मूर्तिधारण कर उपस्थित थे। सहस्रों साम एवं यजुर्वेद के मूर्त स्वरूप थे, पद क्रम से विभूषित ऋग्वेद भी वहाँ पर मूर्तमान था। ॐकार रूप मुख से उज्ज्वल, यज्ञ कार्य में प्रयुक्त होने वाले सूक्त, ब्राह्मण एवं मंत्र भाग से संयुक्त वृत्त से संवलित यजुर्वेद वहाँ अति शोभा पा रहा था। सभी गेय पदों को पुरःसर कर विश्वावसु आदि गन्धर्वों के साथ, वृत्त से संवलित सामवेद अपने सभी उपकरणों से संयुक्त शोभित हो रहा था। अतिघोर कृत्या (हत्या) आदि विधियों से तथा प्रत्यङ्गिरस आदि आभिचारिक प्रयोगों से युक्त होकर एक ही शिर में दो शरीर धारण कर उपस्थित था। इन सबों के अतिरिक्त लक्षण, 'स्वर, स्तोम[1] निरुक्त, स्वरों की भक्ति[2], आश्रम स्वरूप वषट्कार, निग्रह, प्रग्रह आदि भी उपस्थित थे। दीक्षा, दीप्ति, इला, देवी, सभी दिशाएँ, विदिशाएँ, दिक्पालगण, देवकन्याएँ, देवपत्नियाँ, मातृकाएँ तथा आयु—ये सब भी स्वरूप धारण कर वरुण का रूप धारण करने वाले देव के अग्नि मुख में हवन करते समय उपस्थित रहे। उन सब स्त्रियों को देख कर स्वयम्भू ब्रह्मा जी का वीर्य पृथ्वी पर स्खलित हो गया। ब्रह्मर्षि के भाव से प्रभावित निश्चित विधान के कारण पितामह ने पृथ्वी पर स्खलित अपने वीर्य को घृत की भाँति स्रुवा पर रख कर मंत्रों का विधिवत् उच्चारण कर हवन कर दिया। प्रजापति ने इस प्रकार अनेक जीव समूहों की सृष्टि की। लोक में परम तेजोमय, किन्तु पृथ्वी पर गिर पड़ने के कारण कुछ क्षीण तेज वाले उस वीर्य से सत्त्व गुण, रजोगुण एवं तमोगुण मय सृष्टि उत्पन्न हुई। इन उपर्युक्त तीनो गुणों से सम्पन्न वह तेज आकाश मण्डल में देदीप्यमान हुआ। तमोगुण मय तेजस्विता के कारण सभी जीव समूह उत्पन्न हुए। जिस समय ब्रह्मा ने घृत के पात्र में अपने वीर्य को लेकर अग्नि में हवन किया उस समय उनके कर्मज पुत्रों की उत्पत्ति हुई। अग्नि में वीर्य के हवन कर देने पर महर्षियों का प्रादुर्भाव हुआ, सातों ऋषियों के शरीर उज्वल एवं देदीप्यमान थे, तथा बालकों के सभी गुण उनमें पाये जाते थे। पहली बार अग्नि में वीर्य के हवन करने पर लपटों से कवि (भृगु) निकले। इस प्रकार ज्वाला का भेदन कर निकलते हुए कवि को देखकर हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ने कहा, यतः अग्नि ज्वाला से प्रकट

---

[1] १—गान के स्वर को पूरा करने के लिए शब्द विशेष का प्रयोग किया जाता है, जिसका कोई विशेष अर्थ नहीं होता, जैसे सामवेद में 'इडा' 'होई' आदि।

[2] २—विभाजन की प्रणाली।

होते समय तुमने 'भृगु' इस प्रकार का उच्चारण किया है, अतः तुम्हारा नाम भी भृगु हुआ। इस प्रकार अग्नि ज्वाला का भेदन कर प्रादुर्भूत होनेवाले उस ब्रह्मर्षि को देखकर महादेव ने कहा, प्रभो! पुत्र प्राप्ति की कामना से मैं दीक्षा ग्रहण कर इस यज्ञ को कर रहा था, अतः यह ब्रह्मर्षि मेरा पुत्र हो। जब 'यह भृगु मेरा ही पुत्र हो।' ऐसा शिवजी ने प्रकट किया तदनन्तर स्वयम्भू ने कहा कि 'ऐसा ही होगा।' तब शिव ने भृगु को अपने पुत्र रूप में स्वीकार किया। इसी कारणवश भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाले वरुण वंशीय कहलाते हैं, वे प्रभु भृगु भगवान शिव की सन्तान हुए। तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने पुनः द्वितीय बार वीर्य को यज्ञाग्नि के अंगार के ऊपर आहुति डाला जिससे उन अंगारों पर अंगों प्रत्यंगों समेत अंगिरा ऋषि प्रादुर्भूत हुए। ब्रह्मा की इस अभिनव सम्भूति को प्रकट हुआ देख अग्नि ने कहा, ब्रह्मन्! मैंने तुम्हारे दिये हुए वीर्य को धारण किया था, अत यह दूसरा पुत्र मेरा हो। सभा में प्रधान के पद पर समासीन ब्रह्मा ने अग्नि की प्रार्थना का अनुमोदन किया कि ऐसा ही हो। यही कारण है कि अंगिरा गोत्रवाले अग्नि गोत्रीय भी कहे जाते हैं--ऐसा हमने सुना है। तदनन्तर लोकसृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा ने छः बार अग्नि में अपने वीर्य की आहुति दी। जिससे छः ब्राह्मण उत्पन्न हुए--ऐसा सुना जाता है। जिनमें सर्वप्रथम अग्नि की मरीचियों से मरीचि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ[1] यतः उस क्रतु (यज्ञ) में एक अन्य चौथा पुत्र भी उत्पन्न हुआ अत उसका नाम क्रतु रखा गया। मैं तृतीय हूँ—ऐसा कहते हुए यत एक अन्य पाचवें पुत्र की उत्पत्ति हुई अतः वह अत्रि नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक अन्य पुत्र अपने तीक्ष्ण केशों के कारण पुलस्त्य नाम से स्मरण किया गया। लम्बे केशों के साथ उत्पन्न होने के कारण पुलह नाम प्रसिद्ध हुआ। वसु (आहुति सामग्री) के मध्य से यतः उत्पन्न हुआ अतः समस्त वसुधा का आश्रयभूत वसुमान नाम रखा गया। तत्त्वों के जानने वाले ब्रह्मवादी लोग उसे वशिष्ठ नाम से पुकारते हैं। ये ब्रह्मा के छः मानसिक पुत्र महर्षि कहे गये हैं। ये सब के सब लोक की सन्तान वृद्धि करनेवाले हैं, और इन्हीं लोगों ने प्रजाओं की वृद्धि की है। इसी कारण ब्रह्मा के ये पुत्र गण प्रजापति कह कर पुकारे जाते हैं। इन्हीं महर्षियों द्वारा दूसरे पितर नामक लोकविख्यात ऋषिगण भी उत्पन्न हुए। वे लोक-प्रसिद्ध सात पितरगण मारीच, भार्गव, आङ्गिरस, पौलस्त्य, पौलह, वाशिष्ठ और आत्रेय के नाम से विख्यात हैं। हे तात! संक्षेप में इन पितर गणों का वर्णन कर चुका, ये तीनों गुणों के विकार से समुत्पन्न, मूर्तिरहित, स्वयं प्रकाशमान, ज्योतिष्मान् एवं विख्यात हैं। उन पितरों के राजा यम नामक देव हैं, जिनके पाप तपस्या द्वारा नष्ट हो चुके हैं। अब आप लोग सावधानतापूर्वक अन्य प्रजापतियों के विषय में सुनिये। कर्दम, कश्यप, शेष, विक्रान्त, सुश्रवा, बहुपुत्र कुमार, विवस्वान्, शुचिश्रवा, प्रचेतस, अरिष्टनेमि, एवं बहुल नामक प्रजापतियों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे प्रजापति हो गये हैं। उनमें कुशोच्चय एवं बालखिल्य गण परम ऋषि हो गये हैं, जो सब के सब मन के समान वेगशाली, सर्वगामी, तथा सार्वभौम थे। ब्रह्मर्षियों द्वारा सम्माननीय, तपस्या एवं शास्त्राभ्यास में निरत रहनेवाले वैखानस मुनिगण यज्ञ के भस्म से

---

[1] १—पीछे उत्पन्न होनेवाले छः पुत्रों में अत्रि की क्रम संख्या तीसरी ही थी।

Funding by IKS-MoE

प्रादुर्भूत हुए। उस (ब्रह्मा) के कानों से अति रूपवान् दो अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई। नेत्र से उत्पन्न होनेवाले निष्पाप, जन्म से इन्द्रिय को स्ववश रखनेवाले तथा सात्त्विक प्रकृतिवाले ऋषिगण इस वृत्तान्त को जानते हैं। उसके कानों से अन्यान्य श्रेष्ठ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई, रोमछिद्रों से अन्यान्य ऋषियों की उत्पत्ति हुई, इसी प्रकार स्वेद एवं मल से भी कुछ प्रजापतियों की उत्पत्ति हुई। उसके स्वर से दारुण मास, निर्यास (?) पक्षों की सधियाँ, वत्सर दिन रात एवं पितरगणों की दारुण ज्योति का प्रादुर्भाव हुआ। रौद्र को लोहित कहा जाता है, लोहित को कनक नाम से भी स्मरण किया गया है, उसी को मैत्र भी जानना चाहिये, धूम पशु माने गये हैं। उसकी देह द्युति से रुद्र तथा आदित्यगणों का समुद्भव हुआ। अङ्गारों से दिव्य एवं मानुष ज्योतियों का उद्भव हुआ। इस प्रकार ब्रह्म से समुद्भूत भगवान् ब्रह्मा इस लोकसृष्टि के आदिमकर्त्ता एवं मूल पुरुष माने गये हैं। उनको सब मनोरथों का देनेवाला कहा जाता है। उस महायज्ञ के अवसर पर कन्या की बातचीत के सिलसिले में ऋषियों और ब्रह्मा से इस प्रकार वार्तालाप हुआ। मरीचि ऋषि को अगुआ बनाकर सभी ऋषियों एवं देवताओं ने एक साथ सुरश्रेष्ठ ब्रह्मा के पास जाकर इस तरह निवेदन किया, हे प्रभो! ये प्रजापतिगण सभी प्रजाओं की सृष्टि का कार्य सम्पन्न करेंगे, आपकी कृपा से ये सभी प्रजापति तथा परम तपस्वी हैं और सभी लोकों को धारण (पालन) करने में सक्षम तथा क्रियानिष्ठ हैं। तुम्हारे तेज की अभिवृद्धि करनेवाले द्वन्द्वात्मक भाव की वृद्धि हो गई। देवताओं में वेदों के जाननेवाले ये राजर्षिगण, वैदिक मंत्र परायण एवं प्रजापति के समस्त गुणों से समलंकृत हैं। इस पृथ्वी तल पर एक ब्रह्म ही अनन्त, सत्य एवं परम तप साध्य है। ये और हम सभी तुम्हारी ही सन्तानें हैं, इस जगत् में ब्रह्म ब्राह्मण एवं चराचर लोक सब कुछ तुमसे प्रादुर्भूत हुए हैं, हम सभी सन्तान की कामना करते हैं।' इस प्रकार उस महायज्ञ में महाभाग्यशाली देवगणों ने ऋषियों के साथ ब्रह्मा से प्रार्थना की। इन्हीं उपर्युक्त ऋषियों एवं देवताओं के वंश में स्थान एवं काल का निर्धारण करनेवाली सन्तानें उत्पन्न हुईं। उन लोगों ने फिर कहा, ये प्रजापतिगण इस अपने रूप में (बिना स्त्री के) प्रजाओं का विस्तार तो कर नहीं सकते, इनकी प्रजाएँ युगारम्भ से लेकर युगान्त तक स्थित रहनेवाली होंगी।' ऐसी बातें सुनकर लोकपितामह ब्रह्मा ने बिना कुछ विशेष विचार किये ही उत्तर दिया, निस्संदेह इन्हीं सब बातों का निश्चय करके मैंने पहले देवताओं की सृष्टि की है। ये महर्षिगण जो आप लोगों के वंश में उत्पन्न होनेवाले हैं, उनमें से सर्वप्रथम महात्मा भृगु के वंश का वर्णन विस्तारपूर्वक क्रमशः कर रहा हूँ, जो कि प्रथम प्रजापति हैं। उन महात्मा भृगु की दो सत्कुलोत्पन्न कल्याणी स्त्रियाँ थीं, जिनमें एक हिरण्यकशिपु की कन्या थी जिसका दिव्या नाम विख्यात है, दूसरी परमसुन्दरी प्रलोम की कन्या थी, जिसका पौलोमी नाम था। दिव्या ने भृगु के संयोग से वेदज्ञानियों में सर्वश्रेष्ठ, देवताओं एवं असुरों के आचार्य, कविपुत्र, सुप्रसिद्ध ग्रह शुक्र को उत्पन्न किया। वे शुक्र उशना एवं काव्य नाम से भी विख्यात हैं। शुक्र की पत्नी एवं सोम पान करनेवाले पितरों की यशस्विनी गो नामक कन्या ने चार पुत्रों को उत्पन्न किया। वे शुक्राचार्य ब्रह्मतेज से समलंकृत एवं ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ थे। उस पत्नी में शुक्र के चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो त्वष्टा और वरुत्री तथा शण्ड एवं

अमर्क के नाम से विख्यात हैं। शुक्र के प्रभाव से वे पुत्र ब्रह्म के समान तेजस्वी तथा आदित्य के समान थे। तिनमें से वरुत्री के रञ्जन, पृथुरश्मि और विद्वान् बृहद्गिरा नामक ब्रह्मपरायण पुत्र हुए, जो सभी देवताओं के पुरोहित हुए। एक बार यज्ञ एवं धर्म के विनाश के लिये इन शुक्रपुत्रों ने मनु से अपने तर्कपूर्ण मतों को निवेदित किया। धर्म को नष्ट होते देख इन्द्र ने मनु से कहा कि मैं इन्हीं लोगों के द्वारा तुमसे यज्ञ करवाऊँगा। इन्द्र की बातें सुन कर वे लोग वहाँ से पलायन कर गये। उन लोगों के छिप जाने पर उनकी धर्मपत्नी चेतना को पुरस्कारों से प्रलोभित कर इन्द्र ने अनुगमन किया। तदनन्तर इन्द्र के विनाशार्थ यत्न करते हुए वे यति (संन्यासी) वेश में उसी स्थान पर पुनः आये, वहाँ पर उन दुरात्माओं को आया देख इन्द्र ने संहार कर दिया और स्वयं देवदेव के यज्ञ की दक्षिण वेदी पर शयन किया। वहाँ पर शाला में रहनेवाले गीदड़ों और कुत्तों द्वारा भक्षण करते समय उन वरुत्रीपुत्रों के शिर गिरकर खजूर के रूप में परिणत हुए। इस प्रकार प्राचीन काल में वरुत्री के पुत्रों का इन्द्र द्वारा संहार किया गया। यजनी (ज़यन्ती) नामक पत्नी में शुक्र की पुत्री देवयानी की उत्पत्ति हुई। विरोचन की कन्या यशोधरा में त्वष्टा के तीन शिरवाले विश्वरूप एवं उनके अनुज महान् यशस्वी विश्वकर्मा की यमज (जुड़वा) उत्पत्ति हुई। भृगु के बारह पुत्र उत्पन्न हुए जो भृगुगणदेव के नाम से प्रसिद्ध हैं। भगवान् काव्य ने देवी में उन सभी आत्मजों को उत्पन्न किया। जिनके नाम भुवन, भावन, अन्य, अन्यायत, क्रतु, श्रवा, मूर्धा, व्यजय, व्यश्रुष, प्रसव, अज एवं अधिपति स्मरण किये गये हैं। ये बारह भृगु पुत्र बारह याज्ञिक देवगणों के नाम से विख्यात हैं। पुलोमा की पुत्री पौलोमी ने ब्रह्मनिष्ठ जितेन्द्रिय परम प्रभावशाली पुत्र को उत्पन्न किया। किसी कठोर कर्म के कारण पौलोमी का वह गर्भ आठवें मास में व्याधिग्रस्त होकर गिर पड़ा, अतः च्यवन (गिर जाने) के कारण उसका च्यवन नाम पड़ा और प्रचेतस से चेतन हुआ। प्राचेतस च्यवन के क्रोध से पुरुषादजने अध्वाको……(?) उन भृगु पुत्र च्यवन ने सुकन्या नामक अपनी धर्मपत्नी में सत्पुरुषों द्वारा परम सम्माननीय आत्मवान् और दधीच नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया। सरस्वती में दधीच के संयोग से सारस्वत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। नहुष की पुत्री महाभाग्यशालिनी रुची आत्मवान् की पत्नी थी। आत्मवान् के ऋषि उरु नामक महायशस्वी पुत्र जंघाओं को फाड़कर उत्पन्न हुआ। उस उर्व का पुत्र ऋचीक हुआ जो प्रज्वलित अग्नि के समान परम तेजस्वी था। ऋचीक मुनि की सत्यवती नामक स्त्री में जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए। भृगु कृत रुद्र और विष्णु के चरु में विपर्यय हो जाने के कारण वैष्णव अग्नि के रुद्र-अंश के भक्षण के कारण जमदग्नि ऋषि उत्पन्न हुए थे। जमदग्नि के संयोग से रेणुका ने इन्द्र के समान पराक्रमी, परम तेजस्वी ब्रह्मबल एवं क्षात्रबल से संयुक्त परशुराम को उत्पन्न किया। उर्व के पुत्र ऋचीक के एक सौ पुत्र थे, जिनमें जमदग्नि सब से बड़े थे। उन सौ पुत्रों के एक सहस्र पुत्र हुए। उन सभी भृगुवंशीय ऋषियों के वंशज परस्पर अन्यान्य ऋषियों के वंशजों से बाह्य विवाहादि कार्यों में योग्य माने गये हैं। वत्स, विश्व, आर्ष्टिषेण, पाण्ड, पथ्य, और शौनक—इन सात गोत्रों में भार्गवगण विभक्त माने जाते हैं ॥१६–६६॥

अत्र अग्नि के पुत्र, परम बुद्धिमान् अंगिरा के वंश का वृत्तान्त सुनिये, जिसके गोत्र में परम तेजस्वी

भारद्वाज, गौतम, एवं इषुमान् नामक मुख्य देवगण उत्पन्न हुए हैं। आङ्गिरस अथर्वा की मरीचि नन्दिनी सुरूपा, कर्दम पुत्री स्वराट् तथा मनुकन्या पथ्या नामक तीन स्त्रियाँ थीं, उनमें होनेवाली सन्ततियों का विवरण बतला रहा हूँ; अथर्वा के वंशोद्धारक उन उत्तराधिकारियों का, जो परम पूजनीय अंगिरा की परम तपस्या के फलस्वरूप उत्पन्न हुए थे, वर्णन कर रहा हूँ; सुरूपा में बृहस्पति का जन्म हुआ, स्वराट् ने गौतम को जन्म दिया। अवन्ध्य, वामदेव, उशिज उतथ्य और धिष्णु ये पथ्या में उत्पन्न हुए, और संवर्त तथा विचित्त उसके मानस पुत्र हुए। उतथ्य के पुत्र शरद्वान हुए। उशिज के पुत्र दीर्घतमा तथा वामदेव के पुत्र बृहदुत्थ हुए। धिष्णु के पुत्र सुधन्वा और सुधन्वा का पुत्र ऋषय हुआ। ऋषय के रथकार नामक देवगण तथा परम विख्यात ऋषिगण पुत्र रूप में हुए। बृहस्पति के पुत्र महान यशस्वी एवं परम विख्यात भारद्वाज हुए। आङ्गिरस के संवर्त नामक जो पुत्र थे उनकी संततियाँ देवगणों में परिगणित हैं, उन आङ्गिरस गोत्रीय देवताओं का विवरण सुनिये। बृहस्पति के छोटे भाई वे आंगिरस गोत्रीय देवगण माने जाते हैं। वे आंगिरस गोत्रीय देवगण सुरुपा के औरस पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। उनकी संख्या दस है तथा उनके नाम औरस, आयु, दनु, दक्ष, दर्भ, प्राण, हविष्मान, हविष्णु क्रतु और सत्य है। अयस्य, उतथ्य, वामदेव, भारद्वाज गोत्रीय शांकृतिक, गार्ग्य, काण्व, रथीतर, मुद्गल, विष्णुवद्ध, हरित वायव, भारद्वाज गोत्रीय भाक्ष, आर्षभ और किंमय—ये पन्द्रह अंगिरा के गोत्रीय हैं, जो अन्यान्य ऋषियों के गोत्रों से विवाहादि सम्बन्धों में अंगीकार किये गये हैं। अंगिरा के गोत्र में उत्पन्न होनेवालों की संख्या बहुत अधिक बतलाई गई है। उत्तम पुरुषों वाले मरीचि-पुत्रों के वंश का वर्णन अब मैं कर रहा हूं जिसके वंश में समस्त स्थावर जंगम जगत की उत्पत्ति हुई। सर्वप्रथम मरीचि ने जल की कामना की और सन्तति की इच्छा से उसी के द्वारा ध्यान मग्न हुए। 'सभी सद्गुणों से सम्पन्न सन्ततिवान् शुभरुचिवाले पुत्र की उत्पत्ति से लोक में प्रतिष्ठा बढ़ती है' इस प्रकार की भावना प्रभु मरीचि के मन में हुई। तदन्तर मरीचि के आवाहन करने पर सभी जल समूह उनके समीप उपस्थित हुए। भगवान मरीचि ने उस जल राशि में निवास किया। उसमें स्थित हो परम ऐश्चर्य-शाली मरीचि ने पुत्र की कामना कर जितेन्द्रिय एवं अनुपम तेजस्वी अरिष्टनेमि नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो प्रजापति हुआ। मरीचि का वह पुत्र सूर्य के समान तेजस्वी………………(?) उत्पन्न हुआ। जलराशि में स्थित होकर सज्जनों की कल्याणदायिनी वाणी का विशेष ध्यान करते हुए मरीचि सात सहस्र वर्ष तक स्थित रहे जिससे उनका वह पुत्र अनुपम हुआ। (उसी अरिष्टनेमि का दूसरा नाम कश्यप था) कश्यप सविता के जनक थे। अतः उनकी महत्ता ब्रह्म के समान थी। सभी मन्वन्तरों में वे ब्रह्म के अंश से अवतीर्ण होते हैं। दक्ष ने कन्या के लिये जब सभी प्रजाओं को अप्रसन्न और कुपित कर दिया तब उन्होंने (अरिष्टनेमि) कश्य (मद्य) का पान किया। कश्य मद्य को कहते हैं। हाश्चेकसा (?) भी कश्य कहा जाता है। वचन और मन को कश्य कहते हैं। ब्राह्मणों ने कश्य मद्य को कहा है और उसी कश्य (मद्य) के पीने के कारण कश्यप नाम पड़ा। कन्या के लिए दक्ष द्वारा तिरस्कृत होकर उन्होंने कुपित होकर कठोर वाक्यों का प्रयोग किया था अतः कश्यप नाम से विख्यात हुए। परमेष्ठी ब्रह्मा के अनुरोध पर एवं कश्यप की प्रार्थना पर दक्ष ने अपनी

कन्याएँ कश्यप को सौंप दीं, वे दक्ष कन्याएँ ब्रह्मवादिनी एवं लोकमाता थीं। इस परम पवित्र पुण्यदायी वारुण सृष्टि के वृत्तान्त को जो जानता है वह दीर्घायु सम्पन्न पुण्यवान्, पवित्रात्मा परमानन्द को प्राप्त करता है। इस वृत्तान्त को धारण करनेवाले तथा सुननेवाले सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।९७-११८॥

तदनन्तर उन ऋषियों ने रोमहर्षण सूतजी से पुनः पूछा, हे सूतजी ! छठें चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर यह वैवस्वत मन्वन्तर किस भाँति प्रवृत्त होता है ? इसे बताइये।११९-१२०।

सूत ने कहा :—इस वैवस्वत मन्वन्तर के उपस्थित होने पर 'प्रजाओं की सृष्टि करो'—स्वयंभू ब्रह्मा की इस आज्ञा पर दक्ष प्रजापति ने चर अचर सभी प्रकार के जीव समूहों की सृष्टि की। उस समय वे जरायुज, अण्डज, उद्भिज्ज और स्वेदज चारों प्रकार की प्रजाओं की सृष्टि के लिये प्रवृत्त हुए। और दस सहस्र वर्ष तक अति घोर तपस्या में निरत रह अणिमा आदि सिद्धियों तथा योगवल से सुसम्पन्न होकर उन्होंने अपने शरीर को मनुष्य, सर्प, राक्षस, देव, असुर, गन्धर्व प्रभृति दिव्य प्रजाओं तथा सम्पत्ति, सौन्दर्य एवं तेज में अपने ही समान परम ऐश्वर्यशाली, विभूतियों के रूप में विभक्त किया। इस प्रकार उस समय अति प्रमुदित होकर इन सबों के अतिरिक्त विविध प्रजाओं की सृष्टि की अभिलाषा में अन्यान्य चराचर जीव जन्तुओं को मानसिक संकल्पों द्वारा उत्पन्न कर ऋषियों, देवताओं, गन्धर्वों, मनुष्यों, सर्पों, राक्षसों, यक्षों, भूतों, पिशाचों, पक्षियों, पशुओं तथा मृगादिकों को भी उत्पन्न किया। किन्तु मानसिक संकल्प द्वारा सृष्टिकर्म करने पर जब प्रजाओं की यथेष्ट वृद्धि नहीं हुई तब परम बुद्धिमान भगवान महादेव के बुरा भला कहने पर सम्भोग कर्म द्वारा विविध प्रजाओं की सृष्टि का विचार किया और इसके लिए वीरण नामक प्रजापति की पुत्री असिक्नी को पत्नी के रूप में अंगीकार किया, वह असिक्नी अपनी घोर तपस्या के बल से समस्त लोक का पालन करनेवाली तथा समस्त स्थावर जंगमात्मक जगन्मण्डल को धारण करनेवाली थी। इस विषय में लोग प्राचेतस दक्ष के लिये इन दो श्लोकों (छन्दों) को कहा करते हैं, जिनका आरोप इस प्रकार है। परम श्रेष्ठ वीरण की पुत्री असिक्नी को उद्वाहित करते (व्याहते) समय दक्ष ने दस लक्ष गमनशील अभिमानी कूपों का निर्माण किया, जो नदियों और पर्वतों में लीन हुए, ऐश्वर्यशाली दक्ष ने उन सबों का अनुसरण किया। दक्ष को इस प्रकार परम ऐश्वर्य सम्पन्न देखकर ऋषियों ने कहा कि इसके द्वारा प्रजाओं की प्रतिष्ठा होगी। इस प्रकार प्रजापति दक्ष की प्रथम सृष्टि सन्तति रूप में तथा द्वितीय प्रजा रूप में परिणत हुई। इस प्रकार दस लक्ष वूपों का निर्माण कर यथासमग्र वीरण पुत्री असिक्नी को दक्ष ने वरण किया। अमित तेजस्वी प्राचेतस दक्ष ने उस वीरण पुत्री असिक्नी में एक सहस्र पुत्रों को उत्पन्न किया। प्रजाओं की वृद्धि की इच्छा रखनेवाले उन दक्ष पुत्रों को देखकर ब्रह्मा के पुत्र कलहप्रिय देवर्षि नारद ने उनके विनाशार्थ एवं अपने शाप के लिए उनसे दुष्ट परामर्श पूर्ण बातें की। विप्रवर्य्य नारदजी, जिस कारण कश्यप के पुत्र कहे जाते हैं, उसका मूल कारण उनकी यही करतूत है। उस परामर्श रूप निन्द्य कार्य के कारण दक्ष के शाप से भयभीत होकर ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मर्षि नारद कश्यप सुत के रूप में अवतीर्ण हुए। फिर दक्ष शाप के भय से कश्यप के मानसपुत्र रूप में उत्पन्न हुए। यह कश्यप के यहाँ मानसपुत्र रूप में अवतीर्ण होना

Funding by IKS-MoE

उनका द्वितीय जन्म था। ये नारदजी सर्वप्रथम परमेष्ठी ब्रह्मा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए थे। प्राचीन काल में दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नाम से विख्यात समस्त पुत्रों को निन्दा के लिये इन्होंने नष्ट किया था, इसमें सन्देह नहीं। अपने पुत्रों का विनाश देख नारद का नाश करने के लिए जब प्रभु दक्ष उद्यत हुए तो समस्त ब्रह्मर्षियों को आगे करके परमेष्ठी पितामह ने दक्ष से इनके लिए याचना की। उस समय दक्ष के साथ पितामह की यह शर्त तय हुई कि 'मेरे उद्देश से दी गई कन्या में नारद तुम्हारे पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे। तब दक्ष ने अपनी प्रिय कन्या परमेष्ठी को दी, जिसके गर्भ से पुनः भयभीत नारदजी शान्त रूप में उत्पन्न हुए। ऐसी बातें सुन उन ऋषियों को बड़ा कौतूहल हुआ उन्होंने तत्वार्थदर्शी, व्याख्याताओं में सर्वश्रेष्ठ सूत से पूछा ॥११९–१४३॥

ऋषियों ने कहा :—सूतजी ! महात्मा नारद ने किस लिये प्राचेतस दक्ष प्रजापति के उन पुत्रों एवं प्रजाओं का विनाश किया ?' ऋषियों की ऐसी जिज्ञासा भरी कल्याणपूर्ण बातें सुन सूत ने उनसे सर्वगुण सम्पन्न यह मधुर बातें कहीं। महाबलवान् दक्ष प्रजापति के हर्यश्व नामक, प्रजा सृष्टि की वृद्धि के इच्छुक पुत्रों को अपने पास आया देख नारद ने कहा—'दक्ष के मूर्ख पुत्रों ! तुम लोग भूगोल के तत्त्व को बिल्कुल नहीं जानते, इसके ऊपर क्या है ? नीचे क्या है ? इसका अन्त कहाँ होता है ? इन सब बातों को बिना जाने बूझे किस तरह प्रजाओं की सृष्टि करोगे ? तुम्हें यह तो मालूम नहीं है कि इस पृथ्वी का क्या परिमाण है और इसमें कितनी प्रजाओं की सृष्टि करनी चाहिये। बिना जाने यदि सृष्टि-कर्म करोगे तो या अल्पता के अथवा अधिकता के अपराधी होओगे। इसके अतिरिक्त बिना जाने बूझे और क्या कर ही सकते हो।' नारद की ऐसी बातें सुनकर वे दक्षपुत्र गण सभी दिशाओं की ओर चले गये और वहाँ वायुमण्डल को प्राप्त होकर एकदम शिथिल एवं पराभूत हो गये। वायुमण्डल में पहुँचकर वे बेचारे वायु के साथ घूमते हुए आज तक नहीं लौट सके। इस प्रकार नारद की कूटपूर्ण बातों में आकर वे महर्षिगण वायुमण्डल में भ्रमण करते हैं। अपने उन पुत्रो के नष्ट हो जाने पर प्राचेतस दक्ष ने पुनः वैरिणी में एक सहस्र पुत्र उत्पन्न किया। प्रजाओं की वृद्धि के इच्छुक शबलाश्व नाम से विख्यात इन पुत्रों से भी नारद ने पुनः अपनी वही पुरानी बातें सुनाईं। जिसे सुनकर उन परमतेजस्वी कुमारों ने एक दूसरे से सम्मति की कि महर्षि नारद का कहना ठीक है। अपने पूर्वज उन बड़े भाइयों की राह पर हम लोगों को बिना किसी सन्देह के चलना चाहिये। और इस पृथ्वीमण्डल का प्रमाण आदि समझ बूझकर तब हम लोग सुखपूर्वक प्रजाओं की सृष्टि करेंगे। 'ऐसा निश्चय कर वे लोग भी विभिन्न दिशाओं की ओर चले गये और आज तक वहाँ से समुद्र में गई हुई नदियों की भाँति लौट नहीं सके। तभी से यदि बड़े भाई को खोजने के लिए छोटा भाई प्रवृत्त होता है तो वह भी नष्ट हो जाता है, बुद्धिमानों को ऐसा नहीं करना चाहिये। शबलाश्व नामक अपने दूसरे पुत्र समूहों के नष्ट हो जाने पर परमऐश्वर्यशाली दक्ष प्रजापति ने नारद को शाप दिया कि 'तू नष्ट हो जा, अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो और गर्भवास का कष्ट अनुभव कर'। इस प्रकार उन शबलाश्व नामक महात्मा पुत्रों के नष्ट हो जाने पर प्राचीन काल में यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि दक्ष ने उसी वैरिणी के संयोग से साठ

परम प्रसिद्ध कन्याओं को उत्पन्न किया। और उन दक्ष पुत्रियों को प्रभु कश्यप, धर्म, चन्द्रमा तथा अन्यान्य महर्षियों ने अंगीकार किया। दक्षप्रजापति के इस सृष्टि विस्तार की सम्पूर्ण कथा को जो सत्यरूप में जानता है वह दीर्घायु सम्पन्न, यशस्वी, धनधान्यादि सम्पन्न एवं पुत्र पौत्रादि से संयुक्त रहता है ॥१४४-१५८॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते प्रजापतिवंश कीर्तनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

छाछठवाँ अध्याय

कश्यप के सन्तानों की सृष्टिकथा

ऋषियों ने कहा:—सूतजी! अब हम लोगों से वैवस्वत मन्वन्तर में होनेवाले देवताओं, दानवों एवं दैत्यों की उत्पत्ति का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥१॥

सूत ने कहा:—ऋषिवृन्द! सर्वप्रथम धर्म की प्रजाओं का सृष्टि-क्रम बतला रहा हूँ, सुनिये। अरुन्धती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, सकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और धर्मा—ये दस धर्म की पत्नियाँ थीं, जिन्हें प्राचेतस दक्ष ने उनके लिये दिया था। साध्या ने धर्म के संयोग से बारह पुत्रों को जन्म दिया, जो साध्यगणों के नाम से प्रख्यात हैं। वे महाभाग्यशाली साध्य नामक देवगण छन्दों से उत्पन्न होनेवाले एवं यज्ञ में भाग पानेवाले कहे जाते हैं, देवताओं के वास्तविक महत्त्व को जाननेवाले लोग उन्हें देवताओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं पूजनीय बतलाते हैं। ब्रह्मा ने सन्तति उत्पन्न करने की कामना से अपने मुखद्वारा जय नामक देवगणों की उत्पत्ति की, जो मन्वन्तर में सब के सब मंत्रमय शरीरवाले कहे गये हैं। उन जय नामक देवगणों के नाम इस प्रकार हैं। दर्श, पौर्णमास, वृहत्, रथन्तर, चिति, विचिति, आकूति, कूति, विज्ञाता, विज्ञात, मन और यज्ञ। ये ही उन जय देवगणों के नाम हैं। वे जय नामक देवगण ब्रह्म शाप के कारण पुनः स्वायम्भुव मन्वन्तर में जित नाम से उत्पन्न होते हैं। स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित नाम से तथा उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से वे पुनः आविर्भूत होते हैं। तामस मन्वन्तर में वे हरि तथा रैवत मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से प्रसिद्ध होते हैं। इसी प्रकार चाक्षुष मन्वन्तर में वे छन्दोज देवगण साध्य नाम से उत्पन्न होते हैं। महाभाग्यशाली धर्म के पुत्र वे बारह देवगण चाक्षुष मन्वन्तर के पूर्वकाल में उत्पन्न हुए। स्वारोचिष मन्वन्तर में उत्पन्न होनेवाले उन अतीत कालीन तुषित नामक महान् तेजस्वी देवगणों ने उस समय जब कि स्वारोचिष मन्वन्तर की अवधि थोड़ी शेष रह गई थी, आपस में यह परामर्श किया कि हम लोग परस्पर एक में सन्निहित होकर आगामी चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से जन्म ग्रहण करेंगे, जिससे हम लोगों का कल्याण होगा। आपस में ऐसा परामर्श निश्चित कर वे पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में स्वयम्भू के पुत्र धर्म के यहाँ बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। उस स्वारोचिष मन्वन्तर में नर और नारायण भी पुनः जन्म ग्रहण करते हैं उनमें विपश्चित नाम से इन्द्र तथा सत्य नाम से हरि की प्रसिद्धि होती है। उक्त मन्वन्तर में वे दोनों तुषित नामक देवगणों में सम्मिलित थे। उन तुषित नामक देवगणों का साध्य नाम से जन्म ग्रहण करने पर जो-जो नाम विख्यात हुआ,

Funding by IKS-MoE

उसका वर्णन कर रहा हूँ। मन, अनुमन्ता, प्राण, नर, यान, चित्ति, हय, नय, हंस, नारायण, प्रभव तथा विभु—ये बारह देवगण साध्य नाम से उत्पन्न हुए थे। पूर्वकालीन स्वायम्भुव मन्वन्तर में तथा पुनः स्वारोचिष मन्वन्तर में वे ही देवगण जब तुषित नाम से विख्यात होते हैं उस समय के उनके नाम बतला रहा हूँ, सुनिये। उनके नाम प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, रसन[1] घ्राण, स्पर्श, बुद्धि और मन हैं। पूर्व काल में उन तुषितों के नाम प्राण, अपान उदान, समान और व्यान ही था। वसु के धर्म के संयोग से वसुगण उत्पन्न हुए जो साध्यों के अनुज[2] रूप में स्मरण किये जाते हैं। धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसुगण के नाम से विख्यात हैं। धर के द्रविण और हुतहव्यवाह नामक पुत्र हुए। ध्रुव के पुत्र का नाम भव हुआ जो समस्त लोक के संहारक काल नाम से प्रसिद्ध हुए। सोम के पुत्र परमऐश्वर्यशाली वर्चा और बुध हुए, जिनमें बुध नव ग्रहों में परिगणित हुए। सोम के ये दोनों त्रैलोक्य विख्यात पुत्र रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इन दोनों के अतिरिक्त धारा, उर्मि और कलिल (?) नामक तीन अन्य पुत्र भी चन्द्रमा के थे। आपके पुत्र वैतण्ड्य, शम और शान्त थे। अग्नि के कुमार नामक पुत्र का जन्म सरपतों के समूह में हुआ, उनका दूसरा नाम स्कन्द हुआ। ये स्कन्द और सनत्कुमार अग्नि के चतुर्थांश तेज से उत्पन्न हुए थे। इनके शाख, विशाख और नैगमेय नामक कनिष्ठ भाई हुए। अनिल की स्त्री का नाम शिवा था, जिसके संयोग से मनोजव और अविज्ञात गति नामक दो पुत्र अनिल के हुए। प्रत्यूष के पुत्र का नाम देवलऋषि लोग जानते हैं। देवल के क्षमावान् और मनीषी नामक दो पुत्र हुए। बृहस्पति की भगिनी परमयोग सिद्ध, ब्रह्मचारिणी वरस्त्री थी जो समस्त जगत् में बिना किसी आसक्ति के विचरण करती थी. वह वरस्त्री आठवें वसु प्रभास की स्त्री थी, उसका पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो समस्त शिल्पियों का प्रजापति था। वह विश्वकर्मा समस्त शिल्पकर्मों का निर्माता तथा देवताओं का बढ़ई था। सभी प्रकार के आभूषणों का वह कर्त्ता तथा निर्देशक था। सभी देवताओं के विमानों को वह स्वयं बनाता था, शिल्पजीवि मानव समूह आज भी उसके शिल्पकर्म के द्वारा जीविका अर्जन करते हैं। धर्म की विश्वा नामक पत्नी के दस विख्यात पुत्र हुए जो विश्वेदेव के नाम से प्रसिद्ध हुए। उनके नाम क्रतु, दक्ष, श्रव, सत्य, काल, काम, धुनि, कुरुवान, प्रभवान् और रोचमान हैं। ये मंगल कार्य साधक धर्मपुत्र विश्वा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार मरुत्वती में मरुद्गण तथा भानु में भानुगण नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। मुहूर्ता ने मुहूर्त नामक पुत्रों को तथा जम्बा ने घोष नामक एक पुत्र को उत्पन्न किया। संकल्पा नामक धर्म की पत्नी में परमविद्वान् संकल्प नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। तीन पथों में समाश्रित नागवीथियाँ यामी नामक धर्मपत्नी में उत्पन्न हुईं। इनके अतिरिक्त पृथ्वी के अन्यान्य जीवगण अरुन्धती से उत्पन्न हुए। परमविद्वान धर्म की सृष्टि के इस सनातन

---

[1] आनन्दाश्रम की प्रति में 'चक्षुः श्रोत्रं तथा प्राणः' यह पाठ अशुद्ध प्रतीत होता है क्योंकि 'प्राणोऽपानस्तथोदानः' में 'प्राण' की गणना हो जाती है। अतएव 'चक्षुः श्रोत्रं रसो घ्राणः' यह पाठ शुद्ध है जो बंगला प्रति में मिलता है। आनन्दाश्रम के पाठ से देवताओं की संख्या भी ग्यारह ही होती है, जब कि बारह होनी चाहिये।

[2] आनन्दाश्रम की प्रति में 'मनुज' यह पाठ अति भ्रामक है।

क्रम को मैं भली भाँति कह चुका। अब इसके उपरान्त सभी प्रकार के मुहूर्तों, शुभव्रत की तिथियों, एवं उनके-उनके स्वामियों का नामोल्लेखपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। उसी के प्रसंग में दिन और रात के विभाग, सभी नक्षत्रों के विस्तार एवं उनकी गति, एवं दिन रात में आनेवाले मुहूर्त आदि का भी संक्षेप में वर्णन कर रहा हूँ। एक दिन और रात के भीतर छ सौ से अधिक कलायें मानी गई हैं। सूर्य की गति की विशेषता के आधार पर ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है, और उन्हीं ऋतुओं में सभी प्रकार के मुहूर्तों की स्थिति है। वेदों के तत्त्वों के जाननेवाले उन्हीं मुहूर्तों एवं पर्वों के आधार पर तिथियों एवं नक्षत्रों की कल्पना करते हैं एवं तिथि आदि के भेद के अनुसार विभिन्न-विभिन्न कालों में पितृदान आदि की व्यवस्था करते हैं, रौद्र, सार्व, मैत्र, पित्र्य, वासव, आप्य, वैश्वदेव, ब्राह्म, मध्याह्न प्राजापत्य, ऐन्द्र, इन्द्र निर्ऋति, वारुण, आर्यम्ण एवं भाग—ये दिवस काल पर आश्रित रहनेवाले मुहूर्त हैं। ये (दिवस कालीन मुहूर्त) सूर्य द्वारा निर्मित होते हैं। शंकु (कील) आदि गाड़कर उसकी छाया से इन सबों का प्रमाण देखा जा सकता है। अज, अहि, बुध्न, पूषा, यमदेवता, आग्नेय, प्राजापत्य, ब्राह्म, सौम्य, आदित्य, बार्हस्पत्य, वैष्णव, सावित्र, त्वाष्ट्र और वायव्य ये पन्द्रह क्रम से एक रात्रि में वर्तमान रहनेवाले मुहूर्त हैं। चन्द्रमा की गति से इनका उदय एवं इनके अंशों का ज्ञान होता है। ये मुहूर्त समय की विशेष अवस्था के मापक मात्र हैं, और ये देवता रूप में स्मरण किये गये हैं। सभी ग्रहों के तीन स्थान माने गये हैं, दक्षिण, उत्तर और मध्य—उन्हें क्रमानुसार इस प्रकार जानिये। मध्य मार्ग में जारद्गव नामक स्थान है, उत्तर में ऐरावत नामक स्थान है, इसी प्रकार दक्षिण में वैश्वानर नामक स्थान की सत्ता निश्चित की गई है। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीन नागवीथी के नाम से स्मरण किये गये हैं। पुनर्वसु, पुष्य और श्लेषा—ये ऐरावती वीथी माने गये हैं। ये तीन वीथियाँ हैं, जिनका उत्तर मार्ग कहा जाता है। मघा, पूर्वफाल्गुनी इनकी आर्यमी वीथी है, हस्त, चित्रा और स्वाती की गोवीथी कही गई है। विशाखा, ज्येष्ठा और अनुराधा की जारद्गवी वीथी है—इन तीन वीथियों का मध्यम मार्ग कहा गया है। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ की अजवीथी संज्ञा दी गई है, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिष् की गार्गी वीथि है। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती की वैश्वानरी वीथी कही गई है। इन तीन वीथियों का पण्डितों ने दक्षिण मार्ग बतलाया है। ये सत्ताईस जो दक्ष की कन्याएँ थीं उन्हें दक्ष ने चन्द्रमा को समर्पित किया। वे सभी नक्षत्र नामवाली एवं ज्योतिष् शास्त्र में सुप्रसिद्धि प्राप्त करने वाली हैं। इन दक्ष कन्याओं में अमित तेजस्वी सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं। इन नक्षत्र संज्ञक कन्याओं के अतिरिक्त जो परम भाग्यशालिनी चौदह कन्याएँ दक्ष की शेष बचीं उन्हें कश्यप ने अंगीकार किया, वे सब की सब लोक माता थीं। उनके नाम अदिति, दिति, दनु, काला, अरिष्टा सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रु और मुनि। इन्हें धर्मज्ञ कश्यप ने ग्रहण किया था, इनकी सन्ततियों का विवरण सुनिये। चाक्षुष मन्वन्तर में जो पुरोगामी वैकुण्ठ नामक देवगण थे वे चाक्षुष मन्वन्तर में साध्य नाम से विख्यात हुए। वैवस्वत मन्वन्तर

---

१. ऊपर दो वीथियों का परिचय दिया गया है। परन्तु लिखते तीन हैं, इससे मालूम होता है कि रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा—इन तीन नक्षत्रों की एक और वीथी है।

में वे देवगण अदिति द्वारा अति आराधित हुए जिससे एकत्र होकर उन्होंने आपस में यह परामर्श किया कि वैवस्वत मन्वन्तर में हम लोग योगाभ्यास बल से इस अदिति के गर्भ में अपने अर्ध तेजोबल से संयुक्त हो प्रविष्ट होकर पुत्र रूप में उत्पन्न होंगे, जिससे हम लोगों का कल्याण होगा। अदिति के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण हम लोग आदित्य नाम से प्रख्यात होंगे। इस प्रकार परस्पर परामर्श निश्चित कर वे देवगण पुनः चाक्षुष मन्वन्तर में मरीचि पुत्र कश्यप के संयोग से बारह आदित्य गणों के रूप में प्रादुर्भूत हुए। शतक्रतु इन्द्र और विष्णु—ये दो देवश्रेष्ठ इस वैवस्वत मन्वन्तर में नर नारायण के रूप में उत्पन्न हुए। इस प्रकार उन देवताओं का भी जन्म मरण कहा जाता है। जैसे इस लोक में सूर्य का उदय और अस्त होता है उसी प्रकार प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु एवं महात्मा शंकर का भी आर्विभाव एवं तिरोभाव होता है। शब्दादि प्रधानविषय समूहों में एवं अणिमा आदि अष्ट प्रकार की ऐश्वर्यमयी विभूतियों में समर्थ देवगण इसीलिए जन्म धारण करते हैं। विषयों में अनुराग का रखना ही सम्भूति (जन्म) का कारण माना गया है। स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मशाप के कारण जय नामक देवगण जित नाम से उत्पन्न हुए। वे ही स्वारोचिष् मन्वन्तर में तुषित और उत्तम मन्वन्तर में सत्य नाम से आविर्भूत हुए। तामस मन्वन्तर में हरि गणों के नाम से तथा चाक्षुष मन्वन्तर में वैकुण्ठ नाम से उनकी प्रसिद्धि हुई, चाक्षुष मन्वन्तर में उनकी ख्याति साध्य नाम से तथा इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में आदित्य नाम से हुई। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, पर्जन्य त्वष्टा, और सबसे छोटे विष्णु। इनमें विष्णु सबसे छोटे होते हुए भी सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं। ये बारह आदित्य-गण कश्यप के पुत्र कहे गये हैं। सती सुरभी ने अपनी परम तपस्या द्वारा महादेव को प्रसन्न कर कश्यप के संयोग से ग्यारह रुद्रों को उत्पन्न किया। उनके नाम अङ्गारक, सर्प, निर्ऋति, सदस्पति, अजैकपात् अहिर्बुध्न, ऊर्ध्वकेतु ज्वर, भुवन, ईश्वर, मृत्यु और कपाल—हैं, इन त्रिभुवन में परम ऐश्वर्यशाली एकादश रुद्रों को अपनी कठोर तपस्या द्वारा सुरभी ने उत्पन्न किया। इन सन्ततियों के अतिरिक्त दो कन्याओं को भी सुरभी ने उत्पन्न किया, जिनमें एक रुद्र के समान कान्तिमती रोहिणी थी और दूसरी परम यशस्विनी गान्धारी थी। रोहिणी में लोकविख्यात चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम सुरूपा, हंसकीला, भद्रा तथा कामदुधा थे। तिनमें सुरूपा और कामदुधा ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया। हंसकीला ने कुछ मनुष्यों और महिष आदि को उत्पन्न किया, भद्रा के गर्भ से महाभाग्यशाली सुविख्यात अश्वों के पुत्र गन्धर्व उत्पन्न हुए। जो मन के समान द्रुतगामी, आकाश में में भी चलने वाले उच्चैःश्रवा प्रभृति श्वेत शोण, पिशङ्ग, सरंग, हरित, अर्जुन एवं रुद्र वर्ण के थे। ये हय गन्धर्व योनि में उत्पन्न हुए और देवताओं के वाहन का कार्य सम्पन्न किया। तदनन्तर सरभी के गर्भ से श्रीमान्, चन्द्रमा की कान्ति के समान निर्मल, कण्ठ में नीलमणि के बने हुए शुभ पत्र की शोभा से समन्वित, दक्ष नाम का एक वृषभ उत्पन्न हुआ, जो सुन्दर माला से सुशोभित, बहुत बड़े डिल्लों वाला, परम कान्तिमान था। अमृत के आगार से समुत्पन्न वह वृषभ सुरभी की अनुमति से महादेव के वाहन पद पर प्रतिष्ठित हुआ। कश्यप के पुत्रों का वर्णन कर चुका, आदित्य और रुद्र गणों का परिचय दे चुका, ये साध्यगण, विश्वेदेव गण तथा वसु गण——सभी धर्म के पुत्र कहे गये हैं। अरिष्टनेमि की स्त्रियों की सोलह सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं।

विद्वान् बहुपुत्र को चार सन्ततियाँ हुईं जो विद्युत् नाम से स्मरण की जाती हैं। ब्रह्मर्षियों द्वारा सत्कार पानेवाली श्रेष्ठ ऋचाएँ प्रत्यंगिरसजात हैं। देवर्षि कृशाश्व के पुत्रगण देवप्रहरण के नाम से स्मरण किये गये हैं। वे प्रति एक सहस्र युग के व्यतीत होने पर पुनः उत्पन्न होते हैं। विप्रवृन्द ! ये तैंतीस गणों में विभक्त देवगण छन्दोजात माने गये हैं, इन देवताओं की भी उत्पत्ति एवं विनाश कहा जाता है। जिस प्रकार लोक में प्रतिदिन सूर्य का उदय एवं अस्त होता है उसी प्रकार ये देवगण भी प्रत्येक युगों में उत्पन्न होते हैं ॥२-८१॥

ऋषियों ने कहा :—साध्य, वसु, विश्व, रुद्र और आदित्य ये सब देवगण किस प्रभाव एवं कर्म के द्वारा सत्कुलीन तथा विख्यात हुए ? महान् प्रभावशाली भगवान् ब्रह्मा, विष्णु और भवदेव में परस्पर क्या अन्तर है ? इसे जानना चाहता हूँ कि इनमें कौन किस कारण वश विशेष माना जाता है ? इनमें जो जिससे आविर्भूत होता हो, जो जिसमें प्रतिष्ठित हो, इसे हम जानना चाहते हैं। इन तीनों में जो सर्वश्रेष्ठ हो, जो मध्यम हो, जो कनिष्ठ हो, हमें बताइये। इनमें जो सर्वप्रधान हो, जो सर्वश्रेष्ठ गुणी हो, कर्म एवं प्रभाव के कारण जो सबसे अधिक आभिजात्य एवं महान हो, इन सबका मुझे भेद बतलाइये क्योंकि इन सब बातों के आप ही यथार्थतः जानकार हैं ॥८२-८५॥

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द ! उन ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र में परस्पर जो अन्तर माना गया है, उसे मैं आप लोगों से बतला रहा हूँ, सुनिये। राजस गुणमयी, तामस गुणमयी एवं सात्त्विक गुणमयी ये तीन स्वयम्भू की मूर्तियाँ कही गई हैं, जो समय-समय पर आविर्भूत होती हैं। हे द्विजोत्तम वृन्द ! इनके पारस्परिक अन्तर नहीं बतलाये जा सकते। क्योंकि इनमें पारस्परिक इन तीनों गुणों का ह्रास एवं वृद्धि के कारण विग्रह और अनुग्रह—दो प्रकार के बन्धन रहते हैं। हे द्विजगण! वे बन्धन क्रमशः निवृत्ति और प्रवृत्ति के हैं। मैं अपनी शक्ति के अनुसार उन मूर्तियों की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। उन त्रिमूर्तियों में ब्रह्मा की मूर्ति रजोगुण सम्पन्न, काल (रुद्र) की मूर्ति तमोगुण सम्पन्न एवं पौरुषी (विराट पुरुष, विष्णु की) मूर्ति सत्त्व गुण सम्पन्न कही गई है, उनके कर्मों को सुनिये। उन त्रिमूर्तियों में एक पहिली जो मूर्ति है वह रजोगुण सम्पन्न होकर प्रजाओं को उत्पन्न करती है, दूसरी एक सत्त्व गुण सम्पन्न जो पौरुषी (विष्णु की) मूर्ति है वह समुद्र में स्थित रहकर सभी प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह बुद्धि से पालन करती है, एक तीसरी जो तमोगुण सम्पन्न मूर्ति है वह समय उपस्थित होने पर सभी प्रजाओं को विनष्ट करती है। जिस समय रजोगुण के उद्रेक से संयुक्त होकर ब्रह्मा की मूर्ति आविर्भूत होती है उस समय सत्त्वगुणमयी पुरुष की मूर्ति तिरोभूत (निवृत्त) हो जाती है। इसी प्रकार जिस समय तमोगुण के आधिक्य से संयुक्त होकर काल की मूर्ति प्रकट होती है उस समय रजोगुण सम्पन्न ब्रह्मा की मूर्ति निवर्तित हो जाती है। एवं सत्त्वगुण के उद्रेक से जिस समय भगवान् की पुरुषमूर्ति प्रकट होती है उस समय उनकी काल संज्ञक मूर्ति आविर्भूत नहीं होती। इस प्रकार इस त्रैलोक्य में वर्तमान उन भगवान् के नाम, कर्म एवं रूप क्रमशः सृष्टि के अनुग्रह (पालन) एवं निग्रह (संहार) के बन्धनों के कारण निवर्तित होते रहते हैं। जिस समय ब्रह्मा की सता रहती है उस समय

पुरुष मूर्ति या रुद्र मूर्ति का अस्तित्व नहीं रहता, इसी प्रकार जिस समय पुरुष की सत्ता रहती है उस समय ब्रह्ममूर्ति तथा रुद्रमूर्ति की सत्ता नहीं रहती तथा जिस समय रुद्रमूर्ति विद्यमान रहती है उस समय ब्रह्ममूर्ति तथा पुरुष मूर्ति का अस्तित्व नहीं रहता। निर्मल स्फटिक मणि में जिस प्रकार आश्रय भेद एवं निर्मलता के कारण विविध प्रकार के ढंग अनुरंजित होकर रक्त पीतादि विविध रूपों में लक्षित होते हैं, उसी प्रकार भगवान् स्वयम्भू सत्त्व, रजस् एवं तमोगुण के कारण विष्णु, ब्रह्मा एवं रुद्र रूप में प्रकट होते हैं। उनके एक रूप एवं भिन्न-भिन्न रूप होने के सम्बन्ध में यह निदर्शन (उदाहरण) मैं बतला रहा हूँ। जिस प्रकार एक ही मेघ रूप एवं वर्ण की विभिन्नता के कारण पृथक पृथक दिखाई पड़ता है उसी प्रकार उन सत्त्व रजस् एवं तमोगुणों के कारण वह स्वयम्भू एक होकर भी पृथक पृथक रूपों में दिखाई पड़ता है। वह एक ही स्वयम्भू ब्रह्मा, पुरुष व काल रूप इन तीन आकारों में व्याप्त हैं। उस एक स्वयम्भू की ही ये तीन मूर्तियाँ हैं, जिनमें एक ब्राह्मी, दूसरी पौरुषी और तीसरी अन्तकारी–(काल की) मूर्ति है। इन तीनों मूर्तियों में जो रजोगुण सम्पन्न है वह प्रजाओं को उत्पन्न करनेवाली है, जो तमोगुण सम्पन्न है वह काल मूर्ति के नाम से विख्यात है, उसका कार्य प्रजाओं का विनाश करना है। तीसरी सत्त्वगुणमयी जो पौरुषी मूर्ति है वह प्रजाओं का पालन करनेवाली मानी गई है। उस रजोगुणमयी मूर्ति से ब्रह्मा के अंश द्वारा मरीचि और कश्यप की उत्पत्ति हुई। सृष्टि का विनाश करनेवाली जो तमोगुणमयी मूर्ति है उससे भव (रुद्र) की उत्पत्ति हुई, सत्त्वगुणमयी जो पौरुषी मूर्ति है उससे विष्णु का आविर्भाव कहा जाता है। इस प्रकार त्रैलोक्य में स्वयम्भू की ये तीन मूर्तियाँ स्मरण की गई हैं। ये मूर्तियाँ समय के अनुरूप प्रजावर्ग के विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करनेवाली हैं, सर्वप्रथम ब्रह्मबल का आश्रय ले समस्त प्रजाओं की सृष्टिकर विष्णु के अंश का आश्रय ग्रहणकर विधिवत् पालनकर, रुद्र के अंश से पुनः उनका विनाश करती हैं। कालस्वरूप एकमात्र स्वयम्भू ही अपनी इन तीनों मूर्तियों के द्वारा तीनों कार्यों को सम्पन्न करता है, अर्थात् प्रजाओं की सृष्टि करता है, उनका पालन करता है एवं विनाश भी करता है। स्वयम्भू की उन तीनों मूर्तियों का वर्णन कर चुका जो ब्राह्मी, वैष्णवी तथा रौद्री के नाम से विख्यात हैं। सांख्य एवं योग के अभ्यास करनेवाले, स्वयम्भू के पृथक्त्व एवं एकत्व के देखनेवाले, उनकी प्रतिष्ठा एवं मर्यादा के प्रभाव को जाननेवाले तत्वदर्शी ऋषियों ने स्वयम्भू की केवल एक मूर्ति वेदों में तथा प्राचीन धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में निरूपित की है। स्वयम्भू के इस एकत्व एवं पृथक्त्व को लेकर प्रजाओं में भिन्न-भिन्न मत हैं, वे भिन्न-भिन्न मत रखनेवाले "यह सर्वश्रेष्ठ है, यह नहीं" ऐसा निःसार मत रखते हैं। इनमें से कोई तो प्रजापति ब्रह्मा को आदि कारण मानते हैं, कोई शिव को श्रेष्ठ मानते हैं, कोई विष्णु को मानते हैं। वे सभी अवैज्ञानिक एवं राग द्वेषादि दुर्गुणों में अनुरक्त होने के कारण ऐसा मानते हैं। जगत् के नाना कार्यों में देश काल एवं कर्म कारण स्वरूप वे स्वयम्भू ही विविध देवताओं के रूप में स्मरण किये जाते हैं। इसलिए उन तीनों महान् विभूतियों में किसी एक की जो निन्दा करता है वह सबों की निन्दा करता है, और किसी एक की जो प्रशंसा करता है वह सब की प्रशंसा करता है। (एक की उनमें जो निन्दा करता है वह सब की निन्दा करता है,) इस तरह की भावना रखकर जो उन

तीनों मूर्तियों को एक रूप में मानता है वही ब्रह्मवादी कहा गया है। इसलिए विद्वान् पुरुष को चाहिये कि वह देवताओं में द्वेष की भावना न रखे। उस परमऐश्वर्य समन्वित ईश्वर को कोई अच्छी तरह जानने में समर्थ नहीं हो सकता, वस्तुतः वह एकात्मा होकर तीन रूपों में विभक्त होकर प्रजाओं को सम्मोहित करता है। इन तीनों स्वरूपों के ऊँच-नीच के भाव की जिज्ञासा करते हुए अल्पज्ञ जन यथाशक्ति परीक्षा करते हैं और भिन्न-भिन्न ज्ञान एवं दर्शन के कारण "यह प्रधान है, यह अप्रधान है" ऐसी बातें करते हैं। किन्तु ये शक्तियाँ मनुष्य, राक्षस पिशाचादि सभी में एक-सी प्रविष्ट होती हैं, और इस प्रकार स्वयंभू एक रूप और भिन्न-भिन्न रूपों में प्रतिष्ठित होता है। सत्त्व, रजस् एवं तमोगुणों में से एक-एक गुणवाली अपनी तीनों मूर्तियों द्वारा प्रजाओं को सम्मोहित करता है। उन तीनों में से जो एक की पूजा करता है वह तीनों की पूजा करता है। इस कारण से इन तीनों देवताओं में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। और न इनमें एकत्व एवं पृथक्त्व आदि का भी तारतम्य है। इस प्रकार उनके एक होने का अथवा अनेक होने का भेद कौन जान सकता है? यतः तीनों कालों में गुण भेद के वश होकर वे सभी प्रजाओं की सृष्टिकर उनका पालन करते हैं, और स्वयमेव संहार भी करते हैं अतः एक ही कहे जाते हैं। अर्थात् वे स्वयम्भू ही एक बार रजोगुणमय हो प्रजाओं की सृष्टि करते हैं, सत्त्वगुण सम्पन्न हो पालन करते हैं और तमोगुण सम्पन्न हो संहार करते हैं, कोई दूसरा यह सब नहीं करता अतः एक कहे जाते हैं। द्विजगण! उस एक आदि देव को ही रुद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, लोकपालगण, ऋषिवृन्द, दानव, नारायण आदि अनेक नामों से पुकारते हैं। उसकी प्रजापति (ब्रह्मा) की और विष्णु की मूर्ति प्रत्येक मन्वन्तर एवं प्रत्येक कल्प में पुनः पुनः आवर्तित होती है। वह क्षेत्रज्ञ स्वयम्भू अनुग्रह वश अपने तेज, यश बुद्धि शास्त्रज्ञान, एवं पराक्रमादि गुणों से सम्पन्न होकर अपने तुल्य विविध प्रजाओं के रूप में उत्पन्न होता है, ऐसे जो लोग उत्पन्न होते हैं उन्हें सुनिये। रजोगुणमयी राजसी मूर्ति में ब्रह्मा के अंश से मरीचि और कश्यप की उत्पत्ति हुई। तमोगुणमयी तामसी मूर्ति में उसी ब्रह्मा के अंश से कालात्मा रुद्र की उत्पत्ति कही जाती है। सत्त्वगुणमयी सात्त्विकी मूर्ति में पुरुष के अंश से यज्ञ में विष्णु की उत्पत्ति हुई। तीनों कालों में उस ब्रह्मा के अंश से उत्पन्न होनेवाली ये तीन मूर्तियाँ हैं। काल होकर पुनः वे ही रुद्र स्वरूप में प्रजाओं का संहार करते हैं, कल्पान्त के अवसर पर वह सप्तरश्मि दिवाकर की मूर्ति धारणकर संवर्तक नामक आदित्य हो तीनों लोकों को भस्म करता है। विष्णु समय-समय पर विविध नाम एवं स्वरूप धारणकर उन-उन कारणों को उत्पन्न कर प्रजावर्ग के प्रति अनुग्रह का भाव रखते हैं। सत्त्वगुणमयी जो ब्रह्मा की पौरुषी मूर्ति कही गई है, उसके अंश से इस स्वायम्भुव मन्वन्तर में वे विभु सर्वप्रथम् आकूति के गर्भ द्वारा मानसिक संकल्प से उत्पन्न हुए। तदनन्तर पुनः वे अजित देव स्वारोचिष मन्वन्तर में तुषित देवगणों के साथ तुषिता के गर्भ से उत्पन्न हुए। औत्तम मन्वन्तर में वे तुषित नाम से जाने गये हैं। वशवर्ती देवताओं के साथ उत्पन्न होकर वे हरि वशवर्ती रूप में प्रसिद्ध होते हैं। पुनः वे सत्या के गर्भ से सत्य नामक देवगणों के साथ सत्य नाम से उत्पन्न होते हैं, तामस मन्वन्तर के आने पर वे हरि पुनः हर्य्या के गर्भ से हरि नामक देवगणों के साथ हरि रूप में ही आविर्भूत होते हैं। चारिष्णव मन्वन्तर

Funding by IKS-MoE

के आने पर वे अजन्मा हरिदेव पुनः विकुण्ठा के गर्भ आभूतरजस् नामक देवगणों के साथ वैकुण्ठ नाम से उत्पन्न होते हैं । चाक्षुष मन्वन्तर के आने पर वे धर्म रूप नारायण देव साध्य देवगणों के साथ साध्यरूप में उत्पन्न होते हैं वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर वे साध्य नारायण भगवान् मरीचिपुत्र कश्यप के संयोग से अदिति के गर्भ द्वारा (वामन रूप में) उत्पन्न होते हैं और अपने केवल तीन पगों द्वारा उन्होंने समस्त लोकों को जीतकर समस्त देवताओं के साथ इन्द्र को अर्पित किया । व्यतीत हुए सात मन्वन्तरों में उस स्वयम्भू की वे सात मूर्तियाँ आविर्भूत हुईं, जिनके द्वारा प्रजावर्ग की रक्षा हुई । यतः उत्पन्न होकर वामन अपने शरीर द्वारा इस समस्त जगत् में विष्ट (प्रविष्ट) हो गये थे अत प्रवेश अर्थवाले विश धातु के अर्थ के अनुरूप वे विष्णु नाम से स्मरण किये जाते हैं । स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, महात्मा वामन, एवं उनके एकत्व, पृथक्त्व, और विशिष्टत्व का वर्णन इस प्रकार कर चुका । इस पृथ्वीलोक में जिन-जिन देवता आदि के अंशों से जो-जो देवता उत्पन्न होते हैं वे अनुग्रह वश तेज, बुद्धि, शास्त्रज्ञान एवं बल में समान होकर उत्पन्न होते हैं । इस जगत् में जो-जो ऐश्वर्यशाली, श्रीमान् अथवा प्रभावशाली जीव या पदार्थ दिखाई पड़ते हैं उन सब को भगवान् विष्णु के तेज एवं अंश से प्रादुर्भूत हुआ समझो । वही अपने अंश रूप में इस प्रकार उत्पन्न होता है । कुछ मनुष्य ऐसी इच्छा करते हैं । कुछ अन्य प्रकार के लोग हैं जो कहते हैं कि अन्य-अन्य अंशों से वह उत्पन्न होता है । उन उत्पन्न होनेवालों को देखकर इस प्रकार लोग मीमांसा करते हैं यतः मन और चित्त में कोई भेद नहीं है अतः वह सब उत्पत्तिकार्य उसी के अनुग्रह से सम्पन्न होता है—ऐसा जो लोग समझते हैं वे क्षेत्रज्ञ होते हैं । एक ही ईश्वर अपनी महामहिमामयी प्रभु शक्ति से अनेक रूपों में हो जाता है और अनेक रूपों में होकर भी पुनः वह एक हो जाता है । इसलिए उसी आदि देव स्वयम्भू के तेजोभेद से सभी मन्वन्तरों में अच्छे मनवाली स्थावर जंगम सभी प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, और सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न होकर महाप्रलय पर्यन्त अपनी सत्ता रखती हैं । प्रत्येक बार कल्पान्त के आने पर रुद्र प्रजाओं का संहार करते हैं । ऐश्वर्यशाली क्षेत्रज्ञगण योगमाया से अन्यान्य सर्वसामान्य जनों को मोहित करते हुए उत्पन्न होते हैं और अपने ऐश्वर्य के साथ विचरण करते हैं, उनके सामने ऐश्वर्यविहीन प्राणी मोहित होते हैं । इस कारण उन ऐश्वर्यशालियों के दोषयुक्त व्यवहार में युक्त-अयुक्त का विचार नहीं रखा जाता । भूतों (?) के अपवाद करनेवाले दुष्ट, भूतों को अपने अनुकूल बनानेवाले मध्यस्थ, भूतों का विरोध करनेवाले शक्त (समर्थ) ये तीन प्रवादपटु जनों की श्रेणियाँ हैं (?) विना परीक्षा किये ही ग्रहण करता है, उलटा अर्थ अंगीकार करता है, पहिले सुने हुए अशुद्ध अर्थ पर ही विश्वास रखकर दृढ़ निश्चय कर लेता है, अथवा लौकिक प्रवाद पर विश्वास रखता है—इन चार कारणों से यथार्थ तत्त्व को प्राप्त नहीं करता । पहिले किसी दूसरे अर्थ में न्यस्त था, कालान्तर में उसकी प्रसिद्धि किसी अन्य अर्थ में हो गई, उस नवीन अर्थ के रहने पर भी द्वेष बुद्धि से उसे ग्रहण नहीं करता (?) । जो दसों प्रकार के द्रव्यों में तद्रूप विद्यमान रहता है, और उन-उन द्रव्यों में आश्रित गुण समूहों में गुणभूत है, महदादि कार्य-कलापों का कर्त्ता है, जो सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोपरि है वही ईश्वर है, श्रुतियों के तत्त्वों को जाननेवाले इन उपर्युक्त चार कारणों द्वारा उसकी ईश्वरता का कीर्तन करते हैं ।

असमर्थ एवं रुष्ट मनुष्य देवताओं को यथार्थतः विभागों समेत जानते हैं, योगेश्वर के प्रति लोग इन दो श्लोकों को कहते हैं। जिनका आशय इस प्रकार है। वह योगेश्वर (भगवान्) अपने योगबल द्वारा सूर्य तेज द्वारा गुणों की भाँति अपने एवं अन्यान्य के सहस्रों प्रतिरूपों (प्रतिमूर्तियों) का निर्माणकर उनके साथ व्यवहार करता है एव उग्र तपस्या करते हुए सभी भोगों को प्राप्त होता है और पुनः उन सब का संहार (समापन) करता है ॥ ८२–१५२ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गुणनैरन्तर्ये कश्यपीय प्रजासर्गो नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

सड़सठवाँ अध्याय

कश्यप की प्रजाओं की सृष्टि

ऋषियों ने कहा—नैमिषारण्य निवासी सभी तपस्वी ऋषियों ने सूत की ये बातें सुनकर क्रमशः इन निम्नलिखित श्रेष्ठ बातों के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। 'हे रोमहर्षण ! सातों मन्वन्तरों में इन्द्र, विष्णु प्रभृति देवगण तथा महातेजस्वी आदित्य गण किस प्रकार उत्पन्न हुए, इसे विस्तारपूर्वक हमें बतलाइये। ब्रह्मवादी ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर बोलनेवालों में श्रेष्ठ, सूत ने उस विषय को सविनय कहा जिसे महर्षियों ने पूछा था ॥३॥

सूत ने कहा—सभी मन्वन्तरों में प्रजा की सृष्टि करने की इच्छा से ब्रह्मा के मुख से जिन देवताओं की सृष्टि हुई वे सब मंत्रमय शरीर कहे जाते हैं। (१) दर्श (२) पौर्णमास (३) बृहत (४) रथन्तर, इनमें सर्वप्रथम (५) आकूत की गणना की जाती है, तदनन्तर (६) आकूति की। (७) वित्ति (८) सुवित्ति आकूति (ऊपर नाम आ चुका है) (९) कृति, (१०) अधीष्ट (११) अधीति और (१२) विज्ञाति ये बारह मनु हैं। ये बारह ब्रह्मा के पुत्र जाने गये हैं, जो वर्षों के समूह सूचक हैं। उन बारह पुत्रों को देखकर ब्रह्मा ने कहा। हे जयगण ! तुम लोग अन्यान्य देवताओं को उत्पन्न करो। स्त्री परिग्रह, अग्निहोत्र एवं यज्ञाराधन आदिकार्यों को सम्पन्न करो, उनसे ऐसी बातें कर ब्रह्मा वहीं पर अन्तर्हित हो गये। किन्तु उन सबों ने परमेष्ठी की इस आज्ञा का अभिनन्दन नहीं किया और सांसारिक कर्मों में अनेक दोष देखकर मनसा, वाचा, कर्मणा सिद्ध होनेवाले कर्मजाल को छोड़कर यम नियमादि से अपना नाता जोड़ा। सभी सांसारिक कर्मों के फलों को अति विनश्वर एवं अस्थायी देख वे सन्तानों की निन्दा करते हुए ममता तथा आलस्य से रहित हो गये और मुक्ति की अभिलाषा से विरक्त होकर धर्म, अर्थ काम में दोष देखकर इन सब का परित्याग किया। इस प्रकार ब्रह्मज्ञान का आश्रय ले वे अपने वास्तविक तेजोबल का संचय कर मुक्त के लिए प्रयत्नशील हुए। उन सबों के ऐसे अभिप्राय को जानकर ब्रह्मा को क्रोध उत्पन्न हुआ और तब उन निरुत्साही देवताओं से उन्होंने कहा—'प्रजाओं की सृष्टि के लिए ही मैंने तुम लोगों को उत्पन्न किया था, किसी अन्य प्रयोजन से

Funding by IKS-MoE

नहीं और उस समय मैंने यह आज्ञा भी दी थी कि तुम लोग जाकर सन्तति उत्पन्न करो और यज्ञाराधन करो। किन्तु हमारी बातों पर कोई ध्यान तुम लोगों ने नहीं दिया। यतः मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर तुम लोग वैराग्य पथ पर अग्रसर हो रहे हो और अपने जन्म की निन्दा करते हुए सन्ततियों का अभिनन्दन नहीं कर रहे हो। प्रत्युत अमरत्व की आकांक्षा से सांसारिक कर्मों को एकदम छोड़ रहे हो, अतः मैं तुम लोगों का अनादर करते हुए यह शाप देता हूँ कि तुम सब सात बार उत्पन्न होगे।' ब्रह्मा के इस प्रकार शाप दे देने पर वे जय नामक देवगण उन्हें प्रसन्न करने की इच्छा से प्रार्थना करते हुए बोले, हे देवाधिराज! विभो! हम सबों के अपराधों को क्षमा करें. वस्तुतः अज्ञान वश हमने ऐसा किया है।' देवताओं के अति विनय एवं प्रणाम-पूर्वक निवेदन करने पर ब्रह्मा ने पुनः कहा:—इस लोक में बिना मेरी आज्ञा के कौन स्वतन्त्रता पूर्वक व्यवहार कर सकता है, इस समस्त चराचर जगत् में मैं परिव्याप्त हूं, मेरी बिना इच्छा के कौन ऐसा प्राणी है जो शुभ अथवा अशुभ फलों को प्राप्त हो। इस जगत् में जो कुछ सत् अथवा असत् पदार्थ पाये जाये हैं, उन सब में मैं आत्मा एवं बुद्धि द्वारा व्याप्त हूँ, इस लोक में मुझको भला कौन छल सकता है? इस जगत् के जीव समूह जो कुछ निश्चित करते हैं, तथा जो कुछ विचारते हैं, वह सब हमें विदित रहता है। यह समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् मेरे द्वारा बनाये गये आशामय तत्त्व में स्थित है, उसे तोड़ देने का साहस किस प्रकार हो सकता है। मैंने सृष्टि विस्तार के लिए ही यह सब कार्य प्रारम्भ किया था, किसी अन्य अभिप्राय से नहीं, अतः इस जगत में कार्यों को न करके हमारी इच्छा के प्रतिकूल आचरण कौन कर सकता है? प्रजापति ब्रह्मा ने उन शाप रूप दण्ड ग्रहण करनेवाले नष्टचेता जय नामक देवगणों से इस प्रकार की बातें कर पुनः उनसे कहा, देवगण! यतः पहिले मेरे साथ प्रपंचमय व्यवहार करके इस जगत् के कार्य समूह से तुम लोगों ने संन्यास ले लिया था और उसी भावना से, जो अपार प्रयत्न किया था वह नष्ट भी हो गया अतः इसका परिणाम सुखदायी होगा, तुम लोगों के वे जन्म मंगलकारी होंगे। हे देवश्रेष्ठ गण! तुम लोगों की वह उत्पत्ति स्वाधीन होगी, और स्वायम्भुव से लेकर वैवस्वत तक छः मन्वन्तरों में तुम सभी अविद्या एवं मोह से आवृत होकर जन्म लाभ करोगे। उन जय नामक देवगणों से इस प्रकार की बातें कर ब्रह्मा ने एक पुराना श्लोक कहा, जिसका आशय इस प्रकार है। त्रयी (तीनों वेद) विद्या, ब्रह्मचर्य, सन्तानोत्पत्ति, श्राद्ध, यज्ञ तथा दान—इन समस्त सत्कर्मों के करनेवाले रजोगुण विहीन होकर (सत्त्वगुण युक्त होकर) दूसरों द्वारा प्रशंसित जीवन बिताते हुए निवास करते थे।' ब्रह्मा ने इस आशय के श्लोक का उच्चारण कर उन जय नामक देवगणों से पुनः कहा—देववृन्द! उस अन्तिम वैवस्वत मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर तुम लोग हमारे समीप यहाँ पुनः आवोगे! और तभी हमारे साथ तुम्हें शाश्वती सिद्धि प्राप्त होगी।' देवताओं से ऐसी बातें कर ब्रह्मा वहीं पर अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर ईश्वर (ब्रह्मा) के अन्तर्हित होने पर देवगण निर्भर हो गये और अणिमा आदि से संयुक्त होकर योगबल का आश्रय ले योगाभ्यास में दत्तचित्त हुए। जिससे उन सबों के शरीर समुद्र के समान विशाल बारह सरोवरों के रूप में परिणत हो गये जो जय नाम से विख्यात हुए। तदनन्तर स्वायम्भुव नामक उस मन्वन्तर में वे देवगण अजिता के गर्भ से रुचि के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए, जो अजित

गण के नाम से विख्यात हुए। विधि मुनय (?) क्षेत्र, नन्द, अव्यय—प्राण, अपान, सुधामा, क्रतु, शक्ति, ध्रुव, और स्थिति ये बारह अजित देवगण ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में स्मरण किये गये हैं। ये देवगण उस स्वायम्भुव मन्वन्तर में यज्ञ में अन्यान्य देवताओं के साथ यज्ञ भाग के अधिकारी माने गये। तदनन्तर स्वारोचिष मन्वन्तर में पुनः वे तुषिता के गर्भ से स्वारोचिष मनु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए, उस समय वे तुषित और प्राण—इन दो नामों से विख्यात हुए, यज्ञ में इन्हें भाग पाने का अधिकार दिया गया। पुनः औत्तम मन्वन्तर में वे शुभदायी देवगण सत्या के गर्भ से उत्तम मनु के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए और उक्त मन्वन्तर में उनकी सत्य नाम से ख्याति हुई, तृतीय मन्वन्तर के द्वापर युग में वे देवगण यज्ञ भाग के अधिकारी हुए। वे सत्य नामक देवगण पुनः तामस नामक मन्वन्तर में तामस की हर्या नामक पत्नी में हरि नाम से उत्पन्न हुए और यज्ञ भाग के भोक्ता बने। तदनन्तर चारिष्णव नामक मन्वन्तर में वे हरि नामक देवगण चरिष्णु मनु की निकुण्ठा नामक पत्नी में उत्पन्न हुए, इस पाँचवें मन्वन्तर में वे देवगण वैकुण्ठ नाम से विख्यात हुए और यज्ञों में भाग के अधिकारी हुए। तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर में आकर वे वैकुण्ठ नामक देवगण साध्या के गर्भ से धर्म के बारह पुत्रों के रूप में उत्पन्न हुए। तदनन्तर चाक्षुष मन्वन्तर की समाप्ति होने पर जब वैवस्वत मनु की कार्यावधि प्रारम्भ हुई तो वे साध्य देवगण पहले त्रेता युग के प्रारम्भिक काल में अंश भाग से अदिति में मरीचि पुत्र कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए। और इस प्रकार इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में बारह आदित्यों के नाम से इनकी प्रसिद्धि हुई। स्वायम्भुव मन्वन्तर में जय नाम से विख्यात जो आदि देवगण थे वे ही चाक्षुष मन्वन्तर में शापवश साध्य नाम से विख्यात हुए और वे ही वैवस्वत मन्वन्तर में शाप वश आदित्य नाम से भी विख्यात हुए। ब्रह्मा के शाप से होनेवाली देवताओं की इन सात उत्पत्तियों का वृत्तान्त श्रद्धापूर्वक पढ़ता है वह पाप से लिप्त नहीं होता। जय नामक देवगणों की इन सात उत्पत्तियों को मैं कह चुका अब इसके बाद क्या सुनना चाहते हो? ॥१-४७॥

ऋषियों ने कहा :—सूतजी! अब हम लोग दैत्य, दानव, गन्धर्व, उरग (सर्प) राक्षस, सर्प, भूत, पिशाच, पशु, पक्षी एवं लता वृक्षादि की उत्पत्ति तथा विनाश का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं, विस्तार पूर्वक बतलाइये? ॥४८॥

ऋषियों के ऐसा पूछने पर उन सर्वश्रेष्ठ ऋषियों से सूत ने कहा, ऋषिवृन्द! कश्यप के संयोग से दिति को दो पुत्र उत्पन्न हुए—ऐसा हमने सुना है। कश्यप के वे दोनों आत्मज उनके अन्यान्य सन्तानों में सब से ज्येष्ठ थे। कश्यप के अश्वमेध यज्ञ के अन्तर्गत अतिरात्र याम के सौत्य दिवस के अवसर पर वह प्रथम पुत्र दिति के गर्भ से निकल कर सभामण्डप में लगे हुए सर्वोच्च सिंहासन पर, जो पुरोहित के लिए निर्दिष्ट था, समासीन हो गया। अपने इसी अद्भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु नाम से स्मरण किया गया।

ऋषियों ने कहा :—प्रभो! दैत्यपति महात्मा हिरण्यकशिपु का जन्म वृत्तान्त एवं प्रभाव का विस्तार पूर्वक वर्णन हमसे कीजिये ॥५२॥

Funding by IKS-MoE

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द ! प्राचीन काल में पुष्कर क्षेत्र में कश्यप का एक अश्वमेध यज्ञ हुआ था, जिसमें ऋषि देवताओं एवं गन्धर्वों के समूह आ आकर उस यज्ञ की शोभावृद्धि कर रहे थे। उस महान् यज्ञ में शास्त्रीय विधि सम्मत आख्यान आदि के लिए पाँच सुवर्ण निर्मित आसन स्थापित किये गये थे। कुश से पवित्रित तीन आसन थे, एक पर कूर्च (कुश की मुट्ठी) और पाँचवें पर फलक स्थापित था। चार मुख्य पुरोहितों के लिए उन चार की स्थापना की गई थी। उनमें एक पाँचवा जो सर्वश्रेष्ठ आसन था वह होता के लिए निर्दिष्ट किया गया था। वह दिव्य आसन नीचे से ऊपर तक सब सुवर्णमय था, एवं बिछावन से सुशोभित हो रहा था। गर्भवती दिति कश्यप की पत्नी के रूप में बगल में बैठी थी उसके उदर में दस सहस्र वर्ष का गर्भ था। ठीक उसी समय वह गर्भ माता के उदर से निकलकर उस पाँचवें सुशोभित आसन पर, जो होता के लिए निर्दिष्ट था, बैठ गया और अपने पिता महर्षि कश्यप की भाँति वहीं से वेद एवं आख्यानात्मक पाँचवें वेद का व्याख्यान देने लगा। उस बालक को इस प्रकार देखकर सभी ऋषियों ने तदनुकूल नामकरण किया। अपने उक्त अद्भुत कर्म के कारण वह हिरण्यकशिपु नाम से विख्यात हुआ। उसका छोटा भाई हिरण्याक्ष था और सिंहिका छोटी बहन थी। वह सिंहिका देवी विप्रचित्ति की पत्नी तथा राहु की माता हुई। दैत्यवर हिरण्यकशिपु ने परमकठोर तपस्या की। एक लाख वर्षों तक निराहार रहकर वह शिर को नीचे करके तपस्या में लीन रहा। हे विप्रवर्यवृन्द ! दैत्य हिरण्यकशिपु की इस घोर तपस्या से सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने अपने वरदान से उसे प्रसन्न किया, जिससे उसने सभी जीवों द्वारा मृत्यु को न प्राप्त करने अपने योगबल से देवताओं को भी पराजित कर देने तथा अमरों (देवताओं) के सभी धर्मों को प्राप्त करने का वरदान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उसने यह वरदान याचना की कि सभी दानव एवं असुर भी देवताओं के समान ऐश्वर्यशाली हो जायँ और मारुत (वायु) में जो महान् ऐश्वर्य है वह भी हमें प्राप्त हो।' हिरण्यकशिपु की ऐसी वरदान याचना को सुनकर ब्रह्मा ने उसकी मनः कामनापूर्ण की और उक्त दिव्य वरदानों को देने के उपरान्त वे वहीं अन्तर्हित हो गये। उस परमप्रभावशाली दैत्यहिरण्यकशिपु की प्रशंसा पुराने लोग श्लोकों में गाया करते थे, जिसका आशय इस प्रकार है। 'वह राजा हिरण्यकशिपु जिस-जिस दिशा को जाता था उस-उस दिशा के लिए महर्षियों समेत देवगण नमस्कार करते थे।' हे विप्रवृन्द ! वह दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपु सचमुच ऐसा ही प्रभावशाली था। यह सर्वत्रसिद्ध बात है कि प्राचीन काल में उस हिरण्यकशिपु के मृत्यु स्वरूप नरसिंह रूपधारी भगवान् विष्णु स्वयमेव हुए। उन्होंने अपने नखों से उस दैत्यराज की छाती फाड़ डाली थी, किन्तु उनके[१] नख न तो गीले हुए न सूखे ही रहे, ऐसा कहा जाता है। हिरण्याक्ष के पाँच महाबलवान् एवं विक्रमशाली पुत्र हुए, जिनके नाम उत्कुर, शकुनि, कालनाभ, महानाभ तथा भूतसन्तापन थे। हिरण्याक्ष के ये पुत्र देवताओं द्वारा भी पराजित नहीं किये

---

[१] हिरण्यकशिपु ने ब्रह्मा से यह भी वरदान याचना की थी कि उसकी मृत्यु न गीली वस्तुद्वारा हो न सूखी। इसी से भगवान के नख न गीले हुए न सूखे।

Funding by IKS-MoE

जा सकते थे। उन पुत्रों के जो पुत्र-पौत्रादि हुए वे वाडेयगणों के नाम से विख्यात हुए, उनकी संख्या एक लाख की थी, जो सब के सब तारकामय नामक संग्राम में नष्ट हुए। हिरण्यकशिपु के चार महाबलवान पुत्र हुए, जिनमें सबसे बड़े का नाम प्रह्लाद हुआ, प्रह्लाद से छोटे भाई का नाम अनुह्लाद था, दो उससे भी छोटे हुए, जिनके नाम संह्लाद और ह्रद थे। अब ह्रद के पुत्रों को सुनिये। ह्रद के ह्राद और निसुन्द नामक दो पुत्र हुए। तिनमें निसुन्द के सुन्द और उपसुन्द दो पुत्र हुए। ह्रद के उत्तराधिकारी सुन्द के पुत्र महाबलशाली ब्रह्मघ्न, मूक और मारीच हुए जो ताड़का से उत्पन्न हुए थे। वह ताड़का बलवान् रामचन्द्र के हाथों मारी गई, मूक को किरातयुद्ध में सव्यसाची अर्जुन ने मारा था। इन मणिवर्त निवासी दैत्यों के वंशधर तीन कोटि तक पहुँच गये, जो अपनी अपनी घोर तपस्या से परम तेजस्वी तथा देवताओं से अवध्य थे, उन सब का संहार भी सव्यसाची ने किया था। अनुह्लाद के पुत्र वायु और सिनीवाली हुए, इनके पुत्र पौत्रादिकों की संख्या लाखों तक पहुँच गई, जो सब के सब हालाहल गण के नाम से स्मरण किये जाते हैं। प्रह्लाद का पुत्र विरोचन हुआ, उसके पाँच छोटे भाई कहे जाते हैं, जिनके नाम गवेष्ठी, कालनेमि, जम्भ, बाष्कल और शम्भु हैं—ये पाँच प्रह्लाद के पुत्र कहे गये हैं। उन दुर्धर्ष दैत्य पुत्रों की चर्चा केवल मुख्य-मुख्य की गणना करते हुए कर रहा हूँ, उनमें से परमतेजस्वी शुम्भ निशुम्भ और विष्वक सेन—ये तीन गवेष्ठी के पुत्र हुए, जम्भ का पुत्र शतदुन्दुभि हुआ। जम्भास्य, शतदुन्दुभि, दक्ष और खण्ड—ये चार जम्भ के पुत्र हुए। विरोध, मनु, वृक्षायु और कुशलीमुख—ये चार बाष्कल के पुत्र कहे गये हैं, अब कालनेमि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। कालनेमि के ब्रह्मजित्, क्षत्रजित्, देवान्तक और नरान्तक नामक पुत्र थे, शम्भु के पुत्रों को सुनिये। धनुक, असिलोमा, नाबल, गोमुख, गवाक्ष, और गोमान, ये शम्भु के पुत्र कहे गये हैं। विरोचन का केवल एक पुत्र हुआ बलि, जो परम प्रतापी था। उस बलि के सौ पुत्र हुए, जो सब के सब राजा हुए। उन सौ पुत्रों में चार अत्यन्त प्रबल तथा विक्रमी हुए, जिनमें सबसे ज्येष्ठ सहस्रबाहु बाण था, बाण परम समृद्ध दैत्य था, अन्य तीन कुम्भ नाभ, गर्दभाक्ष और कुशि थे, इनके अतिरिक्त अन्य भी थे। बलि की शकुनी और पूतना नामक दो पुत्रियाँ थीं। बलि के पुत्र पौत्रों की संख्या सैकड़ों क्या सहस्रों तक पहुँच गई थी। जिनके नाम बलिगण थे, वे सब परम विक्रमशील थे। इन्द्र के समान मनस्वी बाण की राजधानी लौहित्यपुर थी। पुत्रों के नष्ट हो जाने पर दिति ने सेवा द्वारा कश्यप को सन्तुष्ट किया। दिति की भली-भाँति सेवा करने पर प्रसन्न होकर कश्यप ने वरदान से उसे प्रसन्न किया। दिति ने उनसे वरदान माँगा और भगवान् कश्यप ने उसके अभिलषित वरदान को दिया। मरीचि पुत्र उग्रतेजा महर्षि कश्यप ने दिति से पूछा कि 'तू क्या चाहती है।' अपने पतिदेव मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप को सुप्रसन्न देख दिति ने हाथ जोड़कर

---

१. किसी-किसी प्रति में 'आत्मजाः' पाठ भी है, जिसके अनुसार 'पाँच पुत्र' अर्थ होगा। किन्तु नामों के अन्त में 'प्रह्लाद सूनव' पाठ से इसकी असंगति होती है, क्योंकि ये पाँचों तो विरोचन के पुत्र हुए, और प्रह्लाद के पौत्र हुए। अतः 'अनुजाः' पाठ कुछ समीचीन मालूम पड़ता है। आगे चलकर विरोचन के केवल एक पुत्र होने की चर्चा आती है, इससे और भी पुष्टि मिलती है।

कहा, भगवन् ! आपके पुत्र आदित्यों (अदिति के पुत्रों) द्वारा मेरे सभी पुत्रों का विनाश हो गया, अब मैं परम तपस्वी, एवं इन्द्र को मारने में समर्थ एक पुत्र को प्राप्त करने की इच्छा करती हूँ। ऐसे प्रभावशाली पुत्र को प्राप्त करने के लिए मैं तपश्चर्या कर रही हूँ, आप गर्भाधान करें।' ऐसी बातें सुन महान तेजस्वी मरीचि पुत्र महर्षि कश्यप ने परम दुखिनी दिति से कहा, हे तपोधने ! ऐसा ही होगा। तेरा कल्याण होगा, तू पवित्र आचरण कर। अवश्य ही युद्धस्थल में इन्द्र के संहार करने वाले सुपुत्र को तू उत्पन्न करेगी। यदि तू पूरे सौ वर्ष तक पवित्र रहेगी तो त्रैलोक्य विजयी पुत्र को उत्पन्न करेगी।' ऐसी बातें दिति से कर महातेजस्वी महर्षि कश्यप ने उसके साथ सहवास किया और उसका अलिंगतकर त्रिभुवन भ्रमण के निमित्त गमन किया। पतिदेव कश्यप के चले जाने पर परम हर्षित हो देवी दिति ने कुशल वन में परम कठोर तप किया। उस घोर तपस्या में लीन दिति की उस समय सहस्रनेत्र देवराज इन्द्र ने अनेक प्रकार की सेवाएँ कीं। अग्नि, समिधा, कुश, काष्ठ, फल, मूल आदि तथा अन्यान्य पूजोपयोगी वस्तुओं को सहस्रनेत्र इन्द्र ला-लाकर देता था और परिश्रम के खेद को दूर करने के लिए गात्र संवाहन (मर्दन, पैर शिर आदि का दबाना) करता था। सभी लोगों के देखते हुए इन्द्र ने दिति की विधिवत् परिचर्या की। इस प्रकार इन्द्र द्वारा भली-भाँति सत्कार एवं सुश्रूषा पाकर दिति ने कहा ॥५३-९७॥

दिति ने कहा:—हे सुरश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। हे बेटे ! तुम्हारे कल्याण के दस वर्ष और रह गये हैं, जब तुम अपने भाई को देखोगे। जय की अभिलाषा से युक्त परम पराक्रमशील पुत्र को प्राप्त कर मेरी सारी आपत्तियाँ दूर हो जायँगी। हे पुत्र ! उसी के साथ समस्त त्रलोक्य विजय का मैं सुख अनुभव करूँगी।' इन्द्र से ऐसी बातें कर दिति मध्याह्न के अवसर पर, जिस समय सूर्य आकाश के मध्य में विराजमान था, निद्रा से अभिभूत हो इन्द्र के दोनों जंघों पर शिर रखकर सो गई। दोनों पैरों पर-बाल बिखराने के कारण अपवित्र अवस्था में दिति को देखकर, और अपने स्वार्थ साधन का उत्तम अवसर देखकर इन्द्र परम मुदित होकर हँसने लगे। तदनन्तर महायशस्वी पुरन्दर ने दिति के फैले हुए शरीर में प्रवेश किया और प्रविष्ट होकर वहाँ महान तेजस्वी एवं अपरिमित उस गर्भ शिशु को देखा अपने वज्र से सात भागों में काट डाला इन्द्र द्वारा वज्र से काटते समय वह गर्भ डर के मारे काँपने लगा और बारम्बार भयानक स्वर में रुदन करने लगा। इन्द्र ने उस गर्भ से कहा कि मत रोओ। और ऐसा कहकर उसे सात टुकड़ों में काटकर फिर से एक-एक टुकड़े को सात-सात भागों में वज्र से काट दिया तब तक दिति जग गई। और कहने लगी मत मारो, मत मारो।' माता की आज्ञा का गौरव रखने के लिए इन्द्र वज्र समेत उदर से बाहर निकले और हाथ जोड़कर दिति से बोले, हे देवि ! तुम अपवित्र अवस्था में सो गई थीं, तुम्हारे केश दोनों पैरों पर बिखरे हुए थे, ऐसे अवसर को पाकर मैंने युद्ध में इन्द्र का (मेरा) सहार करनेवाले इह गर्भस्थ शिशु को अनेक टुकड़ों में काट डाला, मुझे क्षमा करो। उस गर्भ के निष्फल हो जाने पर दिति को बड़ा दुःख हुआ और उसने अनुनय पूर्वक सहस्र नेत्र इन्द्र से कहा, देवेश ! यदि मेरे ही अपराध से यह मेरा गर्भ निष्फल हुआ है तो हे ऋषि पुत्र ! महाबलवान् ! इसमें तुम्हारा कोई अपराध नहीं है, क्योंकि शत्रु का बध करने में कोई दोष नहीं है, इसीलिए

Funding by IKS-MoE

मैं तुम्हें शाप नहीं दे रही हूँ, प्रत्युत तुम्हारा मंगल करने की मेरी इच्छा है, मेरे इस गर्भ का कल्याण करो। स्वर्ग में मेरे इन पुत्रों का सात स्थान प्राप्त हों, मेरे ये पुत्र वायु के सात स्कन्धों में महत नाम से विचरण करें, उनके एक-एक गण में सात-सात मरुत हों। इनका पहला स्कन्ध पृथ्वी तल पर हो, दूसरा सूर्य मण्डल में हो, तीसरा चन्द्रमा में और चौथा ज्योतिगणों में हो। पाँचवा स्कन्ध ग्रहों में और छठवाँ सप्तर्षि मण्डल में हो, सब से आखिरी स्कन्ध जो सातवाँ होगा वह ध्रुव मण्डल में होगा। इस प्रकार उन मण्डलों में ये मेरे पुत्रगण समय समय पर विचरण करते रहें। पृथ्वी तल से लेकर मेघमण्डल पर्यन्त प्रथम स्कन्ध जो आवह नामक है उसमें मेरे सातों गणों में से प्रथम गण के सात पुत्र विचारण करें। द्वितीय प्रवह नामक स्कन्ध जो कि मेघ मण्डल से लेकर सूर्य मण्डल पर्यन्त है, उसमें हमारे पुत्रों का द्वितीय गण विचरण करें। सूर्य मण्डल से ऊपर चन्द्रमण्डल तक जो उद्वह नामक वात स्कन्ध कहा गया है उसमें हमारे पुत्रों का तीसरा गण विचरण करे। चन्द्रमा से ऊपर नक्षत्र मण्डल पर्यन्त चौथा सुवह नामक जो वातस्कन्ध है, हे विभो! उसमें उन सबों का चौथा गण विचरण करे। नक्षत्र मण्डल के ऊपर से लेकर ग्रहों के मण्डल तक जो पाँचवाँ विवह नामक स्कन्ध है उसमें उनका पाँचवाँ सुन्दर गण विचरण करे। उक्त ग्रहमण्डल से ऊपर सप्तर्षि मण्डल पर्यन्त छठवाँ पराहत नामक जो स्कन्ध है, उसमें हमारे पुत्रों के छठवें गणों में रहनेवाले विचरण करें। और इसी प्रकार सप्तर्षि मण्डल से ऊपर ध्रुव मण्डल पर्यन्त जो सातवाँ परिवह नामक वायु स्कन्ध है, उसमें हमारे पुत्रों के सातवें गण निवास करें। ये मेरे आत्मज गण समय-समय पर उक्त स्कन्धों में विचरण करते रहें। और तुम्हारे रखे गये 'मरुत' नाम से विख्यात हों। इस प्रकार की बातें करने के उपरान्त माता और पुत्र ने उन सबों का नामकरण संस्कार किया। इन्द्र के (मा रोदी) (मत रोओ) इस कथन को लेकर उन सबों का नाम मरुत गण पड़ा, उनके पृथक्-पृथक् नाम इस प्रकार हैं। सत्त्वज्योति, आदित्य, सत्यज्योति, तिर्यक् ज्योति, सज्ज्योति, ज्योतिष्मान् और रहित—प्रथम गण के मरुत कहे गये हैं। अब दूसरे गणों की नामावली सुनिये, ऋतजित्, सत्यजित्, सुषेण, सेनजित्, सत्यमित्र, अभिमित्र, और हरिमित्र—ये द्वितीय गण के मरुत हैं, तृतीय गण को सुनिये। ऋत, सत्य, ध्रुव, धर्ता, विधर्ता, विधारय, ध्वान्त, धुनि, उग्र, भीम, अभियु, साक्षिप, आह्वय, ये दो गणों के मरुत हैं। ईदृक्, अन्यादृक्, प्रतिकृत् यादृक्, ऋक्, समिति, और संरम्भ ये पाँचवें गण के मरुत हैं। ईदृक, पुरुष, अन्यादृक्ष, चेतस्, समिता, समिदृक्ष, और प्रतिदृक्ष ये एक गण के मरुत् हैं। मरुतिद्, सरत, दिश, यजु, अनुदृक्, साम, मानुषीविश, दैत्य, देव ये सात-सात के एक-एक गण हैं। ये उपर्युक्त उनचास मरुत् गण के नाम से विख्यात हैं। इन्द्र और दिति ने इनकी गणना और नामकरण किया। इस प्रकार इन सबों के नामकरण हो जाने पर दिति ने इन्द्र से कहा, पुत्र! ये पुत्रगण उपर्युक्त वायु स्कन्धों में विचरण करें, तुम ऐसा ही करो कि देवताओं के साथ ये मेरे पुत्रगण सुखपूर्वक विचरण करें। दिति की बातें सुन सहस्रनेत्र पुरन्दर ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, हे मातः! आपकी जैसी आज्ञा है वैसा ही होगा। इसमें तनिक भी सन्देह मत करो, जैसी आपकी इच्छा है वैसा ही मैं करूँगा। ये तुम्हारे महात्मा पुत्रगण देव तुल्य हैं, यही नहीं देवताओं से भी सम्माननीय हैं, देवताओं के साथ ये भी

Funding by IKS-MoE

यज्ञ में भाग पाने के अधिकारी होंगे।

(सूत ने कहा) ऋषिवृन्द ! यही कारण है कि वे मरुत गण देवताओं में परिगणित हुए, इन्द्र के अनुज के रूप में उन सबों को अमरत्व की भी प्राप्ति हुई, वे परम तपस्वी दिति के पुत्र होकर भी अमर माने गये। इस प्रकार का निश्चय कर वे तपस्वी माता पुत्र परम हर्षित हुए, दिति अपने निवासस्थान को और इन्द्र स्वर्गलोक को प्रस्थित हुए। जो कोई मरुतगणों के इस मंगलकारी जन्म वृत्तान्त को सुनता है अथवा पढ़ता है उसे दीर्घायु की प्राप्ति होती है और कभी अनावृष्टि के कारण कष्ट नहीं अनुभव करता ॥९८–१३५॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कश्यपीय प्रजा सर्गो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

कश्यप की सन्ततियों की सृष्टि

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त मैं दनु के पुत्रों का वृत्तान्त कह रहा हूँ, सुनिये। वे दनु के पुत्र अपने वंश में परम विख्यात एवं महान् असुर थे। उनमें सब का प्रधान विप्रचित्ति था, उनकी संख्या सैकड़ों की थी। जो सब के सब परमपराक्रमी थे। उन सभी को वरदान मिले हुए थे, वे सब के सब परम तपस्वी थे। इतना होने पर भी वे दृढ़प्रतिज्ञ थे, परमविक्रमशील थे, क्रूर थे, मायावी थे। महाबलवान् थे, यज्ञादि में उनकी निष्ठा नहीं थी, ब्राह्मण धर्म के विरोधी थे। उन्हें दानव नाम से लोग जानते हैं। उन सबों में जो प्रधान-प्रधान दानव हो गये हैं, उनका मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। द्विमूर्धा, शंकुकर्ण, शङ्कु, निरामय, शंकुकर्ण, महाविश्व, गवेष्ठि, दुन्दुभि, अजामुख, ऐश्वर्यशाली शिल, वामनस, मरीचि, रक्षक, महागार्ग्य, अङ्गिरावृत, विक्षोभ्य, सुकेतु, सुवीर्य, सुहृद, इन्द्रजित्, विश्वजित्, सुरविमर्दन, एक चक्र, सुबाहु, महाबलवान् तारक, वैश्वानर, पुलोमा, प्रवीण, महाशिरा, स्वर्भानु, वृषपर्वा, महाअसुर मुण्डक, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, तापिन, सूक्ष्म, निचन्द्र, ऊर्णनाभ, महागिरि, असिलोमा, सुकेश, सद, बलक, गगनमूर्धा, कुम्भनाभ महोदर, प्रमोदाह, कुपथ, पराक्रमी हयग्रीव, असुर विरूपाक्ष, महासुर सुपथ, अज, हिरण्मय, शतमायु, शम्बर, शरभ, और शलभ ये प्रमुख दानवगण कहे गये हैं। सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों पहले असुरों के देवता थे, इस समय ये देवताओं के देवता हैं। दनु के वंश में उत्पन्न ये प्रधान दानव कहे जाते हैं, इन सबों के पुत्र पौत्रादि की संख्या असंख्य है, अनन्त हैं। दिति और दनु के पुत्र गणों का, जो सब असुर नाम से विख्यात हैं, परिचय कह चुका। स्वर्भानु (राहु) दिति का पुत्र कहा गया है, अनुभानु दनु का पुत्र होने के कारण दानव कहा गया है। ये उपर्युक्त वंश परम्परागत दनु के पुत्र स्मरण किये जाते हैं। एकाक्ष, ऋषभ, अरिष्ट, पलम्ब, नरक, इन्द्रबाधन केशी, मेरु, शंब, धेनुक, गवेष्ठि, गवाक्ष, पराक्रमी तालकेतु—ये दनु के पुत्र मनुष्यों के धर्म-कर्म का आचरण करने वाले हैं—ऐसा मैं जानता हूँ। विप्रचित्ति के भयानक

पराक्रमशाली चौदह पुत्र दैत्यों और दानवों के संघर्ष में सिंहिका के संयोग से उत्पन्न हुए थे, इस कारणवश वे चौदहों महान असुर सैंहिकेय के नाम से प्रसिद्ध, हुए। जिनके नाम शतगाल, बलवान्, न्यास, शाम्ब, अनुलोम, शुचि, वातापि, सिताँशुक, हर, कल्प, कालनाभ, भौम, और नरक, इनमें सब से ज्येष्ठ पुत्र का नाम राहु था, जो चन्द्रमा और सूर्य को कष्ट देनेवाला था। ये सिंहिका के पुत्रगण देवताओं से भी अजेय थे और वे सब के सब परम दारुण चित्तवृत्तिवाले, क्रूर, तथा ब्राह्मण द्वेषी थे। इनके अतिरिक्त अन्य दस सहस्र राक्षसों का समूह था, जो सैंहिकेय नाम से स्मरण किया जाता था, उसका संहार बलवान् भृगु वंशोद्भव जामदग्न्य परशुराम ने किया था। स्वर्भानु की कन्या का नाम प्रभा था, पुलोमा की पुत्री शची थी। मय की पुत्री उपदानवी और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा थी। पुलोमा और कालिका-ये दोनों वैश्वानर की पुत्रियाँ थीं। तिनमें से प्रभा का पुत्र नहुष और शची का पुत्र जयन्त हुआ, शर्मिष्ठा ने पुरु को और उपदानवी ने दुष्यन्त को उत्पन्न किया। वैश्वानर की दोनों पुत्रियाँ, प्रलोमा और कालिका जो थीं, वे दोनों ही मरीचिपुत्र कश्यप की स्त्रियाँ हुई। उन दोनों से एक सहस्र प्रमुख दानव पुत्र उत्पन्न हुए, इनके अतिरिक्त चौदह सहस्र अन्य दानव थे जो हिरण्यपुर निवासी थे। पुरलोमा, और कालका से उत्पन्न होनेवाले वे पौलोम और कालकेय नामक दानवगण महाबलवान् थे, देवता भी उनका बध नहीं कर सकते थे, उन सब का संहार सव्यसाची अर्जुन ने किया। मय के जो पुत्र हुए वे सब के सब बड़े वीर और पराक्रमी थे, उनके नाम मायावी, दुन्दुभि, वृष, महिष, वालिक और वज्रकर्ण थे, मय की कन्या मन्दोदरी थी। दैत्यों और दानवों की सृष्टि की यह कथा आप लोगों को बतला चुका। दनायुषा के पाँच महाबलवान्, पुत्र कहे जाते थे, जिनके नाम अरुरु, बलि, जन्म, विरक्ष और विष थे। अरुरु का पुत्र धुन्धु नामक महान् असुर था, जो क्रूर प्रकृति का था, उसका संहार उतङ्क के कहने पर कुबलाश्व ने किया था। बलि के दो अनुपम तेजस्वी एवं पराक्रमी पुत्र हुए कुम्भिल और चक्रवर्मा, यह बलि पूर्व जन्म में कर्ण था। विरक्ष के भी काल और वर नामक दो पुत्र थे। विष के अतिक्रूरकर्मा चार पुत्र हुए, जो श्राद्धहा, यज्ञहा, ब्रह्महा और पशुहा के नाम से विख्यात थे। दनायुषा के पुत्रों का विवरण कह चुका अब वृत्र के वृत्तान्त को सुनिये। इन्द्र के साथ युद्ध करते समय वृत्र के घोर श्वास से अतिबलवान्, भरण-पोषण करनेवाले, मानस नाम से विख्यात राक्षसों की उत्पत्ति हुई, तिनमें से एक लक्ष महेन्द्र (शिवजी) के अनुचर कहे जाते हैं। वे शिव के अनुचर राक्षस गण, सब के सब ब्रह्मज्ञानी, सौम्य, धार्मिक एवं सूक्ष्ममूर्ति धारी हैं, वे प्रकृति से परमधार्मिक एवं प्रजावर्ग में निवास करनेवाले हैं। दैत्यों एवं दानवों की यह सृष्टि-कथा कह चुका। प्रवाही ने यज्ञ क्षेत्र में सुप्रसिद्ध गायक पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम ये हैं। सत्वन, सत्त्वात्मक, कलाप, वीर्यवान्, कृतवीर्य, ब्रह्मचारी, सुपाण्ड, पन, तरण्य और सुचन्द्र। इन दसों पुत्रों को देवताओं का गन्धर्व जानना चाहिये, जिनका वर्णन मैं कर चुका॥ १–३९॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कश्यपीय प्रजा सर्गो नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥६८॥

Funding by IKS-MoE

उनहत्तरवाँ अध्याय

कश्यप की प्रजा-सृष्टि

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द ! पुण्यात्मा गन्धर्व एवं अप्सराएँ मुनि की सन्ततियाँ कही गयी हैं। चित्रसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, धृतराष्ट्र, पुलोमा, सूर्यवर्चा, युगपत्, तृणपत्, कालि, दिति, चित्ररथ, भ्रमिशिरा, पर्जन्य, कलि और नारद ये सोलह मुनि के पुत्रदेव गन्धर्व कहे गये हैं। इन सबों से छोटी चौंतीस कल्याणी अप्सराएँ हैं। जिनके नाम हैं अन्तरा, दारवत्या, प्रियमुख्या, सुरोत्तमा, मिश्रकेशी, चाशी, पर्णिनी, अलम्बुषा, मारीची, पुत्रिका, विद्युद्वर्णा, तिलोत्तमा, अद्रिका, लक्षणा, देवी, रम्भा, मनोरमा, सुवरा, सुवाहु, पुर्णिता, सुप्रतिष्ठिता, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुदन्ता, सुरसा, हेमा, शारद्वती, सुवृत्ता, कमला, सुभुजा और हँसपादा।[१] ये लौकिक अप्सराएँ हैं। ये उपर्युक्त गन्धर्व एवं अप्सराएँ मुनि की सन्तान कही गई हैं। गन्धर्वों की जिन पुत्रियों की चर्चा मैं पहले कर चुका हूँ, उन सबों का भी मैं नाम बतला रहा हूँ, सुनो। उनमें सब से प्रथम सुयशा है, उसके बाद गान्धर्वी है, इनके अतिरिक्त विद्यावती, चारुमुखी, सुमुखी और वरानना नामक हैं। उनमें से सुयशा के पुत्र महाबलवान् एवं पराक्रमी यक्षगण हुए जो प्रचेता के संयोग से उत्पन्न हुए, उनके नाम सुनो। कम्बल, हरिकेश, कपिल, काञ्चन और मेघमाली—यक्षों के इस समूह को सुना चुका। सुयशा की चार अप्सरा कन्याएँ कही गई हैं, उनके नामों को मैं भली भाँति जानता हूँ, बतला रहा हूँ, सुनों। उनमें सब से बड़ी लोहेयी थी, उससे जो छोटी थी उसका नाम था भरता। उसके बाद जो दो थीं उनके नाम कृशाङ्गी और विशाला थे—ये दोनों अनुपम सुदरी अप्सराएँ थीं। इन चारों कन्याओं से महाबलवान् पराक्रमी विशाल ने अन्य चार यक्षगणों को उत्पन्न किया, जो लोहेय, भरतेय, कृशाङ्गेय और विशालेय नाम से यक्षों के कथा-प्रसङ्ग में पुराणों में सुप्रसिद्ध हैं। हे समस्त लोक की वार्ता जाननेवालों में श्रेष्ठ मुनिगण ! इन महाबलशाली, घोर पराक्रमी अनेक यक्षगणों एवं असुरों से समस्त लोक व्याप्त हो गये। महात्मा विक्रान्त ने परम पराक्रमशील, श्रेष्ठ गन्धर्वों के नायक वालेय नामक गन्धर्वों को उत्पन्न किया, जो विक्रम एवं औदार्य गुण से सम्पन्न, महाबलवान एवं परम पराक्रमी थे, उनकी यथाक्रम नामावली मैं बतला रहा हूँ। वे महावीर चित्राङ्गद, चित्रवर्मा, महाभाग्यशाली चित्रकेतु एवं बलवान् सोमदत्त के नाम से विख्यात थे। तीन कन्याएँ थीं, जिनके नाम मुझसे सुनो। पहली कन्या अग्निका नामक थी, उससे छोटी का नाम कम्बला था, तीसरी-वसुमती नामक थी—ये तीनों अनुपम रूपवती एवं तेजस्विनी थीं। इन तीनों कन्याओं से कुमार नामक गन्धर्व ने अन्य तीन गन्धर्वगणों को उत्पन्न किया, जो प्रमुख गन्धर्व माने गये, वे परम वीर तथा संग्राम भूमि में भयानक युद्धकौशल दिखानेवाले थे। आग्नेय, काम्बलेय और वसुमती सुतों के नाम से

---

[१] संख्या इकतीस होती है। अतः यहाँ पाठभेद प्रतीत होता है। 'चतुस्त्रिंशत्' के स्थान पर 'एकत्रिंशत्' होना चाहिये।

उनकी ख्याति हुई । इन विविध गन्धर्वगणों से यह समस्त चराचर लोक व्याप्त हो गया । उपर्युक्त महात्मा विक्रान्त ने अन्यान्य महाभाग्यशाली विद्यावान्, रूप, विद्या एवं सम्पत्ति—सब से समृद्ध गन्धर्वों को भी उत्पन्न किया था । उन महात्मा, परमपराक्रमी गन्धर्वों के नामों को बतला रहा हूँ, तुम लोग सुनो । उनके नाम हिरण्यरोमा, कपिल, सुलोमा, मागध, चन्द्रकेतु, गांग, एवं महाबलवान् गोद थे । ये सब गन्धर्वगण महाविद्वान्, परमतपस्वी एवं विक्रम सम्पन्न थे इनके अतिरिक्त दो अन्य सुंदर नेत्रोंवाली शिवा और सुमना नामक दो कन्याएँ थीं, जिनसे महात्मा विश्रवा ने शैवेय, विक्रान्त और सौमनस नामक गणों को उत्पन्न किया, जो परमविद्यावान् थे । इन तीनों विद्याधरों से यह लोक व्याप्त हो गया । इन सबों से अनेक सौ आकाशचारी विद्याधर गण लोक में उत्पन्न हुए, जो विद्याधरों की चेष्टा के परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए थे । उपर्युक्त महात्मा विक्रान्त ने ही अश्व मुखधारी जिन किन्नरों को उत्पन्न किया, उन्हें सुनिये । समुद्रसेन, कालिन्द, महानेत्र, महाबल, सुवर्णघोष, सुग्रीव, पराक्रमी महाघोष आदि महात्मा किन्नरों के गण हैं, जो अश्वमुख-धारी नाम से प्रसिद्ध हैं, विद्वान् लोग इन किन्नरों का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं । हे शांशपायन आदि प्रमुख ऋषिगण ! उन्हीं महात्मा विक्रान्त के संयोग से मनुष्यमुखधारी किन्नरों की भी उत्पत्ति हुई । जिनके नाम हरिषेण, सुषेण बलवान् वारिषेण, रुद्रदत्त, इन्द्रदत्त, चन्द्रद्रुम, महाद्रुम विन्दु और विन्दुसार - ये चन्द्रवंशीय किन्नर हैं, ये सुन्दर एवं श्रेष्ठ किन्नरगण लोक में प्रसिद्ध हैं । हे द्विजवर्य वृन्द ! नृत्य एवं गीत में प्रवीण इन महात्मा किन्नरों के गण सैकड़ों की संख्या में उत्पन्न हुए । यक्षोपशान्त (?) यक्षगण लौहेय नाम से प्रसिद्ध हुए । सुन्दरी सुरविन्दा नामक कन्या, जो सिद्धों की सम्माननीय एवं, प्रकाश युक्त थी । करालक ने उपायाकेतन (?) नामक भूतों के गणों को स्वयम् उत्पन्न किया था, उनके नामों को मुझसे सुनिये । वे भूतगण आवेशक, निवेशक, सुतार, कालभवन, निर्देशक और विशेषक-आदि के नामों से पृथ्वी पर दिखाई पड़नेवाले माने जाते हैं । इन आकाश के मध्य में विचरण करनेवाले भूतगणों में जो श्रेष्ठ होते हैं, उन्हें इस लोक में भूतनायक नाम से जानना चाहिये, वे वृक्षों के शिखर पर्यन्त आकाश प्रदेश में विचरण करते हैं—इसमें सन्देह नहीं । इस प्रसङ्ग में प्रायः देवताओं के गन्धर्वों का विवरण मैं कह चुका, उन देवगन्धर्वों को परमयशस्वी एवं देवताओं की पूजा में सर्वदा रत रहनेवाला समझिये । नृत्य एवं गीत में सुनिपुण, सभी लोकों में निवास करनेवाले, व्यवहार कुशल देवगण इन गन्धर्वों के साथ सुरगुरु, कमलनेत्र, सत्त्वगुणमय भगवान् नारायण, स्वयम् उत्पन्न होनेवाले चतुर्मुख हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, चराचर जगत् के प्रभु एवं कल्याणकर्त्ता ईशान महादेव, इन्द्र, आदित्यगण रुद्रगण एवं वसुगण—इन सब की उपासना करते थे । महा भाग्यशालिनी देवताओं द्वारा पूजित वरिष्णा ने आठ पुत्रों को उत्पन्न किया । जिनमें सब से ज्येष्ठ का नाम हंस था, कनिष्ठ का नाम अन्य (?) था, हहा हूहू ये दोनों मझले थे, धिषण चौथा था, इसके बाद वासिरुचि की उत्पत्ति गई, इनमें तुम्बुरु छठवाँ पुत्र था, इसके बाद विश्वा वसु नामक पुत्र हुआ । ये निम्नलिखित पुण्यलक्षणों से समन्वित दिव्य अप्सराएँ इनकी अर्धाङ्गिनी के रूप में थीं, जिनके नाम वरिष्ठा, अनवघा, अनवशा, अन्वता, मदनप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी इन सब को अरिष्टा ने उत्पन्न किया । तुम्बुरु की मनोवती और सुकेशा

Funding by IKS-MoE

नामक दो पुत्रियाँ हुईं। इनके अतिरिक्त ये निम्नलिखित पंच चूड एवं दैविकी नाम से विख्यात दस दिव्यगुण युक्त स्वर्गीय अप्सराएँ हैं, जिनके नाम हैं, मेनका, सहजन्या, पर्णिनी, पुञ्जिकस्थला, घृतस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वची, प्रम्लोचा और अनुम्लोचन्ती। इन दसों दिव्य अप्सराओं के अतिरिक्त अनादि निधन (जिनका कभी जन्म-मरण नहीं होता) भगवान् नारायण के उरुभाग से सभी अंगों से निर्दोष एवं अनुपम सुन्दरी उर्वशी नामक जो एक अप्सरा उत्पन्न हुई, वह स्वर्ग की ग्यारहवीं अप्सरा कही जाती है। ब्रह्मज्ञान परायण, प्रसन्न चित्त रहनेवाले मेन की कन्या मेनका थी—ये सभी अप्सराएँ ब्रह्म वादिनी एवं योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहनेवाली कही जाती हैं। उन अप्सराओं के चौदह पवित्रगण (समूह) प्रसिद्ध हैं। उन चौदह-में से दो गणों के नाम (१) आहूत और (२) शोभयन्त हैं। (आहूत गण की अप्सराएँ) ब्रह्मा की मानस कन्याएँ हैं, शोभयन्त मनु की कन्याएँ हैं। (३) वेगवन्त नामक गण की अप्सराएँ अरिष्टा से उत्पन्न हुई हैं। ऊर्जा के संयोग से (४) अग्निसम्भव नामक गण की उत्पत्ति हुई। सूर्य की किरणों से उत्पन्न होनेवाली (५) आयुष्मती नामक अप्सराएँ अति प्रकाशमान शरीरवाली थीं। चन्द्रमा का तेज, जो गर्भ में आहित हुआ, उससे कल्याण प्रदायिनी (६) कुरु नामक अप्सराओं को उत्पन्न हुआ समझिये। यज्ञ से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (७) शुभा नामक हैं, ऋक् एवं साम से उत्पन्न होनेवाली अन्य अप्सराओं के गण (८) वहिन नाम से प्रसिद्ध हुए। अमृत से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ वारिजा नाम से विख्यात् हैं, उन्हें अमृत नाम से भी स्मरण किया जाता है। वायु से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (१०) सुदा नामक हैं, भूमि से उत्पन्न होनेवाली को (११) भवा नाम से जानते हैं। विद्युत् से उत्पन्न होनेवाली अप्सराएँ (१२) रुचा नामक हैं, मृत्यु की कन्याएँ, जो अप्सरा हुईं, उनकी (१३) भैरवा नाम से ख्याति हुई। काम की कन्याएँ जो अप्सरा हुईं, उन्हें (१४) शोभयन्ती नाम से जानते हैं—अप्सराओं के ये चौदह गण कहे गये हैं। इन्द्र, विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगणों ने इन अप्सराओं को स्वरूप की अतिशयता प्रदानकर निर्मित किया है। इन सब में महाभाग्यशालिनी सुर-नारी तिलोत्तमा परम सुन्दरी कही जाती है। स्वरूप एवं यौवन से सुसमृद्ध लोकविख्यात देवनारी प्रभावती ब्रह्मा के अग्निकुण्ड से उत्पन्न कही जाती है। परमकान्तियुक्त सुर-नारी वेदवती बुद्धिमान चतुर्मुख ब्रह्मा जी के वेदी तल से उत्पन्न हुई। स्वरूप एवं यौवन—दोनों से सुसम्पन्न हेमानामक सुन्दरी जिसके शरीर की आभा तपाये हुए सुवर्ण के समान मनोहर थी, एवं जिसकी आँखें अति सुन्दर थीं, यम की पुत्री थी। इस प्रकार की अनेक सहस्र तेजस्विनी अप्सराओं के समूह हुए, जो विविध देवताओं एवं ऋषियों की पत्नी एवं माता हुईं। ये सभी अप्सरायें एक समान चम्पा के पुष्प की भाँति गौरवर्ण की एवं सुगन्धित शरीर वाली थीं, विना मद्यपान किये ही ये अपने प्रियतम के सहवास में मदोन्मत्त की भाँति हो जाती हैं। इनके स्पर्श करने से प्रियजन सन्तुष्ट होकर आनन्द से विभोर हो उठते हैं॥१—६३॥

प्राचीनकाल में नारद नामक पर्वत पर प्रजापति ब्रह्मा का वीर्य स्खलित हुआ, जिससे वहाँ नारद और पर्वत नाम के दो ऋषि उत्पन्न हुए। इन दोनों भाइयों की छोटी वहिन अरुन्धतीके नाम से स्मरण की जाती है, जो ब्रह्मा की तीसरी सन्तति के रूप में उत्पन्न हुई।····उसी पर्वत पर देवरुख्य (?) सूर्य नारद और

Funding by IKS-MoE

पर्वत पर इन सब का जन्म हुआ था। विनता के दो अरुण और गरुड़ नामक दो पुत्र हुए। इन दोनों की सहोदरा छत्तीस छोटी बहिनें भी कही जाती हैं। गायत्री आदि छन्द, पंख से उड़नेवाले समस्त पक्षीगण, विभिन्न दिशाओं में सन्निहित सभी हव्यवाहगण–ये सब भी विनता ही के गर्भ से प्रादुर्भूत हुए। कद्रू ने चलनेवाले एवं न चलनेवाले सहस्रों नागों को उत्पन्न किया। उन महात्मा आकाशगामी, अनेक शिरोंवाले नागों में से प्रायः कुछ के नामों को मैं बतला रहा हूँ। सुनिये। उनमें से प्रधान नाग जो थे, वे शेष, वासुकि तक्षक, सकर्णी, जम्भ, अञ्जन, वामन, ऐरावत, महापद्म, कम्बल, अश्वतर, ऐलपत्र शंख, कर्कोटक, धनंजय, महाकर्ण, महानील, धृतराष्ट्र, बलाहक, कुमार, पुष्पदन्त, सुमुख, दुर्मुख, शिलीमुख, दधिमुख, कालीय, शालि-पिण्डक, विन्दुपाद, पुण्डरीक, आपूरण, कपिल, अम्बरीष, धृतपाद, कच्छप, प्रह्लाद पद्मचित्र, गन्धर्व, मनस्विक, नहुष, खररोमा और मणि आदि नामों से प्रसिद्ध हैं। कद्रू के पुत्रों का वर्णन तो मैं कर चुका अब खशा के पुत्रों का विवरण सुनिये। खशा ने दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दो के दोनों पुरुषादक (मनुष्य का भक्षण करनेवाले) थे। पश्चिम संख्या में ज्येष्ठ, और पूर्व संख्या में मनुजों की उत्पत्ति हुई। सर्वप्रथम खशा ने विलोहित विकर्ण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो चतुर्भुज, चतुष्पाद, द्विमूर्धा, द्विधागति (दो प्रकार से चलनेवाला) सर्वाङ्ग केश (सभी अंगों में केश संयुक्त) स्थूलाङ्ग (मोटे अंगों वाला) तुङ्गनास (ऊँची नासिका वाला) महोदर, स्थूलशीर्ष, महाकर्ण, मुञ्जकेश (मूँज की तरह पीलेवर्ण के केशोंवाला) मनोरथ, हस्त्योष्ठ (हाथी के समान ओंठ वाला, दीर्घजंघ, अश्वदंष्ट्र (घोड़ों के समान दाढ़ों वाला) महाहनु (लम्बी दाढ़ीवाला) रक्तजिह्व, जटाक्ष, स्थूलास्य, (मोटे मुखवाला) दीर्घनासिक, गुह्यक (बुरा शब्द करनेवाला) शितिकर्ण (काले या चितकबरे रंग के कानोंवाला) महानन्द एवं महामुख था। इस प्रकार के अति भयानक पुत्र को खशा ने उत्पन्न किया। इसके उपरान्त इसके सहोदर छोटे भाई को भी खशा ने उत्पन्न किया। जो त्रिशीर्ष (तीन शिरोंवाला) त्रिपाद, त्रिहस्त, कृष्णलोचन, ऊर्ध्वकेश, हरिच्छ्मश्रु (हरे वर्ण की दाढ़ीवाला) दृढ़ एवं शिला संहनन, (शिला के समान पुष्ट शरीरवाला) ह्रस्वकाय, (छोटे कद का) सुबाहु, महाकाय, महाबलिष्ठ, कानपर्यन्त फटे हुए भयानक मुखवाला, लम्बी भौंहों वाला, स्थूल नासिकावाला, स्थूल ओष्ठवाला, आठ दाढ़ोंवाला, दो जीभवाला, शंकु (कील) के समान कानोंवाला, पिंगल वर्ण के उठे हुए नेत्रोंवाला, जटाधारी, पीले शरीरवाला, महाकर्ण, महान् वक्षस्थल, कटि रहित, कृश उदरयुत, नखधारी, लालवर्ण के कंधोंवाला था। ऐसे महाभीषण कनिष्ठ पुत्र को खशाने उत्पन्न किया। ये दोनों पुत्र उत्पन्न होते ही अपने प्रमाण से बहुत अधिक बढ़ गये, और तुरन्त ही उपभोग में समर्थ शरीर से संपन्न होकर उपस्थित हुए। इस प्रकार अति शीघ्र लंबे शरीर एवं अंगोंवाले उन दोनों ने अपनी माता को अलंकृत किया। इन दोनों पुत्रों में से जो ज्येष्ठ था, वह बड़ी क्रूर प्रकृति का था, उसने अपनी माता को ही घसीटना प्रारम्भ किया और बोला, मातः! मैं क्षुधा से बहुत पीड़ित हूँ, मेरे भक्षण के लिये तुम यहाँ आओ। अपने ज्येष्ठ भाई के इस दुर्व्यवहार को देखकर छोटे भाई ने निषेध किया, और अनेक बार कहा कि अरे, मेरी माता खशा को तू छोड़ दे। इस प्रकार की बातें करते हुए उसने अपनी दोनों बाहुओं से पकड़कर अपनी माता को छुड़ा दिया। ठीक इसी

अवसर उन दोनों के पिता (कश्यप) वहाँ उपस्थित हो गये, और उनकी यह करतूत देख बोले, हे दुराचारी पुत्रों ! रुक जाओ । ठहरो ।' इस प्रकार उन दोनों बलवानों ने पिता को आया देख अपनी माया के बल से (अल्पकाय हो) शीघ्र ही माता की गोद में पुनः लिपट गये । तब ऋषि अपनी पत्नी से बोले, 'हमें सब से पहिले यह सच-सच बतलाओ कि तुम्हारे इन दोनों पुत्रों ने तुम से क्या दुर्व्यवहार अथवा कैसी अनीतिपूर्ण बातें की हैं, और तुमने इन्हें क्या उत्तर दिया है ।' पुत्र अपने मामा के स्वभाव एवं गुणों का अनुसरण करता है, कन्या अपने पिता के स्वभाव एवं गुणादि को प्राप्त करती है, जिस प्रकार की माता होती है, उसका पुत्र भी उसी प्रकार का होता है, क्योंकि जैसा पृथ्वी का रंग होता है, उस पर रहनेवाला जल निश्चय ही उसी रंग का होता हैं । माता के शील सदाचार गत अवगुणों के तथा गुणों के कारण ही भिन्न-भिन्न प्रकार की सन्ततियाँ उत्पन्न होती हैं, प्रशंसा के वश होकर भी लोगों के स्वभाव में कुछ अन्तर हो जाता है । हमारी सभी पत्नियों में अदिति बल, शील आदि सद्गुणों से युक्त तथा धर्म में सर्वदा निरत रहनेवाली है । गन्धयुक्त दिति भी नित्य तपस्या एवं अध्ययन आदि में निरत रहती है, धर्म शीलादि सद्गुणों से उसका ज्ञान एवं पराक्रम—दोनों बहुत बढ़े-चढ़े हैं । अरिष्टा गीतों को भली भाँति जानती है, दनु को लोग माया छल आदि की जानकार बतलाते हैं, देवी विनता आकाश में उड़ने को बहुत पसन्द करती है, सुरभि अपने तपोमय जीवन से बहुत अधिक शोभा पाती है, कद्रू बड़ी क्रोध करनेवाली है, उसे क्रोध करने में ही सुख मिलता है । दनायुषा का आचरण वैर, एवं अनुग्रह—दोनों प्रकार के विपरीत स्वभावों से संयुक्त है, अर्थात् समय-समय पर वह क्रोध एवं दया—दोनों का व्यवहार करती है, किन्तु हे देवि ! महाभाग्य शालिनि ! तू तो मेरी राय में अधिक क्रोध करनेवाली हो । ये अपने आचरण मनुष्यों के विविध स्वभावों के देखने से, कर्म से, यत्न करने से, बुद्धि से, रूप से, बल से क्षमा से एवं भवितव्यता के वश होकर भिन्न हो जाते हैं, विश्व के प्राणियों के स्वभाव राजसिक, सात्त्विक एवं तामसिक-प्रकृति के होते हैं । तेरे पुत्रगण गुणों एवं आचरणों में अपने मामा के अनुगामी हैं ।' भगवान् कश्यप ने अनुपम सुन्दरी खशा से इस प्रकार की बातें कर सान्त्वना भरे स्वर से दोनों पुत्र को बुलाया और उन्हें भय रहित किया (?) तदनन्तर खशा ने अपने साथ उन दोनों पुत्रों ने जैसा व्यवहार किया था, सब कह सुनाया । माता ने उनके व्यवहारों को पृथक्-पृथक् जैसा बतलाया, उसी के अनुरूप धातु के अर्थ का आश्रय लेकर तत्त्वदर्शी कश्यप ने उनका नामकरण किया । 'यक्ष' यह धातु भक्षण करने तथा कर्षण (खींचने) के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यतः इस (ज्येष्ठपुत्र) ने यक्षयति (भक्षण करता है अथवा खींचता है) का उच्चारण किया था अतएव यह यक्ष के नाम से विख्यात हो । 'रक्ष' यह जो धातु है वह पालन करने अर्थ में प्रयुक्त एवं प्रसिद्ध है, यत तुम्हारे इस दूसरे पुत्र ने 'मेरी माता खशा की रक्षा करो, ऐसा कहा था, अतः इसका नाम राक्षस होगा ।' इस प्रकार उन दोनों बालकों के पिता कश्यप ने उस समय नामकरण करने के बाद उन्हें भूखा जान, माता के साथ किये गये उनके व्यवहारों को सोच समझकर एवं भवितव्यता को वैसी ही जानकर तदनुकूल कार्य किया । उन दोनों को क्षुधा से पीड़ित देख उनकी मनोभावनाओं का पता पाकर प्रजापति कश्यप जी परम विस्मित हुए । और आहार के लिए रक्त और चर्बी

Funding by IKS-MoE

को भक्षण करने का उन्हें आदेश दिया। इसके अतिरिक्त पिता (कश्यप) ने उन्हें बहुत क्षुधा पीड़ित देख यह वरदान भी दिया कि रात्रि के समय तुम दोनों के हाथों में सभी वस्तुओं का स्पर्श हो सकेगा, अर्थात् रात्रि में ही तुम्हें सब वस्तुएँ मिल सकती हैं। तुम दोनों रात में आहार-विहार करनेवाले होगे, दिन भर शयन करोगे, रात में तुम दोनों बहुत बलवान् हो जाओगे और दिन भर सोते रहोगे। अब से माता की दोनों मिलकर रक्षा करो और धर्म की मर्यादा का पालन करो, धर्म का अनुशासन मानो।' पुत्रों से ऐसी बातें कर कश्यप जी वहीं पर अन्तर्हित हो गये ॥६४–१०६॥

पिता के चले जाने पर स्वभाव से ही दारुण प्रकृतिवाले उन दोनों महावीरों ने प्राणियों की हिंसा में तत्पर रह कर कुत्सित एवं अखाद्य वस्तुओं का भोजन करना प्रारम्भ किया और पिता ने जिस प्रकार धर्म के अनुशासन में रहकर जीवन-यापन का उपदेश किया था ठीक उसके विपरीत आचरण करना प्रारम्भ किया। वे दोनों महाबलवान थे, महान् पराक्रमी थे, उनके शरीर विशाल थे, कठिनाई से उन्हें कोई अपने वश में कर सकता था, इतने मायावी थे कि एक क्षण यदि दिखाई पड़ते थे तो दूसरे ही क्षण अन्तर्धान भी हो जाते थे। स्वभाव से ही क्रूर प्रकृतिवाले वे भीषण आकृति से युक्त तथा इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले थे, अपने भीषण आकार के अनुरूप आहार भी उनका बहुत अधिक और भीषण था। देवताओं, असुरों, ऋषियों, गन्धर्वों, किन्नरों, पिशाचों, मनुष्यों, सर्पों, पक्षियों और पशुओं को खाने के लिये वे जहाँ कहीं पाते थे पकड़ने की इच्छा करते थे। इस प्रकार एक बार उन निशाचरों ने खाने के लिये इन्द्र को पकड़ा, और उनको न मारकर दो वरदान प्राप्त किया ॥६४–१११॥

कभी एक बार यक्ष आहार खोजते समय रात में अकेले थोड़ी देर तक घूमता रहा कुछ देर के बाद उसे शब्द सुनाई पड़े और वह उस शब्द के पीछे-पीछे चला। आगे चलकर उसने दो प्रचण्ड जानुवाले पिशाचों को देखा, जो पीली आँखोंवाले थे, जिनके रोम ऊपर की ओर खड़े थे आखें गोलाकार थीं, और देखने में परम भयानक लग रहे थे। वे रक्त मांस और चर्बी का आहार करते थे, मनुष्यों को खा जाते थे। उन महाबलवानों के साथ दो कन्याएँ थीं। वे कन्याएँ इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली थीं और वे दोनों भी उन पिशाचों के समान आचरण करनेवाली थीं किन्तु उनका स्वरूप मनोरम था। उन दोनों कन्याओं के साथ वे पिशाच आहार के लिए रात में घूम रहे थे। उन सबों ने वहाँ महाबलवान् एवं इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षस को देखा, एकाएक एक दूसरे को आमने-सामने देखकर वे पिशाचगण और राक्षस अपनी-अपनी जान बचाने की चिन्ता में लगे और एक दूसरे को पकड़ना भी चाहा। इसी बीच दोनों पिता अपनी-अपनी कन्याओं से बोले, तुम दोनों शीघ्र इसे जीते जी पकड़ लाओ, जो पग-पग पर फड़कते हुए चल रहा है। पिता के कथनानुसार उन दोनों कन्याओं ने समीप जाकर उसको (राक्षस को) पकड़ लिया और हाथ से पकड़कर पिता की सभा में लाकर उपस्थित किया। कन्याओं द्वारा हाथ में पकड़े हुए राक्षस से उन दोनों पिशाचों ने कहा, बोलो, तुम कौन हो? किसके (पुत्र) हो, राक्षस ने सब बातें बतलाई। उसके कार्य एवं विचारों को सुनकर उन बलवान् आज और खण्ड (?) नामक पिशाचों ने सन्तुष्ट होकर दोनों कन्याओं को

उसे सौंप दिया। पैशाचिक विवाह विधि के अनुसार उस सुन्दर दाँतवाली कन्या का विवाह बुद्धवाहन (?) अज और खन्ड ने उसके साथ सम्पन्न किया और पुत्री के गुण स्वभाव एवं धन का परिचय स्वयं सुनाया। खन्ड ने कहा, यह मेरी ब्रह्मधना नाम की कन्या है इसके शरीर में रोम नहीं हैं, यह सात्त्विक उपायों द्वारा अर्जित किये गये धन का आहार करती है, और ब्रह्म की आराधना में तत्पर रहती है। और यह दूसरी जन्तुधना नाम की सर्वांग सुन्दरी कन्या है, जन्तुओं का यह आहार करती है, इस प्रकार उन दोनों ने कन्याओं के धन का परिचय कराया और आगे कहा कि यह दूसरी जन्तुधना नाम की कन्या जो है इसके समस्त अंगों में बाल हैं, और ब्रह्मधना नाम की जो कन्या है, उसके कान के ऊपर तक रोम हैं, शेष अंगों में रोम नहीं है। उस ब्रह्मधना ने ब्रह्मधन नामक पुत्र और तत्त्वला नाम की कन्या का जन्म दिया। इस प्रकार उन दोनों पिशाच कन्याओं ने दो दो सन्ततियाँ उत्पन्न कीं। अब उनके द्वारा होने वाली प्रजाओं (सन्तानों) का सृष्टि क्रम सुनिये, मैं कह रहा हूँ। हेतृ, प्रहेतृ, उग्र, पौरुषेय, वध, विस्फूर्जि, वात, आप व्याघ्र और सर्प—ये दस राक्षस यातुधान के आत्मज और सूर्य के अनुचर हैं, सूर्य के साथ ही ये भी भ्रमण करते हैं। इन में हेतृ का पुत्र लंकु हुआ। लंकु के माल्यवान् और सुमाली नामक दो पुत्र हुए अब प्रहेतृ के पुत्रों को सुनिये, उस प्रहेतृ का पुत्र प्रलोमा हुआ जो अपने समय में परम विख्यात था। वध के दो दुराचारी पुत्र विघ्न और शमन थे। विद्युत् का पुत्र परम दुराचारी रूमन नामक राक्षस हुआ। स्फूर्ज का पुत्र निकुम्भ था जो उग्र प्रकृति वाला एवं ब्रह्मराक्षस था, वात का पुत्र विराग नामक और आप का पुत्र जम्बुक हुआ। व्याघ्र का पुत्र निरानंद नामक हुआ, जो जन्तुओं को विघ्न पहुँचाने वाला था। ये सब के सब परम पराक्रम शील राक्षस क्रूर प्रकृति के थे। यातुधानों का वर्णन तो मैं कर चुका। अब ब्रह्मधान के पुत्रों को सुनिये। यज्ञ, पिता, धुनि, क्षेम, ब्रह्मा, पाप, ब्रह्म स्वाकोटक, कलि और सर्प—ये दस ब्रह्मधान के पुत्र हैं। उन दसों की बहनें ब्रह्मराक्षसी थीं, जिनमें ये निम्नलिखित परम दारुण स्वभाव वाली थीं, रक्त कर्ण, महाजिह्व, अक्षया और उपहारिणी—इन ब्रह्मराक्षसियों के गर्भ से समस्त पृथ्वी पर निवास करनेवाले ब्रह्मराक्षसों के जन्म हुए ये ब्रह्मराक्षसगण श्लेष्मातक (लसोढ़े) के वृक्षों पर प्रायः आश्रय करते हैं। इन राक्षस के पुत्रों की चर्चा की जा चुकी, अब यक्ष के पुत्रों को सुनिये। यक्ष ने अपने मन में क्रतुस्थली नामक पाँच अवयवों से स्थूल अंगों वाली अप्सरा को पाने की कामना की। उसको प्राप्त करने की चिन्ता में वह नन्दन वन में विचरण करता रहा, इसके अतिरिक्त सुन्दर वैभ्राज, (?) और चैत्ररथ नामक वनों में भी वह चक्कर लगाता रहा। अन्ततः नन्दन वन में अन्यान्य अप्सराओं के साथ विहार करती हुई उस असती को उसने देखा; किन्तु उसके प्राप्त करने का कोई उपाय चिन्तन करने पर भी बुद्धि में न आया। अपनी कुरूपता एवं कुकर्म से दूषित होने के कारण उसने अपने मन में सोचा कि भयभीत होने के कारण मेरे द्वारा सभी जीव गण उद्विग्न हो जाते हैं, तो फिर इस सुन्दर अंगोवाली को किस प्रकार मैं प्राप्त कर सकता हूँ? तदनन्तर उसने एक उपाय विचारा और शीघ्र उसका उपयोग किया, तदनुसार उसने वसुरुचि नामक गन्धर्व का मनोहर रूप बनाकर उन अप्सराओं के बीच से उस क्रतुस्थली को जाकर पकड़ा। अप्सरा ने वसुरुचि को जानकर उस यक्ष के साथ पूर्ण मनोयोग

एवं सद्भाव के साथ व्यवहार किया। फलतः सब अप्सराओं के सामने ही उसने क्रतुस्थली के साथ समागम किया, और उसी समय उसी स्थान पर उससे फल स्वरूप एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो लम्बाई और चौड़ाई में विशाल था, जन्मते ही वह शोभा से युक्त हो गया। उत्पन्न होते ही उसने अपने पिता से कहा, 'मैं राजा हूँ, मेरा नाम नाभि है", पिता ने पुत्र से कहा, तुम्हारे यहाँ उत्पन्न हो जाने पर कोई डर नहीं है। वह यक्षपुत्र नाभि स्वरूप में माता के समान सुन्दर और पराक्रम में पिता के समान वीर हुआ। ऐसे पुत्र के उत्पन्न हो जाने पर वह यक्ष अपने स्वाभाविक वेश में आ गया। प्रायः बड़े बड़े यक्ष और राक्षस मृत्यु के समान घोर संकट पड़ने पर, सो जाने पर, क्रुद्ध होने पर, भयभीत होने पर तथा अति प्रसन्नता के अवसर पर अपने स्वाभाविक स्वरूप पर आ जाते हैं। इस स्वाभाविक नियम के अनुसार वह यक्ष उस क्रतुस्थली अप्सरा को विस्मित करता हुआ बोला, हे सुन्दर कटिवाली! सुन्दरी! अब अपने पुत्र को साथ लेकर मेरे घर चलो। यक्ष के ऐसा कहने पर एवं सहसा अपने वास्तविक यक्ष रूप में उपस्थित देखकर सभी अप्सरायें क्रोध के मारे भ्रान्त बुद्धि हो गई और भयभीत होकर भग चली। भागती हुई अपनी सखियों के पीछे पीछे क्रतुस्थली भी चली और उसके पुत्र ने वाणी से सान्त्वना देते हुए उसे गन्धर्वों एवं अप्सराओं के समूह में ले जाकर पहुँचाया पहुँचाने के बाद स्वयं लौट आया। अप्सराओं ने यक्ष द्वारा उसके गर्भ से पुत्रोत्पत्ति होते देखा था अतः उन्होंने एक स्वर से क्रतुस्थली से कहा कि तू यक्षों की माता है। तदनन्तर यक्ष पुत्र के साथ अपने घर को चला गया जहाँ बरगद के वृक्ष पर निवास करने वाले यक्षगण शयन करते थे। बरगद के वृक्ष में यक्षों का निवास-स्थान है, यह बरगद का वृक्ष उन्हें सभी प्रकार से प्रिय हैं। यक्ष रजतनाभ गुह्यकों का पितामह था, उसने अनुह्लाद नाम दैत्य की परम सुन्दरी कन्या भद्रा के साथ अपना विवाह किया था, उस भद्रा में जितेन्द्रिय मणिवर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। भद्रा ने एक दूसरे पुत्र मणिभद्र को भी उत्पन्न किया, जो इन्द्र के समान पराक्रमी था। उन दोनों की पत्नी सगी बहने थीं, जो क्रतुस्थली की दो पुत्रियाँ थीं उनका नाम पुन्यजनी और देवजनी था। पुन्यजनी ने मणिभद्र के संयोग से जिन शुभाचारी पुत्रों को उत्पन्न किया, उनके नाम सिद्धार्थ, सूर्यतेज, सुमन्त, नन्दन, कन्यक, यविक्र, मणिदत्त, वसु सर्वानुभूत, शंख, पिंगाक्ष, भीरु, मन्दरशोभि, पद्म, चन्द्रप्रभ, मेघपूर्ण, सुभद्र, प्रद्योत, महौजस, द्युतिमान्, केतुमान, मित्र, मौलि और सुदर्शन थे। ये चौबीस पुत्र सदाचारी और पुण्यात्मा थे। मणिभद्र के संयोग से इन पुण्यात्मा पुत्रों की उत्पत्ति हुई थी। इनके पुत्र पौत्रादि जो यक्ष हुए वे भी पुण्यकार्य करनेवाले एवं सदाचारी थे। ॥११२–१५७॥

देव जननी ने मणिवर के संयोग से जिन पुत्रों को जन्म दिया उनके नाम पूर्णभद्र, हेमरथ, मणिमत्, नन्दिवर्धन, कुस्तुम्बुरु, पिशङ्गाभ, स्थूलकर्ण, महाजय, श्वेत, विपुल, पुष्पवान, भयावह, पद्मपर्ण, सुनेत्र, यक्ष, बाल, बक, कुमुद, क्षेमक, वर्धमान, दम, पद्मनाभ, वराङ्ग, सुवीर, विजय, कृति, पूर्णमास, हिरण्याक्ष, सुरूप आदि थे। मणिवर के ये पुत्रगण गुह्यक के नाम से स्मरण किये जाते हैं। ये सब पुत्रगण सुन्दर स्वरूपवाले—कुछ कुरूप भी माला धारण करनेवाले तथा देखने में प्रिय लगने वाले थे। इनके पुत्र पौत्रादि की संख्या सैकड़ों से सहस्रों तक थी। खशा के अन्य पुत्रगण जो हुए वे इच्छानुसार रूप बदलनेवाले राक्षस थे, उनमें

जो प्रधान-प्रधान थे, उनका वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। उनके नाम थे लालावि, कुथन, भीम, सुमाली, मधु, विस्फूर्जित, विद्युज्जिह्व, मातङ्ग, धूम्रित, चन्द्रार्क, सुकर, बुध्न, कपिलोम, प्रहासक, क्रीड, परशुनाभ, चक्राक्ष, निशाचर त्रिशिरा, शतदंष्ट्र, राक्षस तुण्डकेश, यक्ष अकम्पन, दुर्मुख, और शिलीमुख ये सभी श्रेष्ठ राक्षस परम पराक्रमी तथा गणरूपी थे, अर्थात् उनमें से एक एक राक्षस वीरता आदि में एक-एक समूह का सामना करने में समर्थ था। वे देवताओं के समान सभी लोकों में विचरण किया करते थे। इनके अतिरिक्त सात अन्य कन्याएँ भी थीं, उन्हें क्रमानुसार सुनिये। साथ ही उन कन्याओं द्वारा जिन प्रजाओं की सृष्टि हुई, और उनसे जिन गणों की उत्पत्ति हुई, उसे भी सुनिये। उन कन्याओं के नाम आलम्बा, उत्कचा, कृष्णा, निर्ऋता, कपिला, शिवा और महाभाग्यशालिनी केशिनी थे, ये सात उक्त राक्षसों की बहिनें कही जाती हैं। उन्हीं कन्याओं द्वारा लोक में माँस खानेवाले जीवहिंसक, युद्ध में उत्कट पराक्रम दिखलानेवाले, महान राक्षसगणों की उत्पत्ति हुई, इनमें से कुछ शुभ कार्य करनेवाले भी थे। आलम्बा से उत्पन्न होनेवाले आलम्बेय नामक राक्षसगण क्रूर प्रकृति के थे, उत्कचेय गण भी उसी प्रकार के क्रूरकर्मा थे। कार्ष्णेय और शैनेय नामक राक्षसगण उत्तम गुण वाले थे। इसी प्रकार महादेव जी के अनुचर गणेश्वरों के चर ने नैर्ऋत नामक प्रजाओं की सृष्टि की। उस बलवान् ने महान् यक्षों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया, जो परम पराक्रमी शौर्यसम्पन्न नैर्ऋत नाम से विख्यात हुए, उन्हें देवराक्षस कहते हैं। उन सबों का अधिपति विरूपक नामक हुआ। नैर्ऋत मामक उद्धत स्वभाववाले उन महात्मा देवराक्षसों के सैकड़ों गण प्रायः जगत् स्वामी शंकर भगवान् के अनुचर हुए। महात्मा दैत्यराज कुम्भ ने महाबलवान्, महा पराक्रमी, परम साहसी एवं विशालकाय कापिलेय नामक दैत्यों एवं राक्षसों को उत्पन्न किया, जो अपने पराक्रम से सचमुच महान् थे। बलवान् कम्पन नामक यक्ष के द्वारा केशिनी के गर्भ से दूसरे महाबलवान यक्षों और राक्षसों की उत्पत्ति हुई, जो महान् थे। केशिनी की कन्या नीला के संयोग से आलम्बेय गण के सुरसिक नामक राक्षस के द्वारा अनेक क्षुद्र चित्तवाले राक्षसों का जन्म हुआ, जो नैल नाम से विख्यात हुए। ये नैल नामक राक्षसगण दुर्जेय और घोर पराक्रमी थे। दैविक एवं लौकिक—दोनों प्रकार की शक्तियों से सम्पन्न वे राक्षसगण सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल का भ्रमण करते थे। उनके वंश में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का विस्तार बहुत अधिक है, अतः कहा नहीं जा सकता। उस नीला की भी एक पुत्री थी, जिसका नाम विकचा राक्षसी था, स्वभाव से वह परम क्रूर और मध्यम पराक्रमवाली थी। उस विकचा के भी कुरुप निर्ऋत द्वारा अतिघोर स्वभाववाले सुरों (असुरों) की उत्पत्ति हुई, उनका क्रमानुसार वर्णन सुनिये। वे घोर असुरगण विकराल दाढ़ोंवाले, कुरूप, लम्बे कानोंवाले, तथा विशाल पेटवाले थे, उनके नाम हारक, भीषक, क्रामक, वैनक, पिशाच, वाहक और प्राकराक थे—ये सब भूमिराक्षस थे, मन्द स्वभाववाले इन राक्षसों का पराक्रम पुरुषों के समान था। ये विविध प्रकार के स्वरूप धारणकर इतने विकराल दिखलाई पड़ते हैं जितने भीषण स्वरूप को कोई नहीं देख सका था। इन भूमि राक्षसों में जो अधिक बलवान्, एवं पराक्रमी होते हैं वे आकाशगामी कहे जाते हैं। ये क्षुद्र राक्षसगण देखने में अति लघु काय होने पर भी थोड़ी दूर तक आकाश प्रदेश में विचरण करते हैं। ये सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में इस लोक को छेंके हुए हैं।

Funding by IKS-MoE

इन सब विविध प्रकार के भूमिराक्षसों और अन्यान्य क्षुद्र राक्षसों ने मिलकर चारों ओर से प्रायः सभी देशों को आक्रान्त कर लिया है। संक्षेप में इन सब क्षुद्रराक्षसों की आठ माताएँ हैं, और उसी के अनुरूप इनके आठ विभाग कहे जाते हैं, जिन्हें क्रमानुसार कहा गया है। इनमें से एक का नाम भद्रका, और गण का नाम निकर है, जिनमें कुछ ज्ञानोत्पत्ति के कारण हैं (?) मर्त्यलोक में विचरण करनेवाले इस गण में सैकड़ों, सहस्रों की संख्या में राक्षसगण विद्यमान हैं। दूसरी माता पूतना है, और गण का नाम मातृ सामान्य है, जो भयंकर भूत हैं। यह पूतना मानवलोक में बच्चों को पकड़नेवाली एवं कष्ट देकर बहुत परेशान करनेवाली है। स्कन्दग्रह आदि आपक, त्रासक आदि और कौमारगण इन सब को, बालकों को ग्रहों के समान कष्ट देने वाले जानने चाहिये। माया करने वाले मायिक नामक ग्रहों स्कन्द नामक ग्रहों, तथा पूतना नामक अभूत (?) ग्रह विशेषों में से जो लोक में विविध विघ्नों के करने वाले हैं, वे लाखों की संख्या में मर्त्यलोक में विचरण करते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य भूतों एवं ग्रहों के सैकड़ों गण इस पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं। पुण्यजन नामक यक्ष, गुह्यक नाम से प्रसिद्ध यक्ष एवं देवजन नामक यक्ष—ये सभी गुह्यकों के अन्तर्गत हैं। अगस्त्य नामक जो राक्षसगण हैं, पौलस्त्य नामक जो राक्षस गण हैं, विश्वामित्र के गोत्र में जो राक्षसगण उत्पन्न हुए हैं, यक्षों एवं राक्षसों के वंश में उत्पन्न होनेवाले पौलस्त्य एवं अगस्त्य नामक जो यक्ष राक्षस हैं, उन सबों के राजा महाराज कुबेर हैं, जो अलका नामक नगरी के अधीश्वर हैं। ये यक्ष गण केवल आँखों से देखकर मनुष्य के रक्त, मांस एवं चर्बी को पी जाते हैं, राक्षस गण शरीर के भीतर प्रवेश कर के पी जाते हैं और पिशाच गण बुरी तरह पीड़ित कर के पी जाते हैं। जो सभी प्रकार के लक्षणों से सम्पन्न एवं देवताओं के समान अधिकारी, तेजस्वी, बलवान, ऐश्वर्य मय एवं इच्छानुसार स्वरूप धारण करनेवाले अनुपम शक्तिशाली, विक्रमी, सभी लोकों द्वारा पूजनीय, सूक्ष्म स्वरूप धारण करनेवाले, तेजस्वी, यक्षादि के योग्य, वरदान देनेवाले, यक्ष परायण एवं देवताओं के समान धर्मात्मा होते हैं, वे सब असुर नाम से स्मरण किये जाते हैं। गन्धर्व लोग प्रभाव में देवताओं की अपेक्षा तीन पादों से (तीन चौथाई $\frac{3}{4}$) हीन होते हैं। सभी गुह्यय (यक्ष) गन्धर्वों की अपेक्षा प्रभाव आदि में तीन पादों से हीन होते हैं, इन्हीं यक्षों के समान प्रभावशाली सब राक्षस होते हैं। इन यक्षों से गुण में तीन गुने हीन पिशाच होते हैं। इस प्रकार धन से, रूप से, आयु से, बल से, धर्म से, ऐश्वर्य से, बुद्धि से, तपस्या से, शास्त्र बल से एवं पराक्रम से गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और पिशांच—ये चार देवयोनियों में उत्पन्न वाले देवताओं और असुरों की अपेक्षा परस्पर हीन होते हैं। ॥११२—२०३॥

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त आप लोग क्रोध के वश में रहनेवाली प्रजाओं का विवरण सुनिये, इससे आप लोगों का कल्याण होगा। क्रोधा में बारह स्वयम् उत्पन्न होनेवाली कन्याएँ उत्पन्न हुईं और वे सब प्रलह ऋषि की पत्नियाँ हुईं, उनके नाम सुनिये। मृगी, मृगमन्दा, हरिभद्रा, इरावती, भूता, कपिशा, दंष्ट्रा, निशा, तिर्या, श्वेता, स्वरा, और सुरसा—नाम से वे विख्यात हैं। तिनमें से मृगी के पुत्र हरिण हुए, अन्यान्य मृग, शश (खरगोश) न्यंकु (बारहसिंगा) शरभ, रुरु और पृषन् नामक

पशु उसी से उत्पन्न हुए। मृगमन्दा के गर्भ से मृगराजों (सिंहों) की उत्पत्ति हुई, अन्यान्य गवय (नीलगाय) महिष, ऊँट, वराह, खड्ग (गैंड़ा) तथा गौरमुख नामक वन्य पशु भी उसी से उत्पन्न हुए। हरि के गर्भ से बन्दरों की उत्पत्ति हुई तथा लाङ्गूली बन्दर तरक्षु (भेड़िया) अन्यान्य छोटी जातियों के बन्दर, किन्नर, बाघ, किंपुरुष आदि वन्य जीवों की भी उत्पत्ति उसी से हुई, इसके बाद इरावती के पुत्रों को सुनिये। एक बार भौवन ने सूर्य के दो अण्ड कपालों को लाकर अपने दोनों हाथों से उसे पकड़ कर रथन्तर का गान किया था, उस समय सामवेद के उस रथन्तर की स्तुति करते समय शीघ्र ही एक हस्ती प्रादुर्भूत हुआ। भौवन ने वैसे पुत्र की कामना से इरावती के साथ समागम किया था, यतः वह इरावती के गर्भ से उत्पन्न हुआ था अतः ऐरावत नाम से प्रसिद्ध हुआ। देवराज इन्द्र के वाहन होने के कारण वह मतङ्गों का प्रथम राजा हुआ, वह ऐरावत श्वेत बादल के समान शुभ्र वर्ण का, चार दाँतों वाला, अतिशय शोभा सम्पन्न गजराज है। एक ही मूल से उत्पन्न हुए, जल सम्भूत, छः दाँतों वाले सुवर्ण के समान कान्तिमान्, भद्र नामक हस्ती पर सवार होने वाला बल था, जो हस्तिज (?) था। उस ऐरावत के अञ्जन, सुप्रतीक, वामन और पद्म—ये चार पुत्र थे, हस्तिनी का नाम अभ्रमु था। श्वेता ने उन चार दिग्गजों को उत्पन्न किया, जो अति शीघ्र गमन करनेवाले थे, उन चारों पुत्रों के नाम भद्र, मृग, मन्द और संकीर्ण थे। इनमें से संकीर्ण और अञ्जन—ये यमराज के वाहन हैं, भद्र और सुप्रतीक, जो कि हरित वर्ण का है, जल के स्वामी वरुण के वाहन हैं। पद्म और मन्द जो कि गौर (श्वेत) वर्ण का है, ऐलविल (कुबेर) के हस्ती हैं। मृग नामक श्याम वर्ण का जो हस्ती है वह अग्नियों का वाहन है। पद्मोत्तर पद्म नामक जो गज है वह वरुण के वाहन गणों में से है, और वह उपलेपन (?) भी कहा जाता है। उसके आठ पुत्र उत्पन्न हुए। जो सब उग्र स्वभाव वाले थे। उनके वंश में श्वेत बाल और नखवाले, पीले वर्ण के शरीरवाले मतंगज उत्पन्न हुए। उन सबों को तथा अन्यान्य नागों को भी क्रमशः सुना रहा हूँ। पुण्डरीक, नामक गज कपिल (भूरे) वर्ण का तथा रथान्तर पुष्प के रंग के समान शोभावाला गज है, उन दोनों से सुप्रतिष्ठ और प्रमर्दन नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त शूल, स्थूल प्रभृति उच्च शिर वाले, शुद्ध बाल और नखवाले, बलवान्, शक्तिशाली गज हुए, जो आकुलिक नाम से स्मरण किये गये। इनके वंश में पुष्पदन्त, बृहत्सामा, षड्दन्त, दन्तपुष्पवान्, ताम्रपर्णी प्रभृति गज उत्पन्न हुए। इनके हस्तिनियों के सहगमन से पुत्र उत्पन्न हुए। इनके वंश में लंबे ओठोंवाले, सुन्दर दिखाई पड़नेवाले श्यामवर्ण के, उग्रस्वभाव वाले, लंबे मुँहवाले और अनेक प्रकार की पीड़ा सहन करने में सशक्त गज उत्पन्न होते हैं। वामदेव नामक हस्ती अंजन के समान श्यामल वर्ण का है, साम से वामन नामक गज उत्पन्न हुआ जिसकी स्त्री अंगदा थी, उसके नीलवत् और लक्षण नामक दो पुत्र थे। ये सब गज अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले थे, इनके शिरोभाग और कन्धे देखने में सुन्दर थे, वक्षस्थल अत्यन्त विशाल और चलने में वे वेगशाली थे। इन गजों के वंश में जो विकृत गज उत्पन्न होते हैं, वे मनुष्यों द्वारा बन्धन में डाले जाते हैं। सुप्रतीक के समान सुन्दर आकार वाला गज दूसरा नहीं है, उसके प्रहारी संपाती और पृथुश्चित्ति नामक तीन पुत्र थे। इनके वंश में

मत्तगज पशुगण ? लम्बी तालु, बड़े होठ और विभक्त शिर तथा उदर भाग एवं मनोहर अंगोंवाले उत्पन्न होते हैं। अञ्जन से अञ्जना और साम से अञ्जावती का जन्म हुआ। इन दोनों की माता भी आयुरज (?) की[1] पुत्री कही गई है। इन के वंश में उत्पन्न होनेवाले गज अत्यन्त विभक्त शिर वाले, जल से पूर्ण बादल के समान काले वर्ण के, देखने में अति सुन्दर शरीरवाले, कमल के समान परिमण्डल वाले, मोटे ताजे, और पीले चौड़े मुखवाले, होते थे। चन्द्रमा और साम से पिंगला कुमुदद्युति की उत्पत्ति हुई। उस पिंगला के महापद्म और उर्मिमाली नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। उसके कुल में उत्पन्न नागों को अत्यन्त उग्र स्वभाव वाले, बलशाली, लम्बे, पेट वाले विशाल दाँतों वाले तथा हस्ति युद्ध में रुचि रखने वाले समझिये। देवासुर संग्राम में देवताओं ने इन्हीं हस्तियों को विजय लाभार्थ अपने पास रखा और कार्य में सफलता प्राप्त कर लेने के उपरान्त उन्हे छोड़ दिया, जिससे उपर्युक्त सभी हस्ती विभिन्न दिशाओं को चले गये। इन्हीं के वंश में उत्पन्न, विनम्र स्वभाव वाले हस्तियों को देवताओं ने अंग, लोमपाद, सूत्रकार को दिया। दो रद (दाँत) होने के कारण इनका द्विरद नाम पड़ा, हस्त (शुण्ड) के कारण हस्ती और कर (शुण्ड) के कारण करी कहते हैं। वरण (पूजन) होने के कारण इन्हें वारण, दो दाँतों के कारण दन्ती, गर्जन (चिग्घाड़ने) के कारण गज, कुञ्जों में विचरण करने के कारण कुञ्जर, नगों[2] (पर्वतों और वृक्षों) से विरोध करने के कारण नाग, मतङ्ग[3] से उत्पन्न होने के कारण मातंग, दोनों (मुख और शुण्ड) से पान करने के कारण द्विप तथा सामवेद के गान से उत्पन्न होने के कारण ये सामज नाम से स्मरण किये जाते हैं यह इनकी निरुक्ति का क्रम है। इन हस्तियों की जिह्वा जो पीछे की ओर लौटी रहती है, और बोलने की शक्ति इनमें नहीं पाई जाती, वह अग्नि के शाप के कारण है। और हस्तियों के जो बल की अनूतनता (स्फूर्ति का अभाव) तथा इनके लिंग एवं अंडकोष का छिपा रहना—ये दोनों भी स्वयम्भू ब्रह्मा एवं सुरगणों के शाप के कारण हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, सर्प एवं राक्षस—ये सब जिन कन्याओं में उत्पन्न हुए उन्हीं में दिग्गजों के संयोग से हस्तियों की उत्पत्ति हुई जिससे वे विपुल पराक्रमी हुए। इन गजों की उत्पत्ति, प्रभाव, अनेक नाम पड़ने के कारण आदि की कथा यही जाननी चाहिये (जिसे ऊपर कह चुका)। इन सब का राजा विभावसु है। पूर्व दिशा में कौशकी से लेकर समुद्र पर्यन्त एवं उसके उपरान्त समुद्र तट से गंगा तक जो जंगल है; वह एक मात्र अञ्जन नामक हस्ती एवं उसके वश में उत्पन्न होनेवालों का है। विन्ध्य गिरि के उत्तर से लेकर गङ्गा के दक्षिण ओर तक; तथा गंगा के उद्गम स्थल से लेकर करुष

---

[1] १. यहाँ पुलिंग 'सुतौ' पाठ है, जिसकी कोई संगति नहीं बैठती।

[2] २. हाथी पर्वतों की चट्टानों एवं वृक्षों की शाखाओं आदि के तोड़ने फोड़ने में प्रसिद्ध ही हैं।

[3] ३. आनन्दाश्रम की प्रति में 'मत्वा यातीति मातङ्गः' जिसके अनुसार यह अर्थ होगा कि मान कर चलता है, इसलिए मातंग नाम है, पर अन्य प्रतियों के "मतंगादिति मातगः" पाठ से ऊपर का अर्थ निकलता है, जो अन्य कथाओं से मिलती जुलती है। और इस संबन्ध से मातंग नाम की निरुक्ति भी समीचीन एवं सर्वसम्मत होती है। अतः 'मतंगादिति मातंगः' पाठ युक्तियुक्त प्रतीत हो रहा है।

देश तक सुप्रतीक नामक गज का जंगल है। उत्कल (उड़ीसा) प्रान्त के पश्चिमी छोर से लेकर वेदि (?) देश पर्यन्त, जो पाँचवा जंगल है, वह एक मात्र (?) वामन नामक हस्ती के वंशजो का जंगल कहा जाता है। लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के दूसरे तट से पश्चिम, समुद्र तट के पर्वत के समीप तक यम का वन कहा गया है। हे प्रभो! भूति ने रुद्र के अनुचर भूतों को उत्पन्न किया जिनमें से कुछ बहुत, मोटे कुछ बहुत पतले, कुछ विशाल काय, कुछ बौने; कुछ बहुत ही छोटे, कुछ समान आकार वाले थे, इसी प्रकार लम्बेकान वाले, लम्बे होठों वाले, लम्बी जीभवाले, लम्बे स्तन और लंबे पेटवाले थे। कुछ एक ही तरह के रूपवाले थे तो कुछ एकदम कुरूप थे, कुछ के स्फिक् (नितंब चूतड़) बहुत लंबे थे, कुछ के मोटे पिण्डाकार पेट निकले हुए थे। ये भूत गया सरोवर, समुद्र, नदी आदि जलाशयों के तट पर निवास करने वाले थे। इनमें से कुछ काले वर्ण के, कुछ गोरे वर्ण के, कुछ नीले वर्ण के, कुछ श्वेत वर्ण के, कुछ लोहित और अरुण वर्ण के थे। इसी प्रकार कुछ गहरे पीले वर्ण के; कुछ चितकबरे रंग के, कुछ धुएँ के वर्ण के, तथा कुछ हल्के पीले रंग के थे, ये सभी भूत गण दारुण राक्षसों के समान उग्र स्वभाव वाले थे। इनमें से कोई मुंजकेश;[१] कोई हृषीकेश तथा कोई सर्प का यज्ञोपवीत धारण करनेवाले थे। किसी की आँखें फूटी हुई थीं, किसी की आँखें अतिशय कुरूप थीं, किसी की आँखें बहत बैठी हुई थीं तथा किसी की एक आँख ही फूटी हुई थी। कोई अनेक शिरवाले थे, कोई शिरोविहीन थे, कोई एक शिरवाले थे, किसी के शिर था ही नहीं। कोई अतिशय उग्र स्वभाव वाले थे, कोई अत्यन्त विकट स्वभाववाले थे, कोई रोमावली विहीन थे, कोई बहुत रोमवाले थे, कोई अन्धे थे, कोई लंबी-लंबी जटाओंवाले थे, कोई कुबड़े थे, कोई चिग्घाड़नेवाले तथा बौने थे। ये सब के सब सरोवर, समुद्र, नदी तट पर निवास करते थे। इनमें किसी-किसी के एक कान था, कोई-कोई बहुत बड़े कानवाले थे, किसी-किसी के कान शंकु (खूँटे) के समान थे, कोई-कोई कान विहीन थे। किसी-किसी के दाँत बहुत बड़े थे, किसी-किसी के नख बढ़े हुए थे, किसी-किसी के एक भी दाँत नहीं थे, कोई-कोई दो जिह्वावाले थे। किसी-किसी के एक हाथ थे तो कोई-कोई दो हाथोंवाले थे, किसी-किसी के तीन हाथ थे, और ऐसे भी थे, जिन्हें एक हाथ भी नहीं था। इसी प्रकार कोई-कोई एक पादवाले, कोई-कोई दो पादवाले, कोई-कोई तीन पादवाले तथा कोई-कोई इससे भी अधिक अनेक पादोंवाले थे। उनमें से कितने महान् पराक्रमी थे, कितने महान् योगाभ्यासी थे, कितने सुतपक्व (?) थे, कितने महाबलवान् थे। कितने ऐसे थे, जो सर्वत्र जा सकते थे, कितने निष्क्रोधी थे, कितने इच्छानुसार विविध स्वरूप धारण करनेवाले थे। और ऐसे भी कितने थे जो परम घोर; तथा क्रूर स्वभाववाले थे, कितने परम पवित्र, कल्याणकारी, पुण्यकर्त्ता एवं प्रिय बोलनेवाले थे। कुछ हाथों में कुश लिये रहते थे, किसी की जिह्वाएँ बहुत बड़ी थीं, किसी के कान बहुत लंबे थे, किसी के मुख बहुत भीषण थे। कोई हाथों से खानेवाले थे, कोई मुख से खानेवाले थे, कोई शिर से खानेवाले थे, कोई-कोई मुण्डमाला पहिने हुए थे। कोई-कोई हाथों में धनुष धारण किये हुए थे, कोई-कोई मुद्गर धारण

---

[१] मूँज के समान केशवाले।

किये थे, कोई-कोई तलवार तथा शूल धारण किये थे, कितनों के नेत्र उद्दीप्त हो रहे थे, कितनों के मुख उद्दीप्त हो रहे थे, कितने विचित्र ढंग की मालाएँ धारण किये थे तो कितने विचित्र चन्दनादि का लेप किये थे। उनमें से कुछ अन्नाहार करनेवाले थे, कुछ मांसाहारी थे, कितने अनेक स्वरूप धारण करनेवाले थे, कितने अति सुन्दर स्वरूपवाले थे। उनमें से कितने रात्रि तथा संध्या में गमन करनेवाले थे कितने अति घोर दिखाई पड़नेवाले थे, कितने अति सौम्य दिखाई पड़नेवाले थे। कितने केवल दिन को चलनेवाले थे, कितने रात्रि को चलनेवाले थे, कितने अति कठिनाई से देखे जानेवाले थे (अर्थात् इतने घोर स्वरूपवाले थे कि लोगों का उनकी ओर देखने का साहस ही नहीं होता था)। इस प्रकार उन निशिचरों को भूति ने उत्पन्न किया। वे सब भूति के पुत्रगण एकमात्र महादेव में चित्त लगानेवाले थे। इन सबों के न तो स्त्री थी न पुत्र थे, सब के सब ब्रह्मचारी थे। इन आत्मयोगी भूतों की संख्या एक लाख थी, भूति के इन सब महात्मा पुत्रों की चर्चा कर चुका ॥२०४–२५६॥

कपिशा कुष्माण्डी ने कुष्माण्ड के संयोग से पिशाच दम्पतियों को जन्म दिया, जो सब कपिश (भूरे या मटमैले) रंग के थे। कपिश वर्ण होने के कारण वे पिशाच कहलाये। ये सब मांसाहारी थे। अन्य सोलह पिशाच दम्पति हैं, जिनके वंशज वर्तमान हैं। उनके वंशधरों का नाम बतला रहा हूँ, वे सब मनुष्य का भक्षण करनेवाले थे। छगल और छगली, वक्र और वक्रमुखी, सूचीमुख और सूची, कुम्भपात्र और कुम्भी, वज्रदंष्ट्र और दुन्दुभि, उपचार और अपचार, उलूखल और उलूखली, अनर्क और अनर्का, कुखण्ड और कुखण्डिका, पाणिपात्र और पाणिपात्री, पांशु और पांशुमती, नितुण्ड और नितुण्डी, निपुण और निपुणा, छलाद और उच्छेषणा तथा पुस्कन्द और स्कन्दिका—ये सोलह (?) पिशाच दम्पतियों के गण कहे गये हैं। अजामुख, बकमुख, पूरी, स्कन्दी, विपाद, अङ्गारिक, कुम्भपात्र, प्रकुन्दक, उपचार, उलूखलिक, अनर्क, कुखण्डिक, पाणिपात्र, नैतुण्ड, ऊर्णाश, निपुण, सूचीमुख, और उच्छेषणाद कहे जानेवाले सोलह (?) कुल हैं। कुष्माण्ड के कुल में उत्पन्न होनेवाले इन कुलीनों का वर्णन किया गया। इन्हीं के कुल में उत्पन्न होनेवाले अन्यान्य पिशाचों को जानना चाहिये। इनके पुत्र पौत्रादि की संख्या अनन्त है, जो सब अति वीभत्स आकृतिवाले तथा निन्द्य कर्म करनेवाले थे, अतः उन पिशाचों के लक्षण बतला रहा हूँ, सुनिये। पिशाचों के सभी अंगों में केश होते हैं, आँखें गोली होती हैं, बड़े-बड़े दाँत तथा नख होते हैं, अंग टेढ़े-मेढ़े रहते हैं, मनुष्य का भक्षण करते हैं, उनके मुख नीचे की ओर झुके रहते हैं। कुष्मांडिक कहलानेवाले पिशाचगण बिना केशों के होते हैं, शरीर पर रोम भी नहीं रहते, चमड़े, चर्बी, आदि को वस्त्र के स्थान पर लपेटे रहते हैं, वे सर्वदा माँस तथा तिल का आहार करनेवाले हैं। वक्र नामक पिशाचों के सभी अंग, हाथ पैर सब टेढ़े होते हैं, वे चलते समय भी टेढ़ी-मेढ़ी चाल चलते हैं, सर्वदा टेढ़े बने रहते हैं, इच्छानुसार स्वरूप

---

१ संख्या पन्द्रह ही होती है।

२ संख्या अठारह हो जाती है, अतः इन नामों में से कोई विशेषण है। पर प्रमाणाभाव से हमने अनुवाद यथातथ्य कर दिया है।

धारण करते हैं तथा वक्रगामी हैं। निवुन्दक नामक पिशाच लंबे पेटवाले, ऊँची उठी हुई नासिकावाले, छोटे शरीर, छोटे शिर और छोटे हाथवाले, तिल भक्षण करनेवाले तथा सुन्दर कानवाले हैं। अनर्क मर्क (?) नामक पिशाच गण बौने के समान आकृतिवाले, बहुत बोलनेवाले, उछल-उछल कर चलनेवाले, वृक्षों पर निवास करने, तथा वृक्षों पर आहार पसन्द करनेवाले हैं। पांशु कहे जानेवाले पिशाचगण ऊर्ध्व बाहुधारी होते हैं, उनके रोम ऊपर की ओर उठे हुए रहते हैं, उनके आवास स्थान भी ऊपर की ओर उठे हुए होते हैं, वे अपने अंगों से धूल गिराते चलते हैं। उपवीर नामक पिशाचगण अपनी धमनियों को जाननेवाले, सूखे हुए, मूँछ दाढ़ी रखे हुए, चीर धारणकरनेवाले तथा श्मशानों में निवास करनेवाले होते हैं। उलूखल नामक पिशाचगण निश्चल आँखों वाले, लंबी जीभवाले, सर्वदा जीभ से होंठ चाटनेवाले, हाथी और ऊँट की तरह मोटे शिरवाले, विरत तथा समूह बाँधकर चलनेवाले होते हैं। वे कुम्भपात्र नाम से विख्यात पिशाच हैं, जो बिना देखे हुए अन्न का भोजन करते हैं, ये बहुत सूक्ष्म आकृतिवाले, सारे शरीर पर रोमावली युक्त, पीलेवर्णवाले तथा कहीं पर दिखाई पड़नेवाले और कहीं पर न दिखाई पड़नेवाले होते हैं। वे निपुण नामक पिशाचगण हैं, जो इस भूलोक में अकेले पाने पर मनुष्यों में आविष्ट होते हैं, उनके मुख कानों तक फैले हुए रहते हैं, भौंहें लंबी होती हैं, और नाक मोटी होती हैं। वे पूरण नामक—पिशाचगण हैं, जो शून्य भवनों में निवास करते हैं, उनके शरीर मोटे होते हैं, उनके हाथ और पैर बहुत छोटे-छोटे होते हैं और आँखें पृथ्वी पर लगी रहती हैं, ये पिशाचगण बालकों का भक्षण करनेवाले हैं और सर्वदा सूतिका गृहों का सेवन करते हैं। मांस भक्षण करनेवाले पिशाचों के हाथ और पैर पीछे की ओर होते हैं, कद के छोटे होते हैं, वायु के समान वेगवान् होते हैं, ये संग्राम भूमि में जाकर रक्त का आहार करते हैं। स्कन्दी कहे जानेवाले पिशाचगण नग्न रहते हैं, उनके रहने का कोई नियत स्थान नहीं रहता, केश लंबे होते हैं, पिण्डाकार दिखाई पड़ते हैं, इनके अतिरिक्त अन्य पिशाचगण उच्छेषणाशी (जूठा खानेवाले) होते हैं। इन पिशाचों की सोलह (?) जातियों का वर्णन किया जा चुका ।।२५७–२७१।।

इस प्रकार अपनी प्रजाओं में विभिन्न आकृति एवं गुण दोषवाले इन पिशाचों को अल्पबुद्धियुक्त एवं दीन अवस्था में देख ब्रह्मा ने अनुग्रहपूर्वक अन्तर्धान होने, तथा इच्छानुसार विविध स्वरूप धारण करने का वरदान दिया। ये पिशाचगण दोनों सन्ध्याओं (प्रातः एवं सायम्) के अवसर पर विचरण करते हैं, उनकी जीविका एवं रहने के स्थानों को बतला रहा हूँ। जो भवन टूटे फूटे रहते हैं, थोड़े आदमी निवास करते हैं, विध्वस्त हो जाते हैं, अत्याचारों समेत निवास किया जाता है, असंस्कृत अथवा विना लिपे-पुते रहते हैं, स्पर्श नहीं किये जाते उनमें ये निवास करते हैं। इसके अतिरिक्त राजमार्ग, (सड़क) गलियाँ, घर के समीप के उपवन, चबूतरे या चौराहे, द्वारदेश, निर्मम अट्टालक, एकान्त आवास, पथ, नदियाँ, तीर्थ, देवी देवताओं के कल्पित निवास वृक्ष और महापथ (श्मशान मार्ग) इन स्थानों में सर्वत्र पिशाचगण निवास करते हैं। जो अधार्मिक जन हैं, वर्णाश्रम की मर्यादा से वहिर्भूत हैं, वर्णसंकर हैं, कारीगरी या शिल्पकर्म करनेवाले हैं, देवताओं ने उनको ही इन पिशाचों की आजीविका बनाई है। चोरी, विश्वासघात, अमृत (?) तुल्य जीवों

एवं इनके अतिरिक्त अन्यान्य कुत्सित उपायों द्वारा उपार्जित धन से जो क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं, उनमें देवता पिशाच होते हैं। मधु, मांस, भात, दही, तिलचूर्ण, मदिरा, आसव, धूप, हरिद्रा, खिचड़ी, तेल, मोथा, गुड़ और भात (एक में) काले वस्त्र, धूप और पुष्प—इन सब सामग्रियों समेत पर्वों की संधियों के अवसर पर पिशाचों की बलि देनी चाहिये। ऐसी आज्ञा ब्रह्मा ने उन पिशाचों को दी और शूलपाणि महेश्वर को उन सभी भूतों एवम् पिचासों का स्वामी नियत किया ॥२८०–२८८॥

सुन्दरी दंष्ट्रा ने व्याघ्रों और सिंहों को पुत्ररूप में उत्पन्न किया। इनके अतिरिक्त चीते, अन्य प्रकार के बाघ और शेर तथा अन्यान्य मांसभक्षी वन्य पशुओं को उसने उत्पन्न किया। अब इसके उपरान्त ऋषा की सम्पूर्ण प्रजाओं का विस्तार क्रम सुनिये। उसकी पाँच कन्याएँ थीं, जिनके नाम मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। मीना, माता, वृत्ता, परिवृत्ता तथा अनुवृत्ता—ये पाँच उसकी कन्याएँ थीं, इनके पुत्रादिकों का वर्णन सुनिये। सहस्र दाँतोंवाले मकर, पाठीन (जलजन्तु) तिमि, (मछली विशेष), रोहित, (रोहू)—ये सब मीनों के भेद मीना की सन्तानों में कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त छोटे और बड़े, चार प्रकार के ग्राह, निष्क और शिशुमार—इन सबको [1]मीना (माता) ने उत्पन्न किया। वृत्ता ने जल में विचरण करनेवाले सभी प्रकार के कच्छपों (कछुओं) को तथा सभी प्रकार के शंखों को अगणित संख्या में उत्पन्न किया। अनुवृत्ता ने मेढ़कों के सभी भेदों एवं उपभेदों को तथा ऐणेय (१) और शम्बूक (घोंघा) के सभी भेदोपभेदों को उत्पन्न किया। परिवृत्ता ने शुक्ति (सुतुही), बराटिका (कौड़ी) तथा शङ्ख के सभी भेदोपभेदों को उत्पन्न किया। इनके अतिरिक्त कालकूट और जलौका (जोंक) के सभी भेदों को भी उसने उत्पन्न किया। यह ऋषि के वंश का वर्णन किया जा चुका, जिसकी उपर्युक्त पाँच शाखायें कही गई हैं। इन निरर्थक योनि में उत्पन्न होनेवाले जन्तुओं का वंश विस्तार बहुत कहा जाता है। स्वेद से उत्पन्न होनेवाले जीवों के भेदोपभेदों की चर्चा कर रहा हूँ, जो जिनके स्वेद से जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं। हे द्विजगण! इन स्वेदज जन्तुओं के उत्पादक मनुष्य हैं, ये स्वेदज जन्तु स्वस्तिपिक (?) शरीरों से उत्पन्न होते हैं। स्वेद और मल से उत्पन्न होनेवाले जन्तुगण उशना नाम से प्रसिद्ध हैं। शिर के बालों में तथा वस्त्र में स्वेद से उत्पन्न होनेवाले जन्तु यूका नाम से स्मरण किये जाते हैं। चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि से तपी हुई पृथ्वी में जो जन्तु उत्पन्न होते हैं, बादलों की वृष्टि से भीगे हुए तृणों में जो जन्तु उत्पन्न होते हैं, वे स्वेदज जन्तु कहे जाते हैं। विविध प्रकार के चींटीं जाति के जन्तु एवं कीट, जो श्रेणी बद्ध होकर चलते हैं, शंख और रत्नों के विविध प्रकार के जीव, एवं कील का चारक (?) तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे जन्तु पार्थिव (पृथ्वी के) स्वेदज कहे जाते हैं। घाम (धूप) आदि से तपे हुए जल से, वृष्टि से तथा मृगों (पशुओ) के शरीरों से ये अनेक जन्तु उत्पन्न होते हैं। मीनक, पिङ्गल, दंश (डँसे) तित्तिरपुत्रक, नीलचित्र, अलक्र–प्रभृति जन्तुओं की संख्या बहुत अधिक है। ये जन्तु जलज एवं स्वेदज कहे जाते हैं। ये जलज और स्वेदज जन्तु काशतोयज्ञक (?) नलद, बहुपादक, सिंहल, रोमल, पिच्छल आदि

---

[1] आनन्दाश्रम की प्रति में मीना पाठ यहाँ पर भी है, जो अशुद्ध प्रतीत होता है, क्योंकि पाँचों कन्याओं में मीना के बाद माता का नाम आता है।

नामों से पुकारे जाते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुतेरे भी हैं। घृत से, उड़द से, मूँग से भी ये जन्तु उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार बेल, जामुन, आम, सुपारी आदि फलों से भी ये जन्तु उत्पन्न होते हैं। मूँग, कटहल, चावल, सूखे वृक्षों के कोटर एवं बहुत दिनों को रखी हुई वस्तुओं से भी ये कीट उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत पदार्थों से इन कीटों की उत्पत्ति होती है; किन्तु उनसे सर्वदा चिरकाल तक नहीं उत्पन्न होते। घोड़े आदि पशुओं तथा विष आदि पदार्थों से भी ये क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं। बहुत दिनों से रखे गये गोबर में ये जन्तु उत्पन्न होते हैं। हे द्विजगण! इसी प्रकार काष्ठादि वस्तुओं से घुन आदि क्षुद्र जन्तु उत्पन्न होते हैं। वृक्षों से विविध प्रकार की नीली मक्खियाँ उत्पन्न होती हैं, सब प्रकार की सूखी हुई वस्तुओं से पुत्रिका उत्पन्न होती हैं; शतिको (?) से सभी प्रकार के वर्षाकालीन सर्प उत्पन्न होते हैं। सूखे गोबरों से बिच्छुओं की उत्पत्ति होती है। हे प्रभो! इसी प्रकार गौओं और भैंसों के शरीर से भी स्वेदज जन्तुओं की उत्पत्ति होती है। मत्स्य अदि विविध जन्तु अण्डे से उत्पन्न होते हैं। चैवीरिक, गोजा एवं अन्यान्य प्रकार के जोंक आदि क्षुद्र जल जन्तुओं की उत्पत्ति भी अण्डों से होती है। इसी प्रकार कबूतर, कुरर आदि पक्षी अण्डों से उत्पन्न होते हैं। अति सूक्ष्म यूक (जूँ) आदि जन्तु भी अण्डों से उत्पन्न होते हैं। उसी प्रकार आठ पैरोंवाले कुलीरक (केकड़ा) भी अंडे से उत्पन्न होनेवाले जन्तुओं में गिने गये हैं। सभी प्रकार की मक्खियों की जातियों में जितने अन्यान्य भेदोपभेद पाये जाते हैं, वे भी अंडों से उत्पन्न होते हैं। कुछ मक्खियाँ उच्छिष्ट वस्तुओं पर, जल में तथा कीचड़ में निवास करती हैं। सभी प्रकार के मशकों के भेदोपभेद, भ्रमरों के भेदोपभेद, पुत्रिका तथा पुत्र सप्तक आदि क्षुद्र जन्तु तृणों से उत्पन्न होते हैं। मणिच्छेद तथा व्याल ये पोतज नाम से प्रसिद्ध हैं (?) शतवेरि के जितने भेदोपभेद हैं वे करीषों (करषे) से उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के अन्यान्य स्वेदज क्षुद्र जन्तुओं की संख्या अगणित है। केवल संक्षेप में मैंने इनका वर्णन किया है, ये सब जन्म प्राक्तन कर्म के अधीन कहे जाते हैं। इन सबों के अतिरिक्त जो नैर्ऋत प्राणी हैं, वे उपसर्गज कहे जाते हैं। कोई जन्म ग्रहण करनेवाले प्राणी पूत और कोई औत्पत्तिक कहे जाते हैं। प्रायः सभी देवगणों को औत्पत्तिक जानना चाहिये। कुछ देवता योनिजात हैं और कुछ विना किसी कारण के ही उत्पन्न होनेवाले हैं। सरमा के तुलालाघ, और कोल ये दो पुत्र और शिवा नाम की तीसरी कन्या हुई। ये सरमादिगण के नाम से प्रसिद्ध हैं। श्याम, शबल, अर्जुन, हरित, कृष्ण, धूम्र, अरुण और तूलालाबु ये कद्रू की सन्ततियाँ हैं। सुरसा ने एक सौ शिरोमृत सर्पों को उत्पन्न किया। सर्पों का राजा तक्षक और नागों का राजा वासुकि है। ये प्रधानतया तमोगुणवाले प्रजागण क्रोधवशात्मक कहे गये हैं ॥२८९–३२४॥

प्रलह के पुत्र के संयोग से ताम्रा में जो प्रजा सृष्टि हुई, उसे सुनिये, ताम्रा से अन्यान्य बहुत सी संततियाँ उत्पन्न हुईं, जो सुप्रसिद्ध हैं। जैसे, श्येनी, भासी, क्रौञ्ची, धृतराष्ट्री और शुकी। इनमें श्येनी अरुण की स्त्री हुई, और उसने सम्पाति और जटायु नामक महाबलवान् एवं पराक्रमी श्रेष्ठ पक्षियों को उत्पन्न किया, सम्पाति ने एक पुत्र और एक कन्या को जन्म दिया। जटायु के जो पुत्र उत्पन्न हुए, वे काक गृध्र और अश्वकर्णी हैं। गरुत्मान् (गरुड़) की स्त्री भासी क्रौञ्ची, शुकी, धृतराष्ट्री और भद्रा थीं, उनमें जो सन्ततियाँ

Funding by IKS-MoE

उत्पन्न हुईं, उन्हें बतला रहा हूँ। इन पत्नियों में से शुकी ने गरुत्मान् के संयोग से छ सुविख्यात पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम त्रिशिर, सुमुख, बल, महाबलवान् पृष्ठ, सुन्दर मुखवाला त्रिशंखनेत्र और महाबलशाली स्वरूपवान सुरस थे। इन महाबलशाली, क्रूरकर्मा, सर्पभक्षी गरुड़ों के पुत्रों एवं पौत्रों की संख्या चौदह सहस्र थी। उनके पुत्रों पौत्रों से ही पक्षियों की सृष्टि का विस्तार हुआ। उन पक्षियों ने जिन देशों को व्याप्त किया है, अर्थात् वे जिन-जिन देशों में अपना स्थान बनाकर निवास करते हैं, उन्हें क्रमशः बतला रहा हूँ। सम्पूर्ण शाल्मलि द्वीप, सारा देवकूट पर्वत, पर्वतराज मणिमान् और सहस्र शिखर, पर्णमाल, सुकेश, शतशृंग, कौरज, पञ्चशिखर, हेमकूट प्रभृति पर्वतों पर वे निवास करते हैं। प्रचण्डवायु[१] उत्पन्न होनेवाले अति कान्तिमान; पद्म के समान रंगवाले, उन महाबलशाली गरुड़ नामक पक्षियों से इन पर्वतों के शिखर जाल भरे पड़े हैं। भासी के पुत्र भास नाम से विख्यात हुए। उलूक, काक, कुक्कुर (मुर्गे) मयूर, कलविंक (गवरा, गौरैया) कपोत, लवा, तीतर प्रभृति पक्षी भासी की सन्तति स्मरण किये गये हैं। क्रौञ्ची ने वार्धीणस[२] नामक पक्षियों को उत्पन्न किया। कुरर, सारस, बगले, आदि अन्यान्य जो मांसभक्षी पक्षी हैं, उन्हें श्येनी ने उत्पन्न किया। सुन्दरी धृतराष्ट्री ने हंस, कलहंस, चक्रवाक तथा अन्य सभी प्रकार के हिंसक पक्षियों को जन्म दिया। इन सबों के इन पुत्रों के पुत्र पौतों की संख्या असंख्य हुई। गरुड़ की सन्ततियों का विवरण कह चुका अब इरा की सन्ततियों को सुनिये। इरा ने कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली तीन कन्याओं को जन्म दिया, जो सभी प्रकार की वनस्पतियों, वृक्षों और लताओं की माता थीं। उनके नाम थे लता, बल्ली और वीरुधा। तिनमें से लता ने नदी आदि के तट प्रदेश में स्थित रहने वाले, पुष्परहित वनस्पतियों को उत्पन्न किया, इसके अतिरिक्त पुष्पों और फलों से संयुक्त वृक्षों को लता ने जन्म दिया। बल्ली ने गुल्मों को जन्म दिया, समस्त तृण जाति एवं त्वक् सार (जिसके चमड़े में ही सार हो, बाँस) आदि को भी बल्ली ने उत्पन्न किया। वीरुधा की सन्ततियाँ वीरुध[३] के नाम से विख्यात हुईं। यह वंश परिचय की कथा यहाँ समाप्त की जाती है। कश्यप के वंश में उत्पन्न होनेवाले स्थावर जंगम जीव निकाय की सृष्टि को मैं सुना चुका, इनके पुत्रों एवं पौत्रों का परिचय सुना चुका, जो इस समस्त जगन्मण्डल को छेंके हुए हैं। इस विस्तृत प्रजा सृष्टि के एक अंश का लघु परिचय मैं आप लोगों को करा चुका। मरीचि पुत्र कश्यप की प्रजाओं का सृष्टि-विस्तार इस प्रकार संक्षेप में कहा जा चुका। द्विजगण! इस सृष्टि-क्रम को विस्तार के साथ सैकड़ों वर्षों में भी नहीं कहा जा सकता ॥३२५–३४३॥

---

[१] अथवा, प्रचण्डवायु के समान प्रभावशाली।

[२] एक विशेष पक्षी। जिसका पैर, शिर और आँखें लाल तथा शेष अंग काले रंग के हों। मार्कण्डेय पुराण में उसका लक्षण इस प्रकार लिखा गया है। 'रक्तपादो रक्तशिरा रक्त चक्षुर्विहंगमः, कृष्णवर्णेन च तथा पक्षी वार्धीणसो मतः॥ इसके अतिरिक्त "नीलग्रीवो रक्तशीर्षः कृष्णपादः सितच्छदः। वार्धीणसः स्यात् पक्षीशो मम विष्णोरतिप्रियः" यह एक दूसरा लक्षण भी मिलता है।

[३] विस्तार के साथ फैलनेवाली लताएँ।

Funding by IKS-MoE

कश्यप की स्त्रियों में अदिति धर्मशील एवं दिति बलशील कही जाती हैं। इसी प्रकार सुरभि तपस्या में निरत रहनेवाली तथा दनु मायाविनी कही गई है। मुनि अध्ययन करनेवाली तथा गन्धशीला है। अरिष्टा गान करनेवाली तथा खशा क्रोध करनेवाली कही जाती है। कद्रू परम क्रूर प्रकृति की तथा क्रौञ्ची वेदों का अध्ययन करनेवाली अथवा बहुत अधिक सुननेवाली कही जाती है। इसी प्रकार इरा को लोग अनुग्रह करनेवाली तथा दनायु को भक्षण करनेवाली बतलाते हैं। विनता भार वहन करनेवाली और ताम्रा पाश धारण करनेवाली कही जाती है। लोकमाताओं के यही स्वभाव हैं, उनके शील सदाचारादि का समष्टि में यही परिचय है। इन सबों के धर्म, शील सदाचारादि, बुद्धि, क्षमा, बल एवं स्वरूप से राजसी, तामसी एवं सात्त्विकी प्रवृत्तियाँ उनमें पाई जाती हैं, और इस प्रकार वे धार्मिक और अधार्मिक दोनों प्रकार के विचारोंवाली कही जाती हैं। कश्यप की ये समस्त प्रजायें अपनी-अपनी माताओं के समान स्वभाववाली तथा कुलीन थीं। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, पिशाच, पशु, मृग, पक्षी और लता बल्ली आदि सभी प्रजाएँ इस प्रकार की कही जाती हैं। यतः ये प्रजाएँ दक्ष की मानुषी कन्याओं में उत्पन्न हुईं अत सभी मन्वन्तरों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ माने गये। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पदार्थों के साधक मनुष्य ही हैं। उनके इस लोक में (मर्त्यलोक) सुर असुरगण कार्य सिद्धि के लिए बारम्बार निम्नश्रोत के रूप में उत्पन्न होते हैं। तपस्वियो के वंश में उत्पन्न होनेवाले देवताओं, असुरों, गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, राक्षसों, पिशाचों, पक्षियों, सर्पों, विहंगमों, व्यालों, शिखियों, सभी प्रकार की ओषधियों, कृमि, कीट पतंगों; क्षुद्र जलजन्तुओं, पशुओं, ब्राह्मणों एवं श्रीमानों के पुण्यदायी लक्षण एवं वंश विस्तार को मैं बतला चुका। यही उनका वर्णन है। यह वर्णन आयु प्रदान करनेवाला, धन्य, श्री सम्पन्न, कल्याणदायी एवं सुख का साधन देनेवाला है, इसको सर्वदा निन्दा न करते हुए सुनना तथा धारण करना चाहिये। इस सृष्टि विस्तार के वर्णन का जो मनुष्य नियमपूर्वक, महात्माओं, पण्डितों एवं ब्राह्मणों की सभा में पाठ करता है, वह सन्तति लाभ करता है, प्रचुर धन सम्पत्ति को प्राप्त करता है तथा इस लोक के बाद परलोक में सुन्दर गति प्राप्त करता है ॥३४४—३५५॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे कश्यपीय प्रजासर्गो नाम नवषष्टितमोऽध्यायः ॥६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

ऋषियों के वंशों का अनुकीर्तन

सूत ने कहा:—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार महात्मा कश्यप द्वारा सभी स्थावर जंगमात्मक प्रजाओं की सृष्टि सम्पन्न हो जाने पर एवं उनके भली भाँति प्रतिष्ठित हो जाने पर सब के प्रमुख प्रजापति ब्रह्मा ने उन सब के आधिपत्य पर क्रमशः भिन्न-भिन्न को नियुक्त करने का उपक्रम किया। समस्त द्विजातियों (ब्राह्मणों) वीरुधों, नक्षत्रों, ग्रहों, यज्ञों एवं तपस्याओं के राजा के पद पर सोम (चन्द्रमा) को अभिषिक्त किया। सभी

Funding by IKS-MoE

अंगिरा के वंश में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का राज्यपद बृहस्पति को दिया। भृगु गोत्र में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं का राज्यपद काव्य (शुक्र) को दिया। इसी प्रकार आदित्यों का राज्य पद विष्णु को, मरुतों का वासव को दिया। दैत्यों का राजा दितिनन्दन प्रह्लाद को बनाया, इसी प्रकार साध्यों का राजा नारायण को, रुद्रों का राजा वृषभध्वज (शंकर) को तथा दानवों का राजा विप्रचित्ति को नियुक्त किया। जल का राज्यपद वरुण को, राजाक्षों, यक्षों, राक्षसों, भूपतियों तथा धन-सम्पत्ति का स्वामित्व विश्रवा के पुत्र कुबेर को समर्पित किया। पितरों के राज्यपद पर सूर्यपुत्र यमराज को अभिषिक्त किया। सभी भूतों एवं पिशाचों का स्वामित्व शूलपाणि शंकर को समर्पित किया। पर्वतों का राज्यपद हिमवान् को, नदियों का सागर को तथा गन्धर्वों का चित्ररथ को दिया। अश्वों के राज्यपद पर उच्चैःश्रवा को अभिषिक्त किया, मृगों एवं गौ, बैल तथा अन्य चतुष्पदों का राजा सिंह को बनाया। सभी प्रकार के पक्षियों का स्वामी पक्षधारियों में श्रेष्ठ गरुड़ को नियत किया। अशरीरी भूतों एवं गन्धों का स्वामी मारुत को बनाया। शब्द, आकाश, एवं बल का स्वामी बलवानों में श्रेष्ठ वायु को नियत किया। समस्त दंष्ट्राधारी सर्पों का स्वामित्व शेष को तथा नागों का स्वामी वासुकि को बनाया। सरीसृप, सर्प एवं नागों का स्वामी तक्षक को बनाया। समस्त सागरों, नदियों मेघों, वर्षा तथा आदित्य के स्वामित्व पर अन्यतम पर्जन्य को अभिषिक्त किया। सभी अप्सरावृन्दों का स्वामी कामदेव को बनाया। ऋतुओं, मास, ऋतुओं में होनेवाले कार्य विशेष पक्ष, विपक्ष, (?) मुहूर्त, पर्वों, कला, काष्ठा आदि के प्रमाण, दोनों अयनों की गणित एवं योग का स्वामी संवत्सर को बनाया। तदनन्तर प्रजापति ने पूर्वदिशा में सुविख्यात रज के पुत्र सुधामा को राजा बनाया। पश्चिम दिशा में रज के पुत्र महात्मा केतुमान अच्युत को राजा के पद पर अभिषिक्त किया। तदनन्तर मनुष्यों का अधिपति सूर्यपुत्र मनु को बनाया। आज भी ये अधिपति गण इस सातों द्वीपों एवं नगरादि से समन्वित समस्त पृथ्वी मण्डल में अपने-अपने प्रदेशों में धर्म पूर्वक प्रजापालन करते हैं। पूर्वकाल में स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मा ने इन सबों को राज्यपद पर अभिषिक्त किया था, प्रत्येक मन्वन्तरों में जो मनु होते हैं, वे ही राज्यपद पर अभिषिक्त होते हैं। इन व्यतीत मन्वन्तरों में कितने राजागण बीत चुके हैं। इसी प्रकार भावी मन्वन्तरों के आने पर अन्यान्य अभिषिक्त किये जायँगे। जितने भूत कालीन एवं भविष्यत्कालीन मन्वन्तरों में होनेवाले राजा लोग हैं, वे सब मन्वन्तरों के अधीश्वर कहे जाते हैं। इन्हीं नरपतियों ने प्रतापशाली राजा पृथु को वेदविहित विधि से राजसूय यज्ञ के अवसर पर राजा के पद पर अभिषिक्त किया। समस्त प्रजाओं के स्वामी परम ऐश्वर्यवान् कश्यप ने प्रजावृद्धि के लिए इन पुत्रों को उत्पन्न कर पुनः पुत्र कामना से परम कठोर तप करना प्रारम्भ किया और यह चिन्तन किया कि मेरे दो गोत्रवृद्धि करनेवाले पुत्र उत्पन्न हों। इस प्रकार कश्यप के विशेष मनोयोग पूर्वक ध्यानावस्थित होने पर महात्मा कश्यप के ब्रह्मा के अंशभूत दो महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम वत्सार और असित थे, दो के दोनों ही ब्रह्मचिन्तन में लीन रहनेवाले थे। वत्सार से निध्रुव एवं महान् यशस्वी रैभ्य का जन्म हुआ, रैभ्य की सन्ततियाँ को रैभ्यगण नाम से जानना चाहिये, निध्रुव की सन्ततियों का विवरण सुनिये। च्यवन से सुकन्या में सुमेधा की उत्पत्ति हुई। निध्रुव की जो पत्नी थी वह कुण्डपायिगणों की माता थी।

Funding by IKS-MoE

असित से एकपर्णा नामक पत्नी में ब्रह्मिष्ठ का जन्म हुआ। शांडिल्यों की बातें सुनकर देवल परमयशस्वी हुए। निध्रुवगण, शाण्डिल्यगण और रैम्यगण—ये तीनों कश्यपगोत्रीय थे। ये वर प्रभृति देवगण देवल की सन्ततियाँ हैं। "मनु[1] के ग्यारहवें चतुर्युग के व्यतीत हो जाने पर अर्थात् ग्यारहबार चारों युगों के व्यतीत हो जाने पर, जब द्वार पर युग शेष रह जाता है, तब उसमें इन प्रजाओं (?) की सृष्टि हुई।" ॥१—२६॥

मानस के पुत्र रिप्यन्ते हुए और उनके पुत्र दम नाम से विख्यात हुए। उनके भी पुत्र मानस कहे गये, जो तृणविन्दु नाम से प्रसिद्ध हुए। तीसरे त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में वह राज्यपद पर प्रतिष्ठित था। उसकी कन्या इडिविला अपने सौन्दर्य में अनुपम थी। राजर्षि ने अपनी उस कन्या को पुलस्त्य को समर्पित किया। इडिविला में ऋषि विश्रवा की उत्पत्ति हुई। उनकी चार पत्नियाँ थीं, जो पुलस्त्य वंश में उत्पन्न होनेवाले ऋषिओं की वंश वृद्धि करनेवाली हुई। देवाचार्य बृहस्पति की एक परम यशस्विनी कन्या थी, उसका नाम था देववर्णिनी। बृहस्पति की उस कन्या के साथ उसने (विश्रवा ने) विवाह किया। माल्यवान् की पुष्पोत्कटा और वाका नामक कन्याओं के साथ भी उसने विवाह किया, तथा माली की कैकसी नामक कन्या को भी विवाहा। उन सबों में उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं को सुनिये। सब से ज्येष्ठ वैश्रवण (कुबेर) को देववर्णिनी ने उत्पन्न किया। उसका विधान देवताओं का था, श्रुतिज्ञान ऋषियों का था, रूप राक्षसों का था, बल असुरों का था, तीन चरण थे, विशाल शरीर था, शिर बहुत बड़ा था, आठ दाँत थे, दाढ़ी हरे वर्ण की थी, कान खूँटे की तरह थे, लाल वर्ण था, एक बाहु छोटा और एक बहुत बड़ा था। देखने में पीले वर्ण का तथा परमभयानक लगता था। उसे जगत की माया आदि का पूर्ण ज्ञान था, ज्ञान सम्पत्ति से पूर्ण समृद्ध था, इस प्रकार के विश्वरूप धारी पुत्र को देखकर पिता ने कहा, यह स्वयं कुबेर है, कु शब्द कुत्सित अर्थ का वाची है, अर्थात् कु के अर्थ होते हैं भद्दा, और बेर शरीर को कहते हैं, यतः इसका बेर (शरीर) कुत्सित (देखने में भद्दा) है अतः कुबेर नाम से यह अभिहित किया गया। यतः यह विश्रवा का पुत्र है और उसकी आकृति भी विश्रवा ही के समान है, अतः लोक में वैश्रवण के नाम से इसकी ख्याति होगी। कुबेर ने ऋद्धि नामक पत्नी में नलकूबर को उत्पन्न किया, जो परम विख्यात हुआ। इसके अतिरिक्त कैकसी ने रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा तथा विभीषण—इन चार सन्ततियों को जन्म दिया। उस रावण का कान खूँटे की भाँति था, दस उसके कंठ थे, पिंगल वर्ण का था, बाल लाल रंग के थे, जन्म से ही कज्जल के समान काला था, बड़े-बड़े दाँत थे, कंठ प्रदेश लाल रंग का था, रूप और बल से समन्वित था, उसकी सेना यथार्थतः बलवान् थी, सत्य बुद्धि था, शरीर दृढ़ था, सर्वदा राक्षसों से ही युक्त रहता था, स्वभाव से ही वह परम दारुण, एवं क्रूर था, बहुत जोर से रव (शब्द) करने के कारण वह रावण नाम से विख्यात था। पूर्व जन्म में वह हिरण्यकशिपु नाम से दैत्यों का राजा था वह राक्षसराज चारों युगों तक राज्य करता रहा

---

[1] यह अप्रासंगिक अंश प्रक्षिप्त जान पड़ता है, बँगला प्रति में इसका पाठ नहीं है। पर आनन्दश्रम की प्रति ही यतः हमारे सामने आदर्श रूप में थी, अतः शाब्दिक अनुवाद मात्र कर दिया गया; पर संगति नहीं बैठती।

और राक्षसों के राजाओं में वह तेरहवाँ था (?) उसके राज्य काल की अवधि संख्या जाननेवाले पण्डितों ने पाँच करोड़ इकसठ नियुत (?) बतलाया है। साठ लाख वर्षों तक वह रावण देवताओं और ऋषियों को खूब जगाकर अर्थात् अति कष्ट देकर चौबीसवें त्रेतायुग में अपनी तपस्या के नष्ट हो जाने पर दशरथपुत्र रामचन्द्र के हाथों सैन्य समेत विनष्ट हुआ। पुष्पोत्कटा के महोदर, प्रहस्त, महापांशु, और खर नामक पुत्र तथा कुम्भीनसी नामक कन्या उत्पन्न हुई। वाका की सन्ततियों में त्रिशिरा, दूषण, विद्युज्जिह्व राक्षस नामक पुत्र तथा असलिका नामक कन्या सुप्रसिद्ध हैं। ये उपर्युक्त दस पुलस्त्य के वंश के क्रूरकर्म करनेवाले राक्षस जो घोर आवास स्थानों में निवास करनेवाले तथा देवताओं से भी दुर्दम्य थे।

इडविला के वंश में उत्पन्न होनेवाला महर्षिपुलस्त्य का गोत्रीय, वायें अंग में पिंगलवर्ण वाला वह कुबेर सभी यक्षों का, पुलस्त्य गोत्र में उत्पन्न होनेवाले समस्त राक्षसों का, तथा अगस्ता और विश्वामित्र के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले वेदाध्यायी, तपस्या व्रत आदि में निष्ठा रखनेवाले किन्तु क्रूरकर्मा ब्रह्मराक्षसों का राजा था। अन्य राक्षस गण यज्ञमुख हैं, इस प्रकार ये तीन प्रकार के कहे जाते हैं। यातुधान ब्रह्मध्यान, और वार्ता—ये दिन में गमन करने वाले हैं। कवियों ने इन तीनों के अतिरिक्त निशाचर गणों को चौथे राक्षस गणों में स्मरण किया है। पुलस्त्य के गोत्र में उत्पन्न होनेवाले नैऋर्त, अगस्त्य गोत्रीय, तथा कौशिक विश्वामित्र गोत्रीय—ये सब सात प्रकार की राक्षसों की भिन्न-भिन्न जातियाँ कही गई हैं। इन सबों के स्वभाव गत स्वरूप का वर्णन कर रहा हूँ। ये राक्षस गण गोली आँखों वाले, पिंगलवर्ण, महाकाय, विशाल उदर, आठदाँत, शंकु के समान कान वाले एंव ऊर्ध्वरोमा थे। उनके मुख कान तक फटे हुए थे। किसी-किसी के बाल मूँज के समान तथा किसी-किसी के धूएँ के समान थे। शिर बहुत बड़े थे, देखने में किसी-किसी की शोभा श्वेतवर्ण की मालूम पड़ती थी। कोई-कोई बहुत छोटे थे और कोई बहुत बड़ी-बड़ी बाहुओं वाले थे। किसी के मुख ताँवे के समान लाल और जिह्वा तथा ओंठ लम्बे-लम्बे थे। भौंहें लम्बी और नाकें मोटी थीं। किसी के अंग नील वर्ण के थे, किसी की ग्रीवा लाल वर्ण की थी किसी की आँखे निश्चल तथा गंभीर थीं। देखने में परम भयानक थे। स्वर परम कठोर एवं दारुण थे। परम विकट तथा समूह बाँधकर चलने वाले थे। कोई-कोई परम स्थूलकाय उठी हुई नासिका वाले, शिला के समान कठोर शरीर वाले एवं दृढ़ थे। ये सब राक्षस गण प्रायः अति दारुण निवास स्थल में रहनेवाले तथा कठोर कर्मी थे। कुण्डल, अंगद तथा माला पहनते थे। मुकुट और पगड़ी बाँधते थे। विचित्र रंग के उनके वस्त्र थे, इसी प्रकार आभूषण, माला, चन्दनादि सब कुछ विचित्र थे। वे राक्षसगण अन्न भक्षण करते थे। माँस भी खाते थे यहाँ तक कि मनुष्यों तक को खा जाते थे—ऐसा लोग कहते हैं। पंडित लोग उनके स्वरूप शील स्वभाव आदि के बारे में ऐसा ही स्मरण करते हैं। उनके समस्त बल एवं पराक्रम का मान किसी को नहीं मालूम है, क्योंकि वे सब के सब मायावी हैं। ३०—६३

पुलह के पुत्र सभी प्रकार के मृग, व्याल एवं दंष्ट्रा धारी जीव हुए। इनके अतिरिक्त भूत पिशाच, सर्प, भ्रमर, हस्ती, वानर, किन्नर, मयूर, किंपुरुष तथा अन्यान्य मायावी एवं सर्वदा क्रोध के वश में रहने वाले जीव निकाय उत्पन्न हुए—वे सब पुलह की सन्तति हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तर में महर्षि क्रतु को ही कोई

Funding by IKS-MoE

संतति नहीं थी। न तो कोई पुत्र था, न पौत्र, अपने तेज (बल ब्रह्मचर्य) को समेट कर वे अपने आप में अवस्थित थे, अर्थात् नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे। अब तृतीय प्रजा पति अत्रि के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। उनकी दस स्त्रियाँ थी, जो सब परम सुन्दरी एवं पतिव्रता थीं। घृताची नामक अप्सरा में भद्राश्व को दस सन्ततियाँ उत्पन्न हुईं। जिनके नाम थे, भद्रा, सूद्रा, शलदा, मलदा वेला, खला—ये सात तथा आठवीं गोचपला के नाम से विख्यात हुई। मानरसा नवीं और रत्नकूटा दसवीं सन्तति थी। इन सबों का स्वामी एवं अत्रि के वंश में उत्पन्न होनेवालों का गोत्रकर्त्ता प्रभाकर नाम से विख्यात था, उसने भद्रा में परम यस्वी पुत्र सोम को उत्पन्न किया। एकबार राहु द्वारा आहत हो कर जब सूर्य आकाश से पृथ्वी की ओर गिरने लगे और यह समस्त भूलोक अन्धकार में आच्छन्न हो गया उस समय जिसने प्रकाश दान किया वह यही सोम थे। आकाश मण्डल से इस पृथ्वी तल पर गिरते हुए दिवाकर को महर्षि ने कहा कि तुम्हारा कल्याण हो। उनके इस आर्शीवचन से वे आकाश से पृथ्वी पर नहीं गिरें। महातपस्वी अत्रि ने जिन श्रेष्ठ गोत्रों का प्रवर्त्तन किया, (उन्हें बता रहा हूँ) देवताओं द्वारा जो प्रवर्तित होना है—ऐसे यज्ञों में ? (वे भाग प्राप्त करते हैं,)

(?) उन दसों स्त्रियों में उसने अपने ही समान दस पुत्रों को उत्पन्न किया, जिनके नाम नहीं थे। उन दसों स्त्रियों में उत्पन्न होनेवाले वे दस पुत्र गण अपनी महान् तपस्या के कारण परम कान्तिमान् थे, वेदों के पारगामी विद्वान् थे, कल्याण दायी, अत्रि वंशोत्पन्न ऋषियों के रूप में विख्यात थे। उनके परम विख्यात यशस्वी, ब्रह्मवादी, महातेजस्वी दो पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें ज्येष्ठ दत्तात्रेय थे और दुर्वासा उनके अनुज थे। उसमें एक कनिष्ठ अबला नामक ब्रह्मवादिनी पुत्री थी। प्राचीन काल से पुराणों के जाननेवाले इस गौरव गाथा का गान करते आये हैं कि अत्रि के निष्पाप, शान्तचित्त, महात्मा पुत्र दत्तात्रेय भगवान विष्णु के स्वरूप हैं—ऐसा पुराणज्ञ लोग कहते हैं।' उनके गोत्र में उत्पन्न होनेवाले चार वंश पृथ्वी पर विख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उसके नाम हैं, श्याम, मुद्गल, बलारक और गविष्ठिर। महान् तेजस्वी मनुष्यों के ये चार वंश गोत्र कर्त्ता हैं। कश्यप से नारद, पर्वत तथा अरुन्धती की उत्पत्ति हुई। हे पण्डित गण ! अरुन्धती में उत्पन्न होने वाली सन्ततियों का विवरण सुनिये। नारद ने अरुन्धती को वसिष्ठ को समर्पित किया। नारद महान् तेजस्वी एवं नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत परायण थे। प्राचीन काल में दक्ष के शाप के कारण जब देवताओं और असुरों में विख्यात तारकामय नामक संग्राम छिड़ा था, और अनावृष्टि के कारण समस्त लोक ध्वस्त हो गया था और देवताओं समेत देवराज इन्द्र व्याकुल हो गये थे, उस समय परम बुद्धिमान् वसिष्ठ ने अपने तपोबल से प्रजाओं की रक्षा की थी। उस समय उन्होंने अन्न, औषधि मूल फल, आदि की रचना की, और अति करुणा वश उन्हीं औषधियों द्वारा प्रजावर्ग को जीवित रखा था। द्विजवृन्द ! वशिष्ठ ने अरुन्धती में शक्ति को उत्पन्न किया। अदृश्यन्ती (?) ने शक्ति के संयोग से पराशर को जन्म दिया। काली ने पराशर के संयोग से परम ऐश्वर्य शाली कृष्ण द्वैपायन को उत्पन्न किया। द्वैपायन के संयोग से अरणी में परम गुणवान शुक की उत्पत्ति हुई। पीवरी में शुक के ये छः पुत्र उत्पन्न हुए, भूरिश्रवा, प्रभु, शंभु, कृष्ण और पाँचवें गौर। कीर्तिमती नामक कन्या भी उत्पन्न हुई जो योगाभ्यास में सर्वदा निरत रहनेवाली तथा दृढ़ व्रत परायण थी। वह ब्रह्मदत्त की

माता और सात्त्वगुह की स्त्री हुई। श्वेत, कृष्ण, गौर, श्याम धूम्र समूलिक, ऊष्मपान करनेवाले दारक तथा नील—ये आठ पराशर गोत्र में उत्पन्न होनेवाले महापुरुषों के गोत्र कर्त्ता हैं। अब इसके उपरान्त इन्द्रप्रतिम के पुत्रों का विवरण सुनिये। कपिञ्जली घृताची में वशिष्ठ के कुशीति (कणति) नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इन्द्रप्रतिम नाम से प्रसिद्ध है। पृथु की पुत्री में उनके वसु नामक एक अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र उपमन्यु हुआ, जिनके वंश में उत्पन्न होनेवाले ये उपमन्यु गोत्रीय हैं। मित्रावरुण के वंश में उत्पन्न होनेवाले जो कुण्डी नाम से विख्यात वंशधर हैं, वे एक ही मूल ऋषि के वंशधर हैं औरअन्य वशिष्ठ नाम से विख्यात हैं। वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न होनेवालों के ग्यारह गोत्र कर्त्ता हैं। ये उपर्युक्त आठ ब्रह्मा के मानस पुत्र रूप में विख्यात हैं, और ये सब भाई महाभाग्यशाली हैं, इनके वंश आज तक भूमण्डल पर प्रतिष्ठित है। देवताओं तथा ऋषि-वृन्दों से संकुलित इन तीनों लोकों को ये धारण करते हैं। उनके उन पुत्र पौत्रादिकों की संख्या सैकड़ों ही नहीं सहस्रों तक है, जिन्होंने सूर्य की किरणों की भाँति समस्त पृथ्वी को व्याप्त कर रखा है। ६४-९१

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्त उपोद्घात पादे ऋषिवंशानु कीर्तनं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्ध की प्रक्रिया

तदनन्तर आत्मज्ञानी सूत की ये बातें सुन ब्राह्मणों ने सूतपुत्र (सूत) से पूछा" ? ॥

शांशपायन ने कहाः—सूतजी ! भव (महादेव) की प्रिया, जो पहले सती रूप में थीं, द्वितीय बार किस प्रकार उत्पन्न हुईं। पूर्व जन्म में वे दक्ष प्रजापति की पुत्री थीं बाद में वे उमा रूप में कैसे उत्पन्न हुईं। शैलराज हिमवान् ने उन्हें पितरों की कन्या मेना में उत्पन्न किया—ऐसी प्रसिद्धि है। वे पितर गण कौन हैं, जिनकी मानसी कन्या मेना हैं ? मैनाक उनका दौहित्र है, तपस्या के समय एक पर्ण पर जीवन रखनेवाली उमा उनकी दौहित्री है, सबों की पूर्वज समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ सुरसरि उनकी सब से बड़ी सन्तति है,—इन सब बातों को तो हम लोग बहुत पहले ही से सुन चुके हैं। पर हमारी यह जिज्ञासा आप सुनिये कि ये पितरगण कौन हैं ? कहाँ निवास करते हैं ? इनके श्राद्धादि की विधियाँ क्या हैं ?—इन सब बातों को हम जानना चाहते हैं, आप का कल्याण हो। ये किसके पुत्र है, और किस कारण वश पितर नाम से विख्यात हैं ? ये लोग कैसे उत्पन्न हुए ? किसके पुत्र हैं ? कैसा इनका स्वरूप है ? स्वर्ग में जो पितर निवास करते हैं, वे देवताओं के भी देवता (पूज्य) कहे जाते हैं, वे कौन हैं ? इन सब पितरों की सृष्टि (उत्पत्ति) सम्बन्धी कल्याण दायिनी उत्तम बातें हम लोग सुनना चाहते हैं। हम लोग श्रद्धा एवं विधि पूर्वक उन पितरों को जो कुछ अर्पित करते हैं, वह वस्तुएँ उन्हें (पितरों) प्रसन्न एवं सन्तुष्ट रखती हैं। वे लोग दृष्टिगोचर नहीं होते—इसका क्या कारण प्रसिद्ध है। कौन से पितर गण स्वर्ग में निवास करने वाले हैं और कौन से नरक

में । पिता को, पिता के पिता को, पिता के पितामह को तीनों पिण्डदानों में नामोच्चारण पूर्वक विधिसमेत कौन-कौन से श्राद्ध देने चाहियें, अर्थात् किन-किन श्राद्धों में पिता, पितामह तथा प्रपितामह का नाम लेकर तीन पिण्ड दान किये जाते हैं । ये श्राद्धादि में दी गई वस्तुएँ पितरों को किस प्रकार प्राप्त होती हैं । और जो स्वयमेव नरक में निवास करते हैं, वे किस प्रकार फलप्रदान में समर्थ हो सकते हैं ? ये पितर नामधारी कौन हैं ? किन की हम पूजा करें । हमने ऐसा सुना है कि स्वर्ग लोक में देवगण भी पितरों की पूजा तथा श्राद्धादि क्रिया करते हैं । हे बहुश्रुत ! इस विषय को हम विस्तारपूर्वक सुनाना चाहते हैं ? इन सबों का स्पष्ट अभिप्राय आप बतलाइये । ऋषियों की ऐसी बातें सुन तत्त्वार्थदर्शी सूत ऋषियों के प्रश्नगत एवं मनोगत जिज्ञासाओं को शान्ति करते हुए बोले । ॥ २—१४ ॥

सूत ने कहा :—ऋषिवृन्द ! आप लोगों की पूछी हुई बातों का उत्तर अपनी बुद्धि एवं श्रुति के आधार पर दे रहा हूँ । प्रत्येक मन्वन्तरों में ये पितरगण देवताओं के पुत्र रूप में उत्पन्न होते हैं । व्यतीत हुए एवं भविष्य में आनेवाले मन्वन्तरों में ये क्रमशः ज्येष्ठ और कनिष्ठ रूप में प्रादुर्भूत होते हैं । व्यतीत मन्वन्तरों के जो पितरगण, देवताओं के साथ उत्पन्न हुए थे और अतीत हो चुके, उन्हें तथा सम्प्रति जो पितरगण विद्यमान हैं, उन दोनों को निश्चय पूर्वक बतला रहा हूँ । मनुष्यों द्वारा श्रद्धापूर्वक दी गई वस्तुएँ ही श्राद्ध कही जाती हैं । पूर्वकाल में ब्रह्मा ने देवताओं की सृष्टि की तो उन लोगों ने पूजा आदि कुछ भी नहीं किया और उनको छोड़कर स्वार्थ में लिप्त हो अपने ही सृष्टि विस्तार में लग गये । तब ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि मूढ़ों ! तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी, तुम लोग कुछ भी नहीं जानते । ब्रह्मा के ऐसे शाप दे देने के उपरान्त समस्त लोक मोहवश हो गया । वे सब पुनः विनम्र हुए और पितामह से याचना करने लगे । प्रभु ब्रह्मा ने लोक पर अनुग्रह करने की भावना से उन देवताओं से पुनः कहा । तुम लोगों ने महान् पाप एवं अत्याचार किया है, उसका प्रायश्चित्त करो और उसका विधान अपने-अपने पुत्रों से पूछो । तब तुम लोगों को ज्ञान-प्राप्ति होगी । तब प्रायश्चित्त करने को इच्छुक उन देवताओं ने आत्मा को स्ववश रख अपने पुत्रों से प्रायश्चित्त की विधियाँ बारम्बार पूछीं । धर्मज्ञ एवं जितेन्द्रिय देवपुत्रों ने उन देवताओं को मनसा, वाचा, कर्मणा सम्पन्न होनेवाले अनेक प्रकार के प्रायश्चित्तों का विधान बतलाया । पुत्रों द्वारा प्रायश्चित्तों की शिक्षा प्राप्त कर उन देवताओं को पुनः चेतना प्राप्त हुई और उन्होंने अपने पुत्रों से निवेदन किया कि तुम लोग ही हम सबों के पिता हो, क्योंकि तुम्हीं द्वारा हमें ज्ञान एवं चेतना को प्राप्ति हुई है । तुम लोगों को धर्म, ज्ञान एवं काम—किस वस्तु का वरदान हम लोग दें, बतलाओ ॥ १५—२३ ॥

देवताओं के ऐसे मनोभावों को देखकर ब्रह्मा ने पुनः उनसे कहा, तुम लोग सत्यवादी हो अतः जो कुछ तुम्हारे मुख से निकला है, वह सब कुछ घटित होगा, कुछ भी अन्यथा न होगा । यतः तुम लोगों ने स्वयं अपने पुत्रों को अपना पिता कहा है, अतः वे तुम्हारे पिता हों—यही वर उन्हें दो । परमेष्ठी पितामह की उसी बात से वे देवपुत्र गण पितृकोटि में आ गये और उनके पितृगण पुत्र कोटि में आ गये । इसी कारण वश वे पितरगण पुत्र (देवपुत्र) कहे जाते हैं, और उनमें पुत्र होने पर भी पितृत्व कहा जाता है । इस प्रकार

पितरों को पुत्र रूप में और पुत्रों को पितररूप में स्मरण कर पितामह ब्रह्मा ने अपने वंश की वृद्धि के लिए पुनः पितरों से कहा ॥२४-२७

श्राद्ध कर्म में जो पितरों की पूजा विना किये ही किसी अन्य क्रिया का अनुष्ठान करता है, उसकी उस क्रिया का फल राक्षस तथा दानवगणों को प्राप्त होता है। श्राद्धों द्वारा सन्तुष्ट किये गये पितरगण अव्यय सोम को सन्तुष्ट करते हैं। तुम लोगों से सन्तुष्टि प्राप्त कर वे सर्वदा तुम्हें बढ़ायेंगे। श्राद्धादि कर्मों में इस प्रकार पितरों द्वारा संतुष्ट किया गया सोम समस्त, पर्वत, वन, व चराचर जगत सब को सन्तुष्ट करेगा। जो मनुष्य लोक के पोषण की दृष्टि से श्राद्धादि करेंगे, उन्हें पितरगण सर्वदा पुष्टि एवं सन्तति देंगे। श्राद्धकर्म में अपने प्रपितामह तक नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर जिन पितरों को कुछ दे दिया जायगा, वे पितरगण उस श्राद्धदान से अति सन्तुष्ट होकर देनेवाले की सन्ततियों को सन्तुष्ट रखेंगे। परमेष्ठी ब्रह्मा ने इस प्रकार की आज्ञा पूर्वकाल में दी है। उन्हीं पितरों की कृपा से दान, अध्ययन, तपस्या—सबमें सिद्धि प्राप्त होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि वे पितरगण ही हम सब को ज्ञान प्रदान करनेवाले हैं। इस प्रकार वे पितरगण देवता हैं, और देवगण पितर हैं, और परस्पर एक दूसरे के पितर और देवता—दोनों हैं। आत्मज्ञानी सूत की ऐसी बातें सुनने के उपरान्त मुनियों ने उनसे शेष प्रश्न के बारे में पुनः पूछा ॥२८-३५॥

ऋषियों ने पूछाः—सूत जी! पितरों के समूह कितने हैं? देवताओं के परमपूज्य, एवं चन्द्रमा के पुष्टिकर्त्ता वे पितरगण किस समय वर्तमान रहते हैं ॥३६॥

सूत ने कहा:—ऋषिवृन्द! मैं आप लोगों से पितरों के उस श्रेष्ठ वंश विवरण को बता रहा हूँ, जिसको पूर्वकाल में शंयु ने अपने पिता बृहस्पति से पूछा था। एकबार समीप में बैठे हुए तत्त्वज्ञान विशारद, सर्वज्ञ बृहस्पति से उनके पुत्र शंयु ने यह प्रश्न विनयपूर्वक पूछा था कि ये पितरगण कौन हैं? कितने हैं? इनके नाम क्या हैं? ये किस प्रकार उत्पन्न हुए और पितृत्व इन्हें किस प्रकार प्राप्त हुआ? क्या कारण है जो यज्ञों में नित्य सर्व प्रथम पितरों की पूजा की जाती है? और महात्मा पुरुषों की सभी क्रियाएँ पितरों के श्राद्धादि के उपरान्त सम्पन्न होती हैं। ये श्राद्धादि क्रियाएँ किसके उद्देश्य से करनी चाहिये, और क्या देने से प्रचुर फल की प्राप्ति होती है, किन तीर्थों अथवा नदियों में करने से श्राद्धों का फल अक्षय हो जाता है। श्रेष्ठ ब्राह्मण किन-किन पवित्र क्षेत्रों में श्राद्ध का विधान सम्पन्न कर अपने सभी मनोरथों को प्राप्त करता है, श्राद्ध के लिए कौन-सा समय उपयुक्त है, श्राद्ध की विधि क्या है? हे भगवन् इन सब बातों को हम यथार्थरूप में विस्तारपूर्वक जानना चाहते हैं जिन-जिन बातों को मैंने निवेदित किया है, उन्हें-उन्हें क्रमशः मुझे बतलाइये। शंयु के इस प्रकार अच्छी तरह पूछने पर प्रश्न के तत्त्वों को जाननेवालों में श्रेष्ठ महामति बृहस्पति ने क्रमशः उन प्रश्नों का उत्तर देना प्रारम्भ किया ॥३७-४४॥

बृहस्पति ने कहाः—प्रियवर! जो बातें तुमने मुझसे पूछी हैं, उन्हें बतला रहा हूँ! तुम्हारा यह प्रश्न विनय न्याय गम्भीरता, एवं श्रेष्ठता आदि सद्गुणों से पूर्ण है। हे प्रिय! जिस समय यह आकाश अन्तरिक्ष, पृथ्वी, नक्षत्र, दिशाएँ, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात,—ये कुछ भी नहीं थे और सारे जगत् में अन्ध-

कार ही अन्धकार छाया हुआ था, उस समय अकेले ब्रह्मा कठोर तप में प्रवृत्त थे।' पिता बृहस्पति की ऐसी बात सुन कर शंयु ने ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ, सर्वदा व्रत आदि सदनुष्ठानों में प्रवृत्त रहनेवाले सभी प्रकार के ज्ञानियों में श्रेष्ठ अपने पिता बृहस्पति से फिर पूछाः—पिता जी ! ऐसी परिस्थिति में सभी भूतों के स्वामी प्रजापति ब्रह्मा किस प्रकार तपस्या में प्रवृत्त थे ? पुत्र के ऐसा पूछने पर परम तेजस्वी बृहस्पति ने उससे कहा। पुत्र ! सब प्रकार की तपस्याओं में योग श्रेष्ठ है। उस समय भगवान् ब्रह्मा ने उसी का आश्रय लेकर ध्यान मग्न हो समस्त लोकों की सृष्टि की थी। योगाभ्यासी प्रजापति ब्रह्मा ने अपनी योग दृष्टि से, सभी अतीत एवं अनागत काल में होने वाली ज्ञान राशि, समस्त लोक, एवं सम्पूर्ण वेदों की रचना उसी योग का अवलम्बन लेकर ही की है। जहाँ पर परम भास्वर (कान्तिमान्) सांतानिक नामक लोकों की स्थिति है, उसी स्वर्ग लोक में वे देवताओं के भी देवता वैराज नाम से विख्यात पितर गण निवास करते हैं। सृष्टि के आदि काल में सनातन योग एवं तपस्या में निरत रहकर भगवान पितामह ने उन देवताओं की सृष्टि की थी। वे देवगण आदि देव के नाम से विख्यात हैं, महान्पराक्रम शील एवं परम तेजस्वी हैं, देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों—सब के पूज्य तथा सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं। उन त्रैलोक्य पूजित देवताओं के सात गण विख्यात हैं, जिनमें तीन गण निराकार तथा चार सुन्दर आकृतिवाले हैं। वे भाव मूर्ति (निराकार) तीन देवगण सब से ऊपर निवास करते हैं, उनके नीचे वे चार गण निवास करते हैं, जो सूक्ष्म मूर्तियों वाले हैं। उनके बाद समान्य देवताओं का निवास स्थल है, उसके नीचे पृथ्वी की स्थिति है, यही लोकों की स्थिति की परम्परा है। वे देव गण इसी लोक में निवास करने वाले हैं, उन्हीं से बादलों की उत्पत्ति होती है। उन्हीं बादलों से वृष्टि होती है, वृष्टि से सभी लोकों (वस्तुओं) की पुनः उत्पत्ति होती है। यतः वे (पितर) लोग अपने योगबल से सोम एवं अन्न—दोनों को सन्तुष्ट एवं प्रफुल्लित रखते हैं, अतः श्रेष्ठजन उन्हें समस्त लोकों का पितर कहते हैं। ये पितर गण मन के समान वेगशाली, स्वधा का भक्षण करने वाले, सभी इच्छाओं एवं सुविधाओं को देने वाले, लोभ, मोह तथा भय से विमुक्त एवं निश्चय ही शोक विहीन हैं। ये योगाभ्यास को छोड़कर सुन्दर दिखाई पड़ने वाले लोकों को प्राप्त हुए हैं। ये दिव्यगुण युक्त, पुण्यशाली, महात्मा तथा निष्पाप हैं एक सहस्र युग के उपरान्त ये ब्रह्मवादी हो जाते हैं, और पुनः योग की प्राप्ति कर शरीर को छोड़ मोक्ष के अधिकारी होते हैं महान् योगबल का आश्रय लेकर वे व्यक्त एवं अव्यक्त शरीर को छोड़कर आकाश में उल्का एवं क्षीण विद्युत् प्रभा की तरह विनाश को प्राप्त होते हैं, महान् योगबल से देह प्रभृति ऐहिक उपादानों को छोड़कर वे समुद्र में मिलने वाली सरिताओं की भाँति आख्या (संज्ञा नाम) रहित हो जाते हैं। वे नित्यप्रति गुरुपूजा प्रभृति सत्क्रियाओं में निरत रह योगाभ्यास में लगे रहते हैं। योगमार्ग में वे विख्यात पितर गण इस प्रकार सब को तृप्त रखते हैं। श्राद्ध के अवसर पर प्रसन्न हुए वे योगाभ्यास में निरत रहनेवाले पितर गण अपने योगबल से चन्द्रमा को तृप्त करते हैं, जिससे त्रैलोक्य को जीवन प्राप्त होता है। इस लिए योग की मर्यादा जाननेवालों को सर्वदा यत्न पूर्वक श्राद्धादि का दान करना चाहिये। क्योंकि पितरों का बल योग है और योग बल से ही चन्द्रमा प्रवर्तित होता है। श्राद्ध के अवसर पर अभ्यागत (आये हुए) सहस्रों ब्राह्मणों

को भोजन कराना चाहिये, योग में निपुण एक ही ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर उक्त सहस्र ब्राह्मण भोजन का फल देता है, इसको सुनिये । सहस्र सामान्य ब्राह्मण, सौ स्नातक अथवा एक योगाचार्य—इनमें से किसी एक के द्वारा जो भोजन किया जाता है वह महान् भय (नरक) से छुटकारा दिलाता है । एक सहस्र गृहस्थ, सौ वानप्रस्थ अथवा एक सहस्र ब्रह्मचारी—इन सबों से एक योगी (योगभ्यासी) बढ़कर है । वह चाहे नास्तिक हो, चाहे दुष्कर्मी हो, चाहे संकीर्ण विचारों वाला हो अथवा चोर ही क्यों न हो । प्रजापति ने योगमार्ग में ऐसी व्यवस्था बतलाई है कि अन्यत्र (योगी को छोड़कर) दान नहीं करना चाहिये । जिस व्यक्ति का पुत्र अथवा पौत्र ध्यान में निमग्न रहनेवाले किसी योगाभ्यासी को श्राद्ध के अवसर पर भोजन करायेगा, उसके पितर गण अच्छी वृष्टि होने से किसानों की तरह परम सन्तुष्ट होंगे । यदि श्राद्ध के अवसर पर कोई योगाभ्यासी ध्यान परायण भिक्षु न मिले तो दो ब्रह्मचारियों को भोजन कराना चाहिये, वे भी न मिलें तो किसी उदासीन ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिये जो सांसारिक विषयों से विरक्त हो । उसके न मिलने पर गृहस्थ को भी भोजन करा देना चाहिये । जो व्यक्ति सौ वर्षों तक केवल एक पैर पर खड़े होकर वायु का आहार करके स्थित रहता है, उससे भी बढ़कर ध्यानी एवं योगी हैं ऐसी ब्रह्मा की आज्ञा है । सिद्ध लोग ब्राह्मण का वेश धारण कर इस पृथ्वी पर भ्रमण किया करते हैं अतः किसी अतिथि के आजाने पर मनुष्य को चाहिये कि उसकी अगवानी के लिये हाथ जोड़कर जाय अर्घ्य पद्यादि से उसकी पूजा करे, रहने के लिये सुन्दर स्थान दे और भोजन की व्यवस्था करे । समुद्र पर्यन्त विस्तृत इस भूमण्डल पर ये योगेश्वर देवगण विविध रूप धारण कर धर्म पूर्वक प्रजावर्ग की पालना करते हुए सर्वदा विचरण किया करते हैं, अतः मनुष्य को चाहिये कि अपने द्वार पर आये हुए अतिथि ब्राह्मण को विधिपूर्वक दानादि दे । आगे चलकर मैं उन विविध दानादिकों को तथा उनके फलों को बतला रहा हूँ । सहस्र अश्वमेध, सौ राजसूय, सहस्र पुण्डरीक नामक यज्ञों से बढ़कर फल योगियों के मध्य में निवास स्थान बनाने से प्राप्त होता है । उन अमित तेजस्वी पितरों के सात गणों में से यह प्रथम गण (समूह) कहा जा चुका, पितरों का यह गण सभी कालों की भावना करते हुए सर्वदा अवस्थित है । अब इसके उपरान्त मैं पुनः समस्त पितरों का वर्णन कर रहा हूँ, उनकी सन्तति, अवस्थिति एवं भावनाओं के विषय में भी क्रमशः कह रहा हूँ । ।।४५–७१।।

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्त उपोद्घात पादे श्राद्ध प्रक्रियारम्भो नामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्ध कल्प

सूतजी ने कहा :—ऋषिवृन्द ! पम बुद्धिमान पितरों के सात गण कहे गये हैं, जिनमें चार तो मूर्तिमान हैं और शेष तीन अमूर्त हैं । मैं उनके द्वारा होनेवाली लोकसृष्टि का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये ।

Funding by IKS-MoE

उनकी जो-जो पुत्रियाँ हैं, एवं जो-जो दौहित्र हुए हैं, उन सब का भी वर्णन कर रहा हूँ। जो तीन धर्ममूर्ति परमश्रेष्ठ गण कहे गये हैं, सर्वप्रथम मैं उनके नाम एवं उनके द्वारा होनेवाली लोक सृष्टि का वर्णन संक्षेप में कर रहा हूँ। जहाँ परम कान्तिमय विरजस् नाम से विख्यात लोकों की अवस्थिति है, वहीं पर प्रजापति ब्रह्मा के पुत्र, अमूर्त पितरगण निवास करते हैं। हे द्विजगण! वे पितरगण विरज के निवासी हैं, अतः वैराज नाम से प्रसिद्ध हैं। वैराज नामक पितरों के इस पहिले गण को आप लोगों को सुना चुका। इन्हीं वैराजों की मानसी पुत्री मेना थी, जो महागिरि हिमवान् की सुन्दरी पत्नी थी और जिसमें मैनाक की उत्पत्ति हुई। यह पर्वत श्रेष्ठ मैनाक सभी प्रकार के रत्नादिकों से परिपूर्ण, समस्त औषधियों का आगार एवं पुण्यशाली उत्पन्न हुआ, इसका पुत्र क्रौञ्च हुआ। पर्वतराज ने मेना से तीन कन्याओं को भी जन्म दिया, जिनके नाम अपर्णा, एकपर्णा तथा एकपाटला थे। इन तीनों कन्याओं में से दो ने आश्रय ग्रहण किये, केवल अपर्णा ने कोई आश्रय नहीं बनाया, विना घर द्वार के ही वह तपस्या में दत्तचित्त रही। एकपर्णा ने एक न्यग्रोध (वरगद) का तथा एकपाटला ने एक पाटल वृक्ष का अवलंब लिया था। इस प्रकार तीनों कन्याओं ने एक सहस्र वर्षों तक कठोर तप किया, जिसे देवता अथवा दानव—कोई भी करने में असमर्थ थे। एकपर्णा एक पत्ते का आहार करती थी, एक पाटला एक पाटल पर अपना जीवन निर्भर किये थी, और इस प्रकार इन दोनों बहिनों ने दो सहस्र वर्ष बीत जानेपर आहार स्वीकार कर लिया; परन्तु तीसरी कन्या अपर्णा विना किसी आहार के उस समय भी तपस्या में लीन रही। माता ने स्नेह से अति दुखित हो तपस्या से विरत करने के लिए निषेध के स्वर में उससे 'उ' 'मा' ऐसा कहा। महाभाग्यशालिनी अत्यन्त दुष्कर तप करनेवाली वह देवी अपनी माता के ऐसा कहने पर उमा नाम से तीनों लोकों में विख्यात हुई और अपने उस कठोर कर्म के कारण अपर्णा इस शुभ नाम से भी उसकी ख्याति हुई। इस जगत् की सत्ता जब तक रहेगी, जब तक पृथ्वी स्थिर रहेगी, तब तक इन तीनों कुमारियों के नाम एवं उनकी घोर तपस्याओं के यशोगान जीवित रहेंगे। योगबल से संयुक्त, तपोमय शरीरवाली वे तीनों कन्यायें समस्त दिव्यगुणों से सम्पन्न, महाभाग्यशालिनी, एवं स्थिर यौवनवाली हैं। उन सब की सब ब्रह्मवादिनी एवं ब्रह्मचारिणी कन्याओं में उमा परमश्रेष्ठ, सर्वगुणान्वित तथा सुन्दरी थी। उसका योगबल परम महान् था, और उसने महादेव को पति रूप में प्राप्त किया। उसके पुत्र दन्त, काण्य, उशन और भृगुनन्दन हुए। एकपर्णी असित की पत्नी हुई, वह परम साध्वी तथा कठोर व्रतों का अनुष्ठान करनेवाली थी। हिमवान् ने ही एकपर्णी को योगाचार्य परम बुद्धिमान असित को समर्पित किया था। एकपर्णी ने ब्रह्मनिष्ठ देवल को मानसपुत्र के रूप में उत्पन्न किया। इन तीनों कुमारियों में तीसरी एकपाटला नामक जो कुमारी थी, उसने शतशिलाक के पुत्र जैगीषव्य को पतिरूप में स्वीकार किया था, उसके भी शंख और लिखित नामक दो पुत्र हुए, जिनकी उत्पत्ति योनि से नहीं हुई थी। ये ही तीन महाभाग्यशालिनी हिमवान् की कल्याण दायिनी कन्याएँ हैं। इनमें रुद्राणी उमा अपने गुणों के कारण सब से बढ़ चढ़कर थीं। उमा और शंकर के पारस्परिक सम्बन्ध और प्रेम को देखकर वृत्रहा (इन्द्र) को सन्देह हुआ। दाम्पत्य प्रेम में अनुरक्त उन दोनों से होनेवाली संतति के भय से आतंकित होकर इन्द्र ने उनके पास अग्नि को भेजा और कहा, हे हुताशन! तुम इन

दोनों के रतिकर्म में जाकर विघ्न पहुँचाओ, तुम तो सर्वत्र जा सकते हो। अतः तुम्हारे वहाँ जाने पर कोई दोष न होगा। इन्द्र के कहने पर अग्नि ने वैसाही किया जिसका परिणाम यह हुआ कि शंकर ने अपना वीर्य उमा के शरीर में न छोड़कर पृथ्वी पर गिरा दिया। शांशपायन! इस घटना के घटित होने पर उमा को क्रोध आया और उन्होंने अग्नि को शाप दिया कि हे अग्नि! यतः तुमने मेरी तृप्ति के विना हुए ही इस रतिक्रीड़ा में विघ्न डाल दिया है, अतः तुम निश्चय ही बड़े कुबुद्धि हो, और यह जो मेरे गर्भ द्वार से बहिर्गत रुद्र का महान् तेजोमय वीर्य है उसे तुम गर्भरूप में वहन करो, यही मैं तुम्हे दण्ड दे रही हूँ। ऋषिवृन्द! रुद्राणी उमा के रोषज शाप के कारण हुताशन को वह गर्भ धारण करना पड़ा और उस गर्भ को उसने बहुत वर्षों तक वहन किया। बहुत दिनों के बाद गंगा के तट पर आकर अग्नि ने निवेदन किया, हे उत्तम सरिते! मेरी यह प्रार्थना श्रवण करो। इस गर्भ भार के वहन करने में मुझे महान् खेद हो रहा है, हे निम्नगे! मेरे लिए तुम इस गर्भ को आज से धारण कर लो, मेरे आशीर्वाद से तुम्हें इसके वहन करने में बहुत अल्पखेद होगा। महानदी गंगा ने अग्नि की विनयपूर्ण बातें सुनकर स्वीकार कर लिया, और बड़े आनन्द से उस गर्भ को धारण किया, अपने तेज से जलते हुए उस गर्भ को वहन करने में वे महानदी भी बहुत परेशान हुईं, फिर भी बहुत दिनों तक तत्परता के साथ अनेक कठिनाइयों की अपेक्षा न कर वे गर्भ को धारण किये रहीं। हिमवान् पर्वत के मनोहर कुक्षि प्रदेश (घाटी) में शरवण नामक एक विचित्र सुन्दर वन था जिसमें वृक्ष खूब फूले हुए थे, वहीं पर जाकर गंगा ने अनुपम तेज से जलते हुए अग्नि की भाँति उस गर्भ का विमोचन किया। रुद्र, अग्नि और गंगा का वह शिशु अरुण के समान कान्तिमान हुआ, सैकड़ों सूर्य के समान वह महान् तेजस्वी और प्रतापी था। जाह्नवी के गर्भ से उस कुमार के समुत्पन्न होने पर सारा आकाशमण्डल देवताओं के सुन्दर विमानों और यानों से इस प्रकार आवृत हो गया मानो पक्षियों के समूह घेरे हुए हों। देवगण आकाश मण्डल में मधुरस्वर से दुन्दुभि बजाने लगे आकाश में उड़नेवाले सिद्ध और चारणों के वृन्द पुष्पों की वृष्टि करने लगे। चारों ओर से मुख्य-मुख्य गन्धर्व लोग गान करने लगे, विद्याधरों, सिद्धों, तथा किन्नरों के समूह सम्मिलित होकर उत्सव मनाने लगे। सहस्रों विशालकाय नाग एवं पक्षियों के प्रमुख गण उस शंकरात्मज अग्नि सम्भव कुमार की उपासना करने लगे। उस परम तेजस्वी कुमार ने अपने अनुपम प्रभाव से ही दैत्यों, दानवों तथा राक्षसों को हतप्रभ कर दिया। अभिषेक के लिए आई हुई सप्तर्षियों की स्त्रियों में से अरुन्धती को छोड़कर सब ने सर्वप्रथम ही उस अग्निसम्भव कुमार का दर्शन किया। रुद्र के उस महान् तेजस्वी, परम ऐश्वर्यशाली, बालसूर्य के समान कान्तिमान् पुत्र को उन ऋषि पत्नियों ने चारों ओर से घेर लिया, और अपनी माता के समान परम स्नेह युक्त नेत्रों से देखने लगीं उन सबों को प्रसन्न करने के लिए तथा एक ही साथ सब को देखने की इच्छा से जाह्नवी सुत ने छः मुखों की सृष्टि करली और उस समय उनकी महान् शोभा हुई। कमलनयन, मध्याह्न के सूर्य के समान कान्तिशाली, श्रीमान् अग्निसम्भव ने समस्त लोकों को अपने तेज से तेजोविहीन कर दिया। उस महान्तेजस्वी के जन्म लेते ही देवताओं की श्री सम्पत्ति को न सहन करनेवाले दानवगण स्कन्दित (व्यथित) हो गये अतः उस प्रताप शाली की स्कन्द नाम से प्रसिद्धि हुई। असुरों का

Funding by IKS-MoE

विनाशक वह पुरातन पुरुष यतः कृतिकाओं द्वारा पुष्ट हुआ था अतः कार्तिकेय नाम से उसकी प्रसिद्धि हुई। उस दैत्य विनाशक के जम्भुआई लेते समय मुख अग्नि की ज्वालाओं की माला से पूर्ण हो गया और उससे उसकी अपराजिता नामक शक्ति बाहर हुई। महान् प्रभावशाली भगवान् विष्णु ने स्कन्द की क्रीड़ा के लिए गरुड़ से भी अतिशय बलशाली तथा प्रभावशाली दो प्रभद्रक नामक मयूर और कुक्कुट पक्षियों की सृष्टि की। वायु ने पताका दी, सरस्वती ने उसे महान् शब्द करनेवाली एक बहुत बड़ी वीणा अर्पित की, स्वयम्भू ब्रह्मा ने एक अज (बकरा) दिया, शंकर ने एक मेढ़ा दिया। द्विजवृन्द! क्रौञ्चगिरि पर असुरश्रेष्ठ तारकासुर की समस्त माया का उन्मूलनकर अग्नि कुमार ने जब उसका समस्त सेना के साथ संहार कर दिया, उस समय महाभाग्यशाली, इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) प्रभृति देवताओं ने दैत्यों के इस प्रबल प्रतापी शत्रु को सेनापति के पद पर अभिषिक्त किया। और उस समय विविध देवताओं, भूतों शिव के गणों, मातृकाओं तथा विनायकों के समूहों ने इसका नरनायक, देव सेनापति, देवारिस्कन्दन (देवताओं के शत्रु को व्यथित करनेवाला) स्कन्द, सर्वलोकेश्वर एवं प्रभु आदि नामों से स्तवन किया ॥ १–५० ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते सेनान्युत्पत्तिकथनं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

बृहस्पति बोले:—स्वर्ग में सोमपद नामक लोक है, जहाँ मरीचि के पुत्र पितर गण वर्तमान हैं, देवगण वहाँ उनकी पूजा करते हैं। वे पितरगण अग्निष्वात्त नाम से विख्यात हैं, और सब के सब अमित तेजस्वी हैं इन पितरों की मानसी कन्या अच्छोदा नामक नदी है। जिससे निकला हुआ अच्छोद नामक दिव्य सरोवर भी वहाँ विराजमान है। स्वर्ग लोक में एक बार उसी सरोवर के पास अद्रिका नामक अप्सरा के साथ आकाश में देवताओं के विमान सुशोभित हो रहे थे। वहाँ मूर्तिरहित पितरों को देखकर वह परम विस्मित हुई, और इसी दुःख से वह सुन्दरी बहुत काम पीड़ित हुई। आकाश में विचरण करते हुए वसुओं के पिता आयु के परम यशस्वी पुत्र अमावसु नामक पितर को देखकर उसने मानसिक वरण किया। उस मानसिक व्यभिचार के कारण, पति के रूप में अमावसु को वरण करने की इच्छुक वह कामचारिणी योगभ्रष्ट होगई और स्वर्ग से पतित होगई। स्वर्ग लोक से पतित होकर गिरते समय उसने उन देव विमानों को देखा और वहाँ त्रसरेणु के समान परम सूक्ष्म उन पितरों को देखा। वे परम सूक्ष्म थे और ज्वलन्त अग्नि के समान देदीप्यमान और तेजस्वी थे। आकाश से गिरते हुए उसने रक्षा कीजिये, इस प्रकार की आरत वाणी बिना शिर और स्पष्ट स्वर के ही कही। पितरों ने उससे कहा, 'मत डरो' और उनके ऐसा कहने पर वह सुस्थिर हो गई। वहाँ स्थिर हो उसने अति दीन वाणी से पितरों को प्रसन्न किया। मानसिक भावों के

Funding by IKS-MoE

व्यतिक्रम से दुष्ट होने के कारण भ्रष्ट ऐश्वर्यवाली उस कन्या को देखकर पितरों ने कहा, हे सुन्दर हँसनेवाली ! अपने ही दोषों से तू अपने ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर गिर रही हो ! इस लोक में देवगण अपने जिस शरीर से कर्मों को करते हैं, उसी से उसका फल प्राप्त करते हैं । देवयोनि में कर्मों का फल तुरन्त प्राप्त होता है और मनुष्य योनि में पर लोक (अन्य जन्म) में प्राप्त होता है, इस कारण तुम दूसरे जन्म में अमावसु को पितर १ (पति ?) रूप में प्राप्त करोगी । ऐसा कहने के उपरान्त उसने पितरों को पुन प्रर्थना आदि से प्रसन्न किया । प्रार्थना करने पर पितरों ने उसके ऊपर बड़ी अनुकम्पा कर प्रसन्नता प्रकट की । ध्यान मग्न होकर देवताओं ने भविष्य में अवश्यमेव घटित होने वाली घटना को देखकर उससे बोले । सोम को पान करने वाले उन पितरों ने राजा रूप में अमावसु और उसकी कन्या के बारे में ये बातें कीं । पृथ्वीतल पर मनुष्य योनि में उत्पन्न महात्मा अमावसु की कन्या होकर तुम पुनः इन अपने लोकों को प्राप्त करोगी । अट्ठाइसवें द्वापर युग में तुम्हारी उत्पत्ति मत्स्य की योनि से होगी और इसी राजा अमावसु से अद्रिका में तुम कन्या रूप में उत्पन्न होगी । और पराशर ऋषि के सुपुत्र वेदव्यास को उत्पन्न करोगी । वह तुम्हारा पुत्र ब्राह्मणों में श्रेष्ठ होगा और एक वेद को चारभागों में विभक्त करेगा । महाभिष शन्तनु के कीर्ति वर्द्धक धर्मज्ञ विचित्रवीर्य और परम तेजस्वी, बलवान, गुणशील राजा चित्रांगद इन दो पुत्रों को तुम्हीं उत्पन्न करोगी । इन पुत्रों को उत्पन्न करने के बाद तुम पुनः इन लोकों को प्राप्त करोगी । पितरों के साथ पति भावना करके तुमने बहुत बड़ा व्यतिक्रम कर दिया है और उसीसे ऐसी कुत्सित योनि में जन्म प्राप्त करना पड़ेगा । किन्तु उस योनि में भी तुम अद्रिका के गर्भ में उसी राजा के वीर्य से उत्पन्न होगी । उनकी कन्या होने के बाद तू इन लोकों को निश्चय ही प्राप्त करोगी । पितरों के ऐसा कहने पर वह दासों की पुत्री सत्यवती के रूप में उत्पन्न हुई । अमावसु के संयोग से अद्रिका नामक मछली की पुत्री के रूप में उसका जन्म हुआ, गंगा यमुना के संगम पर अद्रिका मछली के पेट से उसकी उत्पत्ति हुई, वह उसी राजा अमावसु के वीर्य से उत्पन्न हुई थी अतः उसकी कन्या थी । स्वर्ग में विरज नामक पितरों से वे लोक शोभायमान हैं । वहाँ विद्यमान रहने वाले पितरगण सूर्य के समान कान्तिमान हैं, वे 'अग्निष्वात्त' नाम से विख्यात हैं । उन पितर गणों की समस्त दानव यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, किन्नर, भूत, सर्प एवं पिशाचों के गण उत्तम फल की प्राप्ति की इच्छा से पूजा करते हैं । पुलह प्रजापति के इन पुत्रों का वर्णन किया जा चुका । धर्ममूर्ति इन पितरों के तीन गण कहे गये हैं । इनकी मानसी कन्या पीवरी नाम से विख्यात है, वह पीवरी योगिनी, योगपत्नी एवं योगमाता के रूप में भी विख्यात थी । हे द्विजवर्य वृन्द ! अट्ठाईसवें द्वापर युग के आने पर पराशर के कुल में शुक नामक महान् तपस्वी श्रीमान्, योगी, एवं महान् योगाभ्यासी की उत्पत्ति होगी, उन्हीं से पृथ्वी पर योग का विस्तार होगा । वे शुक व्यास के संयोग से अरणी में धूम रहित अग्नि के समान तेजोमय रूप में उत्पन्न होंगे । और पितरों

---

१ आनन्दाश्रम की प्रति में यहाँ पर मूल पाठ को सन्देह में डाल दिया है । जिससे 'पति रूप में' प्राप्त करोगी—ऐसा अर्थ निकलता है, परन्तु आगे चलकर पिता रूप में प्राप्त करने का उल्लेख है ।

की मानसी कन्या उस पीवरी में सुविख्यात योगाचार्य कृष्ण, गौर, प्रभु, शंभु तथा भूरिश्रुत नामक पुत्रों को तथा परम योगिनी योगमाता कीर्तिमती नामक कन्या को वे उत्पन्न करेंगे। वह कीर्तिमती अणुह की पत्नी और ब्रह्मदत्त की माता होगी। धर्मात्मा शुक्र अपने महान् तप एवं योग से इन पुत्रों की उत्पत्ति करने के बाद उस परम गति को प्राप्त होंगे, जिसको प्राप्त कर पुनरावर्तन नहीं होता। सूर्य की किरणों के समान परम तेज को प्राप्त होकर वे पुनर्जन्म को न प्राप्त होंगे। इस प्रकार वे महामुनि समस्त चराचर जगत् में व्याप्त होकर सांसारिक बन्धनों से विनिर्मुक्त हो जायँगे। धर्म मूर्ति धारण करनेवाले जो पितरगण हैं वे अमूर्त हैं इनके तीन गण हैं। हे द्विजश्रेष्ठ, अब मैं उन अन्य चार पितरों के बारे में बतला रहा हूँ, जो परम कान्तिमान स्वरूपधारी हैं, उन्हें सुनिये। वे पितर गण कवि अग्नि की पुत्री स्वधा से उत्पन्न हुए हैं, और ज्योतिर्मास नामक देवलोकों में उनका निवास स्थान है, स्वयमेव ये पितरगण बहुत तेजोमय हैं। सभी अभिलाषाओं को पूर्ण करनेवाले उन ज्योतिर्मय लोकों में विराजमान पितरों की द्विजगण इसी प्रकार से भावना करते हैं। इनकी मानसी कन्या गौ है, जो स्वर्ग लोक में विख्यात है। सनत्कुमार[१] ने गौ को शुक्र को सौंपा था जहाँ पर वह शुक्र की प्रिया स्त्री हुई। भृगुवंश में उत्पन्न होनेवाले परम यशस्वी इकतीस पितरगण बहुत विख्यात हुए। उनके लोक मरीचिगर्भ के नाम से विख्यात हुए, जो समस्त स्वर्ग लोक को आवृत करके स्थित हैं, ऐसा उनके विषय में सुना गया है। ये अंगिरा के पुत्र कहे जानेवाले पितरगण साध्यों के साथ वृद्धि को प्राप्त हुए। स्वर्ग लोक में परम तेजोमय उपहूत नामक पितरगण विराजमान हैं उन क्षत्रियों के पितरगणों की शुभ फल की प्राप्ति के इच्छुक प्राणी भावना ध्यान या पूजा करते हैं। इनकी मानसी कन्या यशोदा नाम से विख्यात है, जो विश्व महत् की पत्नी, विश्वशर्मा की पुत्र वधू और उस महात्मा राजर्षि खट्वाङ्ग की माता थी। प्राचीन काल में जिसके यज्ञ में दिव्य गुण सम्पन्न महर्षियों ने गाथाओं का गान किया था। स्वर्ग के जीतने वाले समाहित चित्त वृत्ति सम्पन्न वे पितरगण यज्ञ में अग्नि का जन्म देखने के उपरान्त महात्मा शाण्डिल्य के सत्यव्रत परायण एवं महात्मा यजमान दिलीप का दर्शन करते हैं जिनके नाम आज्यपा हैं, ये प्रजापति कर्दम के पितरगण हैं जिनकी उत्पत्त पुलह से हुई थी, उन्हीं के यहाँ इनकी पुनः उत्पत्ति हुई, इन लोकों में ये आकाशचारी पितरगण अपने इच्छानुरूप भ्रमण करते हैं। शुभ फल प्राप्ति के इच्छुक वैश्यगण श्राद्धों में इन की भावना करते हैं। इन की मानसी कन्या विरजा नाम से विख्यात है, जो ययाति की माता और नहुष की पतिव्रता पत्नी थी। प्रजापति वशिष्ठ के सुकाल नामक पितरगण हैं, जो हिरण्य गर्भ के पुत्र हैं। इन पितरों की भावना शूद्र लोग करते हैं। स्वर्ग में मानस नामक लोक हैं, जिनमें ये निवास करते हैं। इनकी मानसी कन्या नदियों में श्रेष्ठ नर्मदा है, (भारतभूमि) के दक्षिणापथ में बहती हुई वह सभी जीवों को पवित्र करती है। वह नर्मदा त्रसदस्यु की माता और पुरुकुत्स की पत्नी थी। इन्हीं उपर्युक्त पितरों के कारण मनु मन्वन्तर के अधीश्वर हैं, और मन्वन्तर के आदिम काल में वे सब प्रकार के श्राद्धों का प्रव-

---

[१] आनन्दाश्रम की प्रति में जो पाठ है, उससे यह अर्थ भिन्न है।

र्तन करते हैं । द्विजवर्यवृन्द, समस्त पितरों का वर्णन क्रमशः आप लोगों को सुना चुका । इन सब कारणों से मष्नुय को इस लोक में आकर अपने धर्म के अनुसार श्रद्धापूर्वक श्राद्धादि कर्म करने चाहिये, इन सब में चाँदी के बने हुए अथवा मिश्रित चाँदी के बने हुए पात्रों में रखकर पितरों के उद्देश्य से पुरोहित को दी गई स्वधा पितरों को प्रसन्न करती है । सोम, अग्नि एवं सूर्यपुत्र मनु को स्वधादि से खूब सन्तुष्ट करके तथा सूर्य के उत्तरायण के अवसर पर अग्नि में हवनादि करके अश्वमेध के फल की प्राप्ति होती है । जो भक्ति पूर्वक पितरों को श्राद्धादि से प्रसन्न करता है, उसे पितरगण भी सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करते हैं । पुष्टि (वृद्धि) अथवा प्रजा (पुत्र पौत्रादि) की कामना करनेवालों के पितरगण पुष्टि, प्रजा एवं स्वर्ग को प्रदान करते हैं, इसमें सन्देह नहीं । पितरों के उद्देश से किये जाने वाले श्राद्धादि कार्य देवताओं के उद्देश्य से किये जानेवाले यज्ञादि कार्यों से भी अधिक फलदायी हैं । देवताओं से पहिले पितरों को सन्तुष्ट करना चाहिये—ऐसा प्रसिद्ध है । पितरों की यह सूक्ष्म योग गति और तृप्ति मांस के नेत्र से नहीं देखी जा सकती, तपस्या द्वारा विशेष सिद्धि प्राप्त करने पर ही उनकी इस गति एवं तृप्ति का दर्शन हो सकता है । इन उपर्युक्त पितरगणों, उनके लोक, उनकी कथाएँ, उनके दौहित्र, उनके यजमान एवं उनकी भावना करने वाले सब का वर्णन कर चुका । इन में (जैसा कि ऊपर भी कई बार कह चुके हैं) चार मूर्तिधारी है, और तीन अमूर्त हैं । देवगण प्रत्येक यत्न से सत्कारपूर्वक उन सब का श्राद्ध करते हैं । इन्द्र समेत वे समस्त देवगण इन पितरों में मन लगाकर, हाथ जोड़कर उनके श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करते हैं । इनके साथ समस्त विश्वेदेवगण, सिकता, पृश्निज, शृङ्गिन, कृष्ण, श्वेत, अज आदि भी इन पितरों की विधिवत् पूजा करते हैं । वातरशन, दिवाकीर्त्य नामक प्रजायें, लेखा, मरुत, ब्रह्मा आदि देवगण, अत्रि भृगु अंगिरा आदि समस्त ऋषिगण, यक्ष, नाग सुपर्ण, किन्नर एवं राक्षस, ये सभी शुभ फल प्राप्ति के इच्छुक होकर नित्य ही इन पितरों की पूजा करते हैं । श्राद्धादि में सत्कारपूर्वक पूजित ये महात्मा पितर गण सैकड़ों सहस्रों की संख्या में मनुष्य के समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं । तीनों लोक, संसार, वृद्धावस्था एवं मृत्यु के भय को छोड़कर के पितामह गण मोक्ष, योग प्राप्ति एवं प्रचुर ऐश्वर्य—इन सब को प्रदान करते हैं । सूक्ष्म शरीरधारी ये पितामह नामक देवगण (पितरगण) मोक्ष को प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य, समस्त जागतिक वस्तुओं से उत्पन्न होनेवाले अनन्त वैराग्य को प्रदान करते हैं । अनुष्ठिता (किया हुआ) योग ही ऐश्वर्य है, सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति भी ऐश्वर्य है । योग एवं ऐश्वर्य के विना मोक्ष की प्राप्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं । जिस प्रकार विना पंखे के आकाश में पक्षियों का उड़ना सम्भव नहीं है, उसी प्रकार योग एवं ऐश्वर्य के विना मोक्ष की प्राप्ति भी सम्भव नहीं है । सभी धर्मों में मोक्ष का साधनभूत धर्म ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वदा विद्यमान रहने वाला है । ये पितामहगण अप्सराओं के समूहों से घिरे हुए ऐसे सहस्रों विमानों को प्रदान करते हैं, जो समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं । महात्मागण, बुद्धि, पुष्टि, स्मरण शक्ति, मेधा (धारणाशक्ति) राज्य, आरोग्य इन सब को पितरों के आशीर्वाद से प्राप्त करते हैं । पितामहगण मुक्ता, वैदूर्य, विविध वस्त्र, सहस्रों अश्व, नाग, करोड़ों रत्न, आदि भी प्रदान करते हैं । ये पितामह (पितर) गण हंस और वर्हियों से युक्त, मुक्ता और वैदूर्य से समन्वित, किंकिणी के जालों से गुथे हुए

सर्वदा पुष्प और फलों से संयुक्त, (रथ को) प्रसन्न होकर नित्य प्रदान करते हैं । ।।१–७३।।

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्त उपोद्घातपादे श्राद्धकल्पो नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।।७३।।

चौहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

बृहस्पति ने कहा:—सुवर्ण, चाँदी, और ताँबे के निर्मित पात्र पितरों के लिए कहे गये हैं, चाँदी अथवा चाँदी से मढ़ा हुआ पात्र भी पितरों के लिए कहा गया है । चाँदी का दान, अभाव में उसका दर्शन अथवा उसका नाम ले लेना भी पितरों को अनन्त अक्षय एवं स्वर्ग देनेवाला दान कहा जाता है । योग्य पुत्रगण इस चाँदी के दान से अपने पितरों को तारते हैं । हे तात ! प्राचीनकाल में स्वधा देनेवाले पितरों ने चाँदी के पात्र में स्वधा का दोहन किया था, यही कारण है कि उसका दान अथवा उसके बने हुए पात्र में दान करने पर अक्षय फल प्राप्ति होती है । काले मृगचर्म का सान्निध्य, दर्शन अथवा दान भी राक्षसों का विनाश करनेवाला (अथवा राक्षसों का विनाशक एवं ब्राह्मतेजका वर्द्धक मंत्र) एवं ब्राह्मतेज को प्रदान करनेवाला है, पितरों के कार्य में इसका वितरण करना चाहिये । सुवर्णनिर्मित, चाँदीनिर्मित, ताम्रनिर्मित, दौहित्र, कुतप[1] तिल, वस्त्र, अन्यान्य पवित्र वस्तुएँ, त्रिदण्डी योग (वचन, मन एवं कर्म का योग) ये सब वस्तुएँ श्रेष्ठ कही गई हैं । श्राद्ध कर्म में यह सर्वश्रेष्ठ विधि सनातन से प्रचलित है—यह बाह्य नियम है । इन उपर्युक्त वस्तुओं द्वारा विधिपूर्वक किया गया श्राद्धविधान श्राद्धकर्त्ता को आयु, कीर्ति, प्रजा, बुद्धि, संतति आदि सब कुछ बढ़ानेवाला है; दक्षिण और पूर्व की दिशा में, विशेषतया विदिक् (कोण) में श्राद्धकर्म का विधान है । सर्वत्र अरत्नि[2] मात्र परिमाण का, चौकोर सुन्दर स्थान होना चाहिये । पितरों के कार्य में जो आदेश शास्त्रों के हैं, उनके अनुसार स्थान के विषय में विधिवत् कह रहा हूँ, जो धन देनेवाला, आरोग्य साधक, दीर्घायु प्रदाता तथा बल और वर्ण की वृद्धि करनेवाला है । पितरों के उपर्युक्त श्राद्धस्थल में तीन गढ़े बनाने चाहिये, जो परिमाण में रत्निमात्र[3] लंबे और चाँदी से विभूषित हों, इसके अतिरिक्त खदिर के डंडे भी होने चाहिये, जो बित्ते भर लंबे हों उनके चारों ओर चार अंगुल मान के वेष्ठन बने हों । पूर्व और दक्षिण के मुख भाग की ओर से पृथ्वी पर रखे गये, छिद्र रहित, उन डण्डों को परमपवित्र जल से नहलाये । बकरी के गव्य, अथवा

---

[1] दिन ही के दूसरे प्रहर की पिछली घड़ी से लेकर तीसरे प्रहर की पहिली घड़ी तक का समय, नेपाल देश का कम्बल, कुश का तृण, आदि श्राद्ध कर्म की उपयोगी कई वस्तुओं का नाम कुतप है । परन्तु यहाँ पर समय से, नेपाली कम्बल से तथा कुश से तात्पर्य है ।

[2] कनिष्ठिका अंगुली फैलाकर केहुनी तक की लम्बाई ।

[3] मुट्ठी बँधे हुए हाथ का परिमाण ।

दूध तथा जल से उसको पुनः शुद्ध करे, इस प्रकार विधिपूर्वक तर्पण करने से सार्वकालिक तृप्ति होती है। इस प्रकार विविपूर्वक श्राद्धकर्म का अनुष्ठान करनेवाला प्राणी ऐहिक पारलौकिक विभूतियों से सुसमृद्ध तथा सर्व कर्म समन्वित होता है। इसी प्रकार तीन बार सवन स्नान करके जो विधिपूर्वक मंत्रादि का उच्चारण कर भलीभाँति सर्वदा पितरों की पूजा करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। अमावास्या तिथि को पृथ्वीतल पर चार अंगुल के गढ़े में श्राद्धोपयोगी वस्तुओं की स्थापना करनी चाहिये। ये त्रिःसप्तयज्ञ के नाम से विख्यात हैं, इन्हीं पर त्रैलोक्य की स्थिति है। जो व्यक्ति इसका अनुष्ठान करता है, उसको पुष्टि, ऐश्वर्य, दीर्घायु, संतति, प्रचुर लक्ष्मी तथा लक्ष्मी की क्रमशः प्राप्ति होती है। ब्राह्मणों से सत्कार पूर्वक पूजित यह एक मंत्र समस्त पापों को दूर करनेवाला, परमपवित्र तथा अश्वमेध यज्ञ की फलप्राप्ति करानेवाला है, इसको बतला रहा हूँ, इस मंत्र की रचना ब्रह्मा ने की थी, यह अमृत मंत्र है। "देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वहायै नित्यमेव भवन्त्युत" अर्थात् समस्त देवताओं, पितरों, महायोगियों, स्वधा एवं स्वाहा—सब को हम नमस्कार करते हैं, ये सब नित्य (शाश्वत) फल प्रदान करनेवाले हैं।, सर्वदा श्राद्ध के प्रारम्भ, अवसान तथा पिण्डदान के समय इस मंत्र का समाहित (सावधान) चित्त होकर तीन बार पाठ करना चाहिये। इससे पितरगण शीघ्र ही वहाँ आ जाते हैं और राक्षसगण तुरत वहाँ से पलायन कर जाते हैं। ब्राह्मणों द्वारा श्राद्ध के अवसर पर पढ़े जाने पर यह मन्त्र तीनों लोकों में पितरों का उद्धार करता है। राज्यप्राप्ति का अभिलाषी इस मन्त्र का आलस्य रहित होकर सर्वदा पाठ करे। यह वीर्य, पवित्रता, धन, सात्त्विकबल, लक्ष्मी, दीर्घायु, बल आदि को बढ़ानेवाला मन्त्र जिसके नियमपूर्वक जप करने से पितरगण प्रसन्न हो जाते हैं—ऐसे सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले, शुभ फलदायी नामक मन्त्र को बतला रहा हूँ।

'अमूर्तानां समूर्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्, नमस्यामि सदा तेभ्यो ध्यानिभ्यो योगचक्षुषः। इन्द्रादीनां जनयितारो भृगु मारीचयोस्तथा, सप्तर्षीणां, पितृणां च तान्नमस्यामि कामदान्। मन्वादीनां सुरेशानां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा, तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितृन्कुशलदायकान्। नक्षत्राणां चरादीनां पितृनथ पितामहान्। द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः। देवर्षीणां जनयितृँश्च सर्वलोक नमस्कृतान्, अभयस्य सदा दन्नमस्येतृऽहं कृताञ्जलिः। प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च, योगयोगेश्वरेभ्यश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः। पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु। स्वयंसुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योग चक्षुषे।" अर्थात् अमूर्त, समूर्त सभी परमतेजस्वी योगनेत्र, ध्यान परायण पितरों को मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ, इन्द्र प्रभृति देवगण, भृगु कश्यप प्रभृति ऋषियों के जनयिता (पिता) पितरों एवं सप्तर्षियों को नमस्कार करता हूँ, जो सभी मनोरथों के पूर्ण करनेवाले हैं। मनु प्रभृति सुरेशों एवं सूर्य चन्द्रमा को मङ्गल प्रदान करनेवाले समस्त पितरों को नमस्कार करके नक्षत्रों, समस्त चराचर पदार्थों एवं आकाश तथा पृथ्वी के जनयिता पितामह पितरों को अंजलि बाँधकर नमस्कार करता हूँ। सम्पूर्ण लोकों के नमस्करणीय देवताओं तथा ऋषियों के जनयिता, सर्वदा अभय प्रदान करनेवाले पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। प्रजापति, कश्यप, चन्द्रमा, वरुण तथा योग योगेश्वर पितरों को हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। सातों लोकों में निवास करनेवाले पितरों के सातों गणों को, योगनेत्र

Funding by IKS-MoE

स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है।" सातों ऋषियों एवं ब्रह्मर्षियों द्वारा पूजित परम पवित्र, श्री सम्पन्न, राक्षसों के विनाशक इस स्तोत्र को आप लोगों को सुना चुका। इस उपर्युक्त विधि समेत श्राद्ध करनेवाला व्यक्ति तीन पदार्थों का वरदान प्राप्त करता है, अन्न, दीर्घायु, एवं पुत्र— इन तीन वरदानों को पृथ्वीतल पर निवास करनेवालों को पितरगण प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति परमभक्ति एवं श्रद्धा समेत जितेन्द्रिय एवं समाहित चित्त होकर इस सप्तार्चिष नामक स्तोत्र का नित्य पाठ करता है, वह सातों द्वीपों एवं समुद्रों समेत समस्त पृथ्वी मण्डल का एकच्छत्र राजा होता है। अपने गृह में मनुष्य भक्ष्य भोज्य जो कुछ भी पदार्थ पकाता है, उसे पितरों को विना निवेदित किये कभी न खाना चाहिये। अब इसके उपरान्त मैं बलि कर्म के उपयोगी पात्रों के विषय में वर्णन करूँगा, जिन-जिन पात्रों में बलिकर्म करने से जो-जो फल प्राप्त होते हैं, उन्हें बतला रहा हूँ, सुनिये। ॥१–३२॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

बृहस्पति बोले :—पलाश के पत्तों से बने हुए पात्र में बलिकर्म करने से ब्राह्म तेज की प्राप्ति होती है, अश्वत्थ (पीपल) के पत्तों से बने हुए पात्र में राज्य की भावना की जाती है, इसी प्रकार प्लक्ष (पाकड़) के पत्तों से बने पात्र में सभी जीवों का आधिपत्य प्राप्त होना बतलाया जाता है। यह सर्वदा का नियम है। पुष्टि, बुद्धि, प्रज्ञा एवं स्मरणशक्ति की कामना से बरगद के पत्तों के पात्र में बलिकर्म करना चाहिये। काश्मरी (खम्भारी) के पत्तों से बने हुए पात्र राक्षसों के विनाशक, एवं यशोवर्द्धक कहे गये हैं। मधूक (महुए) के पत्तों से निर्मित पात्र में कृत बलिकर्म इस लोक में उत्तम सौभाग्य प्रदान करता कहा जाता है। फल्गु[१] (कठूमर) के पत्तों से बने हुए पात्र में श्राद्ध करने से सभी मनोरथ सफल होते एवं परमकान्ति तथा प्रकाश की प्राप्ति श्राद्धकर्त्ता को होती है। विल्व के पात्र से लक्ष्मी, धारणाशक्ति, तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। वेणु (वेणु) के पात्र में श्राद्ध करनेवाले के खेत, बगीचे और जलाशयों में मेघ नित्य वृष्टि करता है। इन उपर्युक्त पात्रों में जो लोग श्राद्ध के अवसर पर पितरों को एक बार भी बलि देते हैं वे सम्पूर्ण यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं। जो व्यक्ति पितरों को भक्तिपूर्वक सुन्दर पुष्प, माला सुगंधित द्रव्य आदि नित्य देता है वह श्री सम्पन्न होकर सूर्य के समान तेजस्वी होकर शोभा पाता है। गुग्गुल आदि से धूप द्रव्यों को मधु और घृत के समेत जो पितरों के उद्देश्य से समर्पित करता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है।

---

[१] कठूमर। इसके पेड़ बहुत बड़े-बड़े होते हैं। इस पर फूल नहीं आते। इसकी डालियों से फल पैदा होते हैं, इसके पत्ते गूलर के पत्तों से बड़े होते हैं। पत्तों के स्पर्श करने से हाथों में खुजली होने लगती है। पत्तों से दूध निकलता है।

पितरों के उद्देश्य से जो मनोहर सुगंधियुक्त धूप दान करता है वह अपनी स्त्री में इस लोक तथा परलोक में उत्तम संतान प्राप्त करता है। अतः बिना आलस्य किये नित्य पितरों को धूपदान करना चाहिये। जो व्यक्ति प्रयत्नपूर्वक सर्वदा पितरों के उद्देश्य से दीपदान करता है। वह लोक में परम सुन्दर अनुपम नेत्र प्राप्त करता है, अपने तेज, यश, कान्ति, तथा बल से पृथ्वीतल में विख्यात होता है और अन्तकाल में स्वर्ग में शोभा पाता है वहाँ पर अप्सराओं से घिरा हुआ, विमान पर अवस्थित हो आनन्द का अनुभव करता है। जितेन्द्रिय एवं पवित्र हो पितरों को गन्ध, पुष्प, धूप, घृत, आहुति, फल, मूल एवं नमस्कार अर्पित करना चाहिये, पितरों को प्रथमतः तृप्त करके उसके बाद अपनी शक्ति के अनुसार अन्न सम्पत्ति से ब्रह्मणों की पूजा करनी चाहिये। सर्वदा श्राद्ध के अवसर पर पितामहगण (पितरगण) वायुरूप धारण कर उन ब्राह्मणों को देख उन्हीं में आविष्ट हो जाते हैं—इसीलिये मैं तत्पश्चात् उनके भोजन कराने की बात कह रहा हूँ। वस्त्र, अन्न, विशेषदान, भक्ष्य, पेय, गौ, अश्व तथा ग्रामादि का दान देकर उत्तम ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिये। द्विजों के सत्कृत होने पर पितरगण प्रसन्न होते हैं अतः अन्न द्वारा ब्राह्मणों की विधिवत् पूजा करनी चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण सर्वप्रथम श्राद्धकर्म में बिना आलस्य के बायें और दाहिने हाथों से उल्लेखन करे और उसी प्रकार प्रोक्षण (सिंचन) करे। तदुपरान्त कुश, पिण्ड, विविध प्रकार के भक्ष्य, पुष्प, गन्धदान, अलंकार आदि वस्तुओं में से एक-एक का निर्वपन करे। श्राद्धकर्म में ब्राह्मण को चाहिये कि भली तरह उपस्थित ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करके वैश्वदेव कर्म के उपरान्त अभ्यङ्ग (तेलमर्दन) कुश, एवं पिञ्जल (?) इन तीनों से विधिवत् क्रियाएँ सम्पन्न करे। फिर अपसव्य होकर पितरों के उद्देश्य से उत्तम अन्न दे, उन सबों का नामोच्चारण कर के वस्त्र के लिए सूत्र दान करे। देवताओं के लिए खण्डन, पेषण और उल्लेखन—इनका एक बार का विधान है, और पितरों के लिए तीन बार कहा गया है। हाथ से एक पवित्र लेकर सभी पितरों को अलग-अलग से वस्त्रदान के मन्त्र द्वारा पिण्डों के ऊपर देकर दर्शन करने का कल्याण प्राप्त किया जाता है। सभी श्राद्धकार्यों में घृत, तिल युक्त पिण्डों का निर्वपन भूमि पर करना चाहिये। पितरों में भक्ति रखनेवाला व्यक्ति बायें घुटने को पृथ्वी पर टेककर बिना आलस्य के अपसव्य होकर यत्न पूर्वक पितरों के जल से पिता पितामह प्रपितामह एवं पुराने पितरों का आवाहन कर पिण्डों को नीचे रखे। कुछ लोग अन्न, जल, पुष्प, भिन्न-भिन्न प्रकार के भक्ष्य आदि पदार्थों से मातामह (नाना आदि मातृपक्ष के पितरों को) आदि के लिए पिण्डदान का अलग विधान मानते हैं। क्रमशः अँगूठे समेत पुष्टिवृद्धि करनेवाले तीन पिण्डों को घुटने को पृथ्वी पर टेक कर 'नमो वः पितरः शुष्मै' ऐसा मन्त्र उच्चारण करके बाएँ हाथ से प्रदान करे। सर्वदा इसी प्रकार सावधान चित्त होकर करना चाहिये। तदनन्तर सावधान होकर 'नमो वः पितरः सौम्याः' ऐसा मन्त्रोच्चारण करते हुए दक्षिण दिशा में प्रथम पिण्डदान करे। तदुपरान्त बाएँ हाथों से बिना आलस्य किये उलूखल में परिष्कृत तन्दुल (चावल) जलपात्र से जल, (?) नवीन क्षौम[१] सूत्र, कपास का

---

[१] अलसी के अथवा पाट की खाल से बना हुआ सूत।

Funding by IKS-MoE

सूत, शोणसूत (लालरंग का सूत ?) पितरों के उद्देश्य से दान करे। किन्तु ऊन का अथवा रेशम का सूत पितरों के उद्देश्य से नहीं देना चाहिये। इसी प्रकार यज्ञ में वस्त्र के अंचल भाग को, भले ही वह नवीन वस्त्र का हो, भी वर्जित रखना चाहिये। ये उपर्युक्त निषिद्ध वस्तुएँ पितरों को प्रसन्न नहीं करतीं अतः इनके देनेवाले भी सन्तुष्ट नहीं होते। पितृकार्य में त्रिककुद, एवं अञ्जन को श्रेष्ठ बतलाया गया है। इसी प्रकार काले तिल से निकला हुआ जो तेल है वह भी प्रशस्त है। चन्दन, अगुरु (अगर) तमाल, उशीर, पद्मक (पद्माख) धूप, गुग्गुल, श्रेष्ठ तुरुष्क[१] का धूप, श्वेत पुष्प—ये सब वस्तुएँ पितृकार्य में श्रेष्ठ हैं। पद्म, उत्पल एवं अन्यान्य जितनी सुगंधित वस्तुएँ हैं—वे सब भी शुभ हैं। जपा, भण्डीर, ऊपकाम एवं कुरण्डक के पुष्पों को श्राद्धकर्म में सर्वदा वर्जित रखने चाहिये। कल्याण की कामना करनेवाले व्यक्ति को, निर्गन्ध अथवा अति तीक्ष्ण गन्ध वाले पुष्पों, को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिये। श्राद्धकर्म में यजमान को चाहिये कि वह दक्षिणाभिमुख होकर विधिपूर्वक आमन्त्रित उत्तराभिमुख बैठे हुए जितेन्द्रिय ब्राह्मणों की पूजा करे। तदनन्तर उनके सामने यत्नपूर्वक पिण्डों को और कुशों को दे, इस विधि से अपने पितामहों की पूजा करे। पुष्पों से संयुक्त, सरल सीधी हरी पिञ्जूलियाँ (?) वहाँ रखे, पितरों के तीर्थ से संयुक्त उसके रत्निमात्र दान देने से पितर लोग संतुष्टि लाभ करते हैं। मूल के समीप में नीले वर्ण की, पत्थर आदि के टुकड़ों से रहित सावाँ, और नीवार—ये दो वस्तुएँ भी पितृकार्य में दुष्प्राप्य कही गई हैं। पूर्वकाल में इसकी कथा इस प्रकार कही जाती है। प्रजापति के केश आकाशमार्ग से पृथ्वी पर जो गिरे वे काश[२] के रूप में परिणत हुए। यही कारण है कि श्राद्धादि कार्यों में काश सर्वदा परम पवित्र मानी गई है। विभव की इच्छा करनेवाले व्यक्ति उन पर पिण्डदान करें। काश पर पिण्डदान करने से प्रजा (सन्तति) की पुष्टि, शरीर की कान्ति, यश, बुद्धि, शोभा, आदि की वृद्धि होती है, पाप रहित होने से शरीर अत्यन्त मनोहर हो जाता है। श्राद्धकर्म में दक्षिणाभिमुख होकर केवल एक बार पिण्डदान के लिए कुशों को पृथ्वी पर बिछाये, पूर्व दक्षिण की ओर अग्रभाग करके उस विधि को सम्पन्न करे, जो बतलायी जायगी। बुद्धिमान् पुरुष कभी दीन, क्रुद्ध अथवा अन्यमनस्क होकर श्राद्ध न करे, सर्वदा एकाग्र चित्त होकर श्राद्ध करना चाहिये। (वह मन में ऐसी भावना करे कि) जो कुछ भी अपवित्र अथवा अनियमित वस्तुएँ हैं, मैं उन सब को निवारित कर रहा हूँ, सभी विघ्न डालनेवाले असुर एवं दानवों को भी मैं मार चुका हूँ। सब राक्षस, यक्ष, पिशाच एवं यातुधानों के समूह मुझसे मारे जा चुके हैं।' मन्त्र:—निहन्ति सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धताश्च सर्वे सुरदानवा मया, रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसंघा हता मया यातुधानाश्च सर्वे।' इस मन्त्रद्वारा संयतात्मा धीर यजमान उस वेदी को (कुश द्वारा) एक बार लिखकर कल्याणदायिनी विभूति की इच्छा करता हुआ उत्तर दिशा में जाकर उसे (कुश को) फेंक दे। इस प्रकार की विधि से जो व्यक्ति पितृकार्य में अन्नदान करता है, उसके श्राद्धकार्यों में असुर गण वर्जित हो जाते हैं। जिस देश में यह मन्त्र पढ़ा जाता

---

[१] लोबान का धूप। यह एक वृक्ष का सुगंधित गोंद है।

[२] कुश की तरह एक तृण। इसका पुष्प श्वेत वर्ण का होता है।

Funding by IKS-MoE

है, उस देश को राक्षस लोग छोड़ देते हैं। अशुचि व्यक्ति श्राद्धकार्यों में अन्न प्रदान करना तो दूर रहा दिये जानेवाले अन्न का दर्शन अथवा स्पर्श तक न करे, पवित्र पाणि होकर जो अन्नदान करता है, वह दान का सहस्र गुना अधिक फल प्राप्त करता है। सर्वदा इसी विधि से ब्राह्मण श्राद्धकर्म सम्पन्न करे, ऐसा करने से जो कुछ भी मनोगत अभिलाषाएँ होती हैं, उन सब को पितामह गण पूर्ण करते हैं। ऐसी विधियों से श्राद्धकर्म सम्पन्न करने से पितर लोग हृदय से प्रसन्न होते हैं और राक्षस लोग निरादृत और बहिष्कृत होते हैं। अतः नित्य प्रयत्नपूर्वक उपर्युक्त विधि से श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिये। श्राद्धकर्म में शूद्र, क्षीरचाशु (?) बल्वज, तरु, वारण, लव, लववर्ष,—ये तथा अन्यान्य तृणों को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिये। अञ्जन, अभ्यञ्जन, गन्धमानुप्रलयन (?) ये सब भी वर्जित हैं। पुनः उत्पन्न हुए काशों से सभी कार्यों को सम्पन्न करना चाहिये—इससे सभी फलों की प्राप्ति होती है। जो पुनः उत्पन्न होनेवाले काश तृण हैं वे तथा वर्हण और उपवर्हण—ये भी उसी प्रकार श्राद्धकर्म में उपयोगी हैं। ‘अथते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः’ अर्थात् पितरगण देवस्वरूप हैं, और देवगण ही पितरस्वरूप हैं। यह पुष्प सुगंधित द्रव्य, धूपादि के दान के समय का कहा गया है। हवन के लिए रखी गई सामग्री को दक्षिणदिशा में खींचकर यत्नपूर्वक अस्वर्ग्य अथवा लौकिक विधियों से कर्मसिद्धि के लिए हवन करे। समिध को भीतर रखकर हवन करना चाहिये। अग्नि की उपासना करनेवाला यजमान प्रयत्नपूर्वक समाहित चित्त हो मनोयोग पूर्वक हवन करे। ‘अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अंगिरसे नमः’ सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः। यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधानमः’ इति ब्रुवन्।” अर्थात् पितरों के उद्देश्य से दी जानेवाली वस्तुओं को उन तक वहन करनेवाले कव्यवाह अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है, पितृमान सोम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है, यम अङ्गिरा को नमस्कार है, स्वधा है। ये हवन करने के मन्त्र हैं। इन मन्त्रों के क्रम से नित्य दक्षिण दिशा से अग्नि के तदनन्तर सोम के, इन दिनों के मध्य भाग में विवस्वान् (यम) के उद्देश्य से हवन करे। उपचार, स्वधाकार, उल्लेखन, हवन, जप, नमस्कार, प्रोक्षण, अञ्जन, अभ्यञ्जन, पिण्डनिर्वतन—ये सब कार्य कलाप मन्त्रोच्चारण पूर्वक करने पर अश्वमेध यज्ञ का फल प्रदान करनेवाले स्मरण किये गये हैं। जैसी विधि के साथ श्राद्धक्रियाएँ बताई गई हैं, वैसी ही प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिये। अग्नि में विशेषतया खूब प्रज्वलित हो जाने पर अधिक हवि डालनी चाहिये, कर्मसिद्धि के लिए दहकती हुई निर्धूम अग्नि में हवि डालनी चाहिये। जो यजमान धूमयुक्त अथवा बिना प्रज्वलित अग्नि में हवन करता है वह अन्धा एवं पुत्रविहीन होता है—ऐसा हमने सुना है। थोड़े इन्धनोंवाली, रूखी, चारों ओर से चिनगारियोंवाली, ज्वालाओं और धूप से व्याप्त अग्नि सिद्धि के लिए नहीं है। जो अग्नि दुर्गन्धियों से भरी, नीली, विशेषतया काली है और जिसके प्रज्वलित होने पर पृथ्वी फट जाय, उसमें हवन करने से पराभव जानना चाहिये। किरणों से सुशोभित, ज्वालाओं को एक पिण्डरूप में प्रकट करनेवाली, घृत और सुवर्ण से उत्पन्न होनेवाली (पीली) स्निग्ध और प्रदक्षिणा करती हुई–सी अग्नि सिद्धि देनेवाली है। यह अग्नि इस लोक में नर-नारी—दोनों समुदायों से सर्वदा से प्रचलित पूजा प्राप्त करती है। उसके द्वारा पूजित होकर पितरगण अक्षय एवं अनन्त तुष्टि प्राप्त करते हैं। श्राद्धकर्म में स्थाली, उदुम्बर के

पात्र (गूलर के पत्तों से बने हुए पात्र) उदुम्बर के फल और उसी की समिधा ये वस्तुएँ विशेष पवित्र एवं पुण्यप्रद मानी गयी हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! श्राद्धकर्म में जिन-जिन पात्रों में जो-जो फल मैंने बतलाये हैं, वे सब जातकर्म में शुद्धि के अवसर पर भी पवित्र एवं फलदायी होते हैं। समिधा के लिए भी क्रमशः यही नियम जानना चाहिये। श्राद्धकर्ता चित्त को सावधान करके ब्राह्मणों से यह निवेदन करे कि मैं अग्नि में पितरों के उद्देश्य से हवन कर रहा हूँ। श्रेष्ठ ब्राह्मणों द्वारा 'करो' ऐसी आज्ञा प्राप्त हो जाने पर अपनी पत्नी और पुत्रों को साथ लेकर अग्नि में हवन करे। समान (?) प्लक्ष (पाकड़) न्यग्रोध, (बरगद) अश्वत्थ (पीपल) विकंकत, उदुम्बर (गूलर) बिल्व, चन्दन — ये वृक्ष यज्ञ कार्य के लिए उपयोगी हैं। सरल, देवदारु, शाल, खदिर— विशेषतया ये वृक्ष भी यज्ञ की समिधा के लिए प्रशस्त माने गये हैं। ग्रामों में उत्पन्न होनेवाले कण्टकी के वृक्ष भी यज्ञ के कार्यों में यत्रकुत्र समिधा के लिए पूजित—व्यवहार में आते हैं—ऐसी पितरों की आज्ञा है। कल्कल की समिधाओं द्वारा जो अग्नि में हवन करता है, उसके इस कर्म से जो फलप्राप्ति होती है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। आयस की समिधा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली तथा अश्वमेध यज्ञ का फल देनेवाली है। श्लेष्मातक, नक्तमाल, कपित्थ, (कैथा) शाल्मलि (सेमर) नीप (कदम्ब) विभीतक (बहेड़ा) बल्लियाँ तथा वे वृत्त, जिनपर पक्षियों का निवास हो, यज्ञ कार्य में वर्जित रखने चाहिये। इनके अतिरिक्त वे अन्यान्य वृत्त जो यज्ञकार्य में निषिद्ध माने गये हैं, वर्जित रखने चाहिये। पितरों के उद्देश्य से पढ़े जानेवाले मंत्रों के अन्त में स्वधा का और देवताओं के यज्ञों में उनके उद्देश्य से पढ़े जानेवाले मंत्रों के अन्त में स्वाहा का उच्चारण करना चाहिये—ऐसा नियम बतलाया गया है। ॥१—७७॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

छिहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

सूत ने कहा:—ऋषि वृन्द ! बृहस्पतिजी ने अथर्व वेद के अनुसार यह विधि बतलाई है कि जो देवगण पितरों के नाम से विख्यात हैं, उनके अतिरिक्त अन्य भी पितरगण हैं। पितरों की विशेष तथा पहले और देवताओं की बाद में पूजा करनी चाहिए। इस लोक में ऐसी प्रथा है कि यत्न पूर्वक देवताओं से भी प्रथम पितरों की पूजा लोग करते हैं। हे धर्मज्ञ, प्राचीनकाल में दक्ष की एक विश्वा नाम की पुत्री थी, जो लोक प्रसिद्ध थी, विधि एवं धर्म पूर्वक उसे दक्ष ने धर्म को समर्पित की थी। उससे उत्पन्न होनेवाले महात्मा पुत्रगण विश्वेदेवा के नाम से प्रसिद्ध हुए—ऐसा सुना जाता है। वे विश्वेदेवागण सभी लोगों के नमस्करणीय एवं त्रैलोक्य विख्यात हैं। सब के सब उन महात्मा विश्वेदेवों ने देवताओं और गन्धर्वों से सुसेवित हिमवान के मनोहर शिखर पर सम्पूर्ण अप्सराओं देवताओं और गन्धर्वों द्वारा पालन किये गये परम कठोर तप को किया। उनके उस महान् तप से परम प्रसन्न होकर पितर गण शुद्ध मन से बोले, विश्वेदेवगण ! हम

Funding by IKS-MoE

आप लोगों से परम प्रसन्न हैं, वरदान माँगिये, हम आपके कौन-से मनोरथ पूर्ण करें। पितरों के ऐसा कहने पर त्रैलोक्य की उत्पत्ति करनेवाले प्रजापति ब्रह्मा ने विश्वेदेवों से यह कहा। ॥१—७॥

ब्रह्मा ने कहा:—उन लोगों की (आप लोगों की) इस परम कठोर तपस्या से महातेजस्वी महादेव जी परम सन्तप्त हो गये हैं, हम भी बहुत प्रसन्न हैं, बोलिये, आपके किस मनोरथ को पूर्ण करें। लोक के रचयिता भगवान् ब्रह्मा के ऐसा कहने पर सब विश्वेदेवगण एक साथ ही लोकेश ब्रह्मा से बोले, हम लोगों की आकाङ्क्षा यह है कि श्राद्ध में हम लोगों को अंश मिले। विश्वेदेवों के ऐसा कहने पर ब्रह्मा ने उन स्वर्गपूजित विश्वेदेवों से कहा, आप लोग जो वर चाहते हैं, वह सफल होगा। अनन्तर पितरों ने विश्वेदेवों से कहा, ब्रह्माजी ने जैसा आप लोगों के लिए कहा है, वह सत्य होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस लोक में जो कुछ भी हम लोगों के लिये किया जाता है, उन सब में हमारे साथ तुम लोग रहोगे। हम लोगों के लिए किये जानेवाले मनुष्यों द्वारा विहित श्राद्ध कर्म में तुम लोगों के आगे आसन होगा— यह सच कह रहे हैं। मनुष्य लोग उस श्राद्ध कर्म में विविध प्रकार के कुतपों, मालाओं से सुगंधित द्रव्यों तथा अन्नादि भक्षणीय वस्तुओं से तुम लोगों को प्रथम पूजित करेंगे। इसी प्रकार जो कुछ भी वस्तुएँ दी जायँगी, वह तुम लोगों को पहिले और हम लोगों को बाद में दी जायँगी। विसर्जन में हम लोगों का प्रथम स्थान रहेगा, देवता (आप लोग) गण हम लोगों के पश्चात् विसर्जित किये जायँगे। समस्त भूतों देवताओं और पितरों के उद्देश्य से किये जानेवाले श्राद्धकर्म में श्राद्ध की सर्वतोभावेन रक्षा और आतिथ्य सत्कार—ये दो विधान हैं। इन दोनों के भली भाँति सम्पन्न हो जाने पर श्राद्ध को सुचारु रूप से सम्पन्न समझना चाहिए। हम लोगों ने जो बातें तुम लोगों से कही हैं—वे सब सत्य होंगी। पितरगणों के साथ सभी जीवों के ऊपर अनुग्रह करने वाले भगवान् ब्रह्मा विश्वेदेवों को इस प्रकार वरदान देकर आनन्द पूर्वक अपने अभीष्ट स्थान को चले गये। वेद में मनुष्यों के लिये पाँच महायज्ञों की चर्चा की गई है—इन पाँचों महायज्ञों का मनुष्य सर्वदा अनुष्ठान करे। इन (पाँचों महायज्ञों) के देनेवाले (अनुष्ठान करनेवाले) जिस स्थान को जाते हैं, उसे सुनिये। भय रहित, अहंकार से सर्वदा विहीन, शोक रहित, परिश्रम को दूर करनेवाले, सभी मनोरथों को पुरस्कृत करनेवाले ब्रह्म के स्थान को वे प्राप्त करते हैं। ये पाँचों महायज्ञ—केवल मंत्रोच्चारण को छोड़कर—शूद्रों को भी करने चाहिये। इन के विना जो भोजन करता है वह नित्य ऋण का भक्षण करता है। जो केवल अपने लिये भोजन बनाता है वह पापात्मा है और ऋण का भोजन करता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष को इन पाँचों महायज्ञों का सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये। कुछ लोग पितरों के जीवित रहते समय भी नैवेद्य करने की इच्छा करते हैं। तदनन्तर उसके लिये जल दान पूर्वक बलि देनी चाहिये, जल का कलश भी देना चाहिये। ऊँचे से भी ऊँचे स्थान पर से भली प्रकार विहित बलि देनी चाहिये। सूक्ष्म (स्वल्प) मात्रा में बलि को लेकर सींगोंवाली गौओं के ऊपर छोड़नी चाहिये। जीवित पितरों के लिए पिण्डदान नहीं है। उन्हें केवल विधिपूर्वक सुन्दर पसन्द आनेवाले अन्नों एवं अन्यान्य भक्ष्य भोज्य पदार्थों को खिलाना चाहिये। यह वेदों से सम्मत विधान है, अत इसे यत्नपूर्वक बतला रहा हूँ। ये पितरगण देवताओं के देवता

Funding by IKS-MoE

एवं परम महात्मा हैं। कुछ आचार्य लोग श्राद्धकर्म में सर्व प्रथम ब्राह्मणों का पूजन तदनन्तर पिण्डदान के विधान की इच्छा करते हैं। इस प्रक्रिया के मानने वाले धर्मार्थ में कुशल आचार्यों से बृहस्पति कहते हैं। महात्मा पितरगण परम योगाभ्यास परायण, योग सम्भव एव योगिराट् हैं, ये लोग चन्द्रमा को भी सन्तुष्ट करने वाले हैं, अतः सर्वप्रथम इन्हें पिण्डदान करना चाहिये, पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। इसीलिए पितरों में श्रद्धा एवं भक्ति रखनेवाले व्यक्ति पवित्र होकर उन परम योगी पितरों को सर्वप्रथम पिण्डदान दें, यह पिण्डदान ही पितरों के लिए साक्षात् अग्नि में हुनी गई हवि के समान है। श्राद्ध के अवसर पर सहस्रों ब्राह्मणों में से यदि एक भी योगाभ्यासी अग्रासन पर बिठाया गया है तो वह अकेला ही जल में नाव की तरह यजमान और अन्य भोक्ता—सब का उद्धार करता है। जिस स्थान पर असत्पुरुषों का विशेष सम्मान एवं सत्पुरुषों का अपमान होता है, वहाँ अति दारुण देवदण्ड शीघ्र ही गिरता है। जिस स्थान पर धर्माचरण में रत रहनेवाले एवं अतिथि रूप में समागत ब्राह्मण को छोड़कर किसी धूर्त अथवा मूर्ख ब्राह्मण को भोजन कराया जाता है, वहाँ वह दाता अपने पूर्व जन्म के भोग्य कर्मों के रहते हुए भी विनाश को प्राप्त होता है। भोग की इच्छा करनेवाला प्रयत्न पूर्वक सर्वदा अग्नि में पिण्डदान करे। सन्तति का अभिलाषी स्त्रियों को सर्वदा पिण्ड दें, किन्तु ऐसे समय भी पिण्डदान की अन्य क्रियाएँ उससे पूर्व ही कर लेनी चाहिए। उत्तम कान्ति की अभिलाषा करनेवाला नित्य गौओं को पिण्डदान करता है; इसी प्रकार उत्तम बुद्धि, पूजा, (सम्मान) यश, कीर्ति का अभिलाषी भी नित्य गौओं को पिण्ड देता है। दीर्घायु की प्रार्थना करनेवाला नित्य प्रति कौओं के लिए बलिदान करता है। सुकुमारता का इच्छुक व्यक्ति मुर्गों को नित्य बलिदान देता है। पिण्डदान के फल का वर्णन कर चुका। अथवा जल में दक्षिणाभिमुख स्थित होकर आकाश को बलि दे क्योंकि पितरों का स्थान आकाश और दिशा दक्षिण मानी गयी है। ब्राह्मण लोग इस श्राद्धकर्म में एक पिण्डोद्धार की प्रक्रिया आगे बतलाते हैं, उन विप्रों की पिण्डों का उद्धार कीजिये,—ऐसी आज्ञा (?) प्राप्त हो जाने पर यह विधि करनी चाहिये। पुष्प, फल भक्ष्य, अन्न इन सब के अग्रभाग को नोंचकर सर्वप्रथम अग्नि में हवन कर देना चाहिये। पिण्डदान करनेवाले व्यक्ति दक्षिण ओर मुख करके विविध खाद्य सामग्रियाँ, अन्न, पीने की सामग्रियाँ अत्युत्तम फल—इन सब वस्तुओं को अग्नि में हवन करने के उपरान्त पिण्डदान करे। वैवस्वत (यम) और सोम को पिण्ड निवेदन करने के उपरान्त जलानयन कर लेने पर पीछे ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। उन्हें विविध खाद्य पदार्थों एवं अन्नादि द्वारा अपनी शक्ति भर वस्तुओं का क्रमशः भोजन कराना चाहिए। चिकने खाद्य पदार्थ, सुगंधित खाद्य पदार्थ से सन्तुष्ट करके विविध रसों द्वारा तृप्त करे। तदनन्तर अकेले एकान्तचित होकर हाथ जोड़े हुए उनकी विधिवत् पूजा करे। इस श्राद्धकर्म में तत्पर एवं श्रद्धा रखने वाला मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है। पितामहगण उसे अक्षुद्रता (महत्त्व) कृतज्ञता, चतुरता, सत्कार, यज्ञ, दान आदि की शक्ति देते हैं। ऋषि वृन्द ! अब इसके उपरान्त ब्राह्मणों के भोजन कर लेने पर जो जो क्रियाएँ श्राद्धकर्म में होती हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। सबसे पहले पितरों में भक्ति रखनेवाला भूमि का सिंचन एवं उसका परिष्कार करके विधान के अनुसार

Funding by IKS-MoE

विकिरण[1] करे। तदनन्तर ब्राह्मणों से स्वधा वाचन करा के प्रचुर दक्षिणा प्राप्त उत्तम ब्राह्मणों का विधिवत् सत्कार कर शेष अन्न की आज्ञा प्राप्त कर, हाथ जोड़, मन एवं इन्द्रियों को स्ववश रख कुछ दूर तक उनको पहुँचा कर विसर्जन करे। ॥८-४३॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

सतहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

बृहस्पति जी बोले:—सौम्यगण! ये पितरगण केवल एक बार पूजा प्राप्त कर लेने पर परम प्रसन्न हो जाते हैं, ये कभी नष्ट होनेवाले नहीं हैं, योगी हैं, महात्मा हैं, पाप रहित हैं, महान् तेजस्वी हैं। अब मैं इस जन्म के उपरान्त स्वर्ग लाभ करानेवाले, विस्तृत मनोरथ एवं ऐश्वर्य को देनेवाले, मोक्ष प्राप्ति के सहायक उन सरोवरों, सरिताओं, पुण्यप्रद तीर्थों, देशों एवं पर्वतों का वर्णन कर रहा हूँ, जिन पर (पितरगण) अनुग्रह करते हैं। जो तीनों लोकों में पुण्यप्रद है वह अमरकण्टक सभी पर्वतों में श्रेष्ठ, पुण्यदायी तथा सिद्ध और चारणों द्वारा सेवित है। जिस पर सहस्रों क्या करोड़ों अरबों वरस तक प्राचीनकाल में भगवान् अंगिरा ने परम कठोर तपस्या की थी। जहाँ पर मृत्यु की भी गति नहीं है, असुर एवं राक्षसों से भी भय नहीं है तथा जब तक भूमि स्थित रहेगी तब तक लक्ष्मी का अभाव नहीं रहेगा, वह उत्तम नगराज अपने परम तेज एवं यश से सुशोभित है। उसके परम उच्च शिखर के वृक्षों पर खिले हुए पुष्पों से उसकी शोभा संवर्तक अग्नि की तरह है। इस पर्वतराज पर उगनेवाले कुश अति मृदु, सुगन्धित सुवर्ण के समान कान्तिवाले, देखने में मनोहर तथा शान्ति उत्पन्न करनेवाले प्रसिद्ध हैं। प्राचीनकाल में महान् तेजस्वी भगवान् अंगिरा ने अग्नि होत्र में पृथ्वी पर बिछाने के लिए इन उत्तम कुशों का उपयोग किया था, दक्षिण भाग में नर्मदा के जल का पान किया था, जिसके फल स्वरूप उन्हें स्वर्ग के सोपान दिखाई पड़े थे। जो बुद्धिमान् व्यक्ति पवित्र अमरकण्टक पर्वत पर उन्हीं कुशों पर एक बार भी पिण्डदान करता है, उसके फल को बतला रहा हूँ। उसका किया हुआ वह श्राद्ध पितरों को परम प्रसन्न करनेवाला एवं अक्षय फलप्रदायी है। सर्वदा इस पवित्र क्षेत्र को प्राप्त हो कर वे अन्तर्हित हो जाते हैं। आज भी उस पवित्र पर्वत पर ज्वाला सरोवर (?) सम्पूर्ण रूप में दिखाई पड़ता है, हड्डीवाले जीवों को रोग मुक्त करनेवाली विशल्य करणी नामक नदी है। उस पर्वतराज अमरकण्टक के पृष्ठभाग पर पूर्व दक्षिण दिशा में फैली हुई वह पवित्र बावली है। कलिङ्गदेश के पार्श्वभाग में पितरों को अति प्रसन्न करनेवाला सिद्धक्षेत्र है, हे ऋषि श्रेष्ठगण! वह स्थान पृथ्वी तल पर परम पवित्र कहा जाता है।

---

[1] विघ्नों को दूर करने के लिए फेंकी गई श्वेत सरसों आदि वस्तुएँ।

Funding by IKS-MoE

देवता और दैत्य—दोनों ही को वह सम्माननीय है । उसकी प्रशंसा शुक्राचार्य भी इस रूप में करते हैं कि इस लोक में वे पुरुष धन्य हैं, जो अमरकण्टक पर्वत पर जाकर अपने पितरों में श्रद्धा भाव रखकर श्राद्ध में उन को सन्तुष्ट करेंगे । उस पर्वतराज अमरकण्टक पर अल्प तपस्या द्वारा ही लोग सिद्धि प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है कि एक ही बार पूजित होकर पितरगण वहाँ परम स्वर्ग प्राप्त करते हैं । परम रमणीय महेन्द्र पर्वत पर इन्द्र द्वारा सेवित एक पुण्यप्रद स्थान है, वहाँ पर आरोहण करने से पितरगणों को परम प्रसन्नता होती है और श्राद्ध का महान् फल होता है । विल्वाध (?) शिखर पर जाने से दिव्य नेत्र की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्यों से अदृश्य होकर देवताओं की भाँति पृथ्वी पर विचरण करता है । सप्त गोदावर तथा गोकर्ण नामक तपोवन में स्नान कर मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ! धूतपाप नामक स्थान पर जाकर स्नान करनेवाला मनुष्य परम पवित्र हो जाता है, वहाँ पर देव-देव महेश्वर शंकरजी ने परम कठोर तपश्चर्या की थी । उस गोकर्ण नामक स्थान के विषय में ब्राह्मण लोग नास्तिकों के लिए एक प्रधान लक्षण यह बतलाते हैं कि जो लोग ब्राह्मण न होकर वहाँ गायत्री का पाठ करते हैं, उसकी सावित्री नाश को प्राप्त होती है । सिद्धों और चारणों से सेवित देवर्षि के भवन वाले शिखर पर नियमपूर्वक आरोहण करनेवाले मनुष्य स्वर्ग को प्राप्त करते हैं । क्योंकि उस परम रमणीय शिखर प्रदेश में दिव्य चन्दनादि के वृक्ष परम शोभा बढ़ाते हैं, और चन्दन मिश्रित जल की शीतल धारा निरंतर प्रवाहित होती है । उन जल धाराओं से ताम्रपर्णी नामक नदी प्रवाहित होती है, जो उस पर्वतराज की मदोमन्त्त एवं खेद से थकी हुई बाला की तरह शनैः शनैः दक्षिण के समुद्र में जाकर मिलती है । उस ताम्रपर्णी की जलराशि महासमुद्र में मिलकर शङ्ख मुक्ता और शङ्ख मुक्तिका के रूप में उत्पन्न होती है । जो मनुष्य शङ्ख और मुक्ताओं के समेत उसके जल को लाते हैं, वे समस्त आधि व्याधिओं से मुक्त होकर अमरावती को प्राप्त करते हैं । चन्दनों से संयुक्त शंखों और मुक्ताओं के दान करने से वहाँ पर लोग अपने पाप करने वाले पितरों का भी उद्धार कर देते हैं—ऐसी श्रुति है । पुण्यात्मा जनों द्वारा सुसेवित चन्द्र नामक पुण्यप्रद तीर्थ में, कुमारी में, कावेरी में, अक्षय प्रभव में, श्रीपर्वत के तीर्थ में, वैकृत नामक पर्वत पर, औशिर नामक पर्वत पर भी, जहाँ पर कि पलाश, खदिर, बेल, पाकड़, पीपल, विकङ्कद आदि के पेड़ एक ही स्थान में दिखाई पड़ते हैं, पितरों का लोग उद्धार करते हैं । हे द्विज-वर्यगण ! यह तीर्थों का समूह यज्ञ करने के लिए समुचित तथा सिद्धि देनेवाला है, इनमें अपने अंगों (शरीर) को छोड़ देनेवाला मनुष्य अमरावती को प्राप्त करता है । इन पवित्र तीर्थों में किये गये स्वकर्मों के फल अन्य जन्म में मिलते हैं, एवं पितरों के उद्देश्य से अल्प रूप में भी कठिनाई से किये गये कर्म अच्छी तरह से किये गये कर्मों का फल प्रदान करते हैं । पितरों की कन्या नर्मदा समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ एवं पुण्य प्रदायिनी है, उसके तट पर किये गये श्राद्धादि कर्म अक्षय फलदायी होते हैं । सिद्धों और चारणों से सुसेवित माठर के पवित्र वन में वे अन्तर्हित नहीं होते, क्योंकि उस महान् गिरि में उनकी आसक्ति है। पवित्र विन्ध्या गिरि में धर्मी एवं अधर्मी की पहचान के लिए यह देखा जाता है कि जो पापात्मा हैं वे धारा को नहीं देख पाते, केवल साधुगण उसका दर्शन करते हैं । उस धारा में किन्हीं पाप कर्मियों के पाप

Funding by IKS-MoE

दिखाई पड़ते हैं। प्रायः शुभ कर्म करने वालों को ही वह धारा स्पष्ट दिखाई पड़ती है। कोशला में मतंग के पापों को दूर करने वाली पाप निषूदिनी नामक बावली है, उसमें स्नानकर स्वेच्छा गमन करनेवाले पक्षी गण भी स्वर्ग प्राप्त करते हैं। कुमारकोशला तीर्थ में, पातपञ्जर नामक पर्वत पर, समुद्रान्त पाण्डुकूल नामक तीर्थ में, पण्डारक नामक वन में, अतिनिर्मल पाप रहित प्रभव अभय नामक तीर्थ में सत्कार कर श्रीवृक्ष, गृध्रकूट, जम्बूमार्ग, परम बुद्धिमान योगाचार्य गुरुवर असित के असिता नामक पवित्र तीर्थ में नित्य श्राद्ध करने से अनन्त फल की प्राप्ति होती है। पुष्कर तीर्थ में श्राद्ध का अक्षय फल होता है, तपस्या महान् फलदायिनी होती है। महासमुद्र में प्रभास नामक तीर्थ में भी ऐसी फल-प्राप्ति होती है, इसीलिए ऐसा कहा गया है। देविका में सिद्धों द्वारा सुसेवित वृष नामक एक कूप है, जिसका जल नित्यप्रति गौओं के शब्द से ऊपर उछलता है। सभी पापों से बहिष्कृत रहनेवाले योगेश्वरों से सुसेवित उस कूप पर जो श्राद्ध करता है, उसके उस श्राद्ध का फल बतला रहा हूँ, वह श्राद्ध सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला एवं अक्षय फलदायी है, तथा पितरों को प्रसन्न करता है। वहाँ पर साक्षात् अग्नि की सनातन काल से प्रतिष्ठित जातवेद नामक शिला है। वहाँ जो कोई व्यक्ति उस अग्नि में प्रवेश करता है वह स्वर्गलोक में आनन्द का अनुभव करता है। एवं शान्त अग्नि होने पर पुनर्जन्म धारण करता है, उस परम पवित्र तीर्थ में दिया हुआ श्राद्धादि का दान अक्षय फलदायी होता है। दशाश्वमेध तीर्थ में एवं पञ्चाश्वमेध तीर्थ में श्राद्ध करने पर दस एवं पाँच अश्वमेध यज्ञों का फल सचमुच प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये। हयशिरा नामक पवित्र एवं प्रख्यात तीर्थ शीघ्र वरदान देनेवाला है, वहाँ पर श्राद्धकर्म अक्षय फलदायी होता है, एवं श्राद्धकर्ता स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है। कुम्भतीर्थ में जाकर लोग श्राद्धादि कर्मों का अनुष्ठान करते हैं, उस पवित्र तीर्थ को पाप विनाशक समझना चाहिये, वहाँ पर किये गये श्राद्ध को अक्षय फलदायी कहा गया है, इसी प्रकार जप, हवन एवं तपस्या के बारे में भी कहा गया है। अजतुंग नामक कल्याणदायी पवित्रतीर्थ में सर्वदा पितरों का तर्पण करना चाहिये, जहाँ पर पर्वों के अवसर पर देवताओं की छाया दिखलाई पड़ती है। समस्त पृथ्वी मण्डल में इस पवित्र तीर्थ का दान अक्षय बतलाया जाता है, पाण्डव गण यहीं पर रोगमुक्त हुये थे। सभी प्रकार के पाप पूर्ण कर्मों से विरक्त रहनेवाले योगेश्वरों द्वारा सुसेवित उस परमपवित्र तीर्थ में जो लोग श्राद्ध करते हैं, उसका फल बतला रहा हूँ। उस परम पवित्र तीर्थ में साक्षात् पूजित होकर पितरगण सर्वदा प्रसन्न रहते हैं, इस लोक में जो इन्द्रियों को स्ववश रखनेवाला है वह मृत्यु के बाद स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है। परम पवित्र शिव नाम का एक ह्रद है, वहीं पर दिव्यगुण युक्त व्याससर एवं ब्रह्मसर नामक दो सरोवरों की भी स्थिति है, उज्जन्त नामक पुण्यप्रद पर्वत भी वहीं हैं, जिसमें बड़े-बड़े योगीश्वर लोग निवास करते हैं। महात्मा वसिष्ठ का पुण्य आश्रम भी वहीं है। इन्हीं तीर्थों के मध्यभाग में ऋक्, यजु, सामवेद का शिर स्वरूप (?) कापोत अथवा पुष्प (?) नामक तीर्थ की रचना भगवान् ब्रह्मा ने की है, जो पाँचवें वेद के नाम से विख्यात है। इन पवित्र तीर्थों की यात्रा कर ब्राह्मण सनातन अग्नि की भाँति तेजस्वी होकर पाप मुक्त हो जाता है, इनमें श्राद्ध का अनन्त माहात्म्य

Funding by IKS-MoE

वर्णित किया गया है, जप, हवन एवं तपस्या के लिए भी अनन्त फल कहा गया है । पुण्डरीक नामक महातीर्थ में श्राद्ध का पुण्डरीक (कमल) के समान मनोहर फल होता है, ब्रह्मतीर्थ नामक महातीर्थ में अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है । सिन्धुसागर सम्भेद तथा पंचनद तीर्थ में अक्षय फल की प्राप्ति होती है, कीरकात्मा नामक पुण्य तीर्थ भी है, पर्वत पर अवस्थित पण्डवा तीर्थ में भी अक्षय फल प्राप्ति होती है । सप्तरद तीर्थ में—विशेषतया मानसतीर्थ में श्राद्धकर्म अवश्य करना चाहिये । महाकूट, वन्द एवं त्रिककुद पर्वत पर भी श्राद्धकर्म करना चाहिये । महावेदी में सन्ध्या के अवसर पर महान् आश्चर्य दिखाई पड़ता है, किन्तु वह अश्रद्धा रखनेवाले नास्तिकों को नहीं प्राप्त होती, केवल व्रतपरायण श्रद्धालु ही को प्राप्त होती है । वहाँ पर जातवेद नामक अग्नि की सनातन काल से चली आनेवाली एक शिला है, उस पर श्राद्धादि एवं अग्निहोत्रादि कार्य सर्वदा करने चाहिये, क्योंकि उनका अक्षय फल होता है । पितरों को अक्षयरूप में श्राद्ध देने के इच्छुक व्यक्ति को इन तीर्थों में सर्वदा सायंकाल के समय श्राद्ध करना चाहिये । यहाँ पर कृतात्मा (पुण्यात्मा) और अकृतात्मा (पापात्मा) जन मालूम पड़ जाते हैं । वहाँ स्वर्ग्यमार्ग प्रद नामक शीघ्र वर प्रदान करनेवाला सरोवर है । जिसमें अपने पारस्परिक वैर भावों को छोड़कर सप्तर्षिगण स्वर्गगामी हुए थे । आज भी उनके विगत वैरभाव के चिह्न वहाँ दिखाई पड़ते हैं । उस उत्तम तीर्थ में स्नान कर मनुष्य स्वर्गलोक को प्राप्त करता है । वहीं पर नन्दिकेश्वर एवं सिद्धगणों द्वारा सुसेवित प्रसिद्ध आयतन (स्थान) है । वहाँ नन्दिकेश्वर की जो मूर्ति है, वह दुराचारियों को नहीं दिखाई पड़ती । भास्कर के उदय होने के अवसर पर वहाँ सुवर्ण के यूप (यज्ञ के खंभे) दिखलाई पड़ते हैं । उनकी प्रदक्षिणा करके लोग अन्तर्हित होकर स्वर्गलोक को चले जाते हैं । योगपरायण महात्मा सनत्कुमार का पुण्यप्रद कुरुक्षेत्र सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ माना गया है । ऐसा कहा जाता है कि वहाँ पर तिलों का दान करके पितरों को सर्वदा के लिए अक्षय तृप्ति दी जाती है । धर्मराज युधिष्ठिर के निवास स्थान पर किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी एवं कीर्ति देनेवाला है । अमावास्या के अवसर पर विधिपूर्वक क्रमानुसार किया गया श्राद्ध तथोक्त फलदायी होता । विशेषतया कुरुक्षेत्र के समीप निवास करनेवालों के लिए तो वह परम पवित्र है । सत्पुत्र अपने पितरों की वहाँ पूजा करके ऋण रहित हो जाता है । विनशन, सरस्वती के प्लक्षप्रश्रवण, सरस्वती के व्यासतीर्थ, एवं ओंकारपवन में अक्षय श्राद्ध की इच्छा करनेवाले श्राद्ध करें । गंगा में सर्वत्र श्राद्ध करना चाहिये, पर्वतश्रेष्ठ मैनाक पर श्राद्ध करने का विधान है ।

यमुना प्रभवतीर्थ में श्राद्ध करके मनुष्य समस्त पापों से निवृत्त हो जाता है । उसके अत्यन्त उष्ण और अत्यन्त शीतल जल ही इस तीर्थ के प्रमाण स्वरूप हैं । यह परमपवित्र यमुना यम की भगिनी और मार्तण्ड की पुत्री है, उसमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी होता है—ऐसे पूर्वकाल से पितरों के वचन हैं । ब्रह्मतुङ्ग नामक सरोवर में स्नान कर इतर जातिवाले शीघ्र ही ब्राह्मणों की भाँति निष्पाप एवं पुण्यात्मा हो जाते हैं, उसमें श्राद्ध, जप एवं हवनादि करने का अनन्त फल है । महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ स्थाणुरूप में वहाँ विचरण करते हैं, और आज भी वहाँ मणियों से चित्रित वृक्षों की पंक्तियाँ दिखाई पड़ती हैं । वहाँ पर धर्म एवं अधर्म को दिखानेवाली एक तुला (तराजू) दिखाई पड़ती है, जिस पर तुलकर ब्राह्मणों के कथनानुसार उत्तम

Funding by IKS-MoE

फल की प्राप्ति होती है। पितरों की योगपरायण कन्या जो गन्धकाली नाम से विख्यात है, वहाँ निवास करती है। भगवान ब्रह्मा के चतुर्थ अंशस्वरूप, महर्षि पराशर के कुल में समुत्पन्न परम बुद्धिमान् महामुनि व्यासदेव हैं, जिन्होंने एक वेद का विस्तारकर चार भागों में विभाजन किया है, ऐसे परम योगीश्वर महात्मा व्यासदेव को वह उत्पन्न करेगी। वहाँ पर अच्छोदक नामक सरोवर है, जिसमें अच्छोदा नदी के रूप में वह प्रादुर्भूत हुई। पुनः वारण के नियोगवश वह मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। उसका जहाँ पर पवित्र आसन है, वहाँ पुण्यकर्त्ता जन सर्वदा निवास करते हैं। उस पवित्र स्थान पर एक बार का दिया हुआ श्राद्ध अक्षय माना गया है। उस अच्छोदा में श्राद्धदान करने से योग एवं समाधि की एक साथ उद्भावना होती है। कुबेरतुङ्ग व्यामोच्य एवं व्यासतीर्थ में जो श्राद्धदान करता है, वह पुण्यकर्त्ता ब्राह्मण है, उसका श्राद्ध अनन्त एवं अक्षय फलदायी है। उस स्थान से पूर्व एवं उत्तर दिशा की ओर नन्दा नाम की वेदी है, जो पुनर्जन्म को रोकनेवाली है, अर्थात् वहाँ पर पिण्डदानादि करने से पुनर्जन्म नहीं होता। सिद्धजन उसका नित्य सेवन करते हैं; किन्तु अकृतात्माजन (पापीजन) उसे नहीं देख पाते। परम बुद्धिमान् महादेव ने जहाँ पर अपना, चरणन्यास किया है, वह सिद्धों का क्षेत्र है, वहाँ पहुँचकर पुनर्जन्म नहीं होता। देवी के उस पवित्र आयतन में ईश्वर (महादेव) ने एक चरण पर स्थिर होकर कठोर तपस्या की थी। वहाँ पर उमातुङ्ग में नीहार (बरफ) और जल एक देवयुग से स्थित हैं। उस उमातुङ्ग, भृगुतुङ्ग, ब्रह्मतुङ्ग, महालय, काद्रवती, शांडिलीगुफा, वामनगुफा आदि पवित्र तीर्थों की यात्रा कर मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है, इन सब तीर्थों में किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी कहा गया है, जप, हवन, ध्यान, अथवा जो कुछ भी सत्कर्म यहाँ किये जाते हैं, सब अक्षय फलदायी होते हैं। वहाँ पर ब्रह्मचर्य में निरत रहनेवाले गुरुभक्त विद्यार्थी गण सैकड़ों वर्षों तक यज्ञादि का अनुष्ठान करते रहते हैं। उस पवित्र तीर्थ में स्नान करके ये उपर्युक्त फल शीघ्र ही प्राप्त किये जा सकते हैं। वहीं पर पापों को नष्ट करनेवाली कुमार धारा का दर्शन होता है, वहाँ यान (वाहन) एवं आसन का लाभ करते हुये शीघ्र ही देखा जाता है। शैलकीर्ति नामक पवित्र तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अपने सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त करता है। सभी प्राणियों से अदृश्य होकर वह देवताओं की तरह पृथ्वी पर विचरण करता है। काश्यप का परम प्रसिद्ध कालसर्पि नामक महान् तीर्थ सुना गया है, अक्षय श्राद्ध के इच्छुक मनुष्यों को वहाँ नित्य श्राद्धदान करना चाहिये। शालग्राम के चारों ओर किया गया श्राद्धकर्म अक्षय रूप में प्राप्त होता है, किन्तु पापात्माओं को वह परम पवित्र तीर्थ प्रत्यक्ष होने पर भी आँखों से नहीं दिखाई पड़ता। उस पवित्र तीर्थ में अशिष्ट लोगों का जाना वर्जित है, केवल शिष्टजन ही उसमें प्रवेश पा सकते हैं। वहाँ के पुण्य सरोवर में निवास करनेवाला नागराज केवल सत्पुरुषों द्वारा दिये गये पिण्डों का भक्षण करता है, और असत्पुरुषों द्वारा दिये गये पिण्डों का भक्षण नहीं करता। वह अपने साथ रहनेवाले असंख्य प्रचण्ड सर्पों समेत भी उस पापात्मा के अन्न का भक्षण करने में अशक्त रह जाता है। इन उपर्युक्त दोनों पवित्र तीर्थों में धर्म को प्रत्यक्ष देखा जाता है, देवदारु वन में भी यह निदर्शन पाया जाता है, सुकृती जनों के पाप तो यहाँ दूर होते दिखाई पड़ते हैं। भागीरथी और प्रयाग में भी श्राद्ध का अक्षय फल कहा गया है। कालंजर, दशार्ण, नैमिष

कुरुजाङ्गल, तथा वाराणसी नगरी—इन पवित्र तीर्थों में मनुष्य को प्रयत्न करके श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिये। वाराणसी नगरी में योगेश्वर शंकर का नित्य निवास रहता है, अतः उसमें पिण्डदान करने से अक्षय फल की प्राप्ति होती है। इन पवित्र तीर्थों में पिण्डदान करके मनुष्य पवित्रात्मा हो जाता है, उसका श्राद्ध अनन्त फल दायी होता है। इसी प्रकार जप, हवन एवं अन्यान्य सत्कर्मों का भी अक्षयफल वहाँ होता है। लौहित्य वैतरणी, एवं स्वर्ण वेदी में भी श्राद्धकर्म के यही फल कहे गये हैं। पुण्यकर्म परायणों ने समुद्रान्त में केवल एक श्राद्ध करने का विधान देखा है! गंगा, धर्मपृष्ठ, ब्रह्मसरोवर, गया, गृध्रकूट, प्रभृति तीर्थों में श्राद्धदान का महान् फल है। भरत के पवित्र, पुण्यप्रद आश्रम में जो अरण्य है, वह परम पुण्यदायी कहा जाता है, उसके चारों ओर पाँच योजन तक बरफ गिरता है। उस पवित्र अरण्य में माँस नेत्रधारी मनुष्य को भी मतंग ऋषि का आश्रम दिखाई पड़ता है। यह परम पवित्र तीर्थ धर्म सर्वस्व के रूप में प्रसिद्ध किया गया है, एवं इस लोक का धर्म निदर्शक है। इसी प्रकार पञ्चवन नामक पुण्यप्रद तीर्थ भी पुण्यात्माओं द्वारा सुसेवित है। उस पञ्चवन तीर्थ ने पाण्डुविशाला नामक तीर्थ धर्म का प्रत्यक्ष निदर्शन है। जो पाप करनेवाले मनुष्य होते हैं, वे वहाँ उत्तमान, चाप और विविध शस्त्रों समेत लग्न आने पर डुबकी लगाते हैं। तृतीया में पद, निस्वर, पाव-मण्डल (?) महाह्रद तथा कौशिकी में दिया गया श्राद्ध महाफल देनेवाला होता है। परम बुद्धिमान् महादेव ने मुण्डपृष्ठ में अपना पदन्यास किया था, अनेक देव युगों तक परम कठोर एवं दुर्गम तपस्या उन्होंने वहाँ की थी। धर्म में आस्था रखनेवाला मनुष्य बहुत थोड़े समय में ही वहाँ अपने समस्त पापकर्मों को सर्प की केंचुल की भाँति छोड़ देता है। वह परम पुनीत तीर्थ सिद्ध जनों के प्रीतिकारी, पापात्माओं के लिए परम भयंकर एवं अपनी विशाल दाढ़ों को लपलपाने वाले महान् सर्पों से रात दिन सुरक्षित है। उस मुण्डपृष्ठ तीर्थ के उत्तर देवताओं और ऋषियों के समूहों से सुसेवित तीनों लोकों में परम विख्यात कनकनन्दी नामक तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करके इच्छानुरूप विचरण करनेवाले विहंगम स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं। वहाँ पर दिया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी कहा गया है। उत्तम मनुष्य उस पुनीत तीर्थ में स्नान करके तीनों ऋणों से मुक्त होते हैं। सरोवर के तीर पर देव का विशाल मन्दिर है, उस पर आरूढ़ होकर मंत्र जप करने से सिद्ध होता है तदनन्तर स्वर्ग की प्राप्ति होती है। उत्तर ओर मानस तीर्थ की यात्रा करने से परम सिद्धि की प्राप्ति होती है। वहाँ जाने से सुरश्रेष्ठ का प्रत्यक्ष दर्शन होता है, जो अत्यन्त आश्चर्य का विषय है। वहाँ जाकर अपनी शक्ति एवं पराक्रम के अनुसार श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिये, जो ऐसा करता है वह दिव्य मनोरथों की प्राप्ति करता है एवं मोक्ष का उपाय सुलभ करता है। परम श्रेष्ठ उस मानस सरोवर में एक महान् आश्चर्य दिखाई पड़ता है, वहाँ पर महाभाग्य शालिनी त्रिपथगामिनी गंगा देवी आकाशमार्ग से च्युत होकर अन्तरिक्ष में विराजमान हैं। वह देवी वहीं पर चन्द्र मण्डल से पृथ्वी तल पर गिरी हैं। वहाँ आकाशमण्डल में सूर्य के समान परम तेजोमय तोरण दिखाई पड़ता है। जो सुवर्णमय तथा स्वर्ण के द्वार की भाँति विस्तृत है। वहीं से सभी जीवों की—विशेषतया धर्म के मर्म को जाननेवालों की—उद्धार करनेवाली चन्द्रभागा नामक नदी निकल कर पूर्व के समुद्र में गिरती है। चन्द्रभागा और सिन्धु ये दोनों नदियाँ मानस सरोवर की भाँति

पुण्यदायी एवं पवित्र हैं, नदियों में श्रेष्ठ दिव्य गुणयुक्त सिन्धु पश्चिम के समुद्र में गिरती है विविध प्रकार के धातुओं से विभूषित हिमवान् नामक पर्वत है, जो अस्सी सहस्रों योजन विस्तृत कहा जाता है, सिद्धों एवं चारणों के समूहों से वह पर्वत राज भरा पड़ा है। उसमें सुषुम्ना नामक एक परम मनोहर पुष्करिणी है, उसमें जन्म लेनेवाला प्राणी दस सहस्रों वर्ष जीवित रहता है, उसमें दिया हुआ श्राद्ध महान् उन्नति करनेवाला तथा अनन्तफल दायी होता है, उसमें श्राद्ध करके मनुष्य अपनी दस अगली और दस पिछली पीढ़ियों को तारता है। हिमवान् पर्वत का प्रत्येक स्थल पुण्यदायी है, गंगा में भी सर्वत्र पुण्य है। इसी प्रकार समुद्र में गिरने वाली अन्यान्य नदियाँ तथा स्वयं समुद्र भी सर्वत्र श्राद्धकर्मों में पुण्यदायी कहा गया है। बुद्धिमान पुरुष इन उपर्युक्त एवं अन्यान्य पवित्र तीर्थों में श्राद्धक्रिया सम्पन्न करे। इन पवित्रतीर्थों में स्नान एवं दान करके मनुष्य पवित्र हो जाता है। उच्च गिरिशिखर पर, कन्दरा एवं गुफाओं में पर्वतों की उपत्यकाओं एवं झरनों के समीप, नदियों के तटों, पर युगारम्भ की तिथियों, महासमुद्र के तट पर, गौओं की शाला में, नदियों के संगम पर, वनों में, स्वच्छ लिपी पुती मनोहर पृथ्वी पर, गोबर से लिपे हुए एकान्त घर में नित्य ही विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। सभी मनोरथों की प्राप्ति का इच्छुक मनुष्य इन स्थानों पर श्राद्ध एवं प्रदक्षिणा कर सफल होता है। सर्वदा इन्हीं स्थानों में आलस्यादि छोड़कर सावधान मन से श्राद्ध करना चाहिये। इस प्रकार बुद्धिमान पुरुष ब्रह्मत्व की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। क्रोधादि को सर्वथा छोड़ने पर तीनों उच्चवर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य) से किये धर्म एवं वर्णाश्रम की मर्यादा से अनुमोदित विधि के अनुसार दान करने पर पितरों की पूजा का फल प्राप्त होता है। पापात्मा भी इन उपर्युक्त पवित्र तीर्थों की यात्रा धैर्य एवं, श्रद्धा पूर्वक इन्द्रियों को स्ववश रख यदि करे तो शुद्ध हो जाता है, शुभ कर्म करने वालों के लिए तो कुछ कहना ही नहीं है। इन तीर्थों की यात्रा करने वाला एवं पापादि करने वाला विप्र तिर्यक् योनि में कभी जन्म नहीं लेता और न बुरे स्थानों में ही उसका जन्म होता है, प्रत्युत वह स्वर्ग प्राप्त करता है, मोक्ष के उपाय उसे सुलभ हो जाते हैं। पाप न करने वाले, पापात्मा, परलोक न माननेवाले अथवा वेदों के निन्दक, स्थिति में सन्देह रखने वाले संशयात्मा, एवं सभी पुण्य कार्यों में किसी कारण का अन्वेषण करनेवाले कुतर्की—इन पाँचों को इन पवित्र तीर्थों का फल नहीं प्राप्त होता। गुरु रूपी तीर्थ में परम सिद्धि प्राप्त होती है, वह सभी तीर्थों से श्रेष्ठ है। उससे भी श्रेष्ठ तीर्थ ध्यान है, यह ध्यान साक्षात् ब्रह्म का तीर्थ है, इसका कभी विनाश नहीं होता। उपवास से भी यह ध्यान श्रेष्ठ है, यह सभी इन्द्रियों को उनके विषयों से निवृत्त करनेवाला है, उपवास में बँधे रहनेवाले व्यक्तिगण प्राणों से विमुक्त होकर इस लोक में पुनः पुनः जन्म धारण करते हैं। प्राण एवं अपान वायु—इन दोनों को समान करके इन्द्रियों, उनके विषयों और बुद्धि को मन में बाँधने पर सब की निवृत्ति हो जाती है। मोक्ष के साधन भूत प्रत्याहार (इन्द्रियों को उनके विषयों से अलग रखना) को पुनः सुनिये। समस्त इन्द्रियों में मन परम चञ्चल और घोर है, बुद्धि आदि सबको यही परिचालित करता है। निराहार रहने से मन की वह चंचलता और कठोरता नष्ट हो जाती है, अतः अनशन को परम तप जानना चाहिये। चंचल बुद्धि और मन इन दोनों को वश में रखने से सुन्दर बुद्धि उत्पन्न होती है। समस्त पापकर्मों के क्षीण हो

जाने पर एवं इन्द्रियों के क्षीण हो जाने पर (वश में आ जाने पर) आत्मा शुद्ध होकर इन्धन रहित अग्नि की तरह निर्वाण प्राप्त करती है। समस्त व्यक्त अव्यक्त वस्तुओं के कारण एवं गुणों से योगीजन अपनी आत्मा को वियुक्त करते हैं, जिसके फलस्वरूप इस जन्म के उपरान्त उनकी न कोई गति होती है, न कोई स्थान रहता है, निश्चय ही वे व्यक्त एवं अव्यक्त किसी में नहीं रहते। न वे सत् हैं न असत् उनकी स्थिति के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ॥१-१३३॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे तीर्थयात्रा नाम सप्तसप्ततितमोऽध्याय ॥७७॥

अठहत्तरवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

बृहस्पति ने कहा :—अब इसके उपरान्त मैं श्राद्धकर्म में दिये जाने वाले दान एवं उनसे मिलने वाले फलों के बारे में बतला रहा हूँ, यह भी बतला रहा हूँ कि श्राद्ध में कौन सी वस्तुएँ पवित्र और कौन सी वर्जित रखी गई हैं। हिम गिरते समय हिम का भक्षण (?) करना चाहिये, तदनन्तर अर्थात् वसन्त ग्रीष्म आदि में अग्निहोत्र करना चाहिये, यह विधि परम पुण्य प्रद कही जाती है। रात्रि के समय श्राद्धकर्म वर्जित रखना चाहिये। रात्रि के बिना अन्य अवसर पर राहु के दर्शन के समय सर्वस्व व्यय करके शीघ्र ही श्राद्धकर्म करना चाहिये। जो व्यक्ति ग्रहण के अवसर पर श्राद्धकर्म नहीं करता है वह कीचड़ में फँसी हुई गौ की तरह यातना सहता है। और जो करता है वह अपने पांपों से सागर में नाव[1] की तरह उद्धार पा जाता है। विश्व देव, सौम्य और प्रचुर मांस युक्त हवि, गैंड़े का सींग पितरों की असूया (द्वेष) नष्ट करने के लिए वर्जित रखना चाहिये। प्राचीनकाल में महात्मा देवेश के निषेध करने पर भी त्वष्टा (विश्वकर्मा) ने शचीपति (इन्द्र) का सोमरस पान किया था उनके पीते समय पृथ्वी पर वह गिर पड़ा, जो साँवा के रूप में उत्पन्न हुआ। पितरों के लिए वह पूजित माना गया है। उसी समय पीते हुए त्वष्टा के अशक्त नासिका के छिद्रों से उस सोमरस के बूँद भी पृथ्वी पर गिरे, जो ईख के रूप में उत्पन्न हुए। इसी कारण ईखें शीतलता प्रदान करनेवाली, रुचिकर, मधुर और कफ कारक होती हैं। इन साँवा और ईखों से पितरों की सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। जो इन दोनों वस्तुओं को श्राद्धकर्म में निवेदित करता है वह शीघ्र ही सिद्धि प्राप्त करता है। साँवा, हस्तिनाम, पटोल, बृहतीफल, अगस्त्य की तीखी शिखाएँ, ये सभी कषाय स्वादुवाले हैं। इसी प्रकार अन्यान्य सुस्वादु एवं मधुर द्रव्य पितरों को प्रिय हैं। श्राद्धकर्म में नागर और दीर्घमूलक भी देना चाहिये। इसी प्रकार वंशी करीर, सुरसा, सर्जक और भूस्तृण भी देने चाहियें।

---

[1] आनन्दाश्रम की प्रति का मूल गत पाठ भ्रामक समझ कर यहाँ छोड़ दिया गया है।—अनुवादक

श्राद्धकर्म में सर्वदा जो वर्जित वस्तुएँ हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। लहसुन, गाजर, प्याज, पिण्डमूलक, करम्भ आदि वस्तुएँ, जो रस और गन्ध से निन्द्य हैं, श्राद्धकर्म में वर्जित रखनी चाहिए, इसका कारण बतला रहा हूँ। प्राचीनकाल में देवताओं और राक्षसों के युद्ध में देवताओं द्वारा पराजित बलि के शरीर में जो घाव थे, उनसे रक्त के विन्दु निकलकर पृथ्वी पर गिरे, वे ही इन वस्तुओं के रूप में हुए, अतः श्राद्धकर्म में इनको सर्वदा वर्जित रखना चाहिये। वेद में गिनाए गये समस्त निर्यास (गोंद) द्रव्य, लवण, एवं ऊषण (पिप्पली-मूल, चीता) ये वस्तुएँ भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखी जायँ। इसी प्रकार जो रजस्वला स्त्रियाँ हों, वे भी श्राद्धकर्म में प्रवृत्त न हों। दुर्गन्धि युक्त, फेनों से व्याप्त, छोटे गड्ढों का जिसमें गौओं की तृप्ति नहीं होती, जो रात में ग्रहण किया गया हो, भेंड़, मृग, बकरी, ऊँट एवं अन्य एक खुरवाले पशुओं से पीकर दूषित किया गया, महिष, चमर आदि वन्य पशुओं द्वारा गँदला किया गया जल, श्राद्धकर्म में विद्वान् पुरुष वर्जित रखें। अब इसके उपरान्त उन स्थानों को बतलाने की चेष्टा करूँगा, जिन्हें भरसक श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त उन लोगों को भी बतला रहा हूँ, जिन्हें श्राद्धकर्म देखना भी नहीं चाहिये, इस प्रकार सब प्रकार की पवित्रता एवं अपवित्रा के बारे में बतला रहा हूँ। श्रद्धा पूर्वक वन में उत्पन्न होनेवाले मूल एवं फलों के आहारों से श्राद्धकर्म सम्पन्न करने चाहिये। ऐसे करनेवाले को राष्ट्र मित्र की भाँति सम्मान देता है और यश बृद्धि होती है, स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अनिष्टकारी शब्दों से एवं जीव जन्तुओं से व्याप्त, दुर्गन्धि युक्त भूमि को श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिये। सागर तक जानेवाली समस्त नदियाँ, दक्षिण पूर्व के द्वार एवं त्रिशङ्कु देश इनको बारह योजन से छोड़ देना चाहिये। यह त्रिशंकु देश महानदी के उत्तर, कैकट देश से दक्षिण फैला हुआ है, यह श्राद्धकर्म में वर्जित है। कारस्कर, कलिङ्ग, सिन्धु के उत्तरवर्ती देश एवं वे देश जहाँ पर वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो चुका है, प्रयत्न पूर्वक श्राद्ध में वर्जित रखने चाहिये। नंगे आदि असंस्कृत लोग श्राद्धकर्म न देखें—ऐसी व्यवस्था है। उन लोगों द्वारा देखे जाने पर श्राद्ध की वस्तुएँ पितामहादि पितरों को नहीं प्राप्त होतीं। ॥१—२४॥

शंयु ने कहा :—'हे भगवन् ! वे नंगे आदि कौन हैं ? हे श्रेष्ठ ब्राह्मणों में पूज्य ! मैं उनके बारे में जानना चाहता हूँ, विस्तार पूर्वक उनका यथातथ्य वर्णन कीजिये।' शंयु के इस प्रकार पूछने पर महा तेजस्वी बृहस्पति ने उनसे कहा। संसार के समस्त जीवों (मनुष्यों) के लिए तीनों वेद आच्छादन करनेवाले (शान्ति देनेवाले) कहे गये हैं जो लोग अज्ञानवश उन्हें छोड़ देते हैं, वे नंगे हैं। मनुष्य जब वेद से पराङ्मुख हो जाता है तब वह वेद रूप वृष निरवलम्ब हो जाता है। जो इस धर्म रूप वृष को छोड़ कर अन्यत्र मोक्ष का मार्ग ढूँढ़ता है, उसका वेदादि के अध्ययन का श्रम व्यर्थ है, क्योंकि वह इन वेदों में दिये हुए मोक्ष के स्वरूप को भली भाँति नहीं देखता है। प्राचीनकाल में देवताओं और असुरों के युद्ध में पराजित हुए असुरों द्वारा सभी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र पाषण्डी होकर विकृत (पतित) हो गये, तात ! वह स्वयम्भू की वह सृष्टि नहीं रह गई। जो लोग श्राद्धादि कार्यों के विरोध करनेवाले, सद्ग्रन्थों के विरोधी, अपनी इच्छा एवं शक्ति के भरोसे जीवन यापन करते हैं, जो धर्म का आचरण नहीं करते, वे

नगे लोग हैं। व्यर्थ में जटा बढ़ानेवाले, व्यर्थ में मुण्डित शिर रहनेवाले, व्यर्थ में नग्न रहनेवाले जो द्विजाति हैं, वे सब भी नंगे लोग हैं। व्यर्थ में व्रत रखनेवाले, व्यर्थ में जप करनेवाले, कुल को पीड़ा पहुँचानेवाले, निषाद, पुष्टि विनाशक एवं किये गये सत्कर्मों पर आक्षेप करनेवाले कुमार्गी कहे गये हैं। ऐसे लोगों द्वारा सम्पन्न श्राद्धकर्म पितरों के लिए व्यर्थ हो जाते हैं। ब्रह्महत्या करनेवाले, कृतघ्न, नास्तिक, गुरु पत्नी गामी, दस्यु, नृशंस, आत्मतत्त्वज्ञान से वंचित, एवं अन्यान्य जो पापकर्म परायण लोग हैं, उन्हें सबको श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिये। विशेषतया देवताओं एवं देवर्षियों की निन्दा में निरत रहनेवाले जो लोग हों, उन्हें भी वर्जित रखना चाहिये। इसी प्रकार असुरों एवं यातुधानों को भी श्राद्ध कर्म में वर्जित रखना चाहिये। इन उपर्युक्त लोगों द्वारा देखा गया श्राद्धकर्म निष्फल हो जाता है। सतयुग को ब्राह्मणों का युग कहा गया है, त्रेता क्षत्रियों का युग कहा जाता है, द्वापर वैश्यों का युग है, इसी प्रकार कलियुग शूद्रों का युग कहा गया है। ॥२५-३६॥

पितरगण बोले :—सतयुग में वेदों की पूजा होती थी, त्रेतायुग में देवगण पूज्य माने जाते थे। द्वापर में लोगों को युद्ध प्रिय था, कलियुग में लोगों की पाषण्ड में सर्वदा रुचि रहती है। अपमानित एवं अपवित्र लोग, कुक्कुट (मुर्गे) ग्राम्य सूअर, और कुत्ता—इनके तो केवल दर्शन से श्राद्ध नष्ट हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं। बच्चों का सूतक जिनके घर में हो, दीर्घकाल से जो रोग ग्रस्त हो, मलिन एवं पतित विचारों वाला हो, इनको किसी प्रकार भी श्राद्धकर्म नहीं देखना चाहिये। यदि ये लोग श्राद्ध के अन्न को देख लेते हैं तो वह अन्न भी हव्य कव्य के लिए उपयुक्त नहीं है, इनके द्वारा स्पर्श किये गये श्राद्धादि संस्कार अपवित्र हो जाते हैं। जमे हुए घृत को प्रथमतः वर्जित रखना चाहिये। श्राद्धकर्म में मिट्टी से मिले हुए जल से सिंचन करना चाहिये। पीले सरसों से अथवा काले तिल से अवकीरण (विकीरण, पृथ्वी पर छींटना) करना चाहिये। यत्नपूर्वक गुरु, सूर्य और अग्नि की वस्तुओं का दर्शन करना चाहिये। आसनासीन (?), पैरों द्वारा मर्दित किये गये, अपवित्र प्राणियों द्वारा देखे गये, शुष्क एवं बासी, उच्छिष्ट, दोषपूर्ण, जीभ से चाटी हुई, शर्कर, (बालुका) केश और पत्थर से दूषित, कीड़ों से गन्दी की गई वस्तुएँ श्राद्धकर्म में वर्जित हैं। तिल और जव में, तिलों के चूरे न मिले हों, बनाये गये जो अक्षत खाने के लिए रखे गये हों तथा जिसमें नमक का अंश मिला हुआ हो, इसी प्रकार वस्त्र से जो स्पर्श किया गया हो, वे सब अन्नादि पदार्थ श्राद्धकर्म में दूषित माने गये हैं। कुछ विज्ञान के मानने वाले वेदों का विरोध करते हैं, वे यज्ञ के अनधिकारी हैं, और श्राद्ध के धूल की तरह (विनाशक) हैं, उन्हें भी श्राद्धकर्म में वर्जित रखना चाहिये। इसी प्रकार दही, न खाये जानेवाले शाक, तथा श्वेत वर्ण का चोष्य (चूसा जानेवाला) पदार्थ—ये सब भी श्राद्धकर्म में वर्जित हैं। भाँटे को भी श्राद्ध में वर्जित रखे। सभी प्रकार के अभिषवों को (मद्य अथवा आसव) देना चाहिये (?) जो समुद्र से निकला हुआ लवण है, तथा मानस से उत्पन्न हुआ लवण है, वह परम पवित्र माना गया है, ये दोनों लवण लवण होने पर भी निषिद्ध नहीं हैं। उन्हें आग में छोड़कर पुनः दोनों हाथों से यत्नपूर्वक निकाल ले और अपने मस्तक पर

लगा ले, मस्तक ब्रह्मतीर्थ कहा जाता है। समस्त श्राद्धीय द्रव्यों को सर्वप्रथम जल से सिंचित करना चाहिये पुनः उनके ऊपर लगी हुई मैल आदि को छुड़ा देना चाहिये। फिर रखकर जल से पुनः सिंचन करना चाहिये, पुनः जल में छोड़ देना चाहिये। अरिष्ट, तुमुल, विल्व, इंगुद, श्वदन, और विदल इन सभी वस्तुओं का श्राद्धादि में चर्म की तरह विधिवत शुद्धि करनी चाहिये। इसी प्रकार दाँत, अस्थि, (हड्डी) काष्ठ एवं शृंग (सींग) आदि को विधिवत स्वच्छ और पवित्र कर लेना चाहिये। सभी प्रकार के मृतिका के बने हुए पदार्थों को पुनः जला लेना कहा गया है। इसी प्रकार सभी प्रकार के मणि, हीरे प्रवाल, मुक्ता, शंख आदि के लिए पीली सरसों अथवा काले तिल का कल्क बनाकर शुद्धि करनी चाहिये। सभी प्रकार के केशों की भी शुद्धि इसी प्रकार करनी चाहिये। मेंड़ के बालों की अथवा सभी प्रकार के मेड़ों के बालों क शुद्धि मिट्टी और जल से हो जाती है, पवित्र करने के पहिले और अन्त में—दोनों बार पुनः जल द्वारा धो लेना चाहिये। कपास के बने हुए पदार्थों की शुद्धि भस्म द्वारा कही गई है। फल पुष्प एवं शलाका की शुद्धि जल में डुबोने से हो जाती है। पृथ्वी की शुद्धि प्रथम बटोरकर, जल से सिंचितकर फिर लीपने से हो जाती है। ग्राम से बाहर निकलने पर पृथ्वी वायु द्वारा शुद्ध रहती है। अर्थात् बस्ती की पृथ्वी के लिए बटोरने, जल छिड़कने और लीपने की आवश्यकता है, ग्राम से बाहर की पृथ्वी वायु से ही पवित्र रहती है। धनुर्धारी और पक्षियों की शुद्धि मिट्टी से की जाती है, शुद्धि के लिए यह उत्तम क्रम कहा गया है। इसके उपरान्त शौच की कुछ अन्य विधियाँ बतला रहा हूँ, सुनो। ॥२–५८॥

प्रातःकाल अपने घर से पश्चिम या दक्षिण दिशा की ओर एक बाण की जहाँ तक गति हो उतनी दूर पर या अक्षमात्र दूर स्थान पर मल त्याग करना चाहिये। उस समय शिर को वस्त्रादि से ढँक लेना चाहिये, हाथ से शिर का स्पर्श नहीं करना चाहिये। सूखे हुए तृण से, काष्ठ से, पत्तों से, बाँस के पत्तों से, अथवा मिट्टी के बरतन से उस समय पृथ्वी को ढँक देना चाहिये। पुनः चुप रहकर मिट्टी और ऊपर उठाये गये जल से शुद्धि करनी चाहिये। दिन में उत्तर मुख और रात्रि में दक्षिणमुख होकर मलत्याग करना चाहिये। दाहिने हाथ से कमंडलु (जलपात्र) ग्रहण करना चाहिये। मलद्वार को बाएँ हाथ से तीन बार मिट्टी लगा कर शुद्ध करना चाहिये। बाएँ हाथ में दस बार मृत्तिका लगाकर अथवा दोनों हाथों में पाँच बार मृत्तिका लगानी चाहिये। पुनः मिट्टी लगाकर पैरों को भली भाँति स्वच्छकर विधिपूर्वक आचमन करे। पुन सूर्य, अग्नि, और पवन के उद्देश से तीन बार जल त्याग करे। बुद्धिमान पुरुष को तीर्थ के समीप में सर्वदा कमंडलु रखना चाहिये। इस कमंडलु के जल से पादप्रक्षालन—आदि छोटे-छोटे कार्य भी करने चाहिये। पादप्रक्षालन् के उपरान्त आचमन करना चाहिये तदुपरान्त देवकार्य करना चाहिये। अपवित्र हाथ से आचमन और देवकार्य करने पर तीन रात का उपवास कहा गया है। उपवास न करने पर अतिशय कष्ट द्वारा प्रायश्चित्त का विधान किया गया है। श्वान अथवा चाण्डाल का स्पर्श करके तप्तकृच्छ प्रायश्चित्त करना चाहिये। मनुष्य की अस्थियों का स्पर्श करने पर उपवास ही शुद्धि का कारण है। स्नेह पूर्वक यह उपवास तीन रात अथवा एक रात का कहा गया है। कारस्कर, पुलिन्द, आन्ध्र, शबर प्रभृति अपवित्र देशों की यात्रा कर, भूतिलय (स्थान विशेष) में जलपान कर

Funding by IKS-MoE

तथा युगन्धर नामक स्थान की यात्रा कर, सिन्धु के उत्तरीय प्रदेश, दिव्यन्तर के शत नामक देश, एवं अन्यान्य पापियों के प्रदेशों की, जहाँ जाने के लिए वेदों के पारंगत ब्राह्मण एवं शिष्ट लोग निषेध करते हैं अथवा जहाँ पर ऐसे लोगों का सर्वथा अभाव रहता है तथा जहाँ जाने से पाप की ही वृद्धि होती है, यात्रा करने पर समस्त पाप का भागी होना पड़ता है। मनोव्यक्ति, अग्नि, समयवश किया हुआ उपलेपन, शौच के लिये निषिद्ध समय, इनके अतिरिक्त जो अज्ञानवश शौच संस्कार में व्यतिक्रम करते हैं, उनके फल पिशाचों और यातुधानों को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं। जो शौच के आचारों एवं नियमों में अश्रद्धा रखते हैं, वे म्लेच्छ जाति में उत्पन्न होते हैं। जो यज्ञादि को नहीं करते सर्वदा पाप कर्म में निरत रहते हैं, अथवा तिर्यक योनियों में उत्पन्न होते हैं, वे भी शौच द्वारा अपने पापों से मुक्त हो स्वर्गवासी होते हैं। देवता लोग पवित्रता के इच्छुक रहते हैं, देवताओं ने ही शौच के ये आचार बतलाये हैं। देवगण सर्वदा वीभत्स आचरण करनेवाले, अपवित्र लोगों को वर्जित रखते हैं। सत्कर्म परायण लोग न्यायत सर्वदा तीन शुद्धि करते हैं। हे ऋषिवृन्द, ब्राह्मणादि की रक्षा करनेवाले, अतिथि परायण, पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, पितरों में भक्ति रखनेवाले, शान्त एवं कृपालु लोगों के योगवद्र्धक पितरगण उनके किये गये सत्कर्मों से, प्रसन्न होकर मन से अभिलषित, त्रैलोक्य में प्राप्त होनेवाले समस्त मनोरथों को पूर्ण करते हैं। ॥५९–७८॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

उन्यासीवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प

ऋषियों ने कहा:—परम बुद्धिमान् सूत जी! ऋषियों द्वारा कहे गये श्राद्धकल्प का वर्णन विशेषतया अति विस्तारपूर्वक तुम कर चुके और हम लोग उसे सुन भी चुके। हे महामति! अब श्राद्ध के विषय में जो कुछ उन ऋषि की शेष बातें हों, उन्हें बतलाइये। ॥१–२॥

सूतजी ने कहा:—हे विप्रगण! उन ऋषि का श्राद्ध के विषय में जो मत है, उसे बतला रहा हूँ। हे महाभाग्यशालियो! विस्तारपूर्वक उसे सुनिये। पूर्व प्रसंग में श्राद्धकर्म में की जानेवाली श्राद्धीय विधियों का वर्णन मैं कर चुका हूँ, अब ब्राह्मणादि के बारे में जो शेष नियमादि हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ। ब्राह्मण लोग मीमांसा के परे होते हैं, अर्थात् ब्राह्मणों के विषय में मीमांसा नहीं करनी चाहिये। वे परमपवित्र तथा सभी जातियों में उत्तम हैं। किन्तु ऐसा होने पर भी देवताओं और पितरों के कार्य में ब्राह्मणों की परीक्षा सर्वदा होती सुनी गई है। जिसमें लोग दोष देखते हैं, अथवा सज्जन जिसे अपने समाज से बहिष्कृत रखते हैं, अथवा संसर्ग से जिसके लिए यह मालूम पड़े कि वह कुसंगी है, ऐसे लोगों को प्रयत्नपूर्वक वर्जित रखना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष बिना जाने सुने ब्राह्मण की श्राद्धकर्म में सर्वदा परीक्षा कर ले। सिद्ध लोग

Funding by IKS-MoE

ब्राह्मणवेश धारणकर इस पृथ्वी पर विचरण किया करते हैं, इसलिए द्वार पर अतिथिरूप में आने पर हाथ जोड़कर अगवानी करनी चाहिये । फिर पैर धोने के लिए जल आदि समर्पित कर विधिवत् भोजनादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये । योगपरायण देवगण समुद्रपर्यन्त फैली हुई इस विशाल पृथ्वी पर विविधवेश धारणकर धर्मपूर्वक प्रजाओं का पालन करते हुए विचरण करते रहते हैं । विधिवत् पूजा कर लेने के उपरान्त बुद्धिमान् पुरुष अतिथिरूप में आये हुए ब्राह्मण के भोजन के लिए विविध व्यञ्जन एवं फल समर्पित करें । ऐसा सुना जाता है कि केवल जल (दूध) देने से अग्निष्टोमयज्ञ का फल प्राप्त होता है । घृत देने से सुन्दर नेत्र मिलते हैं, और सोलह दिन में सम्पन्न होनेवाले यज्ञ का फल मिलता है । मधु के देने से अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है । जो श्रद्धालु व्यक्ति अपने सभी प्राप्त साधनों द्वारा भक्तिपूर्वक अतिथिरूप में समागत ब्राह्मणों को भोजन कराता है वह सर्वदा समस्त यज्ञों के फल का उपभोग करता है, क्योंकि अतिथिरूप में आये हुए विप्रों का अतिथि सत्कार सभी मनोरथों को देनेवाला है । जो व्यक्ति श्राद्धकर्म में अथवा किसी देवकार्य में आये हुए अतिथि की अहेलना करता है, उसे देवगण इस प्रकार छोड़ देते हैं, (वंचित रखते हैं) जैसे हवन करनेवाला परावसु (नीचे गिरी हुई आहुति ?) को । लोक के ऊपर अनुग्रह करने के तात्पर्य से देवगण, पितरगण और अग्नि देव इन ब्राह्मणों में आविष्ट होकर श्राद्धादि में भोजन करते हैं । ये अतिथि लोग श्राद्धादि में अपूजित होकर जला देते हैं और पूजित होकर सभी मनोरथों को पूर्ण करते हैं । अतः सर्वदा द्वार पर समागत इन अतिथियों की सर्वस्व लगाकर भी पूजा करनी चाहिये । वानप्रस्थ में रहनेवाले गृहस्थाश्रम में रहनेवाले अपने घर पर आनेवाले, बालकगण, लोक से उदास रहनेवाले विरागीगण, एवं यति— इन सबको सर्वदा अतिथि जानना चाहिये । जो किसी वस्तु की याचना करने के लिए अपने द्वार पर आता है वह अतिथि है, जो विना किसी प्रजोजन के आता है वही अतिथि है, अतिथि का अतिथि श्रेष्ठ अतिथि है, वह योगी के समान परम पुण्यदायी कहा जाता है । घोर हृदयवाला न हो, संकीर्ण विचारोंवाला न हो, विद्या विहीन न हो, विशेष जाननेवाला न हो, अधिक संततियों से समन्वित न हो, सेवा परायण न हो, आचरणवाला हो, वही सच्चा अतिथि है । यज्ञ के फल की अभिलाषा करनेवाले को चाहिए कि पिपासा कुलित, थके हुए, भूले भटके और भूखे अतिथि को सत्कार पूर्वक भोजनादि दें । भृगुतुंग पर आरोहण कर पुण्य सलिला सरस्वती की यात्राकर, परम-पुण्यमयी देव नदी गंगा, तथा महानदी की यात्रा कर, एवं अन्यान्य हिमालय से निकलने वाली नदियाँ, जिनकी पूजा ऋषि लोग भी किया करते हैं, तथा अन्य जितने सरोवर तीर्थ एवं पुण्यप्रद नदियाँ हैं, उन सब की यात्रा कर मनुष्य अपने पाप कर्मों से छुटकारा पाते हैं और सर्वदा स्वर्ग लोक में पूजित होते हैं । ॥ ३—२१ ॥

किसी की मृत्यु हो जाने पर विशेषतया ब्राह्मण को दस रात का अशौच लगता है । क्षत्रिय को बारह रात का कहा जाता है, वैश्य पन्द्रह दिनों तक तथा शूद्र एक मास तक शुद्ध होता है । सभी जातिवालों की ऋतुमती स्त्रियाँ तीन रात में शुद्ध होती हैं । ऋतुमती, सूतिका, श्वान, चाण्डाल नंगे एवं मुर्दों के ढोनेवालों को स्पर्श कर शुद्धि करनी चाहिए । मृत्तिका से वस्त्रों समेत बारह बार स्नान करने से शुद्धि होती है । यही

Funding by IKS-MoE

विधि मैथुन, और वमन के उपरान्त भी विहित है। मिट्टी से दोनों हाथों को धोकर मनुष्य को शौच करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष जल से दोनों हाथों को धोकर पुनः मिट्टी से स्नान करे, फिर दो बार गुह्य (गोपनीय) स्थान पर मृत्तिका लगाकर फिर एक बार मृत्तिका लगावे। सभी जातियों के लिये शौच के यही नियम सर्वदा देखे गये हैं। तीन बार मृत्तिका देकर हाथ और पैर को धोना चाहिये। यह नियम वानप्रस्थियों के लिए है, अब इसके उपरान्त ग्राम्य (गृहस्थाश्रमी) लोगों के लिए जो शौच के नियम हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। तीन बार दोनों पैरों में तथा तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगानी चाहिये। हाथ आदि अपवित्र स्थानों में विभाग करके पन्द्रह बार मृत्तिका लगानी चाहिये। अपवित्र स्थानों में मिट्टी लगाकर शुद्धि करने के उपरान्त जल से सफाई करनी चाहिये। कण्ठ और शिर को आवृत कर सड़क पर पैदल चलने पर भी पैरों को पवित्र करना चाहिये। विना पैर धोकर जल का आचमन करनेवाला भी अशुचि रहता है। हाथ पैर आदि धोकर जल पात्र रखकर पुनः आचमन करे फिर श्राद्ध सम्बन्धी या यज्ञ सम्बन्धी वस्तुओं के ऊपर जल का छींटा दे। पुष्प, तृण एवं हवनीय द्रव्यादि जितनी भी वस्तुएँ हों, उन सब का सिंचन करे। इसी प्रकार दूसरों द्वारा लाये गये द्रव्यों को रखकर उनके ऊपर भी जल छिड़कना चाहिये। श्राद्ध कर्म में तथा दैवकार्य में विना जल से सेचन किये कोई भी वस्तु काम न लानी चाहिये। वेदी में उत्तर दिशा की ओर से वस्तुएँ लानी चाहिये और दक्षिण दिशा से विसर्जन करना चाहिये। दैवकार्य एवं पितरकार्य में परस्पर समानता नहीं होती, उनमें परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रहता। दक्षिण वेदी को दाहिने हाथ से रेखाङ्कित करना चाहिये। देवताओं और पितरों—दोनों के यज्ञादि कार्यों में दोनों हाथों से विकिरण (छीटना) करना कल्याणदायी कहा गया है। क्षुधा से तथा नींद से पीड़ित, मूत्र एवं मल का त्याग करनेवाले, थूकनेवाले—ये सभी अपवित्र रहते हैं। इसी प्रकार भोजनकर, वस्त्रादि धारणकर, जूठे पदार्थ को स्पर्श कर, पैर को अच्छी तरह न धोकर, अज्ञान वश विना यज्ञोपवीत के ही कुछ भोजनादि वस्तुओं का स्पर्श कर, दाँत से होठों का स्पर्श कर, चाण्डालादि का दर्शन कर दाँत में लगी हुई वस्तुओं का जीभ से स्पर्श कर, शब्द करती हुई उँगलियों से प्रणाम कर, अज्ञान वश किसी अधर्म भावना में निरत रहकर आचमन करने पर भी अपवित्र रहता है, अतएव उसे चाहिये कि किसी पवित्र स्थान पर बैठकर पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुखकर विनम्र होकर हाथों और पैरों को धोकर घुटनों के बीच में हाथों को रखकर स्वस्थ चित्त हो बैठे और तब यज्ञादि की वस्तुओं का स्पर्श करे। उस समय इन्द्रियों को वश में रख सावधान होकर तीन घूंट निर्मल जल पान करे, दो बार मार्जन कर एक बार वस्तुओं का सेचन करे। फिर अपने खानि—आँख, कान, शिर, हाथ पैर आदि का जल से सेचन करे। इसी प्रकार उन अन्यान्य अंगों का भी सेचन करना चाहिये, जिनकी पवित्रता के विषय में कोई मीमांसा न हो। तदुपरान्त आचमन करना चाहिये, जो इस प्रकार विधिपूर्वक आचमन करते हैं, उनके वेदाध्ययन, यज्ञ, तपस्या, दान, ब्रह्मचर्य,—सभी सफल होते हैं। जो नास्तिक व्यक्ति विना आचमन किये सत्क्रियाओं को करने लगते हैं, उनकी सारी क्रिया नष्ट हो जाती है—इसमें सन्देह नहीं। वचन से शुद्ध, पुनीत अथवा सभी विधियों से सुसम्पन्न, दोषादि रहित एवं अनिन्दित जो क्रियायें

होती हैं वे पवित्र मानी गई हैं, जो इनके विपरीत हैं, वे अपवित्र तथा दोषपूर्ण हैं। क्षुधा से पीड़ित ब्राह्मण को कभी कुछ न कहना चाहिये, उसे सत्कार पूर्वक उस अवस्था में जो कुछ दे दिया जाता है वह विना यज्ञ स्तम्भ के ही एक यज्ञ है, अर्थात् वह भी एक यज्ञ के समान फलदायी है। श्राद्धादि में सर्वदा कठिनता से जीविका उपार्जित करनेवाले, किन्तु अयाचक, एकान्त प्रेमी, लज्जावान् ब्राह्मण को खूब पके हुए अन्न का भोजन कराना चाहिये, वह अन्न सड़ा हुआ अथवा जला भुना हुआ न हो। जो व्यक्ति श्राद्धादि कार्यों में चाण्डाल आदि अन्त्यज जातियों को भोजन कराता है, वह ब्रह्महत्यारा एवं दुरात्मा है, सैकड़ों जन्म लेने पर भी वह पाप से छुटकारा नहीं पाता। जो मनुष्य एक ही पाँत में कुछ उच्च एवं कुछ नीच ब्राह्मणों को बिठाकर भोजन कराता है, वह चाहे उस कर्म के लिए नियुक्त हो अथवा न नियुक्त हो, पाप का भागी होता है, उसके बावली, कूप, तड़ाग, बगीचे आदि लगाने के पुण्य इस पंक्ति पाप से शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। सभी कामों में वीतराग संन्यासी ब्राह्मणों से श्रेष्ठ कहे गये हैं। जो श्रेष्ठ ब्राह्मण चारों वेद तथा पाँचवें वेद रूप इतिहास (महाभारत) का पाठ करता है, उसे सन्यासी के बाद पण्डितों को चाहिये कि श्राद्धादि में यथा योग्य स्थान पर नियुक्त करें। इसके उपरान्त तीन वेदों के अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणों को नियुक्त करे। उसके अभाव में वेद के अभ्यासी उनके बाद एक वेद के अभ्यासी को, सब के बाद न्याय (तर्क शास्त्र) के अध्ययन करनेवाले ब्राह्मण को श्राद्धादि में नियुक्त करना चाहिये। अब पंक्ति से पवित्र पंक्तिपावन जो ब्राह्मण कहे गये हैं, उनके बारे में बतला रहा हूँ, सुनिये। ये जो पूर्व प्रसंग में कहे गये ब्राह्मण हैं, वे क्रमशः श्राद्धादि के लिए जानने चाहिए। वेद के छहों अंगों (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) के अध्ययन करनेवाले, विनयी, योग परायण, सभी शास्त्रों में स्वतन्त्र विचार रखनेवाले, एवं सर्वदा गमन करनेवाले अर्थात् किसी एक निर्दिष्ट स्थान पर निवास न करने वाले——इन पाँच प्रकार के ब्राह्मणों को पंक्ति पावन समझना चाहिये। अठारहों विद्याओं में से, जो एक में भी पारङ्गत हो, वह भी पंक्तिपावन है। इसके उपरान्त ये सब भी पंक्तिपावन हैं, जैसे त्रैनाचिकेत (नचिकेता की तीनों विद्याओं के अध्ययन करनेवाले) तीनों विद्याओं के जाननेवाले धर्म शास्त्र के अध्ययन करनेवाले द्विज भी पंक्तिपावन कहे गये हैं। इसके अतिरिक्त बृहस्पति के शास्त्र में जो पारंगत विद्वान् हैं, वे भी पंक्तिपावन हैं——इस प्रकार ये उपर्युक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन कहे गये हैं। जो ब्राह्मण किसी के श्राद्धकर्म में आमंत्रित होकर स्त्री के साथ समागम करता है, उसके पितरगण उसी मांस को खाते हैं, और उसके वीर्य पर शयन करते हैं। श्राद्ध देकर तथा श्राद्ध में भोजन कर जो ब्राह्मण मैथुन कर्म करते हैं, उसके पितरगण उसी मांस को खाते हैं, और उसी वीर्य पर अवस्थित होते हैं— इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए श्राद्धकर्त्ता को चाहिये कि श्राद्धादि में दान अतिथि को दे, भोजन ब्रह्मचारी ब्राह्मण को कराये, इसके अतिरिक्त जो ध्यान परायण (योगाभ्यासी) तथा दयालु हो उसे धर्म की मर्यादा रक्षा के लिये दान करे। श्राद्धकर्म में वीतराग संन्यासियों को अथवा बालखिल्यों (जो नये अन्न के प्राप्त कर लेने पर पूर्व संचित का त्याग कर देते हैं, अर्थात् जिन्हें जिविका आदि के लिये कोई चिन्ता नहीं रहती) को खिलाना चाहिये। वानप्रस्थ में रहनेवाला केवल पूजा मात्र से सन्तुष्ट और उपकृत होता है। जो श्राद्धकर्म में किसी गृहस्थ

आश्रम में रहनेवाले ब्राह्मण को भोजन कराता है, उसने मानो विश्वेदेवों की पूजा की है । इसी प्रकार वानप्रस्थ में रहनेवाले के सन्तुष्ट होने पर ऋषियों को सन्तुष्ट समझना चाहिये । बालखिल्यों के सन्तुष्ट होने पर इन्द्र को सन्तुष्ट समझना चाहिये । यतियों के पूजित होने पर तो मानो साक्षात् भगवान् ब्रह्मा पूजित होते हैं । अपनी-अपनी उपाधियों से पाँच आश्रम पवित्र माने गये हैं, इनके अतिरिक्त कोई अन्य आश्रम नहीं हैं । पितरों के श्राद्ध कार्य में तथा देवकार्यों में केवल चार आश्रमों की पूजा होती है । इन चारों आश्रमों से बहिभूर्त जो हों, उन्हें श्राद्धादि में कुछ भी नहीं देना चाहिये । जो इन चारों आश्रमों से बहिष्कृत हो, वह भले भूख से मरे, किन्तु श्राद्धादि कर्मों से बाहर ही रहे । जो यति नहीं है , और जो केवल मोक्ष की चर्चा करता है, वे दोनों पंक्ति दूषक हैं । व्यर्थ में लोगों को भ्रम में डालने के लिये जटा रखाने वाले, भाँति भाँति के चिथड़े-गुदड़ी आदि लपेट कर साधुता प्रदर्शित करने वाले, निर्मम, भिन्न भिन्न आचार विचारवाले, तथा सर्वभक्षी (भक्ष्याभक्ष्य में कोई विवेक न रखनेवाले)—इन सब को श्राद्धादि में वर्जित रखना चाहिये । शिल्प कर्म (कारीगरी) आदि नीच वृत्ति द्वारा जीविका निर्वासित करनेवाले, अनाचारी (आचार विहीन) सभी वेदों से वहिष्कृत, गायन वादन आदि द्वारा जीविका चलानेवाले, देवताओं के चरित्र का अनुकरण (रामलीला आदि में राम लक्ष्मण आदि का अभिनय) करनेवाले ब्राह्मणों को हवन एवं श्राद्ध आदि में विवर्जित रखना चाहिये । द्विजों में भी नित्य श्राद्ध आदि में भोजन करने वाले को भी—श्राद्ध में वर्जित रखना चाहिये । जो नित्य श्राद्धादि में भोजन कर के ही जीविका चलाता है वह श्यामल वर्ण का हो जाता है ; इसी प्रकार जो शूद्र के साथ भोजन करता है वह भी नीच है— ये ऊपर कहे गये ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं । ॥ २२—७० ॥

जीवहिंसा, बलवान् होकर केवल जीव मारने आदि में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करना, कृषिकर्म, वाणिज्य, पशुपालन, विना गुरु के किसी अन्य की शुश्रूषा आदि करना—ये सब कार्य ब्राह्मण के लिए नहीं हैं । जो नित्य ज्ञान एवं ध्यान में रहकर अपने जीवन बिताते हैं. वे ही ब्राह्मण हैं । इनके विपरीत जो मिथ्या संकल्प करनेवाले, दुर्व्यवहार करनेवाले, मिथ्या तत्त्वों के जाननेवाले, दम्भी, चुगलखोर, छोटे-मोटे पापकर्मों में लगे रहनेवाले अथवा महान् पातकी ब्राह्मण हैं, वे श्राद्धादि में वर्जित हैं । वेद वाक्य में अपनी आज्ञा देनेवाले, अर्थात् वेद वाक्यों में मनमानी करनेवाले, लोभ और अज्ञानवश फ़ल की आशा करनेवाले, ब्रह्म (विद्या) का विक्रय करनेवाले जो ब्राह्मण हैं, वे भी श्राद्धकर्म में वर्जित हैं । वेदवाक्यों में किसी को दखल देने का अधिकार नहीं है, जो उनमें अपनी आज्ञा लगाता है, वह पातकी है । ऐसे लोगों को श्राद्धादिकर्म में जो दान करता है वह दान के फल से भ्रष्ट (वंचित) रहता है, और जो भोजन करता है वह वेदाध्ययन के फल से भ्रष्ट (वञ्चित) रहता है । जो जीविका (रुपया आदि) लेकर किसी को पढ़ाता हैं और जो जीविका आदि लेकर पढ़ानेवाले अध्यापक से पढ़ता है—ये दोनों भी श्राद्धादि कर्म में प्रवेश पाने के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि ये दोनों ही विद्या के क्रय और विक्रय करने रूप अपराध के अपराधी हैं । जीविका के लिए विद्या का क्रय विक्रय करना गर्हित है, यह वैश्यों की वृत्ति है, ब्राह्मण के लिए तो यह पातक है । जो सामान्य कथाओं की भाँति वेदवाक्यों को कहता है और जो वेदों का जाननेवाला, जीविका के लिए वेदों का

पाठ आदि करता है—वे दोनों ही श्राद्धकर्म के योग्य नहीं हैं, इसी प्रकार पुत्री का पति अर्थात् जामाता भी श्राद्धकर्म में नियुक्त करने योग्य नहीं है। जो व्यर्थ में स्त्री के साथ समागम करता है, और जो व्यर्थ में ही यज्ञ में हवन करता है, वे दोनों भी श्राद्ध के योग्य नहीं हैं, इसी प्रकार नास्तिक द्विज भी श्राद्ध का अधिकारी नहीं है। जो केवल अपने लिए अन्न पकाता है, और जो देवताओं और अतिथियों के लिए कुछ भी नहीं रखता, वे दोनों ही श्राद्ध के लिए अनुपयुक्त हैं, ऐसे ब्राह्मण पतित और ब्रह्मराक्षस हैं। जिनकी स्त्रियाँ रात्रि में पर पुरुषों के साथ व्यभिचार करती हैं, अथवा जो दूसरे की स्त्रियों के साथ व्यभिचार करते हैं, जो अर्थ एवं काम में सर्वथा लोलुप रहते हैं, ऐसे ब्राह्मणों को श्राद्धकर्म में भोजन नहीं कराना चाहिये। वर्णाश्रम की मर्यादा, धर्म एवं श्राद्धकर्म के विरोधी, चोरी करनेवाले, सब किसी से यज्ञ करानेवाले, या विना विचार के सब कुछ यज्ञ में करनेवाले ब्राह्मण पंक्तिदूषक हैं। जो ब्राह्मण सुअर की तरह भोजन करता है, हथेली पर खाता है, अथवा बाएँ हाथ से खाता है, उसका दिया हुआ पितरगण नहीं खाते। श्राद्ध से बची हुई भोजनादि वस्तुएँ स्त्री को तथा ऐसे शूद्र को, जो अनुचर न हो, नहीं देनी चाहिये। जो अज्ञान वश इन्हें दे देता है, उसका दिया हुआ श्राद्ध पितरों को नहीं प्राप्त होता। इसलिये श्राद्धकर्म में जूठे बचे हुए अन्नादि पदार्थों को किसी को नहीं देना चाहिये। दूसरे कार्यों में दही और घृत को मिश्रित कर शिष्य और पुत्र को देना चाहिये। अन्यथा नहीं। विशेषतया बिना जूठे हुए अन्नादि को देना चाहिये। पुष्प, मूल और फलों से जिसप्रकार पितर गण तृप्त होते हैं उसी प्रकार अन्न से भी तृप्त होते हैं। जब तक अन्न उष्ण रहता है, तभी तक वह पवित्र रहता है अर्थात् ठंढा हो जाने पर अपवित्र हो जाता है। ब्राह्मण लोग जब तक चुपचाप इन्द्रियों को वश में रखकर भोजन करते हैं तभी तक पितर गण भोजन करते हैं, अर्थात् ब्राह्मणों को चुपचाप सावधानी पूर्वक इन्द्रियों को वश में रखकर भोजन करना चाहिये। दान, दान का अंगीकार, हवन, भोजन, बलि,—इन सबको अँगूठे के साथ सम्पन्न करना चाहिये, जिससे असुरों के लिये वह न हो जाय। श्राद्ध कर्म में विशेषतया ये उर्पयुक्त दानादि करने चाहिये। साधारणतया घुटनों के भीतर हाथ करके आचमन करना चाहिये। श्राद्ध काल में भी मुण्डित शिरवाले, जटा रखनेवाले काषायवस्त्रधारी को वर्जित रखना चाहिये। यत्नपूर्वक शिखाधारी और त्रिदण्डी (मन, वचन और शरीर के दंड को धारण करने वाला, एक प्रकार का संन्यासी) को श्राद्ध प्रदान करना चाहिये। जो ब्राह्मण नित्य व्रतपरायण रहते हैं, ज्ञानार्जन में प्रवृत्त रहकर योगाभ्यास में निरत रहते हैं, देवता में भक्ति रखते हैं, आत्मा से महान होते हैं,—वे दर्शन मात्र से पवित्र करते हैं। यह समस्त चराचर जगत योगपरायण महात्माओं से निरन्तर व्याप्त रहता है, इसी लये वे इस जगतीतल में जो कुछ होता है, उसे देखते हैं। व्यक्त, अव्यक्त, सबसे परे जो कुछ पदार्थ हैं उन सब को वे वश में रखते हैं। सत् असत् जो कुछ भी भाव या पदार्थ हैं, उनके देखे हुए हैं, महात्मा पुरुषों के लिये सत् असत् सभी पदार्थ वशीकृत हैं। महात्माओं के लिए निश्चित मोक्षादि, एवं समस्त ज्ञान उनके अधिकृत रहते हैं। इसलिये उन योगपरायण महापुरुषों में आसक्ति (प्रेम) रखनेवाला परम कल्याण का भाजन होता है। जो ऋग्वेद को जानता है, वह सभी वेदों को जानता है, जो यजुर्वेद को जानता है वह समस्त यज्ञों का जाननेवाला है,

जो सामवेद जानता है, वह पूर्णब्रह्मज्ञानी है, जो मानस (?) जानताहै वह सब कुछ जानता है। ॥ ७१—९५ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे ब्राह्मण परीक्षणं नाम नवसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

अस्सीवाँ अध्याय

श्राद्ध में दान के फल

बृहस्पतिने कहाः—अब इसके उपरान्त पुनः दान और उसके फलों को बतला रहा हूँ। सभी जीवों के उद्धार करनेवाले, स्वर्गमार्ग में सुख देनेवाले; लोक में सर्वश्रेष्ठ, स्वर्गप्रदान करनेवाले, अपने विशेष प्रिय लगनेवाले पदार्थों को अक्षय तृप्ति के लिए उन पितरों को देना चाहिये। श्राद्धादि में अन्न का दान करनेवाला मनुष्य सुवर्ण के बने हुए, सूर्य के समान चमकते हुए, दिव्य सौन्दर्यशालिनी अप्सराओं से भरे हुए दिव्य विमान को प्राप्त करता है। जो मनुष्य श्राद्धकर्म में बिना फटा हुआ ओढ़ने का वस्त्र प्रदान करता है, वह दीर्घायु, ऐश्वर्य, सुन्दरता तथा पुत्र की प्राप्ति करता है। जो धर्मात्मा मनुष्य श्राद्धकर्म में यज्ञोपवीत का दान करता है, तथा सभी समागत ब्राह्मणों को सुन्दर जलपान कराता है, उसे ब्रह्म (विद्या) दान का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों के लिए सुन्दर कमण्डलु का दान करता है, उस दाता के लिए मधु के समान मीठा दूध देनेवाली गौ नियुक्त रहती है। जो श्राद्धकाल में चक्राकार चिह्न से चिह्नित कमण्डलु प्रदान करता है, वह सभी मनोरथों की प्रदान करनेवाली, दिव्य गुण सम्पन्न दूध देनेवाली गौ प्राप्त करता है। जो पुष्प की मालाओं से विभूषित, सभी सामग्रियों से समन्वित सुन्दर शय्या का दान करता है, उसकी वह शय्या उत्तम प्रासाद (राजमहल) के रूप में उसके पीछे-पीछे (परलोक में) चलती है। श्राद्ध के अवसर पर रत्नादि से युक्त शय्या, एवं आसनादि से अलंकृत भवन को यतियों के लिए दान करनेवाला मनुष्य स्वर्ग में आनन्द की प्राप्ति करता है। मोती, वैदूर्य, विविधवस्त्र, रत्न, करोड़ों अरबों की संख्या में दिव्य वाहन, तथा अतिप्रकाशमान, रत्नादि से विभूषित, चन्द्रमा और सूर्य के समान एक दिव्यवाहन प्राप्त करता है उस दिव्य विमान का कभी विनाश नहीं होता। इच्छानुसार गमन करनेवाला, मन के समान वेगशाली वह रथ चारों ओर से अप्सराओं द्वारा घिरा रहता है। उस श्रेष्ठ विमान में चारों ओर से उसकी स्तुति की जाती है। गन्धर्व और अप्सराओं के वृन्द दिव्य सुगन्धित द्रव्यों एवं पुष्प की वृष्टियों से उसे आच्छादित करते हैं। मनोहर गायन और वादन द्वारा उसका मनोरंजन करते हैं। परम सुन्दरी अप्सराओं के साथ मुख्य-मुख्य युवती कन्यायें मनोरम संगीतमय स्वरों से उन्हें सर्वदा जगाती हैं। एक सहस्र अश्वों के दान करने से, एक सौ रथों के दान करने से तथा एक सहस्र हाथियों के दान करने से मनुष्य योगिनी के साथ निवास करता है। जो व्यक्ति योग परायण पितरों के उद्देश से जल में दीपदान करता है, उसे एक सहस्र

Funding by IKS-MoE

निष्कों के दान का फल प्राप्त होता है। जीवनदान के समान विशेषता किसी अन्य दान की नहीं है, इसलिए सब प्रयत्न करके प्राणों की रक्षा का दान करना चाहिये। अहिंसा देवताओं की अपेक्षा पवित्र एवं सब कुछ देनेवाली है, प्राणियों को जीवन दान करना सभी दानों से श्रेष्ठ है— ऐसा बुद्धिमान लोग कहते हैं। श्राद्ध में सभी लक्षणों से युक्त सुवर्ण के पात्रों का दान करना चाहिये। जो लोग श्राद्ध में इस प्रकार के सुवर्ण निर्मित पात्रों का दान करते हैं, उन्हें विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, रस एवं सौभाग्य की प्राप्ति होती है। श्राद्धकाल में भोजन के अवसर पर सुन्दर बने हुए तैजस (चाँदी के) पात्रों का दान करना चाहिए, वह पात्र दाता के स्वरूप, धन सम्पत्ति और सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाला होता है, (श्राद्धकर्म में सुवर्ण अथवा चाँदी के बने हुए पात्रों को जो दाता देते हैं, वे परम धर्म की प्राप्ति करते हैं।) जो व्यक्ति श्राद्ध में दोहन पात्र के साथ एक बार की व्याई हुई गौ का दान करता है, उसे अनेक गौयें प्राप्त होती हैं और सर्वदा पुष्ट रहती हैं। शिशिर ऋतु में श्राद्ध के अवसर पर जो अग्नि एवं प्रचुर परिमाण में इन्धन का दान करता हैं, अथवा शिशिर ऋतु के आजाने पर जो ब्राह्मणों के लिए इन्धन दान करता है, वह संग्राम में सर्वदा विजयी होता है, और शोभा सम्पन्न होकर परम तेजस्वी होता है। श्राद्ध के अवसर पर सुगन्धित पुष्पों की मालाएँ तथा सुन्दर पात्रों को सत्कार पूर्वक दान करना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे महानदियाँ सुगन्धि से युक्त होकर परम सुख पहुँचाती हैं, विविध सुखों की प्राप्ति होती है। मनोरम युवती स्त्रियाँ उस दाता के पास उपस्थित होती हैं। विविध प्रकार की शय्या, मनोहर आसन, प्रचुर भूमि एवं विविध वाहन—इन सब को जो श्राद्ध के अवसर पर देता है, वह अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। सामान्य श्राद्धों के अवसर पर अथवा दर्श श्राद्धों के अवसर पर जो इन वस्तुओं का दान सर्व गुण सम्पन्न ब्राह्मणों को करता है वह सुन्दर स्मरण शक्ति और बुद्धि को प्राप्त करता है। श्राद्ध के अवसर पर घृत से भरे हुए अनेक पात्रों का सत्कार पूर्वक दान करना चाहिये, जो ऐसा करता है, वह दोहन कलश समेत अनेक गौओं के दान का फल प्राप्त करता है। इस लोक में सुन्दर वाहनों एवं रथों का आनन्द प्राप्त करता है। श्राद्ध के अवसर पर याचक की मनचाही वस्तु का दान करने से पुण्डरीक यज्ञ का एवं सुन्दर निवास स्थल का दान करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। एवं फलों से समन्वित वन का दान करने से सुगन्धित पदार्थों की प्राप्ति होती है। कूपों, बगीचों, तड़ागों, क्षेत्रों, गौशालाओं और गृहों के दान करने से दाता स्वर्ग लोक में तब तक निवास करता है, जब तक चन्द्रमा और ताराएँ विद्यमान रहती हैं। श्राद्ध काल में रत्नजटित बिछावन और शय्या का दान करता है, उसके पितरगण सन्तुष्ट होते हैं, और दाता अनन्त काल तक स्वर्ग में निवास करता है। राजाओं द्वारा वह पूजित होता है, उसके धन धान्यादि की वृद्धि होती है। ऊनी, रेशमी वस्त्र, श्रेष्ठ कम्बल, चर्म, सुवर्ण निर्मित पट्ट, और मृगलोम इन सब वस्तुओं को विधिपूर्वक ब्राह्मणों को देना चाहिये। इन दानों पर श्रद्धा रखनेवाले सौ वाजपेय यज्ञों का फल प्राप्त करते हैं। इस लोक में बहुतेरी सुन्दरी स्त्रियाँ, पुत्र, एवं सेवक गण उसके वश में रहते हैं, बहुत से लोग उसके अधीन रहते हैं, और वह सर्वदा नीरोग रहता है। जो व्यक्ति नवीन रेशमी वस्त्र, सूक्ष्म सूती वस्त्र, सुन्दर साड़ियों

को श्राद्धों के अवसर पर दान करता है, वह अपने समस्त मनोरथों को प्राप्त करता है। उसकी सारी विपत्तियाँ इस प्रकार दूर हो जाती हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार। नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान देवविमानों में वह अग्रसर होकर सुशोभित होता है। वस्त्र सभी देवताओं द्वारा प्रशंसित तथा सर्व देवमय है, उस सर्वश्रेष्ठ वस्त्र के अभाव में कोई क्रिया सम्पन्न नहीं होती, न तो यज्ञ सम्पन्न होता है और न तपस्या ही सफल होती है। इस लिए श्राद्ध के अवसर पर विशेष रूप से वस्त्रों का दान करना चाहिए। ऐसा करने वाला समस्त यज्ञों, वेदों और तपस्याओं का फल प्राप्त करता है। जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर इन्द्रियों को वश में रखकर वस्त्रों का दान करता है वह समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है। स्वर्ग और राज्य प्राप्त करता है। सभी कामनाओं से सम्पन्न यज्ञ का फल प्राप्त करता है। विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थ, धान्य करम्भ (दहीमिश्रित सत्तू), पेठ, घृत और शक्कर, खिचड़ी, मधुपर्क, दुग्ध, दुग्ध में बने हुए पदार्थ, सुन्दर पूआ—इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर जो व्यक्ति दान करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है। वर्षा ऋतु में श्राद्ध के अवसर पर विशेषतया मघा नक्षत्र में—पितरगण दही शुद्ध गोरस, विविध प्रकार के भक्ष्य पदार्थ की चिन्ता करते हैं अर्थात् मघानक्षत्र में श्राद्ध करते समय इन पदार्थों को देना चाहिये। श्राद्ध करते समय घृत के साथ ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये, भूमि पर घृत छोड़ना चाहिये, गया तीर्थ में हाथी दान करके पितरों के विषय में चिन्ता छूट जाती है। भात, दुग्ध में बने हुए पदार्थ, घृत, मधु, मूल, फल, विविध प्रकार की भोजन सामग्री—इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर दान करने से इह लोक तथा परलोक में आनन्द की प्राप्ति होती है दूध मिश्रित शक्कर और चिउड़ा का दान कभी नष्ट होनेवाला नहीं है। मसूर और खिचड़ी के दान से पितर गण एक वर्ष तक सन्तुष्ट रहते हैं। इसी प्रकार सत्तू, धान के लावे, पूआ और कुल्माष (कुल्थी के बने हुए व्यंजनों) से भी एक वर्ष तक पितरगण तृप्त रहते हैं। घृत, मनोहर और हृदय को लुभाने वाली अन्यान्य खाद्य सामग्री तथा दही के साथ सत्तू का भोजन श्राद्ध के अवसर पर देना चाहिये। जो व्यक्ति इन सब वस्तुओं को श्राद्ध के अवसर पर दान करता है, वह कई पद्म का खजाना प्राप्त करता है। जो सत्कार एवं यत्नपूर्वक श्राद्ध के अवसर पर नवीन अन्न का दान करता है वह सभी प्रकार के भोगों को प्राप्त करता है, पूजित होता है तथा स्वर्ग प्राप्त करता है। जो मनुष्य विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ, भक्ष्य सामग्रियाँ, तथा पीने, और चाटने की श्रेष्ठ सामग्रियाँ श्राद्धकाल में देता है, वह सर्व श्रेष्ठ होता है। इस श्राद्ध में वैश्वदेव और सोम को उनका भाग देना चाहिये, गैंडे के माँस की आहुति देनी चाहिये—वही सर्व श्रेष्ठ हवि है। केवल गैंडे की सींग छोड़ देनी चाहिए—इसे वर्जित कर हम पितरों की घृणा को नष्ट करते हैं। अर्थात् गैंडे की सींग को पितरगण घृणा दृष्टि से देखते हैं। हाथ जोड़कर अतिथियों को भोजन कराते समय आगे आसन देना चाहिये, जो ऐसा करता है वह सभी यज्ञों एवं सत्क्रियाओं का फल प्राप्त करता है। जो भूखा अतिथि हो, उसे अति शीघ्रता पूर्वक खूब पकी हुई गरमागरम भोजन सामग्री देनी चाहिये। यत्नपूर्वक भक्ति एवं सत्कार के साथ उसे चिकना स्निग्ध भोजन देना चाहिये। जो ऐसा करता है, उसे मध्याह्न के सूर्य के समान तेजस्वी हंसों के वाहनों से समन्वित विमान की प्राप्ति होती है। श्राद्ध के अवसर पर अन्न दान करनेवाला

तीन करोड़ सुन्दरी कन्याओं को प्राप्त करता है। इस मर्त्यलोक में अन्नदान से बढ़कर कोई अन्यदान नहीं है। इसमें किसी को सन्देह न होगा कि अन्न से ही समस्त जीव पृथ्वी पर उत्पन्न होते हैं और जीवन चलाते हैं। उसी प्रकार इस मर्त्यकोक में जीव दान के समान कोई अन्य दान नहीं है। अन्नों द्वारा यह त्रैलोक्य जीवित है, यह सारा विश्व प्रपंच अन्न का ही परिणाम है। अन्न में ही समस्त लोकों की स्थिति और प्रतिष्ठा है, अन्न दान से ही वे वर्तमान हैं, अन्न ही साक्षात् पजापति है, उसी से यह सारा त्रैलोक्य व्याप्त है। इस कारण अन्न दान के समान कोई अन्य दान न तो जगत् में था और न भविष्यत्काल में कभी होगा। इस पृथ्वी में जितने भी रत्न हैं, जितने भी वाहन हैं, जितनी भी सुन्दरी स्त्रियाँ हैं, उन सब को पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य शीघ्र ही प्राप्त करता है इसलिये उसे सर्वदा हाथ जोड़कर अतिथियों को आश्रय देना चाहिये। सहस्रों देवगण दिव्य (मनोरम) आतिथ्य प्राप्ति के लिए प्रतीक्षा करते रहते हैं। जो व्यक्ति ऊपर कही गई समस्त वस्तुओं को श्राद्ध में दान करता है वह पृथ्वी का एकच्छत्र सम्राट् होता है, अथवा इनमें से तीन, दो या एक ही का दान करता है वह भी सुखी होता है। ये दान परम धर्म हैं, सत्पुरुषों ने इनका सर्वदा सत्कार और पूजन किया है। ससस्त त्रैलोक्य का आधिपत्य दान से ही व्यवस्थित है। राजा लोग राज्य प्राप्त करते हैं, निर्धन लोग उत्तम धन प्राप्त करते हैं; क्षीणायु दीर्घायु प्राप्त करते हैं, पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य मन से भी जिन अभिलाषाओं का चिन्तन करता है, उनको पितरगण पूर्ण करते हैं। ॥१—६२॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे दानफलं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

विशेष तिथियों में श्राद्ध के किये जाने का फल।

बृहस्पति ने कहा :—अब इसके बाद मैं नित्य, नैमित्तिक और काम्य श्राद्धों का विवरण बतला रहा हूँ, और यह भी बतला रहा हूँ कि श्राद्धकर्म में पूजिनादि किस प्रकार सम्पन्न होते हैं। तीनों अष्टकाएँ पुत्र को देनेवाली और धन सम्पत्ति आदि की कारणी भूत हैं। इस श्राद्धकर्म में पूर्वपक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष श्रेष्ठ माना गया है। तीनों अष्टकाओं में प्रथम चित्री कही गई है। दूसरी प्राजापत्य और तीसरी वैश्वदेवी है। इन तीनों में पहिली को पूओं द्वारा, दूसरी को मांसों द्वारा तथा तीसरी को शाकों द्वारा करना चाहिये। यह इन तीनों अष्टकाओं के लिए पदार्थों का नियम है। पितरों के लिए अन्वष्टका श्राद्ध सर्वत्र करना चाहिये। यदि कोई अन्य चौथी अष्टका मिले तो उसे भी विधिपूर्वक सम्पन्न करे। बुद्धिमान् पुरुष को इन सब अष्टकाओं में सर्वस्व व्यय करके भी श्राद्ध करना चाहिये। ऐसा करनेवाला प्राणी इह लोक तथा परलोक —दोनों में सर्वदा आनन्द का अनुभव करता है। पूजा आदि करनेवालों की सदा उन्नति होती

Funding by IKS-MoE

है और जो नास्तिक विचारवाले होते हैं, उनकी सर्वदा अधोगति होती है। पितरगण पर्व के अवसरों पर तथा देवगण विशेष-विशेष तिथियों पर श्राद्धादि एवं पूजा आदि करनेवाले पुरुष के पास इस प्रकार उपस्थित होते हैं जैसे गौएँ जलाशय के समीप पानी पीने के लिए आती हैं। वे पितरगण देवताओं द्वारा पूजित इन अष्टकाओं के समीप नहीं जाते। जो व्यक्ति इन अष्टकाओं में पितरों की पूजा आदि नहीं करते, उनका यह लोक (जन्म) व्यर्थ हो जाता है और जो कुछ प्राप्त हुआ रहता है वह नष्ट हो जाता है। जो इन अवसरों पर श्राद्धादि का दान करते हैं वे देवताओं के समीप अर्थात् स्वर्ग लोक को जाते हैं और जो नहीं देते वे तिर्यक् (अधम, पक्षी आदि) योनियों में जाते हैं। उसकी बुद्धि, पुष्टि, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति, पुत्र पौत्रादि, एवं ऐश्वर्य की वृद्धि होती है, जो पूर्णमासी के अवसर पर श्राद्धादि करता है, इस प्रकार वह पूर्ण पर्व का फल भोगता है। इसी प्रकार प्रतिपदा धन सम्पति के लाभ के लिए होती हैं, एवं करनेवाले की प्राप्त वस्तु नष्ट नहीं होती। द्वितीयातिथि को जो पितरों के उद्देश से श्राद्धादि करता है, वह दो पादवालों (मनुष्यों) का राजा होता है। उत्तम अर्थ की प्राप्ति के अभिलाषी व्यक्ति के लिए श्राद्धादि में तृतीया विहित है, यह तृतीया शत्रुओं का नाश करनेवाली तथा पापनाशिनी है। जो चतुर्थी तिथि को श्राद्ध करता है वह शत्रुओं का छिद्र देखता है, अर्थात् उसे शत्रु की समस्त कूट चालों का ज्ञान हो जाता है। पञ्चमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति करता है। जो षष्ठीतिथि को श्राद्धादि कर्मों को सम्पन्न करते हैं उनकी पूजा देवता लोग करते हैं। जो मनुष्य सर्वदा सप्तमी तिथि को श्राद्धादि कार्य करते हैं, वे महान् यज्ञों के पुण्यफल प्राप्त करते हैं, और गणों के स्वामी होते हैं। जो मनुष्य अष्टमी को श्राद्ध करता है वह सम्पूर्ण समृद्धियाँ प्राप्त करता है। नवमीतिथि को श्राद्ध कर्म करनेवाले को प्रचुर ऐश्वर्य एवं मन के अनुसार चलनेवाली स्त्री की प्राप्ति होती है। दशमी तिथि को श्राद्ध करनेवाला मनुष्य ब्रह्मत्व की लक्ष्मी प्राप्त करता है। एकादशी तिथि को श्राद्धादि का दान सर्वश्रेष्ठ दान है, जो उक्त तिथि को श्राद्धादि का दान करता है, वह समस्त वेदों को प्राप्त करता है, उसके सम्पूर्ण पापकर्मों का विनाश हो जाता है तथा निरन्तर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। द्वादशीतिथि को श्राद्ध करने से राष्ट्र का कल्याण तथा अन्नों की प्राप्ति होती कही गई है। त्रयोदशी तिथि को श्राद्धादि कर्म करने से सन्तति, बुद्धि, पशु, धारणाशक्ति, स्वतन्त्रता, उत्तम पुष्टि, दीर्घायु तथा ऐश्वय, की प्राप्ति होती है। जिसके घर के जवान लोग मर गये हों, उसे चाहिये कि उन सबों के उद्देश से चतुर्दशी-तिथि को श्राद्ध करे। इसी प्रकार हथियारों के द्वारा जिनकी मृत्यु हुई हो, उनके लिए भी चतुर्दशी को श्राद्धकर्म करे। इसी प्रकार समस्त विषम उत्पन्न होनेवालों (अर्थात् तीन कन्याओं के बाद जो पुत्र उत्पन्न होते हैं, अथवा तीन पुत्रों के बाद जो कन्यायें उत्पन्न होती हैं) तथा जुड़वाँ उत्पन्न होनेवालों के लिए सर्वदा पवित्र होकर अमावास्यातिथि को प्रयत्नपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। जो इस प्रकार श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करते हैं वे समस्त मनोरथों को प्राप्त करते हैं और अनन्तकाल पर्यन्त स्वर्ग का उपभोग करते हैं। अमावास्या तिथि को ब्राह्मण को भोजन देना चाहिये, चन्द्रमा के लिए भी तर्पण करना चाहिये, इसका महान फल होता है। इस प्रकार तर्पित होकर सोमदेव तीनों लोकों को धारण करेंगे। दृढ़व्रत परायण, पितरों में भक्ति रखनेवाले

Funding by IKS-MoE

व्यक्ति की सिद्ध, चारण और गन्धर्व गण नित्य स्तुति करते हैं। उनके साथ सहस्रों अप्सराएँ अपने नाच, गान वाद्य, स्तुति, मनोहर पुष्प निचय एवं सभी प्रकार के अभिलषित वस्त्रादिकों से उसे प्रसन्न करती हैं। देवता गन्धर्व एवं सिद्धों के समूह उसकी सर्वदा स्तुति करते रहते हैं, अनेक छोटे-छोटे क्रीडा के विमान उसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं। पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य अमावास्या को सभी मनोरथ प्राप्त करता है क्योंकि सर्वदा उस तिथि को पितरगण उससे प्रत्यक्षतः पूजा प्राप्त करते हैं। मघा नक्षत्र पितरों को अभीष्ट सिद्धि देनेवाला है, अतः उक्त नक्षत्र के दिन किया गया श्राद्ध अक्षय कहा जाता है। इसीलिए विवेकशील लोग विशेषतया उसी नक्षत्र में पितरों के श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करते हैं। यही कारण है कि पितरगण भी उसे सर्वदा अधिक पसन्द करते हैं। पितरों और देवताओं में जो केवल भक्ति रखते हैं, वे भी परमगति प्राप्त करते हैं। ॥१–२६॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे तिथि विशेषे श्राद्धफल वर्णनं नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥

बयासीवाँ अध्याय

विशेष नक्षत्रों में किये गए श्राद्धों के फल

बृहस्पति बोले :—विशेष नक्षत्रों में पृथक् पृथक् श्राद्ध के करने से क्या फल होते हैं—इस विषय में यमराज ने शिवबिन्द से जो कुछ श्राद्धीय चर्चाएँ की हैं, उन सब को मैं बतला रहा हूँ, सुनो। जो मनुष्य सर्वदा कृत्तिका नक्षत्र के योग में श्राद्ध करता है, और अग्नि की स्थापना करता है, वह अपनी सन्ततियों समेत चिन्ताओं एवं व्याधियों से मुक्त होता है। सन्तान की कामना से रोहिणी में श्राद्ध करना चाहिये। मृगशिरा नक्षत्र में श्राद्ध करने से तेजस्विता का लाभ होता है। आर्द्रा में श्राद्ध कार्य प्रायः क्रूरकर्म करने वाले ही करते हैं। पुनर्वसु नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला क्षेत्र का अधिकारी और पुत्रवान् होता है। धनधान्यादि से समन्वित तथा पुत्र पौत्रादि से संयुक्त होता है। सन्तोष लाभ की अभिलाषा से मनुष्य को पुष्य नक्षत्र में श्राद्ध करना चाहिये। आश्लेषा में पितरों की पूजा करके मनुष्य वीर पुत्रों का लाभ करता है। मघा में श्राद्ध करनेवाला अपनी जाति में सर्वश्रेष्ट होता है। फाल्गुनी नक्षत्रों में पितरों की पूजा कर मनुष्य सौभाग्य की प्राप्ति करता है। उत्तरा नक्षत्रों में श्राद्ध करनेवाला अपने सन्तान समेत समाज का प्रमुख व्यक्ति होता है। जो हस्त नक्षत्र में पितरों की पूजा करता है वह सत्पुरुषों में अग्रगण्य होता है। जो चित्रा नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह रूपवान पुत्रों को देखता (प्राप्त करता) है। जो विद्वान पुरुष स्वाती नक्षत्र में श्राद्ध करता है, वह लाभ प्राप्त करता है। मनुष्य को पुत्र प्राप्ति के लिए विशाखा नक्षत्र में श्राद्ध करने की अभिलाषा करनी चाहिए। अनुराधा में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य राज्य का विस्तार करता है। जो सर्वदा ज्येष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करता है वह उत्तम आधिपत्य प्राप्त करता है। मूलनक्षत्र से लोग आरोग्य की इच्छा करते हैं,

आषाढ़ा में महान् यश प्राप्त करते हैं, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में श्राद्ध करने वाला मनुष्य शोक रहित होता है। श्रवण नक्षत्र में श्राद्ध करने से सभी लोकों में परम गति प्राप्त होती है। धनिष्ठा नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला राज्य और विपुल धन प्राप्त करता है। अभिजित् नक्षत्र में श्राद्ध करनेवाला अंगों समेत समस्त वेदों का अधिकारी होता है। शतभिष् नक्षत्र में श्राद्ध करने से सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। पूर्व भाद्रपद में श्राद्ध करनेवाला अजाविक (?) फल प्राप्त करता है। उत्तरा भाद्रपद में श्राद्ध कर्ता श्राद्ध करने के फलस्वरूप सहस्रों गौएँ प्राप्त करता है। रेवती में श्राद्ध करनेवाला बहुत सा द्रव्य प्राप्त करता है। इसी प्रकार अश्विनी में अश्व और भरणी में उत्तम आयु प्राप्त करता है। इस श्राद्ध विधि का विधिवत् पालन कर शशविन्दु ने इस समस्त पृथ्वी को प्राप्त किया था और उसकी प्रसंशा की थी।। १—१४ ॥

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्ते नक्षत्रविशेषे श्राद्धफल वर्णनं नाम द्वयशीतितितोऽध्यायः ॥ ८२ ॥

तिरासीवाँ अध्याय

श्राद्ध में भिन्न भिन्न समय में तृप्ति के साधनभूत विशेष द्रव्य, गया में श्राद्ध के फल, तथा ब्राह्मण की परीक्षा आदि।

शंयु ने कहाः— हे बोलने वालों में श्रेष्ठ! कौन-सी वस्तु पितरों को (थोड़े दिनों तक) तृप्ति देने वाली है? कौन-सी वस्तु चिरकाल तक तृप्ति देती है? और कौन-सी वस्तु अनंत काल तक तृप्ति देती है?

बृहस्पति ने कहाः—श्राद्ध के महात्म्य को जाननेवाले श्राद्धादि में जिन हविष् द्रव्यों को उक्त फलदायी जानते हैं, उन सब की क्या और कितनी सामर्थ्य है, इसे मैं विस्तार पूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये। श्राद्ध में तिल, जौ, उड़द, जल, मूल और फलों के दान करने से पितामह (पितर) लोग एक मास तक सन्तुष्ट रहते हैं। मछली से दो मास तक सन्तुष्ट रहते हैं, हरिण के मांस से तीन मास तक तृप्त रहते हैं, इसी प्रकार खरगोश के मांस से चार मांस और पक्षी के मास से पाँच मास तक सन्तुष्ट रहते हैं। शूकर के मांस से छः मास, बकरे के मांस से सात मास, और पृषत् (सफेद चित्ती वाला एक विशेष मृग) के मांस से आठ मास तक सन्तुष्ट रहते हैं—ऐसा बतलाया जाता है। रुरु (एक विशेष मृग जाति) के मांस से पितामह गण नव मास तक तृप्त रहते हैं। गवय के मांस से दस मास की तृप्ति होती है। कछुए के मांस से ग्यारह मास की तृप्ति होती है। गोरस से एक वर्ष की तृप्ति होती है। मधु, घृत, दूध में बने हुए व्यंजन तथा अन्य गोरस से भी एक वर्ष की तृप्ति होती है। वध्रीणस के मांस से जो श्राद्ध किया जाता है, उससे बारह वर्ष तक तृप्ति रहती है। पितरों के लिए गैंडे का माँस श्राद्ध में अनन्त काल तक तृप्ति करता है। इसी प्रकार काले बकरे तथा गोह का मांस भी अनन्त काल तक तृप्ति करता है। अब इसके बाद

प्राचीन काल के वृत्तान्तों के जानने वाले पितरों द्वारा गाई हुई गाथाओं का जो वर्णन लोग करते हैं, उन्हें आपलोगों से बतला रहा हूँ, यथावत् सुनिये। पितरगण ऐसा कहते हैं कि, हमारे वंश में कोई ऐसा सुपुत्र पैदा हो, जो हाथी की छाया में त्रयोदशी तिथि को मधु, घृत, एवं दूध में बनाए हुए व्यंजनों तथा अन्नों का दान करे एवं वर्षा ऋतु में विशेषतया मघा नक्षत्र में सर्वलोह अज (बकरा) का मांस दे। बहुत पुत्रों की कामना करनी चाहिये, उनमें से एक भी गया चला जायगा, एक भी सुकुमारी गौरवर्ण की कन्या का विवाह कर देगा, अर्थात् कन्यादान कर देगा अथवा एक भी नीले बैल का (हम लोगों के उद्देश्य से) त्याग करेगा तो हम लोगों की मनः कामनाएँ पूर्ण हो जायँगी। ॥ २—१२ ॥

शंयु ने कहा:—हे तात! गया आदि तीर्थों का माहात्म्य हम आप से पूछ रहे हैं, बतलाइये, वहाँ पर पितरों के उद्देश से जो कुछ कार्य किया जाता है उससे क्या पुण्य प्राप्त होता है, उसे हमें आद्योपान्त बतलाइये। ॥ १३ ॥

बृहस्पति ने कहा:—जो मनुष्य साल भर में गया जाकर श्राद्ध करता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त करता है और स्वर्गलोक में पूजित होता है। यदि पुत्र गया की यात्रा करता है, और वहाँ पर सावधानी से श्राद्ध करता है, वह समस्त मनोरथों को सुन्दर रूप में प्राप्त करता है और मोक्ष के उपायों को प्राप्त करता है। गया जाने के लिए उद्यत होकर सर्व प्रथम विधिपूर्वक श्राद्ध कर काषायवस्त्र धारण कर अपने ग्राम की भी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। तदनन्तर दूसरे ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष बचे हुए का भोजन करे। प्रदक्षिणा कर बिना किसी का दान आदि लिए गमन करे। गया की यात्रा में केश, दाढ़ी मूंछ आदि का मुण्डन प्रशंसनीय नहीं कहा गया है, अतएव श्राद्ध करनेवाले को चाहिये कि वह गया यात्रा के समय मुण्डन न कराये। मुनुष्य को चाहिये कि गया श्राद्ध के लिए कभी कंजूसी न करे, कंजूसी करने पर तीर्थ यात्रा का वास्तविक फल नहीं मिलता। ब्रह्मकुण्ड, प्रभास, ब्रह्मवेदी, और प्रेतपर्वत पर विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। उत्तर मानस तीर्थ में भी श्राद्ध करना चाहिये; जहाँ मैनाक पर्वतों की श्रेणियाँ हैं। उत्तर दिशा में कनखल तथा दक्षिण दिशा में मानस स्थान पर स्नान कर श्राद्ध करने से पितरों का उद्धार हो जाता है। स्वर्ग लोक, पाताल लोक तथा मर्त्यलोक में इन तीर्थों के समान कोई दूसरा नहीं है। यदि श्रेष्ठ गति प्राप्त करने की इच्छा है, तो इन तीर्थों में श्राद्ध करना चाहिये। सर्वप्रथम गदाधर का दर्शन कर धर्मारण्य की यात्रा करनी चाहिये। मतंग में पुनः गदाधर का दर्शन कर नारायण का स्मरण करना चाहिये। वहाँ पर विधि पूर्वक श्राद्ध करके कोटि कुलों का उद्धार किया जाता है। यदि कालक्रमानुसार पुत्र गया की यात्रा करता है तो उसे उन्हीं ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये जिनके विषय में पहिले ही से विचार किया गया हो। श्राद्ध के अवसर पर नियुक्त किये जाने के लिए जिन ब्राह्मणों के विषय में विचार किया जाता है, उन्हें मनुष्य रूप में नहीं जानना चाहिये। उनके सन्तुष्ट होने पर पितरों के साथ देवगण भी सन्तुष्ट हो जाते हैं। हे राजेन्द्र! श्राद्ध में नियुक्त होनेवाले उन ब्राह्मणों के कुल शील, विद्या अथवा तपस्या का विचार नहीं करना चाहिये, उनके सुपूजित होने पर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। अपनी सामर्थ्य एवं बलाबल का विचार कर श्राद्ध का

Funding by IKS-MoE

अनुष्ठान करना चाहिये । जो ऐसा करता है, वह अपने समस्त मनोरथों को प्राप्त करता है और मोक्ष के साधनों को हस्तगत करता है । हे राजन् । गयाकूप में अपने वर्ण के, जाति के, मित्र, परिवार वर्ग एवं सुहृद्, जो भी हों सब के लिए विधिपूर्वक पिण्डदान करना चाहिये । इनको पिण्डदान करनेवाले सभी लोग स्वर्ग जाते हैं—ऐसा हमने सुना है । जिन लोगों के नाम अथवा गोत्र ज्ञात नहीं हैं, उनका मंत्र इस प्रकार है । "हमारे पिता के वंश में समुत्पन्न, हमारी माता के वंश में, हमारे गुरु, श्वसुर सवं उनके भाई विरादरी तथा अन्यान्य जो वान्धववर्ग हों, मेरे कुल में जिनकी पिंड प्राप्त करने की आशा नष्ट होगई हो, जो पुत्र स्त्री आदि से विवर्जित थे, हमारे कुल में जो ज्ञात अथवा अज्ञात रूप में उत्पन्न हुए थें, विरूप थे, रुग्ण थे, जिन की सत्क्रियाएँ लुप्त हो गई थीं, अर्थात् दुराचारी थे, अथवा गर्भावस्था में ही जिनका विनाश होगया हो, उन सबों के उद्देश से दिया गया यह पिण्ड अक्षय तृप्ति प्रदान करे ।" हे परम बुद्धिमान् ! गया क्षेत्र में (?) तिल के विना अपना (?) पिण्डदान करना चाहिये । अन्यान्य अपने गोत्र में उत्पन्न होनेवाले जो हों, उनके लिए भी यही विधान है । पुत्रों, कन्याओं एवं इष्टमित्रों सब के लिए सावधान होकर बुद्धिमान् पुरुष को प्रयत्नपूर्वक पिण्डदान करना चाहिये । वे सभी पिण्डदान करनेवाले स्वर्ग लोक प्राप्त करते हैं ऐसा सुना जाता है । ब्रह्म हत्या करनेवाले, कृतघ्न एवं महान् पाप कर्म करनेवाले, जो लोग हैं वे सब भी गया में पिण्डदान करने से निस्तार पा जाते हैं । ब्रह्म हत्या करनेवाले, मदिरा पान करनेवाले, बालक, वृद्ध एवं गुरु से द्रोह करनेवाले, इन सबों के भी पाप नष्ट हो जाते हैं, यदि वे गया की यात्रा करें । जिसका नाम लेकर पिण्डदान किया जाता है, वह शाश्वत ब्रह्मपद की प्राप्ति करता है । तीनों लोकों में गया के समान दुर्लभ तीर्थ कोई नहीं है । उसके प्रभाव से नरक में रहनेवाले स्वर्ग जाते हैं और स्वर्ग में रहनेवाले मोक्ष को प्राप्त करते हैं । मनुष्य अपने मन में यह शुभ कल्पना करते रहते हैं कि 'हमारे कुल में भी ऐसे सन्मार्गगामी पुत्र उत्पन्न होंगे, जो गया की यात्राकर आदरपूर्वक हमें पिण्डदान करेंगे ।' मकर राशि में सूर्य के होने पर, चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के अवसर पर, पितृपक्ष में, और चैत्र मास में पिंडदान दुर्लभ है, अर्थात् इन अवसरों पर गया में पिण्डदान का महान फल है । अधिकमास में, जन्मदिन में, गुरु और शुक्र के अस्त होने पर, सिंहराशि में वृहस्पति के आने पर गया का श्राद्ध न छोड़ना चाहिये । बुद्धिमान लोग तो सर्वदा गया में पिण्डदान करते हैं । हे पुत्र ! गया तीर्थ में पितरों की निधनतिथि के अवसर पर श्राद्ध का अक्षयफल होता है, जप, हवन एवं तप का भी अक्षयफल कहा जाता है । गौरी पत्नी में समुत्पन्न पुत्र इक्कीस पीढ़ी को पवित्र करता है । इसके अतिरिक्त मामा के परिवार में छः को पवित्र करता है—ऐसा फल कहा गया है । अब वृष का फल बतला रहा हूँ, सुनिये । वृषोत्सर्ग करनेवाला दस पूर्वजों और दस बाद में उत्पन्न होनेवालों पुरुषों को पवित्र करता है । जल से तैर कर पृथ्वी पर आनेवाले वृष की पूँछ से गिरनेवाले जलविन्दुओं द्वारा वृषोत्सर्ग कर्म में जो वस्तुएँ स्पर्श की जाती हैं, वे पितरों के लिए अक्षयफलदायिनी कही जाती हैं । इस प्रकार अन्त तक वृष के लाँगूल आदि से गिरनेवाले जल द्वारा जो-जो वस्तुएँ स्पर्श की जाती हैं, वे सब पितरों को अक्षय तृप्ति प्रदान करनेवाली हैं—इसमें सन्देह नहीं । वह वृष अपने

Funding by IKS-MoE

सींगों तथा खुरों से जो भूमि खोदता है, वह भूमि अक्षय मधु की नहर के रूप में उसके (दाता के) पितरों को प्राप्त होती है। एक सहस्र नल्व (एक नल्व बराबर चार सौ हाथ के) में विस्तृत तड़ाग के खनाने से पितरों की जो तृप्ति सुनी जाती है, उससे अधिक तृप्ति वृषोत्सर्ग से होती है। गुड़मिश्रित तिलों, मधुश्रिमित तिलों से अथवा मधु से जो श्राद्धकर्म किया जाता है, वह सब अक्षयफलदायी होता है। ॥१४–५०॥

बृहस्पति ने कहा—मनुष्य को चाहिये कि वह सर्वदा दान कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा न करे दैवकर्म में तथा पितरों के कर्म में ब्राह्मणों की परीक्षा सुनी जाती है। सभी समस्त वेदों के व्रती अर्थात् वेदाभ्यास परायण, वेदों के पारगामी, पंक्ति पावन, भाष्य के जाननेवाले, मुख्यतः व्याकरण वेत्ता, पुराणों और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में निरत रहनेवाले, नचिकेता की तीनों विद्याओं के अध्येता, पंचाग्नि के उपासक, वेदों के छहों अंगों के जाननेवाले, त्रिसुपर्ण, ब्रह्मज्ञानियों का पुत्र, छन्दोग, ज्येष्ठसाम को जाननेवाले, जितने भी पुण्य तीर्थ हैं, उनमें व्रतोपरान्त अभिषेक करनेवाले, मुख्य-मुख्य यज्ञों में अवभृथ स्नान करनेवाले, शीघ्र ही किसी व्रत से निवृत्त होंनेवाले, अपने-अपने कर्मों में निरत रहनेवाले, क्रोधरहित, तथा शान्तिपरायण जो ब्राह्मण हों उन्हें श्राद्ध में निमंत्रित करना चाहिये। जो सर्वदा दसों शुभ कर्मों में व्यवस्थित रहकर जीवन यापन करनेवाले हैं तथा अपने कर्मों में निरत रहते हैं, उन्हें श्राद्ध में निमंत्रित करना चाहिये। इन सत्पात्रों में दिया गया दान अक्षय फलदायी होता है—ये उपर्युक्त ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं। जो योगधर्म में अनुरक्ति एवं श्रद्धा रखनेवाले ब्राह्मण हैं, वे वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा माननेवाली सभी जातियों में श्रेष्ठ हैं, और हव्य कव्य—सभी कार्यों में श्रेष्ठ हैं। जिसने ऐसे ब्राह्मणों की पूजा की, उसने ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों देवताओं की पूजा की। जो मनुष्य ऐसे सर्वगुण सम्पन्न ब्राह्मणों की पूजा करता है, वह पितरों के साथ समस्त लोकों की पूजा करता है। योगधर्म सभी पवित्र पदार्थों से अधिक पवित्र एवं सभी मंगलदायी वस्तुओं से अधिक मंगलदायी है। सभी धर्मों में वह प्रथम कहा गया है। अब इसके उपरान्त जो अपंक्तिपावन ब्राह्मण हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। धूर्त, शराबी, यक्ष्मारोग ग्रस्त, पशुओं की पालना करनेवाला, कुरूप, ग्राम में दूत या सेवक का काम करनेवाला, व्याज से जीविका चलानेवाला, गायक, व्यवसायी, किसी का स्थान जलानेवाला, विष देनेवाला, छिनाले से उत्पन्न होनेवालों का अन्न खानेवाला, सोमरस का विक्रय करनेवाला, समुद्रयात्रा करनेवाला, दुष्ट चमड़े वाला, तेल का व्यवसायी, कूटनीतिज्ञ, पिता के साथ विवाद करनेवाला, जिसके घर में कोई दूसरा गृहस्वामी हो, लम्पट, चोर, शिल्पजीवी, चुगुलखोर, धन के लोभ से विना पर्व के ही अमावास्या आदि पर्वों के दिन सम्पन्न होनेवाली सत्क्रियाओं का अनुष्ठान करनेवाला, मित्रों के साथ द्रोह करनेवाला, समूह बनाकर याचना करनेवाला, नास्तिक, वेदविहीन, उन्मत्त, हिजड़ा, दुष्ट प्रकृतिवाला, गर्भहत्या करनेवाला, गुरु की शय्या पर शयन करनेवाला, वैद्यक से जीविका चलानेवाला, दूत का कर्म करनेवाला, परस्त्रीगामी, जो ब्रह्म, (विद्या) व्रत एवं तपस्या को बेंचता है, इन सबको दान करने से दान का समस्त फल नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार नास्तिक, कृतघ्न, एवं निन्दक को दान करने से फल का नाश हो जाता है। वाणिज्य व्यवसाय में लगे हुए ब्राह्मण को जो कुछ दिया जाता है वह न तो इस लोक में फल

Funding by IKS-MoE

देता है न पर लोक में। दूसरे के रखे हुए निःक्षेप (गिरवी) को ले लेनेवाले धूर्त एवं वेदनिन्दक को दिये गये दान का भी यही फल होता है। वाणिज्य कर्म में प्रवृत्त, कारीगर, धर्महीन, एवं ऐसे लोग जो दूसरे की अच्छी वस्तु की खरीदते समय निन्दा करते हों और अपनी खराब वस्तु की बेचते समय प्रशंसा करते हों—इन सबों को भी दान देने से यही फल होता है। इसी प्रकार मिथ्या भाषण करनेवाला वणिक् व्यवसाय में प्रवृत्त द्विज भी श्राद्ध के योग्य नहीं है। पौनर्भव[1] ब्राह्मण को दिया गया दान भस्म (राख) पर दी गई आहुति के समान व्यर्थ है। काना व्यक्ति साठ, नपुंसक सौ, श्वेतकुष्ठ ग्रसित जितने भी कर्मों को देखता है, तथा पाप के कारण रोगी, एक सहस्र दाता के सत्कर्मों के फलों को नष्ट कर देता है। मूर्ख व्यक्ति को दान करनेवाला शुभकर्म फलों से वंचित हो जाता है। जो शिर को बाँधकर भोजन करता है, जो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके भोजन करता है. जो जूता पहिनकर भोजन करता है, जो तिरस्कार पूर्वक दान करता है, उनके समस्त कर्मों के फल को भगवान् ब्रह्मा असुरेन्द्रों के लिए कल्पित करते हैं। श्राद्ध के सम्पन्न होते समय उसे श्वान और यातुधान किसी प्रकार भी न देखने पावें, इसके लिए चारों तरफ से ओट करने के लिए परदा लगा देना चाहिये और चारों ओर तिलों का विकिरण करना चाहिये। राक्षसों को निवारित करने के लिए तिल और कुत्तों को निवारित करने के लिए परदा या दूसरे किसी प्रकार का घेरा बना देने की बात कही जाती है। शूकर केवल देख लेने से ही श्राद्ध के फल को नष्ट कर देता है, मुरगा अपने पंखों के फड़फड़ाने से उसके फल को नष्ट कर देता है, रजस्वला स्त्री के स्पर्श से तथा क्रोध पूर्वक दान करने से श्राद्ध के फलों का विनाश हो जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति अपने द्वारा किये जानेवाले श्राद्ध के कार्यों को अथवा हवनादि को मित्रों द्वारा सम्पन्न कराता है, उसके कार्य पितरों और देवताओं को सन्तुष्ट नहीं करते और वह स्वर्गलोक को नहीं जाता। ॥५१–७५॥

सुरम्य नदियों के किनारों पर छोटी-छोटी सरिताओं एवं सरोवरों के मनोहर एकान्त तट पर, किये गये श्राद्धादि कार्य से पितामहगण तृप्त होते हैं। श्राद्ध करते समय न तो कभी आँसू गिराना चाहिये न किसी साधारण बात-चीत में सम्मिलित होना चाहिये, न भोजन करते हुए ही श्राद्ध करना चाहिये, एक दूसरे के प्रति मत्सर अथवा ईर्ष्याभाव भी नहीं प्रकट करना चाहिये। अपसव्य होकर विधिपूर्वक हाथ में कुशा लेकर अपने जीवन पर्यन्त मनुष्य को पितरों का श्राद्धादि कार्य सम्पन्न करना चाहिये। इस प्रकार श्राद्ध के करने से पितरगणों की तृप्ति होती है। सर्वप्रथम (गुरुजनों या ब्राह्मणों की) अनुमति प्राप्तकर अग्नि में विधिपूर्वक आहुति करे। पितरों के उद्देश से दिया जानेवाला पदार्थ पृथ्वी पर, सूप पर अथवा कुश के बिछावन पर रखना चाहिये। बुद्धिमान पुरुष शुक्लपक्ष में दिन के प्रथमार्ध में श्राद्ध सम्पन्न करे, और कृष्णपक्ष में उनके उत्तरार्द्ध में करे, रोहिण[2] का उल्लंघन नहीं करना चाहिये देश और काल के देखनेवाले, महान् तेजस्वी,

---

[1] पति से परित्यक्त अथवा विधवा यदि अपनी इच्छा से परपुरुष द्वारा पुत्र उत्पन्न करती है तो वह पौनर्भव कहा जाता है।

[2] पन्द्रह भागों में विभक्त दिन का नवाँ भाग।

Funding by IKS-MoE

महान् योगी एवं परम महात्मा उन पितरों की सर्वदा पूजा करनी चाहिये। पितरों में भक्ति रखनेवाला मनुष्य सर्वदा श्रेष्ठ योग की सिद्धि प्राप्त करता है। पितरों का ध्यान करने से वे अपने शुभाशुभ कर्म बन्धनों से छुटकारा पाकर मोक्ष की प्राप्ति करते हैं। महात्मा कश्यप ने जगत् को मोहित करके यज्ञ के लिए जिस योग का उद्धारकर गुफा में सुरक्षित रखा था, हे योग जाननेवालों में प्रवीण ! उस अमरत्व पूर्ण, परमगोपनीय चिरन्तन एवं परम महान् योगधर्म को सनत्कुमार ने प्रकाशित किया। उस देवताओं की परमगोपनीय, ऋषियों की सर्वस्व योग सम्पत्ति को पितरों में भक्ति रखनेवाले मानव पितरों में भक्ति रखकर नित्य ही प्राप्त करते हैं। संक्षेप में उस योग की प्राप्ति पितृभक्त लोग अपने प्रयत्न से सर्वांशतः प्राप्त कर लेते हैं—इसमें सन्देह नहीं है। जिसे श्राद्ध देना चाहिये, जिस वस्तु के देने से महान् फल की प्राप्ति होती है, जिन तीर्थों अथवा नदियों में किये गये श्राद्ध का अक्षय फल होता है, जिन तीर्थों में करने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है—उन सब को मैं तुम से संग्रहपूर्वक बतला चुका। ॥७६–८७॥

बृहस्पति ने कहा—इस प्रकार श्राद्ध विषयक चर्या एवं उसकी विधियों को सुनकर जो मनुष्य दोष दृष्टि से देखकर उनमें अश्रद्धा करता है, वह नास्तिक अन्धकार से चारों ओर घिर कर घोर नरक में गिरता है। जो मन को संयत रखकर श्राद्धकर्म सम्पन्न करते हैं, उनके भीषण रोगों का विनाश होता है। वेदों में वर्णित आश्रमों से मुक्त होकर मन माने ढंग से जीवन यापन करनेवाले कुम्भीक नरक में जाते हैं। जिह्वा के छेदन एवं चौर्य कर्म को वे प्राप्त होते हैं। जो योग के द्वेष करनेवाले हैं, वे समुद्र में ढेला होकर तब तक निवास करते हैं जब तक इस पृथ्वी की अवस्थिति रहती है। इस लिए श्राद्ध में ऊपर बतलाये गये इन श्राद्ध नियमों का श्रद्धापूर्वक मनुष्यों को सर्वदा पालन करना चाहिये। विशेषतया योगियों की निन्दा तो नहीं ही करनी चाहिये, योगियों की निन्दा करने से वहीं पर कृमि होकर जन्म धारण करना पड़ता है। ध्यान परायण योगियों के अन्यतम लक्ष्य मोक्ष के मुख्य साधन योग की जो निन्दा करता है, वह घोर नरक में जाता है, उस निन्दा को सुननेवाला भी घोर नरक में जाता है—इसमें सन्देह नहीं। योग परायण योगेश्वरों की निन्दा करने से मनुष्य चारों ओर से अन्धकार से आच्छन्न, परम घोर दिखाई पड़नेवाले नरक में निश्चय ही जाता है। आत्मा को वश में रखनेवाले योगेश्वरों की निन्दा जो मनुष्य सुनता है, वह चिरकाल पर्यन्त कुम्भीपाक नरक में निवास करता है—इसमें सन्देह नहीं। योगियों के प्रति द्वेष की भावना मनसा, वाचा, कर्मणा—सर्वथा वर्जित रखनी चाहिये। इस सत्कर्म का फल वह दूसरे जन्म में भोगता है, और इस जन्म में भी भोगता है—इसमें सन्देह नहीं ॥॥८८—९५॥

योग मार्ग के पारंगत आत्मा के पार को नहीं प्राप्त होते (?) अपने कर्म के अनुसार वे तीनों लोकों में विचरण करते हैं। ऋक्, यजु और सामवेद तथा इनके समस्त अंगों के पारंगत इस प्रकार विकारों को न प्राप्त होकर आनन्द का अनुभव करते हैं। समस्त विकारों के पार जानेवाले, प्रकृति के पारगामी, सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों के पारगामी वास्तव में तीनों गुणों के पारगामी हैं। जो योगमार्ग एवं चौबीस तत्त्वों के पारगामी हैं, वे ही वास्तव में इस जन्म मरण रूप संसृति सम्बन्ध के पारगामी हैं। जिस प्रकार योगी निखिल

योग तत्त्वों को अपने योग बल द्वारा विसर्जित करता है, उसी प्रकार सर्वदा अपना विनाश भी संघटित करता है, इस प्रकार योग के तत्त्वों को भली भाँति जाननेवाला योगी, सब से परे जिसकी गति है, ऐसे परम पुरुष के गोचर होता है, अर्थात् योगी योग का आश्रय लेकर शरीर त्याग करते हैं और आत्म सारूप्य प्राप्त करते हैं। योग के तत्त्वों को जाननेवाला जो पुरुष वेदों का सम्यक् अध्ययन कर वेदों के वेद्य (जाननेयोग्य) उस परम पुरुष को प्राप्त करता है, उसे ही वास्तव में वेदों का तत्त्व वेत्ता और वेदों का पारगामी कहा जाता है। जो वेदों के चरम प्रतिपाद्य उस परम पुरुष को भली भाँति जानता है, वही वास्तव में वेदों के तत्त्वों को जाननेवाला है, दूसरे सब वेदचिन्तक हैं। पितरों में भक्ति रखनेवाला समस्त यज्ञों, समस्त वेदों, समस्त मनोरथों विविध ज्ञान विज्ञान, दीर्घायु, प्रचुर सम्पत्ति एवं पुत्र पौत्रादिकों सब को प्राप्त करता है। श्राद्ध के अवसर पर जो मनुष्य इस श्राद्धकल्प का सावधान चित्त होकर पाठ करता है, वह पूर्व कथित समस्त फलों को तथा तीर्थ में दिये गये दानों के फलों को प्राप्त करता है। वह पवित्रात्मा पुरुष पंक्तिपावन तथा ब्राह्मण समाज में सर्वप्रथम भोजन करनेवाला होता है। अथवा समस्त ब्राह्मण समाज को विद्याहीन करके अपने समस्त मनोरथ को प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस श्राद्ध के माहात्म्य को नित्य श्रद्धाभाव से, क्रोध को वश में रख, लोभ आदि से रहित होकर श्रवण करता है वह अनन्त काल पर्यन्त स्वर्ग भोगता है। समस्त तीर्थों एवं दानों के फलों को वह प्राप्त करता है, यह मोक्ष का सब से श्रेष्ठ उपाय है स्वर्ग प्राप्ति के लिये इससे बढ़कर सरल उपाय कोई दूसरा नहीं है। इस लोक में इसके द्वारा परम संतोष की प्राप्ति होती है—अतः यत्नपूर्वक इसका अनुष्ठान करना चाहिये। आलस्य रहित होकर पर्व सन्धियों में जो व्यक्ति इस श्राद्धविधि का पाठ सावधानी पूर्वक सभा आदि में करता है, वह परम तेजस्वी मनुष्य संततिवान् होता है, और देवताओं के समान उसे पवित्र लोक की प्राप्ति होती है। जिस अजन्मा भगवान् स्वयम्भू ने श्राद्ध की पुनीत विधि बतलाई है, उसे हम नमस्कार करते हैं। महान् योगेश्वरों के चरणों में हम सर्वदा प्रणाम करते हैं। हे तात! ये पितरगण देवताओं के भी देवता हैं, वे नाश हीन पितरगण इन सात स्थानों में नित्य निवास करते हैं। वे सब परम महात्मा तथा प्रजापति के पुत्र हैं, इनका सर्वप्रथम गण योगियों का है, अतः वे नित्य योगवर्धन के नाम से विख्यात हैं। द्वितीय गण देवताओं का, तृतीय देवताओं के शत्रुओं का, शेष अन्य वर्णियों के हैं—इन सबों का वर्णन कर चुका। इन सब लोकों में अवस्थित रहकर देवगण इन सबों की पूजा करते हैं। चारों आश्रम में निवास करनेवाले क्रमपूर्वक इनकी पूजा करते हैं, चारों वर्ण के लोग भी इन सबों की विधिपूर्वक पूजा करते हैं, इसी प्रकार समस्त म्लेच्छ जातिवाले और संकरवर्ण भी उन सबों की पूजा करते हैं। जो भक्ति पूर्वक इन पितरों की पूजा करता है, उसकी पूजा पितरगण स्वयं करते हैं, पुष्टि एवं पूजा की कामना करनेवाले को ये पितामहादि पितरगण सब प्रकार से पुष्टि, प्रजाएँ और स्वर्ग प्रदान करते हैं। पुत्र के लिए पितरों का कार्य देवकार्य की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है, देवताओं से पूर्व पितरों को सन्तुष्ट करने की बात कही जाती है। पितरों की परम सूक्ष्म योगगति उत्कृष्ट तपस्या के प्रभाव से वंचित मांस के नेत्रों से नहीं दिखाई पड़ती अर्थात् उसे देखने के लिये परम कठोर तप की आवश्यकता है। समस्त देवताओं और पितरों के लिए चाँदी का पात्र विहित है,

Funding by IKS-MoE

अभाव में चाँदी से समन्वित (मढ़ा हुआ) होना चाहिये। ऐसे पात्र इनके कार्यों में परम पुनीत कहे जाते हैं। जिन के परिवारवर्ग के लोग नाम और गोत्र का उच्चारण कर विधिपूर्वक अपसव्य होकर कुश बिछी हुई भूमि पर तीन पिण्डदान करते हैं, उनके वे तीनों पिण्ड सर्वत्र वर्तमान रहनेवाले पितरों को प्रसन्न करते हैं। जन्तु (मनुष्य) जो आहार करता है, वही आहार उसके पितर का होना चाहिये। जिस प्रकार चरागाह में सैकड़ों गौओं में छिपी हुई अपनी माता को बछड़ा पा जाता है, उसी प्रकार श्राद्धकर्म में दिये गये पदार्थों को मंत्र वहाँ पर पहुँचा देता है, जहाँ वह जीव अवस्थित रहता है। पितरों के नाम, गोत्र और मंत्र श्राद्ध में दिये गये अन्न को उसके पास ले जाते हैं, चाहे वे सैकड़ों योनियों में क्यों न गये हों, पर श्राद्ध के अन्नादि से उनकी तृप्ति होती है। परमेष्ठी पितामह ब्रह्मा ने इसी प्रकार की श्राद्ध की मर्यादा स्थिर की है, अक्षय लाभ की प्राप्ति के अभिलाषी लोगों के लिए पितरों की यह आदि सृष्टि हुई। ये पितरगण ही देवस्वरूप हैं और देवगण ही पितर स्वरूप हैं। हे निष्पाप ऋषिगण, दौहित्र (नाती) गण उन पितरों के यजमान हैं। समस्त लोक उनकी पुत्री, नाती और पुत्र के रूप में है। श्राद्धकर्म में पवित्रता, दान, तीर्थ, फल, अक्षय फल प्राप्ति, द्विज गण, पर्यटन विधि आदि सभी आवश्यक विषयों की चर्चा पूर्वकाल में ब्रह्माजी ने जिस प्रकार की थी, उन सब विधि को मैं आप लोगों से बतला चुका। ॥८८—१२४॥

बृहस्पति ने कहा:—प्राचीन काल में ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर महर्षि अंगिरा ने पितरों के विषय में समस्त संशयात्मक बातों की चर्चा एक सभा में की थी। ऐसा सुना जाता है कि पूर्व समय में एक सहस्र वर्ष तक चलनेवाला महायज्ञ सम्पन्न हुआ था, जिसमें गृहपति होकर भगवान् ब्रह्मा पाँच सौ वर्षों तक देवताओं पर प्रभुत्त्व स्थापित किये रहे। ब्रह्मवेत्ता गण इस विषय में कुछ श्लोक गाते हैं (जिसका आशय निम्न प्रकार है) उस महान् यज्ञ में परमात्मा परमेष्ठी भगवान् ब्रह्मा के दीक्षित होने पर उन्हीं से समस्त लोकों के कल्याणार्थ, अक्षय लाभ के प्रार्थी पितरों का उत्तम जन्म वहीं पर सम्पन्न हुआ। ॥१२५—१२८॥

सूत बोले:—अपने बुद्धिमान पुत्र के पूछने पर इस प्रकार पूर्व काल में बृहस्पति ने पितरों के वंश का जो वर्णन किया था, वही मैंने आप लोगों को बतलाया। अब इसके उपरान्त मैं वरुण के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। सुनिये। ॥१२९॥

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्ते श्राद्धकल्पे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥८३॥

चौरासीवाँ अध्याय

श्राद्ध विधि के प्रसंग में वरुण के वंश का वर्णन

सूत के ऐसा कहने पर ऋषिगण परम हर्षित हुए और पुनः जिज्ञासा भाव से उनसे पूछा ॥१॥

ऋषियों ने कहा:—अमित तेजस्वी राजाओं के वंशों का क्रमपूर्वक वर्णन, उनकी स्थिति

एवं उनके प्रभाव को हम लोग सुनना चाहते हैं, बतलाइये। लोमहर्षण सूतजी, जो समस्त श्रोता ऋषियों के उत्तर देने में परम प्रवीण सुन्दर वाक्यों के बोलने में सुनिपुण, एवं प्राचीन आख्यानों के कुशल वक्ता थे, ऋषि के इस प्रकार पूछने पर पुनः बोले। ॥२--३॥

सूत ने कहाः--ऋषि ने इस विषय में जो कुछ मुझसे बतलाया है उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। अमित तेजस्वी राजाओं के वंश उनकी स्थिति, एवं उनके प्रभाव का वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। वरुण की पत्नी सामुद्री थीं जो शुना देवी के नाम से पुकारी जाती हैं, उनके कलि और वैद्य नामक दो पुत्र हुए, एक पुत्री सुर सुन्दरी नामक हुई। कलि के दो महा बलवान् पुत्र जय और विजय नामक हुए। वैद्य के घृणि और मुनि नामक दो महा बलवान् पुत्र हुए। प्रजाओं के भक्षण करने को उत्सुक वे दोनों एक दूसरे को भक्षण करने को उद्यत हुए। और एक दूसरे को भक्षण कर विनाश को भी प्राप्त हुए। सुरा (शुना ?) के गर्भ से कलि की उत्पत्ति हुई, उसके पुत्र का नाम मद कहा जाता है। त्वष्टा की पुत्री हिंसा कलि की स्त्री थी, जो ज्येष्ठ स्त्री थी, उसका नाम निकृति कहा जाता है। उसने कलि के संयोग से जिन चार मनुष्य भक्षी पुत्रों को उत्पन्न किया, उनके नाम नाक, विघ्न, सत्रम और विधम थे। अगले दोनों पुत्रों में विघ्न नामक जो पुत्र था, वह शिर विहीन था, नाक अशरीरी था। सद्रम को केवल एक हाथ था, और विधम एक पैर वाला कहा जाता था। सद्रम की पत्नी परम तमोगुण मयी पूतना नाम से विख्यात थी, विधम की पत्नी रेवती थी, इन दोनों के सहस्रों पुत्र थे। नाक की पत्नी का नाम शकुनि और विघ्न की पत्नी का नाम अयोमुखी था, जिनके बड़े-बड़े भीषण शिर वाले राक्षस उत्पन्न हुए, जो दोनों सन्ध्याओं में विचरण करते रहते थे। रेवती और पूतना के पुत्र नैऋर्त नाम से विख्यात थे। ये समस्त राक्षस ग्रह रूप में लोगों को विशेषतया बालकों को कष्ट पहुँचाते थे। ब्रह्मा की आज्ञा से इन सबों के स्वामी स्कन्द (स्वामी कीर्तिकेय) हुए। असक्त भाव से समस्त जगत् में सर्वदा विचरण करनेवाली ब्रह्मचारिणी एवं परम सुन्दरी योगसिद्धा नामक बृहस्पति की जो भगिनी थीं, वह आठवें वसु प्रभास की भार्या थीं। उसके पुत्र शिल्पियों के प्रजापति (स्रष्टा) विश्वकर्मा हुए। धर्म के पौत्र उदार बुद्धि विश्वकर्मा परम सुन्दर आकृति से सुशोभित थे, देवताओं के सहस्रों शिल्प कर्मों के वे करनेवाले तथा वास्तु विज्ञान के वेत्ता थे। उन्होंने समस्त देवताओं के विमानों (उड़ने वाले रथों) की रचना की थी। उन्हीं परम महात्मा द्वारा प्रचालित शिल्प कर्म के आश्रय से मनुष्य लोग आज भी अपनी जीविका चलाते हैं। उन विश्वकर्मा की पत्नी विरोचना थी, जो प्रह्लादी नाम से भी विख्यात थीं, वे विरोचन की भगिनी और त्रिशिरा की माता थीं। परम बुद्धिमान विश्वकर्मा देवताओं में शिल्पकर्म में के आचार्य थे, उनका पुत्र मय भी उसी प्रकार शिल्प कर्म में निपुण होने के कारण विश्वकर्मा नाम से विख्यात हुआ। उस मयकी छोटी बहिन, विश्वकर्मा की पुत्री सुरेणु नाम से विख्यात थी, जो संज्ञा नाम से सूर्य की पत्नी हुई। उसने अपने परम तपोबल द्वारा सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र मनु को उत्पन्न किया। तदनन्तर उसने यम नामक पुत्र और यमुना नाम की एक पुत्री--दोनों को जुड़वाँ उत्पन्न किया। फिर उस देवी ने कुरु देश में जाकर वडवा (घोड़ी) का रूप धारण किया और अश्वरूप धारण करनेवाले सूर्य के संयोग से आकाश में

अपनी नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा वासत्य और दस्र नामक दो पुत्रों को उत्पन्न किया, जो दोनों मार्तण्ड (सूर्य के पुत्र) कहे जाते हैं, ऐसी प्रसिद्धि है । ॥४--२४॥

ऋषियों ने पूछा—पण्डित लोग सूर्य को मार्तण्ड किस लिए कहा करते हैं, किस कारणवश संज्ञा ने बडवा का रूप धारण किया और किस प्रकार अपनी नासिका के छिद्रों से पुत्र उत्पन्न किया—इस बात को हम लोग सुनना चाहते हैं—विस्तारपूर्वक बतलाइये । ॥२५॥

सूतजी ने कहा—प्राचीनकाल में सूर्य देव एक अण्डे के रूप में उत्पन्न हुए थे, बहुत दिनों तक जब वह अण्डा फूटा नहीं, तब उसे विश्वकर्मा ने फोड़ दिया । उस अण्डे को फोड़ते देख गर्भ हत्या के भय से भीत होकर कश्यप जी बहुत दुःखी हुए । और उस अण्डे को दो भागों में फूटा देख विश्वकर्मा से बोले, 'यह सामान्य अंडा नहीं है,' फिर उस अण्डस्थ जीव से बोले । 'हे निष्पाप ! इस मरे हुए अण्डे से तुम पुनः उत्पन्न हो । निश्चय ही यह अण्डस्थ प्राणी मृत नहीं हुआ है'—इतनी बातें स्नेहपूर्वक पिता ने कहीं । कश्यप की इतनी बातें सुनकर मार्तण्ड (मरे हुए अण्डे से उत्पन्न होना) नाम की सार्थकता बतलाई जाती है । पिता ने अण्डे के दो भागों में विभक्त हो जाने पर भी जो 'मार्तण्ड हो जाओ'—ऐसी बातें कही थीं, उसी के आधार पर पुराणों के जाननेवाले सूर्य को मार्तण्ड कहते हैं । अब इसके बाद उस मृत अण्डे से उत्पन्न होनेवाले सूर्य की संततियों का वर्णन कर रहा हूँ । बहुत दिन बीते, उन सूर्य की संज्ञा नामक पत्नी में तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे । संज्ञा में उक्त दोनों अश्विनी कुमार और उनसे छोटे सावर्णि मनु नामक पुत्र हुए थे । तदनन्तर शनैश्चर हुए, ये सात (?) मार्तण्ड के आत्मज कहे जाते हैं । महान् यशस्वी विवस्वान् दाक्षायणी में महर्षि कश्यप के संयोग से उत्पन्न हुए थे । उनकी पत्नी विश्वकर्मा की पुत्री महादेवी सुरेणु थीं, जो संज्ञा नाम से भी विख्यात थीं । अमित तेजस्वी भगवान् मार्तण्ड की पत्नी, परमरूपवती एवं यौवनवती सुरेणु देवी की सन्तुष्टि पतिरूप में उनसे नहीं होती थी । प्रचुर तेज से देदीप्यमान अदितिपुत्र मार्तण्ड के उस शरीर को अपने अंगों में वह नहीं सहन कर पाती थीं, अतः वह परम मनोहर नहीं लगते थे । यतः कश्यप ने स्नेह पूर्वक विना जाने बूझे ही यह कहा था कि 'इस अण्डे में अवस्थित ये निश्चय ही मरे नहीं हैं, अतः उससे उत्पन्न होने के कारण वे मार्तण्ड नाम पुकारे जाते हैं । उन कश्यपनन्दन मार्तण्ड का तेज नित्य अधिकाधिक बढ़ने लगा । जिसके द्वारा उन्होंने तीनों लोकों को खूब तपाया । उन्होंने संज्ञा नामक अपनी पत्नी में तीन सन्ततियाँ उत्पन्न कीं, जिनमें दो महाबलशाली पुत्र थे, तीसरी कालिन्दी नामक कन्या थी । सूर्य के ज्येष्ठ पुत्र श्राद्धदेव प्रजापति मनु थे उनसे छोटे यमराज और यमी—ये दोनों जुड़वा उत्पन्न हुए । विवस्वान् (सूर्य) के उस परम तेजोमय रूप एवं चमकनेवाले वर्ण को देखकर संज्ञा उसे सहन करने में असमर्थ हुई, और अपनी ही भाँति अपना एक प्रतिबिम्ब निर्माण किया । तदनन्तर मिट्टी की बनी हुई और उसी के समान सुन्दरी वह नारी हाथ जोड़कर विनम्रभाव से उसके सम्मुख उपस्थित हुई और फिर संज्ञा से बोली । 'बतलाइये, मैं क्या करूँ ?' संज्ञा ने उससे कहा, भद्रे ! मैं अपने पिता के घर जा रही हूँ, तुम विना किसी शंका के मेरे इस घर में निवास करो । ये दो मेरे बालक और यह एक सुन्दरी कन्या है, (इनकी देखरेख करना) इस भेद

की बात को कभी भी हमारे तेजस्वी पतिदेव से मत कहना।' संज्ञा के ऐसा कहने पर उस मृण्मयी संज्ञा ने कहा, 'हे देवि! शिर के केशों के पकड़े जाने तक तो मैं इस तुम्हारे गुप्त भेद की चर्चा कभी भी किसी से भी नहीं करूँगी, तुम अपने अभीष्ट स्थान को जाओ। इस प्रकार अपनी छाया रूपिणी नारी से ऐसी बातें कर अपने पिता विश्वकर्मा के पास वह तपस्विनी बड़ी लज्जा के साथ प्रस्थित हुई। अपने घर पर आई हुई संज्ञा को देखकर पिता (विश्वकर्मा) परम क्रुद्ध होकर बोले, 'तुम अपने पति के पास जाओ, दिवाकर के प्रति अपने मन में किसी प्रकार की घृणित भावना मत करो।' पिता के ऐसा कहने पर, और बारम्बार आग्रहपूर्वक कहने पर भी वह एक सहस्रवर्षों तक अपने पिता के घर में ही निवास करती रही। 'तुम अपने पति के पास चली जाओ—ऐसा बारम्बार के कहने पर उस अनिन्दनीय चरित्रशालिनी ने अपने स्वरूप को छिपाने के लिए वडवा का रूप धारण किया और पिता के घर से प्रस्थान किया। उत्तर कुरु प्रदेश में जाकर तृणों को चर कर जीविका चलाने लगी। इधर उस नकली संज्ञा में सूर्य ने असली संज्ञा की भावना से दो अपने ही समान परम तेजस्वी पुत्रों को उत्पन्न किया। वे दोनों पुत्र भी अपने बड़े भाई मनु के समान ही स्वरूपवान् थे, उनकी भी उसी प्रकार प्रभुता थी। उन दोनों पुत्रों के नाम श्रुतश्रवा और श्रुतकर्मा थे, जो परमधर्मज्ञ थे। इनमें श्रुतश्रवा नामक जो पुत्र था, वह भी भविष्य में सावर्णि मनु नाम से प्रसिद्ध होगा, श्रुतकर्मा नामक जो दूसरा पुत्र था, उसे शनैश्चर ग्रह नाम से जानिये। वह भी मनु होगा और सावर्ण नाम से विख्यात होगा। वह मृण्मयी संज्ञा अपने पुत्र को बहुत अधिक स्नेह करती थी, उतना प्रेम भाव उन बड़ी सन्ततियों में नहीं रखती थी। उसके इस मनोभाव को मनु सब प्रकार से सहन कर लेते थे, पर यमराज को यह कतई नापसन्द था। 'सपत्नी (सौत) के पुत्र होने के कारण जब अपमान की मात्रा बहुत अधिक हो गई तो वे अतिशय दुःखित हुए। एक दिन बाल स्वभाव वश अथवा भावी वश अतिशय क्रुद्ध होकर सूर्य पुत्र यमराज ने संज्ञा को अपने पैर से ठोकर लगा दी। समान वर्णवाली माता ने इस दुर्व्यवहार से अतिशय क्रुद्ध होकर यमराज को यह शाप दे दिया। 'यतः अपने पिता की स्त्री (माता) को, जो अपने सात्त्विक बल से परम यशस्विनी है, पैर से ठोकर मार रहे हो, अतः तुम्हारा यह पैर गिर पड़ेगा—इसमें सन्देह नहीं।' माता के इस शाप से मन में अतिशय दुःखित होकर धर्मात्मा यमराज बहुत क्षुब्ध हुए और मनु को साथ लेकर पिता से सारी बातें ज्यों का त्यों बतला दीं। कहा, हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ! लोकेश! संज्ञा (माता) की बातों से हम एकदम हतप्रभ हो गये हैं, उसके शाप के भय से हम संत्रस्त हैं, अपने लड़कपन के कारण अथवा अज्ञान के कारण हमने यह अपराध किया है, पर फिर भी आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये। हे तात! माता ने हमें ऐसा भीषण शाप दे दिया है, इस महान् भय से हमारी रक्षा केवल आपकी कृपा से ही हो सकती है। यमराज के ऐसा कहने पर सूर्य बोले:—हे पुत्र! इस दुर्घटना में अवश्य ही कोई महान् कारण है, जो तुम्हारे जैसे सत्यवादी एवं धर्मात्मा के मन में क्रोध का संचार हुआ, किन्तु तुम्हारी माता के इस शापवचन को निष्फल करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है। तुम्हारे माँस को लेकर जब कृमि पृथ्वीतल पर जायँगे, हे परमबुद्धिमान! तब तुम पुनः अपने पैर को बिना अभ्यास के ही सुख पूर्वक प्राप्त करोगे। ऐसा

करने पर तुम्हारी माता के वचन भी सत्य रह जायँगे और शाप के परिहार हो जाने से तुम्हारी भी रक्षा हो जायगी।' यमराज से ऐसा कहने के अनन्तर आदित्य ने संज्ञा से कहा, सभी पुत्रों के समान होने पर भी तुम एक पुत्र में बहुत अधिक स्नेह क्यों करती हो ? संज्ञा ने उस गुप्त भेद को छिपाने की इच्छा से सूर्य की इन बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। तब सूर्य ने अपने योगबल एवं समाधि द्वारा वास्तविक स्थिति का पता लगाया। और सब बातें जानकर उन परम तेजस्वी भास्कर ने संज्ञा का विनाश करने के विचार से शाप देने का निश्चय किया, तब भयभीत होकर संज्ञा ने सूर्य से सारी बातें यथा तथ्य रूप में प्रकट कर दीं। उस मृण्मयी छाया द्वारा सारी बातें अवगत कर सूर्य परम क्रुद्ध हुए और उसी क्रोधावेश में विश्वकर्मा के पास पहुँचे। विश्वकर्मा ने सूर्य का समुचित सत्कार एवं पूजन किया और क्रोध से भस्म करने को उद्यत भास्कर को धीरे-धीरे सान्त्वना देते हुए प्रकृतिस्थ किया। तब कहा, परम तेजोमय होने के कारण तुम्हारा यह रूप शोभा नहीं देता, इस प्रखर स्वरूप को सहन करने में अपने को असमर्थ पाकर संज्ञा अब हरे भरे घास के मैदान में चर रही है। अपनी उस शुभमार्गगामिनी, स्वरूपवती, यौवनशालिनी, प्रशंसनीय गुणोंवाली पत्नी को आप आज देखेंगे, शर्त यही है कि आप हमारी सम्मति अंगीकार करें और जैसा हम कहें वैसा करें। हे शत्रुओं को वश में करने वाले ! तुम्हारे इस श्रेष्ठ तेजोमय पूर्वरूप को हम परिवर्तित करना चाहते हैं। उस समय सूर्य का तेजोमय स्वरूप तिरछा, ऊँचा और नीचा था, अर्थात् उनकी किरणें तिरछे, ऊँचे, नीचे सर्वत्र प्रखर तेजोमयी थीं। अपने उक्त रूप की चर्चा से दिनकर देव लज्जित हुए। अपने जिस प्रसिद्ध चक्र से सूर्य के रूप-परिवर्तन की चर्चा महा तपस्वी विश्वकर्मा ने की थी, उस चक्र को बहुत सम्मान से देखा। सूर्य से रूप परिवर्तन की आज्ञा प्राप्तकर विश्वकर्मा मार्तण्ड के सम्मुख सचक्र उपस्थित हुए और अपने उस चक्र (शान) पर रखकर उनके तेज को खराद दिया। चक्र द्वारा तेज की प्रखरता के खराद देने पर सूर्य का शेष तेज परम सुशोभित हुआ। और देखने में पहिले जो अच्छा नहीं लगता था वही सुन्दर से भी सुन्दरतर दिखाई पड़ने लगा। तदनन्तर सूर्य ने योगबल द्वारा वडवारूप धारिणी अपनी स्त्री को देखा। उस समय वह अपने तेज एवं नियमों के कारण सभी जीवों से अदृश्य थी। उसे देख मार्तण्ड ने अश्व का रूप धारण किया और मुख की ओर से काम भावना प्रकट की। काम चेष्टा करने पर संज्ञा ने पराये पुरुष की शंका से सूर्य के वीर्य को अपनी नासिका के दोनों छिद्रों द्वारा बाहर गिरा दिया। उस बाहर गिराये हुए सूर्य के वीर्य से परम वैद्य दोनों अश्विनीकुमारों की उत्पत्ति हुई, जो दिव्य गुण सम्पन्न थे। वे दोनों अश्विनीकुमार नासत्य और दस्र नाम से विख्यात हैं। ये दोनों आठवें प्रजापति मार्तण्ड के पुत्र कहे जाते हैं। तदनन्तर अपने मनोहर स्वरूप को भास्कर ने संज्ञा को दिखाया, पत्नी संज्ञा अपने पति के इस परम सुन्दर अभिनव स्वरूप को देखकर परम सन्तुष्ट और मोहित हुई। उधर मृण्मयी संज्ञा के उक्त शाप के कारण यमराज बहुत ही दुःखी और क्षुब्ध थे, किन्तु अपने धर्माचरण द्वारा उन्होंने सब को परम प्रसन्न किया, जिससे उनका नाम ही धर्मराज हुआ। अपने शुभकर्मों द्वारा यम ने परम सुन्दर कान्ति प्राप्त की। यही नहीं, समस्त पितरों का आधिपत्य

Funding by IKS-MoE

एवं लोकपालकत्व की पदवी भी उन्हें प्राप्त हुई। महान् यशस्वी सावर्णि मनु इस प्रकार सावर्णि मन्वन्तर में प्रजापति रूप में प्रतिष्ठित होंगे। वे प्रभु सुरम्य सुमेरु के पृष्ठभाग पर आज भी तपश्चर्या में निरत हैं। उसी स्थान पर उनके भ्राता शनैश्चर ग्रह रूप में प्रतिष्ठित हुए। विश्वकर्मा ने सूर्य के उस खरादे हुए तेजोमय-रूप से विष्णु के उस चक्र का निर्माण किया, जो युद्धस्थल में दानवों का विध्वंसक एवं महान् शक्तिशाली है। उन दोनों की छोटी यशस्विनी भगिनी जो थी, वह यमुना नाम से विख्यात हुई। जो लोक को पवित्र करनेवाली सभी सरिताओं में श्रेष्ठ यमुना के रूप में परिणत हुई। सूर्य के उन दोनों पुत्रों में जो ज्येष्ठ पुत्र थे, उनका नाम मनु था, उन मनु का वंश आज भी पृथ्वी तल पर विद्यमान है, उसे विस्तार पूर्वक बतला रहा हूँ। महातेजस्वी, सूर्य के इन सातों देवरूप पुत्रों के जन्म विषयक इस वृत्तान्त को, जो मनुष्य सुनता है अथवा पढ़ता है, वह आपत्तियों में फँसकर भी छुटकारा पा जाता है, और महान् यश का भागी होता है ॥२६—८६॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

पचासीवाँ अध्याय

श्राद्धीय प्रसंग में वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन

सूत ने कहा—हे विप्रवृन्द! तदनन्तर चाक्षुप मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर, जब देवगण भी व्यतीत हो गये, तब महान् प्रभावशाली सूर्य-पुत्र मनु समस्त पृथ्वी के सम्राट् पद के अधिकारी हुए। उन वर्तमान महात्मा सूर्यपुत्र मनु के वंश का वर्णन हम क्रमपूर्वक कर रहे हैं, आप लोग सुनिये। प्रथमतः उन्हीं वैवस्वत मनु के वंश को लेकर बतला रहा हूँ। सबसे बड़े मनु के उन्हीं के समान प्रभाव [1] शाली नव पुत्र हुए। जिनके नाम इक्ष्वाकु, नहुष, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, (नाभाग अरिष्ट) करूष और पृषध्र थे, ये नव (?) मनु के पुत्रों के नाम से विख्यात हुए। सुनिये, प्राचीन काल में ब्रह्मा की प्रेरणा से मनु ने सृष्टि विस्तार का कर्म प्रारम्भ किया, पर निष्फल रहे। तदनन्तर पुत्र की कामना से प्रजापति मनु ने पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान किया, और मित्रावरुण के लिए आहुति अग्नि में छोड़ी। ऐसा सुना जाता है कि उस यज्ञ भूमि से परम दिव्य मनोहर वस्त्रों को धारण किये, दिव्य आभरण से विभूषित दिव्य अंगों वाली इडा उत्पन्न हुई। दण्डधारण किये हुए मनु ने ऐसा कहा जाता है कि उसे 'इला' कहकर सम्बोधित किया। तब इला ने पुत्र के अभिलाषी प्रजापति मनु को यह धर्म युक्त प्रत्युत्तर दिया, भद्र! मैं आप की अनुगामिनी (आज्ञा कारिणी) हूँ, आप का कल्याण हो। बोलने वालों में श्रेष्ठ! मैं मित्रावरुण के अंश से उत्पन्न हुई हूँ, अतः

---

[1] गणना से पुत्रों की संख्या दस होती है।

Funding by IKS-MoE

उन्हीं के पास जा रही हूँ, जिससे हमारा धर्म नष्ट न हो और हमारे विनाश का कारण न बने।' इसी बात को पुनः कहकर वह दिव्य गुण सम्पन्ना इडा मित्रावरुण के पास चली गई। सुन्दरी उन दोनों के पास पहुँच कर हाथ जोड़ते हुए बोली, हे युगल देव! मेरा जन्म आप दोनों के अंश से हुआ है, अतः मेरे लिए क्या आज्ञा है? मैं आपका क्या उपकार करूँ? मन ने मुझसे यह कहा था कि 'तुम मेरी अनुगामिनी बनो' इस पर आप लोगों की क्या आज्ञा है (?) उस परम चरित्रवती इडा के इस प्रकार कहने पर वे दोनों देवगण उसके समीप चले आये और उसे पकड़कर बोले, हे धर्म के महत्त्व को जाननेवाली! तुम्हारे इस सत्याचरण, इन्द्रिय दमन, एवं प्रश्रय से हम लोग बहुत ही प्रसन्न हैं। हे सुन्दर अंगोंवाली महाभाग्यशालिनी, तुम हम दोनों की कन्या के रूप में प्रतिष्ठित होगी। पुनः तीनों लोकों में पूजनीय, जगत् के प्रिय, धर्म शील, मनु के वंश के विस्तारक सुद्युम्न रूप में विख्यात होगे, वे सुद्युम्न पुनः स्त्री रूप में परिणत हुए। देवी इला वरदान प्राप्ति के बाद पिता के पास वापस आई। उचित अवसर देखकर उसे बुधने काम तृप्ति के लिए निमंत्रित किया। चन्द्रमा के पुत्र बुध से इला को पुरुरवा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। बुध के संयोग से पुरुरवा को जन्म देकर वह पुनः सुद्युम्न रूप में परिणत हो गई। सुद्युम्न के तीन परम धार्मिक पुत्र हुए, जिनके नाम उत्कल, गय और विनताश्व थे। उत्कल का राष्ट्र उत्कल प्रदेश, विनताश्व का पश्चिमी प्रदेश और राजर्षि दिक्ष्ववात (विनताश्व ?) की गया नामक पुरी थी। उस मन्वन्तर में मनुपुत्र सूर्य ने इस प्रकार सृष्टि का विस्तार कर समस्त पृथ्वीमण्डल को दस भागों में विभक्त किया। इक्ष्वाकु ने अन्य दस पुत्रों को प्राप्त किया, जो राज्य के उत्तराधिकारी थे, कन्या होने के कारण सुद्युम्न इस राज्य के उत्तराधिकार को नहीं प्राप्त कर सके। तब वसिष्ठ के आदेशानुसार धर्मराज महात्मा सुद्युम्न प्रतिष्ठान (?) के उत्तराधिकारी हुए। किन्तु परम यशस्वी मनु पुत्र सुद्युम्न राज्य प्राप्त कर फिर से स्त्री रूप में जब हो गये तब राज्य को पुरुरवा को दे दिया, मनुष्य में स्त्री पुरुषों के चिह्न की सहज ही जानकारी रहती है। सूत की ऐसी बातें सुन ऋषियों ने पूछा, मनु पुत्र सुद्युम्न पुरुष हो कर स्त्री रूप में किस प्रकार परिणत हुए। ॥१—२४॥

सूत ने कहा——प्राचीनकाल की बात है एक बार देवी (पार्वती) ने देव से यह प्रिय निवेदन अपने हित की दृष्टि से किया था कि हे देव! मेरे इस आश्रम में जो कोई पुरुष प्रवेश करेगा वह निश्चय अप्सराओं के समान सुन्दरी स्त्री के रूप में परिणत हो जायगा। पार्वती के इस वचन के अनुसार उस आश्रम में भूत, पिशाच, पशु आदि जितने जीवगण थे सब स्त्री रूप धारण कर इन्द्र के साथ अप्सराओं के समान क्रीडा करने लगे। मृगया खेलते हुए राजा उमाके उस वन में प्रविष्ट हुए। वहाँ पिशाचों और भूतों के साथ रुद्र स्त्री रूप में विराजमान थे। इसी कारण वश राजा सुद्युम्न पुनः स्त्री रूप को प्राप्त हुए, और महादेव की कृपा से गणों का आधिपत्य प्राप्त किया।

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतमनोः सृष्टि कथनं नाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

Funding by IKS-MoE

छियासीवाँ अध्याय

वैवस्वत मनु के वंश प्रसंग में गन्धर्वों की मूर्च्छना का वर्णन ।

मनु के पुत्रों का सृष्टि विवरण विस्तारपूर्वक सुनिये । मनुपुत्र पृषध्र अपने गुरु महात्मा च्यवन की गौ को मारकर खा गये, जिसके कारण शापवश शूद्र वर्ण में प्राप्त हुए । करुष के कारुष नामक पुत्रगण संग्राम में दुर्दमनीय थे । नाभग अरिष्ट का भलन्दन परमविद्वान् और सहस्रों क्षत्रियों के समूहों में एकमात्र बलशाली हुआ । भलन्दन का पुत्र महाबलवान् प्रांशु हुआ, उस प्रांशु को एक पुत्र हुआ जो प्रजानि नाम से विख्यात हुआ । प्रजानि का खनित्र नामक वीर्यशाली पुत्र हुआ, उस खनित्र का पुत्र महायशस्वी क्षुप हुआ, जो परम शोभा सम्पन्न था । क्षुप के पुत्र विंश हुए, जिनके समान कोई नहीं हुआ । विंश के पुत्र धार्मिक विचारों वाले, कल्याणकारी विविंश हुए । विविंश के पुत्र प्रतापशाली, धर्मात्मा खनिनेत्र हुए, उनके पुत्र करन्धम हुए, जो त्रेतायुग के प्रारम्भ में वर्तमान थे । करन्धम के आविक्षित् नामक प्रतापशाली पुत्र हुए । आविक्षित् ने अपने गुणों द्वारा अपने पिता का अतिक्रमण किया, उनके पुत्र परम-धर्मात्मा, चक्रवर्तियों के समान प्रभावशाली राजा मनुत्त (मरुत्त) नामक हुए, जिन्होंने संवर्त नामक ऋषि की प्रेरणा से अपने मित्रों, तथा परिवार वर्ग वालों के साथ स्वर्ग प्राप्त किया । इस कार्य में संवर्त और बृहस्पति के बीच में महान् विवाद खड़ा हो गया । उस यज्ञ की समृद्धि को देखकर बृहस्पति क्रुद्ध हुए । संवर्त के निर्विघ्न यज्ञ समाप्त कर देने पर तो वे बहुत ही क्रुद्ध हुए, समस्त लोकों के विनाश की सम्भावना देखकर देवताओं ने बृहस्पति को प्रसन्न किया । चक्रवर्ती राजा मनुत्त ने पुत्ररूप में नरिष्यन्त को प्राप्त किया, नरिष्यन्त का उत्तराधिकारी पुत्र दम हुआ, जो दण्ड देने में बड़ा कठोर था । उसका पुत्र केवल हुआ, केवल का पुत्र बन्धुमान हुआ । बन्धुमान का पुत्र परम धर्मात्मा राजा वेगवान हुआ । वेगवान का पुत्र बुध और बुध का पुत्र तृणविन्दु हुआ, यह राजा तृणविन्दु तीसरे त्रेतायुग के प्रारम्भकाल में विद्यमान था । उस (तृणविन्दु) की कन्या द्रविडा थी जो विश्रवा की माता थी । इसका पुत्र परमधार्मिक राजा विशाल हुआ, इसी राजा विशाल ने विशाला नामक पुरी का निर्माण किया था, राजा विशाल के पुत्र महाबलवान् राजा हेमचन्द्र हुए । हेमचन्द्र के उपरान्त उनके पुत्र राजा सुचन्द्र की ख्याति हुई । राजा सुचन्द्र का पुत्र धूमाश्व नाम से विख्यात हुआ । राजा धूमाश्व के पुत्र परमविद्वान् राजा सृञ्जय उत्पन्न हुए । सृञ्जय के पुत्र श्रीमान् परमप्रतापी सहदेव हुए । सहदेव के पुत्र कृशाश्व हुए, जो परमधार्मिक राजा थे । कृशाश्व के पुत्र परमप्रतापी महान् तेजस्वी राजा सोमदत्त हुए । राजर्षि सोमदत्त के पुत्र जनमेजय हुए । राजा जनमेजय के पुत्र प्रमति नाम से विख्यात हुए । राजा तृणविन्दु की कृपा से ये सभी विशाला पुरी के नृपतिगण, दीर्घायुवाले, परमपराक्रमी, परमधार्मिक एवं महात्मा हुए । राजा शर्याति की दो सन्ततियाँ हुईं । पुत्र का नाम आनर्त और कन्या का नाम सुकन्या था, सुकन्या च्यवन की स्त्री हुई । राजा आनर्त का उत्तराधिकारी परमपराक्रमी रेव नामक राजा हुआ, आनर्त का

समस्त राज्य और कुशस्थली पुरी पर उसका आधिपत्य था। रेव का पुत्र परमधार्मिक रैवत हुआ, जो ककुद्मी नाम से भी विख्यात हुआ। ककुद्मी अपने अन्य सौ भाइयों में सब से ज्येष्ठ थे, इन्होंने भी कुशस्थली पुरी में राज्य किया। एक बार अपनी कन्या के साथ यह ब्रह्मा के समीप संगीत सुनने के लिए गये थे, वहाँ देवाधिदेव ब्रह्मा के केवल एक मुहूर्त (दो घड़ी) भर इन्होंने अवस्थान किया था, किन्तु ब्रह्मा की वह दो घड़ी मानव वर्षमान से अनेक युगों की थी। वहाँ से राजा युवावस्था में ही अपनी पुरी को जब वापस लौटे तो उनकी वह पुरी यदुवंशियों से अधिकृत थी, उसके चारों ओर अनेक सुन्दर द्वार बने थे और अब वह कुशस्थली नाम से नहीं प्रत्युत द्वारावती नाम से प्रसिद्ध थी। वसुदेव प्रभृति प्रमुख भोज, वृष्णि एवं अन्धक वंशों के लोग उसकी रक्षा कर रहे थे। शत्रुओं को वश में करनेवाले रैवत ने इस घटना को जानकर अपनी साध्वी व्रतपरायण कन्या रेवती को बलदेव को समर्पित कर दिया, और स्वयं मेरु के शिखर पर जाकर तपस्या में प्रवृत्त हुए। यह सर्वप्रसिद्ध बात है कि बलराम जी ने रेवती के साथ दाम्पत्य सुख का अनुभव किया। (सूत से) ऐसी कथा सुनने के उपरान्त ऋषियों ने पूछा। ॥१–३०॥

ऋषियों ने पूछा:—सूतनन्दन! यह कैसे सम्भव हुआ कि अनेक युगों के बीत जाने पर भी रेवती में वृद्धत्व का समागम नहीं हुआ और उसके अंगों में पलित का भी आभास नहीं हुआ और मेरु पर्वत पर तपस्यार्थ चले जाने पर राजा शर्याति को सन्तति प्राप्ति किस प्रकार हुई, जो आज भी पृथ्वी में उनके नाम से विख्यात है! इसको हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं। ब्रह्मा की उस सभा में कितने देवता निवास करते हैं? वहाँ के गन्धर्व किस प्रकार के हैं, जिनके संगीत को सुनकर राजा रैवत ने इतने समय को दो घड़ी मान लिया? ॥३१–३३॥

सूत ने कहा:—ऋषिवृन्द! ब्रह्मलोक में जानेवाले प्राणी में न वृद्धता का समावेश होता है, न उसे भूख लगती है, न प्यास लगती है, न मृत्यु ही का भय सताता है, यही नहीं किसी प्रकार का रोग भी उस प्राणी को नहीं सताता। हे सद्व्रतपरायण! मुनिवर्यवृन्द! उस गान्धर्व विद्या (संगीत शास्त्र) के विषय में आप लोगों ने जो कुछ मुझसे पूछा है, उसे जो कुछ जानता हूँ बतला रहा हूँ। ॥३४–३५॥

सूत बोले:—उस संगीतशास्त्र में सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्छनाएँ, तथा उनचास ताल होते हैं—यही स्वर मण्डल कहा जाता है। षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषाद—ये सात स्वर हैं। सौवीरी, हरिणास्या, कलोपवला, शुद्ध मध्यमा, शार्ङ्गी, पावनी और हृष्टाका ये मध्यमग्राम के नाम से विख्यात हैं—षड्जग्राम को सुनिये। उत्तरमन्द्रा जननी, उत्तरायता (?) शुद्धषड्जा आदि षड्जग्राम में कही जाती हैं, इसे सातवीं जानना चाहिये। अन्य गान्धारग्राम के विषय में बतला रहा हूँ, सुनिये प्रथम अग्निष्टोमिक द्वितीय वाजपेयिक, तृतीय पौण्डूक, चतुर्थ अश्वमेधिक, पञ्चम राजसूय, षष्ठ चक्रसुवर्ण, सप्तम गोसव, अष्टम महावृष्टिक, नवम ब्रह्मदान, तदनन्तर प्राजापत्य, नागपक्षाश्रय, गोतर, हयकान्त, मृगकान्त, मनोहर विष्णुक्रान्त, सर्वश्रेष्ठ सूर्यकान्त, मत्तकोकिल वादिन, सावित्र अर्धसावित्र, सर्वतोभद्र, सुवर्ण, सुतन्द्र, विष्णु, वैष्णुवर, सागर, सभी जीवों के मन को हरनेवाला विजय, हंस को सर्वश्रेष्ठ हम लोग जानते हैं, तुम्बुरुप्रिय,

मनोहर अधात्रय—जो सभी गन्धर्वों द्वारा प्रशंसित, विशेषतया अलम्बुष को अभिमत एवं नारद को परम प्रिय है; जिसकी प्रशंसा भीमसेन ने नागरों के पास की थी, जिसके कारण वह उनका प्रिय हुआ—विकल, उपनीत, विनत, भार्गव प्रिय श्री अभिरम्य, शुक्र, पुण्यप्रद पुण्यारक–ये सब गान्धार ग्राम के अन्तर्गत हैं। मध्यमग्राम बीस हैं, षडज्ग्रामों की संख्या चौदह है, गान्धारग्राम को लोग पन्द्रह मानते हैं। भगवान् ब्रह्मा सौवीर के साथ गान्धारी का गान करते हैं। उत्तरादि स्वरों के अधिदेवता ब्रह्मा ही माने गये हैं, हरिदेश में उत्पन्न मूर्च्छना हरिणास्या के नाम से प्रसिद्ध है, इसके अधिदेवता इन्द्र हैं। समस्त स्वर मण्डल में मरुतों द्वारा कर प्रसारण पूर्वक ग्रहण किये जाने से कलोपनता के मारुत अधिदेवता माने गये हैं। मरुदेश में समुत्पन्न मूर्छना शुद्ध मध्यमा कही जाती है। इसमें शुद्ध स्वर मध्यम है, इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। सिद्धों का मार्ग दिखलाते समय मृगों के साथ विचरण करने के कारण मूर्च्छना मार्गी नाम से प्रसिद्ध हुई, इसके अधिदेवता मृगेन्द्र हैं। यह मूर्च्छना अनेक स्वरों की आश्रयभूत होने के कारण अनेक पुरों में गाये जानेवाले स्वरों में प्रयुक्त होती है। (?) यह रजनी नामक मूर्च्छना रजोगुण से संयुक्त करनी चाहिये। (?) उत्तर मन्द्रांश ताल का अधिदेवता षडज् है। उसका उत्तरवर्ती ताल भी प्रथम का अनुयायी माना जाता है। इसीलिये उसका नाम भी उत्तरमन्द्र कहा जाता है, उसके अधिदेवता ध्रुव हैं। विस्तृत और उत्तरवर्ती होने के कारण धैवत की मूर्च्छना उत्तरायण है, इसके अधिदेवगण श्राद्ध में पूजित होनेवाले पितरगण हैं। महर्षियों ने शुद्ध षडज् स्वर द्वारा अग्नि की उपासना की थी, इसलिए उस स्वर को लोग शुद्ध षडजिक नाम से जानते हैं। पञ्चम स्वर की मूर्च्छना सत्पुरुषों के मन को भी मूर्च्छित कर देती है, यह यक्षों की पत्नियों की मूर्च्छना है, इसीलिए उसका नाम भी याक्षिकी मूर्च्छना प्रसिद्ध है। दृष्टि से हीं विष विकीरित करनेवाले नागगण जिस मूर्छना को सुनकर चल फिर नहीं सकते, और ब्रह्मा द्वारा मृतक के समान हो जाते हैं, वह अहिमूर्छना कही जाती है, उसके अधिदेवता वरुण हैं। जलराशि में अवस्थित इस मूर्छना को सर्वप्रथम जलाधिप वरुण ने देखा था। किन्नर गण पक्षियों के स्वर का अनुकरण कर जिसका गान करते हैं, उस परमश्रेष्ठ मूर्छना के अधिदेवता पक्षिराज गरुड़ हैं। ऋषियों और विद्या में पारंगत स्नातकों के भीं मन को जो मन्द कर देती है वह मन्दनी नामक मूर्छना है, उसके अधिदेवता विश्वेदेवगण हैं। अश्व के समान तीव्र गति से चलने अथवा जिसको सुनकर अश्वगण विहार (प्रसन्न होते हैं) करते हैं उस स्थिर मूर्छना का अश्वक्रान्ता नाम है, उसके अधिदेवता दोनों अश्विनी कुमार हैं। गान्धार राग के शब्द से गौ (पृथ्वी) को धारण करते हैं, (अर्थात् इसकी स्वरमहिमा से पृथ्वी की स्थिति शक्ति की वृद्धि होती है) इस निरुक्ति से इस मूर्छना का नाम विशुद्ध गान्धारी कहा जाता है, इसके अधिदेवता गन्धर्व हैं। गान्धार के अनन्तर इस मूर्छना की सृष्टि हुई है, अतः इसे उत्तर गान्धारी कहते हैं, इसके अधिदेवता वसुगण हैं। षडज् नामक यह मूर्छना सबसे प्रथम पितामह के समीप उपस्थित हुई अतः यह सबसे अधिक महत्त्व शालिनी है, इसके अधिदेवता अनल कहे जाते हैं। यह मन्दषष्ठा नामक मूर्छना बहुत विस्तृत है, इसके प्रभाव दिव्य हैं, इसके गुणों की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता, इसके अधिदेवता पञ्चम हैं। इस प्रकार सातों स्वरों, समस्त मूर्छनाओं,

(?) एवं उनके छः साधारण भेदों का वर्णन मैं कर चुका। ॥३६–६९॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतमनुवंश गान्धर्व मूर्छना लक्षण कथनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

सतासीवाँ अध्याय

गीतों के अलंकारों का वर्णन

अब इसके उपरान्त पूर्ववर्ती आचार्यों के मतानुसार तीन सौ संगीत के अलंकारों का क्रम पूर्वक वर्णन मैं कर रहा हूँ, सुनिये। अपने-अपने वर्णों एवं पद समूहों के विशेष संयोग से संगठित होने को ही अलंकार कहना चाहिये। पद एवं वाक्य के योगार्थ के द्वारा अलंकार की पूर्ति होती है। गीत के पद समूह पूर्व अथवा पीछे दोनों स्थानों में विन्यस्त होते हैं–ऐसा लोग कहते हैं। गीतों के स्थान तीन होते हैं, उरस्थल, कण्ठ तथा शिर इन्हीं तीन स्थानों में प्रारम्भ किया गया स्वर उत्तम होता है। प्रकृति गत वर्णों की संख्या चार है, इनका विचार भी चार प्रकार का होता है। विकल्प से आठ प्रकार कहे जाते हैं, देवगण इनकी संख्या सोलह बतलाते हैं। वर्णों के तत्त्वज्ञ लोग स्थायी, संचारी, अवरोहण तथा आरोहण—ये चार वर्ण जानते हैं। एक ही प्रकार के भाव वर्ण में जिसका संचरण होता है वह स्थायी, विभिन्न प्रकार के भावों में जिसका संचरण होता है वह संचारी, निम्न गति जिसकी होती है वह अवरोहण तथा उन्नति शील जो होता है वह आरोहण कहा जाता है–ऐसा वर्णवेत्ता लोग जानते हैं। इन्हीं चार प्रकार के वर्णों का अलंकार सुनिये। मुख्यतः अलंकार चार प्रकार के होते हैं, स्थापनी, क्रमरेजित, प्रसाद और प्रस्तार उनके लक्षणों को बतला रहा हूँ। उष्ट्रकल नामक विकृत स्वर एक स्थान से उत्पन्न होकर दूसरे स्थान में समाप्त होते हैं, उस आवर्त (चक्राकार) घुमाव) की उत्पत्ति और उसका क्रम ये दोनों परिणाम के अनुरूप करना चाहिये। अन्य कुमार नामक स्वर को अत्य अल्प विस्तार करनेवाला जानना चाहिये। दूसरा अपाङ्ग नामक और मात्राधिक कुलारेक नामक अलङ्कार होता है। श्येन नामक स्वर एक ही स्थान में उत्पन्न होता है, और कलामात्र के अन्तर में प्रतिष्ठित होता है। इसी स्वर में विलक्षण वृद्धि होती है। यही श्येन स्वर उत्तर अवरोह कहा जाता है। सबिन्दु नामक स्वर कला-कला के परिणाम में उत्पन्न होता है। बिन्दु को एक कला की करनी चाहिये, यह एक ही वर्ण के अन्त में स्थित रहनेवाली है। स्वरों का विपर्यय (उलट फेर) भी हो जाता है, जहाँ अनवधानता भी नहीं होती है। षड्ज से एक स्वर का अन्तर देकर एकान्तरा वाद्य करने से उत्कृष्ट स्वर होता है। इसमें काक के समान स्वर का आक्षेप करने से उच्च पुष्कल स्वर होता है। कार्य और कारण रूप से दोनों संतारों का संचारण करना चाहिये। इस प्रकार क्षिप्र गति तक अवरोह स्वर संचार करने से उसी प्रकार का प्रोक्षमय अलंकार होता है। तदनन्तर एकान्तर गत द्वादश कला स्थान है। इस प्रकार के स्वर संयुक्त एक प्रेंखोलित अलङ्कार होता है। पुनः कुछ अधिक स्वरों के संक्रमण होने के कारण ही वह पुष्कल कहा जाता है। मात्रा के प्रक्षेप और इतर पाद संक्रमण

होने से जो द्विकलात्मक अलङ्कार होता है वह घ्रासित कहा जाता है। स्वरोच्चार और विस्वर के संयोग से अष्टस्वर का अन्तर हो जाता है। तार और मन्द्र के क्रम से ज़ो स्वरावरोह होते हैं, वे अन्त में उसी स्वर के एक अन्तरा के बाद उपयुक्त माने जाते हैं।मणिग्रच्छेदन नामक गण चार कलाओं वाला कहा जाता है। वर्ण, स्थान और प्रयोग विशेष के अनुसार कलामात्र प्रमाण के अनुसार अलंकार निश्चित किये गये हैं। इस प्रकार कहे गये तीसो अलंकारों का वर्णन कर चुका। संस्थान, प्रमाण, विकार और लक्षण--ये चार अलंकारों के प्रयोजन जानने चाहिये। जिस प्रकार मनुष्य के अपने अलंकार योग्य स्थान पर न पड़कर अथवा अति निम्न कोटि के होकर शरीर शोभा की हानि करते हैं, वृद्धि नहीं करते उसी प्रकार ये संगीत के अलंकार भी अपने योग्य स्थान पर पड़कर तथा निकृष्ट कोटि के होकर वर्णों की शोभा बढ़ाने में सशक्त नहीं होते, इसलिए स्त्रियों के आमूषण की भाँति इन संगीतालंकारों का यथा स्थान सन्निवेश करना आवश्यक होता है। जिस प्रकार विविध अलंकारों से अलंकृत होने पर स्त्रियों का सौन्दर्य बढ़ जाता है, उसी प्रकार इन वर्णों के अलंकारों से अलंकृत होकर संगीत की शोभा बढ़ जाती है। इनके यथा स्थान विभूषित न होने की बड़ी निन्दा की गई है! जिस प्रकार पैर में बँधे हुए कुण्डल नहीं देखे जाते और कण्ठ में करधनी नहीं देखी जाती। अर्थात् ये निन्दित हैं उसी प्रकार अनुपयुक्त स्थान में पड़े अलंकार भी अत्यन्त गर्हित माने गये हैं। जो गायक अलंकारों को यथा स्थान सन्निविष्ट कर के राग का प्रदर्शन करते हैं, वे संगीत के समुचित्त कर्त्तव्य का पालन करते हैं। अब इसके उपरान्त मैं पर्यव का लक्षण, वर्णिका के द्वारा उनका प्रवर्तन मासोद्भव और मुखोद्भव को यथार्थ रूप से बतला रहा हूँ। षडज् स्वर के तेईस प्रकार के अलंकार विपर्यय के द्वारा अस्सी प्रकार के हो जाते हैं। षड्ज पक्ष भी तत्त्व के आदि में और हीन स्वर हो जाता है। षड्ज और मध्यम, एवं दोनों ग्राम का पर्यय, उत्तर मन्द तथा अविक का मान छः प्रकार का होता है। स्वर, अलङ्कार और प्रत्यय सब के प्रत्यय होते हैं। बहिर्गीतों के विश्लेषण से ये भी पञ्च दैवत ही ज़ाने गये हैं। गोरूपों के आगे मध्यमांश का स्थापन ही पर्यय है। इन दोनों का विभाग गीतों की सौन्दर्य वृद्धि में सहायक होता है। मैंने स्वसार और स्वरान्तर का गौणरूप में वर्णन कर दिया। सप्त स्वर, और पदक्रम के अनुसार पर्यय का प्रयोग होता है। चारों मद्रक गान्धांश से गाये ज़ाते हैं, पञ्चम धैवत में निषादज का प्रयोग होता है। मद्रकों में षड्ज और ऋषभ का ही प्रयोग होता है इतर का नहीं। ॥१–३३॥

हय शुल्लाष्टक के अपर और अन्तिम दो भेद होते हैं। गान्धारांश में और प्राकृत में वेणु सम्बन्धी रागों का प्रयोग होता है। पद के तीन रूप होते हैं, केशिक के सात। सम्पूर्ण गान्धारांश से पर्यय विधि सम्पन्न की ज़ाती है। इसी प्रकार मध्यमांश के मध्यम पद के भी क्रमिक विधान का निर्देश किया गया है। जिन गीतों का वर्णन विशेष रूप से रूप के साथ किया गया है उनको सप्त स्वरों से युक्त करना चाहिये और केशिक को सप्तरूप में। इस प्रकार अंगदर्शन, दो मान और समक को कहा गया है। द्वितीय भावाचरण मात्रा उपयुक्त नहीं होती। और स्वभावतः उत्तर (मन्द्र) में मात्रा लीन हो जाती है। जहाँ हन्तार पिण्डक मात्रा से अधिक नहीं होता, और ज़िस मात्रा में एक चरण और पौन चरण रहते हैं

अर्थात् जो मात्रा पौने दो चरण की होती है उसको अतिवीरणा कहते हैं और उसमें संख्या के संघर्ष होने पर यान नामक अलंकार की उत्पत्ति होती है। द्वतीय पाद भंग को ग्रह नाम से प्रतिष्ठित किया गया है। पहला, आठवाँ, तीसरा और दूसरा अपर और अन्तिम, पाद साम्य के आधे भाग के साथ, पाँचों में पाद भाग, और सपाद पाद भाग प्रकृति में स्थित रहते हैं। उत्तर, मद्रवती, मद्रक में चौथी कला तथा मद्रक में दक्षिण की उक्त कला रहती है। पहले ही अनुयोग को द्वितीय बुद्धि इष्ट रहती है। इसके बाद दो पादों के और कलाओं के आकलन का विधान आचार्यों ने नहीं बताया है। द्विजोत्तम! दोनों के उपयोग की एकता और अनेक कलाओं के एकत्र संगठन को पताका हरिण कहते हैं। वृत्ति में तीन वृत्तियों की आवृत्ति दक्षिणा कही गई है। सौवीरी मूर्च्छना और वे आठ समवाय ये भी आवृत्त (दुहराना) होते हैं। जो सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति इन सात मूल स्वरों का भली भाँति अध्ययन करता है, उस धार्मिक महात्मा की चित्रशाखा सुत के समान कीर्ति फैलती है।

इति श्री वायु महापुराणे गीतालङ्कार निर्देशो नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अठासीवाँ अध्याय

वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन,

सूत बोलेः—ऋषिवृन्द! उपर्युक्त महाराज रैवत के, जिनका दूसरा नाम ककुद्मी भी था, मेरु शिखर पर चले जाने के उपरान्त यक्षों और राक्षसों ने मिलकर सारी कुशस्थली को विध्वस्त कर दिया। परम धार्मिक एवं महात्मा उस राजा ककुद्मी के अन्य सौ भाई लोग उन राक्षसों से अतिशय पीडित एवं भयभीत होकर इधर उधर भाग गये। और इस प्रकार उन राक्षसों से भयभीत क्षत्रियों के समूह इधर उधर तितर बितर हो गये। वहाँ पर भी कुछ वंशज गये जहाँ महान् प्रतापी राजा स्वयं निवास करता था। उस राजा के वे वंशज क्षत्रिय गण सभी दिशाओं में धार्मिक विचारोंवाले तथा इन्द्रियों को वश में रखनेवाले विख्यात थे। इसी वंश में उत्पन्न होनेवाले धृष्ट के धार्ष्टक, क्षत्र, रणधृष्ट नामक पुत्र हुए। जो परम बलवान तीन सहस्र क्षत्रियों के समूह में प्रमुख थे। दूसरे उसी वंश में उत्पन्न होनेवाले नभग के उत्तराधिकारी परम बलवान नाभाग नाम से प्रसिद्ध हुई। नाभाग के पुत्र अम्बरीष हुए, उन अम्बरीष के पुत्र विरुप हुए। विरुप के पृषदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम रथीतर हुआ। ये उपर्युक्त राजा गण क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए और अंगिरा के गोत्रज रूप में विख्यात हुए। रथीतर के वंश में उत्पन्न होनेवालों के प्रवर क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों के हैं। प्राचीनकाल में मनु के छींकते समय इक्ष्वाकु नामक पुत्र निकल पड़े थे। वे परम दानशील थे, उनके एक सौ पुत्र हुए। उन सभी पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ विकुक्षि नाम से विख्यात थे, उनके अतिरिक्त नेमि और

Funding by IKS-MoE

दण्ड—ये तीन पुत्र विख्यात थे, विकुक्षि के शकुनि प्रभृति पाँच सौ पुत्र हुए। वे सभी उत्तराखण्ड के देशों के स्वामी हुए। अड़तालीस दक्षिण में हुए। जिनमें बीस प्रमुख थे, वे दक्षिण दिशा पथ के समस्त प्रदेशों की रक्षा में तत्पर रहनेवाले थे। एक बार अष्टका तिथि के अवसर पर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि को आदेश दिया।॥१—११॥

राजा ने कहा:—हे महाबलवान्! मृगों को मारकर श्राद्ध करने योग्य मांस लाओ। आज अष्टका तिथि है, आज श्राद्ध करने का मेरा निश्चय है। परम बुद्धिमान राजा इक्ष्वाकु की आज्ञा से विकुक्षि मृगों का वध करने के लिये वन को गये। वहाँ सहस्रों मृगों का वध करने के कारण विकुक्षि परम बलवान होने पर भी बहुत थक से गये। और मृगया करते समय उन्होंने थकावट दूर करने के लिए वहीं पर एक खरगोश खा लिया। सैनिकों के साथ माँस लेकर जब विकुक्षि राजधानी को वापिस लौटे तब राजा ने महर्षि वसिष्ठ से "मांस का मंत्रोच्चारण पूर्वक सिंचन संस्कार कर दीजिये'—ऐसा कहा। राजा के ऐसा कहने पर वसिष्ठ से 'बहुत अच्छा' कहकर विधि पूर्वक सिंचन संस्कार करने के लिए जब वहाँ उपस्थित हुए। तब उस समस्त माँस राशि को अपवित्र देखकर परम कुद्ध होकर राजा से बोले। राजन्! तुम्हारे इस नीच स्वभाव वाले पुत्र विकुक्षि ने यह सब माँस अपवित्र कर दिया है। इसने पूर्व में ही खरगोश का भांस खा लिया है, अतः उसी के कारण यह सारा माँस अखाद्य हो गया है। हे निष्पाप! इस तुम्हारे दुरात्मा पुत्र ने वन में श्राद्ध के पूर्व ही एक खरगोश खा लिया है, हे नृपतिवर! इसी कारण से यह सारा माँस दूषित हो गया, अब यह पितरों के योग्य नहीं रह गया है।' वसिष्ठ की ऐसी बातें सुनकर राजा इक्ष्वाकु परम क्रुद्ध हुए और विकुक्षि से बोले—'मैंने तुम्हें पितृकर्म के योग्य माँस लाने के लिए आज्ञा की थी, और उसी के लिए तुम शिकार करने गये भी थे, किन्तु वहाँ पर तुमने कुछ भी उचित अनुचित का विचार न कर श्राद्ध के पहिले ही निर्ममतापूर्वक एक खरगोश खा लिया। इस गुरु अपराध के कारण तुम्हें मैं त्याग रहा हूँ, अब तुम यहाँ से बाहर जहाँ मन कहे चले जाओ और अपने इस नीच कर्म का फल भोगो।' वसिष्ठ के कहने पर इस प्रकार राजा इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को त्याग दिया। उस राजा इक्ष्वाकु के परलोक गमन के अनन्तर परम धर्मात्मा विकुक्षि ने महर्षि वसिष्ठ के बहुत कहने सुनने पर अयोध्या का राज्य भार अपने ऊपर लिया और समस्त पृथ्वी मण्डल का शासन किया। किन्तु राज्य भार ले लेने पर वह राजा विकुक्षि अपने उस पूर्व पाप के कारण उत्तरोत्तर गिरता गया उसकी महिमा उत्तरोत्तर क्षीण होती गई। इस आख्यान को जानकर लोगों को चाहिये कि बिना विधान के माँस को न खायँ। बुद्धिमान लोग माँस के विषय में यह कहा करते हैं कि "मैं इस लोक में जिसके माँस का भक्षण कर रहा हूँ, वह परलोक में मेरे माँस का भक्षण करेगा—यही माँस भक्षण का नियम है।" शश भक्षण करनेवाले राजा विकुक्षि का उत्तराधिकारी परम बलवान राजा ककुत्स्थ हुआ। प्राचीनकाल में इन्द्र के बैल का स्वरूप धारण करने पर यह राजा उनके ककुद (डील) पर सवार हुआ था। यह प्रसंग पूर्वकाल में होनेवाले आडीवक नामक युद्ध में घटित हुआ था, इसीलिये इसका नाम ककुत्स्थ पड़ा। ककुत्स्थ के पुत्र

Funding by IKS-MoE

अनेना हुए, अनेना के पुत्र राजा पृथु हुए, पृथु के पुत्र वृषदश्व हुए, उनके परम बलशाली अन्ध्र नामक पुत्र हुआ। अन्ध्र के यवनाश्व नामक पुत्र हुआ, जिसके पुत्र का नाम श्रावस्त हुआ। उसी राजा श्रावस्त ने श्रावस्ती नामक पुरी का निर्माण किया था। राजा श्रावस्त के पुत्र महान् यशस्वी राजा वृहदश्व हुए। वृहदश्व के पुत्र का नाम कुवलाश्व सुना जाता है। यही राजा कुवलाश्व धुन्धु के मारने के कारण धुन्धुमार नाम से विख्यात हुए। ॥१२–२८॥

ऋषियों ने कहा :—हे परम बुद्धिमान् सूत जी ! धुन्धु के वध का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं, जिस कारणवश राजा कुवलाश्व को धुन्धुमार की उपाधि मिली। ॥२९॥

सूत बोले :—ऋषिवृन्द ! राजा वृहदश्व के पुत्रों की संख्या इक्कीस सहस्र थी, वे सब के सब सभी विद्याओं में पारङ्गत, परम बलवान्, दुर्दमनीय प्रचुरदक्षिणा देनेवाले, यज्ञकर्त्ता एवं धार्मिक विचारों वाले थे। नराधिप वृहदश्व ने सबों में परम धार्मिक, शूरवीर एवं साहसी कुवलाश्व को अपने राज्य के उत्तराधिकारी पद पर अभिषिक्त किया और इस प्रकार योग्य पुत्र को राज्य भी समर्पित कर स्वयं वन को चले गये। ब्रह्मर्षि उत्तङ्क ने परम धार्मिक महाराज वृहदश्व को वन में जाते हुए निवारित किया। ॥३२–३३॥

उत्तङ्क ने कहा :—हे राजन् ! आपको हम लोगों की रक्षा करनी चाहिये, अतः हमारी रक्षा कीजिये, उद्विग्न चित्त होने के कारण तपस्या करने में हम असमर्थ हो रहे हैं। भूपते ! हमारे आश्रम के समीप ही इस समान मरुभूमि में बालू का समुद्र है। उसी में भूमि के अन्दर निवास बनाकर परम विकराल शरीरवाला, महाबलवान् धुन्धु रहता है, देवगण भी उस धुन्धु का वध नहीं कर सकते, वह बालू में रहता है। वह धुन्धु मनु का पुत्र है, फिर भी परम क्रूर और दारुण चित्तवृत्तिवाला है। लोकों का विनाश करने के लिए वह सौ वर्षों से दारुण तप कर रहा है। एक वर्ष बीतने पर वह एक श्वास छोड़ता है, जिस समय वह श्वास छोड़ता है, उस समय जंगलों समेत सारी पृथ्वी हिलने लगती है। उसकी निःश्वास वायु से धूल का विकराल बवंडर उठ पड़ता है, जिससे सूर्य का मार्ग ही घिर जाता है, सात दिनों तक भूमि काँपती रहती है। चारों ओर अग्नि की चिनगारियाँ उठ पड़ती हैं, विकराल ज्वालाएँ निकलने लगती है, अति-दारुण धूएँ से सारी दिशाएँ आकीर्ण हो जाती हैं, हे राजन् ! इन सब उत्पातों से हम अपने इस आश्रम में भी निवास नहीं कर पाते। हे महाबाहु राजन् ! लोकरक्षा के ध्यान से उसे उत्पात से निवारित कीजिये। तुम्हारे इस उपकार कार्य में भगवान् विष्णु अपने तेजोबल से तुम्हारी सन्तुष्टि करेगें अर्थात् सहायता करेंगे। उस महान असुर के मारे जाने पर सभी लोक स्वस्थ हो जायेंगे। हे पृथ्वीपति ! तुम उस महान् असुर के मारने में आज समर्थ हो। हे निष्पाप ! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने यह वरदान दिया है कि महाबलवान् धुन्धु अल्प बल से अधीन नहीं किया जा सकता। अर्थात् इसे वश्य करने के लिए किसी महान् बलशाली की आवश्यकता है, हे पृथ्वीपाल ! सैकड़ों वर्षों में भी इसे कोई पराजित नहीं कर सकता, उसका बल महान् है, देवगण भी उसे पराजित नहीं कर सकते।' महात्मा उत्तङ्क के ऐसा कहने पर राजर्षि वृहदश्व ने धुन्धु के उपद्रवों को निर्मूल करने के लिए उन्हें अपने पुत्र कुवलाश्व को समर्पित करते हुए बोले। महर्षे !

मैं राजा हूँ, सभी का पालन करना हमारा धर्म है; परन्तु हम अस्त्र शस्त्र छोड़ चुके हैं, हे द्विजश्रेष्ठ ! यह हमारा पुत्र निस्सन्देह उस धुन्धु को मारने में समर्थ होगा।' इस प्रकार धुन्धु के मारने के लिए सत्यप्रतिज्ञ राजा वृहदश्व ने अपने पुत्र कुवलाश्व को नियुक्त कर स्वयं तपस्या के लिए पर्वत की ओर प्रस्थान किया। इधर पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर धर्मात्मा महाराज कुवलाश्व ने अपने इक्कीस सहस्र पुत्रों को तथा महर्षि उत्तङ्क को साथ लेकर उस धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया। महर्षि उत्तङ्क के प्रयत्न पूर्वक प्रार्थना आदि करने के कारण तथा लोक हित की भावना से भगवान् विष्णु स्वयं उस राजर्षि कुवलाश्व में अपने तेज सहित आविष्ट हुए। इस प्रकार राजर्षि कुवलाश्व ने जिस समय धुन्धु के निवारणार्थ प्रस्थान किया उस समय आकाश में चारों ओर से घोर शब्द होने लगे। और चारों ओर से यह आवाज आने लगी कि आज यह राजा कुवलाश्व अवश्यमेव धुन्धु का संहार करेगा। देवतागण चारों ओर से स्वर्गीय पुष्पों की वृष्टि उसके ऊपर करने लगे। इस प्रकार अपने पुत्रों समेत प्रस्थान कर परम बल शाली नरव्याघ्र कुवलाश्व ने उस बालुका मय समुद्र को, जिसका विनाश असम्भव था, खनना प्रारम्भ किया। उस समय वह राजर्षि भगवान् के तेज से समन्वित होकर महान् बलवान हो गये थे, फिर भी महर्षि उत्तङ्क के वश में वर्तमान थे। उस समय जब कि उनके पुत्र गण उस बालुकामय समुद्र को खन रहे थे धुन्धु इधर पश्चिम दिशा की ओर दिखाई पड़ा। उस समय वह बहुत क्रोधित हो रहा था, मुख से अग्नि की विकराल ज्वालाएँ इस प्रकार उगल रहा था मानों समस्त लोकों को विनष्ट कर देना चाहता है। फिर उसने योगबल का आश्रय लेकर इतना जल बरसाया कि चारों ओर जल का भीषण समुद्र उमड़ पड़ा। हे सोमपान करनेवाले ऋषियों में सर्वोपरि ! उस समय वह जल राशि एवं तरंगे इस प्रकार ऊपर की ओर उमड़ने लगीं मानों चन्द्रमा का उदय हो गया हो। इस प्रकार राक्षसों ने राजा के समस्त पुत्रों को, केवल तीन पुत्रों को छोड़कर, भस्म कर दिया। तब धुन्धु के परिवार वर्ग को नष्ट करने की चिन्ता से उस महाबलवान राजा ने धुन्धु की उस समस्त जल राशि को पान कर लिया, और योगबल द्वारा जल से इस अग्नि को भी शान्त कर दिया। और उस प्रकार अपने अदम्य साहस से उस महाबलवान जलवासी राक्षस धुन्धु को निरस्त कर दिया। अपने कार्य में सफलता प्राप्त कर राजा महर्षि उत्तङ्क के समीप उपस्थित हुए। महर्षि ने उस महात्मा राजा को उत्तम वरदान दिये। उसे कभी नष्ट न होने वाली अक्षय सम्पत्ति प्रदान की, शत्रुओं से उसे कभी पराजय न मिले, धर्म में प्रेम भावना की वृद्धि हो। स्वर्ग लोक में निरन्तर वास हो,—वहाँ से कभी पतन न हो—ऐसा वरदान दिया। इसके अतिरिक्त राक्षसों द्वारा उनके जिन पुत्रों का निधन हुआ था, उन्हें अक्षय स्वर्ग प्रदान किया। उस राजा कुवलाश्व के जो तीन पुत्र शेष रह गये थे, उनमें सबसे बड़े का नाम दृढाश्व कहा जाता है, भद्राश्व और कपिलाश्व—ये दो छोटे कहे जाते हैं। धुन्धुमार के ज्येष्ठ पुत्र दृढाश्व का जो पुत्र हुआ उसका नाम हर्यश्व था। हर्यश्व का पुत्र निकुम्भ हुआ, जो सर्वदा क्षत्रिय धर्म में निरत रहनेवाला था। निकुम्भ का पुत्र संहताश्व रणभूमि में परम निपुण सुना जाता है। उसके कृशाश्व और अक्षयाश्व नामक दो पुत्र हुए। संहताश्व की एक पत्नी का नाम हेमवती थी, जो सत्पुरुषों से सम्माननीय थी, उसका दूसरा नाम मतिदृपद्वती था, तीनों लोकों में वह परम

विख्यात थी, उसका पुत्र प्रसेनजित हुआ। प्रसेनजित का पुत्र युवनाश्व तीनों लोकों में परम कान्तिमान था, उसके विचार परम धार्मिक थे, उसकी पतिव्रता भार्या गौरी थी। पति ने एक बार उसे शाप दे दिया, जिसके फल स्वरूप वह बाहुदा नामक नदी के रूप में परिणत हुई। उसका पुत्र गौरिक अपने समय का चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। युवनाश्व का पुत्र मान्धाता त्रैलोक्य विजयी राजा था, उसके विषय में पुरानी कथाओं के जानने वाले विप्रगण ये दो श्लोक बतलाते हैं, जिनका तात्पर्य यह है। 'जहाँ से सूर्य उदित होते हैं और जहाँ पर जाकर अस्त होते हैं, वह सब मान्धाता का क्षेत्र (राज्य) कहा जाता है। इस प्रसंग में राजवंशों के जानने वाले लोग परम तेजस्वी, यज्ञ परायण महात्मा मान्धाता के विषय में यहाँ तक कहते हैं कि 'पुराणज्ञ लोग मान्धाता को भगवान् विष्णु का स्वरूप बतलाते हैं।' उस राजा मान्धाता की स्त्री शशविन्दु की पुत्री चैत्ररथी थी। वह समस्त पृथ्वी में अपने रूप में अनुपम थी। उस परम पतिव्रता का अन्य नाम विन्दु मती भी था। अपने दस सहस्र भाइयों में वह सबसे ज्येष्ठ थी, उसका पतिव्रता धर्म प्रशंसनीय था। ऐश्वर्यशाली मान्धाता ने उसमें तीन पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचुकुन्द सुने जाते हैं। राजा अम्बरीष का उत्तराधिकारी दूसरा युवनाश्व हुआ, युवनाश्व के पुत्र हरित हुए, हरित के पुत्र शूरि नाम से विख्यात हुए। ये महर्षि अंगिरा के पुत्र क्षत्रिय धर्म परायण द्विजाति कहे जाते थे, राजा पुरुकुत्स के उत्तराधिकारी महान् यशस्वी त्रसदस्यु हुए, जिनका जन्म नर्मदा में हुआ था, त्रसदस्यु के पुत्र सम्भूत हुए। सम्भूत के पुत्र परम प्रताप शाली अनरण्य हुए। जिन्होंने प्राचीन काल में त्रिलोकी विजय के प्रसङ्ग में रावण का निधन किया था। उन राजा अनरण्य के पुत्र त्रसदश्व हुए, जिनके पुत्र का नाम हर्यश्व था, उन राजा हर्यश्व से दृषद्वती में राजा वसुमत का जन्म हुआ। राजा वसुमत के पुत्र परम धर्मिक राजा त्रिधन्वा उत्पन्न हुए, राजा त्रिधन्वा के पुत्र परम विद्वान् एवं प्रभावशाली राजा त्रय्यारुण हुए। उनके महा बलवान पुत्र सत्यव्रत हुए उन्होंने विदर्भ राजा की स्त्री को, विवाह के मंत्रों के उच्चारण करते समय, जब सारी क्रियाएँ समाप्त हो गई थीं, समस्त देवताओं को पराजित कर, हरण किया था। उस परम बलवान राजा के पुत्र विष्णुवृद्ध हुए, जिनसे उत्पन्न होनेवाले वंश के लोग विष्णुवृद्ध नाम से विख्यात हुए। अंगिरा के ये पुत्रगण भी क्षत्रिय मिश्रित द्विजाति वर्ण के हैं। परम बुद्धिमान सत्यव्रत ने अपनी इच्छा से, बल से, अथवा बलवान भावी (नियति) के वश होकर बलपूर्वक उक्त दुराचरण किया था, उसके इस अधर्माचरण से असन्तुष्ट होकर पिता त्रय्यारुण ने उसका परित्याग कर दिया। और परम क्रुद्ध होकर अनेक बार उससे कहा कि 'तुम हमारे घर से बाहर निकल जा।' अपने पिता के एकमात्र पुत्र सत्यव्रत ने जब पिता से बारम्बार पूछा कि 'मैं कहाँ जाऊँ।' तब पिता ने कहा कि चाण्डालों के साथ जाकर निवास कर, हे कुल में कलंक लगानेवाले! तुम्हारे जैसे नालायक पुत्र से मैं पुत्रवान् नहीं होना चाहता।' हे परम प्रतापशाली! पिता के इस प्रकार निरादर पूर्ण वचन कहे जाने पर सत्यव्रत नगर से बाहर निकल गये। उस समय परम प्रभावशाली महर्षि वसिष्ठ ने भी उन्हें घर रहने के लिए नहीं रोका। इधर, परम बुद्धिमान एवं वीर सत्यव्रत पिता के परित्याग कर देने पर चाण्डालों की बस्ती के समीप जाकर बस गये और उधर उनके पिता वन को चले गये। इस अधर्म से उस प्रान्त में इन्द्र

ने बारह वर्षों तक वृष्टि नहीं की उसी प्रान्त में महातपस्वी विश्वामित्र अपने स्त्री पुत्रों को निराधार छोड़कर सागर के तटवर्ती प्रान्त में घोर तप कर रहे थे, उनकी पत्नी ने अपने मँझले पुत्र को गले में बाँधकर शेष पुत्रों के भरण-पोषण के लिए सौ गौओं के बदले बेंच दिया था। व्रतपरायण, धर्मात्मा नरपति सत्यव्रत ने महर्षिपुत्र विश्वामित्र के मँझले पुत्र को इस प्रकार गले में बँधा और विक्रीत देखकर उस संकट से छुड़ाया। तदुपरान्त उस महाबुद्धिमान राजा ने महर्षि विश्वामित्र को सन्तुष्ट और प्रसन्न करने के लिए उसके पुत्र का पालन-पोषण किया। गले में बंधने के कारण विश्वामित्र के उस महातपस्वी पुत्र का नाम गालव पड़ा। इस प्रकार महर्षि विश्वामित्र का पुत्र उस बलवान् राजा के द्वारा बचाया गया। उसने अपनी व्रत परायणता, भक्ति, कृपा सत्यप्रतिज्ञा, एवं विनय से महर्षि विश्वामित्र की स्त्री का भी भरण-पोषण किया। विश्वामित्र के आश्रम के समीप मृगों शूकरों, महिषों एवं अन्यान्य वन्य जन्तुओं को मारकर उनके माँस को वह पकाता था। और मौनव्रत धारण कर पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में चाण्डालों के समीप निवास करने की दीक्षा ग्रहण कर निवास करता रहा। इधर पिता, पुत्र दोनों की अनुपस्थिति में महर्षि वसिष्ठ पुरोहितों एवं उपाध्यायों के सहयोग से राजधानी अयोध्या, राज्य, एवं अन्तःपुर की रक्षा करते रहे। कुमार सत्यव्रत अपने बाल्य स्वभाव के कारण तथा भावीवश महर्षि वसिष्ठ के ऊपर बहुत अधिक क्रुद्ध थे। क्योंकि पिता द्वारा घर से निकाले जाते समय जब वे रोते हुए राष्ट्र से बाहर निकल रहे थे तब महर्षि वसिष्ठ ने किसी कारण से उन्हें निवारित नहीं किया। पाणिग्रहण अर्थात् विवाह संस्कार के मंत्रों की समाप्ति सातवें चरण में होती है, (सप्त पदी के होने के बाद विवाह संस्कार सम्पन्न होता है) किन्तु उसी सप्तपदी के समाप्त होने के अवसर पर उस विदर्भ राज की स्त्री को बलपूर्वक छीन लिया था। महर्षि वसिष्ठ धर्म की मर्यादा को जाननेवाले थे, अतः उन्होंने सत्यव्रत के उक्त कार्य का अनुमोदन नहीं किया, और मंत्रों की मर्यादा भ्रष्ट होने के भय से कुमार सत्यव्रत के ऊपर उन्होंने मन से क्रोध किया। महर्षि वसिष्ठ ने गुरु की मर्यादा रक्षा के ध्यान से सत्यव्रत के ऊपर वह कोप किया था, उधर कुमार सत्यव्रत उनके इस मौनावलम्बन का जो नगर से निकालते समय उन्होंने अपनाया था, तात्पर्य नहीं जान सके। महा मनस्वी वसिष्ठ जी ने सोचा कि पिता की मृत्यु हो जाने के बाद इन्द्र ने बारह वर्षों तक अराजकता से अधर्म बढ़ जाने के कारण वृष्टि नहीं की, इधर सत्यव्रत भी पिता की आज्ञा से बारह वर्ष तक वन में दीक्षा ग्रहण कर निवास कर रहा है पृथ्वी पर लोगों की जीविका कष्ट साध्य हो गई है, सत्यव्रत के आ जाने से उसके वंश का निस्तार तो हो ही जायगा। ऐसा विचार कर महर्षि वसिष्ठ ने उस समय पिता द्वारा निष्कासित किये गये सत्यव्रत को निवारित किया, और कहा कि तुम्हें राज्य पद पर अभिषिक्त कर रहा हूँ।' उधर बलवान राजकुमार सत्यव्रत पिता की आज्ञा से बारह वर्ष का व्रत लेकर जिस समय वन में निवास कर रहा था, उस समय एक दिन माँस का अभाव हो गया, तब उसने महात्मा वसिष्ठ की सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाली कामधेनु को देखा। क्रोध, मोह, क्षुधा एवं अत्यन्त थके माँदे होने के कारण, उसने विचार किया कि मैं इस समय चाण्डालों के समीप निवास करता हूँ, उन्हीं के समान आचरण भी मुझे करना चाहिये, क्यों न इसी को मारकर क्षुधा शान्त करूं।' यह सोचकर उसने

Funding by IKS-MoE

वसिष्ठ की उस कामधेनु को मार डाला । महाबलवान् राज कुमार सत्यव्रत ने इस प्रकार उस कामधेनु के मांस को स्वयं खाया और महर्षि वसिष्ठ के पुत्रादिकों को भी खिलाया । इस दारुण वृत्तान्त को सुनकर परमतेजस्वी महर्षि वसिठ ने कुमार सत्यव्रत को छोड़ दिया और उससे कहा, हे क्रूर कर्मा ! अब हम तुम्हें गिरा रहे हैं, हे पुरुषाधम ! यदि तुम्हारे ये तीन शंकु (महापाप रूप कील) न होते तो तुम्हारे ऊपर लोह का शंकु गिराता । पिता के असन्तुष्ट करने के कारण, गुरु की कामधेनु की हत्या करने के कारण, विना संस्कार आदि किये माँस भक्षण करने के कारण तुमने तीन धार्मिक अपराध किये हैं । महातपस्वी महर्षि वसिष्ठ ने सत्यव्रत के इन तीन शंकु सदृश महान् अपराधों का विचार कर उसका त्रिशंकु नाम रख दिया, इसी कारण उसका त्रिशंकु नाम भी पड़ गया । इधर राजर्षि विश्वामित्र जब तपस्या से निवृत्त होकर आश्रम को लौटे और स्त्री पुत्रादिकों के सत्यव्रत द्वारा भरण पोषण किये जाने का वृत्तान्त सुना तो परम प्रसन्न होकर त्रिशंकु को वरदान दिया । विश्वामित्र के वर दान देते समय राजकुमार सत्यव्रत ने सारा शाप वृत्तान्त निवेदन किया । कौशिक ने उस बारह वर्ष के अनावृष्टि जनित दुष्काल के बीत जाने पर सत्यव्रत को राज्यपद पर अभिषिक्त किया, और उसके द्वारा यज्ञादि शुभ कार्य सम्पन्न कराया, सभी देवगण तथा महर्षि वसिष्ठ देखते ही रह गये । यज्ञावसान में उस त्रिशंकु के स्नान करने से कर्मनाशा नामक नदी अवतीर्ण हुई जो विन्ध्याचल पर्वत के समीप जंगलों और पहाड़ियों में से बहती है । वह कर्मनाशा नदी महापुण्यदायिनी तथा मंगलकारी है । इस प्रकार महान ऐश्वर्यशाली विश्वामित्र ने सत्य व्रत को स्वर्ग में प्रतिष्ठित किया । महर्षि वसिष्ठ उनके इस अद्भुत कार्य को देखते रह गये । पौराणिक लोग इस विषय में इन दो श्लोकों को उपस्थित करते हैं । जिनका आशय इस प्रकार है । 'महामुनि विश्वामित्र की कृपा से त्रिशंकु स्वर्ग में विराजमान है, उस परम बुद्धिमान की कृपा से वह महातेजस्वी होकर देवताओं के साथ शोभा पाता है, त्रिशंकु रुप ग्रह के आकर्षण से विभूषित होकर, तीन प्रकार के भावों से अलंकृत हेमन्त में चन्द्रमा के समान सुन्दरी एक मनोहर रमणी उसके पास धीरे धीरे जाती है ।' उस राजा त्रिशंकु की पत्नी केकयवंश में उत्पन्न सत्यव्रता नाम की थी । उसने हरिश्चन्द्र नामक परम धार्मिक पुत्र को उत्पन्न किया, वह राजा हरिश्चन्द्र त्रिशङ्कु के पुत्र रूप में परम विख्यात था । उसने अपने समय में राजसूय यज्ञ सम्पन्न किया था, समस्त पृथ्वी मण्डल का वह एकच्छत्र सम्राट था, ऐसा सुना जाता है । हरिश्चन्द्र का पुत्र परम बलवान् रोहित था, रोहित का पुत्र हरित हुआ, हरित का पुत्र चंचु नाम से प्रसिद्ध हुआ । उस चंचु के विजय और सुदेव नामक दो पुत्र हुए । विजय सभी क्षत्रियों का विजेता था, इसी कारण से उसका नाम मी विजय था । विजय का पुत्र रुरुक हुआ, जो अपने समय का परम धर्मार्थ वेत्ता राजा था । रुरुक का पुत्र हृतक हुआ, और उसका बाहु उत्पन्न हुआ । हैहय और तालजंघ के वंशों में उत्पन्न होने वालों ने परम व्यसनी राजा वाहु को परास्त कर दिया । उनके साथ शक, यवन काम्बोज पारद और पल्हवों के वँश में उत्पन्न होनेवाले भी थे ! सत्ययुग का समय होने पर भी वह राजा वाहु परम धार्मिक नहीं था, उस राजा वाहु का पुत्र विष के साथ गर्भ से उत्पन्न हुआ, उसका नाम सगर पड़ा । पिता के शत्रुओं द्वारा की गई दुरवस्था में भृगु के आश्रम में उसकी रक्षा उर्व ने

की थी। भार्गव से आग्नेय अस्त्र प्राप्त कर राजा सगर ने समस्त पृथ्वी पर घूम घूम कर हैहय और तालजंघ के वंश में उत्पन्न होने वालों में सब का संहार कर डाला। उस महाबलवान् राजा सगर ने शकों, पल्हवों, पारदों एवं अन्य क्षत्रियों को भी अपने पूर्वजों के अधिकार एवं धर्म से वंचित कर दिया। ॥ ३४—१२५ ॥

ऋषियों ने कहाः—सूत जी! वे राजा सगर किस प्रकार विष के साथ उत्पन्न हुए, और किस लिए उस अच्युत ने महान तेजस्वी शकों, एवं क्षत्रियों के कुलोचित धर्मों को क्रुद्ध होकर निरस्त कर दिया। ॥ १२६ ॥

सूत बोलेः— ऋषिगण! ऐसी प्रसिद्धि है कि पूर्वकाल में राजा बाहु के व्यसनी होने के कारण उनका राज्य हैहय, तालजंघ एवं शकों के साथ यवन, पारद, कम्बोज और पल्हवों ने आक्रमण करके सारा राज्य छीन लिया। उस समय इन पाँचों गणों ने हैहय के लिये यह आक्रमण किया था। इन क्षत्रिय पुङ्गव बलवान् शत्रुओं द्वारा राज्य छीन लिए जाने पर धर्मात्मा राजा बाहु घर द्वार छोड़ कर पत्नी के साथ बन को चले गये और वहाँ तपस्या करना प्रारंभ किया। कुछ समय बाद एक दिन राजा जल लेने के लिए गये, और अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल होने के कारण बीच मार्ग में ही उनकी मृत्यु हो गई। उनकी यादवी नामक पत्नी, जो उस समय गर्भवती थी, अनुगमन के लिए प्रस्तुत हुई, उसके गर्भ को मारने की नीयत से सपत्नी ने उसे विष दे दिया था। यादवी को पति की चिता बनाकर उसने बैठा दिया और आग भी लगादी, उसी बीच भार्गव और्व मुनि वहाँ आये और करुणावश उसे जलने से निवारित किया। उन्हीं और्व ऋषि के आश्रम में यादवी ने सपत्नी के दिये गए विष के साथ महाबाहू सगर नामक परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न किया। मुनिवर और्व ने उस महा तेजस्वी सगर का जातकर्मादि संस्कार सम्पन्न किया और वेद शास्त्रों का सम्पूर्ण अध्ययन कराकर अस्त्र विद्या भी दी। उसी समय जमदग्नि के पुत्र और्व मुनि से सगर ने उस आग्नेयास्त्र को प्राप्त किया, जिसे बड़े बड़े राक्षस भी सहन करने में असमर्थ थे। उसी अस्त्र बल से तथा अपने शारीरिक बल से उस परम प्रतापी राजा सगर ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हैहयों का वध इस प्रकार कर डाला, जैसे रुद्र सृष्टि के अवसान में जीव समूहों का संहार करते हैं। हैहयों को मारने के उपरान्त राजा सगर ने शक, यवन, कम्बोज पारद, एवं पह्लवों को भी निर्वीज कर देने का इरादा किया। महाबलवान् एवं पराक्रमी सगर से अत्यन्त पीड़ित एवं भयभीत होकर वे सब शरण खोजते हुए जब महर्षि वसिष्ठ के पास पहुँचे तब महामुनि ने वचन देकर उनको अभय दान दिया और राजा सगर को इस संहार कार्य से निवारित किया। राजा सगर ने इधर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का, उधर गुरु के आदेश का विचार करके उन सबों के धर्मों को नष्ट कर दिया तथा वेष भूषा आदि भी बदल दी। शकों का उसने आधा शिर मुण्डित करा कर छोड़दिया, यवनों के पूरे शिर को मुंडित करा के छोड़ दिया, कम्बोजोंको भी पूरा शिर मुंडित करा के छोड़ दिया, पारदों के केवल केश छोड़ दिये मूँछ दाढ़ी सब मुण्डित करा दिये, पल्हवों की केवल दाढ़ी रखवा कर छोड़ दिया। उस महान् बलशाली ने इन सब को वेदाध्ययन, यज्ञ हवनादि से सर्वथा वंचित कर

दिया । ये शक, यवन, काम्बोज, पह्लव, पारद, कलिस्पर्श, नाहिषिक, दार्व, चोल एवं खस जाति वाले सभी पहले क्षत्रिय वर्ण के थे, इनके धर्म को उस महाबलवान् राजा ने वसिष्ठ का वचन मानकर निराकृत कर दिया । इस प्रकार उस धर्मविजयी राजा ने सारी पृथ्वी जीतकर अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कर अश्व को भूमण्डल भर घुमाया । घुमाते समय उसका अश्वमेध यज्ञ का वह अश्व पूर्व दक्षिण समुद्र के तटवर्ती प्रान्त में अपहृत कर लिया गया और पृथ्वी के भीतर छिपा दिया गया । तदनन्तर राजा सगर ने अपने सभी पुत्रों से समुद्र के उस तटवर्ती समस्त प्रान्तों को खनवा डाला, खनते समय उसके पुत्रगण उस महासमुद्र के अन्तिम छोर पर पहुँच गये और वहाँ पर आदि पुरुष, हरि कृष्ण, प्रजापति, नारायण, प्रभु, हंस आदि अनेक नामों एवं रूपों से प्रकाशित होनेवाले भगवान् विष्णु को महर्षि कपिल के वेश में उपस्थित देखा । चोर जानकर उनके पास ज्योंही उनकी आँख के समाने पहुँचे, त्योंही परम तेज को न सहन कर भस्म हो गये, केवल चार पुत्र शेष रह गये । उनके नाम वर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरत और पंचवन थे, उस महान् ऐश्वर्यशाली राजा सगर के वंश को बढ़ाने वाले ये चार पुत्र कहे जाते हैं । भगवान् नारायण ने राजा को सुन्दर वरदान दिये । जिनसे उनको अपने वंश का अक्षयत्व, सौ अश्वमेध यज्ञों के सम्पन्न करने का सुअवसर, परम ऐश्वर्य सम्पन्न समुद्र का पुत्रत्व, एवं स्वर्ग लोक में अनन्त काल पर्यन्त निवास प्राप्त हुए । समस्त सरिताओं का स्वामी समुद्र उस समय उनके समीप अश्व लेकर उपस्थित हुआ और नमस्कार किया । राजा के उसी महान् कर्म से उसे सागरत्व (सगर के पुत्रत्व) की उपाधि प्राप्त हुई । इस प्रकार समुद्र से उस अश्वमेधयज्ञ के अश्व को प्राप्त कर राजा सगर ने अन्य सौ अश्वमेध यज्ञों को निर्विघ्न सम्पन्न किया । उसके उस प्रथम यज्ञ के पीछे-पीछे चलने वाले जो साठ सहस्र पुत्र भस्म हुए थे वे सब के सब महाबलवान् पुत्रगण नरायण के तेज में तद्रूप होकर प्रविष्ट होगये—ऐसा हमने सुना है । ॥१२७--१५३॥

ऋषियों ने पूछा: - सूत जी । राजा सगर के वे साठ सहस्र पुत्र गण, जो सब के सब परम बलवान् एवं विजयी थे, किस प्रकार से अथवा किस विधि से उत्पन्न हुए—यह बतलाइये । ॥१५४—॥

सूत जी बोले :—उस राजा सगर की दो स्त्रियाँ थीं, जिन्होंने अपनी घोर तपस्या द्वारा समस्त पापों को भस्म कर दिया था, बड़ी स्त्री विदर्भराज की कन्या केशिनी नाम से विख्यात थीं, उनकी छोटी परम धर्मिष्ठ पत्नी जो थीं, वे राजा अरिष्ठनेमि की कन्या थीं, अपने रूप में सारे भूमण्डल में वे अकेली थीं । (उनका नाम सुमति था) तपस्या द्वारा सन्तुष्ट किये गये महामुनि और्व ने उन्हें वरदान दिया, कि इनमें से एक वंश कर्त्ता पुत्र को उत्पन्न करेगी और दूसरी साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न करेगी राज सभा में मुनि के इन दोनों वरदानों में से केशिनी ने वंशकर्त्ता एक पुत्र की प्राप्ति का वरदान माँगा, सुपर्णभगिनी दूसरी रानी सुमति ने अपने मन के अनुकूल महामुनि से साठ सहस्र पुत्रों को प्राप्त करने का वरदान माँगा । तदनुसार समय आने पर बड़ी रानी केशिनी ने ज्येष्ठ पुत्र असमञ्ज को उत्पन्न किया, बाद में चलकर वह सगर पुत्र राजा असमंज काकुत्स्थ नाम से विख्यात हुआ । यशस्विनी रानी सुमति ने अपने गर्भ से एक तुम्ब उत्पन्न किया जिसके बीच से साठ सहस्र पुत्र निकले । उत्पन्न होने के बाद वे गर्भ घृत से भरे हुए पात्रों में रखे गये, राजा ने

Funding by IKS-MoE

उन पात्रों को साठ सहस्र धायों को पालने के लिए सौंपा । नव महीने बीत जाने पर उन पात्रों से सुखपूर्वक वे साठ सहस्र महाभाग्यशाली राजकुमार बाहर निकले, जिन्हें देखकर राजा सगर को परम सुख प्राप्त हुआ । बहुत दिन व्यतीत हो जाने पर वे सब राजकुमार युवावस्था को प्राप्त हुए । प्रथम अश्वमेध यज्ञ के अश्व के पीछे वे साठ सहस्र पुत्र गये थे । राजा सगर के सब से बड़े औरस पुत्र नर व्याघ्र असमंज महाबलवान् थे, उनका दूसरा नाम वर्हिकेतु भी प्रसिद्ध था । पहले वे नगर निवासियों के अहितकर कार्यों में लगे रहते थे, इससे पिता ने उन्हें निर्वासित कर दिया था । असमञ्ज के परम बलवान् अंशुमान नामक पुत्र हुए । अंशुमान् के परम धर्मात्मा दिलीप नाम से विख्यात पुत्र हुए । दिलीप से महान् तेजस्वी भगीरथ नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ । इसी भगीरथ ने अपनी पूजा एवं क्रिया के बल से विमानों से सुशोभित, समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा को पुत्री रूप में प्राप्त किया और समुद्र पर्यन्त उसकी पावनी धारा से पृथ्वी को सुशोभित किया । पुराणों के जाननेवाले आज भी इस श्लोक (यशोगाथा) का गान करते हैं कि 'राजा भगीरथ ने अपने कर्मों द्वारा गंगा को पृथ्वी पर उतारा था', राजवंशों के वृतान्त को जाननेवाले अर्थात् ऐतिहासिक लोग इसीलिए गंगा को भागीरथी कहते हैं । उस राजा भगीरथ का पुत्र श्रुत नाम से विख्यात हुआ, उसका उत्तराधिकारी नाभाग हुआ, जो सर्वदा अपने धर्म में तत्पर रहनेवाला था । नाभाग का पुत्र अम्बरीष था, और उसका पुत्र राजा सिन्धुद्वीप हुआ । पुरानी कथाओं के जाननेवाले लोग इस वंश का इतिहास इसी प्रकार सुनाते हैं—ऐसा हमने भी सुना है । ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा नाभाग के पुत्र अम्बरीष की भुजाओं से पाली गई पृथ्वी तीनों तापों से सर्वदा के लिए विहीन हो गई थी, अर्थात् उसके समय में प्रजाओं को किसी प्रकार का कष्ट नहीं था । अम्बरीष के पुत्र सिन्धुद्वीप का पुत्र आयुतायु हुआ, वह भी परम बलशाली राजा था । उस आयुतायु का उत्तराधिकारी महान् यशस्वी राजा ऋतुपर्ण हुआ । यह ऋतुपर्ण राजा नल का परम सुहृद एवं बलवान् राजा था, दिव्य अक्ष विद्या में वह परम निपुण था । पुराणों में दो नल विख्यात हैं, वे दोनों ही परम साहसी एवं वीर हैं, उनमें एक नल राजा वीरसेन के पुत्र थे, दूसरे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए थे । राजा ऋतुपर्ण के पुत्र राजा सर्वकाम थे, उनके पुत्र का नाम सुदास था, इस सुदास का दूसरा नाम हंसमुख भी था । (अथवा उसका मुख हंस की तरह था) उस सुदास के पुत्र राजा सौदास के नाम से कहे जाते हैं । इनके दूसरे नाम कल्माष पाद तथा मित्रसह भी विख्यात है । महान् तेजस्वी महर्षि वसिष्ठ ने राजा कल्माषपाद के क्षेत्र में (स्त्री में) इक्ष्वाकु के वंश की वृद्धि के लिए अश्मक नामक पुत्र को उत्पन्न किया । अश्मक का पुत्र उरकाम हुआ, उसका पुत्र मूलक था । उस राजा मूलक के विषय में आज भी लोग यह कहते हैं कि वह राजा मूलक राम (परशुराम) के भय से स्त्रियों के बीच में निवास करता था, समर्थ होते हुए भी वह वस्त्र विहीन होकर अपनी रक्षा के लिए स्त्रियों को कवच बनाये हुए था । अथवा पुरुषों का वेश छोड़कर स्त्रियों का वेश धारण किये हुए था । उस राजा मूलक के पुत्र परम धर्मात्मा राजा शतरथ कहे जाते हैं । उस राजा शतरथ से परम बलवान् राजा ऐडिविड उत्पन्न हुए । वे राजा ऐडिविड परम कान्तिशाली थे । उनके पुत्र प्रतापशाली कृतशर्मा हुए, कृतशर्मा के विश्वमहत् नामक पुत्र उत्पन्न हुए । उनके पुत्र दिलीप हुए, जो

Funding by IKS-MoE

खट्वांगद नाम से भी प्रसिद्ध थे। वे राजा दिलीप स्वर्गलोक से पृथ्वी लोक पर आकर दो घड़ी तक जीवित रहे। अपने सत्य, बुद्धि एवं बल से उन्होंने तीनों लोकों को पराजित कर दिया था। उन राजा खट्वांगद के पुत्र दीर्घवायु हुए, उनसे राजा रघु हुए। रघु के परम बलवान् अज उत्पन्न हुए। उन्हीं अज से इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करनेवाले परम बलशाली राजा दशरथ हुए। दशरथ के पुत्र रामचन्द्र परम धर्मज्ञ थे, समस्त लोक में उनकी धर्मज्ञता विख्यात थी। राम के अतिरिक्त भरत, लक्ष्मण और महाबलवान् शत्रुघ्न नामक उनके तीन पुत्र और थे। मधु के पुत्र लवणासुर का संहार कर, और मधुवन में प्रवेशकर शत्रुघ्न ने वहीं पर मथुरा नामक पुरी की प्रतिष्ठापना की थी। विदेह की राजकुमारी से उत्पन्न होनेवाले सुबाहु और शूरसेन नामक दोनों पुत्रों ने अपने पिता शत्रुघ्न के साथ मथुरा पुरी का शासन एवं वहाँ की प्रजाओं का पालन पोषण किया था। लक्ष्मण के अङ्गद और चन्द्रकेतु नामक दो पुत्र थे, उन दोनों के राज्य हिमवान् पर्वत के सीमावर्ती प्रान्तों में विस्तृत था। बड़े पुत्र अङ्गद की राजधानी कारपथ देश में अंगदीया नाम से विख्यात पुरी थी। मल्ल (बलवान्) चन्द्रकेतु की चन्द्रवक्रा नामक परम शोभायमान पुरी थी। भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर दोनों बड़े वीर थे। उन दोनों महान् बलशालियों की राजधानी गान्धार नामक सिद्ध देश में थी। तक्ष की परम विख्यात परम रमणीय तक्षशिला नामक पुरी थी। वीरवर पुष्कर की भी पुष्करावती नाम से विख्यात पुरी राजधानी थी। जो पुराणों के जाननेवाले लोग हैं, वे परम बुद्धिमान् राम के विषय में उनके माहात्म्य को प्रकट करनेवाली तत्त्वपूर्ण यशोगाथाएँ गाते हैं। वे ऐसा कहते हैं कि राम श्यामलवर्ण के, लाल नेत्रोंवाले, तेज से देदीप्यमान मुखमण्डलवाले एवं मितभाषी युवा थे। उनका मुख परम सुन्दर था, उनकी दोनों बाहुएँ घुटनों को छूनेवाली थीं सिंह के समान उनका विशाल कन्धा था, उनके भुजदण्ड विशाल थे। राम ने दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया था। उनके राज्य में चारों ओर ऋग्वेद यजुर्वेद एवं सामवेद की सुन्दर मनोहारिणी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। उनके धनुष की प्रत्यंचा की ध्वनि परम कठोर थी। उनके राष्ट्र में किसी को भी किसी प्रकार का कष्ट नहीं था, लोगों में खूब दान करो, खूब खाओ, पीओ, की धूम मची थी। उन राम ने जन स्थान में निवास कर देवताओं का एक परम आवश्यक कार्य सम्पन्न किया था। उन मनुज शिरोमणि महान् यशस्वी राम ने पुलस्त्य मुनि के वंश में उत्पन्न होनेवाले, पापात्मा रावण का संहार सीता को खोजते के समय किया था। वे दशरथ पुत्र राम परम बलशाली, सर्व गुण सम्पन्न, एवं अपने अनुपम तेज से देदीप्यमान थे। सूर्य एवं अग्नि को भी उन्होंने अपने तेज से अतिक्रान्त कर दिया था। परम प्रभावशाली महाबाहु इक्ष्वाकु के कुल को आनन्दित करनेवाले राम परिवार समेत रावण का विनाश कर इसी प्रकार स्वर्ग को चले गये। श्रीराम के पुत्र जो उत्पन्न हुए वे कुश नाम से विख्यात हुए, लव नामक महा बलवान् एक पुत्र और था, उन दोनों के देशों को सुनिये। कुश का राज्य कोशला नाम से विख्यात था, उसकी राजधानी कुशस्थली नामक पुरी थी, कुश ने विन्ध्याचल के मनोहर पर्वत शिखर पर उसकी स्थापना की थी। महाबलवान् लव का राज्य उत्तर कोशला के नाम से विख्यात था। उसकी परम विख्यात श्रावस्ती पुरी राजधानी थी। कुश के वंश को सुनिये। कुश के पुत्र परम धर्मात्मा अतिथि थे, वे अतिथियों का विशेष सम्मान करते थे। अतिथि के पुत्र

Funding by IKS-MoE

परम विख्यात राजा निषध हुए। निषध के पुत्र नल और नल के पुत्र नभ हुए। नभ के पुत्र पुण्डरीक हुए, पुण्डरीक के बाद उनके पुत्र क्षेमधन्वा का स्मरण किशा जाता है। क्षेमधन्वा के पुत्र परम बलवान् राजा देवानीक हुए, देवानीक के पुत्र परम प्रभावशाली राजा अहीनगु हुए। अहीनगु के उत्तराधिकारी उनके पुत्र महान् यशस्वी राजा पारिपात्र हुए, उनके पुत्र दल और दल के पुत्र राजा बल उत्पन्न हुए। बल के पुत्र परम धर्मात्मा राजा औक्ष हुए, उन औक्ष के पुत्र वज्रनाभ हुए जिनके पुत्र शङ्खन हुए। शङ्खन के परम विद्वान ध्युषिताश्व नामक पुत्र सुने जाते हैं। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा ध्युषिताश्व के पुत्र राजा विश्वसह हुए। राजा राजा विश्वसह के पुत्र हिरण्य नाभ कौशल्य के नाम से विख्यात हुएं। उनके पुत्र वशिष्ठ हुए। वे जैमिनि के पौत्र के शिष्य रूप में प्रसिद्ध हैं, सभी माँगलिक कार्यों में उनकी सिद्धहस्तता प्रसिद्ध थी। इन्होंने पाँच सौ संहिताओं का विधिवत् अध्ययन किया था, परम बुद्धिमान् यज्ञावल्क्य ने इन्हीं से योग की साङ्गोपाङ्ग शिक्षा प्राप्त की थी उनके पुत्र परम विद्वान् पुष्प हुए। पुष्प के पुत्र ध्रुवसन्धि नाम से विख्यात हुए, उनके पुत्र सुदर्शन हुए, सुदर्शन से अग्नि वर्ण की उत्पत्ति हुई। अग्नि वर्ण के पुत्र शीघ्र नाम से विख्यात हुए, शीघ्रक के पुत्र मनु कहे जाते हैं। मनु योग मार्ग का अवलम्ब लेकर कलाप नामक ग्राम में निवास करते थे, परम ऐश्वर्यशाली ये मनु इक्कीसवें युग में क्षत्रिय धर्म के पुनः प्रवर्तक रूप में प्रसिद्ध हुए। मनु के पुत्र प्रसुश्रुत थे। उनके पुत्र सुसंधि हुए। सुसंधि के मर्ष नामक पुत्र हुए, जिनका दूसरा नाम सहस्वान भी था। सहस्वान के पुत्र राजा विश्रुतवान् के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन राजा विश्रुतवान् के पुत्र राजा वृहद्बल हुए। इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न होनेवाले प्रायः यही राजागण स्मरण किये जाते हैं, जो इस वंश के प्रमुख राजा थे, उनका वर्णन प्रधान रूप से कर दिया गया है। अदिति के पुत्र विवस्वान् की इस सृष्टि विवरण का जो भली भाँति पाठ करता है, वह सन्तति वाला होता है तथा विवस्वान् के पुत्र मनु का सान्निध्य प्राप्त करता है। प्रजाओं का पुष्टि देनेवाले श्राद्धों में पूजनीय पितरगण एवं देवगण का यह वृत्तान्त जो पढ़ता है, वह पाप विहीन, रजोगुण रहित, अविनाश शील एवं दीर्घायु वाला होता है। यदि अपुत्री है तो उसे पुत्र की प्राप्ति होती है, दीर्घायु मिलती है, और अन्त में परम गति प्राप्ति होती है। ॥१५५—२१५॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते इक्ष्वाकुवशानुकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

नवासीवाँ अध्याय

वैवस्वत मनु के वंश का वर्णन।

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! तदनन्तर विकुक्षि के अनुज राजा निमि के वंश का वर्णन सुनिये। इन राजा निमि ने गौतम के आश्रम के चारों ओर जयन्त नामक परम सुन्दर एक पुर की स्थापना की थी, जो देवपुर के समान मनोहर एवं रम्य था। उन्हीं निमि के वंश में ऋषि सत्तम जनक से नेमि नामक परम धर्मात्मा

राजा उत्पन्न हुआ, जो सभी द्वारा नमस्करणीय था। परम तेजस्वी महाराज इक्ष्वाकु से जो पुत्र उत्पन्न हुआ, वहमहर्षि वसिष्ठ के शाप से विदेह (शरीर रहित) हो गया। विदेह के अरणी के तीन पर्वों के मंथन करने से महान् तेजस्वी मिथि नामक पुत्र हुये, मिथि नाम से ही उनकी ख्याति हुई, इस प्रकार के जनन (उत्पत्ति) होने के कारण उनका जनक नाम भी प्रसिद्ध हुआ। वे मिथि परम बलवान् राजा थे, उन्हीं के नाम पर मिथिला पुरी की ख्याति हुई। इसी राजा जनक से राजा उदावसु की उत्पत्ति हुई। उदावसु से धर्मात्मा राजा नन्दिवर्धन की उत्पत्ति हुई। नन्दिवर्धन से वीर एवं धार्मिक सुकेतु की उत्पत्ति हुई। सकेतु के भी धर्मात्मा एवं महाबलवान् देवरात उत्पन्न हुए। उन देवरात से धर्मात्मा राजा वृहदुत्थ की उत्पत्ति सुनी जाती है। राजा वृहदुत्थ के पुत्र परम प्रतापी महावीर्य नाम से विख्यात थे, महावीर्य के पुत्र धृतिमान् थे, उनके पुत्र सुधृति थे। सुधृति के पुत्र परम तपस्वी एवं धर्मात्मा धृष्टकेतु थे। धृष्टकेतु के पुत्र हर्यश्व भी परम विख्यात राजा थे। हर्यश्व के पुत्र मरु और मरु के पुत्र प्रतित्वक हुए। प्रतित्वक के परम धर्मात्मा राजा कीर्तिरथ थे। राजा कीर्तिरथ के पुत्र देवमीढ़ नाम से प्रसिद्ध थे। देवमीढ़ के पुत्र विवुध और विवुध के पुत्र धृति हुए। उस राजा महा धृति के पुत्र परम प्रतापी शाली राजा कीर्तिराज हुए। कीर्तिराज के पुत्र परम विद्वान राजा महारोमा नाम से विख्यात थे। राजा महारोमा के पुत्र स्वर्णरोमा हुए। स्वर्णरोमा के पुत्र राजा ह्रस्वरोमा हुए। ह्रस्वरोमा के पुत्र राजा सीरध्वज सुने जाते हैं। उन्हीं राजा सीरध्वज के पृथ्वी जोतते समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव हुआ—ऐसी प्रसिद्धि है। वे सीता रामचन्द्र की परम साध्वी पतिव्रता सद्व्रत-परायणा पत्नी थीं। ॥ १—१५ ॥

शांशपायन बोले:— सूत जी! पृथ्वी जोतते समय परम यशस्विनी सीता देवी का प्रादुर्भाव किस प्रकार हुआ? और राजा सीरध्वज किस प्रयोजन वश उस क्षेत्र को जोत रहे थे। जिसमें सीता की उत्पत्ति हुई?। ॥ १६ ॥

सूत ने कहा:—"अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर महाराजा सीरध्वज ने विधिपूर्वक जिस अग्निक्षेत्र का कर्षण किया, उसी से सीता का जन्म हुआ। उस राजा सीरध्वज से भानुमान् का जन्म हुआ, जो मैथिल नाम से विख्यात था। उसका भाई कुशध्वज था, जो काशी का राजा हुआ। उस राजा भानुमान् का पुत्र प्रतापशाली प्रद्युम्न हुआ, उसका पुत्र मुनि था, मुनि से उर्जवह की उत्पत्ति कही जाती है। उर्जवह से सुतद्वाज की उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र शकुनि हुआ, उस शकुनि का पुत्र स्वागत हुआ, जिसका पुत्र सुवर्चा कहा जाता है। सुवर्चा का पुत्र श्रुत और श्रुत का पुत्र सुश्रुत हुआ। सुश्रुत का पुत्र जय और जय का पुत्र विजय हुआ। विजय का पुत्र ऋत और ऋत का पुत्र सुनय कहा जाता है, सुनय से वीतहव्य की उत्पत्ति हुई, वीतहव्य का पुत्र धृति हुआ। धृति का पुत्र वहुलाश्व हुआ, वहुलाश्व का पुत्र कृति हुआ। इसी राजा कृति तक महान् प्रतापी जनक नाम धारी राजाओं का वंश प्रतिष्ठित माना जाता है। मैथिल नामधारी राजाओं का वर्णन किया जा चुका अब चन्द्रमा के वंश का भी वर्णन सुनिये।" ॥ १७—२३ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते मैथिल वंशानुकीर्तनं नाम नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

Funding by IKS-MoE

नब्बेवाँ अध्याय

चन्द्रमा का जन्म वृतान्त,

सूत बोले:—"ऋषि वृन्द ! चन्द्रमा के पिता परम तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली अत्रि ऋषि थे। वे समस्त लोकों के कल्याणार्थ तपस्या में निरत रहते थे। मनसा, वाचा, कर्मणा सर्वदा शुभ कार्यों में ही वे तत्पर रहा करते थे। काष्ठ, भीत अथवा पत्थर की चट्टान की भाँति परम तेजस्वी वे महर्षि सर्वदा ऊपर बाहु किये हुए ऐसी तपस्या में— जिसका नाम ही दुश्चर था—निरत थे। ऐसा हम लोगों ने सुना है कि उस कठोर तपस्या में महर्षि अत्रि देवताओं के तीन सहस्र वर्ष तक लगे रहे। परम ब्रह्मचारी ऊर्ध्वरेता महर्षि अत्रि ने इतनी लम्बी अवधि तक पलक मारने की इच्छा नहीं की, अर्थात् निर्निमेष तपस्या में लगे ही रहे। इस परम कठोर तप के प्रभाव से द्विजवर्य महाबुद्धिमान् अत्रि का शरीर चन्द्रमा की भाँति निर्मल हो गया। आत्मा को वश में करनेवाले उन भगवान् अत्रि के सोमत्व ने ऊर्ध्व देश पर आक्रमण किया, अर्थात् उनके शिरोभाग की अतीव कान्ति बढ़ गई, ठीक उसी समय दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए, उनके दोनों नेत्रों से सोम नीचे चू पड़ा। ब्रह्मा के आदेशानुसार उस गर्भ को दसों देवियों (दिशाओं) ने धारण कर लिया, किन्तु एक साथ मिलकर धारण करने पर भी वे उस गर्भ को धारण करने में असमर्थ हो गईं। परम तेजोमय वह गर्भ जब थोड़ी देर के लिए भी दिशाओं द्वारा धारण नहीं किया जा सका, और वे सब स्त्रियाँ अशक्त हो गईं, तब समस्त लोकों का मनोभावन, शीतल किरणोंवाला वह गर्भ उनके उदर से निकलकर समस्त लोकों को प्रकाशमय करता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा। लोक पितामह ब्रह्मा जी ने इस प्रकार गिरते हुए सोम को लोक कल्याणार्थ अपने रथ पर बिठा लिया। विप्रगण ! वह चन्द्रमा दिव्यगुण सम्पन्न हैं, धर्मार्थ में निरत रहनेवाले एवं सत्य प्रतिज्ञ हैं, हमने ऐसा सुना है कि वे एक सहस्र श्वेत घोड़ों के रथ पर विराजमान रहते हैं। अत्रि के पुत्र, परम तेजोमय चन्द्रमा के इस प्रकार पृथ्वी पर गिरने पर देवताओं एवं ब्रह्मा के परम विख्यात सातों मानस पुत्रों ने उनकी स्तुति की। अंगिरा एवं भृगु के पुत्रों ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं आंगिरस के मंत्रों से उनकी विधिवत् स्तुति की। इन सबों से स्तुति किये जाते हुए परम तेजस्वी चन्द्रमा के तेज ने तीनों लोकों को सन्तुष्ट कर दिया, सब को अपने शान्त स्निग्ध प्रकाश से सुप्रसन्न कर दिया। महान् चन्द्रमा ने उस समय ब्रह्मा जी के उस रथ पर विराजमान होकर सागर पर्यन्त विस्तृत पृथ्वी की इक्कीस बार प्रदक्षिणा की। चन्द्रमा का जो तेज पृथ्वी पर गिर पड़ा था, वह औषधियों के रूप में परिणत हो गया, आज भी वे औषधियाँ चन्द्रमा के तेज से जाज्वल्यमान रहती हैं। चन्द्रमा उन्हीं औषधियों द्वारा समस्त लोकों एवं चार प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है, द्विजवर्यगण ! इस समस्त चराचर जगत् के पुष्टि देनेवाले परम ऐश्वर्यशाली भगवान् चन्द्रमा ही एकमात्र हैं। अत्रि के उस परम तपोबल से, देवताओं और ऋषियों की स्तुतियों से तथा अपने शुभ कर्मों द्वारा परम तेजोबल प्राप्त कर महाभाग्यशाली चन्द्रमा दश पद्म वर्षों तक घोर तपस्या में लगे रहे। सुवर्ण के समान शुभ्र वर्णोंवाली जो देवियाँ अपने में इस समस्त चराचर जगत् को धारण करती हैं,

Funding by IKS-MoE

उन्हीं के गर्भ से परम तेजस्वी एवं सर्वसमर्थ चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई और वे अपने कर्मों द्वारा प्रख्यात हुए। ऋषिवृन्द ! तदनन्तर ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा ने चन्द्रमा को समस्त बीजों, औषधियों, ब्राह्मणों एवं जल जगत् का राज्यभार समर्पित किया। इस महान् दायित्वपूर्ण राज्य पद पर प्रतिष्ठित होने पर चन्द्रमा का प्रताप बहुत अधिक बढ़ गया, तपस्वियों में अग्रगण्य चन्द्रमा ने इस पद पर प्रतिष्ठित होकर अपने सुन्दर स्वभाव से समस्त लोक को परम सन्तुष्ट रखा। प्रचेता के पुत्र दक्ष ने दाक्षायणी के गर्भ से उत्पन्न, परम तपो व्रत पालनेवाली सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को समर्पित कीं, जिन्हें लोग नक्षत्र नाम से जानते हैं। ब्राह्मणों के स्वामी चन्द्रमा ने इतने बड़े राज्याधिकार की प्राप्ति के बाद एक विराट् राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान किया, जिसमें लाखों की दक्षिणा प्रदान की। उस विशाल राजसूय यज्ञ में भगवान् हिरण्यगर्भ उद्गाता के पद पर ब्रह्मा ब्रह्मा के पद पर नारायण विष्णु सदस्य के स्थान पर, सनत्कुमार प्रभृति आद्य महर्षियों समेत विराजमान थे। द्विजवर्य वृन्द ! उस यज्ञ में चन्द्रमा ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों को तथा जो सदस्य बने हुए थे उन्हें दक्षिणा रूप में तीनों लोकों को समर्पित कर दिया—ऐसा हमने सुना है। उस चन्द्रमा की सिनी, कुहू, वपु, पुष्टि, प्रभा, वसु, कीर्ति, धृति तथा लक्ष्मी—ये नवों देवियाँ सेवा कर रही थीं। उस राजसूय यज्ञ का अवभृथ स्नान कर चुकने के उपरान्त सभी देवताओं और ऋषियों से सत्कार प्राप्त कर चन्द्रमा जब निश्चिन्त हो गये, तब अपने उस विशाल साम्राज्य के सिंहासन पर समासीन होकर, राजाधिराज बनकर दसों दिशाओं को दस प्रकार से तपाने लगे। विप्रवृन्द ! ऋषि लोग जिसकी स्तुति करते थे—ऐसे दुष्प्राप्य ऐश्वर्य की प्राप्ति कर लेने के बाद चन्द्रमा की मति भ्रान्त हो गई, उसके विनय पर अविनय ने अधिकार कर लिया (अर्थात् वह बड़ा कठोर एवं दम्भी हो गया)। बृहस्पति की तारा नामक पत्नी को, जिनकी बड़ी (ख्याति) थी, वह अंगिरा के समस्त पुत्रों की कोई परवा न कर, हर ले गया। देवताओं और देवर्षियों के याचना करने पर भी वह तारा को लौटाने को राजी नहीं हुआ। इस प्रकार किसी प्रकार भी उसने बृहस्पति को तारा के लौटाने का इरादा नहीं किया। द्विज वृन्द ! उस समय अंगिरा के पुत्र शुक्र उसके पिछलग्गू (सहायक) बने थे। महान् तेजस्वी उशना पहले बृहस्पति के पिता का शिष्य था। उसी स्नेह के कारण भगवान् रुद्रदेव उस बृहस्पति के सहायक हुए, और अपना अजगव नामक प्रचण्ड धनुष लेकर उपस्थित हुए। महान् बलशाली रुद्रदेव ने उन प्रमुख ब्रह्मर्षियों के तथा देवताओं के उद्देश से इस महान् अस्त्र का संधान किया, जिससे उसका यश नष्ट हो गया। प्रत्यक्ष तरकामय नामक युद्ध वहाँ मच गया, देवताओं तथा दानवों का वह घोर युद्ध महान् लोकक्षयकारी हुआ। उस युद्ध में तुषित नाम से प्रसिद्ध तीन देवता शेष बच रहे, वे आदिदेव पितामह ब्रह्मा की शरण में गये। लोक पितामह भगवान् ब्रह्मा ने स्वयं शुक्र को एवं इस विनाश कर्म में प्रवृत्त शंकर को निवारित किया और तारा को बृहस्पति को वापस किया। चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली तारा को गर्भवती देखकर विप्रवर्य बृहस्पति ने कहा, क्या तुम अब भी गर्भ त्याग नहीं कर रही हो ? मेरी भूमि में तुम दूसरे वीर्य का किस प्रकार धारण कर सकती हो ? तारा उस दस्यु हन्तम कुमार को इस पर भी नहीं छोड़ सकी थी कि इसी बीच तृण राशि में जलते हुए अग्नि की तरह वह कुमार उत्पन्न हो गया और उत्पन्न होते

ही उस परम ऐश्वर्य शाली ने देवताओं को हत श्री कर दिया। देवता लोग इससे सन्देह में पड़ गये और तारा से कहने लगे, सच सच बतलाओ, यह पुत्र किसका है, चन्द्रमा का अथवा बृहस्पति का। देवताओं के इस प्रकार बारम्बार कहने पर भी जब तारा साधु असाधु कुछ नहीं बोल सकी, तब दस्यु हन्तम कुमार उसे शाप देने को उतारू हो गया। ब्रह्मा ने कुमार को निवारित कर पुनः तारा से पूछा—तारे! बतलाओ, इस विषय में सत्य क्या है? यह किसका पुत्र है, सच-सच बतलाओ, वरदायक, प्रभु ब्रह्मा से हाथ जोड़कर तारा बोली—यह महान् बलशाली दस्यु हन्तम कुमार चन्द्रमा का है। दाता प्रजापति ने सुत का शिर सूँघकर उस परम बुद्धिमान् का बुध नाम रखा। उस समय बुध पूर्व दिशा में गमन करने के लिए उठ खड़े हुए। राजपुत्री इला के संयोग से बुध ने एक पुत्र उत्पन्न किया। बुध के उस परम तेजस्वी पुत्र का नाम पुरुरवा था, वह इला के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण ऐल नाम से भी विख्यात था। उर्वशी में उस बुध पुत्र के छ परमतेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुए, राजयक्ष्मा रोग ने जबरदस्ती आकर चन्द्रमा को विवश एवं परेशान कर दिया, यक्ष्मा से अतिशय पीड़ित होने पर जब चन्द्रमा का मण्डल क्षीण हो गया, तब वह पितामह ब्रह्मा एवं अत्रि की शरण में गये। महान् यशस्वी अत्रि ने चन्द्रमा का पाप शमन किया, राजयक्ष्मा से मुक्ति प्राप्त कर चन्द्रमा पुनः अपनी कान्ति से चारों ओर प्रकाशित हो उठे। द्विजवृन्द! यह चन्द्रमा के जन्म का वृत्तान्त आप लोगों को बतला चुका, अब उनके वंश का वर्णन कर रहा हूँ, सुनते जाइये। चन्द्रमा के इस जन्म वृत्तान्त को सुनने पर धन, आरोग्य, आयु, पुण्य, एवं पापशान्ति होती है। इसे सुनते ही मनुष्य समस्त पापकर्मों से छुटकारा पा जाता है।॥ १—४९ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते सोमोत्पत्ति कथनं नाम नवतितमोऽध्याय ॥ ९० ॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

चन्द्रवंश वर्णन।

सूत बोले:—"ऋषिवृन्द! चन्द्रमा पुत्र बुध और बुध के पुत्र पुरुरवा हुए। राजा पुरुरवा परमतेजस्वी, दानी, यज्ञकर्ता एवं विपुल दक्षिणा देने वाला था। वह ब्रह्मवेत्ता था, शत्रुलोग युद्ध में उसे किसी प्रकार भी नही जीत सकते थे, शत्रुओं का तो उसने विध्वंश कर डाला था। वह अग्निहोत्र का उपासक था, यज्ञ करनेवालों को उसने सारी पृथ्वी दान में दे दी थी। वह सर्वदा सत्य वचन बोलता था, कर्मशील एवं परम बुद्धिमान था, देखने में परम सुन्दर था, वह एकान्त में मैथुन करने वाला था, लोक में वह एक अनुपम पुत्र था, सुन्दरता में वह बेजोड़ था! उस ब्रह्मवादी, क्षमाशील, दानपरायण, धर्मज्ञ, एवं सत्यभाषी पुरुरवा को अपने रूप के लिए परम यश प्राप्त करनेवाली उर्वशी ने अपना मान छोड़कर पतिरूप में वरण किया। उस उर्वशी के साथ परम बलवान् राजा पुरुरवा ने दस आठ, सात, छ, सात, आठ, दस आठ,

Funding by IKS-MoE

कुल मिलाकर चौंसठ वर्षों तक सुखपूर्वक निवास किया। कभी मनोरम चैत्ररथ नामक वन में, कभी मन्दाकिनी के रमणीय तटवर्ती प्रान्त में, कभी अलकापुरी में, कभी विशालापुरी में, सर्वश्रेष्ठ वन में, कभी गन्धमादन पर्वत के शिखरों पर, कभी नगराजसुमेरु की चोटियों पर, कभी उत्तर कुरु प्रदेश में, कभी कलाप ग्राम में इन प्रमुख वनों एवं देवताओं की क्रीड़ा भूमियों में वह राजा पुरुरवा परम आनन्द समेत उर्वशी के साथ विहार करता रहा।॥ १—८ ॥

ऋषियों ने पूछाः—बहुश्रुत सूतजी। गन्धर्व की कन्या दिव्यगुणयुक्त उर्वशी ने मनुष्य पुत्र राजा पुरुरवा को, समस्त देवताओं को छोड़कर, क्यों पतिरूप में वरण किया—इसे हमें बतलाइये।॥ ९—॥

सूत बोलेः—ऋषिवृन्द! गन्धर्वपुत्री सुन्दरी उर्वशी ने ब्रह्मशाप के कारण मनुष्य को पतिरूप में वरण किया था, उसने प्रतिज्ञा करके इला पुत्र राजा पुरुरवा के साथ रहने की व्यवस्था की थी। शाप से मुक्ति पाने के लिए उसने नियम निश्चित किया था। उसने कहा था, "हे राजन्! मैथुन के अवसर को छोड़कर, बिना कामासक्ति के, किसी भी समय मैं आपको नंगा नहीं देखूंगी, हमारी शय्या के समीप दो मेढ़े सर्वदा बँधे रहेंगे, और केवल एक समय घृत मात्र का आहार मैं करूँगी। हे राजन्! जब तक हमारे इन नियमों को दृढ़तापूर्वक आप अक्षुण्ण पालन करते रहेंगे, तब तक मैं निश्चय आपके साथ रहूँगी, यही हमारी प्रतिज्ञा है।" राजा पुरुरवा ने उर्वशी की इस प्रतिज्ञा का जब तक अक्षरशः पालन किया, तब तक सुन्दरी उर्वशी उसके साथ निवास करती रही। इस प्रकार ब्रह्मशाप से मोहित होकर उर्वशी चौंसठ वर्षों तक भक्ति पूर्वक मनुष्य योनि में उत्पन्न होनेवाले राजा पुरुरवा के साथ रही, उधर गन्धर्व लोग उसके वियोग से परम चिन्तित थे।॥ १०—१४ ॥

गन्धर्व गण बोलेः—'हे महाभाग्यशालियों! स्वर्ग को विभूषित करनेवाली परम सुन्दरी उर्वशी जिस प्रकार देवताओं को पुनः प्राप्त हो—इस बात की चिन्ता करते जाइये।" उस समय बोलने में सब से प्रवीण विश्वासु नामक गन्धर्व बोला, निष्पाप! गन्धर्वगण! मेरी ऐसी धारणा है कि उर्वशी ने अवश्य कोई प्रतिज्ञा उस राजा के साथ की होगी, जिसके संग निवास कर रही है। उस प्रतिज्ञा के टूट जाने से वह जिस प्रकार उस राजा को छोड़ देगी, वह उपाय तुम लोगों को मैं बतला रहा हूँ। तुम लोगों की कार्य सिद्धि के लिए मैं सहायक के साथ उसके पास जा रहा हूँ। महान् यशस्वी विश्वासु ने गन्धर्वों से ऐसी बातें करने के उपरान्त प्रतिष्ठानपुर की ओर प्रस्थान किया। रात के समय उसने शयनागार में प्रवेशकर एक मेढ़े को चुरा लिया, उन दोनों मेढ़ों पर सुन्दर हँसनेवाली उर्वशी माता के समान स्नेह रखती थी। शय्या पर लेटे लेटे ही यशस्विनी उर्वशी को गन्धर्वों के आने का वृत्तान्त विदित हो गया और वह वहीं से राजा से केवल इतना बोली——मेरा एक पुत्र चुराया जा रहा है। उर्वशी इस बात को जिस समय राजा से कह रही थी, उस समय राजा नग्न पड़ा हुआ था, अतः उसने निश्चय किया कि यदि इस समय मैं उठ पड़ूँगा तो मुझे नंगे रूप में देवी देख लेगी और तब उसकी प्रतिज्ञा टूट जायगी। इसी बीच में गन्धर्वों ने दूसरे मेढ़े

को भी चुरा लिया । दूसरे मेढ़े को चुरा लेने पर उर्वशी ने राजा पुरुरवा से कहा, राजन् ! प्रभो ! मेरे दोनों पुत्र अनाथ के पुत्रों की तरह चुरा लिए गये । उर्वशी के ऐसा कहने पर राजा नग्न अवस्था ही में शय्या से उठकर दौड़ पड़ा और गन्धर्वों तथा दोनों मेढ़ों के पद चिन्हों का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ा । गन्धर्वों ने इस अवसर पर एक बड़ी चाल चली, उन्होंने सारे राज्य भवन को शीघ्रता से प्रकाशयुक्त कर दिया, और उर्वशी ने राजा को नंगा देख लिया । इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाली अप्सरा उर्वशी राजा को नंगा देखते ही अर्न्तधान हो गई । उर्वशी को अन्तर्हित जान गन्धर्वों ने उन दोनों मेढों को छोड़ दिया और स्वयं वहीं पर अन्तर्हित हो गये । छूटे हुए दोनों मेढों को पकड़ कर राजा शयनागार में आये और वहाँ पर उर्वशी को न देखकर वहुत दुःखित होकर विलाप करने लगे । इधर उधर उर्वशी को ढूँढ़ते हुए वह पृथ्वी भर घूम आये । जगत् के स्वामी होकर भी उर्वशी के वियोग में राजा परम दुःखित होकर जगत् भर घूमते रहे । वनों में, नदियों के तटों पर, भवनों में, पर्वतों में, निर्झरों और उपवनों में, शिकार खेलने के स्थानों पर पर्वतों के समीपवर्ती गामों में, बगीचों एवं वाटिकाओं में, नगर-नगर में घूम-घूम कर वह सभी जीवधारियों से पूछते हुए परम विषण्ण होकर यह कहता फिरता था । अरे ! मुझ दुःखिये को तू क्यों नहीं देख रही हो, हे सुन्दरी ! मेरे साथ विरोध भाव ठानकर तू कहाँ चली गई, हमारे ऐसे जीवन को धिक्कार है ।' इस प्रकार विलाप करते हुए उस महाबलवान् राजा ने घूमते-घूमते कुरुक्षेत्र में उसे देखा । उस समय वह सुन्दरी प्लक्ष तीर्थ में एक पुष्करिणी के गहरे जल में पाँच अन्य सुन्दरी अप्सराओं के साथ क्रीड़ा कर रही थी । सुन्दर भौंहोंवाली उर्वशी ने सन्निकट आने पर राजा पुरुरवा को देख लिया और अपनी सखियों से कहा, अरे ! यह पुरुष श्रेष्ठ वही राजा है, जिसके साथ मैं निवास करती थी, ऐसा कहकर उसने राजा को दिखाया । उर्वशी के ऐसा कहने पर वे पाँचों सुन्दरी अप्सराएँ जल से बाहर आगईं । राजा ने उर्वशी को देखकर बहुत विलाप किया । उसे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई । वह कहने लगा, हे सुन्दरी ! आओ । मन से मेरे इस कठोर हृदय में निवास करो । अपनी पूर्व की बातों पर स्थित रहो । इस प्रकार सूक्ष्म बातें उन दोनों ने परस्पर कीं । अन्त में उर्वशी ने पुरुरवा से कहा, प्रभो ! मैं आपके संयोग से गर्भवती हूँ, एक वर्ष में तुम्हारा पुत्र मुझसे उत्पन्न होगा—इसमें सन्देह नहीं ।' राजा ने वहाँ पर एक रात फिर उर्वशी के साथ निवास किया । महान् यशस्वी पुरुरवा दूसरे दिन अत्यन्त हर्षित होकर अपने पुर को वापस आया । एक वर्ष बीत जाने पर वह पुनः उर्वशी के पास गया । महा मनस्वी पुरुरवा उस अवसर पर पुनः एक रात उर्वशी के साथ निवास करने के उपरान्त कामार्त होकर दीन भाव से बोला तुम मेरे साथ सर्वदा निवास करो । उर्वशी ने राजा को प्रत्युत्तर दिया कि हे महाराज ! गन्धर्वगण तुम्हें ऐसा वरदान देंगे, उन्हीं से इस बात की याचना कीजिये, आप उनसे मिलकर यह कहिये कि महात्मा गन्धर्वों के लोक में मैं सर्वदा निवास करने का वरदान चाहता हूँ ।' उर्वशी की इस बात को राजा ने अंगीकार किया और गन्धर्वों से वरदान की याचना की । गन्धर्वों ने राजा की प्रार्थना पर यह कहा कि 'आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही होगा ।' उन लोगों ने स्थाली को आग से भरकर राजा से कहा, नराधिप ! इसी अग्नि से हवन करने पर तुम्हें उक्त गन्धर्वलोक की प्राप्ति

होगी । तदनन्तर राजा पुरुरवाने उर्वशी के गर्भ से समुत्पन्न कुमार को लेकर अपने नगर को चलने का उपक्रम किया । और उस अग्नि को अरणि में रखकर पुत्र के समेत अपने घर को प्रस्थान किया । वहाँ आने पर उन्होंने उस अग्नि को देखा, और उसे लेने पर अश्वत्थ के वृक्ष का भी उन्हें दर्शन हुआ । समीप में स्थित अश्वत्थ के वृक्ष को देखकर राजा को परम विस्मय हुआ । तब उन्होंने गन्धर्वों से इस वृत्तान्त को कहने का इरादा किया । पृथ्वी पर आये हुए राजा पुरुरवा ने इस अग्नि से यज्ञ करने के बारे में जब गन्धर्वों से जिज्ञासा प्रकट की तब उन लोगों ने सब बातें सुन लेने पर अरणि से मन्थन करने का आदेश दिया । उन्होंने कहा —हे नराधिप इस अश्वत्थ वृक्ष से अरणि लेकर विधिवत् मन्थन करने पर जो अग्नि उत्पन्न हो, उसी से हवन करने पर तुम हम लोगों के लोक को प्राप्त करोगे ।' गन्धर्वों के कथनानुसार नराधिप पुरुरवा ने अरणि का मन्थन कर अग्नि को तीन भागों में विभक्त कर यज्ञ का अनुष्ठान किया, और अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान समाप्त कर गन्धर्वों का लोक प्राप्त किया । वहाँ निवास के लिये उसने गन्धर्वों के समान सुविधा प्राप्त की, त्रेता युग में वह राजा पुरुरवा महारथी था, अग्नि पूर्व काल में केवल एक थे, उसने उनका तीन विभाग किया । ऋषिवृन्द ! इला का पुत्र वह राजा पुरुरवा इसी प्रकार का महान् प्रभावशाली एवं योद्धा था । महर्षियों से सुशोभित परम पुण्यप्रद प्रयाग तीर्थ में वह पृथ्वी पति राज्य करता था, उस महान् यशस्वी की राजधानी यमुना के पवित्र उत्तर तट पर अवस्थित प्रतिष्ठान पुर में थी । उस राजा पुरुरवा के इन्द्र के समान महान् तेजस्वी छः पुत्र थे, गन्धर्वों के लोक में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा और ख्याति थी । उनके नाम थे आयु, श्रीमान्, अमावसु, विश्वायु, शतायु और गतायु—ये सब उर्वशी के पुत्र थे । अमावसु के पुत्र राजा भीम हुए, जो विश्व विजयी थे । उस राजा भींम का उत्तराधिकारी परम कन्तिमान राजा काञ्चनप्रभ हुआ । काञ्चनप्रभ का पुत्र महाबलवान् एवं परम विद्वान् राजा सुहोत्र हुआ । राजा सुहोत्र के पुत्र जह्नु हुए, ये राज जह्नु कौशिका के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । इन राजा जह्नु ने एक बार पृथ्वी पर यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया था, समस्त यज्ञ सामग्रियाँ पृथ्वी पर विस्तृत थीं, भावी वश गंगा की धारा ने उस प्रान्त को अपने जल से प्लावित कर दिया । चारों ओर से यज्ञ भूमि को गंगा से प्लावित देखकर सुहोत्र के पुत्र राजा जह्नु को, जो परम दयालु और याचकों को मन चाहा देनेवाले थे, परम क्रोध आगया, आँखें क्रोध से लाल होगईं, और उसी भावावेश में उन्होंने कहाः—गङ्गे ! इह घमंड का फल तुम्हें शीघ्र ही मिलेगा, तुम्हारे इस सब जल राशि को पीकर मैं व्यर्थ किये देता हूँ ।' ऐसा कह कर राजर्षि जह्नु ने गंगा की समस्त जलराशि पी डाली । महाभाग्यशाली देवता और ऋषिगण गङ्गा के पीने को देखकर गङ्गा को उनकी कन्या के रूप में उपहार स्वरूप समर्पित कर दिया, तभी से गङ्गा का नाम जाह्नवी पड़ा । राजा यौवनाश्व की पौत्री कावेरी को जह्नु ने पत्नी रूप में अंगीकार किया था । युवनाश्व के शाप से उसने गङ्गा का निर्माण किया था । जह्नु की भार्या कावेरी सरिताओं में श्रेष्ठ एवं प्रशंसनीय गुणों वाली है । जह्नु ने कावेरी में परम धार्मिक सुहोत्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उसका परम प्रिय था । उसका पुत्र अजक हुआ । अजक का उत्तराधिकारी राजा बलाकाश्व परम यशस्वी राजा था । उसके गय, शील और कुश

नामक पुत्र कहे जाते हैं। कुश के चार पुत्र हुए, जो वेद ज्ञान में यश प्राप्त करनेवाले थे, उनके नाम थे कुशाश्व, कुशनाभ, अमूर्तरयश् और वसु। राजाओं में श्रेष्ठ कुशस्तम्ब ने पुत्र प्राप्ति के लिये तपस्या की, एक सहस्र वर्ष बीतने पर उसने इन्द्र का दर्शन किया। सहस्रनेत्रवाले पुरन्दर ने परम कठोर तप में निरत राजा कुशस्तम्ब को देखकर स्वयमेव उनके पुत्र रूप में होने का निश्चय किया। इस प्रकार पुरन्दर ने स्वयमेव पुत्रत्व का निश्चय किया। पाकशासन इन्द्र राजा कुशस्तम्ब के पुत्र के रूप में गाधि नाम से ख्यात हुए, उनका एक दूसरा कौशिक नाम भी हुआ। राजा कुशस्तम्ब की पत्नी पौरुकुत्सा थी, जिसमें गाधि की उत्पत्ति हुई। महाभाग्यशालिनी, कल्याण दायिनी बड़ी कन्या सत्यवती को ऐश्वर्यशाली गाधि ने भृगु गोत्र में उत्पन्न होने वाले रुचीक को समर्पित किया। उस सत्यवती में भृगुनन्दन, भृगुवंश शिरोमणि जमदग्नि उत्पन्न हुए। भृगुवंशोत्पन्न ऋषिवर्य रुचीक ने अपने और गाधि के पुत्र के लिए एक चरु बनाया। अपनी पत्नी गाधृति (सत्यवती) को बुलाकर उन्होंने कहा, 'कल्याणी! यह चरु तुम और तुम्हारी माता इस क्रम से खाना। इसके प्रभाव से तुम्हारी मातामें क्षत्रिय जाति में श्रेष्ठ, परमकान्तिमान् एक पुत्र उत्पन्न होगा, वह युद्धभूमि में अन्यान्य क्षत्रियों द्वारा पराजित नहीं होगा, बड़े बड़े योद्धा क्षत्रियों का वह विनाश करनेवाला होगा। हे कल्याणि! तुम्हारा पुत्र भी परम शान्त, तपोमय, धैर्यशाली एवं बुद्धिमान् होगा। यह चरु उसे ब्राह्मण जाति में सर्वश्रेष्ठ बनायेगा, अर्थात् इसके प्रभाव से वह समस्त ब्राह्मण जाति में श्रेष्ठ गुणोंवाला होगा।' भृगुवंशोत्पन्न ऋचीक अपनी स्त्री सत्यवती से ये बातें कर तपस्या के लिए जंगल की ओर चले गये, वे सर्वदा तपस्या ही में लगे रहते थे। संयोगतः उसी अवसर पर अपनी स्त्री समेत राजा गाधि ऋचीक के आश्रम पर तीर्थयात्रा के प्रसंग से घूमते घूमते अपनी पुत्री को देखने को आ गये। परम शान्त चित्त सत्यवती ने ऋषिवर्य ऋचीक के दिये हुए दोनो चरुओं को लेकर परमप्रसन्न मन से माता से उस वृत्तान्त को साद्यन्त बतलाया। भाग्यवश उसकी माता ने अपना चरु पुत्री सत्यवती को दिया और बिना उसका प्रभाव जाने ही सत्यवती के चरु को स्वयं ग्रहण किया। फलतः सत्यवती ने क्षत्रियों का विनाश करनेवाला परम तेजस्वी गर्भ को धारण किया। उस समय उसकी कान्ति बहुत बढ़ गई, शरीर से वह भयानक दिखाई पड़ने लगी। द्विजश्रेष्ठ ऋचीक ने अपनी सुन्दरी पत्नी की यह दशा देखकर योगबल से सारी स्थिति जान ली। वे बोले, 'भद्रे! माता ने तुम्हें ठग लिया है, उसने विशेष कारण से तुम्हारे चरु को स्वयं ले लिया है, इसके फलस्वरूप तुम्हारा पुत्र परम कठोर चित्तवाला एवं क्रूर कर्मा उत्पन्न होगा। और तुम्हारी माता, परम तपस्वी पुत्र उत्पन्न करेगी, जैसा मैंने तुम्हें बतलाया था। मैंने तुम्हारे उस चरु में अपने तपोबल से समस्त ब्रह्मज्ञान को समर्पित किया था। पति के ऐसा कहने पर महाभाग्यशालिनी सत्यवती ने पति की बड़ी आराधना की और इस बात के लिए राजी किया कि मेरा पुत्र वैसा न हो जो नीच ब्राह्मण कहा जाय।' सत्यवती की इस प्रार्थना पर मुनिवर ऋचीक ने कहा; भद्रे! मैंने या तुमने विचार करके ऐसी इच्छा नहीं की थी कि हमारा पुत्र ऐसा क्रूर कर्मा हो अर्थात् यह दैव विधान है। प्रायः पिता और माता के कारण से पुत्र उग्रकर्म करनेवाले होते हैं।' ऋचीक के ऐसा कहने पर सत्यवती पुनः बोली, मुनिवर्य! आप इच्छा करें तो समस्त लोकों की सृष्टि कर सकते हैं, ऐसे पुत्र को उत्पन्न करने

की तो बात ही क्या है ? हे पतिदेव ! मुझे परम शान्त, सरल, एवं सत्पुरुष पुत्र दीजिये। यह हो सकता है कि हमारा पौत्र उग्र एवं कठोर स्वभाववाला हो। हे प्रभो ! द्विजोत्तम ! अब मेरे लिये यह तो करना ही होगा। आप अन्यथा नहीं करेंगे—ऐसी विशेष प्रार्थना कर रही हूँ।' मुनिवर ऋचीक ने अपने तपोबल से उसकी मनः कामना पूर्ण कर प्रसन्न किया। वे बोले, सुन्दरि ! मुझे पुत्र या पौत्र किसी में कोई विशेषता नहीं दिखाई पड़ती, किन्तु तुम्हारा यदि आग्रह ऐसा है तो मैं वैसा ही करूँगा, भद्रे ! तुम्हारी बात सत्य होगी।' ऋचीक के वचनानुसार सत्यवती ने भार्गव जमदग्नि को उत्पन्न किया। वे परमशान्त, क्षमाशील एवं तपः परायण थे। इस प्रकार प्राचीनकाल में रुद्र एवं विष्णु के चरु में परिवर्तन हो जाने से विष्णु एवं अग्नि के तेज के जमन (भक्षण) किये जाने से भृगुवंश में जमदग्नि नामक ऋषि उत्पन्न हुए। इधर कुशिकनन्दन गाधि ने विश्वामित्र को पुत्र रूप में उत्पन्न किया, उन विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षियों की समानता प्राप्त कर ब्राह्मणों समेत स्वर्ग को प्रस्थान किया। सत्यव्रत परायण वह सत्यवती परम पुण्यदायिनी महानदी कौशिकी के नाम से प्रवाहित हुईं। महाभाग्यशालिनी, नदियों में श्रेष्ठ कौशिकी को परम ख्याति प्राप्त हुई। इक्ष्वाकु के वंश में सुवेणु नामक एक राजा थे। उनकी कन्या महाभाग्यशालिनी कामली थी, जिसका दूसरा नाम रेणुका भी था, उस कामली रेणुका में परम तपस्वी, धैर्यशील, ऋचीक के पुत्र जमदग्नि ने परम कठोर स्वभाववाले परशुराम को उत्पन्न किया, वे परशुराम सभी विद्याओं में पारंगत, विशेषतया धनुर्वेद के परम जानकार, क्षत्रियों के विनाशक एवं अग्नि के समान परम तेजस्वी थे। उर्व के पुत्र ऋचीक के सत्यवती में ज्येष्ठ पुत्र महामनस्वी जमदग्नि हुए, उनके तपोबल से मध्यम पुत्र शुनःशेप हुए, जो परम ब्रह्मज्ञानी थे। शुनःपुच्छ ऋचीक के सब से कनिष्ठ पुत्र थे। धर्मात्मा विश्वामित्र विश्वरथ के नाम से प्रख्यात थे। महर्षि भृगु की कृपा से ये कौशिक के संयोग से उत्पन्न हुए थे, वे कौशिक वंश में सबसे अधिक प्रभावशाली थे। उन विश्वामित्र के पुत्र शुनःशेप नामक मुनि हुए। वे शुनःशेप राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ कर्म में बलिदान देने के लिए नियुक्त हुए थे। देवताओं ने शुनःशेप को पुनः विश्वामित्र को वापस कर दिया। देवताओं के देने के कारण इनका बाद में देवरात नाम पड़ा। विश्वामित्र के पुत्रों में शुनःशेप सब से बड़े कहे जाते हैं। इसके अतिरिक्त मधुच्छन्द, नय, कृत, देव, ध्रुव अष्टक, कच्छप, और पूरण—ये सब भी विश्वामित्र के पुत्र हैं। इन सबों के गोत्र प्रायः महान पराक्रमी कौशिकों के ही हैं। पार्थिव, देवरात, याज्ञवल्क्य, समर्पण, उदुम्बर, उदुम्लान, तारक, यममुज्जत, लोहिण्य, रेणव, कारीषु, बभ्रु, पाणिन, ध्यानजप्य, शालावत्य, हिरण्याक्ष, स्यङ्कृत, गालव, देवल, यामदूत, सालङ्कायन बाष्कल ददाति एवम् बादर नाम से प्रसिद्ध वंशों में उत्पन्न होनेवालों का परम बुद्धिमान् विश्वामित्र का गोत्र हैं। बहुतेरे कौशक गोत्र में उत्पन्न होनेवालों का विवाह अन्य ऋषि के गोत्र में उत्पन्न होनेवालों के साथ कहा जाता है। कौशिक, सौश्रुत एवं सैधवायन नाम से प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न होनेवाले, पुरुरवा के वंश में उत्पन्न पुण्यशाली ब्रह्मर्षि कौशिक के गोत्र में कहे जाते हैं। विश्वामित्र से दृषद्वती में उत्पन्न होनेवाले एक पुत्र का नाम अष्टक था, अष्टक के पुत्र जहनुगण हुए, जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका। ॥१५-१०३॥

ऋषि वृन्द बोले:—सूत जी ! इस लोक में उत्पन्न होकर विश्वामित्र प्रभृति क्षत्रिय राजाओं

ने किस प्रकार के धर्म, तपस्या अथवा ज्ञान द्वारा ब्राह्मणत्व की प्राप्ति की, जिन-जिन सत्कर्मों अथवा दान या तपस्या द्वारा क्षत्रिय लोग ब्राह्मण हुए, उन उनको विशेष रूप से हम लोग जानना चाहते हैं।' ऋषियों के इस प्रकार पूछने पर सूत जी तात्पर्य से भरी हुई यह वाणी बोले—ऋषिवृन्द ! अन्याय से उपार्जित किये गये द्रव्य द्वारा धर्म की आकांक्षा से अच्छे-अच्छे विद्वान् ब्राह्मणों को बुलाकर जो यज्ञादिक सत्कर्म करते हैं, वे धर्म का फल नहीं प्राप्त करते। जो पापात्मा नीच पुरुष दम्भवश 'मैं यह धर्मकार्य कर रहा हूँ', इस प्रकार का प्रचार कर के, लोक में अपनी ख्याति प्राप्त करने के उद्देश से, ब्राह्मणों को दान देता है, अथवा जो निरंकुश व्यक्ति धन के लोभ से कठोर जप करता है, या राग मोहवश पहले पाप करके अन्त में पवित्र होने के उद्देश से दान करता है, उन सब के दानादि सत्कर्म निष्फल होते हैं। वे दुरात्मा वास्तव में हिंस्रभावना से धर्म में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार के अन्याय द्वारा धन प्राप्त कर मोहवश जो दुरात्मा, क्रूरकर्मा दान करता है अथवा यज्ञ करता है, वह नष्ट हो जाता है, टिकता नहीं। इसलिये न्यायतः प्राप्त धन को उपयुक्त तीर्थ (पात्र) में जो दान करते हैं, अपने मनोरथों के लिए किसी प्रकार की अभिसंधि (षड्यंत्र) नहीं करते, अथवा बिना किसी कामना के यज्ञ दान करते हैं, वही दान के वास्तविक फल को प्राप्त करते हैं, और वही दान सुख शान्ति एवं समृद्धि देने वाला है। दान द्वारा मनुष्य विविध प्रकार के भोगों की प्राप्ति करता है, सत्य द्वारा स्वर्ग लोक की प्राप्ति करता है, तथा परम गोपनीय ढंग से की गई तपस्या द्वारा समस्त लोक का अतिक्रमण कर स्थित होता है, अर्थात् गुप्त तपस्या द्वारा समस्त लोक से ऊपर होता है। इस प्रकार समस्त लोक का अतिक्रमण करनेवाला परम तेजस्वी तपस्वी सभी लोकों में अनन्त अक्षय सुख की प्राप्ति करता है। दान की अपेक्षा यज्ञ कल्याण कारी है, यज्ञ से बढ़कर कल्याणकारी तपस्या है, तपस्या से भी बढ़कर संन्यास की महत्ता है, और संन्यास से भी बढ़कर कल्याण दायी एवं महान् ज्ञान कहा गया है। ऐसा सुना जाता है कि क्षत्रियगुण कर्म स्वभाव वाले अनेक द्विजातियों ने तपस्या द्वारा सिद्धि प्राप्त की। नरपति विश्वामित्र, मान्धाता, संकृति, कपि, पुरुकुत्स, सत्य, आनृहवान्, ऋथु, आर्ष्टिषेण, अजमीढ, भागान्य (?) अन्य (?) कक्षीव, शिजय, तथा अन्य महारथी रथीतर, रुन्द विष्णुवृद्धादि राजाओं ने क्षत्रिय जाति में उत्पन्न होकर अपनी तपस्या द्वारा ऋषि पदवी प्राप्त की। इन सभी राजर्षियों ने अपनी महान् तपस्या द्वारा परम सिद्धि की प्राप्ति की। अब इसके उपरान्त महान् पराक्रमी राजा अयु (आयु) के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। ॥१.४—११८॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते अमावसु वंशानु कीर्तनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

Funding by IKS-MoE

बानबेवाँ अध्याय

चन्द्र वंश वर्णन,

सूत बोले:—विप्रवृन्द ! पाँच महान् पराक्रमी तथा परम बलवान् स्वर्भानु के पुत्र प्रभा नामक पत्नी में उत्पन्न हुए, जो सब राजा थे ! उन सबों में प्रथम गणनीय राजा नहुष थे। उनके बाद पुत्रधर्मा कहे जाते हैं । तदनन्तर धर्म वृद्ध हुए, धर्मवृद्ध के पुत्र परम यशस्वी राजा सुतहोत्र हुए । राजा सुतहोत्र के उत्तराधिकारी तीन परम धार्मिक पुत्र हुए, जिनके नाम काश, शल एवं गृत्समद थे । परम प्रभाव शाली राजा गृत्समद के पुत्र शुनक थे, जिनके पुत्र शौनक हुए । द्विजवृन्द ! इस वंश में उत्पन्न होनेवाली संततियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र—चारो वर्णों में अपने विचित्र कर्मों द्वारा विभक्त हुईं । शल के पुत्र राजा आर्ष्टिषेण हुए, जिनके पुत्र चरन्त हुये । शौनक और आर्ष्टिषेण के वंश में उत्पन्न होनेवाली सन्ततियाँ क्षत्रिय एवं ब्राह्मण दोनों वर्णों में हैं । काश के काशय, राष्ट्र और दीर्घतपा नामक पुत्र हुए । दीर्घतपा के पुत्र राजा धर्म हुए, धर्म से परम विद्वान् राजा धन्वन्तरि का जन्म हुआ । परम बुद्धिमान् राजा धर्म की वृद्धावस्था में उनकी तपस्या के कारण महान् तेजस्वी धन्वन्तरि का जन्म हुआ था । इस बात को सुनकर ऋषियों ने सूत से यह बात पूछी । ॥१–७॥

ऋषियों ने पूछा:—सूत जी ! देव धन्वन्तरि किस प्रकार मनुष्य लोक में उत्पन्न हुए, इस बात को हम लोग जानना चाहते हैं, हमारे इस प्रिय विषय को बतलाइये ॥८––॥

सूत बोले:—द्विजवृन्द ! धन्वन्तरि का जन्म वृत्तान्त मैं बतला रहा हूँ, सुनिये । प्राचीनकाल में समुद्र मन्थन के अवसर पर देव धन्वन्तरि का आर्विभाव हुआ था । वे सब से पहले और सभी प्रकार की कान्तियों से समन्वित उत्पन्न हुए थे, इस प्रकार सब प्रकार के गुणों एवं कान्तियों से विभूषित उनके शरीर को देखकर देवगण भौचक्के रह गये और बोल उठे कि "तुम अज हो ।" इसी कारण वश वे अज नाम से विख्यात हुए तदनन्तर अज ने विष्णु से कहा, प्रभो ! मैं आप का पुत्र हूँ, सुरोत्तम ! लोक में हमारे लिये स्थान एवं यज्ञादि में हमारे लिये अंश की व्यवस्था कीजिये ।' अज के ऐसा कहने पर प्रभु विष्णु ने अज की ओर देखकर ये तथ्य पूर्ण बातें कहीं, 'हे देव ! यज्ञ के विधान बनानेवाले देवताओं ने यज्ञादि में अंशों के विभाग आदि की व्यवस्था पहले ही से बना दी है, महर्षियों द्वारा वेदों में उनके लिये विधान युक्त हवन करने की प्रक्रिया आदि भी निर्धारित हो चुकी है, तुम बाद में उत्पन्न होनेवाले पुत्र हो अतः हवनादि में उन देवताओं के साथ, जिनके लिये अंश प्राप्त करने की व्यवस्था बँध चुकी है, तुम्हें समानता नहीं प्राप्त करा सकता । हे समर्थ ! तुम केवल नाम से ही मंत्र रूप हो । दूसरे जन्म में तुम लोक में ख्याति प्राप्त करोगे । गर्भ में ही तुम्हें अणिमा आदि सिद्धियों की प्राप्ति होगी । परम प्रभावशालिन् ! उसी शरीर से तुम्हें देवगण की भी प्राप्ति होगी ! उस समय द्विजाति गण चरु, घृत, गन्ध आदि द्रव्यों से मंत्रोच्चारण पूर्वक तुम्हारी पूजा करेंगे । उसके बाद तुम आयुर्वेद का उद्धार करोगे, यह सब बातें अवश्य घटित होंगी । इन्हीं के लिये पद्मयोनि ब्रह्माजी ने तुम्हारी

Funding by IKS-MoE

सृष्टि पूर्वकाल में की है । द्वितीय द्वापर युग में तुम आविर्भूत होगे——इसमें कोई सन्देह नहीं है ।' उस समय ऐसा वरदान देकर भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो गये । ॥६—१७॥

द्वितीय द्वापर युग में काशीराज सुनहोत्र (सुतहोत्र) के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजा दीर्घतपा ने पुत्र प्राप्ति की कामना से तपस्या की थी । उस तपस्या में राजा ने पुत्र के लिये उन्हीं अज देव की आराधना की थी । प्रसन्न होकर धन्वन्तरि ने राजा दीर्घतपा को वरदान देने की बात कही । ॥१८—१९१॥

राजा बोले:——भगवन् ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, तो आप ही मेरे धर्मशाली पुत्र के रूप में उत्पन्न हों ।' देव धन्वन्तरि राजा की प्रार्थना स्वीकार कर वहीं अर्न्तधान हो गये । तत्पश्चात् वरदान के अनुसार द्वितीय द्वापर युग में देव धन्वन्तरि राजा दीर्घतपा के पुत्र रूप में उत्पन्न हुए । बाद में चलकर वे महाराजाधिराज, काशीराज सभी रोगों के विनाश करनेवाले हुए । भरद्वाज ऋषि ने औषधियों की समस्त प्रक्रियाओं के साथ आयुर्वेद का प्रणयन किया था राजा ने उसी को पुनः आठ भागों में विभक्तकर अपने शिष्यों को उसकी शिक्षा दी थी । धन्वन्तरि के पुत्र केतुमान नाम से विख्यात हुए, केतुमान के पुत्र परम प्रतापशाली राजा भीमरथ हुए । वही राजा भीमरथ वाराणसी के परम प्रसिद्ध राजा दिवोदास के नाम से विख्यात हुए । प्राचीन काल में इसी राजा के राज्य काल में वाराणसी पुरी सूनी हो गई थी और उसमें क्षेमक नामक राक्षस घुस आया था । प्राचीन काल में महान् पराक्रमशाली निकुम्भ ने वाराणसी पुरी को यह शाप दिया था कि यह वाराणसी एक सहस्र वर्ष तक सूनी रहेगी । ऐसी बात उसने बार-बार कही थी । उसके इस प्रकार के शाप देने पर नरपति दिवोदास ने इस वाराणसी पुरी को छोड़कर अपनी मनोहर राजधानी गोमती नदी के तट पर बसाई थी । ॥ २०—२६ ॥

ऋषियों ने पूछा:—सूत जी ! प्रचीनकाल में निकुंभ ने वाराणसी को क्यों शाप दिया था । परम धर्मात्मा होकर भी उसने सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को भला क्यों शाप दिया ? ॥ २७ ॥

सूत बोले:—राजर्षि दिवोदास वाराणसी नगरी में निवास करता था, उस मनोहर नगरी में वह अपने समय का एक महान् शासक एवं परमतेजस्वी राजा था । इसी अवधि में महेश्वर शिव ने पार्वती के साथ पत्नी सम्बन्ध स्थापित किया था और देवी को प्रसन्न करने की नीयत से वे श्वसुर हिमवान् के ही घर में निवास करते थे । महादेव की आज्ञा से उनके पार्षदगण, जो अनेक स्वरूपधारण करनेवाले, किन्तु महान् तेजस्वी थे, पूर्व में कहे गये विचित्र विचित्र रूपों को धारण कर महेश्वरी को प्रसन्न किया करते थे । उनके इस व्यापार से महादेव जी प्रसन्न होते थे किन्तु मेना को इससे प्रसन्नता नहीं होती थी । महादेव और पार्वती-दोनों की वह मन में सदा भर्त्सना किया करती थीं । एक बार उन्होंने पार्वती से कहा भी, निष्पापे ! तुम्हारे पति महेश्वर हमारे यहाँ नित्य प्रति अनाचार किया करते हैं, मेरी समझ में तो वे एक परम अकिंचन एवं व्यर्थ में नाच गान में लगे हुए लम्पट प्रतीत होते हैं ।' माता मेना की ऐसी बातों को स्त्री स्वभाव वश पार्वती सहन न कर सकीं ! वरदान देने वाली पार्वती मन्द हास्य करती हुई महादेव के समीप आईं और वहाँ खिन्न मुख होकर महादेव से बोलीं—देव ! अब मैं यहाँ पर निवास नहीं करूँगी, मुझे अपने

यहाँ ले चलिये। देवी के ऐसा कहने पर महादेव ने तीनों लोकों में अपने योग्य स्थान देखा। द्विजवर्यवृन्द! समस्त भूमंडल भर में महान् तेजस्वी महेश्वर ने अपने निवास योग्य स्थान सिद्ध क्षेत्र वाराणसी को ही पसन्द किया। भव ने उक्त वाराणसी नगरी को उस समय राजा दिवोदास के अधीन जानकर अपने समीप रहनेवाले गणेश्वर क्षेमक को बुलाकर कहा। गणेश्वर! तुम वाराणसी पुरी को जाओ, और उसे खाली कराओ। देखना, मृदुल उपायों द्वारा उसे खाली कराना, क्योंकि वहाँ का राजा दिवोदास महान् पराक्रमी है। इस प्रकार शिव की आज्ञा से प्राचीन काल में निकुम्भ वाराणसी पुरी को प्रस्थित हुआ, और वहाँ जाकर उसने स्वयं को मङ्कन नामक नापित को स्वप्न में दिखाया, और उससे कहा, निष्पाप! मैं तुम्हारा कल्याण करूँगा, मेरे लिए एक स्थान तू बना। इस नगरी के अन्तिम छोर पर मेरी प्रतिमा बनाकर स्थापित कर दे। द्विजवृन्द! मङ्कन ने स्वप्न में देखी हुई सभी बातों को पूर्ण किया, राजा से आज्ञा प्राप्त कर उसने नगरी के प्रवेश द्वार पर विधिपूर्वक निकुम्भ की प्रतिमा स्थापित की। उस स्थान पर निकुम्भ की मूर्ति की नित्यप्रति बड़ी पूजा होने लगी। गन्ध, धूप, पुष्प, माला, अन्नादि वस्तुओं के देने से एक अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। इस प्रकार गणेश्वर की नित्यप्रति पूजा होती थी। गणेश्वर ने भी पूजा से सन्तुष्ट होकर नगरनिवासियों के लिए सहस्रों वरदान प्रदान किये, पुत्र, सुवर्ण, दीर्घायु, एवं अन्य सभी प्रकार के मनोरथों की पूर्ति की। राजा दिवोदास की पटरानी का नाम सुयशा था जो परम साध्वी थीं। राजा की प्रेरणा से वह भी पुत्र प्राप्ति की कामना से उपस्थित हुईं और विपुल पूजा करने के उपरान्त पुत्रों का वरदान माँगा। इसी प्रकार बारम्बार आकर उन्होंने पुत्र प्राप्ति के लिए पूजा और वरदान-याचना की। किन्तु निकुम्भ ने उक्त कारणवश पुत्रों का वरदान नहीं दिया, उसने सोचा कि यदि रानी को मैं वरदान न दूँगा तो राजा क्रुद्ध हो जायगा और तब हमारा सब काम सध जायगा। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो जाने पर राजा को क्रोध आ गया, वह सोचने लगा, कि यह भूत हमारी इस नगरी के महान् द्वारदेश पर स्थित है, नगरनिवासियों के ऊपर प्रसन्न होकर सैकड़ों वरदान इसने प्रदान किये, किन्तु हमें कुछ भी नहीं देता; हमारी ही प्रजाओं द्वारा इसकी पूजा नित्य होती है, मेरी ही नगरी में इसका आवासस्थल है, देवी ने मेरे कहने से इसकी अनेक प्रकार से पूजाएँ भी कीं, किन्तु इस कृतघ्न को मेरे लिए एक भी पुत्र देने का अवसर नहीं मिला, यह बड़ा खब्बू है, अतः आज से इसकी पूजा नहीं करनी चाहिये, मेरी ओर से इसकी पूजा किसी प्रकार भी नहीं होगी। इस दुरात्मा का स्थान नष्ट करा दूँगा।' इस प्रकार का निश्चय कर दुरात्मा एवं कुटिल राजा ने कुमतिवश होकर गणेश्वर निकुम्भ का स्थान नष्ट करा दिया। 'अपने आवासस्थल को नष्ट भ्रष्ट देखकर परम प्रभावशाली गणपति निकुम्भ राजा के पास आये और बोले, तुमने यतः बिना किसी अपराध के ही हमारे स्थान को नष्ट करवा दिया है, इसलिये हे नराधिप! तुम्हारी यह नगरी बिना किसी कारण के ही सूनी हो जायगी।' निकुम्भ के इसी शाप के कारण प्राचीनकाल में वाराणसीपुरी सूनी हुई थी। इस प्रकार वाराणसी को शाप देकर निकुम्भ ने वहाँ पर महादेव जी को बुलाया। देवाधिदेव महादेवजी ने उस सूनी पुरी का दैविकविभूतियों द्वारा पुनर्निर्माण किया, उसमें महान् ऐश्वर्यशाली महादेव का तथा दिव्यगुणमयी

Funding by IKS-MoE

पार्वती का नित्य विहार होने लगा। अपने भवन को देखकर पार्वती जी को परम विस्मय होता था, उन्हें कुछ दिन के बाद इसमें सन्तोष नहीं मिला, तब ईशानदेव ने देवी की क्रीडा के लिए उनसे यह बात कही, 'देवि ! मैं अपने इस सुन्दर भवन का परित्याग नहीं करूँगा, मेरा यह गृह अविमुक्त है,' इस प्रकार हँसते हुए महादेव जी ने पार्वती से फिर कहा कि मेरा यह भवन अविमुक्त है। मैं तो यहाँ से कहीं अन्यत्र नहीं जाऊँगा, तुम चाहो तो यहाँ से जा सकती हो, मैं तो यहीं पर रहूँगा। यतः महादेव जी ने स्वयं अपने मुख से इसे अविमुक्त कहा था, अतः उसका अविमुक्त नाम पड़ा। इस प्रकार वाराणसीपुरी को जिस कारणवश शाप दिया गया था और उसका अविमुक्त नाम जिस कारण से पड़ा था, वह सब मैं कह चुका। उस वाराणसी नगरी में सभी देवताओं के नमस्करणीय धर्मात्मा महादेव जी पार्वती के साथ तीनों युगों में निवास करते हैं। केवल कलियुग में महात्मा शंकर का वह पुर अन्तर्हित हो जाता है। उसके अन्तर्हित हो जाने पर वह वाराणसी पुरी पुनः वहाँ प्रतिष्ठित होती है। इस प्रकार निकुम्भ के शाप से शापित वाराणसी पुनः प्रतिष्ठित हुई। प्राचीनकाल में नरपति दिवोदास ने राजा भद्रश्रेण्य के परम धनुर्धारी सौ पुत्रों का निधन करके उसके पुर में प्रवेश किया और परम बलशाली उसने भद्रश्रेण्य के राज्य को भी छीन लिया था। भद्रश्रेण्य का एक पुत्र दुर्दम नामक था, राजा दिवोदास ने उसे निपट बालक समझ कर, उसके जीतने का कोई महत्त्व न समझ कर घृणा से छोड़ दिया था। राजा दिवोदास से दृषद्वती नामक पत्नी में प्रतर्दन नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ, भद्रश्रेण्य के उस बालक जानकर छोड़े गये दुर्दम नामक पुत्र ने प्रत्तर्दन से छीना हुआ राज्य पुनः छीन लिया। उस राजाधिराज ने इस प्रकार अपने वैर का बदला चुका लिया। प्रतर्दन के वत्स और गर्ग नामक दो पुत्र कहे जाते हैं। वत्स के पुत्र अलर्क हुए, जिनके पुत्र का नाम सन्नति हुआ। राजर्षि अलर्क के लिए ये पुराने दो श्लोक गाये जाते हैं, जिनका आशय इस प्रकार है। साठ सहस्र साठ सौ वर्षों तक काशिराज अलर्क युवा था, लोपामुद्रा की कृपा से उसे इतनी बड़ी आयु प्राप्त हुई थी। एक सहस्र वर्ष के शाप के व्यतीत हो जाने पर महाबाहु राजा अलर्क ने उस क्षेमक नामक राक्षस को मार कर पुनः मनोहर वाराणसी पुरी को बसाया। सन्नति का उत्तराधिकारी सुनीथ नामक धार्मिक राजा हुआ। सुनीथ का उत्तराधिकारी सुकेतु नामक धार्मिक विचारों वाला राजा हुआ। सुकेतु का पुत्र धर्मकेतु नाम से सुना जाता है। धर्मकेतु का उत्तराधिकारी महारथी सत्यकेतु हुआ। सत्यकेतु का पुत्र प्रजेश्वर विभ्र हुआ, विभ्र का पुत्र सुविभ्र और उससे सुकुमार नामक पुत्र की उत्पत्ति कही जाती है। सुकुमार का पुत्र परम धार्मिक धृष्ठकेतु हुआ, धृष्ठकेतु का उत्तराधिकारी प्रजापालक वेणुहोत्र हुआ। वेणुहोत्र का पुत्र गार्ग्य नाम से विख्यात हुआ। गार्ग्य का पुत्र गर्भभूमि और बुद्धिमान् वत्स का पुत्र वात्स्य हुआ। इन दोनों राजाओं के पुत्र ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों वर्णोंवाले हुए, जो परम उत्साही बलशाली, एवं सिंह के समान पराक्रमी थे। काशी के राजाओं का वर्णन कर चुका अब रजि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। महाराज रजि के सौ पुत्र थे, जिनमें पाँच पृथ्वी में परम बलवान् विख्यात थे। वे राजेय नाम से विख्यात थे, इन्द्र भी उनके क्षात्रबल से भय खाते थे। उस समय देवताओं और राक्षसों में परम दारुण युद्ध मचा हुआ था, देवता और असुर दोनों दलवालों ने पितामह

ब्रह्मा से पूछा, भगवन् ! हम दोनों वर्गों के इस घमासान युद्ध में कौन वर्ग विजयी होगा ? समस्त लोकों के स्वामिन् ! इस बात को हम लोग जानना चाहते हैं, बतलाइये । ॥२८-७७॥

ब्रह्मा ने कहा :—जिन लोगों के लिए महान् पराक्रमशाली महाराज रजि संग्राम भूमि में हथियार धारण करेंगे, वे लोग तीनों लोकों को जीत सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं है । जहाँ पर महाराज रजि हैं, वहीं लक्ष्मी है, जहाँ पर लक्ष्मी का निवास है, वहीं पर वास्तविक धैर्य और शान्ति है, जहाँ धैर्य का निवास है, वहीं पर धर्म रहता है, और जहाँ पर धर्म रहता है, वहीं वास्तविक विजय है ।' देवताओं और दानवों ने रजि द्वारा जय की बातें सुनकर अपने-अपने पक्ष की विजय आकांक्षा से राजाधिराज रजि की प्रार्थना की । अत्यन्त प्रसन्न मन से देवताओं और दानवों ने राजा रजि के पास जाकर यह निवेदन किया कि 'तुम हमारी विजय के लिए सुदृढ़ धनुष धारण करो ।' ॥७८-८१॥

रजि बोले :—हम तुम सब को युद्ध में पराजित कर देंगे, इन्द्र प्रभृति प्रमुख देवगणों को भी हम पराजित कर देंगे, किन्तु हमीं धर्मात्मा इन्द्र होंगे, इसी शर्त पर हम युद्ध में धनुष धारण करेंगे । ॥८२॥

दानवों ने कहा :—हम लोगों के इन्द्र प्रह्लाद हैं, उन्हीं के लिए विजय की आकांक्षा हम सबों को है, पर हे राजन ! देवताओं द्वारा प्रेरित इस प्रतिज्ञा में तो हम सभी सहमत हैं ।' दानवों की यह बात सुनकर महाराज रजि स्वीकारोक्ति दे ही रहे थे कि देवतागण भी बोल उठे । उन लोगों ने भी यह निमंत्रण दिया कि आप दानवों को पराजित कर हम सब के इन्द्र हो सकते हैं ।' देवताओं के इस निमंत्रण को स्वीकार कर रजि ने वज्रपाणि देवराज इन्द्र के देखते-देखते सभी दानवों का संहार कर डाला, इस प्रकार उस जितेन्द्रिय परम प्रभावशाली महाराज रजि ने देवताओं की विनष्ट राजलक्ष्मी का समस्त दानवों का संहार कर उद्धार किया । उस युद्ध में विजय प्राप्त करनेवाले महाराज रजि से देवताओं समेत शतक्रतु इन्द्र बोले, हे महाराज मैं आपका पुत्र हूँ । पुनः इन्द्र ने कहा, राजन् ! आप समस्त देवताओं के इन्द्र हैं, इसमें सन्देह नहीं । हे शत्रुविनाशक ! मैं इन्द्र आप के पुत्र के रूप में विख्यात हूँगा ।' शक्र की ऐसी बातें सुनकर और उसकी माया से ठगे जाकर महाराज रजि ने प्रसन्न होकर कहा कि अच्छी बात है । उस देवतुल्य महाराज रजि के स्वर्गगामी हो जाने पर उनके पुत्रों ने इन्द्र से उनका सम्पूर्ण उत्तराधिकार छीन लिया । इस प्रकार इन्द्र के स्थान पर महाराज रजि के सौ पुत्रों ने अपना अधिकार जमा लिया, और अनेक प्रकार से एक ही साथ सारे स्वर्ग लोक को आक्रान्त कर लिया। बहुत दिवस बीत जाने पर महाबलशाली हतभाग्य इन्द्र, राज्य छीन लिये जाने पर बृहस्पति के समीप गये और बोले, ब्रह्मर्षि ! आप बैर के फल जितना बड़ा पुरोडाश (चरु) का अंश मेरे लिए बनाइये, जिससे टिक सकूँ, उसी के तेज से मेरी सन्तुष्टि हो सकेगी । ब्रह्मन् ! क्योंकि इस समय मेरी स्थिति बहुत शोचनीय हो गई है, मैं बहुत दुर्बल हो गया हूँ, मेरा मन नहीं लगता, मेरा राज्य-पाट छीन लिया गया है, भोजन भी छीन लिया गया है । मेरी सारी शक्ति नष्ट होगई है, शरीर भी दुर्बल हो गया है, मेरी बुद्धि भी मारी गई है, रजि के पुत्रों से हमारी रक्षा कीजिये । ॥ ८३-९३ ॥

बृहस्पति बोले:—शक्र ! यदि तुम पहले ही मुझसे अपनी स्थिति बतलाये होते तो तुम्हारी

Funding by IKS-MoE

यह स्थिति न होती, तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट न होता, निष्पाप ! तुम्हारे कल्याण के लिए मैं कुछ भी अकर्त्तव्य नहीं समझता अर्थात तुम्हारे लिए सब कर सकता हूँ । हे महाकान्ति शालिन् ! देवराज ! तुम्हारे लिए मैं वही प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारा अंश और राज्य तुम्हें पुनः शीघ्र ही वापस मिल जाय । हे शक्र ! मैं वैसा करने जा रहा हूँ, तुम मन की विकलता छोड़ दो ।' इस प्रकार इन्द्र को सान्त्वना देकर बृहस्पति ने इन्द्र की प्रताप वृद्धि के लिए महान् अनुष्ठान किये । परम बुद्धिमान बृहस्पति ने रजि के पुत्रों की बुद्धि को मोहित कर दिया । जिससे उन सब की मति मारी गई , पुत्रों के समेत वे विधर्म में निरत हो गये, परिणामतः रोगग्रस्त एवं उन्मत्त से हो गये । ब्राह्मणों से द्वेष करने लगे, सब के पराक्रम एवं बल का विनाश हो गया । ऐसी दशा में, जब कि वे सब के सब काम क्रोध मोह में लिप्त हो गये, इन्द्र ने उन रजि पुत्रों का संहार कर डाला, और अपना उत्तम देवताओं का स्वामित्व पद पुनः प्राप्त किया । जो व्यक्ति शतक्रतु इन्द्र की पुनः इन्द्र पद प्राप्त का एवं महाराज रजि का यह परम पवित्र वृत्तान्त पढ़ता या सुनता है, वह कभी दुर्गति में नहीं पड़ता । ॥ ९४—९९ ॥

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्ते रजियुद्धं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः । ॥ ९२ ॥

तिरानबेवाँ अध्याय

चन्द्रवंश वर्णन

ऋषियों ने पूछा:—सूत जी ! महान् पराक्रमी मरुत्त ने राजा को किस प्रकार अपनी कन्या प्रदान की थी ? और मरुत्त की कन्या से उत्पन्न होने वाले वे महान् बलशाली पुत्र कितने पराक्रमी हुए । ॥ १ ॥

सूत बोले:--महान् तेजस्वी राजा ने अन्न की कामना से साठवर्षों तक प्रत्येक मास में प्रजापति मरुत् एवं सोम का यज्ञ किया था। उसके उस मरुत्तसोम यज्ञ से परम प्रसन्न होकर मरुतों ने अक्षय अन्न प्रदान किये, जो सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले थे । एक बार का पकाया गया उसका अन्न दिन रात भर में भी नष्ट नहीं होता था । और सूर्योदय से करोडों बार दिये जाने पर भी वह नहीं चुकता था । परम बुद्धिमान् मरुत्त की कन्या में मित्र ज्योति का जन्म हुआ । उससे महान् पराक्रमी मोक्षदर्शी, धर्मज्ञ पुत्रों की उत्पत्ति हुई, जो गृहस्थाश्रम धर्म का परित्याग कर वैराग्य पथ के अनुगामी हुए, और अन्त में संन्यासियों का धर्म अपनाकर ब्रह्मत्व को प्राप्त हुए । तत्पश्चात् अनपाय की उत्पति हुई, जिससे धर्मप्रदत्तवान् (१) की उत्पत्ति हुई, उससे क्षत्रधर्म की उत्पत्ति हुई, क्षत्र धर्म से महान् तपस्वी प्रतिपक्ष की उत्पत्ति हुई । प्रतिपक्ष के पुत्र संजय नाम से विख्यात हुए । संजयके के पुत्र जय हुए और जय से विजय नामक पुत्र की

Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति हुई। विजय का पुत्र भी जय नाम से विख्यात हुआ, जय का पुत्र हर्यद्वत नाम से प्रसिद्ध हुआ। हर्यद्वत के उपरान्त परम प्रतापशाली राजा सहदेव हुये। सहदेव के पुत्र धर्मात्मा अदीन नाम से प्रसिद्ध हुए। अदीन के पुत्र जयत्सेन हुए, जयत्सेन के पुत्र संकृति हुए। संकृति के पुत्र महान् यशस्वी एवं धर्मात्मा राजा कृतधर्मा हुये। ये सब राजा गण क्षत्रिय गुण कर्म स्वभाववाले थे। अब इसके उपरान्त राजा नहुष के वंश का वर्णन सुनिये। राजा नहुष के इन्द्र के समान तेजस्वी छ पुत्र उत्पन्नहुए, वे महान् तेजस्वी नहुष पुत्र पितरों की कन्या विरजा में उत्पन्न हुये थे। उनके नाम थे यति, ययाति, संयाति, आयाति, पञ्च (?) द्वय (?)। इन सब पुत्रों में यति सबसे बड़े थे, ययाति उनसे छोटे थे। यति ने राजा काकुत्स्थ की कन्या गौ को पत्नी रूप में वरण किया था। संयाति ने मोक्ष मार्ग का आश्रय लेकर मुनियों के समान ब्रह्म पद की प्राप्ति की। इन पाँचों भाइयों में ययाति पृथ्वी पति (राजा) हुआ। उसने शुक्राचार्य की देवयानी नामक कन्या से विवाह किया। असुरराज वृषपर्वा की शर्मिष्ठा नामक कन्या को भी उसने पत्नी रूप में वरण किया था। देवयानी ने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा ने, द्रुह्यु, अनु और पुरु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये। इस प्रकार राजा ययाति ने इन देवताओं के समान सुन्दर एवं पराक्रमशाली, महाबलवान् पुत्रों को उत्पन्न किया। महादेव जी ने प्रसन्न होकर उस राजा ययाति को परम सुन्दर, चमकनेवाला, सुवर्ण निर्मित एक दिव्य रथ प्रदान किया था, इसके अतिरिक्त दो कभी नष्ट न होनेवाले तरकश भी दिये थे। उस सुन्दर रथ में मन के समान वेगशाली घोड़े जुते हुए थे। उसी रथ पर चढ़कर शुक्र की पुत्री देवयानी को साथ लेकर राजा ययाति ने समस्त पृथ्वी को जीता था। वह राजा ययाति युद्धभूमि में देवताओं, दानवों, मनुष्यों—सब से दुर्दमनीय था, समस्त पुरुवंशी राजाओं में महादेव जी का दिया गया वह महान् रथ व्यवहार में लाया जाता था। जब कुरुवंश के राजा परीक्षित के पुत्र जनमेजय शासन रूढ़ हुए, उस समय भी वह सुन्दर रथ उनके अधीन था। बुद्धिमान् गार्ग्य के शाप से वह रथ नष्ट हुआ। राजा जनमेजय ने कुबुद्धि में आकर गार्ग्य के पुत्र का संहार कर दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने नरपति जनमेजय को लोहगंध, (लोहे के समान दुर्गन्धवाला,) होने का अभिशाप दे दिया था। राजर्षि जनमेजय लोहगंध होने पर इधर उधर बहुत दौड़े पर कहीं भी उन्हें शान्ति नहीं मिली, ग्राम निवासियों ने भी उनका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार अत्यन्त दुखित हो जाने पर भी उनको जब कहीं शान्ति का स्थान नहीं मिल सका तो अनन्योपाय एवं परम दुखी होकर शाप देनेवाले ऋषि की शरण में गये। परम उदार बुद्धिवाले शुनक गोदोत्पन्न इन्द्रोत नामक परम विख्यात मुनि ने राजा जनमेजय को इस घोर पाप से छुड़ाने के लिये यज्ञ कराया। इस प्रकार द्विजश्रेष्ठ इन्द्रोत ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान कराया, तब उन्हीं के निवास में राजा का लोह गन्धत्व दूर हुआ।[१] वह दिव्य रथ उसके अधिकार से (?) चेदि

---

[१] यहाँ पर ग्रन्थ का मूल पाठ भ्रष्ट मालूम पड़ता है। पूर्व कथा से पर कथा की कोई संगति नहीं मिलती। जनमेजय भीम के बाद हुए थे। फिर जनमेजय के बाद भीम को रथ को प्राप्ति किस प्रकार सम्भव हुई ? अनुवादक।

Funding by IKS-MoE

देशाधिपति राजा वसु के अधीन हुआ। वसुसे इन्द्र ने प्राप्त किया, इन्द्र ने सन्तुष्ट होकर राजा बृहद्रथ को दिया। बृहद्रथ को मार कर उसे जरासंध ने छीना, इसके उपरान्त ज़रासंध से उस दिव्य रथ को भीम ने प्राप्त किया। कौरवनन्दन भीम ने प्रसन्नता पूर्वक उस रथ को वासुदेव को समर्पित किया। ॥२-२७॥

नहुषपुत्र राजर्षि ययाति जब बहुत वृद्ध हो गये तब अपने सब से बड़े औरयोग्य पुत्र यदु से यह बात बोले, पुत्र ! यदु ! शुक्राचार्य के शाप के कारण वृद्धता, चमड़े की सिकुड़न और पलितादिने मुझे चारों ओर से घेर लिया, किन्तु मैं अभी तक यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हो सका। तुम मेरी इस वृद्धता और पाप को ग्रहण कर लो।' ययाति की ऐसी बातें सुनकर यदु ने उत्तर दिया तात ! मैंने अनन्तकाल तक ब्राह्मण को भिक्षादान करने की प्रतिज्ञा ठान ली है, वह भिक्षा विशेष परिश्रम से साध्य होगी अतः तुम्हारी वृद्धता ग्रहण करने में मैं अशक्त हूँ। राजन् ! इस वृद्धता में भोजन पान आदि के बहुत बड़े दोष हो जाते हैं, अर्थात् बुढ़ापे में ठीक से अन्न नहीं पचता, पानी आदि भी बहुत सवाच कर (जाँच कर) पीना पड़ता है, खान-पान के थोड़े-से ही असंयम से बड़ा कष्ट मिलता है। इसलिए भी आपकी इस वृद्धता को अंगीकार करने का उत्साह मुझमें नहीं हो रहा है। श्वेत बाल धारण करनेवालों को यह वृद्धता एकदम शिथिल कर देती है। शरीर में सिकुड़न आ जाती है, देखने में चेहरा भद्दा हो जाता है, प्रकृति दुर्बल हो जाती है, कोई कार्य करने की भी शक्ति नहीं रह जाती, यौवन के सुखों से वंचित एवं पराभूत होना पड़ता है। इस प्रकार की अनेक महान् विपत्तियों से घिरी हुई उस वृद्धता को मैं अंगीकार नहीं करूँगा। नृपति ! आपके अन्य पुत्र भी हैं, जो मुझसे भी अधिक प्रिय हैं, हे धर्मज्ञ ! आप उन्हीं से इसका प्रस्ताव कीजिये, अन्य पुत्रों से ही इसकी याचना करना उचित है।' यदु के ऐसा कहने पर बोलनेवालों में प्रवीण राजा ययाति परम क्रुद्ध होकर अपने बड़े पुत्र यदु की भर्त्सना करते हुए बोले। दुर्बुद्धे ! तुम्हारा कौन-सा आश्रम है ? गृहस्थाश्रम के अतिरिक्त क्या तुम्हारा कोई अन्य आश्रम धर्म है ? तुम्हरे धर्मकी विधि कोन-सी है ? नये ढंग से उपदेश करनेवाले ! कुमति ! मेरा निरादर करके जिस धर्म का तुम पालन कर रहे हो, वह कौन-सा धर्म आश्रम या विधि है।' इस प्रकार की क्रोध पूर्ण बातें कर परम क्रोध में भरे हुए राजा ययाति ने यदु को शाप दे दिया। 'जो तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी यौवना अवस्था नहीं दे रहे हो, सो हे मूढ़, तुम्हारी प्रजा और तुम कोई भी हमारे राज्य के उत्तराधिकारी न होगे।' इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने तुर्वसु नामक अपने पुत्र से कहा, तुर्वसु ! मेरी वृद्धावस्था और मेरे पाप को तुम अंगीकार कर लो, पुत्र ! तुम्हारी यौवनावस्था से मैं विविध प्रकार के भोगों का उपभोग करना चाहता हूँ। एक सहस्र वर्ष बीतने पर तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस कर दूँगा, और निश्चय ही उस समय मैं अपने पाप और वृद्धावस्था को ले लूँगा। ॥२८-४०॥

तुर्वसु ने कहा:—तात ! ऐच्छिकभोगों को नष्ट करनेवाली, विषयादि सुखों से वंचित करनेवाली तुम्हारी वृद्धता को मैं पसन्द नहीं कर सकता। राजेन्द्र इस वृद्धता से तो भोजन पानादि में भी बड़ी अड़चनें पड़ती हैं। इसलिए उस वृद्धता के ग्रहण करने का उत्साह मुझमें नहीं है। ॥४१॥

Funding by IKS-MoE

ययाति बोले:—तुर्वसो ! मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मेरे लिए अपनी अवस्था नहीं दे रहे हो, अतः तुम्हारी सन्ततियाँ नाश को प्राप्त होंगी। प्रतिलोम रीति से वे संकरवर्ण की हो जायँगी। धर्म से च्युत मांसाहारी एवं अन्य दुराचारों में निरत रहनेवाली प्रजाओं के तुम राजा होगे। गुरु की स्त्री के साथ गमन करनेवाले, नीच योनियों में जन्म धारण करनेवाले पशु के समान अविवेकशील, म्लेच्छों के देश के तुम राजा होगे—इसमें सन्देह नहीं है। ॥४२-४४॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! राजा ययाति ने इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसु को शाप देने के उपरान्त शर्मिष्ठा के बड़े पुत्र द्रुह्यु से यह बात कही, प्रिय पुत्र द्रुह्यु ! वर्ण एवं रूप के विनाशक इस मेरी वृद्धता को तुम स्वीकार कर लो, एक सहस्र वर्ष के लिए अपनी यौवनावस्था मुझे प्रदान कर दो। एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर तुम्हारी यौवनावस्था मैं तुम्हें वापस कर दूँगा और उसी समय समस्त पापकर्मों समेत अपनी वृद्धता तुमसे वापस ले लूँगा। ॥४५-४७॥

द्रुह्यु ने कहा:—पिता जी ! वृद्ध पुरुष न तो हाथी पर चढ़ सकता है, न घुड़सवारी का आनन्द लूट सकता है, न अच्छे सुस्वादु अन्न का ही भोग कर सकता है, न सुन्दरी स्त्री ही उसके लिए आनन्ददायिनी हो सकती है। कोई वृद्ध पुरुष के पास बैठना भी नहीं चाहता, इन कारणों से मैं तुम्हारी इस वृद्धता को पसन्द नहीं करता। ॥४८॥

ययाति बोले:—द्रुह्यु ! तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी अवस्था मुझे नहीं दे रहे हो। अतः तुम्हारा मनचाहा कभी नहीं और कहीं नहीं सम्पन्न होगा, जिस देश में लोग सर्वदा नाव और छोटी-छोटी नौकाओं तथा घन्नइयों द्वारा जा सकते हैं, जहाँ पर राजवंश का सर्वथा अभाव तथा सुन्दरता की नितान्त कमी रहेगी, वहाँ पर तुम्हें सर्वदा निवास करना पड़ेगा।' द्रुह्यु को इस प्रकार शाप देकर राजा ययाति ने अनु से कहा, अनु ! मेरी वृद्धावस्था तथा पापकर्मों को तुम ले लो, इस प्रकार एक सहस्र वर्ष तक तुम्हारी यौवनावस्था से मैं विषयों का उपभोग करना चाहता हूँ। ॥५१॥

अनु ने कहा:—हे तात ! आप बहुत वृद्ध हो गये हैं, मैं अभी बालक हूँ, आपकी वृद्धावस्था से मैं वृद्ध हो जाऊँगा, जिससे सर्वदा अपवित्र बना रहूँगा। हे महाराज ! इसलिये मैं उस वृद्धावस्था को ग्रहण नहीं कर सकता, वह हमें पसन्द नहीं है। ॥५२॥

ययाति बोले:—तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी अपनी यौवनावस्था नहीं दे रहे हो, तो वृद्धावस्था का जो दोष तुमने बतलाया है, वह सब तुम्हें प्राप्त होगा, तुम्हारी प्रजाएँ यौवनावस्था को प्राप्त करते ही विनष्ट हो जायँगी। तुम भी अग्नि में गिरकर भस्म हो जाओगे।' अनु को ऐसा शाप देने के उपरान्त महाराज ययाति अपने सब से छोटे पुत्र पुरु से बोले, प्रियपुत्र पुरु ! तुम मेरे पापों के साथ मेरी इस वृद्धावस्था को ग्रहण कर लो, मेरे अंगों में सिकुड़न आ गई है, केश सफेद हो गये हैं, चारों ओर से बुढ़ापे ने आक्रान्त कर लिया है, किन्तु इतने पर भी मैं शुक्राचार्य के शाप के कारण यौवनावस्था से सन्तुष्ट नहीं हो सका हूँ, तुम्हारी यौवनावस्था प्राप्त कर मैं कुछ समय तक और विषयों का सेवन करना चाहता हूँ, एक सहस्र वर्ष

Funding by IKS-MoE

बीत जाने पर मैं तुम्हारी यौवनावस्था तुम्हें वापस कर दूँगा, और उसी समय अपने समस्त पाप कर्मों समेत वृद्धता को तुमसे वापिस कर लूँगा। ॥५३-५७॥

सूत ने कहा:—पिता ययाति के इस प्रकार कहने पर पुरु ने तुरन्त उत्तर दिया। तात! आप की जैसी आज्ञा है, मैं वैसा ही करूँगा। राजन्! आपके पापकर्मों के साथ इस वृद्धता को मैं सहन करने के लिए तैयार हूँ, मेरी यौवनावस्था ग्रहण कर आप यथेप्सित विषय भोगों का सेवन कर सकते हैं। मैं आपके स्वरूप और अवस्था-दोनों को धारण कर, स्वयं वृद्धावस्था में रह कर अपनी यौवनावस्था आपको समर्पित करूँगा और आप ही की तरह सब कार्य करूँगा। ॥५८-६०॥

ययाति ने कहा:—प्रिय पुरु! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, तुम्हारा कल्याण हो, मैं तुम्हें यह आशीर्वाद दे रहा हूँ कि तुम्हारे राज्य में प्रजाओं की सारी कामनाएँ पूर्ण होंगी, वे सर्वदा समृद्ध रहेंगी ॥६१॥

सूत बोले:—इस प्रकार पुरु की अनुमति प्राप्त हो जाने पर नहुषपुत्र नरश्रेष्ठ महाराज ययाति ने अपनी वृद्धावस्था को शुक्राचार्य की कृपा से पुरु में सन्निविष्ट कर पुरु की यौवनावस्था को स्वयं ग्रहण किया। और परम प्रसन्न होकर उस यौवनावस्था द्वारा अनेक विषय भोगों का उपभोग किया। राजाधिराज ययाति ने पुत्र की यौवनावस्था द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार, उत्साह के अनुसार, समय के अनुसार, अधिकाधिक सुख प्राप्ति के उद्देश से विषय भोगों का सेवन किया, किन्तु ऐसा कोई आचरण नहीं किया, जिससे धर्म की मर्यादा नष्ट हो। उसने यज्ञों द्वारा देवताओं को सन्तुष्ट किया, श्राद्धों द्वारा पितरों को सन्तुष्ट किया, अनुग्रह द्वारा दीनों गरीबों का हितचिन्तन किया, मन चाहे पदार्थों की पूर्ति से विद्वान् ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया। अन्न पानादि द्वारा अतिथियों का समुचित सत्कार किया, व्यापार आदि में उपयुक्त सहायता देकर वैश्यों को सन्तुष्ट किया। अपनी कृपा एवं दया से शूद्रों को प्रसन्न किया, कड़े अनुशासन एवं दण्ड की व्यवस्था करके चोरों को शान्त किया। इस प्रकार दूसरे इन्द्र की भाँति उस महाराज ययाति ने धर्मपूर्वक अपनी प्रजाओं का पालन किया। सिंह के समान विक्रम शाली, युवावस्था सम्पन्न राजा ययाति ने धर्म की मर्यादा की रक्षा करते हुए विषयों का सेवन किया, उत्तम सुख का अनुभव किया। वैभ्राज और नन्दन वन में विश्वाची के साथ उसने काम क्रीडा की, अन्ततः कामादि विषयों के अन्त में दुःख एवं दोष देखकर उसे विरक्ति हुई, उस समय जब उसे अपनी इस यौवनावस्था का स्मरण हुआ, जो बहुत बढ़ चुकी थी। अर्थात् जिसकी अवधि पूरी हो रही थी तब वह पुरु के पास आया और अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की। यौवनावस्था में अनुभव किये गये आनन्दों एवं विषयों से उसे तृप्ति तो अवश्य हुई थी, किन्तु खेद भी हुआ। सुखों का अनुभव करते समय नरपति ययाति को जब एक सहस्र वर्ष के समय का स्मरण हुआ तो उसने घटी पला तक की गणना की और जब देखा कि सचमुच वह अवधि समाप्त हो गई है तो पुत्र पुरु से कहा, शत्रुओं को वश में करनेवाले! पुत्र! मैंने अपने मन और उत्साह भर इस एक सहस्र वर्ष में तुम्हारी यौवनावस्था लेकर विषयों का सेवन किया। प्रिय पुरु! मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, तुम्हारा

कल्याण हो। बेटा! आओ, और अपनी यौवनावस्था ग्रहण करो, लो, इस राज्य को भी ग्रहण करो, तुम्हीं हमारे एकमात्र शुभचिन्तक पुत्र हो।' इस प्रकार नहुषपुत्र राजा ययाति ने पुनः अपनी वृद्धावस्था ग्रहण की और पुरु ने पुनः अपनी यौवनावस्था ग्रहण की। राज्य पद पर सब से छोटे पुत्र पुरु का अभिषेक करने की जब राजा ययाति ने इच्छा की तब ब्राह्मणादि चारों वर्णों के लोग उससे यह बात बोले—'प्रभुवर! आप शुक्राचार्य के नाती, देवयानी के पुत्र और अपने सबसे बड़े सुपुत्र यदु को छोड़कर पुरु को क्यों राज्य प्रदान कर रहे हैं। यदु आप के सब से बड़े पुत्र हैं, उनसे छोटे तुर्वसु हैं, शर्मिष्ठा के पुत्रों में भी सब से बड़े द्रुह्य हैं, उनसे छोटे अनु हैं, तब पुरु हैं, तो फिर यह कैसे हो सकता है कि ज्येष्ठ को छोड़कर सबसे छोटे को राज्य प्रदान किया जाय। मैं धर्म की ओर आप का ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ, आप राजा हैं, आपको धर्म का पालन करना चाहिये। ॥६२–७६॥

ययाति ने कहा:—ब्राह्मण प्रभृति वर्णों में उत्पन्न सभी को यह मेरी बात सुननी चाहिये कि मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र को किसी प्रकार भी अपना राज्य नहीं देना चाहता। माता और पिता की आज्ञा पालन करनेवाला ही सच्चा पुत्र कहा जाता है, वही प्रशंसायोग्य पुत्र है, मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदु ने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया है। जो पुत्र पिता की आज्ञा के प्रतिकूल चलनेवाला होता है, उस पुत्र को सज्जन लोग नहीं पसन्द करते। पिता और माता का अनुगमन करनेवाला ही सच्चा पुत्र है। यदु ने मेरी अवज्ञा की है, इसी प्रकार तुर्वसु, द्रुह्यु, और अनु ने भी मेरी आज्ञा न मानकर अपमान किया है। पुरु ने मेरी आज्ञा ही केवल नहीं मानी है; प्रत्युत विशेष सम्मान भी किया है, वही सब से छोटा होते हुए भी हमारे राज्य का उत्तराधिकारी है, क्योंकि उसी ने हमारी वृद्धावस्था को इतने दिनों तक वहन किया है। एक योग्य पुत्र की भाँति पुरु ने मेरी सभी अभिलाषाओं और आज्ञाओं की पूर्ति की है, वही हमारा सब कुछ करने धरनेवाला है। स्वयं शुक्राचार्य जी ने ऐसा बरदान दे रखा है कि 'हे महामतिमन्। जो पुत्र तुम्हारा आज्ञाकारी एवं अनुगामी होगा, वही राजा होगा। मैं समझता हूँ, आप लोगों की भी अनुमति इस कार्य में होगी। पुरु का राज्याभिषेक करते जाइये। जो पुत्र गुणवान् है, माता और पिता के कल्याण में सर्वदा निरत रहनेवाला है, वह सब से छोटा होकर भी कल्याण भाजन है और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है।' 'इस राज्य के योग्य पुरु ही है, जो तुम्हारा हितकारी है, प्रिय है, वही हम सबों को भी, प्रिय है। ऐसा कहते हुए ब्राह्मणादिकों ने राजा ययाति के मत का अनुमोदन किया, शुक्राचार्य के वरदान के कारण उन लोगों को प्रत्युत्तर करने का साहस नहीं हुआ।' राजा की बातों से सन्तुष्ट पुर नगर वासियों के इस प्रकार अनुमोदन कर देने पर नहुष पुत्र राजा ययाति ने अपने कनिष्ठ पुत्र पुरु का अपने पद पर राज्याभिषेक किया, दक्षिणपूर्व दिशा में तुर्वसु को अधिकारी बनाया। दक्षिण पश्चिम दिशा में सब से बड़े पुत्र यदु को स्थापित किया। उत्तर पश्चिम दिशा का अधिकार द्रुह्यु और अनु को दिया। सागर पर्यन्त विस्तृत सप्तद्वीपों समेत सारी पृथ्वी को जीत कर नहुष पुत्र महाराज ययाति ने अपने पाँचों पुत्रों में विभक्त कर दिया। धर्म के तत्त्वों को जाननेवाले उन पाँचों ययाति के पुत्रों ने सातों द्वीपों एवं नगरों समेत सारे पृथ्वी मण्डल का अपने-अपने प्रदेश तक धर्मपूर्वक

Funding by IKS-MoE

प्रतिपालन किया। इस प्रकार अपने पुत्रों में राज्य का विभाग कर एवं अपनी सम्पत्ति एवं श्री को पुत्र में सन्निविष्ट कर नहुष पुत्र राजा ययाति परम प्रसन्न हुए। अपने धनुष वाण एवं राज्याधिकार को पुत्रों को सौंप कर एवं समस्त कार्य भार बन्धुवर्गों को देकर राजा ययाति परम प्रसन्न हुए। इस विषय में महाराज ययाति ने प्राचीनकाल में पुत्रों से जो कुछ कहा था उसे बतला रहा हूँ। 'जो मनुष्य सभी प्रकार के कामनाओं को कछुए के अंगों की तरह समेटकर छिपा लेता है, (वही सच्चा मनुष्य है) कामनाएँ कभी इच्छित पदार्थों के उपभोग से शान्त नहीं होती प्रत्युत वे आग में घृत पड़ने के समान उपभोग करने से उत्तरोत्तर बढ़ती जाती हैं। समस्त पृथ्वी में जितना अन्न जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब मिलकर भी एक मनुष्य के लिए पर्याप्त नहीं हैं। ऐसा जो देखता है, वह अज्ञान में नहीं पड़ता। जब मनुष्य सभी जीवों में कर्म से, मन से, वचन से, अग्नि की तरह समानता का व्यवहार करने लगता है, तब उसे ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। जब दूसरे से डर नहीं लगता, जब दूसरे लोग अपने से नहीं डरते, जब कोई इच्छा उत्पन्न नहीं होती, जब किसी के प्रति द्वेषभाव का उदय नहीं होता, तब ब्रह्मत्व की प्राप्ति होती है। जो दुर्मतियों से नहीं छोड़ी जा सकती, जो वृद्ध होने पर भी नहीं बुढ़ाती, जो प्राणों का विनाश करनेवाले रोग एवं दोष की तरह भयानक है, उस तृष्णा को छोड़ देने पर ही सुख की प्राप्ति होती है। वृद्ध हो जाने पर केश वृद्ध (सफेद) हो जाते हैं, दाँत वृद्ध हो (टूट) जाते हैं, किन्तु जीवन की आशा और धन की आशा वृद्ध होने पर भी वृद्ध नहीं होती। कामनाओं की पूर्ति होने पर जो सुख मिलता है, दिव्य पदार्थों एवं वस्तुओं की प्राप्ति पर जो महान सुख होता है, वह सब सुख, उस सुख की सोलहवीं कला (अंश) की भी समानता नहीं कर सकता, जो तृष्णा के नाश हो जाने पर प्राप्त होता है।' इस प्रकार महायशस्वी राजर्षि ययाति ने पुत्रों को शिक्षा देकर स्त्रीसमेत वन को प्रस्थान किया। और भृगुतुङ्ग नामक स्थान में तपस्या कर, वहीं पर सौ व्रतों का विधिवत् पालन कर स्वर्ग प्राप्त किया। उनके देवर्षियों द्वारा सत्कार पाने वाले ये पाँच वंश हैं जो, सूर्य की किरणों के समान समस्त पृथ्वी मण्डल को व्याप्त किये हुए हैं। जो उत्तम द्विज महाराज ययाति के इस उत्तम चरित्र का समग्र पाठ करता अथवा सुनता है, धन धान्य, पूजा, दीर्घायु, और कीर्ति प्राप्त करता है। ॥८०—१०४

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते ययातिप्रसवकीर्तननाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥९३॥

चौरानबेवाँ अध्याय

कार्तवीर्य अर्जुन की उत्पत्ति कथा

सूत बले:—अब मैं परम तेजस्वी ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का वर्णन विस्तारपूर्वक क्रम से कर रहा हूँ, सुनिये। यदु के पाँच देवताओं के समान सुन्दर एवं प्रभावशाली पुत्र हुए, जिनमें सब से बड़े पुत्र का नाम सहस्रजित् था, अन्य पुत्रों के नाम क्रोष्टु, नील, जित और लघु थे। सहस्रजित्

के पुत्र परम कान्तिमान् राजा शतजित् थे। शतजित् के तीन परम विख्यात एवं परम धार्मिक पुत्र हुए। जिनके नाम हैहय, हय और राजा वेणु हय थे। हैहय का उत्तराधिकारी राजा वेणु तंत्र हुआ—ऐसा सुना जाता है। धर्मतंत्र के पुत्र कीर्ति हुए, कीर्ति के पुत्र संज्ञेय हुए। संज्ञेय के उत्तराधिकारी राजा महिष्मान् हुए। महिष्मान् के पुत्र प्रतापशाली राजा भद्रश्रेण्य हुए, जो वाराणसी के अधिपति थे, इनके विषय में पहले ही कहा जा चुका है। भद्रश्रेण्य का उत्तराधिकारी राजा दुर्दम हुआ, दुर्दम का पुत्र परम बुद्धिमान् राजा कनक नाम से विख्यात हुआ। कनक के चार उत्तराधिकारी लोक विख्यात हुए, जिनके नाम कृतवीर्य, कार्तिवीर्य, कृतवर्मा और कृत थे। कृतवीर्य से अर्जुन की उत्पत्ति हुई। वह राजा अर्जुन एक सहस्र बाहुओं वाला था तथा सातों द्वीपों का स्वामी था। उस राजा कार्तवीर्यार्जुन ने दस सहस्र वर्षों तक परम कठोर तपस्या कर अत्रि के पुत्र दत्त की आराधना की; दत्त ने उसे परम महत्त्व पूर्ण चार वरदान प्रदान किये थे, जिनमें से उसने पहला वरदान सहस्र बाहुओं का प्राप्त किया। दूसरे वरदान के अनुसार अधर्म में नष्ट होते हुए लोक को सदुपदेशों द्वारा निवारित करना, तृतीय वरदान के अनुसार धर्मपूर्वक पृथ्वी विजय करके धर्म पूर्वक पालन करना, चतुर्थ वरदान के अनुसार अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त कर, सहस्रों शत्रुओं का विनाश कर रणभूमि में अपने से अधिक बलवाले के हाथ मृत्यु प्राप्त करना। इन वरदानों को प्राप्त कर कार्तवीर्यार्जुन ने नगरों एवं सातों द्वीपों समेत पृथ्वी को जीतकर, सातों समुद्रों तक फैली हुई वसुंधरा पर क्षत्रिय धर्म से अधिकार प्राप्त किया। उस परम चतुर महाराज के युद्ध करने के समय माया से एक सहस्र बाहु हो जाते थे, अनेक योद्धा, ध्वजा, और रथ भी होजाते थे। सुनते हैं उस परम चतुर राजा कार्तवीर्य ने उन सातों द्वीपों में दस सहस्र यज्ञों का अनुष्ठान सम्पन्न किया था, और वे सब यज्ञ निर्विघ्न समाप्त भी हो गये थे। परम-तेजस्वी महाबाहु उस कार्तवीर्य के वे सब यज्ञ बड़े समारोह से सम्पन्न हुए थे, सब में सुवर्ण की वेदियाँ बनी थीं, और सुवर्ण के खम्भे गड़े थे। सभी महाभाग्यशाली देवगण विमानों पर सुशोभित थे। नित्य गन्धर्व और अप्सराएँ आ आकर उनकी शोभा बढ़ाते थे। उस महाराज की यशोगाथा का गन्धर्व गण गान करते थे। उस राजर्षि कार्तवीर्य की अपार महिमा एवं निर्मल चरित्र को देखकर देवर्षि नारद भी उसका इस प्रकार गुण गान किया करते थे कि 'यह निश्चय है कि मनुष्य योनि में पैदा होने वाले कोई भी, उस महाराज कार्तवीर्य के यज्ञ, तपस्या, दान, पराक्रम, पाण्डित्य आदि में समानता नहीं प्राप्त कर सकते।' सातों द्वीपों में वह महाराज तलवार और सुन्दर धनुष, बाण धारण किये हुए रथ पर सवार, राजा होकर भी पीछे-पीछे चलने वाला देखा जाता था। उसके राज्य में किसी का भी द्रव्य नष्ट नहीं होता था, न किसी को शोक था न सन्ताप था। उस महाराज के शासन काल में धर्मपूर्वक प्रजाओं की रक्षा हुई। नरपति कार्तवीर्य इस प्रकार पचासी सहस्र वर्षों तक सातोंद्वीपों का एक मात्र चक्रवर्ती सम्राट रहा। अपने राज्य में वह स्वयं पशुओं की पालना करने वाला था, स्वयं खेतों की भी देखभाल रखता था, योगाभ्यास परायण होने के कारण समय समय पर वह कार्तवीर्यार्जुन वृष्टि करके मेघों का भी कार्य करता था। धनुष की डोरी खींचने से कड़े पड़े हुए एक सहस्र हाथों से सुशोमित वह महाराज शरत्कालीन सहस्र किरणोंवाले सूर्य की भाँति

Funding by IKS-MoE

शोभायमान होता था। उस महाराज नराधिपति अर्जुन ने नागों की माहिष्मती नगरी में एक सहस्र नागों समेत कर्कोटक नागराज की सभा को पराजित कर वहाँ पर अपनी पुरी बसाई थी। वर्षाकालीन कमल के समान निर्मल सुन्दर नेत्रोंवाले उस महावीर अर्जुन ने खेल ही खेल में समुद्र का वेग रोककर असमय में ही वर्षाकाल का सा समय कर दिया।[1] जल क्रीड़ा करते हुए उसके कंठ से सुवर्ण की माला खिसक कर नर्मदा की धारा में गिर पड़ी थी, उससे सुशोभित एवं क्रीड़ा से आलोडित नर्मदा अपनी तरङ्गरूपी कातर भृकुटियों एवं तरंगों के शब्दों से शङ्किता के समान उसके अभिमुख गमन करती थी। प्राचीन काल में एक वार नर्मदा का अनुसरण करते हुए उस महाराज अर्जुन ने महासमुद्र में जाकर उसका अवगाहन किया अपने सहस्र बाहुओं से समुद्र के जल को आलोडित कर तटवर्ती वन प्रान्त को प्लावित कर दिया, इस प्रकार उस वन में उसने असमय में वर्षाकाल ला दिया। इस प्रकार सहस्रबाहुओं द्वारा आलोडित होने पर जब महासमुद्र विक्षुब्ध हो गया, तब पाताल लोक वासी महाबलवान् असुर वृन्द कितने बेहोश हो गये और कितने इधर उधर भय के मारे छिप गये। उसके सहस्र बाहुदण्डों से ताड़ित होकर महासमुद्र की भीषण तरंगें चूर्ण चूर्ण हो गईं, बड़े बड़े मत्स्य एवं विषधर गण उसी में विलीन हो गये। जल राशि में फेनों के समूह तैरने लगे, महाभयानक भँवरे उठने लगीं। अपने सहस्र भुजदण्डों से उस महाराज अर्जुन ने समुद्र को इस प्रकार विक्षुब्ध कर दिया जैसे अमृत मंथन के समय देवताओं और दानवों ने मिलकर क्षीरसागर को विक्षुब्ध कर दिया था। समुद्र में विराजमान उस भीमकाय नरपति अर्जुन को देखकर जलजन्तुओं को मन्दराचल द्वारा समुद्र मन्थन की आशंका हुई और वे अतिशीघ्र भयभीत एवं आतंकित हो गये। समुद्र में रहनेवाले भीषण विषधर सर्प उस महावीर अर्जुन को देखकर इस प्रकार विनत और निश्चल मस्तकवाले वन गये जैसे सांयकाल की हवा के बन्द हो जाने पर केलों के पेड़ निश्चल और निस्तब्ध हो जाते हैं। गर्वपूर्वक लंकापुरी में जाकर उस महावीर ने अपने कठोर धनुष से पाँच सौ बाणों को छोड़कर सेना समेत रावण को बलपूर्वक मोहित कर लिया था, और इस प्रकार उसे पराजित कर बन्धन में डाल अपनी राजधानी माहिष्मती नगरी में लाकर बन्दी बनाया था। जब महर्षि पुलस्त्य ने जाकर उसको प्रसन्न किया, तब उनके अनुरोध पर रावण को छोड़ा था। उसके सहस्र बाहुओं से उत्पन्न होनेवाले प्रत्यञ्चा के टंकोर युगान्त के समय विजली गिरने और प्रलयंकर बादलों के भयावने शब्दों के समान होते थे। खेद है कि ऐसे महाबलशाली कार्तवीर्य की सहस्र बाहुओं को जमदग्नि पुत्र परशुराम ने युद्ध क्षेत्र में हेमताल के वन की भाँति काट डाला। कभी एक बार तृष्णा से व्याकुल होकर आदित्य ने अर्जुन से भिक्षा की याचना की थी, नरपति ने सूर्य को सातों द्वीपों समेत समस्त पृथ्वी को दान कर दिया। राजा के बाणों में स्थित होकर आदित्य ने जलाने की इच्छा से पृथ्वी के समस्त पुरों, ग्रामों, पशुशालाओं, एवं पत्तनों तक को भस्म कर दिया। उस पुरुषेन्द्र कार्तवीर्य के प्रभाव से महान् यशस्वी आदित्य ने पृथ्वी के समस्त पर्वतों और वनों को भी भस्म कर दिया। हैहय कार्तवीर्य की सहायता

---

[1] मूल प्रति में 'मुखोद्विग्नः' पाठ की कोई संगति नहीं बैठती।

से सूर्य ने इस प्रकार वनों एवं द्वीपों समेत पृथ्वी को भस्म करते हुए वरुण के आत्मज का एक शून्य आश्रम भी चारों ओर से भस्म कर दिया। वरुण ने अपने इस पुत्र को, जो परम तेजस्वी एवं उत्तम गुणोंवाला था, प्राचीनकाल में प्राप्त किया था, उनका वह पुत्र मुनिवर वसिष्ठ के नाम से तथा आपव के नाम से प्रसिद्ध था। सर्व समर्थ आपव अपने आश्रम को भस्म देखकर बहुत क्रोधित हुए और अर्जुन को उन्होंने इस प्रकार शाप दिया, 'हैहय ! तुमने मेरे वन को जो नहीं छोड़ा, सो तुम्हारे इस दुष्कर कर्म को भी कोई दूसरा नष्ट करेगा, वह होगा, कुन्तीपुत्र अर्जुन। वह राजा भी न होगा। अर्जुन ! तुम्हारी इन सहस्र बाहुओं को, वीरों में श्रेष्ठ परम बलवान् परशुराम काट डालेंगे। ब्राह्मण, तपस्वी महाबलवान् परशुराम तुम्हें पराजित कर तुम्हारा संहार करेंगे।' परम बुद्धिमान् आपव के शापवश परशुराम ही उस कार्तवीर्य की मृत्यु के कारण बने। प्राचीनकाल में राजा ने इसी प्रकार का वरदान भी मांगा था कि मेरी मृत्यु उसके हाथों से हो, जो बल में मुझसे अधिक हो। उस राजा कार्तवीर्यार्जुन के सौ पुत्र थे, जिनमे पाँच महारथी थे। उनके नाम थे, शूर, शूरसेन, वृष्ण्याद्य वृष और जयध्वज। ये सभी पुत्र शस्त्रास्त्र धारण करने में प्रवीण, बलवान्, शूर, धर्मात्मा एवं यशस्वी थे। इन सबों ने अवन्ती देश में राज्य किया था। जयध्वज का पुत्र प्रतापशाली तालजंघ था, उसके सौ पुत्र हुए, जो तालजंघ गण के नाम से विख्यात हुए। महान् पराक्रमशाली उन हैहयवंश में उत्पन्न होनेवालों के पाँच गण विख्यात हैं, उनके नाम हैं, वीर होत्रगण, जिनकी गणना नहीं की जा सकती, भोजगण, आवर्तिगण, तुण्डिकेरगण, जो परम बलशाली थे, तथा तालजंघ। वीरहोत्र का पुत्र राजा अनन्त हुआ, उसका पुत्र दुर्जय हुआ, दुर्जय से अमित्रदर्शन का जन्म हुआ। जैसा कि पहले भी कह चुके हैं उस महाराज कार्तवीर्य अर्जुन के राज्य में लोगों का द्रव्य नष्ट नहीं होता था, वह अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से समस्त प्रजाओं का पालन करता था। उस परम बुद्धिमान् महाराज कार्तवीर्यार्जुन का जन्म वृत्तान्त इस लोक में जो कहता है, उसकी सम्पत्ति नष्ट नहीं होती, यदि नष्ट हो गई हो तो पुनः प्राप्त होती है, इस लोक में वह परम धनशाली होता है, धर्म की वृद्धि होती है, जिस प्रकार शुभ कर्म परायण एवं दानशील लोग स्वर्ग में पूजित होते हैं, उसी प्रकार वह भी स्वर्ग में पूजित होता है। ॥१–५६॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते कार्तवीर्यार्जुनोत्पत्तिविवरणं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

पञ्चानबेवाँ अध्याय

ज्यामघ का वृत्तान्त विवरण।

ऋषि वृन्द बोले :—सूत जी कार्तवीर्य ने अपना पराक्रम दिखाते हुए महात्मा आपव के आश्रम को क्यों जला दिया ? ऐसा सुना जाता है कि वह राजर्षि कार्तवीर्यार्जुन अपनी प्रजाओं का पालक था, सो रक्षक होकर उसने तपोवन को भला क्यों जलाया, इसे हम लोग आपसे पूछ रहे हैं, कृपया बतलाइये। ॥१–२॥

Funding by IKS-MoE

सूत बोले :—ऋषि वृन्द ! आदित्य ब्राह्मणावेश धारण कर महाराज कार्तवीर्य के पास आये, और बोले, राजन् ! मैं भूखा हूँ, सन्तोष प्राप्ति के लिए आपके पास आया हूँ, मुझे अन्नादि दीजिये, मैं आदित्य हूँ, इसमें सन्देह न करिये। ॥३॥

राजा बोले : –भगवन् दिवाकर ! आपको किस से सन्तोष प्राप्ति होगी, मैं किस प्रकार का भोजन आपको दूँ ? आपका उत्तर सुनकर ही मैं कुछ प्रबन्ध कर सकूँगा। ॥४॥

सूर्य बोले :—दानिशिरोमणि राजन् ! मुझे समस्त स्थावर जगत् प्रदान कीजिये, मैं उसी का भोजन कर सन्तोष प्राप्त करूँगा, अन्य भोजन द्वारा मेरी तृप्ति नहीं होगी। ॥५॥

राजा बोले : –हे तेजस्वियों में श्रेष्ठ ! मैं मानवतेज द्वारा समस्त स्थावर जगत् को जलाने में सर्वथा असमर्थ हूँ, अत: आपही को प्रणाम करता हूँ। ॥६॥

आदित्य बोले :—राजन् ! मैं तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हूँ, मैं तुम्हें ऐसे बाण दे रहा हूँ, जिनका कभी नाश नहीं होगा जो तुम्हें सब प्रकार के सुख देनेवाले होंगे। मेरे तेज से समन्वित होकर ये बाण, फेंके जाने पर प्रज्वलित हो उठेंगे। हे नराधिप ! मेरे तेज से सम्वलित होने पर वे आदेश दे देने पर मेघ और समुद्र को भी सुखा डालेंगे। और इस प्रकार पदार्थों के सूख जाने पर तो मैं उन्हें भस्म कर ही डालूँगा, तभी हमारी वास्तविक तृप्ति होगी।' ऐसी बातें करने के उपरान्त आदित्य ने राजा कार्तवीर्य को वे बाण प्रदान किये। उन बाणों को प्राप्त कर अर्जुन ने समस्त स्थावर पदार्थों को, जो विशाल भूमण्डल भर में व्याप्त थे, तथा आश्रम, ग्राम, गौओं के ठहरने के स्थान, नगर, तपोवन, सुरम्य वन, उपवन सब को भस्म कर दिया और तदनन्तर सूर्य की प्रदक्षिणा की। सूर्य के तेज से भस्म पृथ्वी, वृक्षों और तृणों से विहीन हो गई। इसी अवसर महर्षि आपव ने एक नियम किया था, जिसके अनुसार दस सहस्र वर्षों तक जल में निवास कर रहे थे। महान् तेजस्वी तपोधन आपव जब अपने नियम समाप्त कर जल से उठे और बाहर आये तो उन्होंने अपने आश्रम को अर्जुन द्वारा जलाया हुआ देखा। उस समय उन्होंने राजर्षि कार्तवीर्य को शाप दिया, उसे हम आप लोगों से बतला रहे हैं। ॥ ७—१३ ॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! अब इस के बाद पुरुषरत्न राजर्षि क्रोष्टु के वंश का विवरण सुनिये, जिनके वंश में वृष्णिवंश के प्रवर्तक वृष्णि का प्रार्दुभाव हुआ था। क्रोष्टु के एक मात्र पुत्र महायशस्वी वृजिनीवान् हुए। वृजिनीवान् के पुत्र स्वाहि को, जो स्वाहा करनेवालों (यज्ञकर्त्ताओं) में श्रेष्ठ थे, लोग बहुत चाहते हैं। स्वाहि के पुत्र राजा रशादु दानियों में अग्रगण्य थे। रशादु के ज्येष्ठ पुत्र प्रसूत को प्रजाएँ बहुत चाहती थीं, उसने ऐसे महान् यज्ञों का अनुष्ठान किया था, जिसमें प्रचुर दक्षिणाएँ दी गई थीं। विचित्र ढंग के पुत्र प्राप्ति के कर्मों द्वारा उसे जो पुत्र उत्पन्न हुआ, चित्ररथ नाम से विख्यात हुआ। वीर चित्ररथ ने भी इसी प्रकार विपुलदक्षिणावाले यज्ञों का अनुष्ठान किया था। तदनन्तर राजर्षियों द्वारा सम्मानित शशविन्दु राज्याधिकारी हुआ। वह महाबलवान्, महान् पराक्रमी, अनेक पुत्रोंवाला, तथा चक्रवर्ती शासक था। पुरानी कथाओं के जाननेवाले उसके विषय में श्लोक गाते हैं, जिसका आशय निम्न प्रकार है। राजा

शशविन्दु के एक सौ विपुल अर्थबल सम्पन्न बुद्धिमान एवं तेजस्वी पुत्र थे, जिनमें छः सबसे प्रमुख थे, जो सब पृथुगण के नाम से विख्यात थे, वे छः पुत्र महान बलशाली थे। उनके नाम थे, पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुञ्जय, पृथुकीर्ति और पृथुदाता। ये सब के सब राजा थे और शशविन्दु के पुत्रों के नाम से विख्यात थे। सभीपुराण पृथुश्रवा के पुत्र अन्तर की बड़ी प्रशंसा करते हैं, यही अन्तर प्राचीन काल में यज्ञ का पुत्र था। उसी धर्मात्मा ने उशना नाम से इस पृथ्वी को प्राप्त किया। परम धार्मिक विचारों वाले उशना ने एक सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उसका पुत्र मरुत्त हुआ जिसे राजर्षिगण परम सम्मान देते हैं, मरुत्त का पुत्र वीरकम्बलवर्हि कहा जाता है, कम्बलवर्हि का पुत्र परम विद्वान राजा रुक्मकवच हुआ। प्राचीनकाल में इस राजा रुक्मकवच ने बहुतेरे धनुष, बाण, कवच धारण करनेवाले योद्धाओं को युद्ध क्षेत्र में अपने तीक्ष्णबाणों से मारकर उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति की थी। और अश्वमेध यज्ञ में ब्राह्मणों को भूरि दक्षिणा दान कर महान् यश प्राप्त किया था। उस राजा रुक्मकवच से शत्रुओं के वीरों को नष्ट करनेवाले महान् बलवान्, महान् पराक्रमी पाँच वीर पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नाम थे, रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरि। पिता ने परिध और हरि नामक पुत्रों को विदेह देश में स्थापित किया। रुक्मेषु अपने पिता के राज्य का अधिकारी हुआ, पृथुरुक्म उसके अधीन था। उन सभी भाइयों ने मिलकर ज्यामघ को विासित कर दिया, जिससे उसने वन में अपना आश्रम बनाया। घोर वन्य प्रान्त में मुनिवृत्ति धारण करनेवाले ज्यामघ को एक ब्राह्मण ने प्रेरणा दी, जिससे प्रभावित होकर वह रथ पर चढ़ धनुष धारण कर मध्य देश को प्रस्थित हुआ। वहाँ नर्मदा के तटवर्ती प्रान्त में अकेले घूमते हुए, वह मेकल पर्वत के शिखरों से ऋक्षवान् नामक पर्वत पर पहुँचा और वहाँसे शुक्तिमक्ती में प्रविष्ट हुआ। ज्यामघ की पत्नी शैव्या परम शक्तिमती और साहसी थी। उससे कोई पुत्र यद्यपि नहीं था फिर भी राजा होकर उसने दूसरी स्त्री से व्याह नहीं किया था। एक युद्ध में राजा ज्यामघ की विजय हुई, जिसमें उसने एक कन्या प्राप्त की। नरपति ने उस कन्या को लाकर अपनी स्त्री से यह कहा कि 'यह तुम्हारी पुत्र वधू है।' राजा के ऐसा कहने पर शैव्या ने कहा 'यह किसकी पुत्रवधू होगी।' राजा ने कहा 'तुम्हें जो पुत्र उत्पन्न होगा यह कन्या उसीकी स्त्री होगी।' राजा के इस वचन से शैव्या ने कठोर तपस्या की, जिससे उसे एक पुत्र हुआ। सुन्दरी, साध्वी-शैव्या ने वृद्धावस्था में इस प्रकार विदर्भ नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। उसकी पुत्रवधू में विदर्भ से क्रथ और कौशिक नामक दो राजपुत्र उत्पन्न हुए, जो परम विद्वान् शूर-वीर और रणनिपुण थे। उन दोनों पुत्रों के पीछे राजा विदर्भ ने एक तीसरे परम धार्मिक लोमपाद नामक पुत्र को उत्पन्न किया। लोमपाद के पुत्र राजा बभ्रु हुए, उनके पुत्र आहृति हुए। कौशिक के पुत्र चिदि हुए, जिस चिदि से उत्पन्न होने वाले राजा लोग चैद्य नाम से विख्यात हुए। विदर्भराज के पुत्र जो क्रथ थे, उनके आत्मज कुन्ति हुए। कुन्ति के पुत्र धृष्टसुत हुए, जो परम प्रतापशाली राजा थे। धृष्ट के पुत्र धर्मात्मा निर्वृति हुए, जो शत्रुओं के वीरों को नष्ट करने वाले थे। निर्वृति के पुत्र महान् बलशाली एवं परम पराक्रमी राजा दशार्ह हुए, दशार्ह के पु व्योमा हुए, व्योमा के बाद राजा जीमूत कहे जाते हैं।

जीमूत के पुत्र विकृति हुए, विकृति के पुत्र राजा भीमरथ कहे जाते हैं, तदनन्तर भीमरथ के पुत्र राजा रथवर प्रसिद्ध हुए जो सर्वदा सत्य वचन बोलनेवाले, शीलवान एवं दान कर्म में तत्पर रहते थे। उन रजा रथवर के पुत्र नवरथ हुए, जिनके बाद दशरथ कहे जाते हैं। उन राजा दशरथ के एकादशरथ नामक पुत्र हुए। उनके पुत्र राजा शकुनि हुए। शकुनि के बाद धनुषधारी राजा करम्भ हुए, जिनके पुत्र देवरात हुए। देवरात का पुत्र महान् यशस्वी राजा देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्र का पुत्र क्षत्रनन्दन देवन उत्पन्न हुए देवन से मधु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, जिसके पुत्र का नाम मेधार्थसम्भव था। उस मधु के महान् तेजस्वी मनु, मनुवंश, नन्दन और महानपुरुवश नामक पुत्र और हुए। पुरुवशा का पुत्र पुरुष श्रेष्ठ पुरुद्वान हुआ पुरुद्वान का पुत्र पुरुद्वह भद्रवती नामक स्त्री से उत्पन्न हुआ। उसकी स्त्री इक्ष्वाकुवंशोत्पन्न थी, उसमें उसे सत्त्व नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। उस सत्त्व से सत्त्वगुणसम्पन्न कीर्तिशाली सात्त्वत नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। महात्मा ज्यामघ के वंश विस्तार की इस कथा को जानकर मनुष्य संततियोंवाला होता है और परम बुद्धिमान् राजा चन्द्रमा का सायुज्य (सान्निध्य) प्राप्त करता है। ॥ १४—४८ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते ज्यामघवृत्तान्तकथनं नामपञ्चनवतितमोऽध्यायः। ॥ ९५ ॥

छानबेवाँ अध्याय

विष्णु-वंश-वर्णन

सूत बोले—ऋषिवृन्द! रूपवती सात्वत की स्त्री कौशल्या ने भजिन भजमान् राजा देवावृध अन्धक, महाभोज तथा यदुनन्दु वृष्णि प्रभृति पुत्रों को उत्पन्न किया। इन सबों में चार वंशों का विवरण विस्तारपूर्वक सुनिये। भजमान के शृञ्जयी नामक पत्नी में वाह्य और उपरिवाह्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। शृञ्जय की दो पुत्रियाँ थीं, जिन्हें वाह्यक ने पत्नी रूप में स्वीकार किया। उन दोनों बहिनों ने, वाह्यक की पत्नी होकर अनेक पुत्र उत्पन्न किए। जिनमें निमि, पणव, एवं शत्रुओं के नगरों को जीतने वाले वृष्णि प्रमुख हुए—भजमान के पुत्र वाह्यक ने अपनी ज्येष्ठ रानी में इन पुत्रों को उत्पन्न किया। इसी प्रकार कनिष्ठ रानी में अयुतायुत-जित्, सहस्रजित् शतजित् और वामक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इन सबों में राजा देवावृध ने परम तपस्या की। उन्होंने यह संकल्प करके तपस्या की थी कि 'मुझे एक सर्वगुणसम्पन्न पुत्र प्राप्त हो।' इस प्रकार संकल्प कर राजा ने तपस्या करते समय योगबल से पर्णाशा नामक नदी के जल का स्पर्श किया। स्पर्श करते ही नदी ने राजा की कल्याण चिन्ता की, नदियों में उत्तम पर्णाशा ने चिन्ता आतुर होकर यह विचार किया कि 'मेरी जानकारी में ऐसी कोई स्त्री नहीं है, जिसमें राजा देवावृध के संकल्प के अनुसार सर्वगुणसम्पन्न पुत्र उत्पन्न हो, अतः अब मैं स्वयं ही इसकी सहधर्मिणी बन रही हूँ।

राजा ने जिस प्रकार की भावना की थी उसी के अनुसार नदी से स्वयमेव उसके हाथों का प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर सावित्री कुमारी होकर उसने सुन्दर शब्दों में राजा के प्रति अपनी चिन्ता (अनुरक्ति) प्रकट की, राजा ने उसकी इच्छा पूर्ति की। उदारचेता राजा देवावृध ने उस कुमारी में एक तेजस्वी पुत्र का गर्भाधान किया। सरिताओं में श्रेष्ठ पर्णाशा ने नवें महिने में जिस प्रकार के पुत्र की इच्छा राजा देवावृध को थी उसी प्रकार का सर्वगुण सम्पन्न पुत्र उत्पन्न किया। पुराणों की कथाओं के जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण लोग उस वंश के प्रसंग में महात्मा राजा देवावृध के गुणों और वंशों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह राजा देवावृध दूर से जैसा सुना जाता था वैसा ही समीप में जाने पर प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता था। राजा देवावृध देवताओं के समान गुणशाली था। वभ्रु मानव समाज में सर्वश्रेष्ठ था। इस वंश के पैंसठ सहस्र सत्तर मनुष्यों ने अमृतत्व की प्राप्ति की। वभ्रु गुणों में देवावृध से भी बढ़ा चढ़ा था। वह यज्ञ करनेवाला, दानियों का स्वामी, वीर, ब्राह्मणप्रतिपालक, बुद्धिमान्, सत्यवादी, कीर्तिमान् महाभाग्यशाली एवं सात्वत के वंश में उत्पन्न होनेवालों में एकमात्र महारथी था। उसके वंश में महान् भोज (?) वंशीय एवं आर्तिकाबलों (?) की उत्पत्ति हुई थी। गान्धारी और माद्री—ये दो वृष्णि की स्त्रियाँ थीं। इनमें से गान्धारी ने सुमित्र मित्रनन्दन को और माद्री ने युधाजित देवमीढुष और अनमित्र नामक पुत्रों को उत्पन्न किया–वे दोनों पुरुष श्रेष्ठ थे। अनमित्र का पुत्र निघ्न हुआ, निघ्न के दो पुत्र हुए, महाभाग्यशाली प्रसेन और शक्रजित्। उस शक्रजित् के सूर्य प्राणों के समान परम मित्र थे। एक बार कभी प्रातःकाल के समय रथारोहियों में श्रेष्ठ वह शक्रजित सूर्य की उपासना करने के लिए अपने रथ पर सवार होकर जलाशय के जल का स्पर्श करने निकला। जिस समय वह उपासना कर रहा था, उस समय अस्पष्ट रूप धारण कर अपने तेजोमण्डल से समन्वित होकर भगवान् सूर्यनारायण उसके आगे उपस्थित हुए। सूर्य को आगे उपस्थित देखकर राजा ने कहा, ज्योतिर्गणों के स्वामिन्! मैं आकाश मण्डल में आपको जिस प्रकार तेजोमय देखता हूँ, उसी प्रकार इस समय भी देख रहा हूँ, तो फिर भगवन्! आपके मित्र रूप में उपस्थित होने की विशेषता क्या है? शक्रजित की यह बात सुनकर भगवान् सूर्यनारायण ने अपने कण्ठ से स्यमन्तक नामक उत्तम मणि को छोड़कर राजा के कण्ठ में बाँध दिया, उस समय राजा ने सूर्यनारायण को शरीर धारण किये हुए देखा। उस अनुपम तेजस्विनी प्रतिमा को उन्होंने एक मुहूर्त तक उसी प्रकार देखा। तदनन्तर सूर्य को गमनोद्यत देखकर शक्रजित ने कहा, 'भगवन्! आप अग्नि के समान परमतेजोमय हैं, अपने जिस प्रकाशमान मणि से इतने प्रकाश युक्त होकर आप समस्त लोकों में भ्रमण करते हैं, उसी सुन्दर मणि को मुझे प्रदान करने की कृपा करें।' शक्रजित की इस याचना पर भगवान् सूर्यनारायण ने अपना स्यमन्तक नामक मणि राजा को प्रदान कर दिया। महीपति ने उस सुन्दर मणि को बाँध कर अपने पुर में प्रवेश किया। लोग यह समझकर उसके पीछे-पीछे दौड़ने लगे कि यह सूर्य जा रहे हैं।' इस प्रकार नगर निवासियों को तथा अन्तःपुर को उस मणिद्वारा विस्मय विमुग्ध कर राजा शक्रजित ने दिव्य मणि को अपने भाई प्रसेनजित को प्रेमपूर्वक प्रदान कर दिया। उस स्यमन्तक मणि के विषय में यह प्रसिद्धि है कि

Funding by IKS-MoE

वह जिस राष्ट्र में रहता है, वहाँ मेघ समय समय पर वृष्टि करते हैं, और वहाँ व्याधियों का भय नहीं रहता। गोविन्द के मन में उस स्यमन्तक मणि को प्रसेनजित से ले लेने की इच्छा हुई, किन्तु सामर्थ्य रखते हुए भी उन्होंने उसे प्रसेनजित से छीना नहीं। एक बार कभी उस सुन्दर मणि से विभूषित होकर प्रसेनजित शिकार के लिए वन को गये, वहाँ उसी स्यमन्तक के कारण एक सिंह ने उनको मार डाला। रीछराज जाम्बवान ने उस सिंह को मार डाला, और स्यमन्तक को लेकर अपने बिल में प्रवेश किया। महान् वृष्णि, अन्धकों के वंशजों ने इस हत्या कर्म की शंका कृष्ण के ऊपर की, 'उसी मणि की लालच से कृष्ण ने ऐसा किया' इस प्रकार की आशंकाएँ सबों के मन में हुई। शत्रुमर्दन बलवान् भगवान् कृष्ण इस मिथ्या अपवाद को उन लोगों द्वारा सुनकर सहन न कर सके और तुरन्त वन को प्रस्थित हुए। प्रसेनजित जिस स्थान पर शिकार खेलने के लिए गये थे, उसी स्थान को प्रसेन के पदचिन्हों को जानकार लोगों से पता लगाकर अनुसरण करते हुए कृष्ण चले। और इस प्रकार ऋक्षवान् गिरिवर और पर्वतश्रेष्ठ विन्ध्याचल में घूमते-घूमते वे बहुत परेशान हो गये। वहाँ पर महामनस्वी कृष्ण ने घोड़े समेत प्रसेन को मरा हुआ पाया पर मणि को नहीं पाया। उसी प्रसेन के शव से थोड़ी दूर सिंह को भी मरा हुआ पाया, वहाँ पर रीछ के पद चिह्नों से यह स्पष्ट पता चल रहा था कि रीछ ने सिंह को मारा है। तदनन्तर यादव श्रीकृष्ण जी ने रीछ के उन्हीं पद चिह्नों से रीछ की गुफा का पता लगाया। उन्होंने उसकी विशाल बिल में स्त्री की आवाज सुनी। द्विजगण! जाम्बवान की बिल में उसके लड़के को धाय प्रेमपूर्वक स्यमन्तक मणि को दिखलाकर यह कह रही थी कि 'बेटा मत रोओ' इसके अतिरिक्त वह इस प्रकार की बातें भी कर रही थी। ॥४१॥

धाय बोली:—प्रसेनजित् को सिंह ने मारा, सिंह को जाम्बवान् ने मारा, मेरे सुकुमार बेटे! तुम मत रोओ। यह स्यमन्तक मणि तुम्हारा है।' धाय की यह वाणी सुनते ही कृष्ण शीघ्रतापूर्वक उस बिल में प्रविष्ट हो गये, बिल के समीप ही वे प्रसेनजित् को मरा हुआ देख चुके थे। बिल में शीघ्रतापूर्वक प्रविष्ट होकर परम तेजस्वी उदारबुद्धि भगवान् कृष्ण ने रीछराज जाम्बवान् को देखा। और उसी बिल में ही जाम्बवान् के साथ वासुदेव का युद्ध प्रारम्भ हो गया, बाहुद्वारा ही गोविन्द ने इक्कीस दिनों तक युद्ध किया। उधर कृष्ण के बिल में प्रविष्ट हो जाने पर जब देरी होने लगी तो उनके साथियों ने द्वारकापुरी में लौटकर यह बात बतलाई कि कृष्ण तो मारे गये। इधर वासुदेव ने महाबलशाली रीछराज जाम्बवान को पराजित कर उसकी सम्मति से जाम्बवती नामक सुन्दरी कन्या को प्राप्त किया। तेजोबल से अभिभूत होकर जाम्बवान् ने जबरदस्ती अपनी कन्या जाम्बवती को और स्यमन्तकमणि को विष्वक्सेन भगवान कृष्ण को समर्पित कर दिया। भगवान कृष्ण ने अपने ऊपर फैले हुए अपवादों की शुद्धि के लिए स्यमन्तकमणि को ऋक्षराज जमबवान् से ले लिया और उससे फिर अनुनय विनय कर बिल से बाहर आये। इस प्रकार स्यमन्तक मणि को प्राप्तकर उन्होंने अपने पुरुषार्थ से अपना अपयश दूर किया और उसे ले जाकर समस्त सात्वत वंशियों के समक्ष शक्रजित को समर्पित किया। तदनन्तर भगवान् मधुसूदन कृष्ण ने जाम्बवती से अपना विवाह किया। इस प्रकार उस मिथ्या अपवाद से जनार्दन भगवान् कृष्ण की मुक्ति हुई।

भगवान् कृष्ण के ऊपर फैलाई गई इस मिथ्या अपकीर्ति को दूर करने का वृत्तान्त जो व्यक्ति जानता है उसे कभी किसी प्रकार से इस प्रकार की मिथ्या अपकीर्ति का भाजन नहीं होना पड़ता। शत्रुजित् से उसकी दस पत्नियों में, जो सब की सब सगी बहिन थीं, एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें तीन ही ख्यात हुए, उनमें सब से बड़ा पुत्र भृङ्गकार था। अन्य दो पुत्रों के नाम बलवान् व्रतपति तथा सुप्रिय अपस्वान्त थे। भृङ्गकार की स्त्री द्वारवती सुन्दर सन्ततियों वाली थी, उसने तीन सर्वगुणसम्पन्न कन्याओं को उत्पन्न किया था। जिनमें स्त्रियों में परम सुन्दरी सत्यभामा परम दृढ़व्रतपरायण, तथा तपस्विनी थी। पिता ने उसे कृष्ण को समर्पित करने की बात की थी, । कृष्ण ने जिस स्यमन्तक नामक बहुमूल्य मणि को शक्रजित् को दिया था, उसे बभ्रु ने धारण किया था। भोज वंशीय शतधन्वा ने उससे उस मणि को छीनकर अक्रूर को दे दिया। शतधन्वा ने परम, सुन्दरी सत्यभामा की प्राप्ति के लिये अक्रूर से सहायता की प्रार्थना की, अक्रूर ने उस मणिश्रेष्ठ स्यमन्तक की प्राप्ति की आशा से उससे सहायता की याचना की। जिसपर रात्रि के समय सोते हुए भद्रकार को महाबलवान् शतधन्वा ने मारकर उस बहुमूल्य मणि को अक्रूर को दे दिया। नरश्रेष्ठ अक्रूर ने मणि को लेते समय उससे प्रतिज्ञा करा ली कि हमारे षड्यन्त्र को तुम्हें किसी अन्य से नहीं बतलाना होगा। कृष्ण जब तुम्हें पीड़ित करेंगे तो हम सब लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इस समय सारी द्वारिकापुरी हमारे वश में है। पिता के मारे जाने पर यशस्विनी सत्यभामा बहुत दुखी हुई और रथ पर चढ़कर वारणावत नगर को गई। वहाँ पहुँचकर उसने भोजवंशीय शतधन्वा के इस दारुण कर्म को पति से निवेदन किया और परम कातर होकर उसके बगल में बैठकर आँसू गिराती रही। वारणावत में पाण्डवों को जलजाने पर हरि ने पिण्डादिक क्रियाएँ सम्पन्न कीं और उस समय अपने भाइयों के स्थान पर सात्यकि को नियुक्त किया। भगवान् मधुसूदन ने तुरन्त द्वारकापुरी में जाकर अपने बड़े भाई हलधर से सभी बातें बतला कर यह निवेदन किया। 'हे सर्व-शक्ति-सम्पन्न ! जिस स्यमन्तक मणि के कारण सिंह ने प्रसेनजित् का निधन किया था, उसी के कारण शतधन्वा ने शत्रुजित् का निधन किया है, मैं उसी स्यमन्तक को चाहता हूँ आप शतधन्वा का संहार करें। आप शीघ्र ही रथ पर सवार हों, हे महाबाहु ! महाबलवान् भोज का संहार करने पर ही स्यमन्तक हम लोगों के हाथ लगेगा।' इस प्रकार परामर्श कर लेने के उपरान्त जब भगवान् कृष्ण और भोज वंशी शतधन्वा में तुमुल युद्ध छिड़ गया तब पूर्वप्रतिज्ञा के अनुसार शतधन्वा ने लड़ाई के मैदान में दसों दिशाओं में देखा पर अक्रूर का कहीं भी पता न लगा। रणक्षेत्र में भगवान् जनार्दन और शतधन्वा घोड़े पर सवार थे; उस समय हृदय से मित्र तथा सहायता में समर्थ होने पर भी अक्रूर शतधन्वा की सहायता के लिए नहीं आए। इससे शतधन्वा बहुत भयभीत हुआ और वहाँ से भाग निकलने की बात सोचने लगा। शतधन्वा की विज्ञात हृदया नाम की घोड़ी थी, जिसके द्वारा वह विचार करते ही करते सौ योजन दूर पहुँच गया। उसी दिव्य गुणसम्पन्न घोड़ी पर चढ़ कर वह भगवान् कृष्ण से युद्ध कर रहा था। उस तीव्रवेग शालिनी घोड़ी के वेग को सौ योजन देखकर, और उस पर चढ़कर शतधन्वा को भागते देखकर कृष्ण ने पीछा किया। द्विजवृन्द ! भगवान् कृष्ण के पीछा करने

Funding by IKS-MoE

पर अति परिश्रम से प्रचुर परिमाण में पसीना निकलने के कारण शतधन्वा की घोड़ी के जब प्राण निकल गये तब उन्होंने बलराम से कहा, हे महाबाहु ! आप यहीं रहिये, मैं देख रहा हूँ, वह घोड़ी तो मर गई है, अत. पैदल ही जाकर स्यमन्तक मणि को मैं शतधन्वा से छीन लाऊँगा । ऐसा कहकर परम अस्त्रवेत्ता भगवान् अच्युत ने पैदल ही जाकर मिथिलाधिपति-शतधन्वा का संहार किया, किन्तु उस महाबलशाली भोजवंशीय शतधन्वा के मार डालने पर भी स्यमन्तक को उसके पास नहीं देखा । वहाँ से शतधन्वा को मारकर जब भगवान् कृष्ण लौटे तब हलधर बलराम ने उनसे स्यमन्तक मणि माँगा । कृष्ण ने कहा कि मणि तो वहाँ पर नहीं मिला । उनकी इस बात से बलराम बहुत क्रुद्ध हुए और अनेक बार जर्नादन को धिक्कारा । बलराम ने आगे कहा, भाई के नाते तुम्हें तो मैं क्षमा प्रदान कर रहा हूँ, जाओ तुम्हारा कल्याण हो, मैं तो जा रहा हूँ मेरा अब द्वारका से कोई सम्बन्ध नहीं है, और न तुमसे तथा वृष्णिवंशियों ही से कोई प्रयोजन है । शत्रुओं के विनाश करनेवाले बलराम जी ने कृष्ण से ऐसी बातें कर मिथिलापुरी में प्रवेश किया, वहाँ पर मिथिलावासियों ने उन्हें सभी प्रकार के उपहार अर्पित किये और बड़ा सम्मान किया । इधर इसी अवधि में बुद्धिमानों में श्रेष्ठ प्रभु ने अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान बिना किसी विघ्न बाधा के सम्पन्न किया । महायशस्वी गाधिपुत्र ने उसी स्यमन्तक के लिए अपनी रक्षा के हेतु एक दीक्षामय कवच भी पहन रखा था । इस साठ वर्ष की अवधि में उसने अपने इन यज्ञों में विविध प्रकार के बहुमूल्य रत्न एवं द्रव्यादि लगाये थे । उस परम बुद्धिमान् महात्मा के ये यज्ञ अक्रूर यज्ञ के नाम से विख्यात हो चले थे । उनमें बहुत परिमाण में अन्न एवं दक्षिणा रूप में द्रव्य व्यय किया गया था, और ये सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले थे । ॥ ४२—८२ ॥

उसी अवधि में प्रभुवर्य्य कुरुपति दुर्योधन ने मिथिलापुरी में जाकर बलराम से गदा चलाने की दिव्य शिक्षा ग्रहण की थी । इस प्रकार बहुत दिन बीत जाने पर भगवान् कृष्ण के साथ वृष्णि और अंधकों ने बड़ी अनुनय विनय कर बलराम को प्रसन्न किया और उन्हें द्वारकापुरी चलने के लिए बाध्य किया । बलवान् पुरुष में श्रेष्ठ अक्रूर युद्ध में बन्धुमान के साथ शत्रुघ्न का संहार कर अंधकों के साथ द्वारकापुरी से बाहर चले गये । ये दोनों महाबलवान् पुत्र भङ्गकार के थे, स्वफल्क की पुत्री नरा में इन दोनों प्रख्यात पुरुषरत्नों का जन्म हुआ था । अंधकों के स्वामी भङ्गकार के ये दोनों शत्रुघ्न और बन्धुमान नामक पुत्र परम बलवान थे । भङ्गकार की मृत्यु के कारण भगवान् कृष्ण अक्रूर से प्रसन्न नहीं रहते थे । जाति भेद के भय से तथा समाज उपेक्षित होकर अक्रूर द्वारकापुरी के बाहर चले गये थे । उनके चले जाने पर इन्द्र ने वृष्टि करना ही बन्द कर दिया । अनावृष्टि के कारण समस्त राष्ट्र का विनाश उपस्थित हो गया, लोग परस्पर मारने काटने को उद्यत हो गये । इस दुर्घटना से प्रभावित होकर कुकुर और अंधकों ने जाकर अक्रूर को प्रसन्न किया । दानशिरोमणि अक्रूर जब लौटकर द्वारकापुरी में आये तब सहस्रनेत्र इन्द्र ने विपुल वृष्टि की, यहाँ तक कि समुद्र में भी विपुल वृष्टि हुई । यदुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीमान् अक्रूर ने प्रसन्न करने के लिए अपनी सर्वगुणसम्पन्ना शीलवती भगिनी को वासुदेव कृष्ण को समर्पित

किया। भगवान वासुदेव ने योगबल से अक्रूर के पास स्यमन्तक मणि का होना जान लिया और एक बार भरी सभा में उन्होंने अक्रूर से कहा, 'सम्माननीय ! सर्व समर्थ ! अक्रूर जी ! आपके पास जो सर्व श्रेष्ठ सुन्दर स्यमन्तक मणि है, उसे हमें दे दीजिये, इसमें इनकार न कीजिये। इसके लिए साठ वर्ष से हमारा क्रोध आपके ऊपर पैदा हुआ है, उस महान् क्रोध को प्रकाशित करने का अवसर मुझे एक बार मिला है। आज समय पड़नेपर मैं उस मणि की याचना कर अपने उस पुराने क्रोध को शान्त करना चाहता हूँ।' भगवान कृष्ण के इस वचन को सुनकर परम बुद्धिमान् अक्रूर ने सात्वत वंशियों की भरी सभा में बिना किसी क्लेश के उस स्यमन्तकमणि को भगवान् वासुदेव को समर्पित किया। शत्रुओं को वश में करनेवाले भगवान् वासुदेव ने इस प्रकार सरलतापूर्वक अक्रूर के हाथ से उस महामणि के प्राप्त हो जाने पर पुनः प्रसन्न मन से अक्रूर को वह मणि वापिस कर दिया। भगवान् कृष्ण के हाथ से उस मणिवर स्यमन्तक को प्राप्तकर गान्दिनीनन्दन अक्रूर ने उसे यथा स्थान अलंकृत कर लिया और उस समय अंशुमान् की तरह वे सुशोभित हुए। भगवान् के ऊपर लगाई गई इस मिथ्या अपवाद मूलक वार्ता को, जो वास्तव में विशुद्ध और उत्तम शिक्षा देनेवाली है, जो व्यक्ति जानता है, वह कभी ऐसे मिथ्या अपवाद का भाजन किसी प्रकार नहीं हो सकता। कनिष्ठ वृठिणनन्दन अनमित्र से शिनि की उत्पत्ति हुई, उनके पुत्र परम सत्यवादी सत्याचरण-परायण सत्यक हुए। सत्यक के पुत्र सात्यकि हुए, जिनका दूसरा नाम युयुधान भी था। सात्यकि के पुत्र भूति हुए। भूति के पुत्र युगन्धर हुए। इन सभी भौत्य के नाम से विख्यात वृष्णिवंशियों का विवरण कह चुका। माद्री के पुत्र युधाजित् के पृश्नि नाम से विख्यात पुत्र हुआ। पृश्नि के स्वफल्क और चित्रक नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज स्वफल्क परम धर्मात्मा थे, वे जहाँ पर विद्यमान रहते थे, वहाँ पर व्याधियों तथा अनावृष्टि का भय नहीं रहता था। द्विजवर्य वृन्द ! एक बार कभी सर्वसमर्थ काशिराज के राज्य में इन्द्र ने तीन वर्ष तक लगातार वृष्टि ही नहीं की। काशिराज ने परम सम्माननीय महाराज स्वफल्क को अपने यहाँ बुलाकर निवास करवाया, स्वफल्क के वास करते ही इन्द्र ने वहाँ पर वृष्टि की। स्वफल्क ने काशिराज की परम सुन्दरी कन्या गान्दिनी के साथ अपना विवाह किया था, गान्दिनी प्रति दिन ब्राह्मणों को गौदान करती थी। ऐसा कहा जाता है कि गान्दिनी अपनी माता के गर्भ में अनेक सौ वर्षों तक रही, उत्पन्न नहीं हुई, गर्भावस्था में अवस्थित उससे पिता ने कहा, गर्भस्थ सन्तान ! तुम शीघ्र उत्पन्न हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम किसलिए गर्भ में निवास कर रहे हो।' राजा की ऐसी बातें सुनकर गर्भावस्था में ही कन्या ने उत्तर दिया, पिता जी ! यदि आप प्रति दिन गौओं का दान करें तब मैं उत्पन्न होऊँगी।' पिता ने 'बहुत अच्छा' कहकर कन्या की मनः कामना पूर्ण की। उसी गान्दिनी के स्वफल्क के संयोग से परम दानी, परम यज्ञकर्त्ता, शूरवीर, वेदज्ञ, अतिथिसेवक, अक्रूर उत्पन्न हुए। महाराज स्वफल्क भी परम दानी थे। अक्रूर के अतिरिक्त स्वफल्क के अन्य पुत्र भी उत्पन्न हुए, जिनके नाम ये हैं — उपमंगु, मंगु, मृदुर, अरिमेजय, गिरिरक्ष, यक्ष, शत्रुघ्न, अथवा अरिमर्दन, धर्मभृत, शृष्टचय, वर्गमोच, आवाह तथा प्रतिवाह। इनके अतिरिक्त परमसुन्दरी

वसुदेवा नाम की एक कन्या भी थी। अक्रूर के संयोग से उग्रसेनी में दो परिवार को आनन्द देनेवाले सुपुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे देव और अनुपदेव। ये दोनों पुत्र देवताओं के समान गुणशाली थे। चित्रक के जो पुत्र उत्पन्न हुए, उनके नाम थे, पृथु, विपृथु, अश्वग्रीव, अश्ववाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, अरिष्टनेमि, अश्व, सुवर्मा, चर्मभृत, वर्मभृत, अभूमि और बहुभूमि। श्रविष्ठा और श्रवणा नामक दो स्त्रियाँ थीं। काशिराज की कन्या ने सत्यक के संयोग से चार पुत्रों को प्राप्त किया जिनके नाम थे ककुद, भजमान, शमी और कम्बलवर्हिष्,। ककुद के पुत्र वृष्टि थे, वृष्टि के पुत्र का नाम कपोत रोमा था। कपोतरोमा का पुत्र रेवत था। उस रेवत का पुत्र तुम्बुरुसखा हुआ, जो परम प्रसिद्ध विद्वान् था, इसी के नाम चन्दनोदक दुँदुमि भी ख्यात थे। उसका पुत्र अभिजित हुआ, उस अभिजित से पुनर्वसु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था, उस यज्ञ की बेदी के मध्य भाग से पुनर्वसु का प्रदुर्भाव हुआ था जिसके करण पुनर्वसु परम विद्वान् धर्मज्ञ, दानशील हवन कर्त्ता थे। उन पुनर्वसु के दो जुड़वा सन्तान उत्पन्न हुए—ऐसी प्रसिद्धि है, जिनके नाम अपने बाहुबल तथा वाणों से कभी पराजत न होनेवाले आहुक तथा आहुकी थे—ये दो के दोनों बुद्धिमानों में अग्रगण्य थे। उस आहुक के लिए पुराने लोग कुछ श्लोकों का गान करते हैं’ जिनका आशय इस प्रकार है। वे महाराज आहुक मेघों के समान भीषण रव करनेवाले, समस्त रणसामग्रियों से सुसज्जित; प्रत्येक अवयवों से सुसंगठित, ध्वजाओं और कवचों से सुरक्षित, दस सहस्र रथों से तथा सुन्दर श्वेत वर्ण के परिच्छद से सुशोभित, किशोर अवस्थावाले, दस सहस्र अस्सी अश्वों से परिवेष्टित होकर रण में आक्रमण करते थे। उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले में से कोई भी ऐसा नहीं हुआ, जो असत्यवादी हो, यज्ञादि का अनुष्ठान न करता हो, एक सहस्र से कम दान करनेवाला हो, अपवित्र हो, अधर्मी हो, मूर्ख हो अथवा दुर्वल शरीर वाला हो, अर्थात् उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले सब उपर्युक्त सब अवगुणों से सर्वथा रहित थे। उस महाराज आहुक के पुत्र धृत हुए—ऐसा हम लोगों ने सुना है। आहुक ने पूर्व दिशा में सुवर्ण और चाँदी के आभूषणों से सुसज्जित इक्कीस सहस्र हाथियों की बलवान सेना लेकर भोजराज की समानता की थी, इसी प्रकार उत्तर दिशा में भी उतनी ही सेनाएँ लेकर भोजराज के ऊपर आक्रमण किया था, जिसमें उसकी किंकिणी (पैर के घुघुरु) उठ पड़ी थी—ऐसी प्रसिद्धि है। उस महाराज आहुक ने अपनी बहिन आहुकी को आहुकान्ध को समर्पित किया था, उसके संयोग से आहुकान्ध को एक पुत्री तथा दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनों पुत्रों के नाम देवक तथा उग्रसेन थे, ये दोनों पुत्र देवताओं के गर्भ (बच्चों) के समान प्रभावशाली तथा सुन्दर थे। देवक के जो पुत्र उत्पन्न हुए वे देवताओं के समान प्रभावशाली सुन्दर तथा शूरवीर थे, इनके नाम थे देवदेव, सुदेव और देवरक्षिता। उनकी सात बहिनें भी थीं, जिन्हें उन्होंने वसुदेव को समर्पित किया था, उनके नाम थे, वृकदेवा, उपदेवा, देवरसिता, श्रीदेवा, शान्तिदेवा, महादेवा तथा देवकी। देवकी इन सबों में देखने में परम सुन्दरी थी। उग्रसेन के नव पुत्र थे, जिनमें कंस सबसे बड़ा था। उन सबों के नाम थे,

न्यग्रोध, सुनामा, कङ्कशंकु, भूमय, सुतनु, राष्ट्रपाल, युद्धात्तुष्ट और पुष्टिमान् । इन नवों भाइयों की पाँच बहिने भी थीं, जिनके नाम थे कर्मवती, धर्मवती, शतांकु, राष्ट्रपाला और सुन्दरी कहा । उग्रसेन महान् सन्ततियों वाला विख्यात कुक्कुर वंशीय राजा थे । इन परमतेजस्वी कुक्कुरों के वंश विवरण को जो मनुष्य स्मरण रखता है, वह अपने विपुल वंश का पालक तथा उत्तम सन्तानों वाला होता है । ॥ ८३—१३४ ॥

भजमान् के पुत्र रथारोहियों में श्रेष्ठ विदूरथ हुए, उनके राज्याधिदेव शूर और विदुर नामक पुत्र हुए । इनमें से शूर के महाबलशाली पुत्र हुए, जिनके नाम वात, निवात, शोणित, शतीवाहन, शमी, गदवर्मा, निदात और शक्रजित थे । इनमें से शमी का पुत्र प्रतिक्षिप्त था, प्रतिक्षिप्त का पुत्र स्वयम्भोज हुआ । स्वयम्भोज से हृदिक नामक पुत्र हुआ, हृदिक के दश भयानक पराक्रमशाली पुत्र हुए, उनमें सबसे बड़े पुत्र का नाम कृतवर्मा था, उससे मँझला शतधन्वा हुआ, अन्य पुत्रों के नाम देवार्ह, वनार्ह, भिषक्, द्वैतरथ, सुदान्त, धियान्त, नकवान् और कनकोद्भव । इनमें से देवार्ह का पुत्र परम विद्वान् कम्वलवर्हिष उत्पन्न हुआ, उसके असमौजा और सुसमौजा नामक दो पुत्र थे । इनमें असमौजा को कोई पुत्र नहीं था, कृष्ण ने उसे सुदंष्ट्र और सुरूप नामक दो पुत्र दिये थे—अन्धकों का वंश विवरण इतना कहा जाता है । अन्धकों के इस वंशविवरण का नित्य कीर्तन करनेवाला मनुष्य इस लोक में अपने वंश का विपुल विस्तारक होता है—इसमें संदेह नहीं । शूर ने अस्मकी में देवमीढुष को उत्पन्न किया । माषी में देवमाहुष की उत्पत्ति हुई । भोजपुत्री भाषी ने उन्हीं शूर के संयोग से दस पुरुषों (पुत्रों) को जन्म दिया । इनमें वसुदेव महाबलशाली थे, इनकी ख्याति पूर्वकाल में आनकदुन्दुभि नाम से थी । जिस समय उनका जन्म हुआ था उस समय आकाश में दुन्दुभि और मृदंग की अति मनोहर गम्भीर ध्वनि होने लगी थी, शूर के राजभवन में आकाश से पुष्पों की वर्षा होने लगी थी । सम्पूर्ण मर्त्यलोक में वसुदेव के समान रूपवान कोई दूसरा नहीं था । उस पुरुषरत्न वसुदेव की कीर्ति चन्द्रमा की चाँदनी की भाँति लोकमनोरंजिनी तथा विशद थी । वसुदेव के उपरान्त शूर के देवभाग नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे । उनके बाद देवश्रवा नामक पुत्र का जन्म हुआ था । इनके अतिरिक्त अनादृष्टि, कड, नन्दन, भृञ्जिन, श्याम, शमीक, और गण्डूष नामक पुत्र थे । चार सुन्दरी कन्याएँ थीं । जिनके नाम पृथा, श्रुतवेदा, श्रुतकीर्ति और श्रुतश्रवा थे, इनके अतिरिक्त राजाधिदेवी नामक कन्याभी थी । ये पाँचों कन्याएँ वीर पुत्रों की माताएँ थीं । कुन्ति ने पृथा को अपनी कन्या बनाया था, और उसका पाणिग्रहण पाण्डु ने किया था । निस्संतान राजा कुन्तिभोज को पिता ने पृथा को दे दिया था । कुन्तिभोज की पोषित पुत्री होने के कारण वह कुन्ती नाम से विख्यात हुई । कुरुवंशियों में वीर पाण्डु ने कुन्ती को स्त्री रूप में वरण किया था । पृथा ने उन पाण्डु के संयोग से अग्नि के समान परम तेजस्वी तीन पुत्रों की उत्पन्न किया था । उन तीनों पुत्रों की बराबरी करनेवाला कोई महारथी पृथ्वी में नहीं था, वे इन्द्र के समान महान् पराक्रमशाली एवं वीर थे । पृथा ने धर्म के अंश से युधिष्ठिर नामक पुत्र को, मारुत के अंश से वृकोदर (भीम) नामक पुत्र को तथा इन्द्र के अंश से

Funding by IKS-MoE

धनञ्जय (अर्जुन) नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। अश्विनीकुमारों के अंश से माद्रवती में नकुल और सहदेव नामक दो पुत्ररत्नों की उत्पत्ति हुई। ये दोनों पुत्र परम स्वरूपवान् एवं सत्त्वगुणशाली थे। वृद्धशर्मा ने श्रुतदेवा में करुष देश के अधिपति वीर महाबलशाली दन्तवक्र को उत्पन्न किया। केकयदेश की राजमहिषी श्रुतकीर्ति में सन्तर्दन नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उसके अतिरिक्त चेकितान और बृहत्क्षत्र नामक दो अन्य महाबलशाली पुत्र भी उसके उत्पन्न हुए। अवन्ति देश के अधीश्वर विन्द और अनुविन्द—ये दोनों भाई भी उसी के पुत्र थे। श्रुतश्रवा से चेदि देश का स्वामी शिशुपाल का जन्म हुआ। वह शिशुपाल राजर्षि दमघोष का पुत्र था, उसके पौरुष की पर्याप्त प्रसिद्धि थी। वह पूर्व जन्म में शत्रुमर्दन दशग्रीव रावण के रूप में उत्पन्न हुआ था। पटुश्रवा अनुज और रुजकन्या अनुजा थी। वसुदेव की तेरह परम सुन्दरी स्त्रियाँ थीं, उनके नाम थे, पौखी, रोहिणी, अपरा, मदिरा, भद्रा, वैशाखी और देवकी। ये सात पटरानियाँ थीं। सुगन्धि और वनराजी ये दो परिचारिकाएँ थीं। रोहिणी और पौखी—ये दोनों बाल्मीक की कन्याएँ थीं। सब से बड़ी पत्नी रोहिणी महाभाग्यशालिनी आनकदुन्दुभि वसुदेव की परम प्रिया थीं, उसके संयोग से सब से बड़े पुत्र बलराम को तथा अन्य सारण, निशव, दुर्दम, दमन, शुभ्र, पिण्डारक, कुशीतक नामक आठ पुत्रों को एवं चित्रा नामक एक कुमारी को उत्पन्न किया। बलराम के दो निशित और उत्सुक नामक विख्यात पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसुदेव के पौत्र थे। इनके अतिरिक्त पार्श्वी, पार्श्वनन्दी, शिशु, सत्यधृति, मन्दवाह्य, :रामाण, गिरिक, गिर, शुल्कगुल्म, गुल्मदरिद्रान्तक नामक पुत्र भी बलराम के थे। इनसे बड़ी पाँच कुमारियाँ भी थीं, उनके नाम सुनिये। अर्चिष्मती, सुनन्दा, सुरसा, सुवचा और शतबला उनके नाम थे। ये पाँचों परम बुद्धिमान् सारण की पुत्रियाँ थीं। भद्राश्व, भद्रगुप्ति, भद्रविद्य, भद्रबाहु, भद्ररथ, भद्रकल्प, सुपार्श्वक, कीर्तिमान्, रोहिताश्व, भद्रज, दुर्मद और अभिभूत—ये रोहिणी से उत्पन्न होनेवाले पुत्र पौत्रादिकों के नाम कहे गये हैं। नन्द, उपनन्द, मित्र, कुक्षिमित्र, चल, पुष्टि और सुदेव ये पुत्रगण तथा चित्रा और और उपचित्रा नामक दो कन्याएँ—मदिरा की सन्ततियाँ कही गयी हैं। उपबिम्ब, बिम्ब, सत्त्वदन्त और महौजा—ये चार महाबलशाली एवं विख्यात पुत्र भद्रा के थे। वसुदेव ने वैशाखी में परम योग्य कौशिक नामक पुत्र को उत्पन्न किया। देवकी में सुषेण, कीर्तिमान्, तदय, भद्रसेन, यजुदाय और भद्रविद् नामक छ पुत्रों को उत्पन्न किया था, इन सब को कंस ने मार डाला। ऐसी स्थिति में प्रजाप्रति लोकनायक भगवान् विष्णु आयुष्मान् कृष्ण के रूप में सातवीं बार उत्पन्न हुए, उनके पश्चात् सुन्दर बोलनेवाली सुभद्रा उत्पन्न हुई, इन्हीं वृष्णिनन्दिनी सुभद्रा का नाम बाद में कृष्णा विख्यात हुआ। कृष्णा के गर्भ से अर्जुन ने महान् वीर अभिमन्यु को उत्पन्न किया। वसुदेव की महाभाग्यशालिनी सातों स्त्रियों में अन्य जो शूर पुत्र हुए, उनके नाम सुनिये। सहदेवा में वसुदेव के संयोग से परम वीर भयासरव नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शार्ङ्गदेवा के गर्भ से तम्बु नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। शौरी ने कुलोद्वह को उत्पन्न किया। उपसङ्ग, वसु, देव, रक्षित, विजय, रोचन और वर्धमान नामक महाभाग्यशाली पुत्रों को उपदेवा ने उत्पन्न किया। वसुदेव के इन दस पुत्रों को भी कंस ने मार डाला था। वृकदेवी ने महात्मा स्वगाहव को उत्पन्न किया। इसी

वृकदेवी का नामान्तर अगाही, स्वसा, सुरूपा और शिशिरायणी भी था। सुन्दर नासिकावाली देवकी ने महाभाग्यशाली, संग्राम भूमि में विचित्र युद्ध करनेवाले गवेषण नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जो उनके सातवें पुत्र ख्यात हुए। द्विजवृन्द ! इन्हीं गवेषण ने पूर्वकाल में वनप्रान्त में श्राद्धदेव की रचना की थी। वसुदेव ने सैव्या नामक अपनी एक अन्य पत्नी में कौशिक नामक परम पराक्रमशाली पुत्र को उत्पन्न किया था। सुगन्धी और वनराजी नामक जो दो अन्य स्त्रियाँ वसुदेव की थीं उनसे पुण्ड्र और कपिल नामक दो पुत्रों की उत्पत्ति हुई। वसुदेव के इन दोनों पुत्रों में पुण्ड्र राजा हुए और कपिल वन को चले गये। वसुदेव का एक परम बलवान् निषाद नामक पुत्र और था, जो धनुर्धारियों में अग्रगण्य एवं परम पुरुषार्थी राजा था। देवरात का पुत्र परम यशस्वी एवं महाभाग्यशाली था। पण्डित लोग उसे देवश्रवा के नाम से जानते हैं। निवर्त ने अश्मकी से परमयशस्वी अनादृष्टि नामक पुत्र को उत्पन्न किया। इसी प्रकार महाबलवान् श्राद्धदेव और शक्रशत्रुघ्न नामक दो पुत्र और हुए। यही श्राद्धदेव निषध जाति के मूल पुरुष थे और यही निषादों द्वारा पोषित महाबलशाली एकलव्य के नाम से भी विख्यात हुए। भगवान् कृष्ण ने प्रसन्न होकर सन्ततिहीन गण्डूष को चारुदेष्ण और साम्ब नामक दो पुत्र प्रदान किये थे, जो शस्त्रास्त्रवेत्ता और प्रसंशनीय गुणोंवाले थे। कनक के तन्तिज और तन्तिमाल नामक दो पुत्र थे, प्रतापशाली वसुदेव ने इन दोनों पुत्रों को पुत्रविहीन वास्तावलि के हाथों समर्पित किया, सौति ने वीरपुत्र शौरि और कौशिक को उसे समर्पित किया था। उसी वंश में तपा, क्रोधनु, विरजा, श्याम और सृञ्जिम नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, इनमें से श्याम को कोई सन्तान नहीं थी, जिससे वह वन को चला गया था। वह भोजत्व की निन्दा करता था, उसे राजर्षि की उपाधि प्राप्त हुई थी। जो ब्राह्मण नियमपूर्वक भगवान् कृष्ण के इस जन्मवृत्तान्त को दूसरे को सुनाता है अथवा पढ़ता है, वह महान् सुख की प्राप्ति करता है। प्रजापति, महान्तेजस्वी देवदेव प्रभु भगवान् नारायण विहार करने के लिए मनुष्य योनि में कृष्ण के रूप में अवतरित होते हैं। वे कमलनेत्र, दिव्यस्वरूप चतुर्भुज भगवान् अपनी समस्त कान्ति से समन्वित होकर वसुदेव की परम तपस्या के फलस्वरूप देवकी के गर्भ में उत्पन्न होते हैं। वे परम प्रकाशमान् भगवान ही योगेश्वर कृष्ण के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं, वे परम प्रभु भगवान् अव्यक्त स्वरूपवाले निराधार एवं व्यक्त स्वरूपवाले साकार—दोनों ही हैं। वे नारायण भगवान् कृष्ण अव्ययात्मा एवं समस्त चराचर सृष्टि के विधायक हैं। वे ही नारायण रूप में (सर्वदा एक रूप) सर्वशक्तिसम्पन्न हरि हैं। जो सृष्टि के आदिम काल में आदिपुरुष प्रजापति ब्रह्मा की सृष्टि करते हैं। वे यादवनन्दन कृष्ण ही अदिति के पुत्र के रूप में प्रादुर्भूत होकर देवदेव विष्णु एवं इन्द्र के छोटे भाई उपेन्द्र के नाम से भी विख्यात होते हैं। वे ही सर्वशक्तिमान् अपने अनुग्रह से देवताओं के शत्रु दैत्यों-दानवों और राक्षसों के विनाश के लिये अदिति के पुत्र के रूप में प्रादुर्भूत होते हैं। राजर्षि ययाति के वंश में समुत्पन्न परम बुद्धिमान् वसुदेव का कुल परम पवित्र हुआ जिसमें भगवान् नारायण स्वयं प्रादुर्भूत होकर लौकिक कर्मों के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए। जिस समय वे भगवान् जनार्दन उत्पन्न हुए, उस समय सागर काँपने लगे, पर्वत हिलने लगे, अग्निहोत्र स्वयमेव प्रज्वलित हो

उठे। मङ्गलकारी शीतल मन्द सुगंध वायु बहने लगी, धूल का उड़ना शान्त हो गया, इसी प्रकार भगवान् जनार्दन के उत्पन्न होनेपर सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्रादि ज्योतिष्पुञ्जों का प्रताप अधिक निखर उठा। जिस शुभ वेला में भगवान् जनार्दन उत्पन्न हुए उस समय अभिजित् नामक नक्षत्र था, जयन्ती नामक रात्रि थी और निजय नामक मुहूर्त था। अव्यक्त, शाश्वत, प्रभु नारायण, भगवान् हरि अपने सुन्दर नेत्रों से प्रजाओं को मोहित करते हुए जिस समय प्रादुर्भूत हुए उस समय इन्द्र ने आकाश से पुष्प की वृष्टि की, और सहस्रों की संख्या में एकत्र हो होकरगन्धर्वों और महर्षियों ने मांगलिक गानों से मधुसूदन की स्तुति की। वसुदेव ने रात्रि के समय श्रीवत्स चिह्न से विभूषित, अन्यान्य दिव्य लक्षणों से अलंकृत अधोक्षज (जिनके स्वरूप का साक्षात्कार इन्द्रियों से नहीं होता) भगवान् को पुत्र रूप में समुत्पन्न देखा और निवेदन किया कि हे प्रभो! आप अपने इस रूप को समाप्त कीजिये। हे तात! मैं कंस से बहुत भीत हूँ—यही इतना निवेदन आप से कर रहा हूँ, मेरे ज्येष्ठ पुत्रों को जो देखने में अद्भुत सौन्दर्यशाली थे, उसने मार डाला है। वसुदेव की ऐसी बातें सुनकर महामहिमामय भगवान् ने अपने दिव्यस्वरूप को समेट लिया। पिता वसुदेव जी ने भगवान् की आज्ञा से उन्हें नन्दगोप के घर पहुँचा कर उग्रसेन की सम्मति से यशोदा की गोद में दे दिया। उस समय संयोगतः देवकी और यशोदा—दोनों गर्भवती थीं, यशोदा नन्दगोप की पत्नी थीं। जिस रात्रि को वृष्णिकुलोद्धारक भगवान् कृष्ण प्रादुर्भूत हुए थे उसी रात में यशोदा ने भी एक कन्या को जन्म दिया था। महान् यशस्वी वसुदेव जी पुत्र रुप भगवान् को भली भाँति गोदी में छिपाकर यशोदा को दे आये और उनकी कन्या को अपने घर उठा लाये। नन्दगोप को भगवान् कृष्ण को समर्पित कर वसुदेव ने कहा कि आप मेरी रक्षा करें, तुम्हारा यह पुत्र सब का कल्याण करनेवाला है एवं यदुबंशियों का उद्धारक होगा, यह देवकी का वह चिरअभिलषित गर्भ है, जो हम लोगों के समस्त क्लेशों को दूर करेगा।' इस प्रकार नन्दगोप के गृह से लौटकर आनकदुन्दुभि वसुदेव जी ने उग्रसेन के पुत्र कंस के हाथों में अर्पित करते हुए कहा कि यही शुभलक्षण सम्पन्न कन्या उत्पन्न हुई है। अपनी बहिन देवकी में कन्या की उत्पत्ति सुनकर दुष्टात्मा कंस ने कुछ भी ध्यान नहीं दिया, और अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे भी छोड़ दिया। वह मूढ़ यह कहने लगा कि यदि कन्या ही उत्पन्न हुई है तो उसे मरी ही समझना चाहिये।'

इस प्रकार कंस द्वारा छोड़ दिये जाने पर वह कन्या वृष्णिगृह में सत्कार पूर्वक जीवन बिताते हुए दिनानुदिन बढ़ने लगी। पुत्र की भाँति उसकी पालना होने लगी। देवगण अपने में उसकी उत्पत्ति की चर्चा करने लगे। उन्होंने प्रजापति ब्रह्मा से उस कन्या के बारे में विस्तार पूर्वक सब बातें बतलायीं और यह कहा कि केशव की रक्षा के लिए यह भगवती एकादशा स्वयं प्रादुर्भूत हुई हैं, उसकी यादव गण प्रसन्न मन से पूजा करेंगे। दिव्य देह धारी देवदेव भगवान् कृष्ण इसी भगवती एकादशा द्वारा सुरक्षित हैं। ॥१३५—२१५॥

ऋषि वृन्द बोले:—सूतजी! भोजवंशीय राजा कंस ने किस कारण से वसुदेव के छोटे-छोटे

पुत्रों का संहार किया— इसे विस्तार पूर्वक हम लोगों से बतलाइये । ॥२१६॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! जिस कारण से मूर्ख कंस आनक दुन्दुभि वसुदेव के उत्पन्न होनेवाले समस्त पुत्रों का तुरन्त संहार कर देता था और जिस भय के कारण महाबाहु भगवान् कृष्ण उत्पन्न होते ही दूसरी जगह पहुँचाये गये, और गौओं के बीच में जिस प्रकार पुरुषोत्तम गोविन्द का पालन पोषण हुआ उस सारी कथा को हम आप लोगों से बतला रहे हैं, सुनिये । ऐसा कहा जाता है कि जब कंस युवराज था, तब वसुदेव और देवकी का रथ हाँका करता था । एक बार जब कि वह रथ हाँक रहा था आकाश से एक ऐसी दैवी वाणी किसी भूत के मुख से सुनाई पड़ी, जिसके कारण कंस सदा भीत रहने लगा, वह दिव्य वाणी कठोर स्वर से सुनाई पड़ी थी, सभी लोगों ने उसे सुना था । वह दैवी वाणी इस प्रकार की थी, 'कंस ! जिसे तुम प्रेम वश अथवा वसुदेव को प्रसन्न करने के लिए रथ पर चढ़ाकर घुमाते हो, उसी के सातवें गर्भ से तुम्हारी मृत्यु होगी ।' इस दैवी वाणी को सुनकर कंस को बहुत ही खेद हुआ और उस मूर्ख ने तुरन्त म्यान से अपनी तलवार खींचकर देवकी को मारने की इच्छा प्रकट की । प्रतापशाली महाबाहु वसुदेव ने ऐसी स्थिति देख उग्रसेन के पुत्र कंस से परम सौहार्द तथा प्रेम पूर्वक इस प्रकार निवेदन किया, यादवनन्दन ! क्षत्रिय कभी किसी स्त्री का संहार नहीं करते, इस कार्य के लिए मैं एक उपाय देख रहा हूँ ! पृथ्वीपति कंस ! इस तुम्हारी बहिन देवकी के सातवें गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न होगा, उसे मैं तुम्हें दे दूँगा, उस समय उसका तुम चाहे जो करना । हे विपुल दान करनेवाले ! कंस ! तुम इस समय भी जो चाहे कर सकते हो । इसके सातवें गर्भ की तो बात क्या मैं इसके समस्त गर्भों को तुम्हें दे दूँगा — इसे सच समझो । हे नर श्रेष्ठ ! मेरी यह बात कदापि मिथ्या न होगी ।' वसुदेव द्वारा इस प्रकार अनुनय विनय पूर्वक कहे जाने पर कंस ने देवकी के समस्त पुत्रों को मारने की बात स्वीकार कर ली और देवकी को छोड़ दिया । वसुदेव अपनी पत्नी देवकी को जीती प्राप्त कर परम प्रसन्न हुए । इसी कारण से पापात्मा मूर्ख कंस देवकी के समस्त पुत्रों का संहार करता था । ॥२१६—२२८॥

ऋषि वृन्द बोले:—सूतजी ! ये वसुदेव और नन्द गोप कौन थे ? जिन्होंने भगवान् विष्णु को जन्म दिया ? यशस्विनी देवकी कौन थीं ? और महान् यशस्विनी यशोदा कौन थीं ? जिन्होंने भगवान् का पालन पोषण किया—इसे हम लोग सुनना चाहते हैं । ॥२२९॥

सूत बोले : – ऋषिवृन्द ! ये नन्दादि पुरुष कश्यप के और यशोदा आदि स्त्रियाँ अदिति की अंशभूत थीं । महाबाहु भगवान् कृष्ण ने देवकी के मनोरथों को पूर्ण किया था । ये देवाधिदेव योगात्मा भगवान् विष्णु अपनी योगमाया से संसार के समस्त जीवों को मोहित कर धर्म के नष्ट हो जाने पर स्वयमेव वृष्णि कुल में प्रादुर्भूत हुए थे। मनुष्य शरीर धारण कर पृथ्वी पर धर्म की व्यवस्था एवं असुरों के विनाश के लिए अवतीर्ण हुए थे । उत्पन्न होकर उन्होंने रुक्म की कन्या रुक्मिणी का हरण किया। नग्नजित की कन्या सत्या, सत्राजित की कन्या सत्राजिती सत्यभामा, जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती, रोहिणी, सैब्या, सुदेवी, माद्री, सुशीला, कालिन्दी, मित्रविन्दा, लक्ष्मणा जालवासिनी आदि सोलह सहस्र देवियाँ उनकी स्त्री थीं । स्वर्ग में परम सुन्दरी

अप्सराओं के जो चौदह गण कहे गये हैं, उन्हें देवताओं के साथ सम्मति कर इन्द्र ने मर्त्यलोक में भेज दिया था । वासुदेव की पत्नी होने के लिए वे राजाओं के घर में उत्पन्न हुईं । विष्वक्सेन की ये सहाभाग्य शालिनी पत्नियाँ परम प्रख्यात थीं । रुक्मिणी में प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, शरभ, चारु, चारुभद्र, भद्रचारु, चारु विन्ध्य नामक पुत्र तथा चारुमही नामक कन्या उत्पन्न हुई । सानु, भानु अक्ष, रोहित, मन्त्रय, जरान्धक, ताम्रवक्षा, भौमरि, जरन्धम ये पुत्र तथा भानु, भौमरिका, ताम्रपर्णी और जरन्धमा नामक चार कन्याएँ गरुड़ध्वज भगवान् के संयोग से सत्यभामा में उत्पन्न हुईं । अब जाम्बवती की सन्ततियों का विवरण सुनिये । भद्र, भद्रगुप्त, भद्रविन्दु, भद्रबाहु ये पुत्र तथा भद्रावती नामक एक कन्या, जो संबोधनी नाम से विख्यात थी, इन्हें जाम्बवती की सन्ततियाँ जानना चाहिये । संग्रामजित् शतजित्, और सहस्रजित्—ये सुदेवी के पुत्र विष्वक्सेन के संयोग से उत्पन्न कहे जाते हैं । वृक, वृकश्व,वृकजित्, वृजिनी, सुराङ्गना, मित्रवाहु और सुनीथ ये नग्नजित की पुत्री सत्या की सन्तानें हैं । इसी प्रकार भगवान वासुदेव के पुत्रों की संख्या सहस्रों तक समझिये, कुछ लोग उनकी संख्या लाखों तक कहते हैं । इनमें से दस सहस्र और आठ महान् शूरवीर तथा रणविशारद थे । भगवान् जनार्दन के वंश का विवरण जैसा मुझे ज्ञात था, आप लोगों से बतला चुका । महान् पराक्रमी शिनिवंशीय राजा वृहदुकूथ की कन्या वृहती, जिसका नर्तकोन्नेयी दूसरा नाम है, सुनथ के साथ विवाह सूत्र में सम्बद्ध हुई । उसके तीन पुत्र युद्धस्थल में परम प्रख्यात हुए, उनके नाम थे, अंगद, कुमुद और श्वेत । श्वेता नामकी एक कन्या भी थी । अवगाह, चित्र, और शूर चित्रवर नामक जो वृष्णि वंशी थे, उनमें चित्रवर के पुत्र चित्रसेन हुए और उसकी कन्या चित्रवती हुई । तुम्ब और तुम्बवान् ये दो जनस्तम्ब के पुत्र थे । उपाङ्ग के वज्रार और क्षिप्र नामक दो पुत्र कहे जाते हैं । गवेष के भूरीन्द्रसेन और भूरि नामक दो पुत्र हुए । युधिष्ठिर की परम यशस्विनी सुतनु नामक जो कन्या थी, उसमें महान् यशस्वी अश्वसुत वज्र की उत्पत्ति हुई । वज्र के पुत्र प्रतिबाहु हुए, प्रतिबाहु के पुत्र सुचारु हुए । काश्मा ने सुपार्श्व नामक पुत्र को उत्पन्न किया और साम्बा ने तरस्वी नामक पुत्र को उत्पन्न किया । इस प्रकार महाबलशाली यदुवंशियों के कुल तीन करोड़ सन्तानें उत्पन्न हुईं । जिनमें साठ लाख परम बलशाली एवं पराक्रमी थे । वे सब के सब परम तेजस्वी यदुवंशी देवताओं के अंशभूत होकर इस मर्त्यलोक में उत्पन्न हुए थे । पूर्व देवासुर संग्राम में जो असुरगण मारे गये थे, वे ही महान् तपस्या करके पुनः मनुष्य योनि में उत्पन्न हो होकर सब को पीड़ित कर रहे थे, उन्हीं सब के विनाश के लिए ये लोग यादव कुल में उत्पन्न हुए । इन परम बलवान् यदुवंशियों के ग्यारह कुल कहे जाते हैं, किन्तु जिस कुल में भगवान् विष्णु प्रादुर्भूत हुए, उसी एक वंश का अनुवर्तन शेष सभी वंशों वाले करते रहे । उन सभी वंशों में उत्पन्न होने वाले यदुवंशियों के एक मात्र प्रमाण स्वरूप एवं सर्वेसर्वा भगवान विष्णु (कृष्ण) ही थे । उनकी आज्ञा में निरत रहकर इन सब यदुवंशियों ने उन समस्त पापात्मा मनुष्यों का, जो मानव समाज को उत्पीड़ित कर रहे थे, संहार किया । वृष्णिवंशियों की सन्तानों का यह विवरण कहीं संक्षेप में और कहीं विस्तार में मैं आप लोगों से बतला चुका । इसके संकीर्तन करने से

Funding by IKS-MoE

अभीष्ट कीर्ति एवं सिद्धि की प्राप्ति होती है। जो परम बुद्धिशाली भगवान् कृष्ण के वंश का यह श्रेष्ठ विवरण, जो स्वर्गापवर्ग प्रदान करने वाला तथा महान पातकों का विनाशक है, पढ़ता है, वह यदि अपुत्र है तो पुत्र प्राप्त करता है और यदि धन हीन है तो उत्तम सम्पत्ति लाभ करता है। ॥२३०-२५८॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुवंशकीर्तनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

सूत बोले—ऋषिवृन्द! मनुष्य योनि में जन्म लेनेवाले देवताओं का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। सङ्कर्षण, वासुदेव, प्रद्युम्न, साम्ब एवं अनिरुद्ध ये पाँच यदुवंश के प्रमुख वीर कहे गये हैं। सातों ऋषि, कुबेर, यक्ष, मणिवर, शालकी, वदर, परमविद्वान् धन्वन्तरि, नन्दिन प्रभृति महादेव के अनुचर (?) शालङ्कायन आदि देवताओं के साथ आदि देव जिष्णु ये सब देवात्मा हैं। ॥१-३॥

ऋषियों ने कहा—सूत जी! भगवान् विष्णु किस लिए पृथ्वी पर प्रादुर्भूत होते हैं? उनके कितने अवतार कहे जाते हैं? भविष्य में अन्य कितने अवतार होंगे? युगान्त के अवसर पर ब्राह्मण एवं क्षत्रिय जाति में वे किस लिए उत्पन्न होते हैं? वे इस प्रकार बारम्बार मानव योनि में किस लिए जन्म धारण करते हैं? इसे हम लोग जानना चाहते हैं, कृपया कहिये। उन परम बुद्धिमान शत्रुसंहारकारी भगवान् कृष्ण के शरीरों से जो-जो कर्म सम्पन्न होते हैं—उन सब को हम भलीभाँति सुनना चाहते हैं। उनके ऐसे कार्यों को क्रमपूर्वक हमें बतलाइये, उसी तरह उनके अवतारों के विषय में भी क्रमानुसार वर्णन कीजिये, उन सर्वव्यापी भगवान् की प्रवृत्ति के बारे में भी हमें जिज्ञासा है। कृपया हमसे बतलाइये। महामहिमामय परम बुद्धिमान् शत्रुसंहारकारी वे भगवान् विष्णु किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए वसुदेव के कुल में उत्पन्न होकर वासुदेव (वसुदेव के पुत्र) की पदवी प्राप्त करते हैं? हे सूत जी! इस बात को जानने की भी हमें बड़ी उत्कण्ठा हो रही है कि सर्वदा पुण्यकर्मों में निरत रहनेवाले देवताओं ने ऐसा कौन-सा पुण्य कर्म किया, जिससे देव लोक को छोड़कर इस मर्त्यलोक में उन्हें आना पड़ा। देवताओं और मनुष्यों को उचित मार्ग पर लगानेवाले, भूर्भुव आदि लोकों के उत्पत्तिकर्त्ता भगवान् हरि किस लिए दिव्यगुण सम्पन्न अपनी आत्मा को मानवयोनि में समाविष्ट करते हैं? चक्र धारण करनेवालों में श्रेष्ठ जो भगवान अकेले ही संसार के मानवमात्र के मनरूपी चक्र को सर्वदा परिचालित करते रहते हैं, उन्हें मानव योनि में उत्पन्न होने की इच्छा क्यों हुई? सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले जो भगवान विष्णु इस समस्त चराचर जगत की सब प्रकार से सर्वत्र रक्षा करनेंवाले हैं; वे किसलिए इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं? और किस लिए गौओं का पालन करते हैं? जो भूतात्मा भगवान संसार के समस्त महाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि एवं वायु)

Funding by IKS-MoE

को धारण करनेवाले तथा बनानेवाले हैं, जो लक्ष्मी द्वारा धारण किये जानेवाले हैं, वे एक मर्त्यलोक निवासिनी सामान्य गृहिणी के गर्भ में किस लिए आते हैं ? जो देवताओं की इच्छा से अपने तीन पगों में तीनों लोको को जीत कर जगत् में उत्तम तीनों वर्गों धर्म अर्थ एवं काम अथवा सत्त्व, रजस, तमों गुणों की मर्यादा स्थिर करते हैं, जो अन्त काल में दृश्य और अदृश्य मार्गों से अपने जलमय शरीर द्वारा समस्त जगत् का पान कर लेने के उपरान्त समस्त लोकों को एक महा समुद्र के रूप में बदल देते हैं । जो देवसत्तम भगवान पुराणों में पुराणात्मा के नाम से प्रशंसित हैं, जो शूकर का शरीर धारण कर इस पृथ्वी का उद्धार कर उसे देवताओं को समर्पित करते हैं, जो प्रभु सिंह का शरीर धारण कर और शरीर के दो भाग कर महाबलशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपु का संहार करते हैं, जिन प्रभु ने प्राचीनकाल में ऊर्व ऋषि के क्रोध से समुत्पन्न होकर और्व संवर्तक नामक अग्नि का स्वरूप धारण कर पाताल में स्थित होकर जलमय हवि का पान किया, जिन भगवान् का वर्णन प्रत्येक युगों में सहस्र चरणोंवाला, सहस्र नेत्रोंवाला, सहस्र शिरोंवाला एवं दिव्यगुण सम्पन्न कहा गया है, सृष्टि के आदिमकाल में, जब कि समस्त लोक एक महासमुद्र के रूप में परिणत हो गये थे, जिस परमात्मा की नाभि रूप अरणी में पितामह ब्रह्मा जी का निवास स्थान भूत पंकज (कमल) उद्भूत हुआ, जो वास्तव में पंक से जायमान नहीं था । तारकामय संग्राम में जिन भगवान् ने सर्वदेवमय शरीर धारण कर समस्त शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर उन अत्याचारी दानवों का संहार किया जो प्राणिमात्र को संकट में डाले हुए थे, जिन्होंने गरुड़ पर सवार होकर परम गर्वीले कालनेमि का संहार किया, जो शाश्वत योग का अवलम्बन कर अमृत के समुद्र क्षीर सागर के उत्तरी छोर पर शयन करते हैं, जो महान् अज्ञानान्धकार के विनाशक हैं । प्राचीन काल में जिन दिव्यगुण सम्पन्न भगवान् को अपनी कठोर तपस्या के बल पर देवताओं की माता अदिति ने गर्भ में धारण किया, दैत्यों के समूहों से चारों ओर घिरे हुए अत्यन्त परेशान इन्द्र की जिन्होंने बड़ी रक्षा की । जिस समय पवन ने अत्यन्त उग्र रूप धारण कर समस्त लोकों को अपने वश में कर उन उद्धत दानवों को जलशायी कर दिया था, उस समय जो आदिदेव भगवान् विष्णु स्वर्ग के आधिपत्य पर पुरुहूत इन्द्र को प्रतिष्ठित करते हैं, जो आदिदेव गार्हपत्य विधि से, अन्वाहार्य कर्म से आहवनीय अग्नि को, वेदी को, कुशाओं को, स्रुच प्रोक्षणीपात्र को, स्रुवा को, अवभृथ स्नान के लिए मँगाई गई समस्त वस्तुओं को, बनानेवाले हैं, जो यज्ञादि कार्यों में हव्य भाग देने के लिए तीन अधिकारियों की व्यवस्था करते हैं, जिन्होंने देवताओं को यज्ञभोक्ता, एवं पितरों को श्राद्धभोक्ता बनाया, जो स्वयं यज्ञादि शुभकार्यों में विधि के अनुसार भोग के लिए यज्ञ रूप में प्रतिष्ठित होते हैं, जिन्होंने पूर्वकाल में अपने परम स्वरूप में अवस्थित रह कर भी यज्ञस्तम्भों, स्रु मिधा, सव, सोमरस, पवित्र, परिधि, यज्ञोपयोगी अन्यान्य सामग्रियाँ, यज्ञाग्नि, यज्ञ कार्य के सदस्य, यजमान, अश्वमेधादि प्रमुख उत्तम यज्ञों को सुशोभित किया । जिसने युग के अनुरूप तीनों लोकों की क्रमानुसार रचनाकर क्षण, निमेष, काष्ठा, कला, भूत, भविष्यत्, वर्तमान—ये तीन काल, मुहूर्त, तिथि, मास, संवत्सर, ऋतु, काल, योग, मनुष्यों में प्रचलित तीन प्रकार के प्रमाण आयु, क्षेत्र, वृद्धि, लक्षण, रूप, सौन्दर्य, बुद्धि, वित्त, शूरता, शास्त्रों के पाठ, तीन वर्ण, तीनों लोक, तीनों विधाएँ तीनों अग्नि,

तीनों काल, तीनों कर्म, तीनों माया, तीनों गुण, समस्त लोक एवं समस्त सुरगणों की अपने अनन्त कर्मों द्वारा रचना की है, जिसने सर्वजीवसमूहों में व्याप्त रह कर सब जीवों की सृष्टि की है, जो मानव की इन्द्रियों में योग द्वारा रमण करता है, जो गत आगत—सब के नेता हैं, जो सर्वत्र विराजमान एवं जगत् में विस्तृत विविध विधानों के अधीश्वर हैं, जो धर्मात्मा लोगों की एक मात्र गति हैं, जो पापात्माओं के लिए दुर्गति स्वरूप हैं, जो चारों वर्णों के उत्पत्तिकर्त्ता एवं चारों वर्णों के रक्षक हैं; जो चारों प्रकार की विद्याओं के जाननेवाले, चारों आश्रमों के साश्रयभूत, एवं दिक् दिगन्तर, आकाश, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, चन्द्रमा सूर्य, अन्यान्य ज्योतिष्पिण्ड, युगपति, निशाचर—सब के स्वरूप हैं, जो देव सब से श्रेष्ठ एवं परम तपःस्वरूप सुने जाते हैं, जो तपस्या से भी श्रेष्ठ सुने जाते हैं, जो परम परमात्मविशिष्ट कहे जाते हैं, जो देव आदित्यों में आदि हैं, और जो महामहिमामय दैत्यों के विनाशकारी हैं। जो प्रभु युगान्त के अवसरों पर अन्तक स्वरूप हो जाते हैं, जो लोकों के विनाश करनेवाले यमराज के भी अन्तक हैं, जो लोकसेतु समूह के भी सेतु स्वरूप हैं, जो समस्त पवित्र कर्म समूहों से भी अधिक पवित्र हैं, वेद के जानने वालों के लिए जो एक मात्र ज्ञातव्य हैं, परम ऐश्वर्यशालियों के भी जो प्रभु हैं, भूतगणों के मध्य में जो सोम स्वरूप हैं, अग्नि के समान तेजस्वियों में जो अग्निस्वरूप हैं, मनुष्यों के जो मन स्वरूप हैं, तपस्या में निरत रहनेवाले तपस्वियों के तपःस्वरूप हैं, नीतिनिपुण प्राणियों के जो विनय स्वरूप हैं, तेजस्वियों के तेजः स्वरूप हैं, विग्रह (शरीर) धारण करनेवालों के जो विग्रहस्वरूप हैं, गतिमान् प्राणियों के जो गतिस्वरूप हैं। वायु का उत्पत्ति स्थान आकाश है, अग्नि का प्राणस्वरूप वायु है, देवगणों का प्राणस्वरूप अग्नि है, और अग्नि के प्राणस्वरूप मधुसूदन भगवान् विष्णु हैं। अर्थात् जगत् के सब के प्राणस्वरूप भगवान मधुसूदन हैं। रस से रक्त की उत्पत्ति होती है, रक्त से माँस की उत्पत्ति कही जाती है, माँस से मेदा की उत्पत्ति होती है, मेदा से हड्डियों का निर्माण होता है, हड्डियों से मज्जा बनती है और मज्जा से वीर्य बनता है। शुक्र से काम मूलक कर्म द्वारा गर्भ की उत्पत्ति होती है। इस गर्भ क्रिया में रस अथवा जल को सौम्यराशि तथा गर्भगत उष्णता से उत्पन्न होनेवाले ऋतुशोणित को द्वितीय राशि जानना चाहिये। वीर्य को सोमात्मक और आर्तव को पावकात्मक जानना चाहिये। ये दोनों भाव रस के अनुगत होते हैं, शुक्र व शोणितात्मक आर्तव को चन्द्रमा और सूर्य कहा जाता है। कफवर्ग में शुक्र और पित्तवर्ग में शोणित की स्थिति रहती है। कफ का स्थान हृदय है, पित्त नाभि में स्थित रहता है। शरीर के मध्य भाग में अवस्थित हृदय मन का स्थान कहा जाता है। नाभिकोष्ठ के भीतरी प्रान्त में हुताशन देव का निवास है। मन को प्रजापति जानना चाहिये, कफ को चन्द्रमा, और पित्त को अग्नि कहा जाता है—अग्नि और चन्द्रमा से समस्त चराचर जगत व्याप्त है। इस प्रकार से मेघ के आकार में प्रवर्तित गर्भ स्थित रहता है। वायु इस गर्भ में प्रविष्ट होकर परमात्मसत्ता से संगत होती है, और पाँच भागों में विभक्त होकर शरीर में स्थित रहते हुए गर्भ की वृद्धि करती है। प्राण, अपान, समान उदान और व्यान—ये पाँच वायु हैं। इनमें से प्राणवायु परमात्मसत्ता की वृद्धि करते हुए परिवर्तित होता है। अपान वायु शरीर के निम्नभाग में और उदान वायु शरीर के ऊर्ध्व भाग में विद्यमान रहती हैं।

Funding by IKS-MoE

व्यान वायु—सर्वशरीर व्यापी एवं समान—शरीर की समस्त सन्धियों में समानभाव से गतिशील रहनेवाली है। इस प्रकार वृद्धि को प्राप्त हुए गर्भ को पंच महाभूतों की प्राप्ति होती है, जो इन्द्रियगोचर होता है। पृथ्वी, वायु, आकाश, जल और ज्योति (अग्नि) ये पाँच महाभूत हैं। गर्भ की उस अवस्था में इन्द्रियाँ उसमें निविष्ट होती हैं और अपनी-अपनी शक्तियाँ प्राप्त करती हैं। उस इन्दियग्राम (समूह) समन्वित प्राणात्मक पार्थिव शरीर की उत्पत्ति इस प्रकार पण्डित लोग बतलाते हैं। प्राण को वायु कहते हैं। शरीरस्थ छिद्र समूह आकाश से उत्पन्न होते हैं, उनसे जल का स्राव होता है। ज्योत्स्ना आँख की तेजस्विनी ज्योति है, उन इन्द्रिय समूहों के जो नाम स्मरण किये जाते हैं। जिस परम शक्ति के प्रभाव से उन इन्द्रियों के संग्रामादि कठोर विषय प्रवर्तित होते हैं। इन समस्त लोकों की सृष्टि करता हुआ जो सनातन पुरुष प्रतिष्ठित है वह इस मर्त्यलोक में किस लिए मानव शरीर धारण करता है? परम बुद्धिमान सूत जी! इस बात का हमें बड़ा ही सन्देह है और महान विस्मय तो यह है कि जो स्वयमेव सद्गति प्राप्त करनेवालों की गति है वह मनुष्य शरीर क्यों धारण करता है? भगवान् विष्णु के इन आश्चर्य में डालने वाले कर्मों के विषय में हम लोग क्रमानुसार सुनना चाहते हैं, वेद एवं देवगण उन भगवान विष्णु को परम आश्चर्यमय बतलाते हैं। हे महामते! भगवान् विष्ण की उस आश्चर्यमयी सम्भूति को आप बतलाइये! उनका यह आख्यान आश्चर्यों से भरा हुआ एवं कहनेवालों को परम सुख देनेवाला है। उनके बल एवं पराक्रम की विशेष ख्याति है। वे परम ऐश्वर्यशाली एवं महान हैं। उनके कर्म आश्चर्य से भरे हैं, उनके पराक्रम के सम्बन्ध में भी हम लोगों को बतलाइये। ॥४—६२॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! मैं उन महातमा भगवान् विष्णु के प्रादुर्भाव का वर्णन अर्थात् जिस प्रकार वे परम तपोनिष्ठ भगवान् मानव योनि में अवतीर्ण हुए उसे आप लोगों से कह रहा हूँ। भृगु के शाप वश भगवान् के सप्त सप्तति (७७) अवतार कहे जाते हैं। युगान्त के अवसर पर देवताओं के कार्यों को पूर्ण करने के लिये वे उत्पन्न होते हैं। भगवान् की उस दिव्य देह का मैं वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जब युगधर्म का ह्रास हो जाता है और उसके प्रभाव शिथिल हो जाते हैं, उस समय वे महामहिमामय भगवान् भृगु के शाप वश देवासुरों के संघर्ष की शान्ति के लिये एवं धर्म की व्यवस्था के लिए इस मर्त्यलोक में उत्पन्न होते हैं। ॥ ६३—६६ ॥

ऋषियों ने पूछा:—सूत जी! उस देवासुर संग्राम में भगवान् विष्णु ने किस प्रकार अवतार ग्रहण किया था और वह देवासुर संग्राम किस प्रकार संगठित हुआ था, इसे हम लोग जानना चाहते हैं? ॥ ६७ ॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! जिस प्रकार वह देवासुर संग्राम घटित हुआ था, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। प्राचीनकाल में दैत्यराज हिरण्यकशिपु त्रैलोक्य का शासक था। उसके उपरान्त पुनः दैत्यराज बलि के हाथ त्रैलोक्य का भार आया। उस समय देवताओं और असुरों में परम मित्रता थी। इस प्रकार दस युगों तक यह जगत् बिना किसी उपद्रव के रहा। उसकी आज्ञा में उस समय देवता और

असुर दोनों ही थे। तदनन्तर उन देवताओं और असुरों में घोर विनाशकारी दारुण विवाद उपस्थित हो गया, वाराहकल्प में बारह युद्ध हुए, जिनमें षण्ड और अमर्क सभी युद्धों में सम्मिलित कहे जाते हैं। उन युद्धों का नामपूर्वक वर्णन मैं संक्षेप में कर रहा हूँ, सुनिये। इनमें प्रथम युद्ध नरसिंह का था, दूसरा वामन का, तीसरा वाराह का, चौथा अमृतमंथन का, पाँचवा परम दारुण तारकामय नामक संग्राम था, छठवाँ युद्ध आडीवक और साँतवा त्रिपुर दहन का था। इन युद्धों में आठवाँ अन्धकार युद्ध एवं नवाँ ध्वज युद्ध कहा जाता है। दसवाँ युद्ध वार्त जानना चाहिये, ग्यारहवाँ हालाहल के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार बारहवें युद्ध का नाम घोर कोलाहल है। प्रथम युद्ध में दैत्यराज हिरण्यकशिपु नरसिंह के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ। द्वितीय युद्ध में तीनों लोकों पर आक्रमण करने पर दैत्यराज बलि को भगवान् वामन ने बाँधा। देवताओं के साथ संघर्ष उपस्थित होने पर उस युद्ध में हिरण्याक्ष का निधन हुआ। वह महान् बलवान्, महान् पराक्रमी तथा संग्राम में कभी पराजित होनेवाला नहीं था। तीसरे अवतार में वाराह ने अपनी दाढ़ों से समुद्र में से निकाल कर पृथ्वी का उद्धार किया था। अमृतमंथन के अवसर पर देवराज इन्द्र के द्वारा दैत्यराज प्रह्लाद पराजित हुए थे। इससे प्रह्लाद का पुत्र विरोचन नित्य ही इन्द्र के संहार के लिए प्रयत्नशील रहता था। अन्त में इन्द्र ने परम पराक्रम दिखलाकर तारकामय संग्राम में उसका संहार किया था। उस दैत्य ने शंकर जी की अराधना कर अमरत्व का--विशेषतया अस्त्र शस्त्रादिकों से न मारे जाने का--वरदान प्राप्त किया था, अतः इन्द्र के शरीर में आविष्ट होकर संग्रामभूमि में भगवान विष्णु ने उसका संहार किया था। यह छठवाँ देवासुर संग्राम था। असुरों के पास एक परम सुरक्षित दुर्ग था, उसकी रक्षा में तत्पर दानवगण देवताओं की प्रतिष्ठा को सहन नहीं करते थे, त्र्यम्बक शिवजी ने उस त्रिपुर का विध्वंस कर समस्त दानवों का संहार किया। अष्टम देवासुर संग्राम में अंधकार स्वरूप असुरगण एवं राक्षसों के साथ देवताओं का संग्राम हुआ था; उसमें देवताओं और मनुष्यों को पराजित करनेवाले पितरगणभी उनकी सहायत कर रहे थे। भगवान विष्णु की सहायता प्राप्तकर महादेव ने उन समस्त दानवों, असुरों एवं राक्षसों को समूल नष्ट किया। एक युद्ध महाबलशाली विप्रचित्ति के साथ हुआ था, उसमें वह मायारूप धारण कर युद्ध कर रहा था, महेन्द्र ने उसके रथ के ध्वज का लक्ष्य कर उसे काट दिया और उसके साथ युद्ध करनेवाले समस्त दानवों, असुरों एवं राक्षसों का संहार कर दिया। देवताओं समेत रजि ने महान् कोलाहल नामक समर के बीच समस्त असुरों को पराजित किया था। उसमें देवताओं ने यज्ञीय अमृत द्वारा असुरों के पुरोहित षण्ड और अमर्क को पराजित किया था। देवताओं और असुरों में येही बारह युद्ध प्राचीन काल में हुए थे; जिनमें देवताओं और असुरों का महान विनाश हुआ था और प्रजावर्ग का भी पर्याप्त अमंगल हुआ था। दैत्यराज हिरण्यकशिपु एक अरब बहत्तर लाख अस्सी सहस्र वर्षों तक समस्त त्रैलोक्य के अधीश्वर पद पर सुशोभित था। उसके बाद पर्यायक्रम से बलि दैत्यों का राजा हुआ, वह एक अरब साठ सहस्र बीस नियुत[१] वर्ष तक राज्य पद का

---

[१] एक नियुत बराबर है दस लाख के।

Funding by IKS-MoE

अधिकारी हुआ था। जितने वर्षों तक बलि राज्य पद का स्वामी था, उतने ही वर्षों तक उसके प्रह्लाद ने असुरों के साथ राज्य भार ग्रहण किया था। समस्त असुरगणों में महाबलशाली पितामह हिरण्याक्ष, प्रह्लाद और बलि—ये तीन ही परम तेजस्वी, परम बलशाली एवं इन्द्र के समान प्रख्यात थे, ऐसी प्रसिद्धि है कि दैत्यों से यह समस्त जगत् दस युगों तक आक्रान्त था, उसके बाद दस युगों तक समस्त राष्ट्र निष्कण्टक रहा, महेन्द्र इस अवधि में त्रैलोक्य की रक्षा करते थे। प्रह्लाद के अनन्तर यह त्रैलोक्य कालक्रम से पाकशासन इन्द्र के हाथ में आया, उस समय यक्षगण असुरों को छोड़ कर देवताओं के पास आये, यक्षों के देवताओं के पास चले जाने पर असुरों ने शुक्राचार्य से जाकर कहा, आचार्य जी! हम लोगों के देखते देखते हमारा समस्त राष्ट्र नष्ट हो गया, यज्ञादि शुभ कर्म हमें छोड़कर पुनः देवताओं के पास चले गये, ऐसी स्थिति में हम लोग यहाँ ठहर नहीं सकते, रसातल को जा रहे हैं। असुरों के ऐसा कहने पर शुक्राचार्य को बड़ा विषाद हुआ और मीठे वचन से सान्त्वना देते हुए बोले, असुर वृन्द! आप लोग भयभीत न हों, मैं अपने तेज से आप सबकी रक्षा करूँगा। वृष्टि, औषधियाँ, पृथ्वी, अन्न एवं अन्यान्य रत्नादि जो कुछ भी वस्तुएँ हैं वे सब मेरे अधीन हैं उनका केवल चतुर्थांश देवताओं के पास हैं। उन सब को मैंने आप ही लोगों के लिए धारण किया है। और आप सब के कल्याणार्थ उसे आज ही समर्पित भी कर दूँगा।' इस प्रकार परम बुद्धिशाली शुक्राचार्य द्वारा असुरों को सुरक्षित देखकर देवगण परम उद्विग्न हुए और विजय की इच्छा से सब ने आपस में मंत्रणा की कि यह असुरों का गुरु शुक्राचार्य अपने पराक्रम से हम लोगों के किये धरे को सब व्यर्थ कर देता है, अच्छा है, तब तक हम लोग शीघ्रतापूर्वक उन क्षीण असुरों के ऊपर आक्रमण करते हैं, जब तक कि वह उन्हें सबल नहीं बना देते, खूब पराक्रम दिखलाकर हम पहले तो सब को मार डालना चाहेंगे, जो नहीं मर सकेंगे, बच जायँगे, पाताल खदेड़कर छोड़ेंगे। ऐसी सम्मति कर देवगणों ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर दानवों पर आक्रमण किया और उनका खूब संहार किया, देवताओं द्वारा संत्रस्त होकर दानव गण शुक्राचार्य की शरण में भागे। शुक्राचार्य ने इस प्रकार देवताओं द्वारा खदेड़े गये, समर में उनके घोर शस्त्रास्त्रों की मार से क्षत विक्षत शरीरवाले, परम दीन दिति के पुत्रों को शीघ्रता पूर्वक अपनी ओर दौड़े आते हुए देखा! और वहीं समीप में खड़े हुए निठुर देवताओं को भी देखा। तदनन्तर ध्यान करके पूर्व घटित घटनाओं को स्मरण कर दैत्यों ने शुक्राचार्य से कहा—'वामन ने अपने तीन डगों से समस्त त्रैलोक्य को जीत लिया, बलवान बलि बाँधा गया, परम बलवान जम्भ एवं विरोचन का संहार हुआ, इस प्रकार पूर्वकाल में होनेवाले बारह घोर संग्रामों में देवताओं ने अपने सफल उपायों से प्रमुख-प्रमुख दैत्यों का संहार किया है, आप लोग थोड़ी संख्या में शेष रह गये हैं, अब इन अन्तिम युद्धों में आप सब भी विनष्ट हो रहें हैं, मैं स्वयं अब आप लोगों की विजय प्राप्ति के लिए एक नीति (चाल) बतला रहा हूँ कि आप लोग कुछ समय की प्रतीक्षा करें। आप लोगों की विजय के लिए मैं किसी मंत्र प्राप्ति के उद्देश से महादेव जी के पास जा रहा हूँ। उधर देवपक्ष में उनके गुरु बृहस्पति मंत्रों द्वारा अग्नि को सन्तुष्ट कर रहे हैं, अर्थात् हवन कर रहे हैं। इसलिए

Funding by IKS-MoE

हम भी मंत्र प्राप्ति के लिए भगवान नीललोहित के पास जा रहे हैं, थोड़े दिन बाद जब मैं यहाँ आ जाऊँगा तब आप सब पर अनुग्रह करूँगा। आप लोग वन में वल्कल धारण कर तपस्या करें, इस प्रकार जब तक हम यहाँ न आ जायँ तब तक आप लोग तपस्या में ही लगे रहें, इससे देवगण आप सब का संहार नहीं कर सकेंगे। महामहिमामय भगवान् महेश्वर से अनुकूल फल देने वाले मंत्रों को प्राप्त कर जब हम आजायेंगे तब देवताओं के साथ युद्ध छेड़ देंगे, और तभी हम सबों को विजयप्राप्ति भी होगी।' शुक्राचार्य के दिये गये उपदेश का असुरों ने पालन किया, देवताओं के युद्ध के लिए आह्वान करने पर उन्होंने कहा, 'हम सब लोग अब संसार की झंझटों से मुख्यतया विवाद आदि से मुक्त हो गये हैं, आप लोग जा जाकर समस्त लोकों पर अपना अधिकार जमाइये। हम लोग तो वन में वल्कल धारण कर तपस्या करेंगे।' प्रह्लाद के इस प्रकार सत्य की तरह कहे गये वचन को सुनकर देवगणों ने युद्ध करना बन्द कर दिया, उन्हें परम प्रसन्नता एवं शान्ति मिली। दैत्यों के हथियार डाल देने पर देवगण जहाँ से जैसे आये थे, वहाँ से उसी प्रकार लौट गये। तदनन्तर शुक्राचार्य ने असुरों से कहा कि इसी प्रकार तुम लोग शान्तिपूर्वक कुछ समय बिताओ, उस अवधितक बिना किसी उत्सुकता के तपस्या में लीन रहो जब तक कार्यसिद्धि नहीं हो जाती, क्योंकि इन्द्र समेत समस्त सुर गण हमारे पिताजी के आश्रम में विद्यमान हैं। इस प्रकार असुरों को सन्देश देकर शुक्राचार्य महादेव जी के पास आये और प्रणाम कर जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता महेश्वर से इस प्रकार निवेदन किया— देव ! मैं ऐसे मंत्रों को प्राप्त करना चाहता हूँ, जो बृहस्पति को नहीं ज्ञात हैं, देवताओं को पराजित करने के लिए और असुरों को भय रहित करने के लिए यह हमारा प्रयास है।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर महादेव जी बोले, द्विज ! जिन मंत्रों को प्राप्त करने की तुम्हारी इच्छा है, उनके लिए मेरे आदेशानुसार सावधानता पूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत का एक सहस्र वर्ष तक पालन करो, और शिर को नीचे करके कुण्ड के धूम का पान करो, यदि ऐसा नियम पालन करोगे तो मुझसे वैसे मंत्रों की प्राप्ति होगी। देवदेव महादेव के ऐसा कहने पर महान तपस्वी शुक्राचार्य ने उनके चरणों का स्पर्श किया, और कहा कि 'बहुत अच्छा, आपकी आज्ञा हमें स्वीकार है। प्रभो ! आप जैसा बतला रहे हैं, मैं वैसा ही नियम पूर्वक व्रत पालन करूँगा।' इस प्रकार महादेव जी की आज्ञा से शुक्राचार्य ने असुरों के कल्याणार्थ कुण्ड के धूम्र का पान करना प्रारम्भ किया। इधर शुक्र के दैत्यों के पास से जाकर मंत्र के लिए शिवजी के कथनानुसार ब्रह्मचर्य पालन का भेद देवताओं को लग गया। और दैत्यों के इस तपस्याचरण एवं राज्य त्याग को एक चाल समझकर, देवताओं को बड़ा अमर्ष हुआ और वे सब के सब तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र धारण कर बृहस्पति को आगे कर दैत्यों पर टूट पड़े। असुर गण इस प्रकार पुनर्वार देवताओं को शस्त्रास्त्र से सुसज्जित देखकर परम भयभीत हो उठे और तुरन्त भाग पड़े। उन सबों ने सोचा कि ऐसी स्थिति में जब कि हम लोगों ने रण में हथियार डाल दिया है, अपने मुख से ही उनको विजय दे दी है, हमारे आचार्य व्रत के अनुष्ठान में तत्पर हैं, देवगण युद्ध की प्रथा तोड़कर अपने सौतेले भाइयों (हम सबों को) को मारने के लिए तत्पर हैं, इस समय हमारे आचार्य भी नहीं हैं, उनका कल्याण हो, हम लोग तो विश्वस्त होकर तपस्या में निरत हैं,

Funding by IKS-MoE

इसीलिए चीर और वल्कल धारण किया है, कुछ कार्य आदि भी नहीं करते धरते, स्त्री एवं भृत्य आदि भी साथ में नहीं हैं। रण में किसी प्रकार भी देवताओं को हम जीत नहीं सकते—ऐसी संकट की स्थिति में शुक्राचार्य की माता की शरण में हम सब चलें। जब गुरु जी आ जायँगे तो उनसे यह सब वृत्तान्त बतलायेंगे, अपने आचार्य शुक्र के व्रतादि से निवृत्त होकर लौट आने पर इन देवताओं से हम फिर युद्ध करेंगे और तब इनसे पूछेंगे।' असुरों ने इस प्रकार आपस में सम्मति कर शुक्राचार्य की माता की शरण ली, उस समय वे परम आतंकित हो रहे थे, शरण में जाने पर भय दूर हो गया। अभय की प्रार्थना करने वाले परम भयभीत असुरों को इस प्रकार शरण में आया देख शुक्राचार्य की माता ने सान्त्वना देते हुए कहा, दानवगण! मत डरो, डरने की आवश्यकता नहीं है, भय छोड़ दीजिये। मेरे समीप में रहते जाइये, यहाँ पर भय करने की आवश्यकता नहीं है। वहाँ पर भय से रहित उन असुरों को देखकर देवताओं ने पराक्रम दिखलाकर बल अबल का कुछ भी विचार न करके उनका खूब संहार किया। देवताओं द्वारा मारे जाते हुए उन असुरों को देखकर देवी शुक्राचार्य की माता परम क्रुद्ध हुईं और देवताओं से बोलीं कि मैं तुम सब को इन्द्र से विहीन कर रही हूँ, इस प्रकार कहकर बड़े क्रोध से देवी ने इन्द्र को स्तम्भित कर दिया और स्वयं इधर उधर घूमने लगीं। इन्द्र को यज्ञ के खम्भे की तरह स्तम्भित दशा में खड़ा देखकर और उन्हें परवश जानकर देवगण परम भयभीत हुए और भागने लगे। देवताओं के भाग जाने पर विष्णु ने इन्द्र से कहा 'सुरेश्वर! तुम मेरे शरीर में प्रविष्ट हो जाओ, मैं तुझे यहाँ से अन्यत्र ले चलूं।' विष्णु के ऐसा कहने पर इन्द्र ने उनके शरीर में प्रवेश कर लिया। इन्द्र को विष्णु द्वारा इस प्रकार सुरक्षित देखकर देवी पुनः परम कुपित हुईं और बोलीं, "मघवन्! मैं अब तुमको यहीं पर सभी लोगों के देखते-देखते विष्णु के साथ जला रही हूँ, मेरे तपोबल को देखो।' इस प्रकार शुक्राचार्य की माता द्वारा पराजित होकर उन दोनों देवताओं ने आपस में सम्मति की, विष्णु ने इन्द्र से कहा कि अब हम दोनों किस प्रकार बच सकते हैं। इन्द्र ने कहा, 'प्रभो! जब तक यह हम दोनों को जलाने जा रही है तब तक इसी का काम तमाम कर दीजिये। मैं तो इस समय बहुत ही असमर्थ और पराजित हो गया हूँ, अतः तुम्हीं इसको मारो, तनिक भी देर न करो।' विष्णु उस देवी को इस प्रकार जलाने के लिए उद्यत देखकर स्त्री वध करने के लिए उद्यत हुए। प्रभु ने इस आपत्तिपूर्ण दशा में अपने सुदर्शनचक्र का ध्यान किया, जिससे असुरों का संहारक, परम शीघ्रता से लक्ष्य को नष्ट करनेवाला वह चक्र इन्द्र और विष्णु को जलाने में शीघ्रता करने वाली शुक्राचार्य की माता के सन्मुख उपस्थित हो गया। भगवान विष्णु उस देवी को परम नृशंस कार्य करने के लिए समुद्यत जानकर परम क्रुद्ध हो गये थे अतः लक्ष्मीपति होकर भी उन्होंने स्त्री के शिर को अपने चक्र से काट डाला। ॥ ६८—१३९ ॥

इस कठोर स्त्रीवध को देखकर परम ऐश्वर्यशाली महर्षि भृगु अत्यन्त क्रुद्ध हुए, और उसी समय उन्होंने अपनी स्त्री का निधन हो जाने पर विष्णु को इस प्रकार का शाप दिया—यतः धर्म की महत्ता को भली भाँति जानते हुए भी तुमने एक अबला की हत्या की अतः तुम सात बार मनुष्य लोक में जन्म

धारण कर निवास करोगे ।' भृगु के इस शाप के वश होकर भगवान् विष्णु धर्म के नष्ट हो जाने पर सब प्रजावर्ग के कल्याण के लिए बारम्बार जन्म धारण करते हैं । तदनन्तर भृगु ने भगवान् विष्णु को इस प्रकार शाप देकर स्वयमेव देवी का शिर लेकर उसे शरीर से संयुक्त कर और जल लेकर यह वचन बोले—'हे सत्यवादिन ! विष्णु के द्वारा मारी गई तुझको मैं यह पुनः जीवित कर रहा हूं, यदि मैंने धर्म के समस्त तत्त्वों की पूरी जानकारी प्राप्त की है तथा सर्वांशतः पालन किया है, तो हमारे उस सत्य से तुम जीवित हो जाओ । यदि मैं सर्वदा सत्य वचन बोलता रहा होऊँ तो तुम जीवित हो जाओ ।' महर्षि भृगु के इस प्रकार सत्य वचन बोलने पर जब देवी जीवित हो उठीं, तब उन्होंने शीतल जल से प्रोक्षित कर पुनः कहा, 'जी उठो ।' तदनन्तर समस्त जीवों ने देवी को सोकर उठी हुई की तरह देखा, दसों दिशाओं से 'साधु-साधु' की अदृश्य ध्वनि सुनाई पड़ने लगी । सभी लोगों के सामने महर्षि भृगु द्वारा देवी की इस प्रकार जीवित हो जाना एक अद्भुत घटना की तरह हुआ । परम सावधान चित्त वाले महर्षि भृगु द्वारा पत्नी को जीवित देखकर इन्द्र शुक्राचार्य के भय से परम भीत हो उठे, उनके मन में तनिक भी शान्ति नहीं रही । रात भर नींद नहीं आयी । इस प्रकार अत्यन्त व्याकुल होकर परम बुद्धिमान् पाकशासन इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती से कहा, बेटी ! दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य मेरे विनाश के लिए परम कठोर तपस्या कर रहे हैं, वे परम धैर्यशाली हैं, इस कार्य के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय भी कर लिया है, उनके इस कर्म से मैं बहुत व्याकुल हूँ । तूँ जा और उनके कष्टों एवं कठिनाइयों को दूर करनेवाले अपने श्रेष्ठ एवं मङ्गलदायी कार्यों से उन्हें प्रसन्न कर, उनके मन के अनुकूल रहकर विविध सेवाओं द्वारा उन्हें सावधानता पूर्वक प्रसन्न करने की चेष्टा कर । शुभ कर्म करनेवाली इन्द्र की पुत्री जयन्ती स्वभाव से देवी थी, उसने जाकर देखा तो शुक्राचार्य उस समय ध्यान मग्न थे, वे परम दुर्बल हो गये थे, फिर भी शान्त चित्त एवं धैर्यशाली दिखाई पड़ रहे थे । पिता ने शुक्राचार्य के लिए जैसा बतलाया था, उस मृदुभाषिणी ने उनके लिए वैसा ही आचरण किया, कान को मीठी लगने वाली सुन्दर वाणियों से उसने शुक्राचार्य की स्तुति की । समय-समय पर सुख पहुँचाने के लिए चरणादि का संवाहन किया, अत्यन्त अनुकूल आचरण करती हुई, सेवा में दिन रात दत्तचित्त रहकर उसने बहुत वर्षों तक उपवास रखा । इस प्रकार उस परम घोर सहस्र वर्ष वाले धूम्रव्रत के समाप्त हो जाने पर महादेव जी शुक्राचार्य के ऊपर परम प्रसन्न हुए और उन्हें वरदान देते हुए बोले, भृगु नन्दन ! इस परम कठोर तप का अकेले तुम्हीं ने पालन किया है, किसी अन्य ने इसका पालन आज तक नहीं किया है, इसलिए तुम अपनी इस परम कठोर तपस्या, बुद्धि, शास्त्र ज्ञान, पराक्रम, एवं तेज से समस्त देवताओं को पराजित करोगे, हे ब्राह्मण ! यज्ञों एवं उपनिषदों की जो कुछ भी मंत्र शक्ति मुझमें विद्यमान् है, उनके जो भी विविध अंग उपाङ्ग एवं गूढ़ रहस्य मुझे विदित हैं, वे सब तुम्हें सर्वांशतः प्राप्त होंगे, किसी दूसरे को वे नहीं प्राप्त होंगे । उन सब महान् प्रभावसे तुम सब को पराजित करनेवाले श्रेष्ठ द्विज होगे । महादेव जी ने भृगुनन्दन शुक्राचार्य को यह वरदान देकर बारम्बार अजेय, धनेश, और अवध्य होने का वरदान दिया । इन सब वरदानों को प्राप्त कर शुक्राचार्य परम

आनन्दित हुए मारे खुशी के उनको रोमाञ्च हो गया । इस हर्षातिरेक में नीचे शिर किये हुए उन्होंने नील लोहित भगवान् शंकर की निम्न स्तुति की, उसी समय यह महान् प्रभावशाली देवस्तोत्र उनके मुख से प्रकाशित हुआ । ॥१४०—१६१॥

शितकण्ठ को हमारा नमस्कार है, सुरूप, सुवर्चा, रिरिहाण, लोप, वत्सर, जगत्पति, कपर्दी, ऊर्ध्वरोमा, हय, करण, संस्कृत, सुतीर्थ, देवदेव, रंह, उष्णीषी, सुवक्त्र, सहस्राक्ष, मीढुष्, वसुरेता, रुद्र, तप, चीरवासा, ह्रस्व, मुक्तकेश, सेनानी, रोहित, कवि, राजवृद्ध, तक्षक्रीडन, गिरिश, अर्कनेत्र, यती, जाम्बव, सुवृत्त, सुहस्त, धन्वी, भार्गव, सहस्रबाहु, सहस्रअमलचक्षु, सहस्रकुक्षि, सहस्रचरण, सहस्रशिरा, बहुरूप, वेधा, भव, विश्वरूप, श्वेतपुरुष, निषङ्गी, कवची, सूक्ष्म, क्षपण, ताम्र, भीम, उग्र, शिव, वभ्रु, पिशंग, पिंगल, अरुण, महादेव, शर्व, विश्वरूप, शिव, हिरण्य, शिष्ट, श्रेष्ठ, मध्यम वभ्रु, पिशङ्ग, पिंगल, अरुण पिनाकी, इषुमान्, चित्र, रोहित, दुन्दुभ्य, एकपाद, अर्ह, बुद्धि, मृगव्याध, सर्प, स्थाणु, भीषण, बहुरूप, उग्र, त्रिनेत्र, ईश्वर, कपिल, एकवीर, मृत्यु, त्र्यम्बक, वास्तोष्पति, पिनाक, शंकर, शिव, आरण्य, गृहस्थ, यति, ब्रह्मचारी, सांख्य, योग, ध्यानी, दीक्षित, अन्तर्हित, शर्व, मान्य, माली, बुद्ध, शुद्ध, मुक्त, केवल, रोधा, चेकितान, ब्रह्मिष्ठ, महर्षि, चतुष्पाद, मेध्य, धर्मी, शीघ्रग, शिखण्डी, कपाल, दंष्ट्री, विश्वमेधा, अप्रतीघात, दीप्त, भास्कर, सुमेधा, क्रूर, विकृत, वीभत्स, शिव, सौम्य, पुण्य, धार्मिक, शुभ, अवध्य, अमृताङ्ग, नित्य, शाश्वत, कट्य, शरभ, शूली, त्रिचक्षु, सोमपा, आज्यपा, धूमपा, ऊष्मपा, शुचि, रेरिहाण, सद्योजात, मृत्यु, पिशिताश, खर्व, मेघ, वैद्युत, व्याश्रित, श्रविष्ठ, भारत, अन्तरिक्ष, क्षम, सहमान, सत्य, तपन, त्रिपुरघ्न, दीप्त, चक्र, रोमश, तिग्मायुध, मेध्य, सिद्ध, पुलस्ति, रोचमान, खण्ड, स्फीत, ऋषभ, भोगी, युञ्जमान, शान्त, ऊर्ध्वरेता, अघघ्न, मखघ्न, मृत्यु, यज्ञिय, कृशानु, प्रचेता, वह्नि, किशल, सिकत्य, प्रसन्न, वरेण्य, चक्षु, क्षिप्रणु, सुधन्व, प्रमेध्य, पिव, रक्षोघ्न, पशुघ्न, विघ्न, शयन, विभ्रान्त, महान्त, अन्ति, दुर्गम, दक्ष, जघन्य, लोकों के अधीश्वर, अनामय, ऊर्ध्व, संहत्याधिष्ठित (समूह में अर्थात् अपने अनुचर गणों में रहनेवाले. अथवा भली तरह लोकों के विनाश कर्म में निरत रहनेवाले), हिरण्य बाहु, सत्य, शमन, असिकल्प, माघ, रीरिण्य, एकचक्षु, श्रेष्ठ, वामदेव, ईशान, धीमान्, महाकल्प, दीप्त, रोदन, हस, दृढ़धन्वा, कवची, रथी, वरुथी, भृगुनाथ, शुक्र, वह्निरिष्ट, धीमान्, अघ, अघसंस, विप्रिय, प्रिय, दिग्वासा, कृत्तिवासा, भगघ्न, नामों वाले भगवन् ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं । हे पशुओं (सब को समान दृष्टि से देखने वालो—देवताओं) के स्वामी, समस्त जीवों के रक्षक तुम्हें हम नमस्कार करते हैं । हे भगवन् ! आप ही प्रणव, ऋग्, यजु, साम तीनों वेद स्वधा, सुधा, बषट्कार, स्वरूप एवं अनन्तात्मा हैं, आपको हमारा नमस्कार है, स्रष्टा, धाता, होता, हर्ता, क्षपण, भूत, भव्य, भव नामों वाले काल स्वरूप भगवन् ! तुम्हें हमारा नमस्कार है । हे वसु, साध्य, रुद्र, आदित्य, अश्विन, विश्वेदेव, एवं मरुत् प्रभृति गण देवताओं के स्वरूप भगवन् ! तुम्हें हमारा नमस्कार है । अग्नि, सोम, ऋत्विक्, इज्य, पशु, मन्त्र, औषधियाँ, दक्षिणा, अवभृथ एवं यज्ञ स्वरूप तुम्हें हम नमस्कार करते हैं । तप, सत्य, त्याग, शम, अहिंसक, अलोभ, सुवेश, अतिशय, सर्वभूतात्मभूत, योगात्मन् ! तुम्हें हमारा नमस्कार

है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव, मह, जन, तप, सत्य प्रभृति लोक स्वरूप भगवन् ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। अव्यक्त, महान, भूत, इन्द्रिय, तन्मात्र, महान्त, प्रभृति तत्त्व स्वरूप भगवन् ! तुम्हें नमस्कार है। नित्य, लिङ्ग, सूक्ष्म, चेतन, शुद्ध, विभु, नित्यात्मन् ! तुम्हें हम नमस्कार करते हैं। स्वर्गन्त तीनों (भूः भुवः और स्वः) एवं सत्यान्त चारों (मह, जन, तप और सत्य) महान् लोकों में व्याप्त रहनेवाले भगवन् ! तुम्हें नमस्कार है। विभो ! इस स्तुति में मैंने जो कुछ सदसत् कहा है, उसे यह समझकर कि यह मेरा भक्त है, आप क्षमा कर दें। क्योंकि आप ब्राह्मणों के ऊपर कृपा करने वाले हैं ॥१६२–२०२॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुमाहात्म्ये शम्भुस्तवकीर्तनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः। ॥९७॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय

विष्णु माहात्म्य कीर्तनं

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! शुक्राचार्य ने इस प्रकार नील लोहित देवेश भगवान् शङ्कर की आराधना कर पुनः प्रणाम किया और हाथ जोड़े हुए ब्रह्म का उच्चारण किया, प्रार्थना से परम प्रसन्न महादेव जी अपने हाथ से शुक्राचार्य के शरीर का स्पर्श कर एवं पर्याप्त दर्शन देकर वहीं अन्तर्हित हो गये। देवेश के अन्तर्धान हो जाने पर हाथ जोड़कर सामने उपस्थित जयन्ती से शुक्राचार्य बोले—'सुन्दरि ! तुम किसकी पुत्री हो, मेरे दुःख के समय दुःख उठाने वाली तुम कौन हो ? ऐसी महान् तपस्या में निरत रहकर तुम किस लिए मेरी रक्षा में दत्तचित्त रही हो। हे सुन्दर अंगों वाली, सुश्रोणि ! तुम्हारी इस सर्वदा एक रूप रहने वाली भक्ति, कष्टसहिष्णुता, प्रणय और स्नेह से मैं बहुत प्रसन्न हूँ। हे सुन्दरि ! तुम क्या चाहती हो, मैं तुम्हारी किस कामना की पूर्ति करूँ, तुम्हारी जो भी अभिलाषा होगी—चाहे वह अत्यन्त कठिन ही क्यों न होगी मैं आज पूर्ण करना चाहूँगा।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर जयन्ती ने कहा, ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मर्षे ! मेरे मनोरथ को आप अपने तपोबल से जान सकते हैं, मेरी सारी अभिलाषाओं को आप जानते हैं।' जयन्ती के ऐसा कहने पर शुक्राचार्य ने अपने दिव्य दृष्टि द्वारा उसके मनोरथों को जानकर बोले, 'इन्द्र पुत्रि ! सुन्दरि, तम यहाँ मेरी रक्षा के लिए आई हुई थी, हे भामिनि। सुश्रोणि ! मेरे साथ दस वर्षों तक सभी प्राणियों से अदृश्य रहकर तुम निवास करना चाहती हो, देवेन्द्र पुत्रि ! अग्नि के समान गौरवर्ण वाली ! सुन्दरि, सुलोचने ! मृदुभाषिणि ! अपने इस मनोरथ की मुझसे पूर्णता प्राप्त करोगी। तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। मत्त चाल चलने वाली ! चलो, अब हम अपने निवास को चल रहे हैं।' इस प्रकार जयन्ती से बातें कर भगवान् शुक्राचार्य अपने निवास स्थल पर आये और समस्त प्राणधारियों से अदृश्य होकर माया पूर्वक दस वर्षों तक उसके साथ निवास करने का निश्चय किया। इधर शुक्राचार्य को

Funding by IKS-MoE

सफल मनोरथ होकर लौट आने का वृत्तान्त जब दैत्यों को विदित हुआ तो वे परम प्रसन्न हुए और देखने की इच्छा से उनके आश्रम पर गये। वहाँ जाने पर जयन्ती के साथ अज्ञात वास करते हुए अपने आचार्य को नहीं देख सके, और उनकी इस नीतिनिपुणता को जानकर परम मुदित हुए। उधर देवगुरु बृहस्पति ने जब यह सुना कि देवताओं की हितकारिणी जयन्ती ने अपने पिता की हितकामना से दस वर्षों के लिए शुक्राचार्य के पास गई थी, शुक्राचार्य को एकान्तवास करते सुना तो एक अच्छा अवसर देखा। उन्होंने शुक्राचार्य का स्वरूप बनाकर, इस मुद्रा में मानों दैत्यों ने उन्हें ही तपस्या के लिए प्रेरित किया था, शुक्राचार्य के दर्शन करने के लिए आये हुए असुरों से कहा—'मेरे यजमानों का स्वागत है, तुम लोगों के हित के लिए मैं तपस्या से निवृत्त होकर आ गया। मैंने वह विद्या, जिसकी प्राप्ति के लिए इतना कठोर तप करना पड़ा, पाली है, उसे तुम सब को पढ़ाऊँगा।' बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर दैत्यगण बहुत प्रसन्न हुए और विद्याध्ययन के लिए वहाँ एकत्र हुए। जयन्ती के अनुरोधानुसार इस दस वर्ष की अवधि के पूर्ण होने पर शुक्राचार्य का मोह नष्ट हुआ और उन्हें सद्बुद्धि प्राप्त हुई, अवधि के अन्त में जयन्ती के संयोग से उनकी पुत्री देवयानी उत्पन्न हुई। तदनन्तर उन्होंने अपने यजमानों की देखभाल करने का विचार किया। ॥१--२०॥

शुक्र बोले:—शुचिस्मिते! देवि! साध्वि! दीर्घनेत्रे! सुन्दर प्रेक्षणे! मैं अब तुम्हारे यजमानों को देखने के लिए जाना चाहता हूँ।' शुक्राचार्य के ऐसा कहने पर जयन्ती ने कहा, महाव्रत! अपने भक्तों का कल्याण कीजिये, सत्पुरुषों का यही धर्म है, आपके धर्म को मैं नष्ट नहीं करूँगी। ॥२१–२२॥

सूत बोले: —इस प्रकार जयन्ती से बातें कर शुक्राचार्य ने जाकर असुरों को देखा कि उन्हें परम बुद्धिमान् देवताओं के गुरु बृहस्पति ने मेरा स्वरूप धारण कर ठग लिया है। ऐसा देखकर वे परम विस्मित होकर असुरों से बोले, दानवो! शुक्राचार्य तो मैं हूँ, यह तो अंगिरा का पुत्र बृहस्पति है, मुझे खेद है कि मेरे रहते हुए भी तुम लोग ठगे गये। शुक्राचार्य को ऐसा कहते हुए देखकर दैत्यगण किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये, और वहीं पर परम खिन्न एवं विस्मित होकर दोनों गुरुओं की ओर देखने लगे। बड़ी देर तक इसी प्रकार वे अज्ञान में पड़े रहे, किसी भी निश्चय पर नहीं पहुँच सके। दैत्यों के किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने पर शुक्राचार्य ने पुनः उनसे कहा, अरे दानवो! तुम लोगों का आचार्य शुक्र मैं ही हूँ, यह अंगिरा का पुत्र देवताओं का गुरु बृहस्पति है, मेरी आज्ञा मानो, इसके कहने में न आवो, इसको छोड़ो।' शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर भी सब दानवगण दोनों आचार्यों की ओर देखते ही रह गये, उन्हें उन दोनों में कोई विशेषता नहीं जान पड़ी। तदुपरान्त बिना किसी घबराहट के स्वाभाविक स्वर में बृहस्पति बोले, दैत्यो! तुम लोगों के गुरु शुक्राचार्य हमीं हैं, यह मेरा स्वरूप धारण कर अंगिरा पुत्र बृहस्पति है। अरे असुरो! मेरा, स्वरूप धारण कर यह तुम लोगों को मोहित कर रहा है।' बृहस्पति की ऐसी बातें सुनकर दैत्यों ने आपस में सम्मति करके निश्चय पूर्वक यह वचन कहा—'परम ऐश्वर्यशाली यही हमें आज दस वर्षों से पढ़ाते आ रहे हैं, अतः यही हमारे वास्तविक गुरु हैं, यह ब्राह्मण हम लोगों के

भेद को जानने की इच्छा से यहाँ कृत्रिम वेश धारणकर आया हुआ है।' इस प्रकार कह कर चिरकाल के अभ्यास से मोह को प्राप्त होनेवाले उन समस्त असुरगणों ने पुनः बृहस्पति को ही शुक्राचार्य समझकर प्रणाम और अभिवादन किया और उन्हीं की बातें अंगीकार कीं। इतना ही नहीं, शुक्राचार्य के ऊपर वे परमक्रुद्ध हो गये उनके नेत्र लाल हो आये, और वे आवेश में भरकर बोले, हमारे कल्याण के चाहनेवाले आचार्य यही हैं, तुम हमारे आचार्य नहीं हो, यहाँ से चले जाओ। यह चाहे भृगु के पुत्र शुक्राचार्य हों या अंगिरा के पुत्र बृहस्पति हों, यही अब हमारे गुरु हैं, हम सब अब इन्हीं के आदेश में स्थित हैं, तुम यहाँ से चले जाओ, देर मत करो, इसी में तुम्हारी भलाई है। ऐसा कहकर दैत्यगण बृहस्पति के समीप चले आये। इस प्रकार शुक्राचार्य की महान् कल्याणकारिणी बातों की अवज्ञाकर जब दैत्यगण उनके पास नहीं गये तब शुक्राचार्य उनके गर्व से परम कुपित हो उठे और बोले, 'अरे दानवो! मेरे बहुत समझाने पर भी तुम लोग मेरे कहने में नहीं आ रहे हो, अतः तुम सब की चेतना मारी जायगी और निश्चय ही तुम्हारी पराजय होगी।' दैत्यों को ऐसा शाप देकर शुक्राचार्य जहाँ से जैसे आये थे चले गये। इधर शुक्राचार्य द्वारा उन असुरों को दूषित एवं शापग्रस्त जानकर बृहस्पति अपने उद्देश में सफल हो गये, उन्हें परम प्रसन्नता प्राप्त हुई, और वे अपने वास्तविक स्वरूप में आ गये। जब उन्होंने समझ लिया कि असुरगण अपनी उद्देशसिद्धि में विफल हो चुके हैं, तब अपने को कृतार्थ समझकर अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार बृहस्पति के अन्तर्धान हो जाने पर दानवगण परम व्याकुल हो गये, और आपस में कहने लगे कि 'हाय उसने हम लोगों को ठग लिया, हमें धिक्कार है। हम लोग अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गये, विधाता ने हमें पीछे से दण्ड दिया, अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए देवगुरु ने माया करके हमें छल लिया, इस तरह हम लोग नष्ट हो गये।' ऐसी बातें परस्पर करते हुए असुरगण देवताओं से परम संत्रस्त होकर भाग खड़े हुए और प्रह्लाद को अगुआ बनाकर पुनः शुक्राचार्य के पीछे-पीछे दौड़े, और शुक्राचार्य के समीप जाकर नीचे मुखकर के खड़े हो गये। शुक्राचार्य ने अपने यजमानों को पुनः अपनी शरण में आया हुआ देखकर उनसे कहा, दैत्यो! ठीक समय पर मैंने तुम लोगों को समझाया बुझाया था; परन्तु तुम लोगों ने मेरी एक बात भी नहीं मानी, अत उसी अभिमान के कारण तुम लोग पराजय को प्राप्त हो रहे हो। शुक्राचार्य की ऐसी बातें सुनकर प्रह्लाद ने कहा, भृगुनन्दन! आप अमर्ष छोड़ दें, अपने यजमान विशेषतया परमभक्त एवं अनुगामी असुरों को बचाइये। आपने हम लोगों की समय समय पर रक्षा की है, आप अपनी दिव्य दृष्टि से यह जान सकते हैं कि हमें देवाचार्य ने ठग लिया था, हम आप के भक्त हैं, हमारी रक्षा कीजिये। हे भृगुनन्दन! यदि आज आप हम लोगों की रक्षा नहीं करते, तो फिर आप से अपमानित होकर हम लोग रसातल को जा रहे हैं। ॥ २३—४६ ॥

सूत बोले:— ऋषिवृन्द! दैत्यों एवं दानवों के इस प्रकार निवेदन करने पर शुक्राचार्य को सब बातें यथार्थतः ज्ञात हुईं, उनका क्रोध दूर हो गया, दैत्यों के ऊपर उन्हें बड़ी करुणा हुई, अनुकम्पा के स्वर में यह बोले, दैत्यो! डरो मत, रसातल मत जाओ। किन्तु अवश्य घटित होनेवाली

Funding by IKS-MoE

यह घटना तो मेरे प्रयत्नशील रहने पर भी घटित होगी। अदृष्ट महाबलवान् होता है, उसे हम टाल नहीं सकते। तुम लोगों की चेतना नष्ट होने का आज जो अभिशाप मैंने दिया है, उसे तो अवश्यमेव भोगना पड़ेगा। ब्रह्मा ने यह कहा है, अर्थात् उनको यह अभीष्ट है कि तुम लोगों का यह अवनति-काल प्रारम्भ हो, अतः वह अवनति का क्रम प्राप्त हो गया है। मेरे अनुग्रह से तुम लोगों ने त्रैलोक्य की समस्त समृद्धियों का उपभोग किया है। देवताओं के शिर पर आक्रमण कर राज्य प्राप्त किये हुए तुम लोगों के दस युग व्यतीत हो चुके, उतने ही समय तक का राज्य ब्रह्मा ने तुम लोगों के लिए कहा है। सावर्णिक मन्वन्तर के आने पर तुम्हें पुनः निश्चय ही राज्य की प्राप्ति होगी। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि समस्त लोकों का अधीश्वर होगा। इन सब बातों को मुझसे स्वयं ब्रह्मा ने कहा हैं, जो मैं कह रहा हूँ, वे अवश्यमेव घटित होंगी, तुम्हारे पौत्र बलि से समस्त लोक छिन जायेंगे। उसके तपोबल से कुछ न होगा तब वह निष्काम भाव से तपस्या में निरत होगा, उसकी प्रवृत्तियाँ निस्वार्थ होंगी, उस समय अजन्मा ब्रह्मा प्रसन्न होकर सावर्णिक मन्वन्तर में उसे अमरत्व प्रदान करेंगे। देवताओं का समस्त वैभव एवं साम्राज्य बलि को प्राप्त होगा——ऐसा ब्रह्मा ने मुझसे कहा है। इसलिए सभी प्राणधारियों से अदृश्य होकर उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करते हुए वह कालयापन करता है। इस समय किसी प्रकार की उत्सुकता एवं व्याकुलता के बिना काल के इस चक्र का सहन करो, मैं तुम्हारी इस समय के आने के पूर्व किसी प्रकार रक्षा नहीं कर सकता। हे सर्व समर्थ! भविष्य की सब बातों को जाननेवाले स्वयं ब्रह्मा जी ने इस विषय में मुझे कुछ करने से रोका है। बृहस्पति के शिष्य देवगण, और हमारे शिष्य तुम लोग——दोनों ही हमारे लिए यद्यपि समान हो, तथापि देवताओं के साथ युद्धभूमि में विरुद्ध लड़नेवाले तुम सब की हम और देवताओं की बृहस्पति रक्षा करेंगे। ॥ ४७—५८ ॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! अपने यजमानों के उपकार में सर्वदा निरत रहनेवाले शुक्राचार्य के इस प्रकार कहने पर प्रह्लाद प्रमुख दैत्यगण उन दोनों के साथ गये। अवश्य घटित होनेवाली घटना तो घटकर ही रहेगी—ऐसी शुक्रचार्य की बातें सुनकर दानवों ने यह वितर्क किया कि शुक्राचार्य ने तो हम लोगों की एक बार विजय प्राप्ति की बात बतलायी ही है. अतः युद्ध ही क्यों न किया जाय? ऐसा निश्चय कर उन सबों ने अस्त्र शस्त्रादि धारण कर युद्ध के लिए देवताओं का आह्वान किया। देवताओं ने संग्राम के लिए असुरों को जब तैयार देखा तो कवच आदि धारण कर युद्ध करने के लिये आगये और घोर युद्ध करने लगे। वह घोर देवासुर-संग्राम सौ वर्षों तक चलता रहा। अन्त में असुरों ने देवताओं पर विजय प्राप्त की। पराजित देवताओं ने आपस में सम्मति की। ॥ ५९—६२ ॥

देवगण बोले:—हम लोग असुरों के सहायक षण्ड और अमर्क के प्रभाव को नहीं जानते। अतः अपने कल्याण के लिए हमें इस समय एक यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये। उसमें इन्हें बुलाना चाहिये। उस यज्ञ में इनको बहका कर हम असुरों को जीत लेंगे। देवताओं ने एकान्त में

इस प्रकार की मंत्रणा कर एक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारम्भ किया और उसमें षण्ड और अमर्क का आवाहन किया। यज्ञ में आने पर उनसे निवेदन किया—द्विजवर्य ! हम इसी प्रकार बराबर यज्ञादि शुभकार्यों में आप को बुलाते रहेंगे, आप असुरों की संगति छोड़ दीजिये, दानवों को पराजित कर लेने के उपरान्त हम उन्हें फिर ग्रहण कर सकते हैं। देवताओं ने जब इस प्रकार अनुरोध किया तो षण्ड और अमर्क ने दानवों का संग छोड़ दिया, परिणाम स्वरूप देवता लोग जीत गये, दानवों की पराजय हो गई। देवतागण असुरों को पराजित कर लेने के उपरान्त पुनः षण्ड और अमर्क के पास आये। शुक्राचार्य के शाप से पराजित एवं निराश्रित दानव जब देवताओं द्वारा पीड़ित होकर रसातल को चले गये। इन्द्र ने इस प्रकार उन दानवों को अपनी बुद्धिमत्ता से अकर्मण्य बना दिया। तभी से महर्षि भृगु के उसी नैमत्तिक शाप के कारण जब जब यज्ञादि का ह्रास होने लगता है धर्म की शिथिलता होने लगती है, तब तब भगवान् विष्णु धर्म की व्यवस्था एवं अधर्म के नाश के लिए जन्म धारण करते हैं। चाक्षुष मन्वन्तर में असुर गण प्रह्लाद की आज्ञा में स्थित नहीं थे। मनुष्यों द्वारा मारे जा सकते थे, उन सब का विनाश करने के लिए भगवान् ब्रह्मा ने इस प्रकार बतलाया है कि उनके विनाश एवं धर्म की रक्षा के लिए नारायण का जन्म हो जाता है। वैवस्वत मन्वन्तर में इसी प्रकार यज्ञों का प्रवर्तन हुआ। उनके उस प्रादुर्भाव में स्वयं ब्रह्मा पुरोहित थे। चौथे युग में जबकि असुर गण बहुत अत्याचारी हो गये थे, वे समुद्र के मध्य में प्रादुर्भूत हुए थे। तदनन्तर हिरण्यकशिपु के वध के लिए देवगणों के साथ भीषण नरसिंह रूप धारण कर उन्होंने द्वितीय अवतार धारण किया। तदनन्तर सातवें त्रेता युग में, जिस समय दैत्यराज बलि समस्त लोकों का एक मात्र अधीश्वर था, तीनों लोक असुरों के भय से आतंकित थे, ऐश्वर्यशाली भगवान् विष्णु ने वामन अवतार धारण किया। यह उनका तृतीय अवतार था। उस समय भगवान् ने अपने को अंगों में समेट कर छोटा बना लिया था। बृहस्पति को आगे कर अदिति के कुल को आनन्दित करनेवाले भगवान् यज्ञ के अनुष्ठान में निरत दैत्येन्द्र विरोचन के पुत्र बलि की यज्ञशाला में ब्राह्मण वेश धारण कर पहुँचे थे। उपयुक्त शुभ समय देखकर उन्होंने निवेदन किया कि हे राजन् ! आप इस समस्त त्रैलोक्य के राजा हैं, आपमें संसार की समस्त सिद्धियाँ विद्यमान् हैं, आप सर्व-समर्थ एवं प्रजाओं के मन को आनन्दित करनेवाले हैं, अत मुझे तीन पग भूमि का दान करें।' भगवान् की ऐसी बातें सुनकर विरोचनपुत्र बलि ने उत्तर दिया कि आपको तीन पग भूमि मैं अवश्य दूँगा। उसने ब्राह्मणवेशधारी भगवान् को आकृति में अत्यन्त छोटा समझकर ऐसा कहा था, उसे इस दान में बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। ऋषिवृन्द ! किन्तु उस वामन रूपधारी भगवान् ने अपने तीन पगों से स्वर्ग, आकाश एवं पृथ्वी-तीनों लोकों को नाप लिया, सर्वसमर्थ प्रभु ने केवल तीन पगों में इस समस्त जगत् को आक्रान्त कर लिया। समस्त जीवों के पालक भूतात्मा भगवान् ने उस समय अपने तेजोबल से भास्कर का भी अतिरेक कर दिया था। अपने महान् प्रखरतेज से महान् यशस्वी भगवान् ने समस्त दिशाओं एवं विदिशाओं को प्रभासित कर दिया था। समस्त लोकों को प्रकाशित करनेवाले भगवान् की उस समय अपूर्व शोभा हुई थी।

जनार्दन भगवान् ने इस प्रकार समस्त आसुरी सम्पत्ति एवं समृद्धि को छीनकर नमुचि, शम्बर, प्रह्लाद प्रभृति असुरों को पुत्र पौत्रादिकों समेत पाताल लोक को पहुँचा दिया था। क्रूर प्रकृति दैत्यों को भगवान् विष्णु ने मार डाला था और कितनों को भय से कम्पित कर अन्यान्य दिशाओं में भगा दिया था। भूतात्मा, लक्ष्मीपति भगवान् ने इस प्रकार समस्त जीवों एवं पृथ्वी आकाशादि महाभूतों को भी सुखी कर दिया था, उस समय उन्होंने समस्त कालों में वर्तमान रहनेवाले अपने अद्भुत स्वरूप को ब्राह्मणों को दिखाया था। उन ब्राह्मणों ने जगदात्मा के उस शरीर में समस्त चराचर जगत् का दर्शन किया था, एवं अपने को भी उनमें स्थित देखा था। उन्होंने देखा कि जगत् में कोई ऐसी वस्तु की सत्ता नहीं है, जिसमें वह महान् आत्मा व्याप्त न हो। उस समय भगवान् विष्णु के उस महान् तेज से विमोहित देवताओं, दानवों एवं मनुष्यों ने उपेन्द्र के उस अद्भुत रूप का दर्शन किया था और वे सब मोह को प्राप्त हो गये थे। सुहृद् एवं परिवार वर्ग के साथ बलि को पाश में बाँधकर विरोचन के समस्त कुल को पाताल लोक में प्रविष्ट करा दिया। तदनन्तर संसार के समस्त ऐश्वर्य को महात्मा इन्द्र को प्रदान किया। महाबाहु जनार्दन मनुष्य योनि में भी उत्पन्न हुए थे। उनकी ये तीन सम्भूतियाँ कल्याणदायिनी देवयोनि की थीं। मनुष्य योनि में उनकी जो सात सम्भूतियाँ हैं, वे भी भृगु के शापवश हुई थीं, उन्हें सुनिये। दसवें त्रेतायुग में, जब कि धर्म का ह्रास हो रहा था, मार्कण्डेय के साथ दत्तात्रेय के रूप में उत्पन्न हुए थे, यह उनका चतुर्थ अवतार था। पन्द्रहवें त्रेतायुग में चक्रवर्ती सम्राट् मान्धाता के शासनकाल में तथ्य समेत उनका अवतार हुआ था, यह पाँचवा अवतार था। फिर उन्नीसवें त्रेतायुग में विश्वामित्र के साथ जमदग्नि के पुत्र परशुराम के रूप में समस्त क्षत्रियकुल संहारक होकर उन्होंने छठवाँ अवतार धारण किया था। फिर चौबीसवें त्रेतायुग में पुरोहित वसिष्ठ के साथ रावण के विनाशार्थ दशरथपुत्र रामचन्द्र के रूप में उन्होंने सातवीं बार जन्म ग्रहण किया। इसी प्रकार अट्ठाइसवें द्वापरयुग में भगवान् विष्णु ने जातूकर्ण के साथ महर्षि परासर के संयोग से वेदव्यास के रूप में आठवाँ अवतार धारण किया था। उसी प्रकार नवीं बार अदिति स्वरूप देवकी के गर्भ से कश्यप स्वरूप वसुदेव के पुत्र होकर ब्रह्म गार्ग्य के साथ विष्णु ने अवतार धारण किया था। उन भगवान् का वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता। वे भक्तों के उपकार करनेवाले हैं, इच्छानुरूप विचरण करनेवाले हैं, जितेन्द्रिय हैं, लोक में बालरूप धारणकर वे भगवान खिलौनों की तरह क्रीडा करते हैं। वे महाबाहु मधुसूदन शब्दों द्वारा प्रमाणित नहीं किये जा सकते। यह समस्त विश्व उन्हीं से व्याप्त है, वे इससे भी परे हैं, स्वरूप में इनके समान कोई दूसरा नहीं है। अट्ठाइसवें द्वापरयुग के कुछ अंश व्यतीत हो जाने पर, जब धर्म नष्ट हो जाता है तो वे प्रभु विष्णु वृष्णिवंश में धर्म की संस्थापना एवं अधर्म के विनाश के लिए जन्म धारण करते हैं। योगात्मा अपनी योगमाया से समस्त जीवनिकायों को मोहित कर मनुष्य योनि में जन्म धारण करने पर भी प्रच्छन्न स्वरूप से समस्त पृथ्वी भर में विचरण करते हैं। उस अवतार में सान्दीपनि के साथ मानव समाज में अपनी लीला दिखाने के लिए वे भगवान् प्रादुर्भूत होते हैं। उस अवतार में कंस, साल्व, द्विविद, अरिष्ट, वृषभ, पूतना, केशी, नाग, कुवलयापीड, मल्लराज गृहाधिप चाणूर प्रभृति असुरों का,

Funding by IKS-MoE

जो मानवदेहधारी दैत्य थे, महाबलशाली भगवान ने संहार किया। उसी अवतार में उन्होंने अद्भुत पराक्रमशाली वाणासुर की सहस्र बाहुओं को काट डाला था। युद्ध में महान पराक्रमी नरकासुर एवं कालयवन का वध किया था। बड़े बड़े राजाओं के समस्त बहुमूल्य रत्नों के आभूषणादि को उन्होंने अपने अनुपम तेज से छीन लिया था। उसी समय उन भगवान रसातल निवासी अनेक पापाचारपरायण भूपतियों का भी संहार किया था। महान् ऐश्वर्यशाली भगवान के ये अवतार लोक रक्षा के लिए हुए थे। इसी कलियुग के सन्ध्यांश में जबकि इसकी समाप्ति हो जायगी, पराशर तनय प्रतापशाली विष्णुयशा, याज्ञवल्क्य के साथ कल्कि नामक अवतार धारण करेंगे। यह उनका दसवाँ अवतार होगा। ये अनेक प्रकार की सेना साथ लेकर, जिसमें हाथी, घोड़े और रथों की भरमार रहेगी, लाखों की संख्या में शस्त्रास्त्र से सुसज्जित विप्रगणों से संयुक्त होकर एक महान् विनाश उपस्थित करेंगे। उस समय जितने घोर अधार्मिक होंगे, धर्म से द्वेष करनेवाले होंगे, उत्तर दिग्वर्ती, मध्यदेशीय विन्ध्यगिरि के उस पार के रहनेवाले, सुदूर दक्षिण दिशा के द्रविणादि, सिंहल देशीय, गान्धार, पारद, पल्हव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, पुलिन्द, दरद, खस, लम्पक, अन्ध्रक, रुद्र, किरात प्रभृति सबको परम ऐश्वर्यशाली, बलवान्, म्लेच्छों को नष्ट करने वाले भगवान् नष्ट कर देंगे और समस्त जीवों से अदृश्य रहकर पृथ्वी भर में विचरण करेंगे। जो भगवान् विष्णु पूर्वजन्म में परमबलशाली प्रमिति के रूप में वर्तमान रहते हैं, वे ही देवांश भूत होकर मनुष्य योनि में जन्म धारण करते हैं। कलियुग के पूर्ण हो जाने पर चन्द्रमा के समान शरीर धारण कर वे ही उत्पन्न हुए थे। उन परम महिमामय भगवान् की ये दस सम्भूतियाँ (अवतार) कही गई हैं। जो जो समय, शरीर, और कारण भगवान् के अवतारों के लिए ऊपर कहे गये हैं, उनकी परिस्थिति के अनुसार अंशावतार रूप भगवान विष्णु ने उन योनियों में जन्म धारण किया। पच्चीसवें कल्प के आने पर पच्चीस वर्ष जब व्यतीत हो जाता है, उस समयभगवान् समस्त जीवों का विनाश करते हुए मनुष्यों को सर्वांशतः नष्ट करते हुए, अपने क्रूर कर्म द्वारा पृथ्वी को बीजावशेष कर देते हैं, ऊपर कहे गये उन परम अधार्मिक वृषलों का संहार कर सेनाओं के समेत अपने अवतार धारण को वे चरितार्थ (सफल) कर देते हैं। उस समय की प्रजाएँ अपने कर्मों द्वारा यद्यपि नाश को प्राप्त हो जाती हैं, फिर भी उन्हें पुनः स्वयमेव सिद्धि प्राप्त होती है। तदनन्तर अकस्मात् वे आपस में ही एक दूसरे के ऊपर मोहवश कुपित हो जाँयगी, भावीवश इस प्रकार के गृहकलह में निरत उन सारी प्रजाओं का विनाश कर अपने अनुचरों समेत वे भगवान् गङ्गा यमुना के संगम पर अपने इस घोर कर्म की समाप्ति करेंगे। तदनन्तर कल्कि रूपधारी भगवान् के अवसान हो जाने पर, साधारण सैनिकों के साथ राजाओं के नष्ट हो जाने पर प्रजाएँ आश्रय-विहीन हो जायँगी। अपनी रक्षा करने का भी उन्हें साहस नहीं रहेगा, आपस में युद्ध कर एक दूसरे को मार काट डालेंगे, परस्पर विश्वास कोई नहीं करेगा, उनके सारे उत्साह नष्ट हो जायेंगे। इस प्रकार परम दुःखित होकर वे अपने पुरों एवं ग्रामों को छोड़कर साधनविहीन अवस्था में नदियों एवं पर्वतों को भाग जायेंगे, वैदिक धर्म का उनमें सर्वथा विलोप हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जायगा। आकार में

छोटे छोटे होने लगेंगे, अल्प आयु हो जायगी, वन में निवास करने लगेंगे। वहाँ पर पत्र, मूल, फल खाकर जीवन यापन करेंगे। चीर, पत्र एवं मृगचर्म धारण करनेवाली वे प्रजाएँ घोर संकरवर्ण की हो जायँगी। अल्प आयु वाली उन प्रजाओं की जीविका आदि के साधन भी सब नष्ट हो जायँगे। अनेक प्रकार की बाधाओं में पिस कर वे परम (घोर) कष्ट सहन करेंगी। कलियुग के उस सन्ध्यांश में प्रजाओं को इस प्रकार के विविध कष्ट सहन करने पड़ेंगे। कलियुग के साथ उसकी प्रजाएँ नष्ट हो जायँगी, इस प्रकार उस कलियुग के व्यतीत हो जाने पर जब पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा, उस समय सारी वस्तुएँ फिर स्वाभाविक ढंग से अपनी पूर्व स्थिति को प्राप्त होंगी, किसी अन्य उपाय से नहीं। देवताओं और असुरों के संघर्ष का मैं यह विवरण बतला चुका, यदु के वंश के प्रसंग में भगवान् विष्णु के महान् यश का भी वर्णन कर दिया गया, अब आगे 'तुर्वसु' पूरु और द्रुह्यु के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। ॥ ६३—१२६ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुमाहात्म्यकथनं नामाष्टनवतितमोऽध्यायः। ॥ ९८ ॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

तुर्वसु आदि ययाति पुत्रों के वंश का वर्णन

सूत बोले:—ययाति पुत्र तुर्वसु का पुत्र वह्नि था, वह्नि का पुत्र गोभानु हुआ। गोभानु का परम वीर पुत्र त्रिसानु था, जो कभी पराजित नहीं हुआ। उस त्रिसानु का पुत्र राजा करन्धम हुआ, और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। आविक्षित का पुत्र मरुत्त नामक एक अन्य राजा भी प्राचीन काल में कहा जाता है। राजा मरुत्त के कोई सन्तानें नहीं थीं—ऐसा सुना जाता है, इसलिए सबलोगों ने पुरुवंशीय दुष्कृत को उसका पुत्र बनाया। राजा ययाति ने वृद्धत्व को अंगीकार न करने के कारण जो शाप तुर्वसु को दिया था उसी के कारण तुर्वसु का वंश नष्ट हो गया और ऐसी प्रसिद्धि है कि वह अंत में पुरु वंश में मिल गया। उस दुष्कृत का उत्तराधिकारी राजा शरुथ हुआ, शरुथ से जनापीड की उत्पत्ति हुई, उसके चार पुत्र हुए, उनके नाम पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य थे। उन सबों के अपने अपने जनपद थे, जो पाण्ड्य, केरल, चोल और कुल्य के नाम से विख्यात हैं। द्रुह्य के दो वीर पुत्र थे, बभ्रु और सेतु, इनमें सेतु का पुत्र अरुद्ध हुआ और बभ्रु का पुत्र रिपु हुआ। युद्ध में इस बलशाली रिपु को परम कठोर स्वभाववाले यौवनाश्व ने मार डाला, वह महायुद्ध लगातार चौदह मास तक चलता रहा। अरुद्ध का उत्तराधिकारी राजा गान्धार हुआ, जिसके नाम से विशाल गान्धार नामक देश विख्यात है। उसी गान्धार देश में उत्पन्न होनेवाले अश्व बहुत अच्छे अश्व होते हैं।

राजा गान्धार का पुत्र धर्म हुआ, उसका पुत्र धृत हुआ। धृत को दुर्दम नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका पुत्र प्रचेता हुआ। उस प्रचेता के सौ पुत्र हुए, जो सब के सब राजा थे। वे सब उत्तर दिशा में म्लेच्छों के देश के शासक थे। अनु के तीन पुत्र हुए, जो परम बलशाली एवं धार्मिक थे। उनके नाम थे, सभानर, पक्ष और परपक्ष। इनमें सभानर का पुत्र परम विद्वान राजा कालानल था। कालानल का पुत्र धर्मात्मा राजा सृञ्जय हुआ। सृञ्जय का पुत्र वीर राजा पुरञ्जय हुआ। पुरञ्जय का पुत्र महान् बलशाली राजा जनमेजय हुआ। राजर्षि जनमेजय का पुत्र राजा महाशाल हुआ। उस महाराज महाशाल का यश स्वर्ग में इन्द्र की भाँति प्रतिष्ठित था। उसका पुत्र परम धार्मिक राजा महामना हुआ। सातों द्वीपों का अधीश्वर महान यशस्वी राजा महामना अपने समय का चक्रवर्ती सम्राट् था। उसने परम यशस्वी दो पुत्रों को उत्पन्न किया। जिनमें एक धर्म के तत्त्वों के जाननेवाले राजा उशीनर थे, दूसरे भी परम धार्मिक राजा तितिक्षु थे। उस राजा उशीनर की राजर्षिवंश में उत्पन्न होनेवाली पाँच पत्नियाँ थीं, उनके नाम थे, मृगा, कृमी, नवा, दर्वा और दृषद्वती। उन पाँचों पत्नियों के संयोग से महाराज उशीनर को पाँच कुलोद्धारक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो सब के सब परम तपस्वी, महात्मा एवं परम धार्मिक थे। मृगा का पुत्र मृग था, नवा का पुत्र नव था, कृमी का पुत्र कृमि था, दर्वा का परम धार्मिक सुव्रत था। ऋषिवृन्द! पाँचवी पत्नी दृषद्वती का पुत्र महाराज शिवि था, जो औशीनर शिवि के नाम से विख्यात है। उसी महाराज शिवि का पुर शिवपुर के नाम से विख्यात है, इसी प्रकार मृग का यौधेयपुर, नव का नवराष्ट्र, कृमि की कृमिपुरी, और सुव्रत की अम्बष्ठा नामक पुरी थी। अब शिवि के पुत्रों का वर्णन सुनिये। शिवि के चार पुत्र हुए, जिनका लोक में परम सम्मान था, वे सब शिविगण के नाम से विख्यात थे। उनके नाम थे, वृषदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक। उन चारों शिविपुत्रों के जनपद परम रमणीय केकय, माद्रक, वृषदर्भा और सूचीदर्भा के नाम से विख्यात हैं। अब तितिक्षु की प्रजाओं का वर्णन सुनिये। उस राजा तितिक्षु का पुत्र महाबाहु उशद्रथ पूर्वदिशा का परम यशस्वी राजा सुना जाता है। उसका पुत्र राजा हेम हुआ। हेम का पुत्र परम तपस्वी बलि हुआ। यह बलि महान योगी दैत्यराज बलि ही थे, जिन्हें भगवान वामन ने बाँधा था, सन्तति के अभाव में राजा हेम के वंश के विनाश उपस्थित होने पर इन्होंने मानवयोनि में हेम का पुत्र होकर जन्म धारण किया था। इस राजा बलि ने पृथ्वी में चारों वर्णों की सृष्टि करनेवाले पुत्रों को उत्पन्न किया था, उन्होंने अङ्ग, बङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र, कलिङ्ग नामक पुत्रों को उत्पन्न किया था। उस महाराज बलि के वंशज क्षत्रिय भी कहे जाते हैं और ब्राह्मण भी कहे जाते हैं। बलि के परम धार्मिक कार्यों से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे महायोगी, एक कल्प की दीर्घायुवाला, संग्राम में अजेय एवं धर्म में परम निष्ठावान् होने का वरदान दिया था, इसके अतिरिक्त ब्रह्मा ने कहा था, बले! तुम्हें समस्त त्रैलोक्य का दर्शन, सन्तानोत्पत्ति में प्रधानता, धर्मतत्त्व का चिन्तन, एवं प्रतिद्वन्दी का सर्वथा अभाव रहेगा, तुम ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों की स्थापना करनेवाला होगा। भगवान ब्रह्मा के इस वरदानात्मक वचन को सुनकर राजा बलि को परम शान्ति प्राप्त हुई। वरदान के अनुसार दीर्घकाल के अनन्तर वह परम विद्वान राजा बलि पुनः अपने स्थान को प्राप्त हुआ। बलि के

Funding by IKS-MoE

उन पुत्रों के परम रमणीय देश उन्हीं के नामों के अनुसार बंग, अंग, सुह्मक, पुण्ड्र और कलिंग के नाम से विख्यात हैं। अब उनके वंशजों का विवरण सुनिये। राजा बलि के ये पुत्र मुनि के अंश से बलि के क्षेत्रज पुत्र थे। महान तेजस्वी दीर्घतमा ऋषि के संयोग से ये बलि की स्त्री सुदेष्णा में उत्पन्न हुए थे। ॥१-३४॥

ऋषियों ने पूछा :—सूत जी ! महाराज बलि के वे पाँचो पुत्र किस प्रकार दीर्घतमा ऋषि के संयोग से उनके क्षेत्र (पत्नी) में उत्पन्न हुए, इसे हम लोग जानना चाहते हैं, बतलाइये। ॥३५॥

सूत बोले :—ऋषिवृन्द ! प्राचीनकाल में एक अशिज नामक परम विद्वान् ऋषि विख्यात हो गये हैं, उन परम महात्मा ऋषि की पत्नी का नाम ममता था। अशिज के छोटे भाई देवताओं के पुरोहित परम तेजस्वी बृहस्पति थे, एक बार वे कामवश होकर ममता के पास गये। देवी ममता ने बृहस्पति के प्रति अपनी इच्छा प्रकट नहीं की। वे बोलीं, मैं इस समय तुम्हारे ज्येष्ठ भाई के संयोग से गर्भवती हूँ, बृहस्पति ! यह हमारा महान् गर्भ अपने तेज से परम प्रकाशित हो रहा है, यह गर्भावस्था में ही अशिज के अंशभूत होने के कारण षडंग वेदों का उच्चारण करता है एवं ब्रह्म का अभ्यास करता है। तुम भी अमोघवीर्य वाले हो, इसलिए ऐसी स्थिति में मेरे साथ समागम नहीं कर सकते। हे सर्वसमर्थ ! इस काल के व्यतीत हो जाने के उपरान्त तुम्हारी जैसी इच्छा हो, करना। ममता के इस प्रकार कहने पर परम तेजस्वी बृहस्पति महात्मा होकर भी अपनी काम वशीभूत आत्मा को वश में न रख सके। परम धर्मात्मा होकर भी उन्होंने ममता से समागम किया, जिस समय वे वीर्याधान कर रहे थे, गर्भस्थ शिशु ने उनसे कहा—तात ! आप अपना वीर्य यहाँ न निहित करें, क्योंकि इसमें दो प्राणियों का निवास सम्भव नहीं है। तुम भी अमोघवीर्य वाले हो, मैं यहाँ पहिले ही से उपस्थित हूँ। गर्भस्थ शिशु के इस वाक्य से बृहस्पति के वीर्याधान में बाधा पहुँची। परम तेजस्वी ऋषिवर बृहस्पति ने अप्रसन्न होकर अपने बड़े भाई अशिज के संयोग से समुत्पन्न गर्भस्थ शिशु को शाप दिया कि सभी प्राणधारियों के परम अभीष्ट ऐसे सुखमय अवसर में तुमने बाधा पहुँचाई है, अज्ञानवश तुमने मुझको ऐसा कहा है, अतः महान् अंधकार को प्राप्त होगे। बृहस्पति के शाप के कारण वह शिशु दीर्घतमा ऋषि के नाम से विख्यात हुआ। ऋषिवर अशिज भी बृहस्पति के समान तेजस्वी एवं परम यशस्वी थे। उनके पुत्र दीर्घतमा परम ब्रह्मचारी थे, और उनके भाई के आश्रम में निवास करते थे, सुरभी के पुत्र एक वृषभ से उन्होंने एक बार गोधर्म का श्रवण-ग्रहण किया था। अशिज के भ्राता एवं दीर्घतमा के पितृव्य बृहस्पति ने उनके निवासार्थ एक भवन का निर्माण किया था, उसी में निवास कर रहे थे, एक बार कहीं से घूमता हुआ एक वृषभ वहाँ पर आ गया, गौओं के साथ घूमते हुए उस वृषभ ने श्राद्ध के लिए लाये गये कुशों का भक्षण करना प्रारम्भ कर दिया। ऋषिवर दीर्घतमा ने फुड़कते हुए उस वृषभ की दोनों सीगों को बल पूर्वक पकड़ लिया। उनके पकड़े जाने पर जब वह एक पग से दूसरा पग भी नहीं रख सका तब असक्त होकर दीर्घतमा से बोला, बलवानों में श्रेष्ठ ! मुझे आप छोड़ दें, तात ! मैंने आप के समान बलवान् कहीं पर किसी अन्य को नहीं पाया,

यद्यपि समस्त पृथ्वी भर का मैंने देवदेव महादेव जी को वहन करते हुए भ्रमण किया है। हे बलशालियों में श्रेष्ठ ! मुझे छोड़ दीजिये, मैं तुम्हारे ऊपर परम प्रसन्न हूँ, मुझसे वर माँगिये ।' वृषभ के ऐसा कहने पर दीर्घतमा ने कहा, वृषभ ! मेरे हाथ से तू जीते हुए कहाँ जाओगे । तुम चार पैरवाले होकर भी दूसरे की वस्तु का भक्षण करतेहो, अतः मैं तुम्हें नहीं छोड़ूंगा । दीर्घतमा के ऐसा कहने पर वृषभ ने पुनः उत्तर दिया, तात ! मेरे लिए कोई पाप नहीं है, चोरी भी कुछ नहीं है । मैं क्या खाना चाहिये, क्या नहीं खाना चाहिए, क्या पीना चाहिये, क्या नहीं पीना चाहिये—इसे नहीं जानता । उसी प्रकार मुझे इसका भी ज्ञान नहीं है कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये, कहाँ जाना चाहिये और कहाँ न जाना चाहिये, ब्राह्मणदेव ! हम पशुओं को पाप नहीं लगता, गौओं का तो यही धर्म कहा गया है । वृषभ के इस कथन में दीर्घतमा गौ का नाम सुनकर अचकचा गये, उन्होंने परम भक्ति तथा विनयपूर्ण चाटुकारी के साथ वृषभ को प्रसन्न किया । इस प्रकार प्रसन्न होकर वृषभ के चले जाने पर उन्होंने भक्तिपूर्वक इस गौधर्म पर विचार किया, और मन से उसे ग्रहण कर सर्वदा उसी में निष्ठा रख कर पालन में भी तत्पर हो गये । तदनन्तर दैव की अकृपा से हतबुद्धि होकर उन्होंने अपने छोटे भाई औतथ्य की पत्नी को एक बार कामवश होकर छेड़ने का उपक्रम किया, उसके अनाकानी करने और रोने पर भी वे अपने इस निन्द्यकर्म से विरत नहीं हुए । दीर्घतमा के इस महान् गर्वमूलक अपराध ऋषि शरद्वान को सहन नहीं हुआ । उन्होंने देखा कि दीर्घतमा अपने बल के कारण छोटे भाई की स्त्री के साथ जो पुत्रवधू के समान है, समागम कर रहे हैं । इस महान् विपर्यय को देखकर महात्मा शरद्वान् को बड़ी चिन्ता हुई, किन्तु भविष्य में घटित होनेवाली घटना के प्रभाव को जानते हुए उन्होंने दीर्घतमा को मृत्यु का शाप नहीं दिया । अत्यन्त क्रोध से उनके नेत्र लाल हो गये आवेश में भर कर दीर्घतमा से बोले, अरे दुष्कर्मपरायण ! तू गम्य अगम्य कुछ नहीं जानता, पशुधर्म को प्रश्रय देकर पुत्रवधू के साथ समागम करना चाहता है । अब मैं तुझे छोड़ रहा हूँ, अपने इस नीच कर्म का फल भोग । अन्धे, वृद्ध, एवं जीविका चलाने में असमर्थ होकर भी तुम इतना नीच कर्म कर रहे हो, जिसे कोई नहीं करता, अतः मैं तुम्हें एक महान् दुराचारी समझ रहा हूँ, और इसीलिए तुम घर से बाहर निकाले गये हो । ॥३६–६२॥

सूत बोले :—ऋषिवृन्द ! इतना कहने के उपरान्त दीर्घतमा की प्रवृत्ति क्रूर कर्म में हो गई । तब ऋषि शरद्वान् ने उनकी बहुत भर्त्सना करके अपने दोनों बाहुओं से पकड़ कर एक बाक्स में बन्द कर समुद्र में बह जाने के लिए गंगा जल में डाल दिया । एक सप्ताह तक गंगा के स्रोत में तैरते रहने के बाद दीर्घतमा को स्त्री समेत परम धार्मिक राजा बलि ने देखा । उस समय वे डूब रहे थे, किन्तु जल के प्रवाह से राजा के समीप पहुँच चुके थे । विरोचन पुत्र राजा बलि ने दीर्घतमा को जलराशि से पकड़ कर ऊपर खींच कर बचा लिया और अपने अन्तःपुर में ले जाकर विविध प्रकार के खान पानादि से उन्हें सन्तुष्ट किया । बलि के इस व्यवहार से दीर्घतमा परम सन्तुष्ट हुए और वरदान देकर उसे प्रसन्न करना चाहा । दानवपति बलि ने पुत्र की कामना से दीर्घतमा से वरदान याचना की । ॥६३–६६॥

Funding by IKS-MoE

बलि ने कहा:—मानियों के मान रक्षक ! महाभाग्यशालिन् ! मैं सन्तान प्राप्ति की याचना आपसे कर रहा हूँ, आप धर्म, अर्थ, काम से समन्वित पुत्रों की उत्पत्ति मेरे लिए करें ।' बलि के इस प्रकार कहने पर दीर्घतमा ने कहा कि बहुत अच्छा, मुझे आपकी प्रार्थना स्वीकार है। राजा बलि ने अपनी सुदेष्णा नामक रानी को सन्तान के लिए दीर्घतमा के पास जाने के लिए कहा । दीर्घतमा को अन्धा और वृद्ध देखकर देवी सुदेष्णा उनके पास स्वयं नहीं गई और अपनी धाय को विविध वस्त्राभूषणादि से विभूषित कर भेज दिया । उस शूद्रयोनि में जितेन्द्रिय वश्यात्मा दीर्घतमा ने कक्षीवान् और चक्षुष नामक दो धर्मात्मा पुत्रों को उत्पन्न किया, जो महान् तेजस्वी थे । उन कत्तीवान् और चक्षुष नामक पुत्रों को, जो भली भाँति पढ़ लिखकर ब्रह्मवेत्ता योगपरायण, परमबुद्धिमान, सिद्ध, धर्मतत्त्वों के विचारक एवं श्रेष्ठ हो चुके थे, देखकर विरोचन पुत्र राजा बलि ने कहा कि ये दोनों हमारे पुत्र हैं क्या ? दीर्घतमा ने कहा, नहीं, ये तुम्हारे नहीं, हमारे पुत्र हैं; क्योंकि तुम्हारे छद्म से ये शूद्र योनि में उत्पन्न हुए हैं, ये असुरों में श्रेष्ठ होंगे (?) तुम्हारी रानी सुदेष्णा ने मुझे अन्धा और वृद्ध मानकर अपमान करने के लिए मेरे पास अपनी एक शूद्रवर्ण की धाय को भेज दिया था। दीर्वतमा की ऐसी बातें सुनकर राजा बलि ने उनकी पुनः पुनः प्रार्थना की और किसी प्रकार उन्हें प्रसन्न किया। ऐश्वर्यशाली राजा बलि ने अपनी पत्नी सुदेष्णा की भी बड़ी भर्त्सना की । और पुनः अलंकारादि से विभूषित कर ऋषि के पास भेजा। दीर्घतमा ने सुदेष्णा से कहा, मङ्गले ! यदि नमक मिश्रित दही मेरे नग्न और खुले हुए समस्त शरीर में लगाकर पैर से लेकर मस्तक तक बिना किसी घृणा या जुगुप्सा के अपनी जीभ से चाटोगी तब अपनी इच्छा के अनुसार पुत्रों को प्राप्त करोगी । देवी सुदेष्णा ने दीर्घतमा के इस आदेश का यद्यपि सर्वांशतः पालन किया ; पर उनके शरीर के मलमार्ग को चाटते उसे बड़ी घृणा हुई जिससे छोड़ दिया । ऐसा देखकर ऋषि दीर्घतमा ने सुदेष्णा से पुनः कहा, शुभे ! तुम अपने ज्येष्ठ कुमार को बिना अपान (मलमार्ग) के उत्पन्न करोगी । दीर्घतमा की ऐसी बातें सुनकर देवी ने पुनः प्रार्थना की, महाभाग ! ऐसे पुत्र देने कि कृपा आप न करें । ॥ ६३—८० ॥

ऋषि ने कहा:—देवि ! यह तो तुम्हारा ही अपराध है, अब यह अन्यथा नहीं हो सकता । सद्व्रतपरायणे ! देवि ! यदि ऐसा ही है तो तुम्हारा पौत्र इस प्रकार का होगा । उसका अपानमार्ग के बिना भी सब कार्य होता रहेगा । ऐसा कहने के उपरान्त ऋषिवर दीर्घतमा ने देवी सुदेष्णा की कुक्षि का स्पर्श करते हुए पुनः कहा, देवि ! सुन्दर हँसनेवाली ! तू ने मेरे समस्त अंगों से दधि का जो प्राशन कर लिया है, उसके फलस्वरूप तुम्हारा गर्भ पूर्णिमा तिथि के समुद्र की भाँति पूर्णता को प्राप्त हो गया है । तुम्हारे गर्भ से देवताओं के समान परम सुन्दर एवं प्रभावशाली पाँच पुत्र उत्पन्न होंगे, वे परम धार्मिक, यज्ञपरायण, परमपराक्रमशाली एवं तेजस्वी होंगे । ऋषिवर दीर्घतमा के इस वरदान के

Funding by IKS-MoE

अनुसार देवी सुदेष्णा से राजा बलि का ज्येष्ठ पुत्र अङ्ग उत्पन्न हुआ। उसके बाद बङ्ग, फिर कलिङ्ग, फिर पुण्ड्र तथा सबसे बाद में ब्रह्म नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वंश की वृद्धि करनेवाले ये पुत्रगण राजा बलि के क्षेत्रज पुत्र थे। प्राचीन काल में ऋषिवर दीर्घतमा ने इन्हीं पाचों पुत्रों को राजा बलि को प्रदान किया था। भगवान् ब्रह्मा ने किसी कारणवश इस महात्मा को 'तुम्हें अपनी स्त्रियों में सन्तति न होगी—ऐसा अभिशाप दिया था। इसी से उन्हें अपनी पत्नी में कोई सन्तति नहीं हुई, इसी कारण वश उन्होंने मनुष्य योनि में सन्ततियाँ उत्पन्न कीं। ऋषि के इस गौधर्म से परम प्रसन्न होकर वृष ने यह वचन कहा 'तुमने गौधर्म की मर्यादा पर भलीभाँति विचार कर पालन किया है, हे मुने! तुम्हारे इस आचरण से मैं परम प्रसन्न हूँ, देखो, आज महान् अंधकार से मैं तुम्हारी मुक्ति कर रहा हूँ, तुम्हारे शरीर में बृहस्पति के शाप के कारण जो पाप चिरकाल से निबद्ध था, उसे भी तुमसे अलग कर रहा हूँ। अपने नथुनो से सूंघकर तुम्हारे शरीर से वृद्धता एवं मृत्यु के शाप को भी मैं दूर कर रहा हूँ।' ऐसा कहने के उपरान्त वृषभ के सूँघते ही दीर्घतमा का चिरकालीन अंधकार दूर हो गया, और वे देखने लगे। आशीर्वाद के फल स्वरूप वे दीर्घायुसम्पन्न युवा और नेत्रवान् हो गये। इस प्रकार गौ के आशीर्वाद से ऋषि दीर्घतमा गौतम—इस नये नाम से प्रख्यात हुये। तदनन्तर शूद्रा के गर्भ से समुत्पन्न कक्षीवान् ने पिता के साथ पर्वतीय प्रदेश को प्रस्थान किया और पिता के कल्याणार्थ ऐसी विपुल तपस्या की, जैसी तपस्या करने के लिये पिता ने उपदेश किया था। अपनी परम कठोर तपस्या के बल पर परम ऐश्वर्यशाली कक्षीवान् ने बहुत दिनों के उपरान्त सिद्धि प्राप्त की, और अपने तथा अपने अनुज चक्षुष के भी पापों को नष्टकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया। कक्षीवान् के इस कर्म से पिता को परम प्रसन्नता हुई और वे बोले, सर्वसमर्थ पुत्र! तुम जैसे योग्य पुत्र से मैं पुत्रवान् हूँ, परम यशस्वी सत्पुत्र को प्राप्त कर मैं कृतार्थ हो गया।' ऐसा कहने के उपरान्त महात्मा गौतम ने योग की साधना की और ब्रह्म पद को प्राप्त किया। इधर कक्षीवान् ने ब्राह्मणत्व की प्राप्ति कर सहस्र पुत्रों की सृष्टि की। कक्षीवान् के वे पुत्र काले अंगोंवाले गौतम गोत्रीय कहे जाते हैं। विरोचन के पुत्र बलि की एवं दीर्घतमा की सन्ततियों का परस्पर समागम जिस प्रकार हुआ, उसे मैं आप लोगों को बतला चुका। महाराज बलि अपने उन पाँचों पुत्रों का राज्याभिषेक करने के उपरान्त कृतार्थ हो गया। योगात्मा परमऐश्वर्यशाली वह राजा बलि योग का आश्रय लेकर सभी जीवों से अदृश्य होकर काल की प्रतीक्षा करता हुआ तपस्या में अपना काल यापन करने लगा। बलि के उन पाँचों पुत्रों में राजर्षि अङ्गद का पुत्र दधिवाहन हुआ। देवी सुदेष्णा के अपराध के कारण दीर्घतमा के शापानुसार उसे मलमार्ग नहीं था। उस राजा दधिवाहन का दूसरा नाम अनपान भी था, अनपान का पुत्र राजा दिविरथ कहा जाता है। दिविरथ का पुत्र परम विद्वान् राजा धर्मरथ हुआ। इसी परम धार्मिक महाबलशाली श्रीसम्पन्न राजा धर्मरथ ने विष्णुपद नामक पर्वत पर इन्द्र के साथ एक यज्ञ में सोम रसका पान किया था। राजा धर्मरथ का पुत्र राजा चित्ररथ हुआ। उस चित्ररथ के पुत्र राजा दशरथ हुए। यही राजा दशरथ

Funding by IKS-MoE

लोमपाद के नाम से विख्यात थे, जिनकी पुत्री शान्ता थीं[१]। राजा दशरथ का पुत्र महान् यशस्वी कुलोद्धारक परम वीर राजा चतुरङ्ग था, वह महात्मा ऋष्यऋङ्ग के अनुग्रह से उत्पन्न हुआ था। चतुरङ्ग का पुत्र राजा पृथुलाश्व सुना जाता है। पृथुलाश्व का चम्प नामक पुत्र हुआ। उस राजा चम्प की परम रमणीय मालिनी नामक नगरी थी। उसका दूसरा नाम चम्पावती भी था, उस मनोहर चम्पावती नगरी में चारों वर्णों के लोग निवास करते थे। उस चम्पावती नगरी में राजा चम्प ने साठ सहस्र वर्षों तक निवास किया था। ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य सभी जातियों के लोग अपने अपने धर्म पर रहते थे, सभी परम धार्मिक विचारोंवाले एवं भगवान् विष्णु के परम भक्त थे। पूर्णभद्र की अनुकम्पा से उस राजा चम्प का पुत्र हर्यङ्ग हुआ। उस राजा हर्यङ्ग के पास तणिक नामक एक महान् बलशाली हाथी था जो पूर्व जन्म में इन्द्र का ऐरावत था, राजा ने अपने मंत्र बल से उस वाहन रत्न को पृथ्वी पर बुलाया था। राजा हर्यङ्ग का उत्तराधिकारी राजा भद्ररथ हुआ, ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा भद्ररथ का पुत्र राजा वृहत्कर्मा हुआ। वृहत्कर्मा का पुत्र राजा वृहद्रथ हुआ, उससे वृहन्मना नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। राजेन्द्र वृहन्मना ने जयद्रथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया, जिससे राजा दृढ़रथ की उत्पत्ति हुई। उस राजा दृढ़रथ का पुत्र विश्वविजयी राजा जनमेजय हुआ। उसके अङ्गों से राजा कर्ण हुआ। जो उसका उत्तराधिकारी था। कर्ण का पुत्र सुरसेन हुआ, और उसका द्विज (ध्वज) नाम से कहा जाता है। ॥ ८१—११२ ॥

ऋषियों ने कहाः—सूत जी ! वे राजा कर्ण किस प्रकार सूत के पुत्र हुए ? और किस प्रकार वे ही राजा अंग के वंशज हुए ? आप इन प्राचीन कथाओं के परम कुशल ज्ञाता हैं : अतः इसे हम लोग सुनना चाहते हैं। ॥ ११३ ॥

सूत बोलेः—वृहद्भानु का पुत्र राजा वृहन्मना था। उस राजा वृहन्मना की दो पत्नियाँ थीं, जो दोनों चेदिनरेश की पुत्रियाँ थीं। उनके नाम थे, यशोदेवी और सत्या। इन्हीं दोनों पत्नियों से राजा का वंश अलग अलग हो गया, राजाधिराज जयद्रथ यशोदेवी में उत्पन्न हुआ। दूसरी देवी सत्या से ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का उद्धारक परम प्रख्यात राजा विजय हुआ। उस विजय का पुत्र धृति हुआ, जिसका पुत्र धृतव्रत नाम से प्रसिद्ध हुआ। धृतव्रत का पुत्र महान् यशस्वी राजा सत्यकर्मा हुआ, उसी सत्यकर्मा का पुत्र सूत अधिरथ हुआ, उसी ने कर्ण का पालन पोषण किया था, इसी से कर्ण को सूत-पुत्र मानते हैं, कर्ण के विषय में जो कुछ कहा जाता है वह सब मैं आप को बतला चुका। इस प्रकार अङ्ग के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजाओं का वर्णन मैंने विस्तार पूर्वक क्रमशः कर दिया, अब इसके उपरान्त पूरु की प्रजाओं का वर्णन सुनिये। ११४—११९॥

---

[१] भवभूति ने उत्तररामचरित्र में रामचन्द्र के पिता महाराज दशरथ की पुत्री को शान्ता माना है, और ऋष्यशृङ्ग को देने की बात भी लिखी है, अन्य स्थानों पर उक्त महाराज दशरथ के रामचन्द्रादि चार पुत्रों ही के होने की कथा आती है, शान्ता की नहीं। इससे मालूम होता है कि शान्ता को उक्त महाराज दशरथ की पुत्री भवभूति ने भ्रान्तिवश माना है? वह इसी दशरथ की पुत्री थी।

Funding by IKS-MoE

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! राजा पूरु का पुत्र महाबाहु जनमेजय हुआ, उसका पुत्र अविद्ध था, जिसने पूर्व दिशा को जीता था। अविद्ध से प्रवीर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका पुत्र मनस्यु था। उस मनस्यु का पुत्र राजा जयद हुआ। जयद का उत्तराधिकारी राजा धुन्धु था, धुन्धु का पुत्र बहुगवी था, जिसका पुत्र संजाति था। संजाति का पुत्र रौद्राश्व था, उसके पुत्रों का वर्णन सुनिये। उस रौद्राश्व के घृताची नामक अप्सरा में दस पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके नामं रजेयु, कृतेयु, कक्षेयु, स्थण्डिलेयु, घृतेयु, जलेयु, स्थलेयु धर्मेयु, संनतेयु और वनेयु थे। इन पुत्रों के अतिरिक्त रौद्राश्व की दस पुत्रियाँ भी थीं, जिनके नाम थे, रुद्रा, शूद्रा, मद्रा, शुभा, जामजजा, तला, खला, गोपजला, ताम्ररसा और रत्नकूटी। इन दसों कन्याओं का एक मात्र स्वामी अत्रिवंशोत्पन्न प्रभाकर था। राजर्षि अनादृष्ट का पुत्र रिवेयु था। उस राजा रिवेयु की पुत्री ज्वलना तक्षक की पुत्री थी। राजर्षि रिवेयु ने ज्वलना में रन्ति नामक पुत्र को उत्पन्न किया। नरपति रन्ति ने सरस्वती नामक अपनी पत्नी में त्रसु, अप्रतिरथ, और ध्रुव नामक परम धार्मिक कल्याण कामनावाले पुत्रों को उत्पन्न किया। उसकी एक मङ्गलदायिनी कन्या गौरी थीं, जो राजा मान्धाता की माता हुईं। राजा अप्रतिरथ का पुत्र धुर्य हुआ, जिसका पुत्र कण्ठ हुआ। उस कण्ठ का पुत्र मेधातिथि था, जिससे काण्ठायन नामक द्विजाति वर्ग की उत्पत्ति हुई। इस····(?) की एक कन्या थी, जिसने अनेक पुत्रों को उत्पन्न किया था। राजा रन्ति के प्रथम पुत्र त्रसु का परमप्रिय पुत्र मलिन था, जो अच्छा ब्रह्मवेत्ता था। उससे उपदानवी ने चारपुत्रों की प्राप्ति की, जिनके नाम थे, सुष्मन्त, दुष्यन्त, प्रवीर और अनघ। इनमें दुष्यन्त का पुत्र नृपतिवर्य भरत चक्रवर्ती सम्राट् हुआ, वह राजा भरत शकुन्तला नामक पत्नी में उत्पन्न हुआ था, उसी के नाम से भारतवर्ष की प्रसिद्धि है। ऐसी प्रसिद्धि है कि राजा दुष्यन्त को अशरीरिणी वाणी (आकाश वाणी) हुई थी—'दुष्यन्त ! पुत्र की माता उसकी केवल रक्षा करनेवाली है, पुत्र पिता का प्रतिनिधि है, पिता ही उसका सब कुछ है, जिससे उसकी उत्पत्ति होती है, वही सब कुछ है, तुम इस बालक के वही पिता हो। यह तुम्हारा ही पुत्र है, इसका पालन पोषण करो, शकुन्तला ने तुमसे सत्य बात कही है। नरदेव ! पिता अपने पुत्र की मृत्यु भय आदि आपत्तियों से रक्षा करता है, तुम्हीं इस गर्भ का आधान करनेवाले हो, शकुन्तला का अपमान मत करो। सम्राट् भरत ने अपनी तीन पत्नियों में नव पुत्रों को उत्पन्न किया था; किन्तु उसने अपने उन समस्त पुत्रों का यह कहकर के अभिनन्दन नहीं किया कि ये सब हमारी प्रतिष्ठा के अनुकूल नहीं है। भरत की ऐसी बातों से पुत्रों की माताओं को बड़ा क्रोध हुआ और आवेश में आकर उन सब पुत्रों को उन्होंने मार डाला, इस प्रकार राजाधिराज भरत की पुत्रोत्पत्ति निष्फल हो गई। तदनन्तर मरुतों ने बृहस्पति के पुत्र भरद्वाज को लाकर राजा भरत को दिया। परम सामर्थ्यशाली भरद्वाज इस प्रकार यज्ञाधिपति मरुतों द्वारा सम्राट् भरत के वंश में संक्रामित हुए। इसी वार्ता के प्रसङ्ग में लोग परम बुद्धिशाली भरद्वाज के जन्म वृत्तान्त की चर्चा करते हैं कि इस प्रकार उनकी (उत्पत्ति में संधि हुई) और इस प्रकार वे मरुतों द्वारा लाकर भरत को समर्पित किये गये। यह प्रसिद्ध बात है कि प्राचीन काल में ऋषिवर अशिज की पत्नी ममता जब आसन्नगर्भा हुईं तब वे तपस्या में निरत हो गये। एकान्त

में अपने बड़े भाई की भार्या को देखकर बृहस्पति ने कहा—'मंगले ! अपने शरीर को विधिवत् अलंकारादि से अलंकृत करके मुझे मैथुन का दान करो।' बृहस्पति के इस प्रकार कहने पर देवी ममता ने कहा, समर्थ ! मैं सम्प्रति गर्भवती हूँ, यह गर्भ भी अब पूर्ण हो चुका है; ब्रह्म (वेद) का उच्चारण करता है, तुम्हारा वीर्य भी निष्फल होने वाला नहीं है, और इस प्रकार व्यभिचार करने पर धर्म की विगर्हणा होगी। ममता के ऐसा कहने पर बृहस्पति हँसते हुए बोले, सुन्दरि ! मुझे तुम किसी प्रकार भी आचार की शिक्षा नहीं दे सकतीं, मैं सब कुछ जानता हूँ। ऐसा कहकर बड़े आनन्द के साथ बृहस्पति ने साहस पूर्वक ममता के साथ मैथुन करने का उपक्रम किया। रति कर्म में आनन्दविभोर बृहस्पति से गर्भस्थ शिशु ने कहा, तात ! बृहस्पते ! मैं यहाँ पहिले ही से सन्निविष्ट हूँ, आपका वीर्य कदापि निष्फल होनेवाला नहीं है, इस संकीर्ण स्थली में दो व्यक्तियों के निवास की सम्भावना नहीं है। गर्भस्थ शिशु के ऐसा कहने पर बृहस्पति को बड़ा क्रोध हो गया। वे बोले, सभी प्राणियों के अभीष्टतम इस सुन्दर अवसर पर तुम मुझे निषेध कर रहे हो, इस कारण वश तुम महान् घोर अन्धकार में प्रवेश करोगे। बृहस्पति के इस कथन के उपरान्त गर्भस्थ शिशु ने अपने दोनों पैरों से माता के योनिद्वार को आवृत कर दिया, किन्तु तिस पर भी बृहस्पति का वीर्य उसके दोनों पैरों के मध्यभाग से अनिवार्य होकर उदर के भीतर चला गया, और एक छोटे शिशु के रूप में उत्पन्न होकर बाहर निकल पड़ा। इस सद्योजात कुमार को देखकर देवी ममता ने कहा, बृहस्पते ! मैं तो अपने निवास को जा रही हूँ, इस द्वाज (जारज) पुत्र की पालना तुम्हें करनी होगी। ऐसा कह कर ममता के चले जाने पर बृहस्पति ने भी उसी क्षण उस पुत्र को छोड़ दिया। 'भरद्वाजम्' (इस जारज शिशु की रक्षा करो) इस कथन के अनुसार वह शिशु भरद्वाज नाम से प्रसिद्ध हुआ। माता और पिता द्वारा छोड़े गये इस छोटे शिशु भरद्वाज को जब मरुद्‌गणों ने देखा, तो उन्हें बड़ी दया आई, वे उसे अपने साथ उठा ले गये। ठीक उसी समय पुत्रप्राप्ति की अभिलाषा से सम्राट् भरत नैमित्तिक एवं काम्य विविध यज्ञों का अनुष्ठान कर रहे थे, सर्वैश्वर्यशाली सम्राट् भरत को जब उन यज्ञों से भी पुत्र की प्राप्ति नहीं हुई तो उन्होंने पुत्रप्राप्ति की कामना से पुनः मरुद् गणों का एवं सोम का यज्ञ प्रारम्भ किया। उस मरुत्सोमात्मक यज्ञ से मरुद्‌गण परम प्रसन्न हुए, और बृहस्पति के वीर्य से समुत्पन्न परम मनीषी उस भरद्वाज नामक पुत्र को उन्होंने भरत को दे दिया। भरद्वाज को पुत्र रूप में प्राप्त कर सम्राट् भरत विनतस्वर में बोले, 'विभो, इस अवसर पर जब कि मेरी सारी सन्ततियाँ मृत्यु को प्राप्त हो गई थीं, आपने पुत्रदान कर मुझे कृतार्थ कर दिया।' सम्राट् भरत की पहली सन्ततियों का जन्म वितथ (असफल) हो चुका था अतः भरद्वाज वितथ नाम से भी प्रसिद्ध हुए। सम्राट् भरत के पालन पोषण के कारण दिव्य विभूति सम्पन्न भरद्वाज ब्राह्मणत्व से क्षत्रियत्व को प्राप्त हुए। वे द्विमुख्यायन एवं द्विपितर नाम से भी प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार उत्तराधिकारी रूप में वितथ को प्राप्त कर सम्राट् भरत स्वर्गगामी हुए। वितथ के उत्तराधिकारी राजा भुवमन्यु हुए, उन भुवमन्यु के महाभूतों के समान महान् पराक्रमशाली चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनके नाम थे बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और गाग्र (गार्ग)। इनमें नर

के सांकृति नामक पुत्र हुए, जिनके गुरुवीर्य और त्रिदेव नामक महान् तेजस्वी पुत्र हुए—ये दोनों पुत्र सांकृत्य के नाम से विख्यात हैं। शिनिवद्ध………? गाग्र के उत्तराधिकारी गाग्र्य के नाम से विख्यात हुए—ये सब क्षत्रियोचित गुण धर्म समन्वित ब्राह्मण कहे जाते हैं। महावीर्य के पुत्र भीम थे, उनसे उपक्षय नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उपक्षय की पुत्री विशाला थी, उसने त्रय्यारुणि, पुष्करी और कपि नामक तीन पुत्रों को उत्पन्न किया, कपि के वंशज केवल उत्तम क्षत्रिय हुए और उन दोनों के महर्षि हुए। गार्ग्य और सांकृति के वंशज परम बलशाली क्षत्रिय थे, वे सब आङ्गिरस बृहस्पति के वंश में मिल गये, अब बृहत्क्षत्र के वंश का वर्णन कर रहा हूँ। बृहत्क्षत्र का उत्तराधिकारी पुत्र परम धार्मिक सुहोत्र था, सुहोत्र का उत्तराधिकारी हस्ती नाम से प्रसिद्ध था। उसी ने प्राचीनकाल में हस्तिनापुर का निर्माण किया था। राजा हस्ती के तीन परम धार्मिक उत्तराधिकारी पुत्र हुए, उनके नाम थे अजमीढ़, द्विजामीढ़ और पुरुमीढ़। अजमीढ़ की कुरुवंश का उद्धार करनेवाली परम सुन्दरी नीलिनी, केशिनी और धूमिनी नामक पत्नियाँ थीं, उन सबों से अजमीढ़ के वंशोद्धारक कई पुत्र उत्पन्न हुए। महान् तपस्या के उपरान्त राजा अजमीढ़ को वृद्धावस्था में भरद्वाज की अनुकम्पा से इन पुत्रों की प्राप्ति हुई थी। उनके वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन सुनिये। ऐसी प्रसिद्धि है कि केशिनी में राजा अजमीढ़ के कण्ठ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। कण्ठ का पुत्र मेधातिथि था, उसके वंशज काण्ठ्यायन नामक द्विज कहे जाते हैं। अजमीढ़ की दूसरी पत्नी धूमिनी में राजा बृहद्वसु का जन्म हुआ, बृहद्वसु का पुत्र बृहद्विष्णु हुआ, उसका पुत्र महाबल था, महाबल का पुत्र बृहत्कर्मा था, बृहत्कर्मा का पुत्र राजा बृहद्रथ हुआ। उसका पुत्र विश्वजित् था, विश्वजित् का पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित् के चार लोकविख्यात पुत्र हुए। उनके नाम थे, रुचिराश्व काव्य, दृढ़ धनुर्धारी राम और अवन्तिदेशाधिपति वत्स। इसी राजा वत्स के नाम से सुप्रसिद्ध परिवत्सरों का प्रचलन हुआ। रुचिराश्व का पुत्र महान् यशस्वी पृथुषेण था, पृथुश्रेण का पुत्र पार था, पार से नीप का जन्म हुआ। हमने सुना है कि उस राजा नीप के एक सौ पुत्र थे। जो सब के सब राजा थे, उन सब की नीपगण नाम से ख्याति थी। उन समस्त नीपगणों में वंशोद्धारक परम यशस्वी समर नामक एक पुत्र था, उसने काम्पिल्य के युद्ध में विजय प्राप्त की थी। उस समर के पर, वार और सत्वदश्व—ये तीन पुत्र हुए, तीनों सर्वगुण सम्पन्न थे। इनमें पार का पुत्र वृषु हुआ, वृषु का पुत्र सुकृति नामक हुआ, उसके शुभ कर्मों से सर्वगुण सम्पन्न विभ्राज नामक एक पुत्र हुआ। विभ्राज का उत्तराधिकारी राजा अणुह हुआ। वह परम यशस्वी राजा अणुह शुक का जामाता एवं ऋची का पति था। अणुह का उत्तराधिकारी महान् तपस्वी ब्रह्मदत्त हुआ। उस ब्रह्मदत्त का पुत्र योगसूनु और योगसूनु का पुत्र विष्वक्सेन हुआ। विभ्राज के वंश में होनेवाले ये नृपतिगण अपने सत्कर्मों से इस लोक में परम यश के भाजन हो गये हैं। उस राजा विष्क्सेन का पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका उत्तराधिकारी भल्लाट हुआ, जिसने राजा का संहार कर दिया। भल्लाट का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय हुआ, इसी के बैर के कारण उग्रायुध ने समस्त नीपवंशियों का विध्वंस कर डाला था। ॥१२०-१८२॥

ऋषियों ने पूछा:—सूत जी! यह उग्रायुध किसका पुत्र था? किस वंश में इसकी

Funding by IKS-MoE

उत्पत्ति कही जाती है ? इसने किसलिए समस्त नीपवंशी राजाओं का विध्वंस किया था ? । ॥ १८३ । ॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! द्विमीढ़ का उत्तराधिकारी विद्वान् राजा यवीनर हुआ । उसका पुत्र धृतिमान् था । धृतिमान् का पुत्र सत्यधृति था । सत्यधृति का पुत्र परम प्रतापशाली राजा दृढ़नेमि था । दृढ़नेमि का पुत्र राजा सुवर्मा था । सुवर्मा का पुत्र सार्वभौम परमप्रतापशाली राजा था, अपने समय का समस्त भूमण्डल का एकच्छत्र सम्राट् था । उसकी ख्याति ही सार्वभौम नाम से थी । उस राजा सार्वभौम के महान् वंश में महत्पौरवनन्दन नामक एक राजा हुआ, जिसका पुत्र रुक्मरथ कहा जाता है । रुक्मरथ का पुत्र राजा सुपार्श्व हुआ, उस सुपार्श्व का परम धार्मिक पुत्र राजा सुमति था । सुमति का पुत्र धर्मात्मा राजा सन्नतिमान् परम ऐश्वर्यशाली था । उसका सनति नामक एक पुत्र था, उस सनति का पुत्र कृत था, वह राजा कृत कौथुमीशाखाध्यायी महात्मा हिरण्यनाभि का शिष्य था, यह चौबीस प्रकार की सामसंहिताओं का प्रवक्ता था । उसके द्वारा निर्मित संहिताओं की ख्याति सामगान करनेवाले प्राच्य नाम से करते हैं । उसी राजा कृत का पुत्र उग्रायुध था, यह पुरुवंशियों को आनन्दित करनेवाला राजा उग्रायुध परम वीर था । इसी राजा उग्रायुध ने अपने विक्रम की ख्याति करते हुए पञ्चाल देशाधिपति राजा पृषत् के पितामह महाबाहु नील का संहार किया था । उग्रायुध का उत्तराधिकारी महान् यशस्वी राजा क्षेम हुआ उस क्षेम से सुवीर नामक पुत्र का जन्म हुआ, सुवीर का पुत्र राजा नृपञ्जय हुआ । नृपञ्जय से वीररथ की उत्पत्ति हुई—यही सब पुरुवंशी राजा कहे गये हैं । ॥ १८४—१९३ ॥

अजमीढ़ की नीलिनी नामक पत्नी में राजा नील की उत्पत्ति हुई, नील की विकट तपस्या के फलस्वरूप सुशान्ति नामक पुत्र का जन्म हुआ, सुशान्ति का पुत्र पुरुजानु हुआ, पुरुजानु का पुत्र रिक्ष था । उस रिक्ष के अनेक उत्तराधिकारी पुत्र हुए, उनके नाम थे, मुद्गल, सृञ्जय, बृहदिषु, यवीयान् और काम्पिल्य । पाँचों पुत्रों की सुरक्षा के लिये पिता ने इनसे बतलाया था कि तुम पाँचों के लिए ये पाँच सुन्दर एवं उपजाऊ जनपद हैं, इन्हें जान लो, उन पाँचों पुत्रों के भरण पोषण के लिए वे पाँच जनपद पर्याप्त थे । उन पाँचों जनपदों की कालान्तर में पञ्चाल नाम से ख्याति हुई ।मुद्गल के वंशज क्षत्रिय गुणधर्म समन्वित द्विज हुए ।ये सब कण्ठ और मुद्गल के बंशज आंगिरस गोत्र में सम्मिलित हो गये । मुद्गल का ज्येष्ठ पुत्र महान् यशस्वी ब्रह्मिष्ठ था । उसके संयोग से इन्द्रसेना ने वध्यश्व नामक पुत्र को जन्म दिया । हमने ऐसा सुना है कि मेनका ने इसी राजा वध्यश्व के समागम से एक जुड़वाँ सन्तानें उत्पन्न की थीं । जिनमें एक राजर्षि दिवोदास थे, दूसरी परम यशस्विनी अहल्या थीं । अहल्या ने शारद्वत के संयोग से ऋषिबर शतानन्द को पुत्ररूप में प्राप्त किया । शतानन्द के महान् यशस्वी सत्यधृति नामक पुत्र हुआ, जो धनुर्वेद में परम पारङ्गत था । एक वार सम्मुख आती हुई किसी अप्सरा को देखकर सत्यधृति का शुक्र सरपतों के गुल्म में गिर पड़ा, जिससे एक जुड़वाँ सन्तानें उत्पन्न हुईं । संयोगवश राजा शन्तनु मृगया खेलते हुए वहाँ पहुँचे और उन्होंने कृपा करके उन बच्चों को उठा लिया और अपने घर लाकर उनका पालन पोषण किया । इसी कारण उन दोनों के नाम कृपा और कृपी रखे गये, उसी कृपी का

दूसरा नाम गौतमी भी था। शारद्वत कहे जाने वाले गौतमवंशीय ऋतथ्यों का यह वंशवर्णन कर चुका। अब इसके उपरान्त दिवोदास की सन्ततियों का वर्णन कर रहा हूँ। दिवोदास का उत्तराधिकारी ब्रह्मपरायण राजा मित्रयु था। उससे मैत्रेय की उत्पत्ति हुई—मैत्रेय के वंश में उत्पन्न होनेवाले भी क्षत्रियगुण धर्म समन्वित द्विजाति कहलाये—और उन सबों का गोत्र भार्गव रहा। तदनन्तर उसी वंश में विद्वान् राजा च्यवन का जन्म हुआ, जिसके रथ की समानता कोई अन्य राजा नहीं कर सकता था। च्यवन से परम बुद्धिमान् राजा सुदास की उत्पत्ति हुई, सुदास का पुत्र सहदेव हुआ, सहदेव का पुत्र सोमक था। वंश के विनाश समुपस्थित होने पर राजा अजमीढ़ ही सोमक के रूप में उत्पन्न हुये थे। सोमक का पुत्र जन्तु था, उसके मारे जाने पर उस महान् पराक्रमशाली एवं धर्मात्मा सोमक रूपधारी राजा अजमीढ़ के अन्य सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें सबसे छोटा पृषत् था, यह पृषत् राजा द्रुपद का पिता था। अर्थात् पृषत् का पुत्र द्रुपद था। द्रुपद का पुत्र धृष्टद्युम्न हुआ, धृष्टद्युम्न का पुत्र धृष्टकेतु था। राजा अजमीढ़ की तीसरी रानी धूमिनी को पहले कोई सन्तान नहीं थी, सन्तान की उत्कट आकांक्षा से उसने इस पुनर्जन्म में सौ वर्षों तक परम कठोर तपस्या की, हवन किया, रात भर जागरण किया, पवित्र कर्मों में निरत रह कर स्वल्पाहार किया, रात दिन कुशासन पर बैठती रही—उसी पर सोती रही—इस प्रकार उसने महान् तपस्या की। तपस्या करते करते वह काली पड़ गई, उसमें परम वीर्यशाली राजा अजमीढ़ ने गर्भाधान किया, जिससे ऋक्ष नामक पुत्र का जन्म हुआ, यह ऋक्ष देखने में धूएँ के समान कृष्णवर्ण का था, इसका एक छोटा भाई सित भी था। ऋक्ष से सम्वरण की उत्पत्ति हुई, सम्वरण से कुरु उत्पन्न हुआ। महान् तेजस्वी इस कुरु ने अपने चरणों से प्रयाग को आक्रान्त कर नवीन तीर्थ कुरुक्षेत्र का निर्माण किया था। बहुत वर्षों तक उसने कुरुक्षेत्र को जोता था! कुरुक्षेत्र के जोतते समय इन्द्र ने वरदान दिया था कि तुम्हारा यह क्षेत्र परम रमणीय, पुण्यप्रद एवं धर्मात्माओं के निवास करने योग्य है। उस राजा कुरु के वंश में उत्पन्न होनेवाले कुरुगणों के नाम से ख्यात हुए, वे सब अपने समय के यशस्वी राजा थे। कुरु के परम प्रिय पुत्र सुधन्वा, जह्नु, परीक्षित, पुत्रक और अरिमर्दन थे। इनमें सुधन्वा के उत्तराधिकारी परम बुद्धिमान् सुहोत्र थे। सुहोत्र का पुत्र धमार्थवेत्ता राजा च्यवन था, च्यवन का पुत्र कृत हुआ, यह कृत महान् तपस्वी राजा था, इसने विवध यज्ञों का अनुष्ठान करके इन्द्र के मित्र, परम विख्यात, आकाशचारी वसुनाम से विख्यात विद्योपरिचर नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उस विद्योपरिचर से गिरिका ने सात पुत्र उत्पन्न किये। जिनमें एक महारथी मगधसम्राट् राजा बृहद्रथ था। उसके अतिरिक्त, प्रत्यग्रह, कुश, मणिवाहन, माथैल्य, ललित्थ और मत्स्यकाल नामक अन्य छः पुत्र भी थे। बृहद्रथ का उत्तराधिकारी परम विख्यात राजा कुशाग्र हुआ। उस कुशाग्र का पुत्र परम बलवान् ऋषभ था। ऋषभ का उत्तराधिकारी परम धार्मिक पुष्पवान था, जिसका योग्य उत्तराधिकारी विक्रमशाली राजा सत्यहित कहा जाता है। उस राजा सत्यहित का पुत्र सुधन्वा था, उससे प्रतापशाली ऊर्ज का जन्म हुआ, ऊर्ज का पुत्र राजा नभस था, उस नभस से परमबलशाली उस राजा का जन्म हुआ, जिसके जन्म के पहिले

Funding by IKS-MoE

दो टुकड़े उत्पन्न हुए थे, जरा नामक राक्षसी ने उन दोनों टुकड़ों को आपस में जोड़ दिया था, अर्थात् वह परम बलशाली पुत्र महाबाहु जरासंध था, जरा से संधित होने के कारण उसका यह नाम विख्यात था। महाबलशाली यह राजा जरासन्ध अपने समय के समस्त क्षत्रियों को पराजित करनेवाला था। उस जरासंध का पुत्र प्रतापशाली सहदेव था। सहदेव का पुत्र महान् तपस्वी श्रीमान राजा सोमाधि था, उस सोमाधि का पुत्र श्रुतश्रवा हुआ--मगधवंशीय राजाओं का वर्णन कर चुका ।॥ १९४—२२८ ॥

सूतबोले:- ऋषिवृन्द ! परीक्षित का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था। उस राजा जनमेजय का पुत्र पृथ्वीपति सुरथ हुआ। सुरथ का पुत्र भी भीमसेन नाम से विख्यात हुआ। जह्नु ने भी एक सुरथ नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो अपने समय में पृथ्वीपति था। उस सुरथ का उत्तराधिकारी राजा विदूरथ जन्मा। विदूरथ का पुत्र भी सार्वभौम नाम से विख्यात हुआ। सार्वभौम से जयत्सेन की उत्पत्ति हुई, जयत्सेन का पुत्र आराधि हुआ। आराधि से महासत्त्व की उत्पत्ति हुई, महासत्त्व से अयुतायु ने जन्म धारण किया। अयुतायु का पुत्र राजा अक्रोधन हुआ, उससे राजा देवातिथि की उत्पत्ति सुनी जाती है। देवातिथि का उत्तराधिकारी राजा ऋक्ष हुआ। ऋक्ष से भीमसेन का जन्म हुआ, उस भीमसेन का पुत्र राजा दिलीप था। दिलीप का पुत्र प्रतिप था, उसके तीन पुत्र कहे जाते हैं। उनके नाम हैं, देवापि, शन्तनु और वाह्लीक। वाह्लीक का पुत्र राजा सप्तवाह्लीश्वर को जानना चाहिये, यह महान् यशस्वी सोमदत्त वाह्लीक का पुत्र था। सोमदत्त से भूरि, भूरिश्रवा और शल नामक पुत्रों की उत्पत्ति हुई। देवापि धर्मतत्त्व के अनुसंधान के लिए वन को चला गया था। वहाँ जाकर वह मुनिवेश धारण कर देवताओं का उपाध्याय हुआ। महात्मा देवापि के च्यवन और इष्टक नामक पुत्र हुए, शन्तनु परम विद्वान् एवं महाभिष (बहुत बड़े वैद्य) थे, वही राजा हुए। महान् भिषक् शन्तनु के सम्बन्ध में लोग एक श्लोक कहा करते हैं, उसका आशय इस प्रकार है, कि जिस-जिस वृद्ध मनुष्य का वह राजा स्पर्श करता था, वह पुनः युवा हो जाता था, इसी कारण से उसका नाम शन्तनु कहा जाता है। सर्व साधारण प्रजा में वह शन्तनु नाम से ही विख्यात था। उस परम धर्मात्मा राजा शन्तनु ने जाह्नवी के साथ विवाह किया था। परम ऐश्वर्यशाली शन्तनु ने जाह्नवी में देवव्रत नामक पुत्र उत्पन्न किया, वह देवव्रत भीष्म नाम से विख्यात हुए, समस्त पाण्डवों के वे पितामह थे। उसी समय राजा शन्तनु की दूसरी पत्नी दासेयी ने विचित्र वीर्य नामक पुत्र को उत्पन्न किया था, जो परम प्रभावशाली, प्रजाहितैषी एवं शन्तनु को परमप्रिय था। राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्र (पत्नी) में कृष्णद्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नामक पुत्रों को उत्पन्न किया। इनमें धृतराष्ट्र के संयोग से गान्धारी ने सौ पुत्रों को उत्पन्न किया। उन सौ पुत्रों में सबसे ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन था, अपने समय का वह समस्त क्षत्रिय जाति का स्वामी था। पाण्डु की माद्री और पृथा नामक दो स्त्रियाँ थीं। पाण्डु के लिए विभिन्न देवताओं से दिये गये पुत्र उन दोनों रानियों में उत्पन्न हुए। धर्म से युधिष्ठिर का जन्म हुआ, वायु से वृकोदर भीम की उत्पत्ति हुई, इन्द्र से धनंजय का जन्म हुआ, जो इन्द्र के समान ही पराक्रमशाली था, दोनों अश्विनीकुमारों के संयोग से माद्री के नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र हुए।

पाँचों पाण्डुपुत्रों के संयोग से द्रोपदी में भी पाँच ही पुत्र उत्पन्न हुए। द्रौपदी ने सबसे बड़े पुत्र प्रतिविन्ध्य को युधिष्ठिर के संयोग से उत्पन्न किया था। हिडम्बा ने भीमसेन के संयोग से घटोत्कच नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। दूसरी पत्नी काश्या ने भीमसेन से सर्ववृक नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। मद्र देश की राजकन्या विजया ने सुहोत्र नामक पुत्र को उत्पन्न किया था। चेदिदेश की राजपुत्री कर्मरती ने नकुल से नरमित्र नामक पुत्र उत्पन्न किया था। पार्थ के संयोग से सुभद्रा में महारथी अभिमन्यु ने जन्म धारण किया था। विराट पुत्री उत्तरा में अभिमन्यु से परीक्षित नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था। परीक्षित का उत्तराधिकारी राजा जनमेजय था। राजा जनमेजय ने वाजसनेय यज्ञ की प्रतिष्ठा करनेवाले ब्राह्मणों की मर्यादा स्थिर की थी। वैशम्पायन ने उनके इस कार्य को सहन नहीं किया, और अमर्ष में भरकर बोले, दुर्बुद्धे! तुम्हारी यह मर्यादा पृथ्वी पर स्थिर न रह सकेगी, जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक तो उसकी प्रशंसा नहीं हो सकती। चारों ओर से संकटापन्न होकर जनमेजय ने पौर्णमास नामक यज्ञ का अनुष्ठान किया, और इसमें प्रजापति देव को हवि देकर सन्तुष्ट किया, मख में सर्वैश्वर्यशाली प्रजापति के निमित्त यज्ञ करने पर भी उनकी स्थिति वैसी ही रही। यह देखकर पुनः पुरुवंशी परीक्षितपुत्र राजा जनमेजय ने दो अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया, और उसमें अपने द्वारा प्रतिष्ठित वाजसेनय का प्रवर्तन किया, इसमें उन्हें तीन स्थानों पर पराजित होना पड़ा। सर्वप्रथम अश्वक मुख्यों के यहाँ, फिर अङ्ग देशवासियों के यहाँ फिर मध्यदेश निवासियों के यहाँ—इस प्रकार जनमेजय को तीन बार पराजित होना पड़ा। इससे उसे बड़ा विषाद हुआ, फलस्वरूप ब्राह्मणों के साथ निन्दा का पात्र होकर वह विनाश को प्राप्त हुआ। राजा जनमेजय का पुत्र शतानीक था, जो परम बलशाली, सत्यवादी तथा विक्रमी था। ब्राह्मणों ने जनमेजय की मृत्यु के बाद उसके स्थान पर शतानीक का अभिषेक किया। शतानीक का पुत्र परम बलशाली अश्वमेधदत्त हुआ। अश्वमेधदत्त से शत्रुओं के दुर्गों को जीतनेवाले अधिसामकृष्ण नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। ऋषिवृन्द! यही परम धर्मात्मा राजा सम्प्रति राज्य कर रहा है। उसी के राज्यकाल में आप लोगों ने इस परम दुर्लभ तीन वर्ष चलनेवाले दीर्घसत्र का अनुष्ठान प्रारंभ किया है, इसके अतिरिक्त दृषद्वती के तट प्रान्त पर कुरुक्षेत्र में भी दो वर्ष व्यापी एक दीर्घसत्र चल रहा है। ॥२९–२५९॥

ऋषिगण बोले: —महामति सूत जी! आप भूतकालीन राजाओं का वर्णन तो कर चुके, अब हम लोग भविष्य में उत्पन्न होनेवाले राजाओं के साथ उनकी प्रजाओं का वर्णन सुनना चाहते हैं। भविष्य में उत्पन्न होकर वे लोग जिन नवीन विधानों का प्रवर्तन करेंगे, उनके जो नाम होंगे, उन्हें उनके शासन काल की गणना के साथ बतलाइये। उस समय में से उत्पन्न होनेवाली प्रजाओं के सुख दुःख, गुण दोष, युगप्रमाण उनके धर्मार्थ काम सम्बन्धी विचारों को हम लोग सुनना चाहते हैं, यथार्थतः बतलाइये। मुनियों द्वारा इस प्रकार पूछे जाने पर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ सूत जी ने इन प्रश्नों के विषय में जैसा कुछ देखा था, जैसा सुना था, कहना प्रारम्भ किया। ॥२६०–२६३॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! अद्भुत कर्म शील व्यास जी ने इस विषय में मुझसे जो कुछ

बतलाया है, उसे मैं बतला रहा हूँ। भविष्य में जिस प्रकार कलियुग आयेगा, जितने मन्वन्तर होंगे, जितने राजा लोग उत्पन्न होंगे, मैं उन सब का वर्णन अब कर रहा हूँ। उन ऐल वंशीय, इक्ष्वाकु वंशीय तथा सौद्युम्नवंशीय राजाओं का वर्णन करूँगा, जिनके वंशजों पर इन सर्वकल्याणकारी इक्ष्वाकुवंशियों का एक मात्र प्रभाव होगा। भविष्य में कहे जानेवाले समस्त राजाओं का वर्णन करूँगा, अन्य सामान्य राजा लोग भी उत्पन्न होंगे उन्हें भी बतलाऊँगा। उन सब के अतिरिक्त क्षत्र, पारशव, शूद्र, अन्यान्य द्विजातिवर्ग, अन्ध्र, शक, पुलिन्द, तूलिका यवन, कैवर्त, आभीर, शबर प्रभृति अन्यान्य म्लेच्छ जातियों का वर्णन भी करूँगा, तथा उस समय में जो राजा लोग होंगे, उनके नाम एवं शासनकाल का भी वर्णन करूँगा। सम्प्रति अधिसामकृष्ण नामक राजा राज्य कर रहा है, उसकी उत्पत्ति विख्यात पौरव वंश से है, उसके वंश में उत्पन्न होनेवाले भविष्यत्कालीन राजाओं का वर्णन सर्वप्रथम कर रहा हूँ। इस राजा अधिसामकृष्ण का पुत्र[1] निर्वक्त्र होगा, गंगा द्वारा हस्तिनापुर (?) के डुबा देने पर वह उसे छोड़ कर अपनी राजधानी कौशाम्बी में बनायेगा, और वहीं पर निवास करेगा। राजा निर्वक्त्र को उष्णनामक एक पुत्र होगा। उष्ण से चित्ररथ नामक पुत्र की उत्पत्ति होगी। चित्ररथ से शुचिद्रथ की उत्पत्ति होगी। शुचिद्रथ से परम धैर्यशाली, महान् यशस्वी एवं बलशाली सुषेण की उत्पत्ति होगी। उस राजा सुषेण से सुतीर्थ नामक राजा का जन्म होगा। सुतीर्थ से रुच होगा, रुच से त्रिचक्ष होगा, त्रिचक्ष का उत्तराधिकारी राजा सुखीबल होगा। सुखीबल का पुत्र राजा परिप्लुत होगा, परिप्लुत का पुत्र राजा सुनय होगा। सुनय का पुत्र नरपति मेधावी होगा, मेधावी का पुत्र दण्डपाणि होगा। दण्डपाणि से निरामित्र और निरामित्र से क्षेमक होगा। ये पच्चीस नृपतिगण भविष्यत्काल में इस वंश में उत्पन्न होंगें। प्राचीन कथाओं के जाननेवाले ब्राह्मण लोग इस वंश के विषय में एक श्लोक का गान करते हैं। उसका तात्पर्य बतला रहा हूँ, जो वंश ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों का उत्पत्ति स्थान था, जिस वंश का देवता तथा ऋषिगण सत्कार करते थे, वह पौरववंश कलियुग में क्षेमक नामक राजा के बाद समाप्त हो जायगा। पौरववंश का वृत्तान्त, जैसा कुछ कहा जाता है आप लोगों को बतला चुका। पाण्डुपुत्र महान् बलशाली अर्जुन का विख्यात पौरववंश समाप्त हो गया। अब इसके उपरान्त महान्बलशाली इक्ष्वाकुवंशी राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ। बृहद्रथ का उत्तराधिकारी वीर राजा बृहत्क्षय था। उसका पुत्र क्षय हुआ, क्षय से वत्सव्यूह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, वत्सव्यूह से प्रतिव्यूह नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई, उसका पुत्र दिवाकर हुआ। यह राजा दिवाकर सम्प्रति अयोध्या नगरी का राजा है। दिवाकर का पुत्र महान् यशस्वी सहदेव होगा, सहदेव का उत्तराधिकारी बृहदश्व होगा। बृहदश्व का पुत्र भानुरथ होगा। उसका पुत्र प्रतीताश्व होगा। प्रतीताश्व का पुत्र सुप्रतीक होगा। सुप्रतीत का पुत्र सहदेव होगा, उसका पुत्र सुनक्षत्र होगा। सुनक्षत्र से परम तपस्वी किन्नर नामक पुत्र होगा। किन्नर का पुत्र अन्तरिक्ष अपने समय का महान् राजा होगा। अन्तरिक्ष से सुपर्ण और सुपर्ण

---

[1] मत्स्यपुराण में इनका नाम विवक्षु रखा गया है।

से अमित्रजित् नामक पुत्र होगा। अमित्रजित् का पुत्र भरद्वाज होगा, उसका पुत्र धर्मी नाम से स्मरण किया जायगा। धर्मी का पुत्र कृतञ्जय होगा, कृतञ्जय का पुत्र व्रात और व्रात का पुत्र रणञ्जय होगा। रणञ्जय से परम वीर पुत्र सञ्जय की उत्पत्ति होगी। सञ्जय का पुत्र शाक्य और शाक्य से शुद्धोदन नामक पुत्र उत्पन्न होगा। शाक्यवंश में शुद्धोदन का पुत्र राहुल होगा। राहुल से प्रसेनजित् और प्रसेनजित् से क्षुद्र नामक पुत्र होगा। क्षुद्रक के क्षुलिक और क्षुलिक से सुरथ नामक पुत्र उत्पन्न होगा। सुरथ का पुत्र सुमित्र इस वंश का अन्तिम राजा होगा। कलियुग में ये उपर्युक्त इक्ष्वाकुवंशीय राजा लोग कहे गये हैं, वृहद्बल के वंश में कलियुग में इतने ही राजा उत्पन्न होंगे, ये सब शूरवीर, विद्वान् सत्यप्रतिज्ञ और जितेन्द्रिय राजा होंगे। भविष्य की कथाओं के जाननेवाले विद्वान्गण इस इक्ष्वाकुवंश के विषय में एक श्लोक गाते हैं, इसका तात्पर्य इस प्रकार है, इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की परम्परा राजा सुमित्र तक चलेगी, कलियुग में सुमित्र राजा के अनन्तर इस वंश की समाप्ति हो जायगी। मनुपुत्र राजा इला के वंश में उत्पन्न होनेवाले क्षत्रिय राजाओं का वर्णन कर चुका। अब इसके अनन्तर मगधदेशीय वृहद्रथ के वंश में उत्पन्न होनेवाले राजाओं का वर्णन कर रहा हूँ। जरासंध एवं सहदेव के वंश में भूतकालीन, वर्तमानकालीन एवं भविष्यकालीन जो राजा गण उत्पन्न हो गये हैं, वर्तमान हैं, एवं उत्पन्न होंगे, मुख्यतः उन सबों का वर्णन आप लोगों से कर रहा हूँ, सुनिये। उस विख्यात महाभारत में सहदेव का संहार हो गया था, उसका पुत्र राजर्षि सोमाधि था, वह गिरिव्रज का शासक था। उसने अठावन वर्षों तक राज्य किया। उसका पुत्र श्रुतश्रवा था, जिसने चौंसठ वर्षों तक राज्य किया। तदनन्तर अयुतायु नामक राजा हुआ, जिसने छब्बीस वर्षों तक राज्य किया। उसके बाद राजा निरामित्र हुआ, जो सौ वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करने के उपरान्त स्वर्गगामी हुआ। तदनन्तर सुकृत ने छप्पन वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया, फिर वृहत्कर्मा नामक राजा हुआ, उसने तेईस वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य किया। इस समय उस वंश का सेनाजित् नामक राजा राज्य कर रहा है, उसका पुत्र श्रुतञ्जय चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर महान् बलशाली, परम बुद्धिमान् पराक्रमशील महाबल नामक राजा होगा जो पैंतीस वर्षों तक पृथ्वी पर शासन करेगा। उसके उपरान्त शुचि नामक एक राजा अट्ठावन वर्षों तक राज्य पद पर प्रतिष्ठित होगा। फिर क्षेम नामक राजा अट्ठाईस वर्षों तक राजा होगा। तदनन्तर बलशाली सुव्रत नामक राजा चौंसठ वर्षों के लिए राजा होगा। फिर राजा धर्मक्षेत्र पाँच वर्षों के लिए होगा। तदुपरान्त नृपति अट्ठावन वर्ष के लिए पृथ्वी का उपभोग करेगा। फिर राजा सुव्रत का अड़तीस वर्ष के लिए राज्य होगा। तदनन्तर राजा दृढ़सेन अट्ठावन वर्षों तक राजा होगा। उसके बाद सुमति तैंतीस वर्ष के लिये राज्य पद प्राप्त करेगा। फिर सुचल नामक राजा बाईस वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेगा। उसके उपरान्त राजा सुनेत्र चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर सत्यजित् तिरासी वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। फिर राजा वीरजित् इस पृथ्वी पर आकर तैंतीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदुपरान्त राजा अरिञ्जय पचास वर्षों तक राज्य करेगा।

वृहद्रथ के उपरान्त ये बाईस राजा लोग पृथ्वी पर राज्य करेंगे। उनका शासनकाल पूरे एक सहस्र वर्ष का होगा। वृहद्रथ वंशीय राजाओं के राज्यकाल के उपरान्त वीतिहोत्र वंशीय राजाओं का राज्य जिस समय रहेगा, उस समय समस्त क्षत्रिय जाति के देखते देखते मुनिक नामक एक राज्य कर्मचारी प्रद्योत नामक अपने स्वामी का अपने पराक्रम से संहार कर पुत्र का राज्याभिषेक करेगा। वह नवीन राजा किसी प्रकार का अनैतिक कार्य नहीं करेगा। सभी सामन्त लोग उसके सम्मुख प्रणत होंगे। इस प्रकार वह नरश्रेष्ठ तेईस वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद पालक नामक राजा चौबीस वर्षों तक राज्य करेगा। फिर विसाखयूप नामक राजा होगा, वह पचास वर्षों तक राज्य करेगा। फिर अजक नामक राजा का इकतीस वर्षों तक राज्य होगा। तदनन्तर उसका पुत्र वर्तिवर्धन बीस वर्षों तक राज्य करेगा। प्रद्योत के उपर्युक्त पाँच वंशज राजा लोग इस प्रकार एक सौ अड़तीस (१३८) वर्षों तक राज्य करेंगे। तदनन्तर उन सब के यश को समूलतःनष्ट करके शिशुनाक नामक राजा होगा। सर्वप्रथम यह गिरिव्रज प्रदेश का राजा होगा, तत्पश्चात् इसका पुत्र वाराणसी का राजा होगा। शिशुनाक चालीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र शकवर्ण छत्तीस वर्ष तक राज्य करेगा। उसके उपरान्त राजा क्षेमवर्मा बीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद राजा अजातशत्रु पच्चीस वर्षों तक राज्य करेगा। तदनन्तर क्षत्रौजा नामक राजा चालीस वर्षों के लिए राज्य पद प्राप्त करेगा। उसके बाद राजा विविसार अठाईस वर्षों तक राज्य करेगा। फिर दर्शक नामक राजा पच्चीस वर्ष तक राज्य करेगा। तदुपरान्त उदायी तामक राजा तैंतीस वर्षों तक राज्य करेगा। वह राजा उदायी पृथ्वी मण्डल में कुसुम नाम से विख्यात, परम रमणीय नगर में गंगा के दाहिने तट पर अपने शासन काल के चतुर्थ वर्ष में अपना निवास-स्थान निर्मित करेगा। उसके बाद राजा नन्दिवर्धन बयालीस वर्षों तक राज्य पद का उपभोग-करेगा। फिर महानन्दी नामक राजा तैंतालीस वर्षों तक राज्य करेगा। ये उपर्युक्त दस राजा शिशुनाक वंश में उत्पन्न होंगे—ये सब कुल मिलाकर तीन सौ बासठ वर्षों तक राज्य करेंगे। इन शिशुनाकवंशी राजाओं के राजत्वकाल में अन्यान्य क्षत्रिय जाति के राजा लोग भी होंगे। जिनमें इक्ष्वाकुवंशीय चौबीस, पंचालवंशीय पच्चीस, कालक चौबीस, हैहय चोबीस, कलिङ्ग देशीय बत्तीस, शक पच्चीस, कुरुदेशीय छत्तीस, मिथिलादेशीय अट्ठाईस, शूरसेन के तेईस, वीतिहोत्र के बीस उल्लेखनीय हैं। इन सबका शासनकाल एक ही समय में होगा। समस्त क्षत्रियवंशीय राजाओं के बाद महापद्म से शूद्रयोनि में उत्पन्न कन्या से उत्पन्न महापद्म नामक एक पुत्र होगा। उसी के राजत्वकाल में प्रायः सभी राजा लोग शूद्र योनि में उत्पन्न होनेवाले होंगे। वह महापद्म अपने समय का एकच्छत्र सम्राट होगा। वह अट्ठाईस वर्षों तक पृथ्वी का पालन करेगा। भवितव्यता की बलवत्ता से वह महापद्म समस्त क्षत्रिय राजाओं का गर्वहरण करने वाला होगा। उसके एक सहस्र पुत्र होंगे, जिनमें बारह राजा होंगे, उन सब का राजत्वकाल केवल आठवर्षों का होगा। महापद्म के बाद वे सब क्रम क्रम से शासनाधिरूढ़ होंगे। उन सब को कौटिल्य निर्मूल कर देंगे। महापद्मवंश का अन्तिम

राजा सौ वर्षों तक पृथ्वी का शासन करेगा। कौटिल्य उसे अपदस्थ कर चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर प्रतिष्ठित करेंगे। वह चन्द्रगुप्त चौबीस वर्षों के लिए राजा होगा। उसके बाद भद्रसार पच्चीस वर्ष तक राजा होगा। फिर अशोक नामक राजा मनुष्यों में (छत्तीस) वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र कुणाल आठ वर्ष राज्य करेगा। इन्द्रपालित कुणाल का पुत्र बन्धुपालित आठ वर्षों तक राज्यपद पर समासीन होगा। बन्धुपालित का उत्तराधिकारी दस वर्ष के लिये राजा होगा। फिर नराधिपति देववर्मा सात वर्ष के लिए राजा होगा। तदुपरान्त उसका पुत्र राजा शतधर आठ वर्ष राज्य करेगा। पश्चात् राजा बृहदश्व सात वर्ष राज्य करेगा। ये नन्दवंश के नव राजा पृथ्वी का भोग करेंगे, उन सब का राजत्व-काल कुल मिलाकर एक सौ सैंतीस(?) वर्षों का होगा। इन नन्दवंशीय राजाओं के हाथ से शासन शुङ्गों के हाथ में चला जायगा। अन्तिम राजा बृहदश्व का सेनापति पुष्पमित्र उसको मारकर स्वयं साठ वर्षों तक राज्य करेगा। पुष्पमित्र के आठ पुत्र होंगे, जो सब के सब राजा होंगे। सब से बड़ा पुत्र सात वर्षों तक राज्य पद पर प्रतिष्ठित होगा। फिर वसुमित्र नामक पुत्र दस वर्ष के लिए राजा होगा। फिर अन्धक नामक पुत्र दो वर्ष के लिए राजा होगा। फिर पुलिन्दक तीन वर्ष के लिए और घोषसुत भी तीन वर्ष के लिए राजा बनेंगे। उसके बाद राजा विक्रमित्र भी तीन वर्ष के लिए राजा होगा। तदनन्तर भागवत नामक राजा होगा, जो बत्तीस वर्षों तक राज्य करेगा। फिर उसका पुत्र क्षेमभूमि दस वर्ष तक राजा होगा। उपर्युक्त शुङ्गवंशीय दस राजा इस पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उन सब का राजत्वकाल एक सौ बारह (?) वर्षों (? का होगा। फिर बाल्यकाल से ही व्यसन में निरत रहनेवाले सुदेव नामक राजा के हाथ में शासनशक्ति आयेगी। शृङ्गवंशियों में एक देवभूमि नामक अन्य राजा भी होगा, वह कण्ठायन नाम से नव वर्षों तक राज्य करेगा। उसका पुत्र भूतिमित्र चौबीस वर्षों तक राज्य पद का अधिकारी होगा। उसके बाद राजा नारायण बारह वर्षों के लिए राजा होगा। फिर उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्ष तक राजा होगा। द्विजवृन्द ! ये उपर्युक्त कठोर कर्म करनेवाले चार राजा कण्ठायन नाम से प्रसिद्ध होंगे, इन कण्ठायन नाम से विख्यात राजाओं के राजत्वकाल में सामन्तगण सर्वदा विनम्र रहेंगे, इनका शासनकाल कुल मिलाकर पैंतालीस वर्षों का होगा। इनके उपरान्त आन्ध्रवंशीय राजा होंगे। कण्ठायन उपाधिधारी राजाओं के अन्तिम नरपति सुशर्मा को, तथा शुङ्गवंशीय राजाओं की सेनाओं को युद्धस्थल में पराजित कर अन्ध्रजातीय सिन्धुक नामक एक राजा इस पृथ्वी को प्राप्त करेगा। वह सिन्धुक तेईस वर्षों तक राज्यपद पर प्रतिष्ठित होगा। उसके उपरान्त भात (?) नामक राजा अठारह वर्षों के लिए राजा होगा। उसके बाद उसका पुत्र शातकर्णि अपने समय का एक महान् राजा होगा, वह छप्पन वर्षों तक शासन की बागडोर अपने हाथ में रखेगा। तदनन्तर शातकर्णि का पुत्र राजा आपादवद्ध होगा, वह दस, चौबीस और छः-वर्षों तक राज्य करेगा (?) उसके बाद नेमिकृष्ण पच्चीस वर्ष के लिए राजा बनेगा। तदनन्तर हाल नामक राजा पूरे एक वर्ष के लिए शासनाधिरूढ़ होगा। इस वंश में पाँच सात राजा महाबलवान् होंगे। हाल के बाद पुत्रिकषेण इक्कीस वर्षों तक राज्य करेगा। उसके बाद सातकर्णि नराधिपति होगा, जो पूरे एक वर्ष और छः मास तक राज्य करेगा। तदनन्तर अट्ठाईस वर्ष तक शिवस्वामी नामक एक राजा होगा। फिर

Funding by IKS-MoE

गौतमीपुत्र मनुष्यों में इक्कीस वर्ष तक राज्य करेगा। तदनन्तर सातकर्णी वंशोत्पन्न राजा यज्ञश्री उन्नीस वर्षों के लिए राजा होगा। उसके बाद विजय नामक राजा छः वर्ष तक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र सातकर्णी दण्डश्री तीन वर्ष तक राज्य करेगा। फिर पुलोवा नामक राजा होगा, जो सात वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। इन राजाओं के अतिरिक्त अन्यान्य राजाओं का भी पृथ्वी पर राज्य होगा। उपर्युक्त अन्ध्रवंशीय तेईस राजा होंगे, जो पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उन सब का राजत्वकाल कुल मिलाकर चार सौ ग्यारह वर्ष का होता है। ये अन्ध्रवंशीय रांजा लोग पाँच वंशों में विभक्त हो जायँगे। उनके बाद सत्रह आभीर वंशीय राजाओं का शासनकाल आयेगा, फिर सात गर्दभिन वंशीय और दस शक-वंशीय राजा होंगे। तदनन्तर आठ यवन, चौदह तुषार वंशीय, तेरह मनष्ट, और अट्ठारह मौन वंश में उत्पन्न होनेवाले राजा राज्य करेंगे। आन्ध्र वंशीय राजा लोग तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। शक लोग तीन सौ अस्सी वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। यवन लोग अस्सी वर्षों तक राज्य करेंगे। तुषारवंशीय राजा लोग पाँच सौ वर्षों तक पृथ्वी का राज्य करेंगे। तेरह मरुण्ड वंशीय राजागण अन्य शूद्र जातीय राजाओं के साथ साढ़े चार सौ वर्षों तक पृथ्वी का उपभोग करेंगे। उस समय अनेक म्लेच्छ जातियाँ होंगी। उनमें से ग्यारह म्लेच्छ वंशीय राजागण तीन सौ वर्षों तक राज्य करेंगे। इन राजाओं के बाद कोलिकिल नामक शूद्र जातीय राजाओं का राज्य होगा। उन कोलिकिलों से विन्ध्य शक्ति नामक राजा के हाथ में शासनशक्ति आयेगी। वह छानवें वर्षों तक पृथ्वी पर राज्य करेगा। अब इसके उपरान्त भविष्यत्कालीन शूद्र जातीय विदेशी राजाओं (?) का वर्णन सुनिये। नागराज शेष का पुत्र शत्रुओं के नगरों को जीतनेवाला राजा भोगी, नागकुल में सर्वश्रेष्ठ राजा होगा—यही सर्वप्रथम विदेशी राजा होगा। उसके उपरान्त सदाचन्द्र चन्द्रांशभूत नरववान्, धनधर्मा, विंशज और भूतिनन्द नामक राजा गण भी विदेश में राज्य पद प्राप्त करेंगे। अंगवंशीय राजा नन्द के उपरान्त राजा मधुनन्दि के हाथ में शासनशक्ति जायगी, मधुमन्दि के छोटे भाई का नाम नन्दियशा होगा। इसी नन्दयशा के वंश में तीन राजा उत्पन्न होंगे। उनके नाम दौहित्र, और शिशुक और परम बलशाली प्रवीर होंगे। ये तीनों कुल मिला कर साठ वर्ष तक राज्य करेंगे। इन तीनों में राजा प्रवीर पूर्वकथित राजा विन्ध्यशक्ति का पुत्र होगा। राजा शिशुक पुरी में अन्य दोनों राजा काञ्चनपुरी में राज्य करेंगे। ये तीनों राजा लोग प्रचुर दक्षिणा देकर वाजपेय यज्ञ का अनुष्ठान करेंगे। तदनन्तर प्रवीर के चार पुत्र राज्य पद के अधिकारी होंगे। विन्ध्यक वंशीय राजाओं के परिवार के विनष्ट हो जाने पर सुप्रतीक नभीर आदि तीन बाह्लीक राजा लोग तीस वर्ष तक राज्य पद का उपभोग करेंगे। माहिषी वंशीयों में शक्यमा नामक एक राजा होगा। तदनन्तर पुष्पमित्र और मित्र नामक राजा तेरह वर्ष के लिए राजा होंगे। मेकला में सात उत्तम नरपति गण राज्यासन प्राप्त करेंगे। कुछ महाबलशाली राजा कोमला में राज्य प्रतिष्ठापित करेंगे। तदनन्तर मेघ नाम से विख्यात नव परम बुद्धिशाली राजा होंगे। ये निषधदेशीय समस्त नृपतिगण मन्वन्तर की समाप्ति तक राज्य पद के अधिकारी रहेंगे। इनकी उत्पत्ति नल वंश से होगी, ये सब के सब महान् बलशाली

एवं परम पराक्रमी होंगे । इसके उपरान्त महान् बलशाली मगधदेशीय विश्वस्फानि नामक राजा होगा । उस समय के अन्य नरेशों को समूल नष्ट करके वह अन्यान्य जातिवालों को राज्य पद प्रदान करेगा । जिनमें कैवर्त पञ्चक, पुलिन्द और ब्राह्मणों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । महान् पराक्रमी राजा विश्वस्फानि विभिन्न देशों में इन जाति वालों का राज्य स्थापित करेगा । युद्ध में वह विष्णु के समान बलवान् होगा । ऐसा कहा जाता है कि वह राजा विश्वस्फानि आकृति में नपुंसकों के समान होगा । अपने पराक्रम से क्षत्रिय जाति का विध्वंस करके वह शासन को इतर जातिवालों के अधीन कर देगा । परमबलशाली राजा विश्वस्फानि अपने जीवन में देवताओं, पितरों एवं ब्राह्मणों को एक बार पुनः सन्तुष्ट करके अन्तिम समय में पवित्र जाह्नवी तट पर प्राण त्याग करेगा । अपने भौतिक शरीर को त्याग कर वह इन्द्र लोक प्राप्त करेगा । उसके उपरान्त चम्पावती पुरी में नव नाग वंशीय राजाओं का अधिकार होगा । मथुरापुरी में सात नागवंशीय राजा लोग शासन करेंगे । इसके अनन्तर गंगा के तटवर्ती प्रान्त प्रयाग, साकेत और मगध आदि जनपदों में गुप्तवंशीय राजाओं का अधिकार होगा । निषध, यदुक, शैशीत, कालतोपद आदि जनपदों में मणिधान्य वंशज राजाओं का शासन होगा । कोशल, आन्ध्र, पौण्ड्र, समुद्रसमेत ताम्रलिप्त देवताओं द्वारा सुरक्षित मनोहारिणीं चम्पानगरी—कलिङ्ग, महिष, महेन्द्रनिलय प्रभृति जनपदों में गुहवंशोत्पन्न राजा का राज्य होगा । कनक नामक राजा सौराष्ट्र (स्त्री राष्ट्र) भक्ष्यक आदि जनपदों का शासन होगा । ये सब राजा गण भी उसी एक समय में इन सब स्थानों के शासक होंगे । इनके उपरान्त थोड़े प्रसन्न होनेवाले, मिथ्यावादी, महान् क्रोधी, अधार्मिक प्रवृत्तियों वाले धर्मार्थकाम-सभी ओर से विहीन यवनों का यहाँ पर राज्य होगा । वे यवन राजा गण कभी मूर्धाभिषिक्त नहीं होंगे, युगदोष के कारण वे परम दुराचारी होंगे । कलिके अन्तिम भाग में स्त्री और बालकों का वध करनेवाले वे राजा लोग परस्पर मारकाट मचाकर पृथ्वी पर शासन करेंगे । उन दुराचारी राजाओं के वंश कहीं पर तो अत्यन्त बढ़ जायेंगे और कहीं पर बहुत बढ़ कर विनाश को प्राप्त हो जायेंगे । कालक्रम से पृथ्वी पर ऐसे दुराचारी नृशंस राजाओं का शासन होगा । वे धर्मार्थकाम····त्रिवर्ग से सर्वदा विहीन रहेंगे । प्रत्येक जनपदों में वे म्लेच्छाचार-परायण राजा लोग जा जाकर मिल जायेंगे । परिणाम स्वरूप सब ओर से जनपदों में भी उनके अत्याचारों की धूम मच जायगी । वहाँ जाकर वे सब उलटफेर मचायेंगे, प्रजावर्ग का विनाश करेंगे । लालच में भरे हुए, मिथ्याचारपरायण वे राजा लोग इसी प्रकार सर्वदा पापकर्मों में लगे रहेंगे । कालक्रम से उनके विनाश हो जाने पर देश में स्त्रियों की अधिकता हो जायगी, लोग आयु; सौन्दर्य, बल एवं शास्त्रज्ञान में धीरे धीरे न्यून होते जायेंगे । इस प्रकार क्षीण होते होते प्रजा जब अन्तिम ह्रास की सीमा पर पहुँच जायँगी, तब वे दुराचारी राजा लोग कालक्रम से विनाश को प्राप्त हो जायेंगे । उस समय कल्कि द्वारा ताडित होकर वे अधार्मिक म्लेच्छ सब ओर से विनष्ट हो जायेंगे । पाषण्डों का उच्छेद हो जायगा । इस प्रकार सन्ध्यामात्र जब कलियुग शेष रह जायगा तो नृप शब्द ही नष्ट हो

जायगा, अर्थात् राजाओं का सर्वदा अभाव हो जायगा। कुछ प्रजाएँ शेष रह जायँगी। धर्म के नष्ट हो जाने पर साधनविहीन आपत्तियों की मारी, व्याधि एवं शोक के कारण चिन्ता कुलित, अनावृष्टि तथा परस्पर मारकाट से आतंकित और पीड़ित प्रजाएँ अनाथ हो जायँगी। सब ओर से त्रस्त होकर वे जीविका विहीन हो जायँगी। अत्यन्त दुखित होकर पुर ग्राम एवं नगरों को छोड़कर वन में निवास बनाएँगी। इस प्रकार राजाओं के विनाश होने पर प्रजाएँ अपना घर द्वार छोड़ कर भाग जायँगी। स्नेह भावना नष्ट हो जायगी, आपत्तियों से दलित होकर स्नेहियों तथा सुहृदों को छोड़ देंगी। वर्णाश्रम धर्म का विनास हो जायगा, वे घोर संकर वर्ण हो जायँगी। पर्वतों की गुफाओं और नदियों के एकान्त तटों पर वे निवास करेंगी। घर द्वार छोड़ कर सारी प्रजाएँ समुद्रतट, नदियों, पर्वतों एवं जलीय प्रान्तों में निवासार्थ भाग जायँगी। सारी मानव जाति अपने अपने प्रियदेशों को छोड़कर अङ्ग, कलिङ्ग, बङ्ग' काशमीर, काशी, कोशल, ऋषिक, गिरिद्रोणी प्रभृति प्रान्तों में आश्रम प्राप्त करेंगी। आर्यलोग म्लेच्छों के साथ सारी हिमवान् की पृष्ठभूमि, क्षार समुद्र के तटवर्त्ती प्रान्तों एवं भीषण अरण्यों में मृगों, मत्स्यों पक्षियों एवं अन्यान्य हिंस्र जन्तुओं के साथ साथ मधु, शाक, मूल, फलादि खा-खाकर जीवन यापन करेंगे। वे मुनियों की भाँति वृक्ष के वल्कलों, मृगचर्मों एवं पत्तों के चीर अपने हाथों से बना बना कर धारण करेंगे। निम्न प्रान्तों में अन्न के बीजों का अन्वेषण करते हुए वे लोग काष्ठ और शंकुओं द्वारा जीविका अर्जित करेंगे। बकरी, भेड़, गधे और ऊँटों का यत्नपूर्वक पालन करेंगे। जल के लिए नदियों के किनारे निवास बनाएँगे। राजाओं में परस्पर वैमनस्य का बीज बोएँगे। किन्हीं किन्हीं को सन्तानों की अधिकता हो जायगी, किन्हीं किन्हीं को सन्तानें एकदम न रहेंगी, पवित्रता एवं आचार का स्थान एकदम से उनमें विलुप्त हो जायगा। उस समय अधर्म में पड़ी हुई मानव जाति इस प्रकार की हो जायगी। लोग निकृष्ट से भी निकृष्ट तर अधर्ममय कार्यों में अनुरक्त हो जायेंगे। उस समय तेईस वर्ष से बढ़कर किसी की आयु न होगी। दुर्बलाङ्ग, विषयलोलुप, वृद्धता से दबाए हुए, पत्ते, मूल, फूल, फल का आहार करनेवाले, चीर एवं कृष्ण मृग चर्म के पहिनने बाले वे लोग जीविका के लिये सारी पृथ्वी का भ्रमण करेंगे। कलियुग के अन्त में प्रजाएँ इस प्रकार की विविध आपत्तियों में ग्रस्त हो जायँगी। एक सहस्र वर्षात्मक उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर उस समय की सारी प्रजाएँ भी उसी के साथ सर्वांशतः नष्ट हो जायँगी और इस प्रकार संध्या समेत कलियुग के व्यतीत हो जाने पर कृतयुग की प्रवृत्ति होगी। जिस समय चन्द्रमा, सूर्य, पुष्य और बृहस्पति—ये सब एक राशि पर होंगे, उस समय कृतयुग की प्रवृत्ति होगी। अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन राजाओं के वंशों को क्रमानुसार मैं आप लोगों को बतला चुका राजा परीक्षित् के जन्म से लेकर महापद्म के अभिषेक तक का समय एक सहस्र पचास वर्ष जानना चाहिये। पुराणों के जाननेवाले वैदिकज्ञानसम्पन्न ऋषियों ने महापद्म के शासनकाल से लेकर अन्ध्रों के अन्त तक का काल आठ सौ छत्तीस वर्ष का बतलाया है। सप्तर्षिगण एक-एक नक्षत्र में

एक-एक सौ वर्ष क्रमानुसार अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार समस्त नक्षत्र मण्डल में वे सत्ताईस सौ वर्ष स्थित रहते हैं। पर्यायक्रम से एक-एक नक्षत्र में एक-एक सौ वर्ष की स्थिति का काल उनका एक-एक युग कहलाता है। यह युग दिव्य संख्या से निर्णीत होता है। दिव्य साठ वर्षों तथा सात दिनों का सप्तर्षियों का एक सौ वर्ष होता है। सप्तर्षिगणों के इस प्रकार के गतिक्रम में दिव्यकाल का प्रवर्तन होता है। सप्तर्षिगण प्रथमतः नक्षत्र मण्डल के पूर्व दिशा की ओर पश्चात् उत्तर दिशा की ओर दिखाई पड़ते हैं। तदनन्तर आकाश के मध्यभाग में जो नक्षत्र दिखाई पड़ता है, उसके समानान्तर दिखाई पड़ता है। उसके साथ आकाश में सप्तर्षिगणों को सौ वर्षों तक स्थित जानना चाहिये ? नक्षत्रों एवं ऋषियों के साथ योग होने का यही निदर्शन है। हमारे मत से राजा परीक्षित के राजत्वकाल में सप्तर्षिगण एक सौ वर्ष के लिए मघा नक्षत्र में स्थित होंगे, अन्ध्रवंशीय राजा की समाप्ति के बाद वे चौबीसवें नक्षत्र (शतभिषा) में स्थित रहेंगे। उस समय पृथ्वी पर सारी प्रजाएँ अनेक प्रकार की विपत्तियों में पिस जायँगी। मिथ्याचार परायण होकर धर्मार्थ काम विहीन हो जायँगी। शास्त्रीय श्रौत स्मार्त कर्मों का ह्रास हो जायगा, वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा लुप्त हो जायगी, दुर्बलात्मा मानव अज्ञान में पड़कर संकरवर्ण हो जायँगे। शूद्र लोग द्विजातियों के साथ हिलमिल जायँगे, ब्राह्मण लोग शूद्रों के घर जाकर यज्ञ कराने लगेंगे, शूद्र लोग मन्त्र कर्त्ता बन जायँगे। जीविका के लोभ से ब्राह्मण उन शूद्रों की उपासना करने लगेंगे, सारी प्रजा धीरे-धीरे ह्रास को प्राप्त होने लगेगी और इसी प्रकार युग की समाप्ति हो जाने पर वह भी क्षीण हो जायगी। जिस दिन भगवान् कृष्ण स्वर्गगामी होते हैं, उसी दिन कलियुग की प्रवृत्ति होती है, उसकी अवधि की संख्या सुनिये। मानव मान से तीन लाख साठ सहस्र वर्षों का कलियुग कहा जाता है। उसका संध्यांश देव मान से एक सहस्र वर्ष का कहा जाता है। कलियुग की समाप्ति हो जाने पर कृतयुग का प्रारम्भ होता है इला और इक्ष्वाकु के वंशों को, उनके पारस्परिक भेदों के साथ, हम बतला चुके, इक्ष्वाकु के वंश में जिन क्षत्रियों का आविर्भाव हुआ, वे सब राजा सुमित्र के अन्त पर्यन्त रहे, सुमित्र के बाद सूर्य पुत्र इक्ष्वाकु के वंश का अवसान हो जाता है। चन्द्रवंश के इतिहास को जाननेवाले लोग इला के वंश को राजा क्षेमक के अन्त तक जानते हैं। सूर्य के कीर्तिशाली इन पुत्रों का वर्णन किया जा चुका। इसके अतिरिक्त उन सबों के वंश में अतीत, वर्तमान एवं भविष्यत्कालीन ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों का भी वर्णन किया गया। प्रत्येक युगों में सहस्रों लाखों की संख्या में महान् पराक्रम शाली, बुद्धिमान् एवं जितेन्द्रिय राजा लोग उत्पन्न हो गये हैं, बहुत अधिक हो जाने तथा पुनरुक्ति के कारण उनकी संख्या प्रत्येक कुल के अनुसार मैंने नहीं बतलाई। इस वैवस्वत मन्वन्तर में निगिवंश की समाप्ति हो जाती है। इस वर्तमान युग में जिस प्रकार इन क्षत्रियों की उत्पत्ति होगी, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। पौरववंशीय देवापि नामक राजा, जो महान् योगाभ्यासी होगा, कलाप ग्राम में निवास करेगा, इसी प्रकार इक्ष्वाकुवंशीय सोमपुत्र सुवर्चा नामक एक राजा होगा। चौबीसवें युग में ये दो परम वीर राजा क्षत्रिय धर्म का प्रवर्तन करनेवाले होंगे। बीसवें (?) युग में चन्द्रवंश का आदिम राजा कोई न होगा। देवापि बिना किसी की प्रतिद्वन्द्विता एवं वैरभावना के ऐल वंश

का प्रथम राजा होगा। चारों युगों के लिए ये दो राजा क्षत्रिय धर्म के प्रवर्तक होंगे। क्षत्रियगुण, धर्म, स्वभाववाली सन्तानों के लिए इन्हीं दोनों राजाओं को मूलरूप जानना चाहिये। तथा कथित कलियुग के व्यतीत हो जाने पर जब पुनः सतयुग का प्रारम्भ होगा, तब विख्यात सप्तर्षियों के साथ ये दोनों क्षत्रिय गोत्र के प्रवर्तकों के रूप में जन्म धारण करेंगे। इसी प्रकार त्रेतायुग के प्रारम्भिक काल में पुनः जन्म धारण करेंगे। द्वापरांश में न तो क्षत्रिय रहेंगे न ऋषिगण रहेंगे। सतयुग और त्रेतायुग के क्षीण होने पर वे ऋषि तथा राजर्षिगण ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों के वंशों के बीज रूप होकर उत्पन्न होंगे। सभी मन्वन्तरों में इसी प्रकार सप्तर्षिगण क्षत्रिय राजाओं के साथ स्थित रहते हैं। और प्रत्येकयुग में इसी प्रकार सन्तति उत्पन्न करने के लिए राजाओं के साथ अवतीर्ण होते हैं। क्षत्रिय वंश का मूलतः विध्वंस, ब्राह्मणों के साथ सम्बन्ध स्थापन, सातों मन्वन्तर, मन्वन्तरों में उत्पन्न होनेवाली प्रजाएँ, युगों की परम्परा, ब्राह्मणों एवं क्षत्रियों की उत्पत्ति, उनके कुलों का उद्भव, उत्पत्ति के उपरान्त उनके विनाश एवं दीर्घायुप्राप्ति, प्रजाओं की प्रवृत्ति आदि समस्त बातों को सप्तर्षिगण जानते हैं। इस उपर्य्युक्त क्रम के अनुसार ऐल तथा इक्ष्वाकुवंशीय द्विजातियाँ त्रेता में उत्पन्न होकर कलियुग के विनाश पर्यन्त युग का अनुवर्तन तब तक करती रहती हैं, जब तक मन्वन्तर का क्षय नहीं उपस्थित होता। जमदग्नि पुत्र परशुराम के पृथ्वीपति राजाओं के साथ क्षत्रियों का समूल संहार कर डालने के बाद चन्द्र और सूर्य दोनों वंश के क्षत्रियों की पुनः उत्पत्ति हुई, मैं उन सब का वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। उस महान् क्षत्रिय संहार के बाद इला और इक्ष्वाकु के वंशज क्षत्रियों की सन्तानों का पुनः विस्तार हुआ, धारावाहिक रूप में क्षत्रिय लोग पुनः राज्याधिकारी हुए, उनके साथ साथ अन्यान्य क्षत्रिय भी राजा हुए। ऐल और ऐक्ष्वाकु—ऐसे वंश थे, जिनमें परम विख्यात अभिषिक्त राजाओं के एक सौ कुल हुए। भोजवंशीय राजाओं के कुलों की संख्या उनकी द्विगुणित कही जाती है, इस प्रकार ऐसे क्षत्रिय कुलों की संख्या तीन सौ हो जाती है (?) उनमें समान नाम वाले जो राजा व्यतीत हो चुके हैं, उन सब को बतला रहा हूँ, सुनिये। ऐसे राजाओं में प्रतिविन्ध्यों की संख्या एक सौ, नागों की एक सौ, हयों की एक सौ, धृतराष्ट्रों की एक सौ, जनमेजयों की अस्सी, ब्रह्मदत्तों की एक सौ, शीरी और कीरियों की एक सौ, पौलों की एक सौ, तथा श्वेत, काश कुशादिकों की एक सौ की है। शतविन्दु नामक एक सहस्र राजा हो चुके हैं। ये सभी नृपतिगण करोड़ों की दक्षिणावाले अनेक अश्वमेध यज्ञों के अनुष्ठान करनेवाले थे, सैकड़ों सहस्रों की संख्या में ऐसे उदारचेता नृपति व्यतीत हो गये हैं। इसी वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में, इन्हीं मनु के अधिकार काल में, जो राजा हो गये हैं, उन्हीं की बहुत बड़ी संख्या में संततियाँ उत्पन्न हुई हैं, उन सब की परम्परा का विस्तृत विवरण, पहले और पीछे की सारी संख्याएँ मिलाकर सौ वर्ष में भी प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। वैवस्वत मन्वन्तर का अट्ठाईसवाँ युग समाप्त प्रायः हो गया है, इस समय राजर्षियों के साथ जो सन्तानें शेष हैं, उन्हें सुनिये। भविष्य में इसी युग में चालीस अन्य विशिष्ट राजा लोग राज्य करेंगे, तब वैवस्वत का सर्वांशतः अवसान होगा।

प्रसंगतः संक्षेप और विस्तार में मैं आप लोगों को राजाओं का यह वृत्तान्त बतला चुका, प्रत्येक युगों में होनेवाले समस्त राजाओं का वृत्तान्त एवं वंशक्रम बहुत अधिक एवं पुनरुक्ति के कारण मैं नहीं बतला सकता। सम्राट् ययाति के पुत्रों से होनेवाले, प्रजारक्षक पच्चीस राजवंशों का एवं उनके शासनाधीन देशों का वर्णन कर चुका, वे सब के सब अमित प्रभावशाली एवं बलवान् थे, बड़े प्रेम से समस्त लोकों का पालन करते थे। इस पवित्र वृतान्त को धारण करने से तथा सुनने से मनुष्य दीर्घायु, यश, धन, पुत्र, और अनन्त काल व्यापी स्वर्ग निवास—इन पाँच वरदानों को प्राप्त करता है। इस लोक में ये वरदान परम दुर्लभ हैं।

द्विजवृन्द ! मैं आप लोगों को विस्तार पूर्वक क्रमानुसार इस तृतीय पाद को सुना चुका, अब इसके बाद क्या बतलाऊँ, बतलाइये। ॥ २६४—४६४ ॥।

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते तुर्वस्वादि वंशवर्णनं नाम नवनवतितमोऽध्यायः।

उपसंहार,

सौवाँ अध्याय

मन्वन्तरों का वर्णन

परम बुद्धिमान् सूत द्वारा तृतीय पाद को सुनने के उपरान्त श्रेष्ठ ऋषियों ने चतुर्थ पाद के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। ॥ १ ॥।

ऋषिवृन्दबोले:—सूत जी ! आप अनुषङ्ग नामक तृतीय पाद को हम लोगों को सुना चुके, अब चतुर्थ उपसंहार नामक पाद का विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये। जो मन्वन्तर व्यतीत हो चुके हैं, उनके अतिरिक्त जो अन्य मन्वन्तर हैं, तथा इस वर्तमान मन्वन्तर में जो सप्तर्षि हैं, उन सब का वृत्तान्त हमें बतलाइये। वर्तमान महात्मा मनु की इस सृष्टि का उद्भव एवं विस्तार किस प्रकार होता है, इन सब बातों को क्रमानुसार विस्तार पूर्वक हमें बतलाइये।॥ २—४ ॥।

सूत बोले:—ऋषिवर्यवृन्द ! मैं आप लोगों की इन सब जिज्ञासाओं के बारे में याथातथ्य रूप से बतला रहा हूँ। चतुर्थ उपसंहार पाद का वर्णन सुनिये। द्विजवृन्द ! साथ ही वर्तमान महात्मा मनु के इस सृष्टि विस्तार का भी विस्तारपूर्वक क्रमानुसार वर्णन कर रहा हूँ। व्यतीत सातों मन्वन्तरों का भी भविष्यकालीन सातो मन्वन्तरों के साथ संक्षिप्त वर्णन कर रहा हूँ, लोगों का प्रलय किस प्रकार होता है—यह भी बतला रहा हूँ, सुनिये। पूर्व प्रसंग में सातों अतीत एवं भविष्यकालीन मन्वन्तरों का विशद वर्णन मैं यद्यपि कर चुका हूँ, पर यहाँ प्रसंगवश भविष्यकालीन मन्वन्तरों का संक्षेप में पुनः वर्णन कर रहा हूँ। सम्प्रति वर्तमान वैवस्वत मनु तथा भविष्यकालीन सावर्ण मनु का वर्णन कर रहा हूँ,

Funding by IKS-MoE

संक्षेप में सुनिये। भावी मन्वन्तर में जो मुनिगण होंगे उनके नाम सुनिये। वे होंगे कुशिकनन्दन गालव, जमदग्नि पुत्र भार्गव, वसिष्ठ गोत्रीय द्वैपायन, शारद्वत वंशोत्पन्न कृप, अत्रिवंशोद्भव दीप्तिमान्, कश्यपगोत्रीय ऋष्यशृङ्ग, एवं भरद्वाज गोत्रीय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा। ये परमप्रभावशाली महात्मा गण भावी मन्वन्तर में परम ऋषि के नाम से विख्यात होंगे। सुतपा, अमिताभ और सुख ये तीन भावी मन्वन्तर के देवगणों के प्रमुख गण होंगे। इनमें एक एक में बीस बीस देवता विराजमान होंगे। उन सब के नाम बतला रहा हूँ, सावधानता पूर्वक सुनिये। रति, तप, शुक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, भासकृत्, धर्म, तेज, रश्मि, ऋतु, विराट्, अर्चिष्मान्, द्योतन, भानु, यश, कीर्ति, बुध और धृति,—ये बीस देवगण सुतपा नामक गण में सम्मिलित हैं। प्रभु, विभु, विभास, जेता, हन्ता, अरिहा, रिद्धु, सुमति, प्रमति, दीप्ति, समाख्यात (?) मह, महान, देह, मुनि, नय, ज्येष्ठ, सम, सत्य, और विश्रुत—ये बीस अमिताभ कहे जाते हैं। दम, दाता, विद, सोम, वित्त, वैद्य, यम, निधि, होम, हव्य, हुत, दान, देय, दाता, तप, शम, ध्रुव, स्थान, विधान, और नियम—ये बीस सावर्णि मन्वन्तर की प्रथम अवस्था में बीस मुख्य (सुख) नामक देवगण कहे गये हैं। ये समस्त देवगण महात्मा कश्यप के पुत्र हैं। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर के उपरान्त सावर्ण मन्वन्तर में ये ही देवगणों के स्थान पर प्रतिष्ठित होंगे। उस सावर्ण मन्वन्तर में विरोचन पुत्र बलि इन देवगणो का स्वामी इन्द्र होगा। सावर्ण मनु के नव पुत्र होंगे, उनके नाम होंगें, वीरवान्, अवरीयान्, निर्मोह सत्यवाक्, कृती, चरिष्णु, अज्य, विष्णु, वाच और सुमति। इनके अतिरिक्त अन्य सावर्ण मन्वन्तरीय नव मनुपुत्रों के नाम से प्रसिद्ध होंगे। भविष्य में और भी अनेक ब्रह्मा के पुत्र सावर्ण मनु उत्पन्न होंगे, दिव्यदृष्टिसम्पन्न लोग उन सब को मेरु सावर्णि के नाम से देखते हैं। वे मनुगण दक्ष के नाती एवं उनकी प्रियतमा पुत्री के पुत्र हैं, वे परम तेजस्वी, महान् तपस्वी एवं सुमेरु के पृष्ठ पर निवास करनेवाले हैं, वे ब्रह्मादि देवगणों द्वारा तथा परम बुद्धिमान् दक्ष द्वारा उत्पन्न हुए हैं। वे महर्लोक वासी हैं, वहाँ से आकर सुमेरु के पृष्ठ भाग पर आश्रय लेते हैं, पूर्व चाक्षुष मन्वन्तर में उन महानुभावों की उत्पत्ति हुई थी। ॥५--२६॥

ऋषियों नें पूछा:—सूत जी! दक्ष ने अपनी कन्या में पुत्रों की उत्पत्ति किस प्रकार की? और शंकर, ब्रह्मा एवं धर्म द्वारा इन महात्मा मनुगणों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? ॥२७॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! प्रचेता को प्रणाम कर अब मैं भविष्य में उत्पन्न होनेवाले सावर्ण मनुगणों के जन्म वृत्तान्त, प्रभाव, आदि का वर्णन कर रहा हूँ। चाक्षुष मन्वन्तर के कुछ शेष रह जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ हो जाता है, उसी समय उन भविष्यत्कालीन मनुगणों की उत्पत्ति होती है। उनमें पाँच सावर्ण मनुगण पशुपति दक्ष के नाती, चार मनुगण परम ऋषियों द्वारा समुत्पन्न तथा एक सावर्ण मनु विवस्वान् के संयोग से छाया संज्ञा के पुत्र हैं। संज्ञा के ज्येष्ठ पुत्र परम ऐश्वर्यशाली वैवस्वत मनु इन सावर्ण मनु से ज्येष्ठ हैं। वैवस्वत मन्वन्तर के आने पर इन दोनों मनुओं की कल्याणी उत्पत्ति होती है। परम यशस्वी इन मनुगणों की संख्या चौदह कही जाती है। वेद, श्रुति, पुराण आदि में सर्वत्र ये मनुगण

Funding by IKS-MoE

परम प्रभावशाली, प्रजापति सभी जीव निकायों के अधीश्वर के रूप में वर्णित किये गये हैं। इन्हीं नरेश्वर मनुगणों द्वारा सातों द्वीपों एवं पर्वतों समेत यह वसुन्धरा सहस्र युगों तक परिपालित होती है। उन मन्वन्तरों में होनेवाली प्रजा, तपस्या एवं सृष्टि विस्तार का वर्णन कर रहा हूँ। स्वायम्भुव मनु आदि की वह सृष्टि चौदह ही जाननी चाहिये। मनुगण अपने-अपने मन्वन्तराधिकार में एक-एक बार वर्तमान रहते हैं। जब अधिकार से वे निवृत्त हो जाते हैं, तब महर्लोक में अवस्थित होते हैं। उन चौदह मनुओं में आठ के अधिकार काल समाप्त हो गये हैं, छः मनुओं का अधिकार काल शेष है। सप्त पूर्व मन्वन्तरों के समाप्त हो जाने पर सम्प्रति वैवस्वत मनु का अधिकार काल चल रहा है, अब जो शेष मनुगण हैं, उनके अधिकार काल का वर्णन, उस समय के देवताओं, ऋषिओं, दानवों, एवं ब्राह्मणादि द्विजातियों की सृष्टि परम्परा के साथ बतला रहा हूँ। वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि विस्तार के द्वारा ही अन्य मन्वन्तरों की सृष्टि का विस्तार जानना चाहिये। वैवस्वत मन्वन्तर की सृष्टि के समान ही उनकी भी सृष्टि होती है, उनमें कुछ भी विशेषता वा न्यूनता नहीं रहती। भूत व भावी मन्वन्तरों में प्रत्येक वेशों में जो सृष्टि होती है, उसका पुनरुक्ति और अधिकता के भय से विस्तार पूर्वक वर्णन नहीं कर रहा हूँ। केवल उनका विभाग पूर्वक विस्तार एवं क्रम बतला रहा हूँ। दक्ष प्रजापति की एक सुव्रता नामक परम धार्मिक यशस्विनी कन्या थी। वह अन्य कन्याओं से छोटी होती हुई भी गुणों में श्रेष्ठ एवं धर्म परायण थी। पिता दक्ष एकबार अपनी उस कन्या को साथ लेकर ब्रह्मा के समीप गये। पितामह ब्रह्माजी उस समय धर्म और भव के साथ वैराज नामक लोक में विराजमान थे। दक्ष को भव और धर्म के समीप खड़ा देखकर ब्रह्मा ने कहा, सद्व्रतपरायण दक्ष! तुम्हारी यह कल्याणी कन्या चार पुत्रों को उत्पन्न करेगी, वे चारों भावी काल में चारों वर्षों के संस्थापक कल्याणकारी मनु के रूप में विख्यात होंगे। ब्रह्मा की ऐसी वाणी सुनकर दक्ष, धर्म और भव ने ब्रह्मा के साथ मन ही मन उस कन्या के साथ संगमन किया। सत्य का ध्यान करनेवाले इन महान् तपस्वियों के मानसिक संकल्प के अनुसार उस कन्या ने उन्हीं चारों के अनुसार चार सुन्दर कुमारों को उसी क्षण उत्पन्न किया। वे कुमार समस्त कार्यों के पूर्ण करनेवाले, परम बुद्धिमान्, श्रीमान्, एवं अपने उसी सद्योजात शरीर से विविध भोगों के उपभोग में सामर्थ्य रखने वाले थे। इन चारों कुमारों को देखकर इन समस्त ब्रह्मवेत्ता देवताओं में 'यह मेरा पुत्र है', 'यह मेरा पुत्र है', इस प्रकार की बातें कह कह कर छीना झपटी होने लगी और क्रोध का प्रर्दशन होने लगा। वे चारों पुत्र उन चारों महान् प्रभावशाली देवताओं के मानसिक अभिध्यान से उत्पन्न हुए थे, अतः उन सब ने परस्पर यह तय किया कि इन सब में जो शरीर में जिसके समान हो, वह उसी को अपना पुत्र माने। स्वरूप, पराक्रम, नाम और वर्ण में जो पुत्र जिसके समान हो वह उस पुत्र को ग्रहण करे। पुत्र सर्वदा पिता के स्वरूप का अनुकरण करता है, पराक्रम में भी पुत्र माता और पिता के समान होता है, यह निश्चित है कि पुत्र अपने ही समान होता है, अतः जो जिसके समान हो वह उसी का पुत्र है।' ब्रह्मा आदि देवताओं ने परस्पर इस प्रकार की सम्मति करके अपने अपने समान आकृति, वर्ण और पराक्रम वाले पुत्रों को ग्रहण किया। वे

Funding by IKS-MoE

चारों कुमार ब्रह्मा, धर्म, दक्ष और भव के सवर्ण (समान वर्णवाले) थे अतः उनका सावर्ण नाम पड़ा। मानसिक मनन (समागम की भावना) के कारण उनकी उत्पत्ति हुई थी, अतः मनु नाम से ख्यात हुए। चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर जब वैवस्वत मन्वन्तर का प्रारम्भ हुआ, तब प्रजापति रुचि के रौच्य नामक एक पुत्र हुआ। भूति नामक जननी में जो पुत्र उत्पन्न किया गया, वह भौत्य नाम से विख्यात हुआ। वैवस्वत मन्वन्तर में विवस्वान के मनु नामक दो पुत्र राजा हुए, जिनमें एक वैवस्वत मनु और दूसरे सावर्ण मनु के नाम से विख्यात हुए। इनमें एक परम ऐश्वर्यशाली विद्वान् वैवस्वत मनु ज्येष्ठ संज्ञा पुत्र और दूसरे वैवस्वत मनु सवर्ण (छाया रूप धारिणी संज्ञा) के पुत्र कहे जाते हैं। सवर्ण जो चार मनु गण हुए वे महर्षियों से उत्पन्न हुए थे। ये सभी मनुगण परम तपोनिष्ठ थे। ये भविष्यत् कालीन अपने अपने मन्वन्तरों में समस्त कार्यों में समर्थ होकर विराजमान होंगे। प्रथम मनु दक्षपुत्र मेरु सावर्णि थे, उनका दूसरा नाम प्रजापति रोहित था। ये भविष्य मन्वन्तर के भावी मनु होंगे। इनके वैवस्वत मन्वन्तर में अनेक महात्मा पुत्र हुए, जिनके गणों के नाम मरीचिगर्भा, सुशर्मा और पार हुए। इनमें से एक एक गण बारह भागों में विभक्त है। ऐश्वर्य संग्रह, राह, बाहुवश आदि को पारगण के अन्तर्गत जानना चाहिये। अन्यान्य गणों का विवरण सुनिये। वाजिय, वाजिजित, प्रभूति, ककुद्मया, दधिक्राव, अयपक्र, प्रणीत, विजय, मधु, तेजस्वान् और अथर्वद्रय—ये बारह मरीचिगण के अधीन थे। सुशर्मागण का विवरण बतला रहा हूँ, सुनिये। वर्ण, अङ्ग, विश्व, भुरण्य, व्रजन, अमित, द्रवकेतु जम्भोरथ, अजस्र, शक्रक, सुनेमि, द्युतपा ये बारह सुशर्मा नाम से कहे जाते हैं। भविष्यत्काल में अद्भुत नामक देव इन सब का इन्द्र होगा। अग्निपुत्र चन्द्रमा के समान सुन्दर आकृति वाले स्वामि कार्तिकेय, जिनका दूसरा नाम स्कन्द भी है, पुलस्त्य गोत्रीय मेधातिथि, कश्यप गोत्रीय वसु, भृगुवंशोद्भव ज्योतिष्मान्, अङ्गिरा नन्दन द्युतिमान्, वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न वसित, अत्रिकुलभूषण हव्यवाहन पौलववंशीय सुतपा—ये सात रोहित मन्वन्तर के ऋषि कहे गये हैं। उन प्रथम सावर्णि मनु के धृतिकेतु, दीप्तिकेतु, शाप, हस्त, निरामय, पृथुश्रव, अनीक, भूरिम्नद्यु और—बृहद्रथ, ये नव पुत्र कहे जाते हैं। दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय मनु का नाम भाव्य होगा। इन भाव्य मनु के अधिकार काल में सुखमना और विरुद्ध नामक दो देवताओं के गण कहे जाते हैं। ये समस्त देवगण परमकान्तिशाली, संख्या में सौ और समान धर्म वाले हैं। ऋषियों ने इन देवगणों को पुरुषों का प्राणायाम बतलाया है, धर्मपुत्र द्वितीय मनु के अधिकार काल में ये देवताओं के पद पर प्रतिष्ठित होंगे। इन सब देवताओं के स्वामी इन्द्र परम विद्वान् शान्ति होंगे—ऐसा कहा जाता है। प्रलह गोत्रीय हविष्मान्, भृगुगोत्रोत्पन्न परम शोभासम्पन्न सुकीर्ति, अत्रिवंशोद्भव आपोमूर्ति, वसिष्ठ वंशोत्पन्न आपोमूर्ति, पुलस्त्यकुलभूषण प्रतिप, कश्यपकुल नन्दन नाभाग और अङ्गिरागोत्रोत्पन्न अभिमन्यु—ये सात उस मन्वन्तर के परम ऋषि होंगे। सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूरिषेण वीर्यवान्; शतानीक, निरमित्र, वृषसेन, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुवर्चा—ये दस भाव्य मनु के पुत्र होंगे। ग्यारहवें पर्याय में तृतीय सावर्णि मनु का जब अधिकार काल होगा, तब परम महिमाशाली देवगणों के तीन विशेष गण विख्यात होंगे।

उनके नाम होंगे निर्माणरति, कामज और मनोजव । उन स्वर्ग निवासी देवताओं के इन एक एक गणो में तीस-तीस देवता होंगे । पण्डित लोग मास में जिन तीस दिनों की गणना करते हैं, वे ही निर्माण रति देवगण है । रात्रि और विहङ्गमात्मक देवगण कामज और मुहूर्तगण मनोजव देवगण के नाम से विख्यात हैं । भविष्यत्काल में देवताओं के ये तीन गण कहे जाते हैं । उन देवताओं के स्वामी वृष नामक सुरराज होंगे । उस मन्वन्तर के सप्तर्षियों का नाम बतला रहा हूँ, सुनिये । कश्यपनन्दन हविष्मान्, भृगुगोत्रीय वपुष्मान्, अत्रिवंशोद्भव वारुणि, वसिष्ठ गोत्रोत्पन्न भग, अङ्गिरावंशीय पुष्टि, पुलस्त्य कुलभूषण निश्चर, और पुलह गोत्रीय अग्नितेजा—ये सात ग्यारहवें पर्याय के देवगण कहे जाते हैं । सर्ववेग, सुधर्मा, देवानीक, पुरोवह, क्षेमधर्मा, गृहेषु, आदर्श और पौण्ड्रक—ये ग्यारहवें मन्वन्तर के सावर्ण मनु के पुत्र कहे जाते हैं । बारहवें मन्वन्तर में रुद्रपुत्र ऋत सावर्णि का कार्यकाल होगा, उस अवधि में वर्तमान देवगणों के पाँच विशेष गण कहे जाते हैं । उनके नाम हैं हरित, रोहित, सुमना, सुकर्मा और सुपार—ये पाँच नाम उनके कहे जाते हैं । ये सब देवगण ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं, इन एक-एक गणों में दस दस देवता रहते हैं । उनमें अरुन्तिज, हवि, विद्वान्, पर्वतानुचर, अप, अंशु, मनोजव, ऊर्जा, स्वाहा, स्वधा और तारा—ये दस हरित गण के अन्तर्गत कहे जाते हैं । तप, जानि, भृति, वाचा, वन्धु, रज, राज, स्वर्णपाद, व्युष्टि और विधि—ये दस रोहित गण में हैं । तैंतीस की संख्या में उषित आदि जो देवगण कहे जाते हैं, उन्हें ही सुमना नामक देवगणों के अन्तर्गत जानिये, सुकर्मा नामक गण का विवरण सुनिये । सुपर्वा, वृषभ, पृष्ठ, कपि, द्युम्न, विपश्चित, विक्रम, क्रम, निभृत, और क्रान्त—ये दस सुकर्मा नामक देवगण के अधीन हैं । इनके सुतों को सुनिये । (सुपार नामक गण को सुनिये) वर्षोदित (वर्योदित) जिष्ठ, वर्चस्वी, द्युतिमान्, हवि, शुभ, हविष्कृत, प्राप्ति, व्यापृथ और दशम —ये सुपारा नामक गण में रहनेवाले देवताओं के नाम कहे गये हैं । इन देवताओं के इन्द्र महान् यशस्वी ऋतधामा होंगे । वसिष्ठ पुत्र कृति, अत्रिनन्दन सुतपा, अङ्गिरागोत्रीय तपोमूर्ति, कश्यपात्मज तपस्वी, पुलस्त्यगोत्रोद्भव तपोऽशयान, पुलह कुलोत्पन्न तपोरति और भृगुनन्दन तपोमति—ये सात ऋषि उक्त मन्वन्तर के जानने चाहिये । इस सावर्णिक मन्वन्तर में देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदूरथ, मित्रवान्, मित्रविन्दु, मित्रसेन, अमित्रहा, और सुवर्चा—ये बारह (?) मनु के पुत्र होंगे । तेरहवें रौच्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के तीन ही गणों के होने की बात स्वयम्भू ब्रह्माजी ने बतलाई है । वे सब परम महात्मा एवं ब्रह्मा के मानसिक पुत्र कहे जाते हैं । उनके नाम हैं, सुत्रामा, सुधर्मा और सुकर्मा । ये ही भावी मन्वन्तर में सोमरस पान करनेवाले देवताओं के पदों पर प्रतिष्ठित होते हैं । यज्ञकर्त्ताओं के समेत इस मन्वन्तर में देवताओं की कुल संख्या तैंतीस होती है । आज्य, पृषदाज्य, ग्रहश्रेष्ठ एवं अन्यान्य देवगणों को मिलाकर भी वह देवसंख्या तैंतीस ही होती है । इनका अलग अलग वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये । सम्प्रति प्रयाज और आज्यप नाम से प्रसिद्ध सभी देवगण सुत्रामा नामक गण के अधीन हैं । अनुयाज्य और पृषदाज्याशी देवगण सुकर्मा नामक गण के अन्तगर्त हैं । उपयाज्य नामक देवगण सधर्मा नामक गण के अधीन कहे गये हैं । इन सब देवगणों के स्वामी इन्द्र महाबलवान् दिवस्पति होंगे । रुचि के

Funding by IKS-MoE

इन पुत्रगणों को पुलह के पौत्र जानना चाहिए। अङ्गिरा पुत्र धृतिमान्, पुलस्त्यगोत्रीय पथ्यवान्, पुलह नन्दन तत्त्वदर्शी, भृगुगोत्रीय निरुत्सुक, अत्रिगोत्रोद्भव निष्प्रकम्प, कश्यपात्मज निर्मोह, और वसिष्ठ वंशोत्पन्न स्वरूप–ये सात तेरहवें मन्वन्तर के ऋषि कहे जाते हैं। चित्रसेन, विचित्र, तपोधर्म, धृत, भव, अनेकबद्ध, क्षत्रबद्ध, सुरस, निर्भय, और पृथ—ये रौच्य मन्वन्तरीय मनु के पुत्र कहे जाते हैं। भविष्यत्कालीन चौदहवें भौत्य नामक मन्वन्तर में देवताओं के पाँच गण कहे जाते हैं। उनके नाम हैं, चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भाजर और वाचावृद्ध। परवर्ती मनु के सातों पुत्रों को ही चाक्षुष देवगण जानो, पण्डित जन बृहदादि साम समूह को ही सात कनिष्ठ देवगण बतलाते हैं। सातों लोक पवित्र (परित्रस्त) एवं सातों समुद्र भाजर (भाजिर) नाम से बतलाये जाते हैं। सातों ऋषियों को वाचावृद्ध देवता जानो। स्वायम्भुव मनु से लेकर सभी मनुओं के अधिकार काल में जितने इन्द्र होते हैं, उन सब को एक ही प्रकार के स्वभाव, मर्यादा एवं प्रभाव सम्पन्न जानना चाहिए। अपने तेज, तपस्या, बुद्धि, शास्त्रीय ज्ञान, बल, पराक्रम एवं गुणों से वे इन्द्रगण इस त्रैलोक्य में जितने भी स्थावर जङ्गम जीवनिकाय हैं, सब का अतिक्रमण करते हैं, अर्थात् उनके समान कोई अन्य नहीं होता। केवल ब्रह्म सत्य है, समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् मिथ्या है, इन भूतों की कोई सत्ता नहीं है——ऐसे मतवाले भूतापवादी हैं, और वे ही सच्चे अर्थों में प्रसन्नचित्त रहते हैं, ये जीव जगत् सब नित्य एवं अनित्य—दोनों हैं, वे भूतवादी हैं, उन्हें मध्यकोटि का समझना चाहिए, संसार एवं उसकी वस्तुएँ सभी नित्य एवं अविनश्वर हैं ऐसा जानकर जो उसी में अनुरक्त रहते हैं, वे भूतानुवादी हैं, उत्कृष्ट पण्डितों द्वारा जगत् की ये तीन व्याख्याएँ की जाती हैं। अग्नीध्र, काश्यप, पौलस्त्य, मागध, भार्गव, अग्नि बाहु, अंगिरस्, शुचि और परम तेजस्वी सुबल—ये भौत्यमनु के अधिकार काल में उत्पन्न होनेवाले उनके पुत्र हैं। उपर्युक्त ये चार मनु गण, जो सावर्ण मनु के नाम से विख्यात हैं, वे ब्रह्मादि चारों देवताओं के पुत्र हैं, विवस्वान सूर्य के पुत्र एक वैवस्वत मनु भी सावर्ण मनु कहे जाते हैं। रौच्य और भौत्य—ये दो मनु पुलह और भार्गव गोत्रीय हैं। इन्हीं भौत्य मनु के अधिकार काल में कल्प की परिसमाप्ति हो जाती है। ॥ २८—११८

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! सभी मन्वन्तर जब समाप्त हो जाते हैं और उनमें अनेक युग व्यतीत हो जाते हैं, तब सृष्टि का संहार होता है——ऐसा कहा जाता है। अन्तिम मन्वन्तर में ये सात भृगुवंशोत्पन्न देवगण इकहत्तर युगों तक समस्त त्रैलोक्य में विराजमान रह कर समस्त भोगों का उपभोग करेंगे और अन्त में पितरों, मुनियों, सप्तर्षियों, अन्यान्य यज्ञ परायण यजमानो एवं भक्तों के साथ तीनों लोकों का परित्याग करके वे सर्वशक्ति सम्पन्न देवगण महर्लोक को चले जायँगे। इस प्रकार जब वे सब छोड़ कर मन्वन्तर की समाप्ति हो जाने पर चले चायेंगे, तब यह त्रैलोक्य निराधार हो जायगा। द्विजवृन्द! उस समय सभी स्थान शून्य हो जायगा, स्थानी (अभिमानी) देवगण भी अपने अपने स्थान छोड़ देंगे। तारायें, नक्षत्र, ग्रहादि निरवलम्ब होकर विध्वंस हो जाते हैं। त्रैलोक्य के समस्त सामर्थ्यसम्पन्न शक्तियों के समाप्त हो जाने पर इन्द्रादि प्रमुख देवगण, चाक्षुषादि समस्त मनुगण एवं अन्यान्य महान् तेजस्वी देवगण——सभी महर्लोक में जाकर वहाँ कल्पपर्यन्त स्थिर निवास करनेवाले

देवताओं की समानता प्राप्त करेंगे। इस प्रकार महर्लोक में कल्पवासी अन्यान्य देवताओं के साथ मिलने पर जब प्रलय का जोर बहुत अधिक बढ़ जायगा, तब वे चौदहों मनुगण अपने सहगामी अनुचरादि के साथ सशरीर जनलोक को चले जाते हैं--ऐसा सुना जाता है। देवताओं के महर्लोक से जनर्लोक में चले जाने पर जब केवल स्थावर जीवनिकाय शेष रह जाते हैं, मह भू आदि सभी लोकों के स्थान शून्य हो जाते हैं, देवगण कल्पपर्यन्त निवास करनेवाले अन्यान्य देवताओं के समान स्थान प्राप्तकर ऊपर चले जाते हैं, उस समय ब्रह्मा देवताओं, ऋषिओं, पितरों दानवों—सब का संहार कर युगक्षय पर महती वृष्टि के द्वारा सृष्टि की पुनः स्थापना करते हैं। एक सहस्र चतुर्युग का ब्रह्मा का एक दिन बतलाया जाता है और इसी प्रकार एक सहस्र चतुर्युग की उनकी रात्रि, दिन रात्रि के मान को जानने वाले ज्योतिषी लोग जानते हैं। नैमित्तिक, प्राकृतिक एवं आत्यन्तिक—जीवों के ये तीन प्रकार के प्रलय बतलाये जाते हैं, अर्थानुसार इनकी चरितार्थता होती है। इनमें ब्रह्मा द्वारा किया गया कल्पदाह प्रसंयम और नैमित्तिक है। जिस प्रलय में भूतों के कारणों (असाधारण कारणों) का क्षय हो जाता है उसको प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। अच्छी तरह जान बूझकर किये गये उस महान् प्रलय को, जिसके बाद कारणीभूत उपादानों का अस्तित्व एक दम नष्ट हो जाता है, वे असम्भव हो जाते हैं, आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। त्रैलोक्य-वासी उन देवताओं का संहार करने के उपरान्त अपने एक दिन के बाद पुनः सृष्टि का प्रलय करते हैं। उस समय शयन करने की इच्छा से भगवान् ब्रह्मा प्रजाओं का संहार करते हैं। इस प्रकार एक सहस्र युग के व्यतीत हो जाने के उपरान्त युगक्षय के प्राप्त होने पर प्रजापति आत्मस्थ समस्त प्रजाओं का विस्तार करने में प्रवृत्त होते हैं। उस समय सौ वर्ष व्यापी घोर अनावृष्टि होती है, जिससे पृथ्वीतल में जो अल्पसार प्राणी शेष रह जाते हैं, वे भी विनष्ट होकर पृथ्वी रूप में परिणत हो जाते हैं। विभावसु सात विशिष्ट रश्मियों से समन्वित होकर उदित होते हैं, और अपनी तीक्ष्ण रश्मियों से जलराशि का शोषण करते हैं। उस समय उनकी रश्मियों का तेज असह्य हो जाता है। वे रश्मियाँ हरित वर्ण की एवं परम तेजोमयी होती हैं, उनका सात भाग होता है। वे शनैः शनैः पृथ्वीस्थ समस्त जल राशि में व्याप्त होकर अधिकाधिक विवर्तित हो जाती हैं। भौम, काष्ठ, वन, तेज प्रभृति में पुनः पुनः परिव्याप्त होकर वे रश्मियाँ जल से बहुत अधिक प्रदीप्त हो उठती हैं। ज्वलनात्मक सूर्य के अधिक ताप का कारण इसीलिए जल कहा जाता है, अनावृष्टि से सूर्य तप्त नहीं होते, और न अनावृष्टि से उनके मण्डल सन्निवेश आदि मे ही कोई विशेष दीप्ति होती है, यही नहीं बल्कि अनावृष्टि से उनकी रश्मियाँ पृथ्वीस्थ पदार्थों के रसादि का ही संचयन नहीं कर पाती हैं। केवल जल से रवि उद्दीप्त होते हैं। अपनी किरणों द्वारा जलराशि का पान करते हुए वे आकाश मण्डल में प्रकाशित होते हैं। उनकी वे सातों किरणें समुद्र से जल का पान करती हैं। उस जल रूप आहार से संदीप्त होकर सूर्य सात हो जाते हैं। इस प्रकार उनकी वे सातों रश्मियाँ सूर्य रूप हो चारों दिशाओं में व्याप्त होकर चारों लोकों को अग्नि की भाँति दग्ध कर देती हैं। नीचे ऊपर सर्वत्र अपनी उन प्रखर तेजस्विनी

किरणों द्वारा युगान्तकालीन अग्नि के समान परम उद्दीप्त वे सातों भास्कर परम तप्त हो उठते हैं। जलराशि के पान करने के कारण उत्तरोत्तर अधिक उद्दीप्त होनेवाली अनेक सहस्र रश्मियों से समन्वित वे सूर्यवृन्द समस्त वसुन्धरा को दग्ध करते हुए सारे आकाश मण्डल में प्रकाशित होते हैं। उन सबों के परम प्रखर प्रताप से दग्ध होती हुई वसुन्धरा पर्वतों, नदियों एवं समुद्रों समेत सूखी हो जायगी, कहीं पर आहर्ता के चिन्ह भी शेष न रहेंगे। चारों ओर से विचित्र रंग विरंगी परम तेजस्विनी उन सूर्य रश्मियों से समस्त पृथ्वी मण्डल, ऊपर नीचे सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। सूर्य के प्रताप से उत्पन्न होने वाली अग्नियाँ इस प्रकार जब बहुत अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जातो हैं, तब परस्पर मिल कर एक ज्वाला के रूप में परिणत हो जाती है। एक मण्डलाकार स्वरूप धारणकर वह अग्नि चारों लोकों को अपने परम तेज से शीघ्र ही भस्म कर देती है, उस समय सभी लोकों का विनाश हो जाता है, सभी स्थावर जंगम जीवनिकाय विलीन हो जाते हैं, पृथ्वी वृक्षों एवं तृणों से विहीन होकर कच्छप की पीठ की भाँति हो जाती है। चारों ओर से इस प्रकार वृक्षादि रहित जगत् एक भाड़ की तरह दिखाई पड़ता है, सारा आकाश मण्डल ज्वालाओं से देदीप्यमान होजाता है, पाताल में जो जीव समूह रहते हैं, महान् समुद्रों में जिन जन्तुओं का निवास रहता है, वे भी विलीन होकर पृथ्वी रूप में परिणत होजाते हैं। सभी जीवों में व्याप्त रहनेवाले अग्निदेव सातो द्वीपों, पर्वतों, समस्त वर्षों (देशों) एवं महासमुद्रों तक को भस्म कर देते हैं। सर्वत्र व्याप्त अग्नि उस समय जब समुद्रों, नदियों, पातालस्थ प्रदेशों से जलरासि का पान करते हुए परम जाज्वल्यमान होकर पृथ्वी का आश्रय लेती है, तब महान् संवर्तक नामक अग्नि पर्वतों का अतिक्रमण कर घोर रूप हो समस्त लोकों का विनाश करने लगती है। पृथ्वी का भेदन कर वह रसातल को शुष्क कर देती है, पाताल के सभी प्रदेशों को भस्म कर वह नागों का लोक जला देती है। निम्न भूमण्डल का दहन करने के उपरान्त ऊपर आकाशस्थ प्रदेशों एवं पिंडों का दहन करती है, उस समय महान् संवर्तक की ज्वालाएँ सहस्रों, लाखों अरबों योजनों तक ऊपर को उठती हैं। गन्धर्वों पिशाचों, सर्पों एवं राक्षसों के आश्रयों को सर्वांशतः भस्म करने के उपरान्त गोलोक को भी वह भस्म कर देती है। इस प्रकार कालाग्नि घोर स्वरूप धारण कर भू, भुव स्व एवं मह— इन चारों लोकों को सर्वांशतः भस्मावशेष कर देती है! नीचे ऊपर सर्वत्र अग्नि से परिव्याप्त होकर धीरे-धीरे यह समस्त जगन्मण्डल तेजोमय होकर एक तपाये हुए लोहे के पिण्ड की भाँति प्रकाशमान होता है। उसके वाद हाथियों के समूहों के समान आकार वाले, विद्युतों से सुप्रकाशित संवर्तक नामक मेघगण घोररूप धारण कर आकाश मंडल में उठ पड़ते हैं। उनमें कुछ नीचे कमल के समान श्यामल वर्ण के, कुछ कुमुदिनी के समान श्वेत वर्ण के, कुछ वैदर्भ मणि के समान, कुछ इन्द्रनील के समान, कुछ कुन्द और शंख के समान अतिशय श्वेत, कुछ काजल के समान काले, कुछ धूएँ के समान अतिशय काले, कुछ पीले, कुछ गधे के समान धूसरित रंगवाले, कुछ लाल के समान रक्तवर्ण वाले, कुछ मैनशिल के समान और कुछ कबूतरों के समान वर्ण वाले रहते हैं। यही नहीं कुछ इन्द्रगोप (एक बरसाती कीड़ा

जो लाल रंग का होता है।) के समान अतिशय रक्त वर्ण के मेघ आकाश मण्डल में दिखाई पड़ते हैं। कुछ ग्रामों एवं पृथ्वी खण्ड के समान भीषण, कुछ हाथियों की पंक्ति के समान विशाल, कुछ पर्वतों के समान विशाल, कुछ पर्वतों के समान भीषण, कुछ चट्टानों की तरह विस्तृत मेघ भी होते हैं। कुछ की आकृति कुण्डों की तरह गहरी दिखाई पड़ती है, कुछ मछलियों के समूहों से व्याप्त दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार अनेक रूप धारण कर कठोर कर्कश गर्जन करनेवाले वे मेघगण सारे आकाश मण्डल व्याप्त कर लेते हैं। सूर्यात्मक वे मेघगण घोर गर्जन करते हुए सात भागों में विभक्त होकर उस अग्नि को शान्त करने लगते हैं। बड़े वेग से जल राशि बरसाते हुए वे मेघगण उस परम घोर अमङ्गलकारी अग्नि को सर्वत्र नष्ट कर देते हैं। उस अनन्त जल राशि से समस्त जगन्मण्डल पूर्ण हो जाता है, अग्नि का सारा तेज जल से शान्त हो जाता है, वह जल में प्रविष्ट होकर विलीन हो जाती है। अग्नि के नष्ट हो जाने के उपरान्त समस्त ज्वलनात्मक कार्यों के परिणाम से उत्पन्न पर्जन्य गण सौ वर्षों तक अपनी अकूत जलराशि की वृष्टि द्वारा समस्त जगन्मण्डल को प्लावित करते हैं। स्वयम्भू की प्रेरणा से प्रेरित होकर वे अपनी धाराओं से जगत् को पूर्ण कर देते हैं। कुछ पयोद अपनी जल राशि से मर्यादा को भी अतिक्रांत कर देते हैं। उस समय पृथ्वी के समस्त द्वीप, पर्वत एवं प्रदेश जल से आच्छादित होजाते हैं। सूत कहते हैं, विप्रवृन्द! पर्जन्यों से वृष्टि द्वारा बरसाया गया जल समूह, जितना भी होता है, जाकर समुद्र में प्रवेश करता है, और वहाँ सूर्य की किरणों से पिया जाता है, सूर्य की किरणों से पिये जाने के बाद वह जल बादलों में स्थित होता है। फिर वही पृथ्वी पर गिरता है, और फिर उसी से सारे समुद्र भर जाते हैं और भर कर अपनी मर्यादा को भी बाँध जाते हैं, जिसके कारण पर्वत समूह छिन्न भिन्न होकर गिर पड़ते हैं, पृथ्वी पानी में छिप जाती है। अस्तु ? इस प्रकार जब मेघगण आकाशमण्डल में स्थित होकर वृष्टि से समस्त जगन्मण्डल को व्याप्त कर देते हैं, तब सहसा महान् वायु घोर स्वरूप धारण कर उन बादलों को चारों ओर से आकाश में घेर लेता है, उस महान् भीषण, एक समुद्र के रूप में परिणत जगत् के सारे स्थावर जंगमात्मक जीव निकाय नष्ट हो जाते हैं, और ऐसी अवस्था में एक सहस्र युग व्यतीत हो जाताहै, इसी अवस्था को कल्प कहते हैं। पण्डित लोग उस स्थिति को, जब कि समस्त लोक जल राशि से घिर जाते हैं, एकार्णव (एक समुद्र) कहते हैं। उस एकार्णव में पृथ्वी, आकाश अथवा वायु का कोई विशेष स्थान वा सन्निवेश महीं मालुम पड़ता, सब पृथक् अस्तित्व मिट जाता है, सभी एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं, कौन क्या है—यह कुछ नहीं मालूम पड़ता पार्थिव (पृथ्वी सम्बन्धी) सामुद्र (समुद्रीय) एवं हैम (सुवर्ण सम्बन्धी, तैजस्) जलराशि चारों ओर प्रवाहित होती हुई उस समय एक मात्र सलिल (जल) की पदवी धारण करती है, अर्थात् उनकी अलग सत्ता नहीं रह जाती। समस्त जलराशि केवल अनवरत इधर उधर आती जाती रहती है—ऐसा कहा जाता है, समुद्र के रूप में परिणत वह जलराशि समस्त महीमण्डल को अच्छादित कर लेती है। भा शब्द प्रकाश और व्याप्त करने के अर्थ में व्यवहृत होता है, इस समस्त जगन्-मण्डल के भस्म हो जाने के बाद

Funding by IKS-MoE

अपनी व्याप्त एवं प्रभा से सब ओर प्रकाशित होता है, अतः उसका नाम अम्भ (जल) कहा जाता है, यही इस नाम के पड़ने का कारण है । अर् धातु अनेकत्व एवं शीघ्रत्व को प्रकट करता है, एकार्णव होने पर यतः वह जलराशि शीघ्रता से नहीं चलती, अतः उसका नाम नार कहा जाता है । एक सहस्र युग के समाप्त होने पर ब्रह्मा का एक दिन व्यतीत होता है, उतने ही समय तक यह समस्त जगत् एकार्णव के रूप में परिणत रहता है, उस अवधि में प्रजापति ब्रह्मा के समस्त व्यापार निवृत्त हो जाते हैं । इस प्रकार महान् एकार्णव में जब समस्त स्थावर जंगमात्मक जगत् नष्ट हो जाता है, तब सहस्रनेत्र, सहस्रचरण, सहस्रशीर्षा, सुन्दर मनवाले सहस्रचक्षु, सहस्रमुख, सहस्रवचन बोलनेवाले, सहस्रबाहु, त्रयी (वेदत्रयी,) पथानुगामी आदित्य, के समान प्रखर तेजस्वी स्वरूपवाले, समस्त भुवनरक्षक, अपूर्व, अद्वितीय, अपने अनुपम तेज से सबको अभिभूत करनेवाले, महान् अंधकार रूप अज्ञान से परे, हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा स्थित रहते हैं । महामहिमामय भगवान् उस समय जबकि एक सहस्र बार चारों युग व्यतीत हो जाते हैं, समस्त जगन्मण्डल जलराशि में डूब जाता है, शासन करने की इच्छा से अपनी महारात्रि की कल्पना करते हैं, जो महान् अंधकार से पूर्ण रहती है । जिस समय चारों प्रकार की प्रजाओं को उस विशाल अण्ड में परिणत करके (सब का संहार करके) महात्मा प्रजाप्रति ब्रह्मा शयन करते हैं, उस समय उनको केवल सप्तर्षिगण देखते रहते हैं । वे भृगु आदि महात्मा ऋषिगण उस समय जनलोक में निवास करते हैं, परम तपस्या के फलस्वरूप उन्हें दिव्य चक्षु की प्राप्ति हुई रहती है । इनके विस्तृत लक्षणों की चर्चा पूर्व प्रसंग में कर चुका हूँ । ये महात्मा गण अपने दिव्यनेत्रों से सत्यादि सातों लोकों को देखते रहते हैं । भगवान् ब्रह्मा का दर्शन उन्हें महाबलशाली रात्रियों में होता है । अपनी रात्रि के आने पर ब्रह्मा जिस समय सुषुप्तावस्था में स्थित रहते हैं, उस समय सातों ऋषि उन्हें देखते हैं । समस्त कल्पों के अन्त में एक मात्र भगवान् ब्रह्मा ही शेष (परमेष्ठी) रहते हैं, अतः उन्हें आद्य (सर्वप्रथम) कहा जाता है । सब कुछ करने धरनेवाले महान् तेजस्वी भगवान् ब्रह्मा अपनी रात्रि में आत्मा में सबको समेट कर महान् एकार्णव जगत् में, जब कि चारों ओर घोर अन्धकार विद्यमान रहता है, निवास करते हैं । तदनन्तर जब रात्रि व्यतीत हो जाती है तब वे जाग्रत होते हैं, और सृष्टि करने की इच्छा से पुनः मन का संयोग करते हैं । ॥ ११६ – १९५ ॥ ।

इसी प्रकार ब्रह्मा के नैमित्तिक प्रलय में प्रजापति ब्रह्मा के उपशान्त एवं समस्त लोकों के विनष्ट हो जाने पर सभी जीवनिकाय अपने शरीरों से वियुक्त हो जाते हैं , सूर्य की किरणों से सभी जीव यहाँ तक कि देवता ऋषि एवं बड़े बड़े मुनि गण भी भस्म हो जाते हैं । इतना ही नहीं गन्धर्व एवं पिशाचादि योनियों में उत्पन्न भूत गण भी कल्पान्त में भस्म होकर जनलोक का आश्रय लेते हैं । उस समय जो तिर्यक् योनि में उत्पन्न होनेवाले प्राणी रहते हैं, अथवा जिनका घोर नरकादि लोकों में निवास रहता है, वे भ दग्ध हो कर निष्पाप हो जाते हैं, और जन लोक में विद्यमान होते हैं । अन्त में जब ब्रह्मा की इस महारात्रिका अवसान होता है, तब वे सब जीव पुनः उत्पन्न होते हैं । ऋषिगण, मनुगण देवगण एवं

Funding by IKS-MoE

प्रजा, इन सब की यही गति होती है उस समय उन सिद्धि प्राप्त करने वालों का भी विनाश एवं उत्पन्न होना बतलाया जाता है जिस प्रकार इस लोक में सूर्य का उदय होना तथा अस्त होना निश्चित कहा जाता है, उसी प्रकार समस्त जीवों का भी जन्म लेना और मृत्यु प्राप्त करना देखा जाता है। समस्त जीवों के इस महान् विनाश के बाद पुनः भव अर्थात् उत्पत्ति होती है, इसी लिए इस लोक का नाम संसार कहा जाता है। जिस प्रकार वर्षाऋतु में वे वस्तुएँ अपने आप उत्पन्न हो जाती हैं, उसी प्रकार प्रलय के प्रत्येक कल्पों में जिन चराचर जीवों का जो-जो स्वरूप रहता है, जैसा जैसा आकार-प्रकार रहता है, ब्राह्म रात्रि के अवसान के उपरान्त पुनः नये कल्प का आरम्भ होने पर वे उसी प्रकार के स्वरूप आकार एवं प्रकार में उत्पन्न देखे जाते हैं। चराचर जीव वृन्द, प्रजाकर्त्ता, प्रजापति, महायोगी, एवं महान् ऐश्वर्य शाली भगवान् ब्रह्मा के शरीर में प्रवेश करते हैं और उसी से पुन. बाहर निकलते हैं। प्रत्येक कल्प के आदिमकाल में व्यक्त एवं अव्यक्त उभय विध उपाधिधारी देवाधिदेव भगवाम् ब्रह्मा ही समस्त जीव समूह की सृष्टि करते हैं, इस चराचर जगत् में जो कुछ भी है, वह उन्हीं का बनाया हुआ इस महीतल में प्रथम प्रवर्तित जल राशि जिस मार्ग का आश्रय लेकर प्रयाण करती है, अन्यान्य जल राशियाँ भी उसी पूर्व प्रथित पथ पर प्रयाण करती हैं। मनुष्य गण, दूसरे शरीर की भवितव्यता (आवश्यक प्राप्ति) के कारण एवं रविरश्मियों के वशीभूत होकर, अपने-अपने शुभाशुभ कार्यकलापों के अधीन उसी कर्म के निर्दिष्ट पथ पर विचरण करते हुए ऊर्ध्व अथवा निम्न लोकों में गमन करते हैं। जो देवगण, मनुगण, प्रजापति एवं अन्यान्य स्वर्गस्थ सिद्धिप्राप्त पुरुष हैं, वे भी भवितव्यता वश अपने अपने धर्म की मर्यादा के अनुरूप स्वभावतः जन्म धारण करते हैं। ॥१९६—२१०॥

ऋषिवृन्द ! अब इसके उपरान्त मैं प्रलय काल के विषय में बतला रहा हूँ। जो चौदह मन्वन्तर होते हैं, उनको बतला चुका। साथ ही उनमें होनेवाली प्रजाओं की सृष्टि भी देवताओं के साथ बतला चुका हूँ। वे सभी मन्वन्तर एक सहस्र युगों के होते हैं। इसी प्रकार दो सहस्र युगों के व्यतीत होने पर एक कल्प की समाप्ति होती कही जाती है। इस अवधि को ब्रह्मा का एक दिन समझना चाहिये। उसकी संख्या के बारे में विस्तार पूर्वक बतला रहा हूँ, सुनिये। एक लघु अक्षर के उच्चारण में जो समय लगता है उसे निमेष कहते हैं, मनुष्य की आँख की झपकी में जो समय लगता है, उसे भी निमेष कहते हैं। ऐसे पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा कही जाती है। पाँच क्षण का एक लव होता है, बीस काष्ठा का तीन लव होता है। मतान्तर में साढ़े सात प्रस्थ का एक लव होता है, तीस लव की एक कला होती है, तीस कला का एक मुहूर्त होता है, तीस मुहूर्त का एक दिन रात होता है—एक दिन रात में छ सौ दो कलाएँ होती हैं। इन्हीं संख्याओं से चन्द्रमा और सूर्य की गति जाननी चाहिये, पन्द्रह निमेष की एक काष्ठा और तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त होता है, किन्हीं किन्हीं के मत से चालीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है। जाननेवालों ने इन सब के यही प्रमाण निश्चित किये हैं। जल द्वारा भी एक प्रकार से परिमाण का निश्चय होता है, मागधमान के अनुसार तेरह पल-जल का एक प्रस्थ होता है, ऐसे चार प्रस्थों

Funding by IKS-MoE

का एक नालिक घट होता है । एक कलश में चार अंगुलों पर चार सुवर्णमाष के समान छिद्रों द्वारा दिन और रात भर में प्रतिमुहूर्त दो नालिक जल का क्षरण होता है । सूर्य की गति की न्यूनता के रहते हुए भी सभी ऋतुओं में एक दिन रात छ सौ से कुछ अधिक कलाओं वाला होता है । यह दिन मनुष्यों का है, नाक्षत्रिक दिन रात का परिमाण छ सौ दस कलाओं का होता है । यही एक सावन का भी मान हैं । इस मान से बारह मास का एक मानव वर्ष कहा जाता है । उतना ही एक दिव्य वर्ष का मान है—ऐसा शास्त्रों का निश्चय है । इसी दिन मान से मास, अयन एवं वर्ष आदि की गणना होती है, ये संज्ञाएँ ब्रह्मा के एक दिन की उपलक्षण मात्र हैं । कलाओं द्वारा परिगणित होने के कारण समय काल नाम से पुकारा जाता है । एक ब्राह्म दिवस एक करोड़ बीस लाख नव सहस्र से अधिक दिव्य वर्षों का होता है । इस कथन से ऋषिवृन्द परम विस्मित हो उठे, उन्हें यह परम अद्भुत बात मालूम पड़ी, काल संख्या विषयक जिज्ञासा की शान्ति के लिए पुनः उन सबों ने पूछा ॥ २११–२२७ ॥

ऋषिगण बोले:—हम लोग संक्षेप में मानव मान से—सम्मत संख्या द्वारा प्रलय का परिमाण सुनना चाहते हैं, आप छोटे छोटे पदों में इसका संक्षिप्त परिचय दीजिये । ऋषियों की बात सुनकर लोक हितैषी परम ऐश्वर्यशाली, भगवान् वायु, जिन्हें दिव्य नेत्र प्राप्त थे, संक्षेप में कथा का प्रारम्भ करते हुए बोले । लौकिक दिन रात का प्रमाण मैं आप लोगों को बतला चुका हूँ, उन्हीं के माध्यम से ब्राह्म वर्ष के पूर्व उनके दिवस का परिमाण बतला रहा हूँ । मानव के चार सौ बत्तीस करोड़ उन्यासी लाख अस्सी सहस्र वर्षों में प्रलय होता है, मानव मान से इतने ही वर्षों बाद प्रलय की अवधि कही गई है । प्रलय के अवसर पर सात सूर्य उदित होते हैं, सभी लोकों में चारों प्रकार की प्रजाएँ महाभूतों में विलीन हो जाती हैं, सारा लोक जल में मग्न हो जाता है, स्थावर, जंगम, जीव निकाय नष्ट हो जाते हैं । संहार कार्य समाप्त कर प्रजापति शान्त हो जाते हैं, दग्ध लोक समूहों में आलोक (प्रकाश) का सर्वथा अभाव हो जाता है, घोर नैश अन्धकार में संसार सभी ओर से आवृत हो जाता है । ईश्वर में अधिष्ठित यह समस्त जगत् एक महासमुद्र रूप में परिणत हो जाता है । जब तक भगवान् का दिन रहता है तब तक एकार्णव रूप जगत् की स्थिति जाननी चाहिये, उसके बाद उनकी रात्रि केवल जलावस्था तक रहती है । इसके उपरान्त दिन कहा जाता है । ये दिन और रात क्रम से परिवर्तित होते हैं । इस प्रकार उन परम ऐश्वर्यशाली का एक दिन रात निखिल प्राणि समूहों के प्रलय की अवधि तक कहा जाता है । इस समस्त त्रैलोक्य में जितने भी चराचर भूत (जीव) समूह हैं, वे सब के सब विनष्ट होजाते हैं, इसीलिये प्रलय का नाम आभूतसंप्लव कहा जाता है । प्रजाओं में सब से प्रथम भूत (उत्पन्न) हुए थे, अतः प्रजापति भूत हैं, उन्हीं से सब चराचर जगत् का संप्लव (विनाश) होता है; इसलिये भी प्रलय को आभूतसंप्लव कहते हैं । शाश्वत एवं अमृतत्व शब्द भी इस आभूतसंप्लव शब्द के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं । अतीत, भविष्य एवं वर्तमान प्रजाओं का त्रैकालिक आयु परिमाण दिव्य संख्या से अपरार्द्ध कहा जाता है, प्रजापति ब्रह्मा की परम आयु दो परार्द्ध काल है । इतने ही समय तक उनकी स्थिति कही जाती है । इसके उपरान्त परमेष्ठी ब्रह्मा का

प्रति सर्ग होता है । जिस प्रकार वायु के झोंके में दीप की ज्योति शान्त हो जाती है, उसी प्रकार प्रतिसर्ग द्वारा ब्रह्मा शान्त होजाते हैं ! उस समय जब अव्यक्त में महत् विलीन हो जाता है और महदादि सब महेश्वर में तद्रूप हो जाते हैं, तब गुण साम्य हो जाता है । प्रलय का वृत्तान्त मैं आप लोगों को सुना चुका, यही ब्रह्मा का नैमित्तिक प्रलय कहा जाता है, इसका वर्णन मैंने संक्षेप ही में किया है, अब बतलाइये आप लोगो को पुनः क्या बतलाउँ ? जो व्यक्ति इस वृत्तान्त को धारण करता है, अथवा नित्य श्रवण करता है, वह महान् सिद्धि प्राप्त करता है, क्योंकि इस के श्रवण एवं कीर्तन से भी महान् फल की प्राप्ति होती है । इसके माहात्म्य से ब्राह्मण को विद्या प्राप्ति होती है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन प्राप्त करता है, शूद्र सुख लाभ करता है । ॥ २२८—२४६ ॥ ।

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते मन्वन्तरनिसर्गादिकथनं नाम शततमोऽध्यायः । ॥ १०० ॥

एक सौ एक अध्याय

भूर्लोकादि की व्यवस्था

वायु बोले:—ऋषिगण ! जो सूक्ष्म दर्शी असामान्य चरित्रबल सम्पन्न द्विजाति वृन्द, यज्ञादि का सुन्दर अनुष्ठान कर शास्त्र सम्मत विशेष-विशेष धर्मों का पालन करते हैं, वे सब देवताओं के साथ महर्लोक में निवास करते हैं । मैंने पूर्व प्रसंग में जिन अतीत, भविष्य एवं वर्तमान कालीन परम यशस्वी चौदह मनुओं का वर्णन किया है, वे ऋषियों, देवताओं गन्धर्वों एवं राक्षसों के साथ प्रत्येक मन्वन्तरों में पुनः पुनः जन्म धारण करते हैं । देवगण सप्तर्षि, मनुगण एवं पितर गण ये सभी धार्मिक विचारों वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि के साथ क्रमशः अतीत होकर महर्लोक में आश्रय ग्रहण करते हैं । अभिमान रहित, सत्यवादी, योगपरायण, श्रौतस्मात कर्मों में श्रद्धा रखनेवाले, वर्णाश्रमाचार में निष्ठावान् ब्राह्मणादि प्रजाओं के साथ वे लोग मन्वन्तर के समाप्त हो जाने पर विधि निर्दिष्ट काल के बाद अपने अपने अधिकारों से विनिवृत्त होकर महर्लोक में आश्रित होते हैं । ॥ १—६ ॥ ।

ऋषियों ने पूछा:——परम समर्थ मातरिश्वन् ! आप जिस महर्लोक की चर्चा कर रहे हैं, वह किस प्रकार का है, हम समझते हैं, प्रत्येक लोकों में बहुसंख्यक पुण्यात्मा जब निवास करते होंगे; अतः उन महात्माओं के निवास के जितने लोक हैं और वे जिस प्रकार जलाये जाते हैं, उन्हें आप बतलावें, क्योंकि आप हम सबों पर प्रसन्न हैं, और इन सब बातों को यथार्थ रूप में जानते हैं । विनत मुनियों के इस प्रकार कहने पर तत्त्ववेत्ता वायु ने मधुर बाणी में कहा । ॥ ७—९ ॥ ।

वायु बोले:—ऋषिवृन्द ! महर्षियों ने ऐसे चौदह लोकों को बतलाया है, जिनमें पुण्यात्मा

Funding by IKS-MoE

मानवगण निवास करते हैं, उनमें सात को कृत और सात को अकृत लोक कहते हैं। भू आदि सात लोक कृत हैं। सात प्राकृत लोक अकृत कहे जाते हैं। स्थानाभिमानी देवताओं के साथ कृत लोकों की स्थिति है। पृथ्वी, अन्तरिक्ष, दिव्य और मह—ये चारों लोक आर्णविक नाम से प्रसिद्ध हैं। ये क्षय और वृद्धिवाले लोक कहे जाते हैं। जो लोक क्षय वृद्धि रहित हैं उनके विषय में बतला रहा हूँ। नैमित्तिक लोक जितने हैं, वे प्रलय पर्यन्त स्थिर रहने वाले हैं। जन, तप और सत्य—ये तीन लोक एकान्तिक और सत्त्वगुण सम्पन्न हैं, इनकी स्थिति कल्प पर्यन्त रहती है। सात व्यक्त कहे जाने वाले लोकों का वर्णन कर रहा हूँ, उन सब में प्रथम भूलोक है, दूसरा भुव, तीसरा स्वर्, चौथा मह, पाँचवाँ जन, छठाँ तप और सातवाँ सत्य है। इनके बाद निरालोक (घोर अन्धकार है)। ब्रह्मा ने भूः—ऐसा उच्चारण कर भूर्लोक की, भुवः—ऐसा उच्चारण कर भुवर्लोक की, स्वः ऐसा उच्चारण कर स्वर् लोक की सृष्टि की। भू भुंवः स्व—इन्हीं तीनों महाव्याहृतियों से उक्त तीनों की उत्पत्ति हुई है। भू की पार्थिव लोक नाम से भुव की अन्तरिक्ष लोक नाम से और स्वर् की स्वर्ग लोक नाम से प्रसिद्धि है—ऐसा पुराणों में निश्चित किया गया है। अग्नि भूतों का अर्थात् पृथ्वीस्थ समस्त पदार्थों का अधिपति है, इसी कारण उसे भूतपति के नाम से लोग जानते हैं। अन्तक्षि का अधिपति वायु है, इसी कारण से वायु भुवस्पति नाम से प्रसिद्ध है। भव्य अर्थात् स्वर् लोक का अधिपति सूर्य है, इसी कारण वह दिवस्पति नाम से विख्यात है। ब्रह्मा के 'महाः' (महान्)—ऐसा उच्चारण करने पर महर्लोक की सृष्टि हुई थी, देवगण अपने अधिकार काल से विनिवृत्त होकर महर्लोक में जाकर अवस्थान करते हैं। जन लोक उक्त लोकों में पाँचवाँ है, इसी लोक से स्वायम्भुव मनु आदि की प्रजाओं का जनन (उत्पत्ति) होता है, अतः उसकी जनलोक नाम से प्रसिद्धि है। पूर्व प्रसंग में स्वायम्भुव मनु आदि की जिन प्रजाओं का विस्तारपूर्वक वर्णन किया जा चुका है वे सब, कल्प के अवसान काल में, जबकि समस्त लोक दग्ध हो जाते हैं, तपोलोक में आश्रय प्राप्त करते हैं, क्योंकि यह उस समय भी विद्यमान रहता है। ऋभु एवं सनत्कुमारादि देवगण जो परम ब्रह्मचारी एवं ऊर्ध्वरेता हो गये हैं, कठोर तपस्या द्वारा आत्मा को जिन्होंने वश्य कर लिया है, वे जिस लोक में अवस्थित रहते हैं उसको तपोलोक कहते हैं—यह भी तपोलोक का एक लक्षण है। सत्य—यह ब्रह्मा का शब्द है, इसका प्रयोग सत्ता (अस्तित्व) मात्र में होता है, इसी कारण से ब्रह्मलोक सत्यलोक के नाम से प्रसिद्ध है, यह परम प्रकाशमय लोक उक्त सातों लोकों में अन्तिम अर्थात् सातवाँ है। समस्त देवगण गन्धर्वों, अप्सराओं, यक्षों, और गुह्यकों के साथ स्वर्लोक में निवास करते हैं। सर्प, भूत, पिशाच, नाग एवं मनुष्यगण पृथ्वी लोक के निवासी हैं। मरुद्गण, वायुगण, रुद्रगण, कुछ देवगण, दोनों अश्विनीकुमार ये यद्यपि किसी निकेतन में निवास करने वाले नहीं हैं; पर इनका प्रमुख निवास स्थल भुवर्लोक है। स्वर्ग लोक में निवास करने वाले आदित्य गण, ऋभुगण, विश्वेदेव गण, साध्यगण पितर गण, एवं अंगिरा गोत्रीय ऋषिगण, भी, भुवर्लोक में आश्रय प्राप्त करते हैं। ये सभी देवादिगण विमानों में चढ़ कर ताराओं एवं ग्रहपिण्डों का आश्रय ग्रहण कर भुवर्लोक में निवास करते हैं। ब्रह्मा के सुभुर्वस्स्वरादि

शब्दों के उच्चारणों द्वारा निर्मित लोकों की चर्चा आप लोगों से कर चुका। भूर्लोकादि महर्लोकान्त (भूलोक से लेकर महर्लोक तक) जिन लोकों की चर्चा ऊपर की गई है, वे सब तन्मात्राओं से आरम्भ किये गये हैं ये परस्पर शुद्ध हैं, एक दूसरे से मिले हुये नहीं हैं। शुक्र से लेकर चाक्षुष मनु पर्यन्त, जो पृथ्वी लोक में आश्रय प्राप्त करनेवाले व्यतीत हो चुके हैं, वे भी कल्पान्त के अवसर पर इस चतुर्थ महर्लोक में जाकर अवस्थान करते हैं। ब्रह्मा की महा व्याहृतियों से उत्पन्न समस्त लोकों का विवरण क्रम पूर्वक कह चुका। प्रलय में भू से लेकर महर्लोक तक जब सभी लोक सात सूर्य की रश्मियों द्वारा दग्ध हो जाते हैं, तब मरीचि, कश्यप, दक्ष, स्वायम्भुव, अङ्गिरा, भृगु, पुलस्त्य, पुलह क्रतु आदि प्रजापति गण एक साथ जन लोक में निवास करते हैं। ऋभु एवं सनत्कुमारादि निःसत्त्व, निर्मम ऊर्द्ध्वरेता संसार विरागी ऋषिगण तपो लोक में निवास करते हैं। सावर्णादि चौदह मनु गणों के अधिकार काल की पुनरावृत्ति इसी तपोलोक से कही जाती है। उस महान् लोक विनाश काल के अवसर पर जन लोकादि निम्न श्रेणी के लोकों में निवास करनेवाले प्राणिवृन्द अपने अपने योग, तप, सत्य आदि का आत्मा में समाधान करके उस तपोलोक में आश्रय ग्रहण करते हैं। सत्य सातवाँ लोक है, वहाँ जाकर पुनरावृत्ति नहीं होती, इस सत्य लोक का कभी विनाश नहीं होता—इसी का दूसरा नाम ब्रह्म लोक भी है, परिमाणों के अनुसार भूलोक मध्यवर्ती माना जाता है, भूमि तल से लेकर सूर्य पर्यन्त भुवर्लोक की स्थिति कही जाती है, सूर्य से लेकर ध्रुव पर्यन्त स्वर्ग लोक की स्थिति है, इसे दिव लोक भी कहते हैं। ध्रुव से लेकर जनलोक पर्यन्त महर्लोक है, इसी प्रकार अन्यान्य लोकों की भी स्थिति है। अब उन परम विख्यात सातों लोकों की सिद्धियों की चर्चा कर रहा हूँ। भूलोक में निवास करनेवाले सब अन्नभक्षी रसास्वादी हैं, भुवर्लोक में निवास करनेवाले सोमपायी हैं, अर्थात् वे सोम का पान करते हैं, स्वर्ग लोक निवासियों का आहार आज्य पान है। जो चतुर्थ महर्लोक में निवास करते हैं, उनकी पाँच मानसिक सिद्धियाँ कही जातीं हैं, मन में सङ्कल्प मात्र करने से उन्हें समस्त मनोवांच्छित सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। समस्त देवगण सभी प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करके परस्पर सन्तुष्टि लाभ करते हैं। वर्तमान देव अतीतकालीन देवताओं के लिए, भविष्यत्कालीन देव वर्तमान देवताओं के लिए। इस प्रकार परवर्ती काल में उत्पन्न होनेवाले अपने पूर्व वर्ती की सन्तुष्टि के लिये इन यज्ञादिकों का अनुष्ठान करते हैं। देवगणों के व्यतीत होने पर उनका सम्बन्ध निवृत्त हो जाता है। उन महर्लोक निवासियों का अधिकार काल जब समाप्त हो जाता है, उस समय भी उनकी परम विशुद्ध मानसी सिद्धियों की परम्परा उनमें विद्यमान जाननी चाहिये। विप्रवृन्द! आप लोगों को जनलोक तथा उससे निम्नवर्ती चारों लोकों की चर्चा संक्षेप में सुना चुका पुनः उसी का विस्तार पूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। ॥१०—४८॥

वायु ने कहा:—ऋषिगण। मरीचि, कश्यप, दक्ष, वसिष्ठ, अङ्गिरा भृगु, पुलस्त्य पुलह और क्रतु आदि ऋषिगण सर्व प्रथम ब्रह्मा के मानस पुत्रों के रूप में उत्पन्न होते हैं, और अपनी-अपनी प्रजाओं का विस्तार करके पुनः जनलोक में आश्रय लेते हैं। कल्प के अवसान में संवर्तक नामक अग्नि की प्रचण्ड

Funding by IKS-MoE

ज्वाला से जब भू भुव स्वर मह—ये चारो लोक प्रज्वलित हो उठते हैं, इनमें सब ओर से अग्नि फैल जाती है, तब महर्लोक निवासी यामादि देवगण सूक्ष्म शरीर धारण कर जनलोक का आश्रय ग्रहण करते हैं, और तदुपरान्त वहीं पर निवास करने लगते हैं। वहाँ पहुँच कर वे जनलोक निवासियों के समान सामर्थ्यशील, स्वरूपवान् एवं ऐश्वर्यशाली हो जाते हैं और उसी रूप में जगत् के महान् विनाशकाल तक स्थित रहते हैं। अव्यक्त योनि भगवान् ब्रह्मा की महारजनी के व्यतीत होने पर जब पुनः उनके दिन का प्रारम्भ होता है तब वे स्वायम्भुव आदि मनु, मरीच आदि साधक ऋषिगण अपने-अपने पूर्ववर्ती पुरुषों की मृत्यु के उपरान्त पूर्वक्रम से पुनर्जन्म ग्रहण करते हैं। तदनन्तर यामादि देवगण पूर्वकथित ज्येष्ठ कनिष्ठादि क्रम से जन्म ग्रहण करते हैं। देववंश में देवताओं की सात विभूतियों का स्मरण किया जाता है। उनमें से चार कल्पज देवता व्यतीत हो चुके हैं, तीन शेष हैं। देवता भी उक्त क्रम से दस बार पुनःपुनः जन्म मरण को प्राप्त होकर संसार के सभी पदार्थों एवं भावों में अनित्यता का दर्शन करते हैं, तदनन्तर भावी की बलवत्ता से एवं अपने किये गये पुण्य कर्मों के प्रभाव से वे प्रशांत चित्त हो जाते हैं, और सभी कार्यों से निवृत्त होकर स्वस्थ मन से इस जन लोक का परित्याग कर वैराज लोक को प्राप्त होते हैं। तत्पश्चात् बहुत काल के उपरान्त नित्य योगाभ्यास परायण तपोनिष्ठ वे लोग धर्म कीतर्न के प्रभाव से उन परम धार्मिकों के वंश में जन्म ग्रहण करते हैं। और इस प्रकार उत्पन्न होकर देवत्व, ऋषित्व एवं मनुष्यत्व को प्राप्त कर उन उन स्थानों की पूर्ति करते हैं। सभी देवगण इस प्रकार दस बार जन्म ग्रहण करने के बाद वैराज नामक लोकों में आश्रय प्राप्त कर दस कल्प पर्यन्त निवास करते हैं। एक एक कल्प के पूर्ण होने पर वैराज नामक लोकों में स्थित हो कर वे देवगण पूर्व पूर्व क्रम से ब्रह्म लोक में स्थित होते हैं। वैराज के कल्पों के व्यतीत हो जाने पर वे इस ब्रह्मलोक में निवास करते हैं। कुछ लोग वैराज लोक को कल्प पर्यन्त स्थायी मानते हैं। इसी पूर्व कथित क्रमानुसार वे लोग अपने-अपने तप के प्रभाव से वैराज लोक में जा जाकर और वहाँ दस कल्प पर्यन्त निवास कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार वैराज लोक में जो लोग प्राप्त होते हैं, वे दस बार जन्म धारण कर निवृत्त होते हैं (?) इसी प्रकार देवताओं के सहस्रों युग समाप्त हो गये हैं। ऋषियों के साथ मृत्यु प्राप्त कर वे देवगण वैराज लोकों में निवास करने के उपरान्त ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते हैं। ॥ —६८॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द! देवताओं की एवं लय सृष्टि के विस्तार को क्रमानुसार नहीं बतलाया जा सकता, काल का कोई आदि नहीं है। संख्याओं की भी कोई इयत्ता नहीं है। जैसा मैं आप लोगों को अभी बतला चुका हूँ, उसमें सन्देह मत मानिये, वह सब वैसा ही हुआ है। ॥ ६९ ॥

सूत की इन बातों को सुनकर ऋषियों को बहुत सन्देह हो गया, तब वे वेदव्यास के परम बुद्धिमान शिष्य सूत से, जो पुराणों के मार्मिक स्थलों को जानने वाले थे, बोले। ॥ ७० ॥

ऋषियों ने पूछा:—सूत जी! उस वैराज नामक लोकों में निवास करने वाले जो आहार करते हैं, उनका जो पराक्रम है, जिन पदार्थों या वस्तुओं का उन्हें आश्रय प्राप्त है, जितने समय तक वे वहाँ स्थित रहते हैं—इन सब बातों को हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं, बतलाइए।' ऋषियों की इस

जिज्ञासा को सुनकर लोकार्थ तत्ववेत्ता, पौराणिक सूत जी विनयपूर्ण स्वर में बोले। ऋषिवृन्द ! धर्माचरण के कारण जो परम शुद्ध एवं निर्विकार हो जाते हैं वे लोग उस वैराज नामक लोक में दस कल्प तक निवास करते हैं। वे सब परम ज्ञानी, सूक्ष्म एवं स्वच्छ शरीर समन्वित होते हैं। अनन्त काल तक स्थित रहने के कारण उनके शरीर में भूतों का सम्पर्क नहीं रहता। दस कल्प के उपरान्त वैराज लोक से विवर्तन का अवसर जब उपस्थित होता है तब वे वैराज लोक में निवास करने वाले, शुद्धबुद्धि योगाभ्यास परायण सनत्कुमारादि, सिद्धगण उस लोक को त्यागने के लिए एक साथ ही समुत्सुक होकर परस्पर इस प्रकार का वार्तालाप करते हैं, हे महाभाग्य शालियो ! अब हम लोग प्रणव का आश्रय प्राप्त कर ब्रह्म लोक में निवास करेंगे, उससे हम सबों को विशेष कल्याण की प्राप्ति होगी। इस प्रकार परस्पर सम्भाषण करने के उपरान्त वे योगधर्मा महात्मागण योगाभ्यास द्वारा आत्मा को परमात्मा ब्रह्म में सन्नियोजित कर शान्त दीप शिखा की भाँति पुनरावृत्ति विरहित ब्रह्मपद की प्राप्ति करते हैं, और उसी स्थान पर विलीन हो जाते हैं। उस परम सुखदायिनी कल्पनाओं से परिपूर्ण अनामय ब्रह्मलोक को प्राप्तकर ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर वे अमृतत्व की सम्प्राप्ति करते हैं। यह ब्रह्मलोक वैराज नामक लोकों से छ गुना अधिक ऊपर विद्यमान है। उसकी ख्याति ब्रह्म लोक नाम से है, वहाँ ब्रह्मा पुरोहित हैं। वहाँ के सभी निवासी परम शुद्ध बुद्ध एवं तपोनिष्ठ होते हैं, प्रणव ही उनकी आत्मा होती है। ब्रह्मानन्द में निमग्न होकर वे अमृतत्व का उपभोग करते हैं। उनमें सुख दुःखादि द्वन्द्वों का उदय नहीं होता, तीनों भावों का उनमें सर्वथा अभाव रहता है, वे सब के सब परम तेजस्वी एवं आधिपत्य को छोड़कर सभी बातों में ब्रह्मा के समान प्रभावशाली होते हैं। प्रभाव, विजय ऐश्वर्य, स्थिति, वैराग्य, ज्ञानादि में ब्रह्मा ही के समान होते हैं। वे परमशुद्ध, बुद्ध ज्ञानी, क्रियाशील ब्रह्म लोक में निवास करनेवाले महात्मागण पुनर्जन्म मरणादि विरहित शुभ गति को प्राप्त कर, महा प्रलय में अपनी तपस्याओं के पूर्ण हो जाने पर ब्रह्मा ही के साथ अव्यक्त प्रकृति में विलीन हो जाते हैं। यही नित्य, अक्षय, अव्यय, परम शुद्ध अमृत पद है। इसी आवृत्ति विरहित सनातन परम पद की प्राप्ति के लिए ऊर्ध्वरेता देवता एवं ऋषिगण वेदान्तादि में निर्णीत मङ्गलमय कर्मों के अनुष्ठान में निरत रहकर शुद्धि प्राप्त करते हैं, और सतत योगाभ्यास में दत्त चित्त रहकर उसकी अन्तिम सीमा तक उपासना (साधना) करते हैं और अन्त में अपने पापमय शरीर को त्याग कर अमृतत्व की प्राप्ति करते हैं। वीतराग, ज़ित क्रोध, निर्मोह, सत्य वादी, शान्त, आत्मा को वश में रखनेवाले, जितेन्द्रिय, दयावान, संगविरहित, पवित्रात्मा, जन ही उस ब्रह्मलोक की प्राप्ति करते सुने जाते हैं। जो वीरात्मा कामना विहीन, योग परायण एवं तपस्या द्वारा समस्त पापो को नष्ट करने वाले हैं, उन्हीं के लिए ऐसे अविनश्वर लोकों की कल्पना की गई है, जहाँ पर प्राप्त होनेवाले कल्याण एवं सुख की कोई इयत्ता नहीं है यह ब्रह्म पद परम दिव्यगुण सम्पन्न एवं परम आकाश जाज्वल्यमान है, वहाँ जाकर वे अमरगण ब्रह्मा के साथ—निवास-सुख का अनुभव करते हुए शोक रहित होजाते हैं। ७१—९१

ऋषि ने पूछा:—समादरणीय सूत जी ! यह परार्द्ध क्या है ? पर किसे कहते हैं ? यह हम

लोग जानना चाहते हैं; कृपया बतलाइये। ९२।

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ? मैं पराई और पर की परिभाष्ता बतला रहा हूँ, सुनिये। एक, दस, सौ, सहस्र ये संख्यायें आप लोगों को विदित ही हैं। आगे चलकर दस सहस्र का एक अयुत जानना चाहिये। सौ सहस्र का बुद्धिमान लोग एक नियुत बतलाते हैं। दस सौ सहस्र अर्थात् दस नियुत[१] की एक कोटि होती है, दस कोटि का एक अर्वुद (अरब) होता है, सौ कोटि का एकअब्ज (पद्म) बतलाते हैं। मनीषीगण एक सहस्र कोटि का खर्व कहते हैं, दस सहस्र कोटि का एक निखर्ब होता है, सौ सहस कोटि का एक शङ्कु कहा जाता है, सहस्र-सहस्र कोटि को पुनः दस बार गुणित करने पर जो गुणनफल प्राप्त होता है उसे संख्या-तत्त्ववेत्ता लोग समुद्र नाम से पुकारते हैं। सहस्र अयुत कोटि का एक मध्य, सहस्र नियुत कोटि का एक अन्त, और सहस्र कोटि कोटि का एक परार्द्ध होता है। मनीषीगण दो परार्द्ध की एक पर संख्या मानते हैं। सौ संख्या को परिदृढ़ और सहस्र को परिपद्मक कहते हैं। उसके उपरान्त अयुत, नियुत, प्रयुत, अर्वुद, न्यर्वुद, स्वर्वुद, (खर्वुद) खर्व, निखर्व, शङ्कु, पद्म, समुद्र, मध्यम परार्द्ध और पर आदि कुल अठारह संख्यायें हैं, जो गणना के कार्यों में प्रयुक्त होतीं है। ये संख्याऐं परस्पर गुणित होंने पर सौ सौ की संख्या में परिणत हो जाती हैं। महार्षियों ने बतलाया है, ब्रह्मा के एक कल्प काल की परिमाण संख्या सृष्टि आरम्भ होने के काल से लेकर एक परार्द्ध होती है। इसके उपरान्त एक पराई काल सृष्टि रहित अवस्था में व्यतीत होता है। उसके बाद पुनः सृष्टि का प्रारम्भ होता है, इस प्रकार एक सृष्टि के आरम्भकाल से दूसरी सृष्टि के आरम्भ का काल दो परार्द्ध अर्थात् एक परकाल होता है। पर और परार्द्ध इन दोनों कालो को संख्याओं द्वारा मैं बतला चुका। भगवान् ब्रह्मा का यतः पराक्रम परम अतिशय महान् एवं (सीमा रहित) है, परम आयु है, तपस्या परम है, शक्ति परा है, धर्म परम है, विद्या परा है, धैर्य परम है, एवं ब्रह्मज्ञान, परम है, ऐश्वर्य परम है; संक्षेप में निष्कर्ष यह कि उनसे बढ़कर परम किसी भी वस्तु में कोई अन्य नहीं है, वही एक मात्र सभी वस्तुओं की परम सीमा में मर्यादा रूप से अवस्थित हैं, इसी कारण से समस्त सांसारिक पदार्थों में उन्हें ही पर पद से विशिष्ट समझना चाहिये, उनके इस महान् अधिकार-काल के आधे के भाग को इसीलिये परार्द्ध कहा जाता है। पुरुष प्रकृति एवं ब्रह्मा—ये तीनों संख्या द्वारा सर्वथा असंख्येय हैं, अर्थात् गणनाओं से इनकी इयत्ता नहीं बाँधी जा सकती। किन्तु ऐसा होने पर भी संख्याओं द्वारा इनके पारस्परिक न्यूनाधिक्य का कुछ अनुमान् किया जाता है, इसी कारण से इन्हें संख्येय कहते हैं, वस्तुतः परार्द्ध की पूर्ववर्तिनी संख्याओं की गणना की जा सकती है। उससे परवर्तिनी संख्याएँ व्यावहारिक दृष्टि से किसी प्रकार व्यक्त कर दी जाती हैं किन्तु उनकी गणना असंख्य में ही की जाती है। एक महान् राशि की इकाईयों की

---

[१] यहाँ आनन्दाश्रम की प्रति में 'अर्वुद' पाठ अशुद्ध है; शुद्ध पाठ इस प्रकार होगा, 'तथा शत सहस्राणं दशकं कोटि रुच्यते।' अनुवादक

Funding by IKS-MoE

संख्या नहीं की जाती । उसे असंख्य का ही लक्षण मानते हैं, क्योंकि उनकी गणना में सारी संख्याएँ ही समाप्त हो जाती हैं, कोई संख्या शेष नहीं रहती । परार्द्ध, पर, ब्रह्मा, प्रकृति एवं पुरुष—इन पाँचो के तात्विक निर्णय में कोई पूर्व निर्दिष्ट विधान दृष्टि गत नहीं है । केवल शुद्ध बुद्धि, दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगाभ्यास परायण लोग ही अपनी महान् शुद्धता के कारण उनके तत्व निर्णय में समर्थ होते हैं । इन सभी तत्वों को, भगवान् ब्रह्मा, समस्त ज्ञान राशि के एक मात्र आगार स्वरूप होने के कारण यथार्थतः देखते हैं । वायु की इन बातों को सुनकर ब्रह्मवेत्ता नैमिषारण्य निवासी महर्षिगण अतिशय हर्ष से आनन्दाश्रु बहाने लगे, उनके कण्ठ गद् गद् हो गये । उन सभी ब्रह्मवेत्ताओं ने मातरिश्वा से पूछा । भगवन् वायु देव ! उक्त ब्रह्म लोक जितनी दूरी पर अवस्थित है, इसकी दूरी जितने योजनों एवं कोसों में है, एवं उन योजनों और कोसों की परिभाषा क्या है—इन सब बातों की हम सब को जिज्ञासा, हो रही है, इनकी यथार्थतः जानकारी हमें कराइये । महर्षियों की इस वाणी को सुनकर वायु ने मीठे विनीतस्वर में उक्त ब्रह्मलोक के बारे में जो कुछ देखा या सुना था, क्रमानुसार बतलाना प्रारम्भ किया । ॥९३——११४॥

वायु बोले:—ऋषिवृन्द ! आप लोगों को अन्यान्य वक्तव्य विषयों को बतला रहा हूँ, सुनिये । अव्यक्त की अपेक्षा व्यक्त भाग महा स्थूल बतलाया जाता है । महत् के दस भाग जितना स्थूल भूतादि बतलाये जाते हैं, भूतादि से दस भाग अधिक स्थूल परमाणु कहा जाता है, यह परमाणु भी अतिशय सूक्ष्म होता है, इसे केवल-अनुभव द्वारा ही जाना जा सकता है । आँखों द्वारा नहीं । लोक में जो सब से सूक्ष्म परम अभेद्य वस्तु होती है, उसी को परमाणु जानना चाहिये । जालियों के भीतर घुसकर (कमरे के अन्दर) आनेवाली सूर्य की किरणों में जो अति सूक्ष्म धूल के कण दिखलाई पड़ते हैं, वही प्रमाणों में सर्व प्रथम परमाणु कहे जाते हैं । ऐसे आठ परमाणुओं का जब समवाय (मिलन) होता है, तब उसे त्रसरेणु कहा जाता है, इसे पद्मरज भी कहा जाता है । ऐसे आठ त्रसरेणुओं के मेल से रथरेणु बनता हैं, वे भी जब आठ इकट्ठे हो जाते हैं, तब बुद्धिमान् लोग बलाग्र कहते हैं । ऐसे आठ बलाग्रों की एक लिक्षा होती है, और आठ लिक्षा की एक यूका कही जाती है । आठ यूका का एक जव कहा जाता है, और आठ जव का एक अंगुल होता है । बारह अंगुलियों के पोरों की एक वितस्ति होती है, और ऐसे ही इक्कीस पोरों की एक रत्नि जाननी चाहिये । चौबीस अंगुलों का एक हाथ होता है । बयालीस अंगुल अर्थात् दो रत्नि का एक किष्कु होता है । बुद्धिमान् लोग छानबे अंगुलों का एक धनुष बतलाते हैं । यह धनुष गव्यूति अर्थात् दो कोस के परिमाण मापने में एक साधन कहा जाता है । संख्या के तत्वों के जाननेवाले लोग धनुष, दण्ड, युग और नाली को अंगुलों द्वारा एक समान बतलाते हैं, अर्थात् ये उपर्युक्त चारों परिमाण छानबे अंगुलों के कहे जाते हैं । तीन सौ धनुष परिमाण का एक नल्व कहा जाता है, और दो सहस्र धनुष की एक गव्यूति अर्थात् दो कोस होता है । आठ सहस्र धनुष का एक योजन बतलाया जाता है । इस प्रकार धनुष के परिमाण द्वारा योजन तक का मांप किया जाता है । संख्यातत्व विदों ने इसी पद्धति में योजन तक का परिमाण निश्चित किया है । इसी योजन के परिमाण द्वारा ब्रह्मलोक की दूरी

सुनिये। पृथ्वीतल से सौ सहस्र अर्थात् एक लाख योजन पर सूर्य का निवास है सूर्य से सौ सहस्र योजन दूर चन्द्रमा है। चन्द्रमा से सहस्र योजन दूर नक्षत्रों का प्रकाश होता है। मेरुमण्डल इस नक्षत्र लोक से दो लाख योजन पर अवस्थित है। इस नक्षत्र मण्डल से ऊपर एक एक ग्रह परस्पर इतनी ही दूरी पर हैं। सभी तारा ग्रहों में बुध निम्न प्रदेश चारी है, उसके ऊपर शुक्र का लोक है, उससे ऊपर मङ्गल है, उससे ऊपर बृहस्पति तदनन्तर शनैश्चर का निवास है, शनैश्चर से ऊपर एक लाख योजन पर सप्तर्षि मण्डलों का प्रकाश होता है। इन सप्तर्षियों से भी एक लाख योजन ऊपर तारामय दिव्य लघु विमान में उत्तानपाद सुत ध्रुव स्वर्ग लोक के प्रमुख चिह्न स्वरूप होकर विराजमान रहते हैं। योजनों द्वारा त्रैलोक्य की ऊँचाई की व्याख्या मैं कर चुका। सभी मन्वन्तरों में जो लौकिक यज्ञादि सत्कर्मों के अनुष्ठान इस लोक में वर्णाश्रमाचारानुमोदित ढंग से होते रहते हैं, वे ही समस्त देवयोनि में उत्पन्न होनेवाले प्राणियों की स्थिति के कारण भूत कहे जाते हैं। त्रैलोक्य की यह व्याख्या कर चुका अब इसके आगे का विवरण सुनिये। उस ध्रुव लोक से ऊपर महर्लोक की स्थिति है, जिसमें उन कल्प पर्यन्त स्थिर रहनेवाले महात्माओं का निवास रहता है। उसकी दूरी ध्रुव से एक कोटि योजन की है—ऐसा निश्चय हो चुका है। उस महर्लोक से दो कोटि योजन ऊपर जन लोक की स्थिति है, जिसमें सिद्धि के अभिलाषी ब्रह्मा के पुत्र दक्षादि कल्पपर्यन्त निवास करते हैं। जन लोक से चार कोटि योजन ऊपर तपो लोक की स्थिति स्मरण की जाती है, जिनमें भूतों के तापादि से सर्वथा विरहित वैराज नामक देवताओं का निवास कहा जाता है। तपोलोक से छः गुणित अर्थात् छः कोटि योजन ऊपर सत्य लोक की स्थिति कही जाती है, वही पुनरावृत्ति विरहित जरा-मरणादि विहीन सिद्धों का ब्रह्मलोक कहा जाता है, उस ब्रह्मलोक से उनका कभी भी पतन नहीं होता, वहाँ वे सर्वथा ब्रह्मा की उपासना में निरत रहते हैं। इस ब्रह्मलोक से अण्ड (ब्रह्माण्ड) के ऊपर भाग का परिमाण एक कोटि पचास नियुत योजन एवं निम्न भाग का परिमाण चार कोटि पैंसठ नियुत योजन कहा जाता है। इस अंश के अधो भाग में ध्रुव की स्थिति और उसी में नक्षत्र ग्रहादिकों का विचरण होता है ऊपरी भागों में किसी की भी गति नहीं सुनी जाती हैं मैंने जिस प्रकार सुना था उसीप्रकार योजनों द्वारा उपर्युक्त लोकों की दूरी आदि का वर्णन ध्रुवलोक से ऊपर स्थित आप लोगों के सम्मुख कर चुका। अब इसके उपरान्त अधोगति को प्राप्त होनेवाले जीवों के निवास स्थलों का वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ पर घोर पाप कर्म करनेवाले पापातमा अपने कर्मों के अनुसार गमन करते हैं। रौरव, रोध, सूकर, ताल, तप्तकुम्भ, महाज्वाल, शबल, विमोचन, कृमी, कृमिभक्ष, लालाभक्ष, विशंसन, अधःशिरा, पूयवह, रुधिरान्ध, वैतरण, कृष्ण, असिपत्रवन, अग्निज्वाल, महाघोर, संदेश, श्वभोजन, तम, कृष्णसूत्र, लोह, असिज, अप्रतिष्ठ, वीचि अश्व आदि घोर अन्धकार मय नरकलोक हैं, जो यमराज के अधीन हैं। इन्हीं नरकों में दुष्कर्मी लोग पृथक् पृथक् पतित होते हैं। ये रौरवादि सभी नरक भूमि के निम्न भाग में अवस्थित कहे जाते हैं। जो कूट साक्षी है अर्थात् झूठी गवाही देता है, सर्वथा मिथ्या बोलने में निरत रहता है, एक पक्ष का किसी कारण वश समर्थन करता है। वह असत्यभाषी मनुष्य घोर

रौरव नरक में गिरता है। गौ की हत्या करनेवाला, गर्भ की हत्या करनेवाला, किसी ग्रामादि में आग लगानेवाला पापी मनुष्य रोध नामक नरक में गिरता है। जो ब्राह्मण की हत्या करता है, सुरापान करता है, सुवर्ण की चोरी करता है, वह पापात्मा सूकर नामक नरक में पतित होता है। जो किसी क्षत्रिय की हत्या करता है, अथवा किसी ब्राह्मण या वैश्य की हत्या करता है, गुरु की शय्या (स्त्री के साथ) पर गमन करता है, वह पापी मनुष्य घोर ताल नामक नरक में निपतित होता है। जो पापात्मा बहिन के साथ व्यभिचार करता है, राजा की हत्या करता है वह तप्तकुम्भ नामक नरक लोक में निवास करता है। दूसरे के अश्व को चुराकर विक्रय करनेवाला तथा अन्याय पूर्वक किसी को बाँधने (फँसाने) वाला पापी पुरुष तप्तलोह नामक नरक में निवास करता है। जो अपनी पतिव्रता स्त्री को बेचता है, तथा अपने अनुगामी भक्त को छोड़ देता है, अपनी पुत्री अथवा पुत्रवधू के साथ समागम करता है, वह पापात्मा मनुष्य महाज्वाल नामक नरक में पतित होता है। जो वेदों का विक्रय करता है, अथवा वेद की निन्दा करता है, अपने गुरुजनों का अपमान करता है, उन्हें गाली देता है या मारता पीटता है, अथवा अगम्य स्थलों में (पुत्री; पुत्रवधू, भगिनी, गुरुपत्नी आदि के साथ) गमन करता है, वह पापात्मा शबल नामक घोर नरक में गिरता है। जो पर द्रव्यापहारी पापात्मा किसी की मर्यादा (प्राचीर, चहारदिवारी आदि) में भेदन करता है, वह विमोह नामक नरक में पतित होता है। जो किसी का अनिष्ट साधन करता है वह कीटलोह नामक नरक में निवास करता है। देवता, और ब्राह्मण के साथ जो पापात्मा विद्वेष करता है, गुरुजनों की पूजा नहीं करता, तथा रत्न को दूषित करता है, वह कृमिभक्ष्य नामक घोर नरक में पहुँचता है। जो पापात्मा किसी ब्राह्मणी, मित्रादि एवं कन्या के सामने उपस्थित रहने पर भी उन्हें न देकर अकेला भोजन करता है वह अतिशय दुगर्न्धमय लालाभक्ष नामक घोर नरक में निपतित होता है। जो पापात्मा काण्डकर्त्ता होते हैं, शराब बनाते हैं, दूसरों का निष्क चुराते हैं, अच्छी औषधि जानते हुए भी द्वेषवश या लालच से बुरी दवा करते है, किसी के बाग अथवा उपवनादि में आग लगाते है वे विशंसन नामक घोर नरक में गिरते है। जो असत् कर्मों द्वारा धन उपार्जित करता है अथवा नीच प्रवृत्तिवालों का दान ग्रहण करता है, जिन्हें यज्ञादि का अधिकार नहीं है, उनसे यज्ञादि का अनुष्ठान करवाता है, नक्षत्रों से अपनी जीविका चलाता है, वह पापात्मा अधोमुख नामक नरक में जाता है। दूध, मदिरा, माँस, लाक्षा, सुगंधित पदार्थ तेल इत्रादि, रस एवं तिल आदि वस्तुओं का विक्रेता घोर पूयवह नामक नरक में गिरता है। जो मुर्गे को मारता है, बिल्ली एवं सूअर का बध करता है, पक्षियों, मृगों, एवं बकरों को मारता है, वह पापात्मा प्राणी भी उसी पूयवह नामक नरक में जाता है। जो ब्राह्मण होकर भी बकरी, बकरे, भेड़, महिष आदि का पालन करता है, चक्र एवं ध्वजा ग्रहण करता है, रंगों की बिक्री से जीविका चलाता है, पक्षी मारता है, ग्रामों में इधर उधर झूठमूठ का यज्ञ करता फिरता है, किसी के घर में आग लगाता है, विष देता है, कुण्डों के (संकरवर्णवालों के) घर भोजन करता है, सोमरस विक्रय करता है, मदिरा पीता है, माँस भक्षण करता है, पशुओं की हिंसा करता है, महिषादि

Funding by IKS-MoE

का बलिदान करता है, मृगादि वन्य जंतुओं का शिकार करता है, गाँठें बनाता है, सूचीकर्म (सिलाई) करता है, मित्रों की हत्या करता है, वह रुधिरान्ध नामक [illegible] नरक में गिरता है— ऐसा मनीषियों का कथन है। जो एक ही पंक्ति में बैठाये गये व्यक्तियों को भोजन कराने में भेद करते हैं, वे पापात्मा घोर विड्भुज नामक नरक में गिरते हैं—इसमें सन्देह नहीं। जो मिथ्याचारी मनुष्य होता है तथा जो सर्वथा दूसरे को अभिशाप अथवा गाली गलौज दिया करता है, अमांगलिक कार्यों में निरत रहता है, वह वह पापात्मा मूत्राकीर्ण नामक नरक में निवास करता है, जो पापात्मा मधुदान [illegible] को मारते हैं, अर्थात् अपने प्रति शुभ कर्म करनेवाले को भी मारडालते है, वे वैतरणी में जाते हैं। जो उन्मत्त है, जिनका चित्त विकृत एवं मष्तिस्क ठिकाने नहीं रहता, पवित्रता एवं आचार से जो विहीन रह[illegible] अकारण क्रोध करते हैं, दूसरों को सर्वदा दुख दिया करते हैं, जादू या इन्द्रजालादि से दूसरे को अपने वश में रखकर उनके साथ अत्याचार करते हैं, वे पापात्मा असिपत्रवन नामक घोर नरक में परम दारुण स्वभाववाले हिंस्र जन्तुओं द्वारा काट काट कर इधर उधर खींचे जाते हैं, दूसरों के शिर काटने वाले पापात्माओं की भी यही दशा होती है। ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की मर्यादा को भ्रष्टकरने वाले पापात्मा अग्निज्वाल नामक घोर नरक में पतित होते हैं, वहाँ पर लौहमय चोंच वाले श्याम एवं चितकबरे रंग के काग उनका शरीर नोंच-नोंच कर भक्षण करते हैं। यज्ञादि सत्कर्म, व्रतादि सदाचारों से विहीन होने पर पापात्मा प्राणी संदंश नामक नरक में गिरता है। जो व्रती अथवा ब्रह्मचारी स्वप्नावस्था में भी स्खलित हो जाते हैं, अथवा जो मनुष्य अपने पुत्रों द्वारा अध्ययन करते हैं, अथवा पुत्रों द्वारा अनुशासित होकर जीवन यापन करते हैं, वे सब भी श्वभोजन नामक घोर नरक में निवास करते हैं। वर्णाश्रम की मर्यादा से विरहित, अनायास क्रोध हर्षादि में अविष्ट होकर जो लोग विना विचारे अटसट कार्य क्रिया करते हैं, वे भी निरय (नरक) गामी होते हैं। ११५—१७४॥

ऊपर्युक्त रौरव नरक महान् विस्तृत एवं घोर है, ऊपर से शीतल और भीतर से अति उष्ण है, उसके निम्न प्रदेश में परम शीतल तप ? तम नामक नरक कहा जाता है, इस भूमितल के निम्नप्रदेश में सात नरक लोक बतलाये जाते हैं, उन्हें क्रमानुरूप सुनिये। उन अधर्म से उत्पन्न होनेवाले नरकों का नाम अन्धतामिस्र आदि हैं। उनमें रौरव सर्व प्रथम एवं महान् दारुण कष्ट पूर्ण है, दूसरा महा रौरव नामक है, तीसरा उसके निम्नप्रदेश में परमशीतल एवं अति उष्ण नरक स्मरण किया जाता है उसका नाम कालसूत्र है, वह तीसरा नरक है। उसका अपर नाम महाहवि विधि भी बतलाया जाता है। चौथा नरक अप्रतिष्ठ कहा जाता है, पाँचवा अवीची नामक नरक है। छठाँ लौह पृष्ठ नामक नरक है, सातवाँ अविधेय नाम से प्रख्यात है। अतिशय घोर कष्ट प्रद होने के कारण प्रथम नरक का नाम रौरव पड़ा है। यह यद्यपि जलयुक्त है, पर परम ज्वलनात्मक है। उसके निम्नप्रदेश में परम शीतल, अति दारुण एवं अधम तम नामक नरक है। कालसूत्र में डँसनेवाला सर्प बतलाया जाता है—इसलिए वह परम दारुण हे। अप्रतिष्ठ नरक में किसी प्रकार भी प्राणी ठहर नहीं सकता, क्योंकि उसमें अतिशय दारुण भँवरे उठती रहती

Funding by IKS-MoE

हैं। यन्त्र द्वारा पीडित किया जाता है—इसी कारण से अवीचि नरक भी परम दारुण कहा जाता है। उससे भी दारुण लौपृष्ठ नामक नरक है। उसमें जलकर मनुष्यों के समस्त कर्म विलीन हो जाते हैं, इसी कारण परम दारुण वह भी कहा जाता है। सातवें अविधेय नामक नरक में तथाकथित अशरीरी रहने पर भी प्राणी को जिस बन्धन जनित पीड़ा एवं कष्ट को सहन करना पड़ता है वह परम असह्य हो जाता है, उसके प्रतिकार का कोई उपाय नहीं दिखाता। ये नरक लोक सब के सब पर्वतों के समान भीषणाकार एवं आलोक से सर्वदा विहीन कहे जाते हैं। अधर्म के कारण इन सबों में प्राणियों को असह्य यातना का अनुभव करना पड़ता है। इन सबों में दुःखों का प्राबल्य रहता है। विशेषतया ऊपर के दो लोक अन्य लोकों के समान होते हुए भी परम दारुण अन्धकार मय होते हैं। इन नरकों में विविध कष्टों के अनुभव करने में सक्षम शरीर को पूर्वकृत कर्मों के अनुसार धारण कर वे अपार दुःख भोगते हैं। सभी नरकों में दुःख की अधिकता बतलाई जाती है। नरक निवासियों को दी जानेवाली उन यातनाओं की संख्या अगणित है। वहाँ विविध प्रकार के दुःखों का अनुभव कर लेने के उपरान्त जब कर्मों का सर्वथा नाश हो जाता है तब वे तिर्यक योनियों में उत्पन्न होते हैं। ऊपर रहने वाले समस्त देवताओं एवं निम्नप्रदेशों में रहने वाले नारकीय प्राणी ये सब अपने धर्माधर्म के अनुसार शरीर धारण करते हैं। इस उत्पत्ति के मूल उनके स्वयंकृत कर्म हैं, उनऔत्पत्तिक कर्मों के अनुसार फल भोगने के लिए ही वे शरीर धारण करते हैं। देवगण इन अधोभाग में अवस्थित नारकीय प्राणियों को अधोमुख हुए देखते हैं इसी प्रकार वे नारकीय भी समस्त देवताओं को अधोमुख देखते हैं। उन लोकों में अग्रभाग एवं मूलभाग का कोई भेद नहीं है, उनकी स्थिति यों ही स्वाभाविक है, इसी कारण से लोका-लोक में कोई ऊपर अथवा निम्न का भेद भाव नहीं है। लोका-लोक की यह स्वाभाविक संज्ञा प्रचलित है। वायु की इन बातों के सुनने के उपरान्त यज्ञकर्ता ब्राह्मणों ने पुनः पूछा। १७५—१९२॥

ऋषियों ने कहा:—भगवन् वायु देव! उस लोका-लोक में निवास करने वाले समस्त प्राणियों की जितने इस संसार में विचरण करते है उनकी संख्या क्या है, वे कौन हैं ये सब बातें सम्पूर्णतया मुझे बतलायें।, ऋषियों की इस जिज्ञासा को सुनकर मारुत बोले।

वायु बोले:—ऋषिवृन्द! उन समस्त प्राणियों की संख्या बतलाना किसी प्रकार भी हमसे सम्भव नहीं है। उनका प्रवाह अनादि है, अनन्त है, वे इतने परस्पर सङ्कीर्ण हैं कि केवल अनुमान या तर्क से विचार किया जा सकता है। उनकी गणना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है, वे अनन्त हैं—ऐसा ही उनके विषय में कहा जाता है। दिव्य दृष्टि अथवा परम ज्ञान द्वारा भी उनकी निश्चित संख्या नहीं जानी जा सकती। अतः हे नर श्रेष्ठ वृन्द! मैं उनकी निश्चित संख्या इस चर्म चक्षु से किस प्रकार बतला सकते हैं। जो अचिन्तनीय एवं सर्वथा अज्ञात है—ऐसे प्रश्न को नहीं करना चाहिए। ब्रह्मा ने इस विषय में जो सामान्यतया जातिगत संख्याएँ निश्चित की हैं, उसे सुनिये। इस संसार में स्थावर जीवों का जो सहस्रतम भाग है संख्या में उतने ही पार्थिवकृमि हैं, जो संसेक आदि से

Funding by IKS-MoE

उत्पन्न होते हैं। इन संसेकज जन्तुओं का सहस्रतम भाग जितना होता है, उतने समस्त जलीय जन्तु होते हैं, यह भलीभाँति निश्चित एवं सुविचारित मत है। इन जलनिवासी जन्तुओं का सहस्रतम भाग लौकिक विहङ्गमों की संख्या के बराबर है। उन लौकिक विहङ्गमों का सहस्रतम भाग जितना होता है उतना ही संख्या में समस्त चतुष्पद जीव होते हैं। उन समस्त चतुष्पदों का सहस्रतम भाग जितना होता है, उतने ही संख्या में द्विपद (मनुष्य) होते हैं। पुनः इन द्विपदों का जो सहस्रतम भाग होता है, उतने ही संख्या में सम्माननीय धार्मिक विचार वाले सत्पुरुष होते हैं। इन धार्मिकों का सहस्रतम भाग जितना होता है, उतने स्वर्गीय धार्मिक होते हैं। स्वर्ग में इन धर्मात्मा महापुरुषों की संख्या का जितना सहस्रतम भाग होता है उतनी ही मोक्ष प्राप्त करने वालों की संख्या होती है। वे स्वर्गोपपदाकों के समान ही होते हैं। जो पाप कर्म में निरत रहने वाले पतित दुरात्मा मृत्यु के वश में होकर उन यातना स्थानों—नरकों—में निवास करते हैं, वे महान् अन्धकारपूर्ण उन परम भयानक रौरवादि नरकों में परमशीत एवं उत्ताप का अनुभव करते हैं। उन यातना स्थानों में पहुँचकर वेदना की असह्य कटुता को वे स्तब्ध होकर सहन करते हैं, उस रौरव नरक को परम उष्ण तेजोमय (उत्तापक) एवं घोर रसात्मक जानना चाहिये। उससे भी परम भयानक सर्वदा परम शीतात्म तप (तम) नामक नरक है। सात्त्विक गुण सम्पन्न धार्मिक नर परम दुर्लभ होते हैं, जो स्वर्ग लोक में निवास करते हैं। स्वयम्भू परमैश्वर्यशाली भगवान् ब्रह्मा ने, उपर्युक्त आनुपातिक संख्या निश्चित की है। उस विषय में मनुष्यों की निश्चित की गई संख्या की निवृत्ति है, अर्थात् मानव कभी इस विषय की संख्या आदि निश्चित नहीं कर सकता, केवल ब्राह्मी संख्या ही ऐसे स्थलों पर प्रमाणभूत होती है। १२४—२०७ ॥

ऋषि वृन्द बोले:—भगवन् वायुदेव! आप ने मह, जन, तप, सत्य, भूत, (भू) भाव्य (भुव) एवं भव (स्वर)—इन सातों लोकों की स्थिति एक के बाद एक बतलाई है। उन लोकों में एक की अपेक्षा दूसरे में क्या अन्तर है—इसे हम यथार्थतः सुनना चाहते हैं। उन ऊर्ध्वरता ऋषियों की इस बात को सुनकर तत्त्वविद् वायु ने तथ्यपूर्ण अपनी बातों को कहना प्रारम्भ किया। २०८–२१० ॥

वायु बोले:—ऋषि वृन्द! उस व्यक्त का मनीषीगण तर्क द्वारा, योगी गण अपने योग बल द्वारा प्रत्यक्ष एवं क्रियानिष्ठगण अपने सदनुष्ठान प्रत्याहार एवं ध्यान द्वारा दर्शन करते हैं। ऋभु, शुद्धबुद्धि सम्पन्न, सनत्कुमारादि शोक विरहित, रजोगुणहीन, सत्त्वगुण सम्पन्न, ब्रह्मपरायण साधु पुरुष, महान् ऐश्वर्यशाली बालखिल्यादि महर्षिगण, एवं अक्षय प्रेम परायण ब्रह्मनिष्ठ योगी जनउस महान् ऐश्वर्यशाली भगवान् के निवास स्थल का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं, जो परम अतर्क्य एवं सत्पुरुषों को कृतकृत्य करने वाला है। उस परम गुह्य भगवदालय का सन्निधान करते हुए मैंने भी प्रत्यक्ष दर्शन किया है। वह ईश्वर परमाणु के समान होने से, केवल मनीषी पुरुषों की भावनाओं द्वारा ग्रहीत हो सकता है। ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, सत्य, क्षमा, धैर्य, दर्शकत्व, अधिष्ठानत्व एवं आत्मज्ञान—ये दस शाश्वत धर्म उस मङ्गलमय परमात्मा में नित्य प्रतिष्ठित रहने वाले हैं। वह विभु है, योगिजनों की योगाग्नि भी उसी परम ब्रह्म के अनुग्रह से उद्दीप्त होती है। वह शरीर धारण कर सामान्य लोगों का निरन्तर उपकार किया करता है। उस परम ईश्वर का

वह अधिष्ठान भी परम एवं परिणाम विहीन है, परम स्थिर है, सुख दुःखादि जागतिक जंजालों से रहित है, मायामय एवं सत्स्वरूप है। यही आठ प्रकार की प्रकृतियों का मूल आश्रय है, समग्र सृष्टि विस्तार का मूलाधार है। मङ्गलमय महेश्वर ने, मायामय होकर उसकी सृष्टि की है, उसी स्थल पर दिव्य गुण मय देवताओं का सम्यक् उपसंहार होता है। उसका विस्तार एवं अनुक्रम पूर्वक वर्णन मैं आगे कर रहा हूँ, सुनिये। इस भू लोक से ब्रह्म लोक का अन्तर तेरह कोटि पन्द्रह नियुत योजन कहा जाता है। उक्त ब्रह्म लोक से भी ऊपर जो ब्रह्माण्ड का अंश विद्यमान है वह एक कोटि पचास नियुत योजन तक सुना जाता है। इस ब्रह्माण्ड के ऊर्ध्व भाग की सीमा इतनी ही है, उसके ऊपर किसी की गति नहीं है। नित्य, अपरिसंख्येय, परस्पर गुणाश्रयी, सूक्ष्म, प्रसवधर्मिणी प्रकृतियाँ कही गई हैं। उन्हीं से ब्रह्म नामधारी जगत्कर्त्ता क्षेत्रज्ञ का प्रादुर्भाव होता है। उन्हीं में प्रकृतिमय, सूक्ष्म, अक्षय, अविनश्वर, अनुत्पाद्य, अतर्क्य, अधिष्ठानात्मक, परमाणु स्वरूप, परेशय, अमूर्त एवं मूर्तिमान, परम धाम परमेश्वर विराजमान रहता है। वह परमाणु स्वरूप महेश्वर प्रादुर्भाव, तिरोभाव, स्थिति, अनुग्रह, एवं दयादि का आश्रय भूत हैं। इन सभी विधानों में अनुपम है। वह अपने परम तेजो बल एवं प्रकाश से पुरोवर्ती तमोराशि को प्रकाशित करने वाला है। जो हिरण्मय अण्ड समस्त सृष्टि का मूल रूप, सर्वापेक्षा महान् एवं आद्य, औपसर्गिक सभी ओर से वृत्ताकार है, वह इसी परमेश्वर से आविर्भूत हुआ है। उसी ईश्वर से सृष्टि के समस्त बीजों की परम्परा प्रचलित हुई है, यह क्षेत्रज्ञ स्वयमेव सृष्टि का बीज स्वरूप है। प्रकृति ही सब की योनि (उत्पत्ति स्थली) है। और वह स्वयं नारायणात्मिका है। समस्त लोकों का निर्माता वह परमैश्वर्यशाली परमात्मा लोक की सृष्टि एवं लोक की विधिवत स्थिति के लिए ही प्रकृति के सहयोग से अपने शरीर द्वारा ब्रह्मलोक एवं ब्रह्माण्डादि का निर्माण करता है। उन दोनों के मध्यभाग में एक परम रमणीय दिव्य स्थान है, जो मनोमय स्थान के नाम से ख्यात है। वह उस परम तेजस्वी ईश्वर का शिव नामक पुर है, जिसमें पुनर्जन्मादि से भीत होने वाले महापुरुषों का निवास है। द्विजवर्य्य वृन्द! वह शिव नामकपुरी सौ सहस्र योजनों में विस्तृत है। इसका अन्तवर्ती भाग पृथ्वी मण्डल जितना विस्तीर्ण है। इस महापुरी के चारों ओर मध्याह्न कालीन भास्कर की भाँति परम तेजस्वी, अन्यान्य तेजस्वी पदार्थों के तेज को मलिन कर देने वाली सुवर्ण निर्मित महान् चहारदीवारी सुशोभित है। उसकी चमक चारों ओर सूर्य के समान चकाचौंध करती रहती है। उस महान् पुरी में चार द्वार हैं, जो सुवर्ण से निर्मित हैं। मोतियों की लड़ियाँ उनकी शोभावृद्धि करती हैं, वे परम शुभ्र एवं शोभा सम्पन्न हैं। उस मनोहर पुरी के चारों ओर एक अन्य रक्षा दीवाल भी खड़ी है, जो परम पुष्ट है। आकाश में वह परम सुशोभित पुरी दिव्य घंटाओं के सुरम्य नादों से कूजित रहती है। उस पुरी में न तो वृद्धावस्था का कोई भय रहता है न मृत्यु का कोई आतङ्क। परिश्रम भी नहीं खलता। समस्त त्रैलोक्य में ऐसी कोई पुरी नहीं है, जिसकी शोभा को उस रम्य पुरी की सुन्दरता अनुकरण करे अर्थात् वैसी सुरम्य पुरी त्रैलोक्य में अन्यत्र कहीं नहीं है। दसों दिशाओं में उसका परिमाण एक लाख योजन है। भगवान् वृषभध्वज महेश्वर की वह पुरी अपने तेजोबल से अवस्थित है। उस सुवर्णमयी पुरी की सृष्टि मानसिक भाव भूमि पर हुई है।

रत्नों की बालुका से विन्यस्त उस परम रम्य नगरी की शोभा अधिक बढ़ जाती है। शरदपूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुप्रकाशमय, प्रातःकालीन सूर्य की भाँति मनोहर एवं तेजोमय, आधेश्वेत आधेलाल सुवर्णनिर्मित रथ के चक्रों के समान गोलाकार दिव्य पद्म उस पुरी में शोभायमान हैं। वे पद्म अपनी सुकुमारता, सौन्दर्य, एवं सुगन्ध में अनुपम हैं। ऐसे परम मनोहर दिव्य पद्म वहाँ के वनों एवं उपवनों में सर्वत्र हैं। वहाँ के कुछ सुन्दर परम सुकुमार पद्म भृङ्ग के पंख के समान श्यामल वर्ण के, कुछ एकदम सुनहले, कुछ आधे काले आधे लाल, आकार में छत्र के समान होते हैं। ऐसे सुन्दर पद्मों से वहाँ के जलाशय व्याप्त हैं। वहाँ सात महानदियाँ हैं, उनके नाम वरा, वरेण्या, वरदा, वरार्हा, वरवर्णिनी, वरमा, वरभद्रा, हैं वे परम रमणीय नदियाँ उस सुन्दरपुरी की शोभा वृद्धि करनेवाली हैं। इन सुन्दर सरिताओं में श्वेत, रक्त पद्मों के दलों से विमिश्रित, फेनों एवं भँवरियों से विभूषित मणियों के टुकड़ों के समान परम स्वच्छ शुभ्र जल प्रवाहित होता है! अप्रमेय महेश्वर के इस परम रम्यपुर को न तो ब्रह्मर्षिगण ही जानते हैं, न देवता ही जानते हैं। असुरों एवं पितरों को भी इस पुर का कोई पता नहीं है। जो परम जितेन्द्रिय योगाभ्यास परायण महात्मा हैं, जिनका चित्त कभी चंचल वा व्यग्र नहीं होता, वे ही ध्यान धर कर वृषभध्वज के इस पुर का दर्शन करते हैं। उस पुरवर के मध्य भाग में अनुपम तेजस्वी, महान्, सुमेरु पर्वत के समान विशाल, समग्र सौन्दर्यश्री से विभूषित एक प्रासाद सुशोभित है, जिसके सहस्र चरण हैं, उस मङ्गलमय प्रासाद की रचना सुवर्ण से है। सभी ओर से अमूल्य अनुपम रत्नों द्वारा उसकी शोभा वृद्धि होती है। कहीं शुभ स्फटिक मणियों से, कहीं चन्द्रकान्त मणियों से, कहीं वैदूर्य मणियों, से कहीं चन्द्रमा के समान सुशोभित मणियों से, कहीं प्रातः कालीन सूर्य की भाँति परम मनोहर किन्तु तेजोमय मणियों से, कहीं सुवर्णमय मणियों से, कहीं अग्नि के समान तेजोमय मणियों से, कहीं रजत मय (चाँदी के) मणियों से, कहीं सुरम्य इन्द्रनील मणियों से, कहीं परम दृढ़ हीरों से उस विशाल प्रासाद की शोभा वृद्धि होती है। वे सभी मणियाँ भली तरह जड़ी गई हैं। चमकते हुए गवाक्ष जंगले जो विविध प्रकार के बने हुए हैं, उस प्रासाद की शोभा वृद्धि के सहायक हैं। चन्द्रमा की किरणों के समान सुप्रकाशमान पताकाएँ उस पर सुशोभित हैं। सुवर्ण निर्मित घण्टों के सुरम्य स्वरों से वह प्रासाद मुखरित रहता है, प्रमोद एवं उत्सव के समारोह वहाँ नित्य मनाये जाते हैं। सन्ध्या कालीन मेघों की पंक्तियों के समान सुशोभित किन्नरों के आवास स्थान उस पुर में परम शोभा पाते हैं। वे चारों ओर से सुवर्ण निर्मित पुष्पों एवं सुवर्णमय जलराशि की तरह सुशोभित होते हैं किन्नरों के सुरम्य भवनों से वह पुर सुवर्णमय शिखरों से सुशोभित पर्वतराज सुमेरु की तरह शोभा पाता है। कहीं पर सुवर्णनिर्मित पताकाओं की पंक्तियों से वह पुर परम शोभा सम्पन्न होता है। वह महाप्रासाद चारों ओर से विस्तृत भूमिका द्वारा और भी शोभा पाता है। त्र्यम्बक शिव के उस भवन में वसन्त की मूर्ति विराजमान रहती है। उसके अतिरिक्त लक्ष्मी, श्री, माया, कीर्ति, शोभा, सरस्वती आदि देवियाँ अपने अनुपम सौन्दर्य एवं सुगन्ध के साथ वहाँ निवास करती हैं वे देवियाँ सर्वदा एक रूप हैं, उनकी संख्या नहीं परिगणित की जा सकती

उनके गुण समुदाय परस्पर आश्रित रहते हैं। अर्थात् उनकी दया की शोभा उनकी क्षमा और शान्ति से होती है, और उनकी शान्ति दया से विशेष शोभाशालिनी होजाती है। कान्ति एवं विलास की वे उत्पत्ति-स्थली हैं, समग्र रत्नों के आभूषणों से उनकी शोभा की अधिक वृद्धि होती है, वे महाभाग्यशालिनी देवियाँ सैकड़ों कोटि अंशों में अपने को आत्मा से विभक्त कर के निरालस भाव से परमैश्वर्यशाली एवं महान् भगवान् परमेश्वर को प्रमुदित करती हैं। उनकी सहस्रों की संख्या में अन्य परिचारिकाएँ रहती हैं! जो सर्वदा उनका अनुगमन करती हैं। वे सब भी कमल के समान मनोहर नेत्रोंवाली स्वरूपवती एवं शोभाशालिनी रहती हैं। परम मनोहर लीला एवं विलास की भावनाओं से ओत-प्रोत, पर्वत के समान भीषणाकार अग्नि के समान जाज्वल्यमान एवं तेजस्वी गणों के साथ वे परिचारिकाएँ आनन्द का अनुभव करती हैं, उन परिचारिकाओं में कुछ कुबड़ी हैं, कुछ वामनाकृत हैं, किसी का शरीर बहुत सुन्दर है, पर मुख घोड़े के समान है। कुछ गन्ने के समान पतली और लम्बी पर स्वभाव से बड़ी विकट, कुछ देखने में महा कराल, कुछ चिपटे मुख वाली, कुछ लम्बे पेटोंवाली, कुछ छोटे हाथों वाली, कोई नेत्र विहीन कोई छोटे-चरणों वाली, कुछ सिंह के समान कटि वाली, कोई हाथी के समान भीषण मुख और उदर वाली, कुछ वैसे ही हाथी के समान मुखवाली कुछ सिंह और बाघ के समान मुखवाली हैं। उनमें किसी के नेत्र बहुत लाल हैं तो कोई लम्बे-लम्बे विशाल स्तनों के भारों से दुःखी हैं। इनके अतिरिक्त कुछ बहुत ही सुन्दर एवं चित्ताकर्षक नेत्रोंवाली भी हैं। उन परम सुन्दरियों के केश बहुत छोटे और घुँघराले होते हैं। उनके नेत्र चित्त को आकृष्ट कर लेते हैं। अन्यान्य सुन्दरी स्त्रियाँ नाना प्रकार की वेश-भूषा से सुसज्जित होकर वहाँ पर विराजमान रहती हैं। वे अपनी इच्छा के अनुरूप स्वरूप धारण करनेवाली हैं। उस विशाल महा प्रसाद के भीतरी भाग में वे सुन्दरियाँ सर्वथा विचरण किया करती हैं, वे सचमुच देवस्थानों में निवास करने योग्य हैं। उस सुन्दर विशाल प्रासाद में दशबाहु भगवान् महेश्वर क्रीडा करते हैं। उनके साथ नन्दीश्वर एवं महान् पराक्रमशाली विश्व रूप धारण करने में सक्षम उनके गण निवास करते हैं। रुद्रगण भगवान् के समान ही उदार एवं पराक्रमशाली हैं। वे आकृति में अग्नि पुत्र की भाँति परम भयानक होते हैं, खम्भे के समान विशाल एवं भीषण दाँतों से उनके मुख की एक विकट शोभा होती है। ये गण विमानों में चढ़कर तन्मय होकर भगवान् की वन्दना एवं पूजा करते हैं। उस समय महादेव जी सभी ऋतुओं में सुलभ पुष्पों से निर्मित माला को, जो उनके विशाल वक्षस्थल पर शोभा वृद्धि करती है, सूँघते हैं। वे नीले कमल दल के समान श्यामल वर्ण हैं, लम्बे-लम्बे लाल वर्ण के उनके मनोहर नेत्र हैं। कुछ भयानक और लम्बे होंठ, तीक्ष्ण दंत पक्तियों से सुशोभित हैं, ऊपर को ताकने वाले भयानक नेत्र से उनका मुखमण्डल दुष्प्रेक्ष्य होता है। सुन्दर चीर वस्त्र धारण किये रहते हैं। युद्धों में जिसे कोई कठिनाई नहीं होती, ऐसे राक्षसों के परम विध्वंसक एक हाथ को वे दूसरे हाथ में लपेट कर वामपार्श्व में रख लेते हैं। उससे थोड़ी ही दूर पर स्थित उनके वाम हाथ में सुशोभित पट्टिश नामक अस्त्र शोभा पात है, उसके अतिरिक्त जिसकी प्रत्यञ्चा का निनाद महान् भीषण होता है, जिसके समान दृढ़ एवं तेजस्वी

Funding by IKS-MoE

कोई अन्य धनुष नहीं हैं, उनका दसवर्णों वाला विचित्र धनुष भी वहाँ अधिकाधिक शोभा लाभ करता है। विद्युत् के समान चमकीला शत्रुसंहारकारी उनका त्रिशूल भी वहाँ अपनी जाज्वल्यमान कान्ति से परम शोभा प्राप्त करता है। उस त्रिशूल का लक्ष्य कभी विफल होनेवाला नहीं है। देवाधिदेव महान् पराक्रमशाली भगवान् के समीप परम तेजोमय तलवार एवं शीतलरश्मि चन्द्रमा सुशोभित हैं। अपने तेज शरीर एवं कान्ति से वे वेदी में अग्नि की ज्वाला की तरह अधिक सुशोभित होते हैं। देव के सम्मुख सुवर्णमय, महान् कमण्डलु जल समेत विराजमान है, उसकी शोभा की एक निराली छटा रहती है। अपने अंग में तलवार लटकाये हुये, पीले रंग का वस्त्र धारण किये, वक्षःस्थल पर एक विशाल मुक्ता की माला धारण किये चार भुजाओं से सुशोभित लोक सम्माननीया महाभाग्यशालिनी देवी विजया भी वहाँ स्थित हैं। वह देवी की सर्व प्रथम प्रतिहारिणी है, रूप में दूसरी लक्ष्मी के समान अनुपम है। भगवान् शंकर की ओर अंजलि बाँधे हुए वहाँ पर उसकी परम शोभा होती है। उसके पीछे अन्य अनुगामी स्त्रियाँ रहती हैं, उनके साथ अप्सराओं के झुण्ड रहते हैं। वे सब भी अपने अभिनव कान्तों के साथ शंकर की उपासना में तल्लीन रहती हैं। सर्वलक्षण-सम्पन्न, विविध प्रकार के वाद्यों से समन्वित गन्धर्वों की टोलियाँ देवेश के समक्ष गायन, वादन करती हैं। उनके उस सुन्दर प्रासाद में अति विशाल वक्षःस्थल शरत्कालीन मेघ के समान गोपति (नन्दीश्वर) आनन्द का अनुभव करता हुआ सुशोभित है। रक्त वर्ण के वस्त्र को धारण किये हुए, परम शोभा सम्पन्न, कमल दल के समान सुन्दर नेत्रवाले उनके अमित पराक्रमशाली पुत्र स्कन्द भी वहाँ सपरिवार सुशोभित हैं। शाख, विशाख और नैगमेय प्रभृति अनुचर गण भी उनके साथ विराजमान हैं, जो प्रकृति से परम क्रूर किन्तु प्रजा पालन में दत्तचित्त एवं व्यसनों से विहीन हैं, उन अनुचरों के साथ महान् पराक्रमी, शिखि वाहन, विश्वतो मुख स्कन्द व्यालक्रीड़ा का अनुभव करते हैं। जो राजा लोग विद्वान् पण्डितेन्द्रों को सुवर्ण की दक्षिणा देते हैं, जो विप्र अपने गृह पर निवास करते हुये भी ब्रह्म चिन्तन में निरत रहते हैं, जो उंछ वृत्ति से जीविका निर्वाह करनेवाले ब्रह्मचारी गण सर्वदा स्वाध्याय एवं तपस्या में लीन रहते हैं, वे सब देवाधिदेव शंकर की इस पुरी में उनकी सभा के सभ्य होते हैं। अनेक मन्वन्तर व्यतीत होकर पुनः पुनः प्रारम्भ होते हैं, किन्तु महादेव की वह सभा पूर्ववत् प्रतिष्ठित है। देवदेव की अन्य उत्तम आश्चर्य जनक घटनाएँ सुनिये। सुवर्ण के समान पीले वर्ण वाले परम वेगशाली व्याघ्र उनके अनुगामी रहते हैं। वे सब अपनी इच्छा के अनुसार गमन करते हैं देवदेव ने स्वयमेव उनका निर्माण किया है। वे मृत्यु के लिये भी मृत्यु के समान हैं, यमराज के भी दर्प को चूर्ण करनेवाले हैं। अर्थात् उन्हें मृत्यु का कोई भय नहीं रहता। इस प्रकार देवदेव की विभूतियों की कोई संख्या निश्चित नहीं है वे असंख्य हैं कौन उन्हें सम्पूर्णतया बतला सकता है। अब इसके उपरान्त मैं ऐसी अद्भुत एवं उत्तम विभूतियाँ बतलाऊँगा, भव ने जिन्हें जीवों के ऊपर असीम अनुग्रह करके निर्मित किया है, सुनिये। भव के उक्त उत्तम प्रासाद में जो परम शोभामय स्तम्भ लगे हुए है, उनमें उनकी माया द्वारा निर्मित एक सहस्र सिंहगण प्रदीप्त अग्नि के समान जाज्वल्यमान पाश द्वारा पृथक्-पृथक् बँधे हुए हैं। वहाँ पर वे सुखपूर्वक निवास करते हैं। वे सिंहगण

देखने में मन्दराचल के समान विशालाकार हैं, बल एवं तेज में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं है, मुक्ताहार, कुन्दपुष्प एवं चन्द्रमा के समान श्वेत उनके रंग हैं। बिजली संयुक्त मेघों की कड़क के समान वे भीषण निनाद करते हैं। उनकी शिखाओं पर मणि शोभायमान है। मेघ के समान काले रंग के वस्त्रों से उनके शरीर वेष्टित हैं। श्रीवत्स चिह्न से वे सुशोभित हैं, अपने भीषण नखों से संयुक्त अंगुलियों को धारण कर वे शूल पाणि के समान हैं। दसों दिशाओं में देवताओं के समान सुन्दर स्वरूप धारी वे सिंह गण त्रयम्बक के उक्त प्रासाद में शृङ्खलाबद्ध होकर विराजमान हैं। वायु के इस कथन का अभिनन्दन करते हुए नैमिषारण्य निवासी ऋषिगण परम विस्मय विमुग्ध हो गये और बोले—समस्त जीवधारियों के प्राण! सर्वत्र गमन करनेवाले! महामहिमामय भगवन् वायुदेव! वे महान् पराक्रम शाली सिंह कौन हैं? वे कहाँ उत्पन्न हुए? उनका स्वरूप कैसा है? परम प्रभाव शाली भगवान् शंकर ने उन सिंहों को किस अपराध के कारण अग्निमय पाशों में बाँध कर पृथक्-पृथक् कर रखा है? ऋषियों की इस बात को सुनकर वायु बोले, ऋषिगण! वे एक सहस्र सिंह, जिनकी महात्मा भगवान शंकर ने अपने शरीर से अलग करके सृष्टि की है, उनके क्रोध के मूर्त रूप हैं, जीवों को अभयदान देकर उन्होंने उन सब को अग्नि के पाशों में बाँध रखा है। प्राचीन काल में दक्ष प्रजापति के साथ यज्ञभाग के सम्बन्ध में विरोध होने पर भगवान् की आज्ञा से उन सहस्र सिंहों में से केवल एक सिंह छूटा था, जिसने महादेवी उमा के अमर्ष को देखकर लीला पूर्वक दक्ष के यज्ञ का सर्वांशत विनाश कर दिया था। उस समय महादेवी के शरीर से महेश्वरी महाकाली अपने कर्मों की साक्षिणी होकर अपने अनुचर भूतगणों के साथ प्रादुर्भूत हुई थीं। रुद्र के उक्त आवास स्थल में निवास करने वाले भगवान् क्रोध ही तथोक्त वीर भद्र हैं, जो देवी के अमर्ष को दूर करने के लिए अति भीषण शरीर धारण कर प्रादुर्भूत हुए। परम गोपनीय सुरेश्वर शंकर के उक्त प्रासाद का सविस्तार वर्णन आप लोगों से कर चुका, उसके समान कोई अन्य प्रासाद नहीं है, समस्त त्रैलोक्य में वह अनुपम है। इसके बाद उक्त पुरी में अवस्थित अन्य वस्तुओं एवं व्यक्तियों का वर्णन कर रहा हूँ। अन्तरिक्ष में अवस्थित उस परमरम्य शिवपुरी में अनेक सुन्दर प्रासाद बने हुए हैं, जो विविध प्रकार के रत्नों से चित्रित एवं जटित हैं, असंख्य पताकाएँ उनकी शोभा वृद्धि कर रही हैं। सभी मनोरथों को वे पूर्ण करने वाले हैं। सुन्दर वनों एवं उपवनों से उनकी एक निराली छटा है। उनमें से कितने विशाल प्रासाद चाँदी के और कितने स्वच्छ सुवर्ण के हैं। कितनों की शोभा सायङ्कालीन मेघों के समान लाल वर्ण की और कितनों की कैलास-शिखर के समान श्वेत वर्ण की है। उन सुरम्य प्रासादों में भव के सद्व्रत परायण अनुचर गण अभिमत संगीतादि विविध भोगोपयोगी साधनों से आनन्द का अनुभव करते हैं। वहाँ चारों ओर ब्रह्मचर्चा का सुरम्य स्वर गुंजरित होता रहता है। विविध कल्याण दायिनी पौराणिक कथाएँ बराबर चलती रहती हैं, गायन, वादन, स्तोत्रादि सभी ओर चलते रहते हैं। उक्त विविध प्रकार के स्वरों से एक विचित्र मनोहारिणी दशा वहाँ की हो जाती है, उसकी तुलना कहीं अन्यत्र से नहीं दी जा सकती। वहाँ के सभी गृहों में उक्त मांगलिक कथाओं, स्तोत्रों, गायन-वादनादि मनोरंजक साधनों का कार्यक्रम चलता है। ऐसे अनेक सुरम्य

प्रासादों में एक सर्वश्रेष्ठ प्रासाद है, जो सहस्र चरणों (स्तम्भों) से सुशोभित एवं सुवर्णमय है। सभी ओर से अनुपम रत्न उसमें विभूषित हो रहे हैं। उन रत्नों में से कितने चन्द्रमा के समान शुभ्र स्फटिक के समान निर्मल, वैदूर्यमणि के समान देदीप्यमान, उदयकालीन सूर्य के समान मनोहर एवं तेजस्वी, अग्नि एवं सुवर्ण के समान सुन्दर हैं। वायु के इस वर्णन को सुनकर नैमिषारण्य निवासी तपस्वी ऋषिवृन्द परम विस्मित एवं संशयित होकर समीरण से बोले ॥ २१०—३०९ ॥

ऋषियों ने पूछा:—भगवन् वायु देव ! उस पुरश्रेष्ठ में निवास करनेवाले शिव के अनुगामी महात्मागण कौन हैं जो वहाँ सभी सुखों का अनुभव करते हैं। ऋषियों के इस वचन को सुनकर वायु बोले ॥ ३१० ॥

वायु ने कहा:—ऋषिवृन्द ! सुनिये। जो देव-देव भगवान् शंकर की भक्ति करते हैं, और सर्वदा लज्जान्वित, तपस्या के क्लेशों को सहन करने में सशक्त, पराक्रमशील, अलोलुप, मिताहार विहार परायण, आत्मा में रमण शील (आत्म चिन्तन में निरत) जितेन्द्रिय, सुख दुःखादि द्वन्द्वों से परे, महोत्साह सम्पन्न, सब के साथ बन्धुत्व का व्यवहार मानते हुए, मत्सरादि से विहीन, भाव प्रवण, सभी जीवों में समदर्शिता का व्यवहार रखते हुए, आकुलता रहित, मनसा, वाचा, कर्मणा एवं विशुद्ध अन्तरात्मा से भक्ति रख एवं अनन्य चित्त होकर शिव की शरण में जाते हैं, वे ही रुद्र का सायुज्य पद प्राप्त करते हैं, जो शाश्वत एवं अविनश्वर है। यही नहीं प्रत्युत वे भव के सर्वश्रेष्ठ स्वरूप में भी समानता प्राप्त करते हैं। वे सभी शिवपुर निवासी अग्नि के समान मुखवाले सब तरह के स्वरूप धारण करने में सशक्त, जटाजूट धारी, नीलकण्ठ, श्वेतग्रीव, तीक्ष्ण दाँत, त्रिलोचन, अर्द्धचन्द्र को शिर में धारण करने वाले, जटाओं के मुकुट से विभूषित, वीर तथा दस भुजाओं से सुशोभित होते हैं, उनके शरीर से पद्म के अन्तर्भाग की भाँति भीनी-भीनी सुगन्ध आती है। वे मध्याह्न के सूर्य की तरह परम तेजस्वी होते हैं। सभी पीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं। सब के हाथों में पिनाक रहता है, सभी श्वेतवर्ण के वृषभ पर सवार होते हैं। सुन्दर कुण्डल एवं हार से विभूषित होने पर उनकी निराली छटा होती है, वे सब के सब सर्वज्ञ, सर्वदर्शी एवं तेज में एक दूसरे से चढ़े बढ़े रहते हैं। वृद्धावस्था एवं मृत्यु के भय से रहित होकर वे शिवपुर निवासी अपने को अनेक भागों में विभक्तकर विविध प्रकार के अति दुर्लभ उपभोग्य सामग्रियों को प्राप्तकर विविध भावों से भोगते हैं। वे सब स्वच्छन्द गमन करते हैं, सभी सिद्धियाँ उनकी वशवर्तिनी हैं, दूसरे सिद्ध गण उन्हें प्रबुद्ध करते हैं। ऐसे परम ऐश्वर्यशाली एकादशरुद्र के गणों की संख्या शिवपुर में अनेक कोटि है। इन सबों के साथ देवदेव पार्वतीवल्लभ, भक्तहितकारी भगवान् महेश्वर आनन्द का अनुभव करते हैं। ऋषि वृन्द ! मैं सच कह रहा हूँ कि उन शिवपुर निवासी रुद्रगणों की एवं परम ऐश्वर्यमय भगवान् महेश्वर की विविध सम्भूतियों को अर्थात् सब की विविध रूपता को नहीं देख पाता। वे सब परस्पर अभिन्न हैं। स्वयं भगवान् के मुख से सुनी गई त्र्यम्बक की इस पुण्यकथा को मातरिश्वा वायु ने जब उन सूर्य के समान परम तेजोमय ऋषियों को सुनाया तो वे परम प्रसन्न हुए। और अपने को परम अनुगृहीत माना।

Funding by IKS MoE

इस पुण्य कथा का अभिनन्दन करते हुए वे सब महाबलशाली वायु से बोले। ॥ ३११—३२४ ॥

ऋषियों ने कहा:—महाभाग ! आप सर्व समर्थ हैं, आपने ईश्वर के उस परम पुण्यमय सर्वश्रेष्ठ अष्टम औपसर्गिक निवास स्थान का प्रमाण एवं अन्यान्य परिचयात्मक विवरण हम लोगों को सुनाया है, जो परमात्मा की सुगन्ध से सर्वथा समृद्ध है। महादेव का माहात्म्य देवताओं को भी कठिनता से विदित होता है। वे अपने ही पराक्रम द्वारा अमित तेजस्वी सहस्रों अनुचरों की सृष्टि करनेवाले हैं, जो प्रभाव आदि में उन्हीं के समान हैं। जो भक्तों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही भक्तों के हृदय में सम्मोह (अज्ञान) का संचार नहीं करते। अनुपम शक्तिशालिनी ब्राह्मी एवं लक्ष्मी स्वयमेव जिसके द्वारा उपभुक्त होती हैं। जिस प्रकार चन्द्रिका समस्त आकाश एवं चन्द्रमा में व्याप्त रहती है, उसी प्रकार विश्वरूपी भगवान् द्वारा विन्यस्त विभूति उनके उस सुंदर प्रासाद में सर्वत्र व्याप्त रहती है। ऐसे सर्वशक्ति सम्पन्न महादेव के समान ही पराक्रमशाली एवं महात्मा रुद्रों की भी शक्ति है। वह सारी कथा आपके मुख से अमृत की धारा की भाँति हम सबों ने भक्ति पूर्वक पान की है, और उससे हम सब को परम तृप्ति का लाभ हुआ है। उसे सुनने के उपरान्त अब कुछ भी सुनना शेष नहीं रह गया है। हे देववरों के प्राण ! इसके उपरान्त आप हमारे एक अन्य प्रश्न का उत्तर देने की कृपा करें। ॥ ३२५—३३१ ॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! नैमिषारण्यवासी ऋषियों की इस विनीत वाणी को सुनकर भगवान् वायु ने कहा, सद्व्रतपरायण ऋषिगण ! अब आप को क्या बतलाऊँ, मुझे क्या कहना है ? ॥ ३३२ ॥

ऋषियों ने कहा:—भगवन् वायुदेव ! भगवान् शंकर के पार्श्वभाग में अवस्थित आदित्य उनके क्रोध के मूर्तरूप वे सिंहगण, वैश्वानरगण, भूतगण, अनुगामी व्याघ्रवृन्द तथा उनके साथ अन्य जिन सिद्धि प्राप्त करनेवालों की चर्चा आपने ऊपर की है—वे सब उस सर्वप्राणिविनाशक घोर महाप्रलय में किस अवस्था को प्राप्त होते हैं, आप यथार्थवेत्ता हैं, इस बातको यथार्थतः बतलाने की कृपा करें। मातारिश्वा बोले, ऋषिवृन्द ! यह परम गुह्य तत्त्व है, बतला रहा हूँ. सावधानता पूर्वक सुनिये। उन समस्त सिद्धि प्राप्त करनेवाले शिवपुर निवासियों में जो ब्रह्मा के कुमार पुत्र सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, वोढु, कपिल आसुरि एवं महायशस्वी मुनिवर पञ्चशिख ऋषि हैं, तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो ऋषिगण हैं, वे सब के सब आदि कारण भूत अव्यक्त सत्ता की महत्ता को जानकर पूर्व ही परम गति को प्राप्त हो जाते हैं। तदनन्तर बहुत काल व्यतीत होने के उपरान्त कल्प समाप्ति के अवसर पर, जब कि समस्त महाभूतों का विनाश हो जाता है, और महाप्रलय आ जाता है, अनेक कोटि रुद्रगण सत्य का आश्रय ग्रहण कर, शब्दादि विषयों से विरक्त होकर अपने ज्ञानमय तेजोबल से समस्त जीवधारियों में आत्मभाव से प्रविष्ट होकर सभी भूतों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए अविनश्वर अच्युत वैहायस पद को

प्राप्त करते हैं । वे सब महात्मा गण परमाणु स्वरूप धारी महेश्वर को प्राप्त होते हैं और वहाँ पहुँच कर जन्म मृत्यु रूप जल से प्रपूर्ण, भीषण भँवरों से समन्वित भवनदी को पार कर जाते हैं । वहाँ पर प्राप्त होकर वे सर्वव्यापी परब्रह्म का दर्शन करते हैं । ऊपर जिन सात महादेवियों की चर्चा की गई है उनके साथ ही वे वहाँ अवस्थित होते हैं । सिंहों एवं आदित्यों को जिनकी संख्या एक सहस्र कही जाती है, तथा वैश्वानर, भूत, व्याघ्र, एवं अनुगामी रुद्रगण—इन सब को अपनी आत्मा में आविष्ट करके इन सातों लोकों को तथा पाँचों महाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि और वायु) को भी शंकर अपने में समाविष्ट कर लेते हैं । इस प्रकार भगवान् विष्णु के साथ वे इस सृष्टि का प्रादुर्भाव एवं विनाश दोनों करते हैं, वे रुद्र हैं, साममय हैं, यजुर्मय हैं । द्विजवृन्द ! वे बाहर भीतर सर्वत्र एक निश्चय से ओत-प्रोत रहते हैं । वे ही एक मात्र समस्त चराचर जगत् के नाथ हैं, उनका आदि नहीं है, वे स्वयं ही सबके अन्तकर्त्ता हैं । वायु की इन बातों को सुनकर दिवाकर के समान परम तेजस्वी नैमिषारण्य-निवासी वे ऋषिगण अपने-अपने आश्रम में अग्नि का आधान करके मनसा, वाचा, कर्मणा शुद्ध अन्तरात्मा से अनन्य चित्त होकर महेश्वर की आराधना में लग गये । व्रत एवं उपवास की साधना में पुनः लग गये । सभी जीवों पर दया का व्यवहार करने लगे । उनके समस्त संशय छिन्न हो गये थे । अतः उन्हें अनुपम दिव्य योग की प्राप्ति हुई । अपनी परम भक्ति एवं ज्ञानमय तेजोबल से उन सबों को शाश्वत रुद्र-सालोक्य पद की प्राप्ति हुई । जो तपस्वी व्यक्ति वायु द्वारा बतलाई गई इस शिवपुरी की स्तुति का पाठ करता है 'वह चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय हो, चाहे अपने कार्य व्यापार में लगा हुआ वैश्य हो, रुद्र का सालोक्य प्राप्त करता है, रुद्र में उसकी भक्ति बढ़ती है, उसके सारे संताप दूर हो जाते हैं । जो जितेन्द्रिय शूद्र भव में भक्ति रखनेवाला है, और कभी मदिरा नहीं पान करता वह भी इसके पाठ से महाप्रलय तक की परमायु प्राप्त करता है, इस महान् अवधि में उसे कोई कष्ट भी नहीं होता, अथवा सभी मनोरथों को पूर्ण करनेवाले गणपति का पद उसे प्राप्त होता है । यदि शूद्र मद्यप है तो वह भी मद्यप भूतगणों के साथ आनन्द का अनुभव करता है । पृथ्वी तल में पूज्य होकर वह सामान्य मनुष्यों को वरदान देता है । भगवान् वायु ने इस सुन्दर कथा को नैमिषारण्यवासी ऋषियों को सुनाया था । ॥ ३३३—३५५ ॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते शिवपुरवर्णनं नामैकशततमोऽध्यायः । ॥ १०१ ॥

एक सौ दो अध्याय

प्रतिसर्ग वर्णन,

सूत बोलेः—ऋषिवृन्द ! अब इसके बाद मैं परम पुरुषोत्तम स्वयम्भू भगवान् के प्रत्याहार[१] का वर्णन कर रहा हूँ । परम ऐश्वर्यशाली ब्रह्मा के स्थिति-काल के समाप्त होने पर ईश्वर जिस

---

[१] सृष्टि को संकुचित करने की प्रक्रिया ।

प्रकार अपनी आत्मा में परम सूक्ष्म रूप में इस समस्त जगत् को स्थित कर लेते हैं उसे बतला रहा हूँ । उस प्रत्याहार में समस्त अव्यक्त (?) भूतों को व्यक्त ग्रस लेता है ? । कल्पों के क्षय काल के थोड़े शेष रहने पर ही सृष्टि के इस प्रत्याहार का कार्य प्रारम्भ हो जाता है । सा से अन्तिम द्रुम नामक मनु को अधिकारावधि के अन्तिम अवसर पर कलियुग के अवसान में यह घोर संकट काल उपस्थित होता है । उस समय यह सारी सृष्टि अप्रत्यक्ष (अव्यक्त) में परिणत हो जाती है, वही सृष्टि का संहार कहा जाता है । उस प्रति संचर काल के प्रवृत्त होने पर जब सृष्टि का प्रत्याहार उपस्थित होता है, उससमय भूतों की तन्मात्राओं का भी विनाश होता है । महदादि विशेषान्त समस्त विकार क्षय को प्राप्त होते हैं । यह सब स्वाभाविक ढंग पर घटित होता है । सर्वप्रथम जलराशि भूमि के गन्धगुण को ग्रस लेती है, जिससे भूमि गन्धविहीन होकर जल में विलीन हो जाती है । और इस प्रकार जल में गन्ध-तन्मात्रा के प्रविष्ट हो जाने से पृथ्वी जल रूप में परिणत हो जाती है । उसके बाद वह जलराशि समस्त जगत् में व्याप्त होकर वेगवान् एवं अति मुखरित होकर सर्वत्र संचरित और स्थित होने लगती है । तदनन्तर जल का जो रस गुण है वह ज्योति (तेज) में लीन हो जाता है, और इस प्रकार रस तन्मात्रा के नष्ट हो जाने से जलराशि समाप्त हो जाती है । तेज के द्वारा विनष्ट रस के ज्योति में परिणत हो जाने पर जलराशि का जब सर्वथा अभाव हो जाता है तब सभी ओर तेज ही तेज दिखलाई पड़ने लगता है । समस्त जगत् में व्याप्त अग्नि उस समय जल को अपने में ग्रहण कर लेती है, उसकी लपटों से यह जगन्मण्डल शनैः शनैः पूर्ण हो जाता है । नीचे, ऊपर, इधर-उधर सर्वत्र अग्नि की लपटों के फैल जाने पर ज्योति के प्रकाशमय गुण रूप को वायु अपने में समेट लेती है, उस समय वायु में वह तेजोराशि दीपक की शिखा की भाँति विलीन हो जाती है तन्मात्रा के विनष्ट हो जाने पर अग्नि का रूप नष्ट हो जाता है, जिससे तेज शान्त पड़ जाता है, वायु से यह समस्त जगत् अतिशय कम्पायमान हो उठता है । तेज के वायु के रूप में परिणत हो जाने पर जब समस्त लोक आलोक विहीन हो जाता है, तब वायु अपने मूल उत्पत्ति स्थान का आश्रय ग्रहण करता है और ऊपर नीचे इधर उधर सर्वत्र दसों दिशाओं को बारम्बार-कम्पित करता है । तदुपरान्त वायु के स्पर्शात्मक गुण को आकाश अपने में समेट लेता है परिणाम स्वरूप वायु का वेग शान्त हो जाता है उस समय केवल अनावृत आकाश स्थित रहता है, कोई रूप रस, गन्ध, स्पर्श एवं मूर्ति उसकी नहीं रहती, अपने भीषण निनाद से जगत् को पूरित करता हुआ वह मण्डलाकार आकाश प्रकाशित होता है, वह केवल शब्दात्मक रहता है, उसमें केवल पोल रहती है । इस प्रकार केवल शब्द गुण युक्त आकाश समस्त भूतों को आवृत कर स्थित रहता है । उसके बाद उस शब्दगुणमय आकाश को भी भूतादि ग्रस लेता है । समस्त भूतों को एवं उन आश्रित समस्त इन्द्रियों को एक साथ ही यह अहंकार तत्त्व ग्रस लेता है, यह भूतादि तामस अर्थात् अहंकारतत्त्व के नाम से विख्यात है । उस भूतादि तामस को भी बुद्धि रूपी महत्तत्व ग्रसता है । यही महत्तत्त्व ही संकल्प एवं अध्यवसायात्मक है । तत्त्वचिन्तापरायण लोग इसी को बुद्धि, मन, लिङ्ग, महान् एवं अक्षर प्रभृति पर्यायवाची शब्दों से पुकारते

हैं। इस प्रकार जब सभी भूत विलीन हो जाते हैं, गुणों में साम्यता हो जाती है, समस्त जगत् तमोमय हो जाता है, लोक के कारणभूत कारणसमूह आत्मावस्थित हो जाते हैं, सृष्टि निवृत्त होकर प्रकृति में अवस्थित हो जाती है, तब आदि अन्त किसी का कुछ पता नहीं लगता, कुछ दिखाई नहीं पड़ता, किसी का कुछ नाम रूप शेष नहीं रह जाता, जिससे ज्ञान सम्पन्न को भी कुछ मालूम नहीं पड़ता और उस समय गतागत का भी कुछ बोध नहीं होता। ऐसी स्थिति का भावनाओं एवं अनुमान द्वारा कुछ चिन्तन करके यह कहा गया है कि उस समय वे सब पदार्थ उस सदसदात्मक, शाश्वत परम कारण में प्रतिष्ठित होते हैं। यह स्वात्मिका प्रवृत्ति कारण द्वारा अनिर्देश्य है। सृष्टि के इन सातों उपादानों के इस प्रकार क्रमशः विलय कहे जाते हैं। प्रत्याहारकाल में इसी प्रकार इन सातों प्राकृत पदार्थों का परस्पर अनुप्रवेश होता है। सातों द्वीप, समस्त पर्वत, सातों लोक एवं सब समुद्र इन सब को जिसने आवृत किया है, वह विशाल ब्रह्माण्ड सर्व प्रथम जलराशि में विलीन होता है। और तदनन्तर वह जलावरण ज्योति पदार्थ में विलय होता है। उसके बाद उस तैजस आवरण को वायु ग्रसता है और उस वायवीय आवरण को आकाश समेट लेता है। उस आकाशीय आवरण को भूतादि तामस अहङ्कार तत्त्व ग्रसता है। भूतादि को बुद्धि रूप महत्तत्त्व ग्रसता है। उस महतत्त्व को अव्यक्त ग्रसता है, उसके बाद गुणों में समानता हो जाती है। सृष्टि का यह संहार एवं विस्तार ब्रह्मनिष्ठ अव्यक्त प्रकृति से होता है। सृष्टि के लिये ही वह इन विकारों को ग्रसती एवं निर्माण करती है। समस्त कार्य और कारणों को अधिगत करनेवाले जो परम ज्ञानी एवं सिद्ध लोग हैं वे इन स्थानों पर अपने प्रकृष्टसंयम से इस संहारकालीन आकर्षण में स्वयं द्रुतगति से आकृष्ट हो प्रत्याहारकाल में वे क्षेत्रज्ञ करणों से पुनः वियुक्त हो जाते हैं। अव्यक्त ही को क्षेत्र कहा जाता है, और ब्रह्म क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। इन दोनों का साधर्म्य एवं वैधर्म्य मूलक संयोग अनादिकाल से चला आ रहा है। विप्र वृन्द! समस्त सर्गों में (सृष्टि में) क्षेत्रज्ञों के विषय में यही विशेषता (क्रम) जाननी चाहिये। जो पृथक्-पृथक् रूप में इस क्षेत्र का (ज्ञान) तत्त्व जानता है उसी को ब्रह्मज्ञानी (क्षेत्रज्ञ) जानना चाहिये। क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का विषयत्व एवं अविषयत्व प्रसिद्ध है, ब्रह्म को विषय एवं क्षेत्र को अविषय जानना चाहिये। क्षेत्र क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित है, उसकी उपयोगिता ही क्षेत्रज्ञ के लिए कही जाती है। शरीर के आधिक्य के कारण शरीरी भी अनेक कहे जाते हैं। किन्तु ये ज्योतिर्मय पदार्थ की भाँति असम्बद्ध और असंकर रहते हैं। प्रत्येक शरीर में सुख दुःख दोनों की उपलब्धि होती है, अतः ज्ञानी लोग पुरुष को अनेक मानते हैं। बहुत काल व्यतीत हो जाने पर प्रकृतिवश जब सब के भेद की प्रवृत्ति का संयम घटित होता है तब स्वयम्भू की स्थितिबुद्धि निवृत्त हो जाती है। और उस समय समस्त ब्रह्मलोक निवासी सहसा अपनी-अपनी स्थितिवृत्ति में दोष देखकर वैराग्य युक्त हो जाते हैं। जिससे उनके आत्मवादात्मक अहंकार का सर्वथा विनाश हो जाता है। भोग्य एवं भोक्तापन के ज्ञान से रहित होकर वे नानात्व के दर्शनाभाव से प्रशान्त होकर आत्मा में अवस्थित होते है। वे समस्त ब्रह्मलोक निवासी पृथक्-पृथक क्षेत्र ज्ञान युक्त होने के कारण ही क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं। वे सब प्रकृत्ति गत सभी कारणों से परे है

और उन सब के नानात्व के देखने वाले हैं । चेतना चेतनात्मक, शुद्ध, बुद्ध, चैतन्य, निरञ्जन, प्रकृति में निर्वाण प्राप्त करनेवाले एवं पुनः कभी लौटकर आनेवाले नहीं हैं अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता । प्रकृति निर्गुण और निरात्म होने के कारण वे क्षेत्रज्ञगण मुक्त होजाते हैं उनका पुनः आगमन (जन्म) नहीं होता । स्वयम्भू का प्राकृत प्रतिसर्ग इसी प्रकार का कहा जाता हैं । सभी भूतों के करणसमूह प्रकृति के इस गुण-संयम में भिन्न-भिन्न होजाते हैं । तत्त्वों का करणों के साथ इसी प्रकार का संयम है । द्विजवृन्द यह तत्त्वप्रसंयम आवर्तनशील कहा जाता है । – ४७

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! धर्म अधर्म, तप, ज्ञान' सत्य, झूठ, ऊर्ध्व, अधः, सुख, दुःख, प्रिय अप्रिय —ये सब गुणमात्रात्मक कहे जाते हैं । इन्द्रियों से परे अर्थात् जितेन्द्रिय ज्ञान सम्पन्न प्राणियों के जो कुछ भी शुभाशुभ पुण्य पापात्मक कर्म हैं, वे सब प्रकृति वश प्रतिष्ठित हैं । प्राणधारी जन्तुओं के जो कुछ भी पुण्य पापादि कर्म प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं । प्रकृति ही उन देहधारियों के स्वभाव की उत्पत्ति स्थली है । अव्यक्त प्रकृति में प्रतिष्ठित जन्तुओं के पुण्यपापादि कर्म समूह अन्य शरीर धारण करने पर पुनः संयुक्त हो जाते हैं । देहधारियों के धर्म और अधर्म—ये दो गुणमात्रात्मक हैं । कार्य दशा में अपने-अपने कारणों द्वारा देहधारी के स्वभाव में वृद्ध प्राप्त करते हैं । इस जगत् में क्षेत्रज्ञाधिष्ठित सुचेतन गुण समुदाय सृष्टि की और संहारदशा में अपने-अपने कारणों द्वारा संयुक्त, वियुक्त और संचरणशील होते हैं । समस्त पुरुषों में अधिष्ठित राजसी, तामसी एवं सात्त्विकी—ये तीन गुणमात्र वृत्तियाँ प्रवर्तित होती हैं । ऊर्ध्व भाग देवात्मक एवं सत्वगुण सम्पन्न है, अधोभाग तमोगुणमय है, दोनों का मध्यवर्ती एवं प्रवर्तक भाग रजोगुणमय इस लोक का प्रापक है । समस्त त्रैलोक्य में सर्व जीवों के भीतर यही तीन भाव परिवर्तित होते रहते हैं । ज्ञानी पुरुष को लोक में समस्त जीवों के इन विविध स्वभावों की पर्यालोचना नहीं करनी चाहिये । मानव अविद्या वश विविध प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान कर शुभ, पाप एवं मध्यात्मक तीन गतियों को प्राप्त करता है । जन्तुगण तमो गुण में आबद्ध होकर यथार्थ तत्त्वज्ञान की प्राप्ति करने से वंचित रह जाते हैं । और इस प्रकार तत्त्वों के अदर्शन के कारण तीन प्रकार के बन्धनों से आबद्ध होते हैं । प्रथम प्राकृत बन्धन, द्वितीय वैकारिक बन्धन और तृतीय दक्षिणात्मक बन्धन—इन तीनों से अतिशय आबद्ध होकर जन्तुगण दुःख का अनुभव करते हैं । ये तीनों अज्ञानमूलक बन्धन कहे जाते हैं । अनित्य पदार्थों में नित्यता का दर्शन, दुःख में सुख का दर्शन, परकीय वस्तु में निजत्व का दर्शन, अपवित्र में पवित्रता का दर्शन, जिनके मन में ऐसे दोष रहते हैं, उनके विपर्यय वश ज्ञान में भी दोष हो जाते हैं । राग और द्वेष से पूर्ण निवृत्ति का होना ही ज्ञान कहा जाता है । ऐसे ज्ञान का अभाव तमोगुण का मूल है, शुभ एवं अशुभ कर्मों का प्रेरक रजोगुण है । कर्मों से पुनः शरीर धारण करना पड़ता है, जिससे महादुःख की प्राप्ति होती है । कान से, नेत्र से, चमड़े, से, जीभ से, और नाक से पुनर्जन्म के कारणभूत कर्मों का जन्म होता है । अपने-अपने किये गये कर्मों के फल से ही अज्ञ जीवको इन्द्रियों द्वारा उपभोग्य विषयों की तृष्णा में फँसकर दु खों का अनुभव करना पड़ता है । वह तेली के

बैल के समान उन्हीं विषयों में बार-बार चक्कर काटता रहता है। इसी कारण से समस्त अनर्थों के मूल भूत अज्ञान से बचने का उपदेश किया जाता है। उसे अपना शत्रु समझकर मनुष्य को सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिये यत्न करना चाहिये। ज्ञान द्वारा ही समस्त अज्ञानों से मुक्ति मिलती है। अज्ञान त्याग से सांसारिक विषय वासनाओं से विराग होता है। वैराग्य से मन की शुद्धि होती है और मनः शुद्धि से सात्त्विक भावनाओं का उदय होता है, जिसके द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। अब इसके उपरान्त समस्त प्राणियों को अज्ञान में डालने वाले राग के विषय में बतला रहा हूँ। इसी राग के कारण प्राणिसमूह अवश होकर विषय वासनाओं से निबद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार के अनुराग से ही प्रीति, ताप, एवं विषाद का जन्म होता है। मनोभिलषित वस्तु की प्राप्ति में बाधा पड़ने से दुःख होता है, उसके रात दिन के अनुस्मरण से सुख का अनुभव होता है। यह सब विषयगत राग है, जो सब की उत्पत्तिका कारण कहा जाता है। ब्रह्मा से लेकर स्थावर जीव निकाय जितने हैं, वे सब इस आधिभौतिक जगत् में इसी अज्ञान मूलक विषयों के प्रति अनुराग रखने से जन्म ग्रहण करते हैं। इस लिये इस अज्ञान से सर्वथा बचे रहना चाहिये। ऋषियों के कहे गये मत एवं शिष्टाजनों द्वारा आचरित कर्म समूह उक्त अज्ञान के अनुकूल नहीं हैं, यह अज्ञान वास्तव में वर्णाश्रमधर्म विरोधी एवं शिष्टानुमोदित शास्त्रों से विपरीत है। यह एक अज्ञान पथ अस्थिर एवं तिर्यक् योनि में जन्म देने का कारण है। तिर्यक् योनिगत कारण यह कहा जाता है। उस तिर्यक् योनि में जन्म लेने से जो यातनाएँ अनुभव करनी पड़ती हैं, उससे भी अधिक विविध प्रकार का कष्ट इस अज्ञान से मिलता है। छः प्रकार के कारणों एवं विषय में तथा तिर्यक् योनियों में जो भी यातनाएँ जीवों को अनुभव करनी पड़ती हैं, वे कामनाओं के प्रतिघात से उत्पन्न होती हैं। वह सारी असफलता एवं ऐश्वर्य की न्यूनता इच्छाओं के प्रतिघात होने से ही उत्पन्न कही जाती है। भूतादिकों की ये चार प्रकार की तामसी वृत्तियाँ कही गई हैं। सात्त्विक भावनाओं के प्रदर्शन होने से चित्त को सत्त्व प्रधान माना जा सकता है, तत्त्वों के यथावत् अनुदर्शन एवं विचार से तत्त्वों के रहस्य ज्ञान से, सत्त्व और क्षेत्रज्ञ का नानात्व ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान कहा जाता है। ज्ञान से ही योगोत्पत्ति होती है—ऐसा लोगों का कहना है। उसी (संसार) से बँधे रहने पर वास्तव बन्धन एवं उसी से मुक्त रहने पर वास्तविक मुक्ति होती है। संसार से विनिवृत्त हो जाने पर जब मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है तब प्राणी लिङ्ग शरीर से भी मुक्त हो जाता है। उस मुक्तावस्था में जीवका किसी से भी कुछ सम्बन्ध नहीं रहता उसकी एक अचैतन्यावस्था रहती है, केवल आत्मनिष्ठ वह रहता है। जीव की इस विशेष अवस्था को, जब वह केवल आत्मस्थ रहता है, विरूप कहा जाता है। संक्षेप में मैंने ज्ञान एवं मोक्ष का परिचय आप लोगों को कराया है, तत्त्व द्रष्टा लोग इस मोक्ष को तीन प्रकार का बतलाते हैं। उनमें प्रथम मोक्ष ज्ञान बल से सांसारिक विषय वासनाओं से वियोग होना कहा जाता है। दूसरा मोक्ष, राग द्वेषादि का निर्मूलन होना है, जिससे लिंगाभाव दशा में जीव को कैवल्य की प्राप्ति होती है, कैवल्य से निरञ्जनत्व एवं निरञ्जनत्व से परम शुद्धत्व की प्राप्ति होती है, उस विशेष मोक्षावस्था में जीव को किसी मार्ग प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं रहती। तृतीय मोक्ष तृष्णा का सर्वतोभावेन अभाव होना है, तृष्णा का यह सर्वथा विनाश

मोक्ष का मूल कारण है । अभिमत शब्दादिकों में प्रतिघातजन्य दुःखानुभूति मुक्तात्माओं को नहीं होती, ये आठ प्रकृति जन्य रूप, जो गुण मात्रात्मक कहे जाते हैं, क्षेत्रज्ञों में क्रमानुरूप अवसक्त होते हैं । अब उसके उपरान्त दोष दर्शन के कारण वैराग्य का लक्षण बतला रहा हूँ । पाँच प्रकार के दिव्य एवं मानुष विषयादिकों में अनासक्ति एवं द्वेषाभाव का व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि इनमें दोष के दर्शन होते हैं । सन्ताप, प्रीति एवं विषाद को वर्जित करना चाहिये । इस प्रकार इन्हें छोड़ देने पर शरीरी सांसारिक पदार्थों में ममत्व रहित हो जाता है । यह संसार अनित्य है, अममंगलकारी है, दुःख दायी है,—ऐसा सोचकर कार्य एवं कारणों के विशुद्ध तत्व को जानकर ही विज्ञों को चित्त के कषाय की तरह परिपक् हो जाने पर समस्त दोषों का दर्शन होता है । जिससे महाप्रयाण काल में नैमित्तिक दोषों के कारण शरीर में तीव्र वायु से प्रेरित उष्मा का प्रकोप होता है । और वह शरीर में रहनेवाले समस्त दोषों को रोकता है प्राणों के स्थानों का भेदन एवं मर्म स्थलों का छेदन करता हुआ शीतलता से अधिक प्रवृद्ध वायु उर्ध्वगामी होता है । समस्त जीवधारियों के प्राण-स्थलों में अवस्थित वायु की यही दशा अन्त समय में होती है। संक्षेप में समस्त चेतना एवं कृतकर्मों के संकुचित हो जाने पर वह जीव स्वकृत पूर्व कर्मों के साथ शरीर से अपनी स्थिति विच्छिन्न कर लेता है । आठों अङ्गों से प्राण की समस्त वृत्तियाँ छूट जाती हैं । इस प्रकार शरीर छोड़ता हुआ जीवात्मा श्वास रहित दशा में हो जाता है । और समस्त प्राणों से विहीन होकर वह शरीर अन्त में मृतक नाम से पुकारा जाता है । जैसे इस लोक में खद्योत को इधर-उधर ले जाने वाला भी प्रकाश मान होता है और खद्योत के मर जाने पर वह भी नहीं दिखाई पड़ता वही दशा प्राणों की और शरीर की है । तृष्णा का विनाश होना ही तीसरा मोक्ष का लक्षण कहा गया है । शब्दादिक पाँच दोषादि विषयों से द्वेष एवं अतिशय आसक्ति का न रखना प्रीति एवं सन्ताप से वर्जित रहना ही वैराग्य एवं प्रकृति के विलय का कारण कहा गया है । पूर्व कथित आठों प्रकृतियों को यथा क्रम जानना चाहिए, जो अव्यक्त से लेकर पाँचों महाभूतों तक कही जाती हैं, यही आठ प्रकृति के लय हैं । शास्त्र से विरोध (न) करनेवाले वर्णाश्रम व्यवस्था के अनुयायी शिष्ट कहे जाते हैं. वर्णाश्रम-व्यवस्था के धर्मशासन देवस्थानों की प्राप्ति के कारण भूत हैं । ब्रह्मा से लेकर पिशाचों तक आठ देवयोनियाँ कही जाती हैं, अणिमा आदि ऐश्वर्य दायिनी सिद्धियाँ भी आठ हैं । अभिमत शब्दादिक पदार्थों में प्रतिघात जन्य दुःखानुभूति उन स्थानों में रहनेवालों को नहीं होतीं । वे प्रकृति जन्य गुणमात्रात्मक आठ प्रकार के स्वरूप क्षेत्रज्ञों में क्रमानुसार अवसक्त होते हैं । वर्षाकाल में जिस प्रकार आकाश मण्डल में अवस्थित मेघों में तद्गत जलादि पदार्थों को लोग चर्मचक्षु से नहीं देख सकते केवल अनुमानादि द्वारा ही उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार सिद्ध लोग जीवात्मा को अपने दिव्य नेत्रों से देखते हैं, सामान्य लोग जीव को नहीं देख सकते। वह जीवात्मा द्विजाति उच्च योनियों से लेकर श्वानों को बाँधनेवाले चाण्डालों तक की योनियों में प्रवेश करता है, इस प्रकार ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्, समस्त योनियों में वह यथाक्रम अपने कर्मों के अनुसार धावन करता रहता है । जीव, प्राण, लिङ्ग कारण प्रभृति पर्यायवाची शब्दों द्वारा जो सब एक ही अर्थ के द्योतक हैं, वह उल्लिखित होता

है । व्यक्त अव्यक्त सर्वत्र जगत् में वह प्रमाण स्वरूप है । क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित अव्यक्तान्तः पाति समस्त जगत् के इन समस्त कारणों को भली भाँति अवगत कर लेने पर प्राणी प्रवित्र हो जाता है और उसे लोग वित्र की उपाधि देते हैं । जगत् के इन समस्त कारणों एवं तत्त्वों को भली भाँति देख लेने पर जीवात्मा यथेष्ट रूप में सुखपूर्वक शरीर छोड़ने पर बहिर्गत होता है । अव्यक्तादि के ज्ञान होने के कारण प्राणी के अन्य जन्मादि के कारणों का विनाश हो जाता है, गुणों के परिणामों से वह मुक्त हो जाता है, और इस प्रकार शान्तिपूर्वक प्राणादि के परित्याग के अनन्तर वह शरीर एवं मानस कर्म सूत्रों के सर्वथा विनष्ट हो जाने पर अन्य शरीर भी नहीं धारण करता, ठीक उसी तरह जैसे बीज के भस्म हो जाने के बाद अङ्कुर का उद्गम नहीं होता । चौदह प्रकार के ज्ञानों से सुपरिचित होकर वह शुद्धात्मा प्रकृति का अनुवर्तन करता है । विद्वान् लोग केवल प्रकृति को ही सत्य बतलाते हैं, विकारों का उनकी दृष्टि में मिथ्यात्व सिद्ध हो चुका है । जिसका कोई अस्तित्व नहीं है, वह असत्य अथवा मिथ्या है, सद्भाव सत्य कहा जाता है, क्षेत्रज्ञ नाम एवं रूप से रहित है किन्तु नाम और रूप की परम्परा उसी से चलती कही जाती है । क्षेत्र के जानने के कारण उसकी क्षेत्रज्ञ की उपाधि है । उस क्षेत्र का भली भाँति प्रत्यय (अधिगम) कर लेने के कारण क्षेत्रज्ञ मङ्गलदायी कहा जाता है । जीवगण इसी लिए उस मंगलकारी क्षेत्रज्ञ का स्मरण करते हैं, क्षेत्र की भावना केवल क्षेत्रज्ञों द्वारा होती है । यह क्षेत्र प्रत्यय है, क्षेत्रज्ञ सर्वदा उसका प्रत्यायी है । क्षय, करण, क्षतत्राण, भोज्य, एवं विषयत्व के कारण क्षेत्रज्ञ लोग उसकी क्षेत्र संज्ञा बतलाते हैं, सवैरूप्य विलक्षण महत् से लेकर विशेष तक समस्त क्षराक्षर पदार्थ निचय विकार कहे जाते हैं । उन समस्त विकारों से पुनः क्षरण होता देखा जाता है इसी लिए उन्हें क्षर कहते हैं । संसार एवं नरकों से पुरुष की रक्षा करता है, अनेक दुःखों से उसे पुनः पुनः बचाता है, अतः उसको क्षेत्र कहते हैं । सुख, दुःख एवं मोह उत्पन्न करता है, अतः उसकी भोज्य नाम से भी प्रसिद्धि है, अचेतन विषय होने के कारण वह सर्वव्यापी विभु नाम से स्मरण किया जाता है । वे सब विकार समूह यतः कभी क्षय नहीं होते, क्षीण नहीं होते, अतः अक्षर नाम से भी विख्यात हैं । पुर में सर्वदा शयन करने के कारण पुरुष नाम पड़ा, पुर का प्रत्ययी होने से भी उसकी पुरुष नाम से प्रसिद्धि है । पुरुष के लक्षण क्या हैं ? उसके जाननेवाले उसे किस रूप में जानते हैं—इसे अब बतला रहे हैं, सुनिये । वह पुरुष शुद्ध, निरञ्जन की तरह परम निर्मल, ज्ञान एवं अज्ञान दोनों से विवर्जित, अस्ति तथा नास्ति इन दोनों विशेषणों से रहित है । उसके लिए बद्ध, मुक्त, गतिशील एवं स्थित कोई भी विशेषण लागू नहीं होता । परम शुद्धता के कारण वह अनिर्देश्य एवं आनन्द स्वरूप कहा जाता है । परम हृष्ट होने के कारण समदर्शी कहा जाता है । आत्मप्रत्यय कर्त्ता होने के कारण उसमें कोई हेतु बाद नहीं रहता । वह भावनाओं द्वारा ग्राह्य तथा अनुमानों एवं चिन्तनों द्वारा गम्य है । इन उपायों द्वारा उसे देखनेवाले मोह के वश नहीं होते । इस दृश्य एवं अदृश्य विश्व प्रपञ्च में एक मात्र निर्देश्य, परम श्रेष्ठ, ज्ञानमय, शान्तिमय, सर्वज्ञ पुरुष को जब प्राणी देखता है तभी वह समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त करता है और तभी उसे वास्तविक शान्ति की उपलब्धि होती है । कार्य, कारण, भौतिक बुद्धि आदि पदार्थ समूह, संयुक्त अथवा वियुक्त, जीवित अथवा मृत इन

सब में वह विज्ञाता पृथक्त्व का दर्शन नहीं करता। आत्मा द्वारा वह उस कारणात्मा से संयुक्त होता है, प्रकृति एवं कारण में वह सर्वत्र अपनी ही आत्मा में उपासना करता है। इस लोक अथवा पर लोक में वह विद्यमान रहता है और नहीं भी रहता है। वह एक है अथवा अनेक है, क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है, आत्मवान् है, अथवा निरात्मा है, चेतन है, अथवा अचेतन है, कर्त्ता है वा अकर्त्ता है, भोक्ता है वा भोज्य है, इन किन्हीं भी विशेषणों से विशिष्ट एवं अविशिष्ट है। उस निरञ्जन क्षेत्रज्ञ को जानने के बाद संसार में पुनरावृत्ति नहीं होती, उसकी कोई संज्ञा नहीं होती इसी कारण से वह अवाच्य कहा जाता है। उसके कोई हेतु नहीं हैं, अतः वह अग्राह्य है। चिन्तन से परे एवं सर्वत्र प्राप्य (व्याप्त) होने के कारण वह अप्रतर्क्य है। मन के साथ उसे प्राप्त करने के उपरान्त अन्य विषयों में आसक्त नहीं होना पड़ता। क्षेत्रज्ञ के गुण रहित शुद्ध, शान्त, क्षीण मल रहित, सुख दुःख से विहीन, परम शान्ति प्राप्त कर लेने, एवं निरात्मक हो जाने पर वाच्य एवं अवाच्य का अस्तित्व नहीं रह जाता। व्यक्त एवं अव्यक्त सृष्टि का संसार एवं विस्तार उसी परम पुरुष से प्रतिष्ठित होता है। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित इस समस्त जगत की वह पुरुष सृष्टि करता है, और लय काल में वहीं ग्रस लेता है। बुद्धि पूर्वक जगत् की सृष्टि एवं लय उसी के अधिष्ठान भूत होते हैं। उन दोनों के (प्रकृति एवं पुरुष के) संयोग साधर्म्य वैधर्म्य घटित होते हैं। उसका संयोग कब हुआ इसका आदि काल नहीं है, चिरकाल से वह है। सृष्टि के आदिमकाल से लेकर विनाशकाल तक प्रकृति उस परमपुरुष को सन्निरुद्ध करके रखती है, उस अवस्था में पुरुष से अबुद्धिपूर्वक यह सृष्टि प्रवर्तित होती है (१) उसे पुरुष का पुरुषार्थ ही मानते हैं। जगत् की इस सृष्टि एवं संहार की इस प्रक्रिया को कोई तो ईश्वरकृत मानते हैं और कोई प्राधानिक अर्थात् प्रकृति कृत। परन्तु सृष्टि का यह व्यापार अनादि एवं अनन्त है। जगत् को अभिमान पूर्वक वित्रासित करती हुई वह प्रकृति प्राप्त होती है। प्रकृति जन्य सृष्टि का यह तृतीय हेतु कहा जा चुका, इसमें अत्यन्त निष्ठा रखने वाला मुक्ति प्राप्त करता है (१) आप लोगों से इस प्रकार तीन प्रतिसर्गों की चर्चा मैं विस्तार पूर्वक क्रमशः कर चुका, अब आगे के लिए बतलाइये, मैं क्या कहूँ ? ४८—१३५

इति श्री महापुराणे वायु प्रोक्ते प्रतिसर्ग वर्णनं नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकसौतीन अध्याय

सृष्टि वर्णन।

ऋषियों ने कहा:—सूत जी ! आप ने एक महान् आख्यान हम लोगों से कहा। मनु समेत समस्त प्रजाओं, ऋषियों समेत समस्त देवताओं, पितरों, गन्धर्वों, भूतों, पिशाचों, उरगों, राक्षसों, दैत्यों,

दानवों, यक्षों, एवं पक्षियों के अति अद्भुत कर्म, उनके धर्म निश्चय, उनके जन्म की विचित्र एवं श्रेष्ठ कथाएँ, जो मन को एवं कान को सुख देने वाली थीं, आपने हम लोगों को अपनी परम मनोहर वाणी में सुनाया। सूत पुत्र ! वे कथाएँ सचमुच मनुष्य को महाप्रलय पर्यन्त प्रसन्न रखनेवाली हैं। इस प्रकार उन सब यज्ञकर्त्ता महर्षियों ने सूत जी का सत्कार एवं समादर करते हुए पुनः सृष्टि प्रवर्तन की आख्या पूछा। १—५

महाप्राज्ञ सूत जी ! जब क्षेत्रज्ञ समस्त प्राकृत गुण बन्धनों से विमुक्त हो जाता है, प्रकृति के सत्त्व, रजस्, तमस् ये तीनों गुण साम्यावस्था में परिणत हो जाते हैं, समस्त ब्रह्माण्ड घोर अन्धकार मय हो जाता है, विकार समूह निष्क्रिय एवं प्रवृत्ति रहित हो जाते हैं, जीव समूह ब्रह्मा के साथ ही महान् साम्राज्य में सन्निविष्ट होकर अव्यक्तात्मा में विलीन हो जाते हैं, तब पुनः सृष्टि का प्रारम्भ किस प्रकार होता है ? उसे आप अच्छी तरह हम लोगों को बतलाइये। ऋषियों द्वारा पूछे जाने पर लोमहर्षण सूत जी पुनः सृष्टि विषय की व्याख्या करते हुए बोले, ऋषिवृन्द ! उस अवस्था में जिस प्रकार पुनः सृष्टि का प्रारम्भ होता है, मैं बतला रहा हूँ। संक्षेप में इस पुनः सृष्टि का क्रम पूर्ववत् ही समझना चाहिए, फिर भी संक्षेप में बतला रहा हूँ, ध्यानपूर्वक सुनिये ! मैंने जैसा देखा है, अनुमान किया है, जिस प्रकार की युक्तियाँ एवं तर्क प्रचलित हैं, उन सब को बतला रहा हूँ, सुनिये। वाणी उस सृष्टि तत्त्व तक मन के साथ ही अपनी गति प्राप्त न करके निवृत्त हो जाती है। जिस प्रकार अव्यक्त परोक्ष एवं दुरधिगम्य है, उसी प्रकार सृष्टि के विषय भी परोक्ष एवं दुरधिगम्य हैं। जब विकार विलीन हो जाते हैं, उनका कहीं दर्शन नहीं होता, गुणों में साम्य हो जाता है, संसृति के कार्यजाल निवृत्त हो जाते हैं, उस समय पुरुष प्रकृति में साधर्म्य से अवस्थित होता है, प्राणियों के व्यक्ताव्यक्त धर्माधर्म भी विलीन हो जाते हैं। गुण सत्त्व में सत्त्वमात्रात्मक धर्म प्रतिष्ठित होता है, तमोगुण में तमोमात्रात्मक गुण प्रतिष्ठित होता है। गुणसाम्यावस्था में ये दोनों गुण विभाग रहित हो जाते हैं। उस समय प्रधान के सभी कार्यों में प्रवृत्ति बुद्धि पूर्वक होगी। क्षेत्रज्ञ उन गुणों को अबुद्धिपूर्वक अधिष्ठित करेगा। उस समय पुर भी अभिमान पूर्वक प्राप्त होगा। जब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों परस्पर प्रवर्तित होंगे उस समय वे भोज्य और भोक्तृत्व सम्बन्ध से समन्वित होंगे। अतः इन सब की शरण एकमात्र अव्यक्त है, साम्यावस्था में प्रतिष्ठित वे गुणगण सृष्टि प्रारम्भ के समय क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित होकर विषमता को प्राप्त होते हैं। तब क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों व्यक्तावस्था को प्राप्त होंगे। क्षेत्रज्ञ द्वारा अधिष्ठित सत्त्व विकार को उत्पन्न करेंगे। वे विकार महत्तत्त्व से लेकर विशेष तक चौबीस गुणात्मक माने गये हैं। क्षेत्रज्ञ पुरुष एवं प्रकृति को प्राप्त होंगे। ब्रह्माण्ड में प्रथम वह ऐश्वर्यशाली पुनः उत्पन्न होगा। वह समस्त ज्ञेय जगत् का एवं समस्त जीव समूह का अधीश्वर एवं शिव है। सभी मुक्तात्माओं का एक मात्र स्वामी, ब्रह्मा, ब्रह्ममय एवं महान् है। आदि देव है, प्रधान प्रकृति के अनुग्रह के लिए उसका यह आविर्भाव कहा जाता है। वे क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ अनादि एक परम सूक्ष्म कहे जाते हैं, अनादि काल से उन दोनों का संयोग कहा जाता है, समस्त क्षेत्र के वे अभिज्ञ हैं। मशक और उदम्बर, जल और मत्स्य की भाँति इनका सम्बन्ध अप्रर्तक्य अनादि तथा नियत है। (१) अज्ञ प्रकृति पुनः सृष्टि

काल में अपने रजस् सत्त्व एवं तमस् गुणों के योग से विकार युक्त होकर जगत् के रूप में परिणत हो जाती है । क्षेत्रज्ञ मानव गण इस प्रकृति के सृष्टि प्रवृत्ति काल में रजोगुण से आक्रान्त होकर महत्तत्व, महाभूत, इन्द्रिय एवं विशेषादि परिणामों का लाभ कर गुणों के अवसान को प्राप्त होते हैं । सत्य का सङ्कल्प करने वाले ध्याननिष्ठ ब्रह्मा की सृष्टि प्रवृत्ति के समय परस्पर विधर्मी रजस्, सत्त्व, तमोगुण कार्यकारण वश व्यक्तावस्था को प्राप्त होते हैं । अभिमानी क्षेत्र एवं उसके जानने वाले क्षेत्रज्ञ परस्पर व्यक्तभाव को सम्प्राप्त होंगे (?) अव्यक्त से प्रथम साधिका एवं असाधिका सत्त्वगुण मयी सृष्टि प्रादुर्भूत होकर स्थान एवं प्रकरणादि के साथ कार्य रूप में पुनः पुनः आविर्भूत तिरोभूत होती हैं । क्षेत्रज्ञ गण सृष्टि विस्तार के लिए परस्पर तुल्य होकर भी सृष्टि के उस आदिम काल में गुणमात्रात्मक धर्म अधर्म वर अनुग्रह आदि से विविध विकार को प्राप्त होते हैं, गुणों की विचित्रता के कारण ही वे इस प्रकार विकार को प्राप्त होते हैं, उनके पूर्व युगीन गुणगण उनके समीप स्वयमेव अनुधावन करते हैं । इसी लिए वे उन्हें रुचिकर प्रतीत होते हैं । पूर्व सृष्टि में क्षेत्रज्ञों के जो गुण रहते हैं इस पर सृष्टि काल में भी उन्हीं गुणों को वे पुनः पुनः प्राप्त करते हैं । हिंस्र, अहिंस्र, मृदु, क्रूर, धर्म, अधर्म, सत्य, असत्य—ये गुण गण उनसे पूर्व सृष्टि के भावित रहते हैं अतः इस पर सृष्टि में वे उन्हें प्राप्त होते हैं, इसी कारण वश उन्हें ये रुचिकर भी होते हैं । महाभूत, इन्द्रियार्थ, मूर्त पदार्थ एवं प्राणिवृन्द की अनेकता—ये सब कार्य कलाप गुणों की विचित्रता के कारण ही घटित होते हैं । संक्षेप में पुनर्वार सृष्टि के क्रम को मैं आप लोगों को सुना चुका । अब संक्षेप में ब्रह्मा की उत्पत्ति का वर्णन कर रहा हूँ । नित्य, सत् असत्—उभयात्मक, अव्यक्त, कारण स्वरूप प्रकृति पुरुष के संयोग से एक महान् ऐश्वर्यशाली पुत्र उत्पन्न होता है उसी का नाम ब्रह्मा है । वही समस्त उत्पन्न पदार्थों का पिता है । अभिमान गुणात्मक समस्त लोकों की सृष्टि करता है । वही महत् पद से भी विशिष्ट कहा जाता है । उस महत् से अहङ्कार का उद्भव होता है । उसकी आत्मा से भूतों की उत्पत्ति होती है, वे समस्त भूत चय एक ही साथ उत्पन्न होते हैं, वे ही इन्द्रियों के नाम से भी विख्यात हैं । उन भूत समूहों से अन्यान्य भूत भेदों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार सृष्टि का प्रवर्तन होता है । हे ऋषिवृन्द ! सृष्टि की यह कथा परम विस्तृत एवं महान् है । मेरी जैसी कुछ बुद्धि थी, जैसा मैंने सुना था, वैसा आप लोगों के सम्मुख बतला चुका, उसे उक्त प्रकार से ही समझिए । नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने सूत से लोक की स्थिति उत्पत्ति, एवं विनाश की उक्त वार्ता सुनने के उपरान्त उस दीर्घकालीन यज्ञ में अवभृथ स्नान किया और पुण्य लोकों को प्राप्त किया । उसी प्रकार आप लोग भी विधिपूर्वक देवादि की पूजा अर्चा कर, यज्ञान्त में अवभृथ स्नान से शुद्धि लाभ कर, दीर्घायु के उपभोग के उपरान्त शरीरों को छोड़कर पुण्यप्रद लोकों को प्राप्त करोगे और वहाँ कृतकृत्य होकर यथेच्छ विहार करोगे यज्ञकर्त्ता नैमिषारण्यवासी महर्षियों ने जिस प्रकार यज्ञादि का अनुष्ठान कर, प्रजाओं की सृष्टि कर, यज्ञस्नान में अवभृथ स्नान के उपरान्त स्वर्ग को प्राप्त किया था उसी प्रकार द्विजवर्यवृन्द ! तुम लोग भी अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान कर स्वर्ग को प्राप्त करोगे । कथा वस्तुपरिग्रहात्मक (वर्ण्य विषयों की सूची) प्रक्रिया, अनुषङ्ग, उपोद्घात एवं उपसंहार इन

चार पादों से उपबृंहित लोक सम्मत इस महापुराण को लोक कल्याण में निरत साक्षात् भागवान् वायु ने यज्ञ के प्रसङ्ग में मुनियों से कहा था । उन्हीं की कृपा से प्राप्त, इस असन्दिग्ध, भूतों की उत्पत्ति एवं विनाश की कथा से युक्त, लोक की प्रधान सृष्टि एवं ईश्वर कारिता को भली भाँति जानकर मेधावी पुरुष मोह वश नहीं होता । जो विद्वान् ब्राह्मण इस पुरातन इतिहास को सुनता है या दूसरों को सुनाता है, अथवा शिष्यों को पढ़ाता है, वह महेन्द्र के स्थान को प्राप्त कर अनन्त काल पर्यन्त सुख का अनुभव करता है । ब्रह्म साम्राज्य प्राप्त कर ब्रह्मा के साथ मुक्ति लाभ करता है । परम ऐश्वर्यशाली प्रजापतियों की यशो गाथाओं का, जो वास्तव में इस समस्त भूमण्डल के अधीश्वर हैं, गान कर प्राणी ब्रह्मत्व की प्राप्ति करता है । कृष्ण-द्वैपायन वेद व्यास रचित इस परम यशोदायक, आयु प्रदाता, पुण्यप्रद, वेदों द्वारा सम्मानित पुराण को ब्रह्मवेत्ता लोग जानते हैं । जो इन मन्वन्तरेश्वरों की यशोगाथा का वर्णन करता है, परम ऐश्वर्यशाली, तेजस्वी देवताओं एवं ऋषियों का गुणगान करता है, वह समस्त पापकर्मों से मुक्ति प्राप्त करता है एवं महान् पुण्य का भागी होता है । जो विद्वान् प्रत्येक पर्वों के अवसरों पर इस पुण्य प्रद कथा को सर्वदा सुनाया करता है, वह पाप रहित होकर स्वर्ग प्राप्त करता है और साक्षात् ब्रह्मपद का अधिकारी होता है । इस पुराण के अन्तिम उपसंहार पाद को जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला एवं अक्षय फलदायी है, जो व्यक्ति श्राद्ध के अवसर पर ब्राह्मणों को सुनाता है, वह अपने पितरों की भूरि उपासना करता है । पुरा अर्थात् प्राचीन काल में इसकी प्रतिष्ठा थी, अतः इसको पुराण कहते हैं, जो व्यक्ति पुराण की इस निरुक्ति का तात्पर्य समझता है, वह समस्त पापकर्मों से मुक्त होता है । तीनों वर्णों में जो मनुष्य इस परम श्रेष्ठ इतिहास को सुनकर धर्म की ओर प्रवृत्ति करता है, वह अपने शरीरस्थ रोमकूपों जितने करोड़ सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द का अनुभव करता है । समस्त पापों को दूर करनेवाले, पुण्यप्रद, पवित्र, यशोदायक इस पुराण को भगवान् ब्रह्मा ने मातरिश्वा वायु के लिए प्रदान किया था, वायु से इसे शुक्राचार्य ने प्राप्त किया, उनसे भी बृहस्पति को इसकी प्राप्ति हुई । उसके उपरान्त बृहस्पति ने सविता को इसकी शिक्षा दी । सविता ने मृत्यु से कहा, मृत्यु ने पुनः इन्द्र को इसकी शिक्षा दी । इन्द्र ने भी वसिष्ठ को और वसिष्ठ ने सारस्वत को इसे दिया सारस्वत ने त्रिधामा को, त्रिधामा ने शरद्वत को, शरद्वत ने त्रिविष्ट को और त्रिविष्ट ने अन्तरिक्ष को प्रदान किया । इसके उपरान्त अन्तरिक्ष ने वर्षों को उन्होंने त्रय्यारुण को, त्रय्यारुण ने धनञ्जय को धनञ्जय ने कृतञ्जय को, कृतञ्जय ने तृणञ्जय को, तृणञ्जय ने भरद्वाज को, भरद्वाज ने गौतम को गौतम ने निर्यन्तर को इसका उपदेश दिया । उसके उपरान्त निर्यन्तर ने बाजश्रवा को बाजश्रवा ने सोमशुष्मा को, और उन्होंने तृणविन्दु को इसका उपदेश किया । तृणविन्दु ने दक्ष को, और दक्ष ने शक्ति को दिया । शक्ति से इसका उपदेश गर्भस्थ पराशर ने प्राप्त किया । पराशर से जातुकर्ण और जातुकर्ण से परम ऐश्वर्यशाली द्वैपायन ने इसे प्राप्त किया । द्विजवृन्द ! उन्हीं द्वैपायन से इसकी शिक्षा मुझे प्राप्त हुई, और मैंने आप लोगों को सुनाया । ॥६—६६॥

शाँशपायन बोले:—द्विजवृन्द ! इस प्रकार मैं भी व्यास से प्राप्त इस पुण्य कथा को अपने पुत्र अमित बुद्धि को भी सुना चुका हूँ । इसके आदि गुरु ब्रह्मा ही हैं । इस प्रकार इस पुण्य गाथा का

वर्णन मैं आप लोगों से कर चुका। बुद्धिमानों को सर्वप्रथम गुरुजनों को नमस्कार करना चाहिए। धन, पुण्य, आयु, यश एवं मनोरथों को देनेवाले इस पापनाशक वृत्तान्त को ब्राह्मणों को सर्वदा नियमपूर्वक सुनना चाहिये! इस परम पवित्र एवं उत्तम आख्यान को कभी भूलकर अपवित्र पापात्मा एवं ऐसे अनजान् व्यक्ति को न बतलाना चाहिये, जो सेवा भाव ग्रहण कर शिष्य रूप में एक वर्ष तक सेवारत न रह चुका हो। इसी प्रकार इसका उपदेश अश्रद्धालु, अविद्वान्, अपुत्री, एवं अहितकारी व्यक्ति को भी कभी न देना चाहिये। अव्यक्त जिसकी योनि, (उत्पत्ति स्थली) है, व्यक्ताव्यक्त काल जिसकी देह है, अग्नि जिसका मुख है, चन्द्रमा और सूर्य जिसके नेत्र हैं, दिशाएँ जिसके कान हैं, वायु जिसकी नासिका है, वेद समूह जिसकी वाणी हैं, अन्तरिक्ष जिसका शरीर है, पृथ्वी जिसके चरण हैं, ताराएँ जिसकी रोमावलियाँ हैं, समस्त दिशाएँ जिसके समस्त अङ्गोपाङ्ग हैं, समस्त वेदाङ्ग जिसकी पूछ हैं, उस परम देव-देव जनकों के भी जनक समस्त लोक समूहों में व्याप्त एवं प्रतिष्ठित, वरदान दायक महेश्वर ब्रह्मा को में सर्वप्रथम प्रयत होकर नमस्कार करता हूँ। ॥६७ – ७३॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्तं सृष्टि वर्णनं नाम त्रि-अधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

एक सौ चार अध्याय

व्यास की सन्देह-निवृत्ति,

शौनकादि ऋषियों ने पूछा:——महाभाग सूत जी! आप सचमुच पाप रहित हैं, क्योंकि भगवान् व्यास की कृपा से आप निखिल शास्त्रों के मर्मों को अधिगत कर चुके हैं; आप अठारहों पुराणों को इतिहास उपक्रम एवं उपसंहारादि समेत हम लोगों को सम्पूर्णतया बतला चुके। अत्यन्त स्पष्ट रीति से आप ने चौदह सहस्र श्लोकों में वर्णित मात्स्य महापुराण को बतलाया, उतनी ही संख्या वाले भविष्य महा पुराण को भी आपने बतलाया, नहीं, भविष्य में मत्स्य की अपेक्षा पाँच सौ श्लोक अधिक ही हैं। उसके बाद आपने परम रमणीय नव सहस्र श्लोकों में पूर्ण मार्कण्डेय पुराण का वर्णन किया। उसके उपरान्त अठारह सहस्र ब्रह्म वैवर्त का वर्णन आपने किया। बारह सहस्र एक सौ श्लोकों का ब्रह्माण्ड पुराण, अठारह सहस्र श्लोकों का भागवत महापुराण, दस सहस्र श्लोकों का ब्रह्म पुराण, दस सहस्र श्लोकों का वामन पुराण, छः सौ अधिक दस सहस्र श्लोकों का आदि पुराण, तेईस सहस्र (?) श्लोकों का वायुपुराण तेईस सहस्र का नारदीय पुराण, उन्नीस सहस्र का वैनतेय (गरुड) पुराण, पचपन सहस्र का पाद्म पुराण; सत्रह सहस्र का मनोहर कर्म पुराण, चौबीस सहस्र परमाद्भुत कथाओं से सुगुंफित शौकर (वाराह) पुराण, परम विस्तृत इक्यासी सहस्र श्लोकों में ग्रथित स्कान्द पुराण आपने बतलाया। इस प्रकार

परम विस्तृत अठारह पुराणों का गान आप ने किया। उन पुराणों में बहुतेरे धर्मों का निरुपण किया गया है। रागी, विरागी, यती, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, स्त्री, शूद्र, विशेषतया ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, अन्यान्य संकर वर्ण द्वारा विधेय धर्मों का उनमें वर्णन है। गंगा आदि महान् नदियों एवं विविध प्रकार के यज्ञों तपों एवं व्रतों के नियम उनमें वर्णित हैं। अनेक प्रकार के दान, यम, नियम, योग धर्म, सांख्य धर्म, भागवत धर्म, भक्तिमार्ग, ज्ञान मार्ग, वैराग्य मार्ग, अनिल, नीरज (?) विविध उपासनाएँ चित्त की कर्म संशुद्धि आदि का विधि समेत वर्णन किया गया है। ब्राह्म, शैव, वैष्णव, सौर, शाक्त, अर्हत, षड् दर्शनादि विविध विषयों का उन पुराणों में पर्यालोचन किया गया है। किन्तु हमारे मन में यह जिज्ञासा शेष रह जाती है कि इन उपर्युक्त विषयों के अतिरिक्त कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें शेष रह जाती हैं या नहीं (?) भगवान् व्यास देव को अथवा आप को ऐसी कोई बात नहीं है जो ज्ञात न होगी अथवा किन्हीं कारणों से आप लोग उसे छिपा रहे होंगे। इस विषय को लेकर हमारे मन में बड़ा सन्देह है, आप समस्त पुराणों के जाननेवाले परम विद्वान् हैं, कृपया हमारी संशय निवृत्ति करें। ।।१--१८।।

सूत बोले:—शौनक जी! इस परम दुर्लभ प्रश्न का उत्तर सुनिये बतला रहा हूँ। यह अत्यन्त गोपनीय, दिव्यगुण सम्पन्न एवं जिसी किसी से कहने योग्य नहीं है। पराशर पुत्र भगवान् व्यासदेव ने समस्त वेदार्थों के सारभूत पुराणों की रचना जब कर चुके तब अपने चित में विचार किया कि इन पुराणों में वर्णाश्रम मर्यादा को मानने वालों के धर्मों का मैं भली तरह निरूपण कर चुका, वेदों के अनुसार चलने वाले अनेक प्रकार के मोक्ष दायी मार्गों का निर्वचन कर चुका, सूत्र निर्णय में जीव, ईश्वर और ब्रह्म के भेदों का पर्यालोचन कर चुका, श्रुति प्रतिपादित युक्तियों से परम ब्रह्म का निर्णय कर चुका। वह परम ब्रह्म परमात्मा कभी विनष्ट होनेवाला नहीं है, वही परम पद है। उसी के लिए बड़े बड़े बुद्धिमान् ब्रह्म चर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, एवं संन्यस्त आदि धर्मों का प्रतिपालन करते हैं, बड़े बड़े मुनि पुङ्गव आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान यम, नियम और समाधि—इन आठों अङ्गों का विधिवत् पालन करते हैं। एक मात्र वेदों की वचनों में आस्था रखनेवाले उसी परम ब्रह्म के उद्देश से कर्म करते हैं, परार्पण बुद्धि से वे निष्काम एवं पाप रहित भावना से जीवन यापन करते हैं। अपने पापाचरण को निराकृत करने के लिए पवित्रात्मा उसी ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिये गंगा आदि पवित्र तीर्थों का सेवन करते हैं। वह परम ब्रह्म शुद्ध, अनादि, अनन्त एवं अनामय है। नित्य, सर्वगत, स्थाणु, कूटस्थ एवं कूट वर्णित है। समस्त इन्द्रिय ग्रामों में विचरण करनेवाला, अतीन्द्रिय, दिक्कालात्मक, नित्य, चिन्मात्र एवं अव्यय है। इस निखिल ब्रह्माण्ड में वह सर्वत्र व्याप्त है, उसी की ज्योति से यह सुप्रकाशित है। रज्जु की तरह निर्विकार वह ब्रह्म इस समस्त विश्व में भी संयुक्त नहीं होता। सम्यक् विचार करने पर वह फेन, तरङ्ग, बुद्बुद एवं उदक की तरह है। अर्थात् जिस प्रकार फेन, तरङ्ग, बुद्बुद ये सब जल के विकार ही हैं, जल से अलग इनकी अपनी कोई सत्ता नहीं है, उसी प्रकार अच्छी तरह विचार करने पर यह निश्चय हो जाता है कि वह ब्रह्म समस्त विश्व विभूतियों से पृथक् नहीं है। सब कुछ ब्रह्म ही है, जगत् में अनेक कुछ नहीं है—यही सब वेदों का परमार्थ है। उसी

से इन समस्त ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है, और उसी में ये पुनः समाविष्ट हो जाते हैं। उसी के उन्मेष और निमेष से जगत् का प्रलय एवं उदय होता है। उसी की आधारभूत वह परा शक्ति है, जो समस्त जगत् की सृष्टि, स्थिति एवं विनाशकर्त्री है। उसी में यह समस्त जगत् अवस्थित है, उसी से इसकी उत्पत्ति होती है, उसी के द्वारा इसकी पालना होती है, वह स्वयं जगत् रूप है। उसी के न जानने से जगत् की सत्ता का बोध होता है, उसके जान लेने पर यह सब मिथ्या मालूम पड़ता है। वह असत्य जड़, दुःख एवं अवस्तु निरूपित किया गया है, इसके विपरीत वह पर ब्रह्म सत् चित् आनन्द एवं मूर्तमान् है। वह जीवों की जागरण अवस्था में विश्व, स्वप्नावस्था में तैजस एवं सुषप्ति में प्राज्ञ संज्ञक है, सभी अवस्थाओं में उसका अस्तित्व स्मरण किया जाता है। वह चक्षुओं का भी चक्षु है, श्रोत्रों का भी श्रोत्र है, त्वचा की भी त्वचा है, रसना की भी रसना है और अधिक क्या प्राणों का भी प्राण है, ऐसा विद्वान् लोग जानते हैं। मानव अपनी बुद्धि, ज्ञान, प्राण एवं क्रिया शक्ति--इन सब के द्वारा निरन्तर अध्यवसाय करते रहने पर भी उसके परमार्थ को जानने एवं वहाँ तक पहुँचने में असमर्थ है रज्जु में सर्प, बालू में जल, गगन में नीलिमा की भाँति अविद्या के कारण यह असत् जगत् सत् रूप की भाँति प्रतीत होता है। जिस प्रकार यह महान् आकाश घटादि के भीतर होने कारण घटाकाश आदि नामों से भिन्न रूप में पुकारा जाता है, उसी प्रकार वह परब्रह्म कार्योपाधि से परिछिन्न होकर जीवात्मा नाम से प्रसिद्ध होता है। विचित्र गुण शालिनी चित्रकारिणी माया द्वारा यह ब्रह्माण्ड रूप चित्र भित्ति की तरह उस पर ब्रह्म में चित्रित है। वह अक्षर पर ब्रह्म अन्य दौड़ने वालों को भी अतिक्रान्त करनेवाला तथा वक्ता की युक्ति भरी वाणी से भी अगोचर है, वेदों एवं वेदान्तों के सिद्धान्तों द्वारा निर्णय होता है। उस परा शक्ति सम्पन्न पर ब्रह्म से परे कुछ नहीं है, वही एक मात्र परा काष्ठा है, परा गति है। अनेक बार विचार करने के बाद वेदों से यही निश्चय हुआ। सुना जाता है कि अपनी अव्ययात्मा में आत्म रूप से अवस्थित, परमानन्द सन्दोह स्वरूप, आनन्द विग्रह, लीला विलास रसिक गोपियों के समूह में विचरण करनेवाले चमकीले रत्नों से गुम्फित मयूर के पिच्छों के बने हुये मनोहर किरीट से सुशोभित, चमकती हुई बिजली की रेखाओं के समान आँखों को चकाचौंध कर देने वाले कुण्डलों से विराजमान, कानों के समीप तक लम्बे, मनोहर खञ्जरीट समान चञ्चल नेत्रों वाले, कुञ्ज कुञ्ज में प्रिय गोपियों के वृन्द में रतिक्रीड़ा के अभिलाषी, पीताम्बर धारी, दिव्य चन्दन एवं अङ्गरागादिकों के विलेपन से सुगन्धित, अपने अधरामृत से संसिक्त वेणु के सुरम्य नाद से गोपियों को विमोहित करनेवाले, चित्स्वरूप, आनन्द रूप, अनङ्ग मद भञ्जक, कोटि काम की कला से पूर्ण, कोटि चन्द्र की किरणों के समान निर्मल, भ्रमरों के सुरम्य गुञ्जार से विराजित, रत्नपूर्ण गुञ्जाओं एवं मृगों से चारों ओर घिरे हुए पवित्र उच्च यमुना के तट पर तमाल के रमणीय वनों में, कदम्ब, चम्पक, अशोक और पारिजात के वृक्षों से मनोहर, मयूर, पारावत, शुक, पिकादि पक्षियों के कोलाहल से पूर्ण, वन प्रान्तों में गौओं के रक्षार्थ इधर उधर दौड़ते हुए, राधा के विलास के प्रेमी, श्रीकृष्ण ही वह परम पुरुष हैं। वेदों से भी यही सुना जाता है। उन्हीं से इस समस्त ब्रह्माण्ड का प्रकाश होता है। वह परम पुरुष भगवान् श्रीकृष्ण चिन्मात्र, निर्गुण, भेद विहीन ब्रह्म

मय गोलोक में विहार करने वाले हैं—ऐसा हमने सुना है । उनसे परे कोई भी वस्तु इस विशाल ब्रह्माण्ड में नहीं है । निगमागमों से यही बात प्रमाणित होती है । ऐसा होने पर भी निगम कहता है कि वे परम पुरुष अक्षर से भी परवर्ती हैं । वे गोलोक वासी भगवान् कृष्ण अक्षर से परे कहे जाते हैं । उस अक्षर से परे कौन है—जिसका यशोगान श्रुतियाँ सर्वदा करती हैं । वेद वचनों से जो उद्दिष्ट है वह विशेष किस प्रकार से ज्ञात हो सकता है ? अथवा श्रुति के 'परतस्त्वक्षरात्' इस वचनका अन्यथा अर्थ किसी प्रकार का जानना चाहिये । श्रुति के उक्त वचन के अर्थ निर्धारण में संशयाविष्ट सत्यवती सुत उक्त प्रकार से बहुत देर तक विचार करते रहे किन्तु उसके तत्वनिश्चय तक नहीं पहुँच सके । ॥१--५७

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! इस प्रकार बहुत देर तक विचार मग्न रहने पर भी व्यास जी वेदार्थ नश्चय में असफल रहे । वेद साक्षात् नारायण का स्वरूप है, जिसमें बड़े बड़े विद्वान् भी मोह को प्राप्त हो जाते हैं । ऐसा जानते हुए भी व्यास देव हृदय को आन्दोलित करनेवाली बहुत बड़ी चिन्ता से ग्रस्त रहे, और पुनः बराबर सोचते रहे कि कहाँ जाऊँ और क्या करूँ ? इस लोक में हमारे इस सन्देह को निवृत्त करने वाला सर्वद्रष्टा सर्वज्ञ कोई नहीं है, जिससे अपने सन्देह को दूर करूँ । ऐसा निश्चय कर वे सुमेरु पर्वत की सुन्दर गुफा में जाकर तपस्या करने में निरत हो गये । उस गुफा में यद्यपि आँखों को कष्ट देने वाले घोर अन्धकार का समूह चारों ओर से व्याप्त हो रहा था, फिर भी सुवर्ण की शिलाओं की चमकीली ज्योत्स्ना राशि निरन्तर शोभायमान हो रही थी । वहाँ एक परम रमणीय बहुत बड़ा वन्य प्रदेश था । जिसमें विविधप्रकार के वृक्षों और लताओं के कुञ्जों में पक्षियों के कलरव हो रहे थे । उस मनोहर वन्य प्रान्त में प्राणी क्षुधा, पिपासा, भय, क्रोध, सन्ताप, ग्लानि आदि मानसिक कष्टों से मुक्त हो जाता था । कमलिनियों के समूहों से सुशोभित अनेक प्रकार के जलाशय वहाँ की शोभावृद्धि कर रहे थे, उन जलाशयों के तट पर जड़ी हुई सुवर्ण की शिलाओं पर विचरण करनेवाले पक्षियों के प्रतिविम्ब स्पष्ट दिखाई पड़ते थे । कमल वनों में विचरण करने वाले वायु से वहाँ का वातावरण अत्यन्त शुद्ध हो रहा था । हिंस्र जन्तु भी अपने क्रूर स्वभावों को छोड़ कर वहाँ वैर विहीन एवं उपकारी भावों से जीवन व्यतीत करते थे । चारों ओर निर्जनता का साम्राज्य था । दिव्य लताओं के समूहों से एक विचित्र प्रकार की शोभा थी । हृदय को आकर्षित करने वाले शुकों पारावतों के समूह तथा मतवाले कोकिलों के शब्द हो रहे थे । कमलों के पराग हवा के साथ उड़ कर दिशाओं को आमोदित कर रहे थे, पटल की सुगन्धि चारों ओर व्याप्त हो रही थी । ऐसे परम रमणीय वन्य प्रान्त में वह सुवर्ण मयी परम शोभा सम्पन्न वह गुफा थी, उस पवित्र गुफा में प्रविष्ट होकर व्यास जी ने आहार, चित्त, एवं आसन पर अधिकार प्राप्त करके एकाग्र मन से चारों वेदों का स्मरण किया । इस प्रकार वेदों का स्मरण करते करते उनके तीन सौ वर्ष जब व्यतीत हो गये, तब उन परम पवित्र चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ, उनके मनोहर नेत्र विकसित कमलदल के समान मनोहर थे, उनके शिरोभाग जटा एवं मुकुट से अलंकृत थे, उनकी मुट्ठियों में कुश के स्तवक तथा कमल विराजमान थे, पवित्र मृगचर्म से उनके स्कन्धप्रदेश की एक अनूठी शोभा हो रही थी । सोलह स्वरों एवं बीच बीच में प्रणव के उच्चारणों से उनके

मुख की शोभा वृद्धि हो रही थी। कवर्ग एवं चवर्ग के सभी वर्णों से उनके हाथों की पाँच पाँच अङ्गुलियों समेत दोनों हाथों की शोभा बढ़ रही थी। पवर्ग उनके दक्षिण चरण एवं तवर्ग वाम चरण की शोभा कर रहे थे। उन सबों के दोनों कुक्षिप्रदेशों में अन्त्य वर्ण विराजमान थे। न वर्ण उनके नाभिप्रदेश, क पृष्टप्रदेश, म उदरदेश और य र ल व केशपाशों के शोभा धायक थे। अग्निबीज दक्षिण स्कन्धप्रदेश, पृथ्वीबीज ग्रीवा प्रदेश तथा भृग वाम स्कन्धप्रदेश में विराजमान थे। सभी अन्तस्थ (यवरल) वर्ण उनकी सन्धियों में शोभायमान थे, वैखरी वाक् से वे प्रस्फुरित हो रहे थे। व्यासदेव ने उन वेदों के हृदय कमल प्रदेश में अवस्थित मथुरापुरी का दर्शन किया, क्योंकि वह पवित्र पुरी स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की उत्पत्ति स्थली है। उनकी भौहों के मध्य में काशी का दर्शन किया, आधार स्थल में माया पुरी दिखाई पड़ी। लिङ्ग प्रदेश में काञ्ची, नाभिमण्डल में अवन्ती, क प्रदेश में द्वारका एवं प्राणों में प्रयाग की स्थिति देखी। उन वेदों के दाहिने एवं बायें पार्श्वों में गङ्गा एवं यमुना प्रवहमान थीं। मध्यदेश में साक्षात् सरस्वती की धारा थी, मुख प्रदेश में गया क्षेत्र था। दाढ़ी और कण्ठ प्रदेश के मध्य में उत्तम प्रभास क्षेत्र था, इन वेदों के ब्रह्म रन्ध्र में व्यासदेव ने वदरिकाश्रम का दर्शन किया। दोनों नेत्रों में पौण्ड्रवर्धन और नेपाल—ये दो पीठ तथा ललाट प्रदेश में पूर्णगिरि नामक पीठ का दर्शन किया। कण्ठ में मथुरा पीठ, कटि प्रदेश में काञ्ची पीठ तथा स्तन प्रदेशों में जालन्धर पीठ का व्यासदेव ने दर्शन प्राप्त किया। कर्ण प्रदेश में उन्होंने भृगुपीठ का तथा नासिकापुट में अयोध्या का दर्शन किया। इसी प्रकार ब्रह्मरन्ध्र में अवस्थित ब्राह्म तीर्थ तथा सीमन्त प्रदेश में अवस्थित शैव तीर्थ का दर्शन किया। उनकी जिह्वाओं के अग्र देश में शाक्त एवं हृदयकमल में वैष्णव तीर्थों का निवास था। चक्षु प्रदेशों में सौर और छाया में बौद्ध तीर्थों के दर्शन हुए। कण्ठ देश में सौत्रामणि यज्ञ और उरु प्रदेशों में पशु बन्धन देखा। दक्षिण कटि प्रदेश में वाजपेय तथा मुख प्रदेश में अग्नि होत्र का दर्शन किया। इसी प्रकार वाम कटि प्रदेश में अश्वमेध, उदर में नरमेध, शिरोदेश में राजसूय तथा अधर में आवसथ्य का दर्शन किया। वेदों के ऊपरी ओष्ठों में दक्षिणाग्नि को मुखमध्य में गार्हपत्य अग्नि को श्रुतियों में हवनीय अग्नि को तथा रोम कूपों में अवस्थित निखिल मन्त्र समूहों के व्यास को दर्शन हुए। न्याय मिश्रित समस्त पुराण गण मर्त्यों की तरह वेद महाराज का पूजन कर रहे थे। संहिताएँ भी पृथक् पृथक् रूप से उन सब की उपासना में तत्पर थीं। कर्म, ज्ञान, एवं उपासना - इन तीनों अङ्गों से उन भक्त जनानुग्रहकारी वेदों की अर्चा की जा रही थी। उपर्युक्त विशेषताओं से विशिष्ट चारों वेदों को देखकर कृष्णद्वैपायन व्यास देव परम विस्मित हुए। उस समय ब्रह्म तेजोमय दिव्य गुण सम्पन्न वे वेद गण अतिशय प्रभा से पूर्ण प्रभाकर की भाँति आकाश से गिरते हुए की भाँति दिखाई पड़ रहे थे। प्रज्वलित अग्नि की लपटों की भाँति उनके मुखमंडल से अनुपम ओज दिखाई पड़ रहा था इतने पर भी वे कोटि चन्द्रमा के समान सुन्दर लग रहे थे। इस प्रकार सम्मुख समागत चारों वेदों को देखकर मुनिवरेण्य व्यासदेव दण्डवत् पृथ्वी पर गिर पड़े और मैं कृतार्थ हो गया, कृतार्थ होगया, कृतार्थ हो गया—यह कहते हुए बोले, भगवन्! आज मेरा जन्म सफल है, मेरा मन कृतार्थ हो गया, मेरी आयु फलवती है, जो आप

लोगों के अलभ्य दर्शन प्राप्त हुए। इस जगत् में अलौकिक अथवा लौकिक, जो कुछ भी पदार्थ हैं, वे आप लोगों से छुपे हुए नहीं हैं, यही नहीं जो कुछ भी ज्ञातव्य भूत भव्यादि पदार्थ हैं वे सब भी आप को विदित हैं। 'तुम सब केवल प्रवृत्तिमार्ग के उपदेष्टा नहीं हो। ऐसा आप लोग रागासक्त प्राणियों की स्वेच्छाचारिता के संकोच के लिए विधान करते हैं। जगत्प्रपञ्चों के मिथ्यात्व एवं ब्रह्मत्व के प्रतिपादक जो विधि निषेधमय वचन आप लोगों के हैं—वे मिथ्या राग के विषय नहीं हैं, संकोच के विधि निषेधक हैं। आप लोग लोक कल्याण में निरत रहकर केवल परमार्थ निरूपण करते हैं, यही कारण है कि अपने कहे गये स्वर्गादि विषयों को नश्वर समझ कर निन्दित माना है। अपने शब्द ब्रह्ममय शरीरों से आप लोगों ने अधिकारियों के भेद बनाकर कर्म एवं ज्ञान के उपदेशों द्वारा समस्त जगत् की निश्चय ही रक्षा की है। यदि आप लोग हमारे ऊपर कृपाशील हैं तो हम आप से कुछ पूछना चाहते हैं। कामनाओं से घिरे हुए चित्तोंवाले मनुष्यों के जो कुछ भी सत्कर्म होते हैं, उन सब का फल स्वर्ग कहा गया है। ईश्वर में अपनी चित्त-वृत्ति को लगाने वाले पुरुषों के कर्मों का फल चित्त शुद्धि मानी गयी है। चित्त शुद्ध से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है, ज्ञान-प्राप्ति से मोक्ष मिलता है। वही मोक्ष ही ब्रह्म के साथ एकता है, वह सत् चित् एवं आनन्द स्वरूप है। उसके भली भाँति जान लेने पर जो कुछ भी कृत अकृत रहता है, समाप्त हो जाता है। अर्थात् फिर उसका फल भोगना नहीं पड़ता। वह निःसङ्ग चिदाकाश (आकाश की भाँति सब का आधार एवं निर्लेप) ज्ञान रूप, असंवृत, निरीह, अचल, शुद्ध, गुणातीत एवं व्यापक स्मरण किया जाता है। जगत् के समस्त विकारों के विनष्ट हो जाने पर भी वह निर्विकार नष्ट नहीं होता। घोर अन्धकार से व्याप्त जगत् को जिस प्रकार सूर्य अपने तेज से आलोकित करता है, मणि जिस प्रकार लोह को प्रकाशित करती है, उसी प्रकार निर्विकार ब्रह्म भी इस जगत् को आलोकित करता है, उसी के आभास मात्र से यह सारी सृष्टि प्रकाशित होती है। इस सृष्टि के प्रलीन हो जाने पर वह पर ब्रह्म जीवेश्वरादि रूप से एवं अपनी विश्वाकृति से कूटस्थ एवं अद्वितीय रूप में परिशेष रहता है। उसका सम्यक् निर्णय आपही लोगों ने किया है, वह उसी प्रकार का है, जैसा आप लोगों ने निर्णय किया है इसमें सन्देह नहीं। ऐसा होने पर भी मेरे हृदय में केवल एक जिज्ञासा वर्तमान है। उस पर ब्रह्म से भी बढ़कर कोई अन्य सत्ता है अथवा नहीं, हे महाभाग्यशालियो! आप सब तत्त्वों के पारदर्शी हैं, कृपया इस जिज्ञासा की शान्ति कीजिए। सचमुच उसी के श्रवण का फल ही हमारे जन्म की कृतार्थता है, अर्थात् इस परम गोपनीय विषय को जानकर मेरा जन्म सफल हो जायगा। निष्पाप सत्यवती सुत व्यासदेव के इस प्रकार पूछने पर निगमों ने 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए उनके प्रश्न का उत्तर दिया। ५८—१०४

वेदों ने कहा:—महाप्राज्ञ भगवन् व्यासदेव! आप को धन्यवाद है, धन्यवाद है। आप साक्षात् विष्णु स्वरूप हैं, शरीर धारियों के आत्मा हैं। अजन्मा होकर भी आप जन्म धारण कर लोक के ऊपर अनुग्रह करना चाहते हैं। अन्यथा आप को सांसारिक कर्म बन्धनों का कोई भय नहीं है। ज्ञान द्वारा गम्य भगवती माया द्वारा आप अछूते हैं, अर्थात् आप पर माया (अविद्या) का कोई प्रभाव नहीं है। आप

अपनी इच्छा ही से शरीर धारण करते हैं और अपनी इच्छा ही से तिरोहित भी होते हैं। हम लोगों को जो मत मान्य है, उसी को आपने भी प्रदर्शित किया है। पुराणों, इतिहासों एवं सूत्रों में आपने अनेक प्रकार से उसका प्रतिपादन किया है। वह पर ब्रह्म अक्षर, परम, एवं सभी कारणों का कारण स्वरूप है, अर्थात् उससे परे कोई नहीं है। पुष्प के रस एवं गन्ध की भाँति वह आत्मस्वरूप का भी आत्मस्वरूप है। उसी को सत्र से परम समझो। प्राकृतिक लय के होने पर हम सबों को यही अनुभव हुआ है कि उस अक्षर परब्रह्म से परे जो कुछ है वह पुष्प के रस की भाँति वही है, शब्द स्वरूप हम लोग उसकी महिमा को पूर्णतया समझने में समर्थ नहीं हैं, वह अक्षर ब्रह्म शब्दों द्वारा गम्य नहीं है। १०५—११०

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते व्यास संशयापनोदनं नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

एक सौ पाँचवा अध्याय

गया माहात्म्य,

वायु बोले:—ऋषिवृन्द ! अब इस कथा के उपरान्त हम सर्वश्रेष्ठ गया का माहात्म्य बतला रहे हैं, जिसका श्रवण कर प्राणी समस्त पापों से निस्सन्देह छूट जाता है ॥१॥

सूत बोले:—ऋषिवृन्द ! एक बार महाभाग्यशाली सनक प्रभृति देवर्षियों के साथ नारद जी ने सनत्कुमार को विधिवत् प्रणाम कर निवेदन किया।२।

नारद ने कहा:—सनत्कुमार जी ! समस्त उत्तम तीर्थों में भी उत्तम किसी ऐसे तीर्थ का माहात्म्य हमें बतलाइये, जिसके पढ़ने एवं सुनने वाले सभी प्राणी तर जाते हैं।

सनत्कुमार बोले:— नारद जी ! आप के अनुरोध पर तीर्थवर गया का माहात्म्य हम बतला रहे हैं, जो श्राद्धादि पैतृक कार्यों में समस्त प्राणियों को तारने वाला है, वह गया तीर्थ सभी देशों में, सभी तीर्थों से अधिक पुण्यप्रद है, उसका माहात्म्य सुनिये। एक बार यज्ञ के लिए ब्रह्मा के अनुरोध करने पर गयासुर ने यहाँ तपस्या की थी, उसके शिर पर एक शिला की स्थापना कर भगवान् ब्रह्मा ने यज्ञ सम्पन्न किया था। वह पवित्र यज्ञ ब्रह्मा जी ने इसी तीर्थ में किया था, विप्रवर्य वह असुर किसी प्रकार विचलित न हो जाय—इस उद्देश्य से ब्रह्मादि देवताओं के साथ भगवान् गदाधर भी फल्गु आदि तीर्थों के रूप में रात दिन वहाँ स्थित रहते हैं। निर्विघ्न यज्ञ की समाप्ति हो जाने के उपरान्त ब्रह्मा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा में गृहादि प्रदान किये। श्वेत वाराह कल्प में उसी पवित्र स्थान पर गयासुर ने यज्ञाराधन किया। तभी से यह परम पुनीत क्षेत्र गया के नाम से ख्यात हुआ, इसे ब्रह्माजी बहुत पसन्द करते हैं। यही नहीं, नरक के भय से डरे हुये पितरगण भी इस परम पुनीत क्षेत्र की बड़ी कामना करते हैं वे कहते हैं कि जो पुत्र गया यात्रा करेगा

वह हम सब को इस दुःख संसार से तार देगा । इस पुनीत गया तीर्थ में पुत्र को गया हुआ देखकर पितरों के घर उत्सव मनाये जाते हैं । वे कहते हैं कि इस पुनीत तीर्थ में अपने पैरों से भी जल का स्पर्श कर पुत्रगण हमें क्या नहीं दे देंगे ? एक पुत्र भी गया चला जायगा, अश्वमेध यज्ञ करेगा ? अथवा नील वृषभ का उत्सर्ग करेगा (तो हम सब का उद्धार हो जायगा, इसीलिए) पितरगण इन्हीं उद्देश्यों से बहुत पुत्रों के होने की कामना करते हैं । इस गया तीर्थ में जाकर जो पुत्र अन्न का दान करता है, पितरगण उसी सुपुत्र से अपने को पुत्रवान् मानते हैं । यहाँ पर तीन पक्ष तक निवास करनेवाला पुत्र अपने सात पूर्व पुरुषों का उद्धार करता है । यदि तीन पक्ष निवास न कर सके तो पन्द्रह दिन, सात रात अथवा तीन रात्रि के निवास का भी महान् फल होता है महाकल्प काल से सञ्चित पाप कर्मों का भी गया में जाकर विनाश हो जाता है । वहाँ पितरों के उद्देश से पिण्डदान करना चाहिये, अपने लिए भी तिल के बिना पिण्डदान करने का विधान है । ब्रह्महत्या मदिरापान, चोरी, गुरुजनों की स्त्री के साथ समागम, ऐसे घोर पाप एवं ऐसे पापियों के संसर्ग से होनेवाले अन्यान्य पाप कर्म गया में श्राद्ध करने से विनष्ट हो जाते हैं । अपना औरस पुत्र हो अथवा किसी अन्य का पुत्र हो, जब जब गया क्षेत्र की पवित्र भूमिपर जिस जिस के नाम से पिण्डदान करता है, उस उस को वह पिण्ड शाश्वत ब्रह्म पद को प्राप्त कराता है । इस गया तीर्थ में नाम एवं गोत्र का उच्चारण कर पिण्डदान करने की विधि विहित है, वह चाहे जिस किसी का जिस किसी के उद्देश से दिया हो, परम गति प्राप्त कराता है । ब्रह्मज्ञान, गया श्राद्ध, गोशाला में मृत्यु लाभ एवं कुरुक्षेत्र में निवास——ये चार कर्म पुरुषों के लिये मोक्ष दायक हैं । किन्तु इन सबों से ब्रह्मज्ञान गोशाला में मृत्युलाभ एवं कुरुक्षेत्र में निवास करने का क्या काम है, यदि पुत्र पवित्र गया तीर्थ की यात्रा करता है । गया तीर्थ में बुद्धिमान पुरुष सभी समयों में पिण्डदान कर सकते हैं । किन्तु अधिकमास, जन्म दिन, गुरु एवं शुक्र के अस्त होने पर तथा बृहस्पति के सिंहराशि में स्थित होने के समय गया श्राद्ध को न छोड़ना चाहिए । चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण के अवसर पर मृतकों के पिण्ड कर्मों में महान् फल होता है । इस महातीर्थ में जाने पर क्षत का दोष नहीं लगता । दैवदुर्विपाकतया किसी महान् व्रण के हो जाने पर भी मनुष्य को गयातीर्थ में श्राद्ध कर्म का अधिकार रहता है, वह भी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है । जीवन में एक बार की गया यात्रा एवं एक बार का गया का पिण्डदान करने से प्राणी को जीवन में कुछ दुर्लभ नहीं रहता नित्य निवास करने वालों की तो फिर बात ही क्या है ? ब्रह्मादि देवताओं के परमप्रिय मुक्तिदायी इस गया तीर्थ में यदि कोई असावधानतया मृत्युलाभ करता है, तो उसे निस्सन्देह वैसी ही मुक्ति प्राप्त होती है, जैसी ब्रह्मज्ञान से । कीकट (मगध) प्रभृति देशों में मृत्यु प्राप्त करनेवाले पितरों को तारने के लिए बुद्धिमान् पुरुष को सब प्रयत्न करके गया श्राद्ध करना चाहिए । उस समय ब्रह्मज्ञान परायण विप्रों को हव्य कव्यादि से

---

[१] अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सौराष्ट्र एवं मगध देशों में तीर्थयात्रा के अतिरिक्त यात्रा करने से प्राचीन स्मृतियों में पुनः शुद्धि संस्कार की आवश्यकता बतलाई गई है ।

सन्तुष्ट करना चाहिए, क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने पर सभी देवगण व पितरगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। विशाला, विरजा और गया को छोड़कर सभी तीर्थों में मुण्डन एवं उपवास करने की विधि विहित है, पिण्डदान करनेवाले भिक्षु को गया में जाकर केवल दण्ड दिखलाना चाहिए, पिण्डदान नहीं करना चाहिए, विष्णुपद पर दण्ड रखकर वह पितरों के समेत मुक्ति लाभ करता है। पारमार्थिक दृष्टि से दण्डधारी पाप अथवा पुण्य का भागी नहीं होता, अतः सभी क्रियाओं का परित्याग कर भाव प्रवण होकर एकमात्र भगवान् विष्णु का ध्यान करता है। संन्यासी को सभी कर्मों का परित्याग तो कर देना चाहिये, पर केवल वेद को नहीं त्यागना चाहिये। गयातीर्थ में जाकर उसे तीर्थ के पूर्व, पश्चिम, दक्षिण अथवा उत्तर, किसी दिशा में मुण्डन कराना चाहिए। भगवान् ब्रह्मा ने गयातीर्थ का परिमाण ढाई कोस का गयाक्षेत्र का पाँच कोस का तथा गया शिर का एक कोस का बतलाया है। त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे इसी के भीतर स्थित हैं। जो मनुष्य गया क्षेत्र में श्राद्ध करता है वह पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। गया शिर में जो श्राद्ध करता है वह सौ कुलों का उद्धार करता है। घर से गया का प्रस्थान मात्र करने से पितरों को पद-पद पर स्वर्गारोहण की सीढ़ियाँ मिलने लगती हैं। अश्वमेध यज्ञ करने का जो फल होता है, वह समस्त फल गया यात्रा के एक एक पग पर प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। दुग्ध मिश्रित चरु, सत्तू, पेठा, चावल, विविध प्रकार के फल एवं मूल—इन वस्तुओं से गया में पिण्डदान किया जाता है। तिलकल्क, घृतसमेत गुड़खण्ड अथवा केवल दही यह उत्तम मधु या घृतसमेत पिण्याक द्वारा गया में श्राद्ध करने से पितरों को अक्षय तृप्ति मिलती है। अथवा जिस ऋतु में श्राद्ध हो रहा हो उस ऋतु में होने वाले भोज्य पदार्थ, मुनियों द्वारा उद्दिष्ट हविष्यान्न, एवं रसयुक्तसुमधुर वस्तुओं को एक ओर रखकर भगवान् गदाधर के चरणारविन्द एवं फल्गु के पवित्र जल का स्मरणकर पितरों के उद्देश से दान करना चाहिये। पिण्ड के लिये आसन, पिण्डदान प्रत्यवनेजन, दक्षिणा, और अन्न सङ्कल्प—तीर्थश्राद्धों की यही विधि है। तीर्थों में आवाहन, दिशाओं में परदा टाँगना, अथवा दृष्टिजन्य दोष, ये सब तीर्थ श्राद्धों में नहीं होते। बुद्धिमानों को करुणा पूर्वक तीर्थश्राद्धों को सम्पन्न करना चाहिये। पितरगण अन्य स्थानों में आवाहन करने पर जाते हैं, किन्तु यहाँ नहीं, क्योंकि वे तीर्थों में तो सर्वदा निवास ही करते हैं, यही कारण है कि तीर्थों में उन्हें आवाहित नहीं किया जाता। फल की आकाक्षां से तीर्थों में श्राद्ध प्रदान करनेवाले पुरुषों को काम क्रोध तथा लोभ को छोड़कर सारी क्रियाएँ करनी चाहिये। ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर एक समय भोजन करना चाहिये, पृथ्वी पर शयन करना चाहिये, सत्य वचन बोलना चाहिये, मन एवं शरीर से पवित्र रहना चाहिये। सभी जीवों के कल्याण-साधन में निरत रहना चाहिये—जो इन सब नियमों का पालन करता है, वह तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है। धीर पुरुष को तीर्थों की यात्रा करते समय सर्वप्रथम पाषण्ड को त्याग देना चाहिए। जो कामनाओं को उत्तेजित करता है, वह पाषण्ड है, जो धीर पुरुष तीर्थों में जाकर पितरों में भक्ति एवं निष्ठा रखकर ब्रह्मवेत्ताओं की भाँति अनन्य चित्त हो सब कर्म करते हैं, वे ब्रह्मपरायण परेश ब्रह्मपद में प्रविष्ट होते हैं, त्रैलोक्य विख्यात जो वैतरणी नामक नदी है, वह भी पितरों को तारने के लिये गया क्षेत्र में अवतीर्ण हुई है। उस वैतरणी में स्नानकर

गोदान करनेवाला अपने इक्कीस कुलों को तारता है। अक्षयवट के पास जाकर जो ब्रह्मपरायण ब्राह्मणों को हव्य कव्यादि वस्तुओं से पूजित करता है, वह महान् पुण्य प्राप्त करता है, क्योंकि उनके सन्तुष्ट हो जाने पर समस्त पितरगण एवं देवगण सन्तुष्ट हो जाते हैं। उस पवित्र गया तीर्थ में ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ पर कोई न कोई तीर्थ विद्यमान न हो। वहाँ समस्त तीर्थों का सान्निध्य रहता है, गया तीर्थ उन सबसे बढ़कर पुण्य है। मीन मेष, कन्या, धन, एवं वृष राशि पर जब सूर्य हों, उस समय गया तीर्थ परम दुर्लभ है, ऋषिलोग सर्वदा यह कहते आये हैं कि तीनों लोकों में गया का पिण्डदान परम दुर्लभ है। मकरराशि पर जब चन्द्रमा और सूर्य स्थित हों, उस समय तीनों लोकों में गयाश्राद्ध परम दुर्लभ माना गया है। मनुष्य गया में पिण्डदान करने से जो फल प्राप्त करता है, उसका मैं सैकड़ों कोटि कल्पों में भी वर्णन नहीं कर सकता। ॥१—॥६॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गया माहात्म्यं नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः। १०५।

एक सौ छठवाँ अध्याय

गया माहात्म्य,

नारद बोलेः—ब्रह्मन्! वह गयासुर किस प्रकार उत्पन्न हुआ? उसका प्रभाव और स्वरूप क्या था? उसने किस प्रकार तपस्या की? शारीरिक पवित्रता उसे कैसे प्राप्त हुई? ॥१॥

सनत्कुमार बोलेः—नारदजी! भगवान् विष्णु के नाभिकमल से लोक पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे और पूर्वकाल में भगवान् विष्णु के कहने पर उन्होंने प्रजाओं की सृष्टि की थी। आसुरभाव से उन्होंने असुरों की तथा उदार भावों से देवताओं की उत्पत्ति की थी। उन असुरों में महाबलवान् तथा पराक्रमी गयासुर हुआ। उसकी ऊँचाई सवा सौ योजनों की सुनी जाती है। मोटाई साठ सहस्र योजनों की थी। भगवान् विष्णु का वह भक्त था। कोलाहल नामक सुन्दर गिरि पर जाकर उसने परम दारुण तपस्या की थी। सुना जाता है कि वहाँ जाकर अनेक सहस्र वर्षों तक श्वास को रोक कर स्थित रहा। उसके इस दारुण तप को देखकर देवगण बहुत सन्तप्त और क्षुब्ध हुए। अन्ततः देवगण ब्रह्मलोक में स्थित पितामह ब्रह्मा के पास जाकर बोले, देव! गयासुर से हम लोगों की रक्षा कीजिए। देवताओं की आर्त वाणी सुनकर भगवान् ब्रह्मा ने उनसे कहा। देवगण! चलिए, इस कार्य के लिए हम लोग एक साथ शंकर के पास चलें। ऐसा निश्चय कर ब्रह्मादि देवगण कैलाश शिखर पर अवस्थित शंकर के पास गये और बोले देव महासुर गय से हम लोगों की रक्षा कीजिये। शम्भु ने ब्रह्मादि देवगणों से कहा चलिये, हम लोग इस कार्य के लिए हरि की शरण में चलें। क्षीर सागर में वे देव देवेश विराजमान हैं, वे ही लोगों का कल्याण साधन करेंगे। इस प्रकार निश्चय कर ब्रह्मा, महादेव एवं देवताओं ने क्षीर सागर में जाकर भगवान् विष्णु को नमस्कार कर स्तुति की। ॥२—६॥

Funding by IKS-MoE

देवताओं ने कहा:—जो समस्त जीवों के उत्पत्तिकर्त्ता एवं पालक हैं, परम शोभा शाली एवं विजयी हैं राक्षसादि अनुपकारियों के ग्रसनेवाले हैं, अखिल चराचर जगत् के धारण करनेवाले, एवं योगियों के उद्धारक हैं, अनन्त महिमा शाली, उत्तरोत्तर विकाश शील एवं महा महिमामय हैं, उन भगवान् विष्णु को हम सभी बार बार नमस्कार करते हैं । ॥१०——॥

सनत्कुमार बोले:——नारद जी ! ब्रह्मादि देवताओं द्वारा स्तुति किये जाने पर भगवान् वासुदेव ने उन्हें दर्शन दिया और कहा कि देवगण ! आप लोगों का यहाँ पर किस कारण आगमन हुआ है । देवताओं ने, हरि से कहा देव ! हम लोगों की गयासुर से रक्षा कीजिये । हरि ने कहा ब्रह्मादि देवगण आप लोग जाइये, मैं उस दैत्य के पास आ रहा हूँ । ऐसा कहकर केशव गरुड़ पर सवार होकर वरदान देने की कामना से गयासुर के पास गमनोद्यत हुए और अन्य देवगण भी अपने-अपने उत्तम वाहनों पर सवार होकर उसी स्थान को गये । वासुदेव प्रभृति देवगणों ने जाकर गयासुर से कहा, गयासुर ! तुम किस लिए तपस्या कर रहे हो, तुम्हारी इस घोर तपस्या से हम सब सन्तुष्ट हैं, और तुम्हें वर देने के लिये यहाँ आये हुए हैं, मन चाहा वरदान माँग लो । ॥११—१५॥

गयासुर बोले:—ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर प्रभृति देवगण ! यदि आप लोग सचमुच हमारे ऊपर सन्तुष्ट हैं तो मेरी यह कामना है कि मैं सभी देवताओं, द्विजतियों, यज्ञों, तीर्थों एवं पर्वतींय प्रान्तों से भी पवित्र हो जाऊँ, समस्त देवगणों से भी लोग मुझे अति पवित्र मानें । धर्माचार परायण ऋषियों एवं अविनाशी शिव से भी बढ़कर पवित्र होने की मेरी कामना है सभी प्रकार के उत्तमोत्तम मंत्रों, देवी, देवताओं एवं सभी प्रकार के योगियों संन्यासियों गृहस्थों, धर्मिष्ठों एवं यतियों से भी, जो अतिशय पवित्र जाने जाते हैं, मैं सर्वदा बढ़कर पवित्र होऊँ—यही मेरी अभिलाषा है । गयासुर ! तुम अपनी इच्छा के अनुरूप ही पवित्रता लाभ करो——ऐसा कहकर देवगण गयासुर को पुनः देखकर एवं पवित्र करने की भावना से स्पर्श कर स्वर्ग को प्रस्थित हुए गयासुर के इस अद्भुत एवं महान् कार्य से तीनों लोक एवं यमपुरी सूनी हो गई । तब इन्द्रादि देवताओं को साथ लेकर यमराज ब्रह्मलोक को गये । गयासुर द्वारा अपदस्थ किये गये देवताओं ने कहा, पितामह ! हम सबों का अधिकार तुम्हारा ही दिया हुआ था, अब उसे तुम्हीं ग्रहण करो । ब्रह्मा ने देवताओं की ऐसी बातें सुनकर उनसे कहा, चालिये, इस कार्य के लिये हम लोग भगवान् विष्णु के पास चलें जो कभी विचलित होनेवाले नही हैं । वहाँ जाकर ब्रह्मा प्रभृति देवों ने भगवान् विष्णु से कहा, देव ! तुमने गयासुर को जैसा वरदान दे दिया है उसके प्रभाव से प्रतिदिन सभी प्राणी उसका दर्शन करके स्वर्ग को चले जाते हैं, उसका परिणाम यह हुआ है कि तीनों लोक सूना हो गया है, देवताओं के इस संयुक्त निवेदन करने पर वासुदेव ने ब्रह्मा से कहा, कि आप जाकर यज्ञ करने के लिप गयासुर से प्रार्थना करें कि वह अपना शरीर दे । विष्णु भगवान् के ऐसा कहने पर देवताओं समेत ब्रह्मा उस महान् असुर गय के पास गये । अन्य देवताओं के साथ ब्रह्मा को आया देखकर गयासुर ने उन सब को विधिपूर्वक प्रणाम किया और परम श्रद्धा पूर्वक पूजा आदि करके निवेदन किया । ॥१६—२५॥

Funding by IKS-MoE

गयासुर बोला:—आज मेरा जन्म सफल हो गया, मेरी तपस्या फलवती हुई, जो स्वयं भगवान् ब्रह्मा अतिथि रूप में हमारे यहाँ आये। आज मैं सब कुछ पा चुका। हे योगिन्! योग वेत्ता, सभी लोकों के स्वामिन्! गुरुदेव! भगवन् ब्रह्मन्! आप जिस प्रयोजन से यहाँ पधारे हैं, उसे मैं पूरा करना चाहता हूँ। ॥२६—२७॥

ब्रह्मा ने कहा:—महाभाग गयासुर! समस्त पृथ्वी भर में भ्रमण करके मैंने जिन-जिन तीर्थों को देखा है, वे तुम्हारे शरीर की पवित्रता के कारण यज्ञ के लिए पवित्र नहीं रह सके। भगवान् विष्णु की अनुकम्पा से तुमने अपने शरीर में परम पवित्रता का लाभ किया है, अतः मैं चाहता हूँ कि यज्ञ के लिए तुम अपने पवित्र शरीर का मुझे दान करो। ॥२८—२९॥

गयासुर बोला:—हे देव-देवश! आप हमारे शरीर के लिए प्रार्थना कर रहे हैं, यह हमारा धन्य भाग्य है। यदि आप हमारे शरीर में यज्ञ क्रिया सम्पन्न करेंगे तो हमारा पितृ कुल कृतकृत्य हो जायगा। हे देव! इस नश्वर शरीर की रचना आप ही ने की है, तुम्हीं ने इसे इतनी अपूर्व पवित्रता प्रदान की है, सभी जीव धारियों के लाभार्थ होनेवाला वह याग अवश्य सम्पन्न होगा। श्वेत कल्प में ऐसी बातें कर गयासुर नैऋर्त दिशा की ओर धाराशायी हो गया, उस समय पर्वत प्रान्त में सर्वत्र कोलाहल मच गया। दैत्य ने अपने शिर को उत्तर दिशा में और दोनों पैरों को दक्षिण दिशा में किया। यज्ञ की समस्त सामग्रियों एवं साधनों समेत ब्रह्मा ने उक्त यज्ञ को सर्वाङ्गतः सम्पन्न करने के लिए मानस पुरोहितों की सृष्टि की। उनके नाम थे, अग्निशर्मा, अमृत, शौनक, जाञ्जलि, मृदु, कुसुथि, वेद कौण्डिल्य, हारीत काश्यप, कृप, गर्ग, कौशिक, वासिष्ठ, परम तपोनिष्ठ भार्गव, वृद्ध पाराशर, कण्व, माण्डव्य, श्रुति केवल, श्वेत, सुताल, दमन, सुहोत्र, कङ्क, लौकाक्षि, महाबाहु जैगीषव्य, दधिपञ्चमुख, विप्रवर ऋषभ, कर्क, कात्यायन, गोभिल, महाव्रतशाली मुनिवर उग्र, सुपालक, गौतम, बेदशिरोव्रत अव्यग्रचित्त जयमाली चाटुहास, दारुण, आत्रेय, अङ्गिरस, औपमन्यु, महाव्रतशील गोकर्ण, गृहावास, शिरवण्डी, उमाव्रत,—इन सब मुनियों के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतेरे विप्रों की लोक पितामह ब्रह्मा जी ने सृष्टि की और गयासुर के शरीर पर यज्ञ का कार्य प्रारम्भ किया। इन उपर्युक्त पुरोहित ऋषियों में से अग्निशर्मा ने अपने मुख से दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय, सभ्य एवं अवसभ्य नामक पाँच अग्नियों का निर्माण किया। हे देवर्षि! इन्हीं पाँचों अग्नियों में यज्ञों की प्रतिष्ठा हुई। यज्ञ की सम्यक् प्रतिष्ठापना के लिये ब्राह्मणों को प्रचुर दक्षिणाएँ दी गईं। यज्ञ के अन्त में भगवान् ब्रह्मा ने पूर्णाहुति दान के उपरान्त अवभृथ स्नान किया—और समस्त देवताओं के साथ यज्ञस्तम्भ को आरोपित किया। उस मंगलमय स्तम्भ को ब्रह्मा के उत्तम सरोवर में निमज्जित कर उसी में प्रतिष्ठित भी किया। यज्ञभूमि के चलायमान होने पर ब्रह्मा जी चकित होकर धर्मराज से बोले, यमराज तुम्हारे घर एक शिला है, उसे बिना किसी वितर्क के यहाँ लाओ और दैत्य के शिर पर शीघ्र स्थापित करो—ऐसी मेरी आज्ञा है। असुरराज गय के शरीर को निश्चल करने को अत्यावश्यक समझ कर यमराज ने शिला लाकर उसके मस्तक पर रखा, किन्तु उस शिला के रखने पर भी असुरराज शिला समेत विचलित हो गया। तब ब्रह्मा ने रुद्रादि देवताओं से

कहा कि आप लोग इस शिला को निश्चल करने के लिए इस पर अवस्थित हो जायँ। देवगण ने 'बहुत अच्छा' कहकर उसी शिला पर अवस्थित हो गये। देवताओं के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महा असुर चंचल ही बना रहा। तब व्याकुल होकर ब्रह्मा क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु के पास गये और वहाँ विनम्रभाव से आदर पूर्वक प्रभु की इस प्रकार प्रार्थना की। ॥३०—४८॥

ब्रह्मा बोलेः—हे निखिल ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! जगदीश्वर आप को हमारा नमस्कार है, आप मनुष्यों को यश देने वाले, उनकी भुक्ति एवं मुक्ति के प्रदाता आप ही हैं। ब्रह्मा की प्रार्थना सुनकर विष्वक्सेन ने भगवान् विष्णु के समीप जाकर कहा, देव! पद्म सम्भव भगवान् ब्रह्मा आप की स्तुति कर रहे हैं। हरि ने कहा जाओ, उन्हें लिवा लाओ। भगवान् विष्णु के आदेशानुसार विष्कसेन ने ब्रह्मा को भगवान् के सम्मुख उपस्थित किया। हरि ने अजन्मा ब्रह्मा से कहा, देव! किस कारण वश आपका यहाँ पदार्पण हुआ है, बतलाइये। ॥४९—५०॥

ब्रह्मा ने कहाः—भगवन्! आप के निर्देशानुसार यज्ञ सम्पन्न तो हो गया पर गयासुर अभी तक चञ्चल बना हुआ है। हम सबों ने उसके मस्तक पर यद्यपि देवरूपिणी शिला लाकर रखी है, फिर भी वह चलायमान है। यही नहीं रुद्र प्रभृति देवगणों के पैरों से आक्रान्त होने पर भी वह महान् असुर निश्चल नहीं हुआ। माधव! अब वह जिस प्रकार निश्चल हो, आप उसके लिए कृपा करें! ब्रह्मा की आर्त वाणी सुनकर भगवान् हरि ने अपने शरीर से खींचकर एक मूर्ति ब्रह्मा को गयासुर के शरीर को निश्चल करने के लिए दिया। ब्रह्मा ने उक्त मूर्ति को लाकर गयासुर के मस्तक पर स्थापित शिला के ऊपर स्थापित किया। किन्तु उस पर भी जब शिला को चलायमान देखा तो पुनः हरि का आवाहन किया। ब्रह्मा के आवाहन करने पर भगवान् क्षीरसागर से आकर शिला के ऊपर स्वयमेव अवस्थित हुए। स्वयम् भगवान् जनार्दन पुण्डरीकाक्ष ने गदा धारण कर उक्त शिला को निश्चल करने के लिए उस पर अपना अवस्थान किया। उसी शिला को अधिकाधिक निश्चल करने के लिए प्रपितामह ने अपने को पाँच भागों में विभक्त कर अवस्थान किया। वे पाँचों वहाँ प्रपितामह, पितामह फलग्वीश, केदार, और कनकेश्वर के नाम से विख्यात थे। उसी शिलापर गज रूपधारी विनायक भी स्थित हुए। सूर्य गयादित्य, उत्तरार्क और दक्षिणार्क इन तीन नामों से अवस्थित हुए। लक्ष्मी सीता के नाम से तथा गौरी मङ्गला के नाम से उस शिलाखण्ड पर अवस्थित हुईं। सरस्वती गायत्री, सावित्री और त्रिसन्ध्या इन तीनों स्वरूपों में स्थित हुईं। इनके अतिरिक्त इन्द्र, बृहस्पति, पूषा महाबलशाली आठों वसुगण, विश्वेदेवगण, दोनों अश्विनी कुमार विश्व नामक मारुत, यज्ञ गन्धर्व, उरगादिकों के साथ अपनी-अपनी शक्तियों समेत उस शिलाखण्ड पर विराजमान हुए। यतः भगवान् हरि की आदि गदा से वह असुरराज गय स्थिर किया गया था, अतः भगवान् आदि गदाधर के नाम से विख्यात हुए। उक्त अवसर पर गयासुर ने उपस्थित देवगणों से कहा, सुरवृन्द! आप लोगों ने किस कारण से हमें वंचित किया मैंने यज्ञ के लिए अपने शरीर को ब्रह्मा को समर्पित किया था। क्या मैं भगवान् विष्णु के वचन मात्र से निश्चल न हो जाता? देवताओं तथा भगवान् विष्णु की गदा द्वारा मैं पीडित हो चुका हूँ। आप

देवगण सर्वदा प्रसन्न रहें । समस्त देवताओं के साथ गदाधारियों महान् देवताओं को गयासुर की इन बातों से बड़ी प्रसन्नता हुई, वे बोले, गयासुर ! हम लोग तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, जो वरदान चाहो, माँग लो । गयासुर ने देवताओं से कहा देवगण ! जब तक पृथ्वी का अस्तित्व है, जब तक पर्वतगण, चन्द्रमा, ताराएँ विद्यमान रहें तब तक इस शिला पर ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का निवास बना रहे, अन्यान्य समस्त देवगण भी बने रहें, इस क्षेत्र की प्रतिष्ठा मेरे नाम से हो । गयाक्षेत्र की मर्यादा पाँच कोस की तथा गया शिर की मर्यादा एक कोस की है । इन दोनों के मध्य भाग में मानव हितकारी समस्त तीर्थों का निवास हो—ऐसा आप लोग वरदान करें । इस बीच में स्नानादिकर तर्पण एवं पिण्डदान से महान् फल की प्राप्ति हो इस महान् प्रभावशाली क्षेत्र में पिण्डदानादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य अपने सहस्रों कुलों का उद्धार करे । आप लोग व्यक्त एवं अव्यक्त शरीर धारण कर इस शिला पर सर्वदा विद्यमान् रहें । भगवान् गदाधर यहाँ स्थित रहकर समस्त लोक के पाप पुञ्जों का विनाश करें । जो लोग यहाँ सपिण्ड श्राद्ध दान करें वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करें । इस पवित्र क्षेत्र के सेवन करनेवालों के ब्रह्महत्या आदि घोर पाप विनष्ट हो जायँ । नैमिष, पुष्कर गङ्गा, प्रयाग, अविमुक्त प्रभृति जितने उत्तमोत्तम तीर्थ हैं, तथा उनके अतिरिक्त जो अन्यान्य तीर्थ स्वर्ग, अन्तरिक्ष एवं भूमण्डल में हैं, वे सभी हमारे इस पवित्र तीर्थ में आकर मानव मात्र का कल्याण सम्पादित करें—ऐसा वरदान आप लोग हमें दीजिए । देवगण ! बहुत अधिक मैं क्या कहूँ । आप लोगों में से यदि एक भी देवता इस शिला पर न रहेंगे तो मैं भी स्थित न रह सकूँगा । यही प्रतिज्ञा है, इसका प्रतिपालन करते जाइयेगा । गयासुर के वचन सुनकर विष्णु प्रभृति देवताओं ने कहा, गयासुर ! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब सम्पन्न होगा इसमें सन्देह नहीं है । इस पवित्र तीर्थ में आनेवाले मनुष्य गण हम लोगों की पूजा करके परम गति प्राप्त करेंगे । देवगणों के इस प्रकार वरदान देने पर दैत्य परम हर्षित होकर निश्चलता को प्राप्त हुआ । उक्त शिला पर उपर्युक्त देवगणों के अवस्थित हो जाने पर ब्रह्मा ने यज्ञकर्त्ता ब्राह्मणों को पचपन ग्राम प्रदान किया । पञ्चक्रोशी गया पुरी को भी उन्हें उत्सर्ग कर दिया । गृहस्थी के सभी साधनों एवं सामग्रियों से समन्वित दिव्य गृहों का निर्माण कर उन्हें समर्पित किया । इसके अतिरिक्त कामधेनु गौ, कल्पवृक्ष, पारिजात प्रभृति देवतरु क्षीरवाहिनी महानदी घृत पूर्ण छोटी बावलियाँ, मधुस्राविणी मनोहर नदी, मधुपूरित छोटी-छोटी गड़हियाँ, दिव्यगुण सम्पन्न घृतों से परिपूर्ण सरोवर, सुवर्णनिर्मित बावली, अनेक अन्नादिकों से बने हुए पर्वत, विविध प्रकार के भक्ष्य, भोज्य फलादि सामग्री भी उन्हें निर्माण करके समर्पित किया । दान करते समय अयोनिज ब्रह्मा जी ने ब्राह्मणों से कहा कि विप्रेन्द्र वृन्द ! आप लोग अब किसी दूसरे से याचना न करेंगे । इस प्रकार ब्राह्मणों को दान देने के उपरान्त भगवान् गदाधर को नमस्कार कर ब्रह्मा अपने लोक को चले गये । धर्मारण्य में धर्म ने एक यज्ञ का अनुष्ठान किया, उस यज्ञ में उन्हीं गयापुरीस्थ ब्रह्मणों ने लोभवश धनादि की याचना की और अंगीकार किया । उनके इस निषिद्ध कर्म से अप्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया कि तुम लोगों ने मेरे निखिल दिव्य सम्पत्ति के दान देने पर भी यतः लोभ नहीं छोड़ा अतः सर्वदा अधिक ऋणग्रस्त बने रहोगे । वे नदियाँ, जो मधु एवं क्षीरादि पदार्थों की वहन करनेवाली थीं, अब

केवल जल वाहिनी रहेंगी, पर्वत पाषाणमय हो जायँगे ! वे दिव्य सामग्रियों वाले सुन्दर गृह अब मृत्तिकामय हो जायँगे। कामधेनु एवं कल्पवृक्षादि हमारे लोक में चले जायँगे। अजन्मा ब्रह्मा जी से इस प्रकार अभिशप्त होने पर ब्रह्मणों ने निवेदन किया, देव ! आप ने कृपा पूर्वक जो वस्तुएँ हम लोगों को समर्पित की थीं, वे तुम्हारे शाप कारण नाश को प्राप्त हो गईं। भगवन् ! हम लोगों की जीविका किस प्रकार चलेगी इसके लिए तो कृपा करें ? ब्रह्मणों के इस आर्त्त निवेदन पर भगवान् ब्रह्मा को दया आ गई वे बोले, अच्छा, अब से जब तक चन्द्रमा, सूर्य एवं ताराओं का अस्तित्व रहेगा तब तक तुम लोग तीर्थों द्वारा जीविका निर्वाह करोगे। जो पुण्यकर्मी लोग इस गयापुरी में आकर श्राद्ध कर्म सम्पन्न करेंगे वे ब्रह्मलोकगामी होंगे। जो तुम लोगों की पूजा अर्चा करेंगे, वे मानों हमारी ही पूजा अर्चा करेंगे, तुम्हारी पूजा से हम सर्वदा सन्तुष्ट होंगे। इस गयापुरी में पवित्र विरज नामक गिरि से दैत्य का उदर भाग आक्रान्त है, उसके नाभि कूप के समीप विरजानामक देवी का निवास है, उस पवित्र स्थान पर पिण्डदानादि करके मनुष्य अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है, महेन्द्र नाम गिरि ने दैत्य के दोनों चरणों को सुनिश्चल किया है, उस पवित्र स्थान पर पिण्डदानादि करनेवाला मनुष्य अपने सात कुलों का उद्धार करता है। ॥५१–८६॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

एकसौसातवाँ अध्याय

नारद बोले:—ब्रह्मन् ! वह प्रसिद्ध शिला किस प्रकार उत्पन्न हुई जिससे गयासुर का शरीर दबाया गया था। उसका स्वरूप एवं माहात्म्य क्या है ? उसका नाम क्या है ? बतलाइये। ॥१॥

सनत्कुमार बोले:—प्राचीनकाल में महान् तेजस्वी, समस्त विज्ञान विज्ञानतत्त्व वेत्ता धर्म नामक महानुभाव हुए। उनकी पतिव्रत परायणा विश्वरूपा नामक पत्नी थी। उस पत्नी में धर्म के संयोग से धर्मव्रता नामक एक सती कन्या उत्पन्न हुई जो स्वरूप एवं यौवन से सम्पन्न एवं लक्ष्मी के समान परम गुणवती थी। उसमें जितने गुण उपलब्ध थे वे तीनों जगत् के प्राणियों में उपलब्ध थे। धर्मव्रता के लिए धर्म ने तीनों लोकों में अनुरूप वर ढूँढ़ा किन्तु कहीं भी कोई उपयुक्त पात्र नहीं दिखाई पड़ा। तब धर्म ने वरदान से सिद्धि प्राप्त करने के लिए पुत्री से कहा—बेटी, अनुरूप पति प्राप्ति के लिए तपस्या करो। कन्या ने पिता की आज्ञा स्वीकार कर वन को गमन किया और वहाँ जाकर परम कठोर तपस्या करना प्रारम्भ किया। श्वेतकल्प में धर्मव्रता ने उक्त तपस्या के सङ्ग में दस सहस्र युगों तक केवल वायु का आहार किया। ब्रह्मा के मानस पुत्र मरीचि परम विख्यात ऋषि थे वे पृथ्वी का पर्य्यटन करते हुए वहाँ आये और उक्त कन्या-रत्न का दर्शन किया। उन्होंने देखा कि वह परम रूपवती एवं पूर्ण यौवना होते हुए भी घोर तपस्या में लीन है। ऋषिवर मरीचि ने कन्या से जिज्ञासा प्रकट की कि हे कल्याणि तुम कौन हो ? किसकी पुत्री हो ?

Funding by IKS-MoE

सद्व्रत परायणे ! तुम अपनी मोहक रूपराशि से हमारे चित्त को मुग्ध कर रही हो । भीरु ! तुम डरो मत । मैं ब्रह्मा का पुत्र हूँ, समस्त वेदों का सम्यक् अध्ययन एवं परिशीलन कर चुका हूँ, सारे संसार में लोग मुझे मरीचि नाम से जानते हैं । मरीचि के बचन को सुनकर कन्या ने कहा, मुनिवर ! मैं धर्म की पुत्री हूँ, मेरा नाम धर्मव्रता है । अनुरूप पति एवं पातिव्रतधर्म की प्राप्ति के लिए मैं यह कठोर तपस्या कर रही हूँ । धर्मव्रता की बातें सुनकर मुनिवर मरीचि ने प्रेम पूर्वक कहा, शुभव्रते ! मेरे दर्शन मात्र से तुम पतिव्रता होओगी । केवल पतिव्रता नारियों के देखने की इच्छा ही से मैं रात दिन पृथ्वी का पर्यटन करता हूँ । यदि तुम पतिव्रता हो तो मुझे पतिरूप में अङ्गीकार करो, मैं तुम्हें पत्नीरूप में स्वीकार करता हूँ । इस लोक में न तो तुम्हारे समान कोई कन्या है और न मेरे समान कोई वर है धर्मव्रते ! अब तुम हमारी धर्मपत्नी हो जाओ । मुनिवर मरीचि की बातें सुनकर धर्मव्रता ने कहा, सुव्रत ! आप इस विषय में हमारे पिता से याचना करें । धर्मव्रता के कथनानुसार मरीचि धर्म के पास गये । धर्म ने परम तेजस्वी मरीचि मुनि को देखकर आसन एवं अर्घ्यादि समर्पित कर मरीचि की पूजा की और पूछा कि मुनिवर्य ! आपका शुभागमन किस प्रयोजन द्वारा यहाँ हुआ है ? मरीचि बोले, महानुभाव ! योग्य पत्नी के अन्वेषण के लिये समस्त भूमण्डल विचरण की कामना से मैं घूम रहा था कि तुम्हारी परम सुन्दरी एवं धर्मशील कन्या धर्मव्रता दृष्टिगत हुई, तुम अपनी कन्या मुझे दे दो, तुम्हारा परम कल्याण होगा । मुनि की बातें सुन धर्म ने अर्घ्यादि से पुनः पूजन किया और उनके प्रस्ताव का अनुमोदन किया । वन प्रान्त से धर्मव्रता को अपने निवास पर लाकर विधिपूर्वक विवाह कर्म सम्पन्न करके मरीचि को समर्पित किया । उस मङ्गल कार्य के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को धन रत्नादि भी समर्पित किये । मरीचि के कथनानुसार सब कार्य धर्म ने सम्पादित कर दिया, इसके लिये उन्होंने वरदान दिया । तदन्तर मरीचि अपनी नव विवाहिता धर्म पत्नी धर्मव्रता को अग्निहोत्रादि वैवाहिक धार्मिक विधियों का विधिवत् अनुष्ठान कर अपने आश्रम में ले गये और वहाँ उसके साथ इस प्रकार आनन्दोपभोग किया जिस प्रकार भगवान् विष्णु लक्ष्मी के साथ, शम्भु पार्वती के साथ तथा अजन्मा ब्रह्मा सरस्वती के साथ, करते हैं । धर्मव्रता के संयोग से मरीचि के भगवान् विष्णु के समान परम तेजस्वी एवं प्रभावशाली सौ पुत्र उत्पन्न हुए । एक बार कभी फलपुष्पादि लाने के लिए मुनिवर वन को गए थे और वहाँ से लौट कर बहुत थक गये थे, भोजनोपरान्त अपनी पतिव्रता पत्नी धर्मव्रता से उन्होंने कहा कि प्रिये ! मैं शैय्या पर लेट गया हूँ, मेरा पैर दबा दो । धर्मव्रता ने आज्ञा अङ्गीकार कर शय्या पर लेटे हुए मुनिवर मरीचि का पाद संवाहन प्रारम्भ कर दिया । सर्वप्रथम घृत लगाकर वह तन्मयता पूर्वक पैर दबाने लगी, थोड़ी ही देर में जब मुनि को नींद लग गई, पितामह ब्रह्मा जी उस स्थान पर पधारे । समुपस्थित ब्रह्मा को देखकर साध्वी धर्मव्रता ने मन में प्रभुवर्य की अर्चना करने का संकल्प किया, किन्तु उसके मन में वितर्क हुआ कि ऐसी अवस्था में जब कि पतिदेव बहुत ही थके हुए हैं, मुझे क्या उचित है, मैं पतिदेव का पाद संवाहन करती रहूँ ? या जगत् पूज्य ब्रह्मदेव की पूजा सम्पन्न करूँ ? ऐसा विचार मन में उठते न उठते ही वह आकुल चित्त होकर उठ खड़ी हुई कि ब्रह्मा जगद्गुरु हैं, उनकी पूजा परमावश्यक है । वहाँ से उठकर

Funding by IKS-MoE

उसने अर्घ्य पाद्यादि समर्पित कर ब्रह्मा की विधिवत् पूजा की । विधिपूर्वक सत्कार किये जानेपर अज ब्रह्मा जी (एक दूसरी) शय्या पर विश्राम करने लगे । दुर्भाग्यवश इसी बीच में पतिदेव की आँखे खुल गईं । वे अपनी शय्या पर से उठ बैठे, धर्मव्रता को देखाकि वह पैर नहीं दबा रही है । उसके इस व्यवहार से विप्र वर मरीचि को महान् क्रोध हुआ, और उन्होंने शाप दे दिया कि मेरी आज्ञा के विना पैर का दबाना छोड़कर तू अन्यत्र चली गई अतः इस पाप कर्म के कारण मैं तुझे शाप दे रहा हूँ कि तू शिला हो जा । पति के शाप देने पर धर्मव्रता को भी अमर्ष हुआ, उसने कहा, तुमको निद्रा लग गई थी, उसी समय तुम्हारे पूज्य पिताजी यहाँ पधारे । तुमको सर्वदा अपने गुरू का उठकर पूजन-वन्दनादि करना चाहिये । अतः मैंने धर्म विचार कर तुम्हारे ही कर्त्तव्य का पालन किया था । इसमें मैं बिल्कुल निर्दोष हूँ, तुमने तो नाहक मुझे शाप दिया है, अतः मैं भी तुम्हें शाप दे रही हूँ कि तुम्हें महादेवजी शाप देंगे, इसमें कोई संशय की बात नहीं है । अपने पति को शाप के भय से व्याकुल देखकर धर्मव्रता को और भी व्याकुलता हुई, वह प्रजापति ब्रह्मा के पास गई । उस समय संयोगतः ब्रह्माजी निद्रा ले रहे थे । उन्हें प्रणाम कर इन्धनों द्वारा अग्नि को प्रज्वलित किया और उसी गार्हपत्याग्नि में स्थित होकर परम दारुण तप में लीन होगई । उधर अभिशप्त मरीचि भी तपस्या में दत्तचित्त होकर जुट गये । उस परम तपस्विनी धर्मव्रता एवं मरीचि के परम कठोर तपस्या से इन्द्र प्रभति देवगण परम सन्तप्त होकर विष्णुभगवान की शरण में गये । उस समय भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शयन कर रहे थे, उक्त दम्पति की कठोर तपस्या से सन्तप्त देवताओं ने वहाँ जाकर प्रार्थना की कि देव ! परम तपस्विनी पतिव्रता धर्मव्रता एवं मुनिवर मरीचि के दारुण तप को देखकर हम लोग बहुत दुःखी हैं, त्रैलोक्य की रक्षा कीजिए । इन्द्रादि प्रमुख देवगणों का आर्त्तनिवेदन सुनकर भगवान् विष्णु धर्मव्रता के समीप गये, उधर इसी अवधि में स्वयम् भगवान् ब्रह्मा की भी नींद समाप्त हो गयी थी । अग्नि में अवस्थित होकर परम दारुण तपस्या में तत्पर धर्मव्रता को देखकर विष्णु समेत समस्त देवगण बोले, पतिव्रते ! अग्नि में स्थित होकर तपस्या करने की शक्ति किसमें है ? तुमने समस्त संसार को भयभीत कर देने वाले उस परम दारुण तप का अनुष्ठान किया है, जिसे कोई नहीं कर सकता । धर्म के मर्म को तुम समझने वाली हो । अपनी इच्छाके अनुरूप वरदान हम से माँग लो । विष्णु प्रभृति देवताओं का वचन सुनकर धर्मव्रता ने कहा, देववृन्द ! पति के शाप का निराकरण मैं अपने स्वभाविक तेज से नहीं कर सकती थी, अतः उसी को निराकृत करने के लिए तपस्या कर रही हूँ । पतिदेव मुनिवर मरीचि ने मुझे शाप दे दिया है, वह दूर हो जाय—यही मेरी कामना है । धर्मव्रता की बातें सुनकर देवताओं ने पुनः कहा; धर्म-पुत्रि धर्मव्रते ! यह शाप परमऋषि मरीचि का दिया हुआ है, देवताओं एवं ब्राह्मणों में इसे निष्फल करने की शक्ति नहीं है । इसलिए किसी अन्य वरदान की प्रार्थना करो, जिससे धर्म की मर्यादा विचलित न हो । शुभव्रते ! वेदों में वर्णित धर्म की जिस प्रकार मर्यादा न बिगड़े उसका विचार कर तीनों लोकों में चाहे परम दुर्लभ क्यों न हो वरदान तुम माँग सकती हो । देवताओं की बातें सुनकर धर्मव्रता ने कहा, देववृन्द ! यदि आप लोग पति के शाप को निराकृत करने में असमर्थ हैं तो मुझे इस प्रकार का वरदान दीजिए कि मैं निखिल ब्रह्माण्ड

Funding by IKS-MoE

में परम पावन शिला रूप में प्रादुर्भूत होऊँ। जितने भी नद, नदी, सरोवर, तीर्थ एवं देवादि हैं, उन सब से अधिक पवित्रता का मुझमें निवास हो। यही नहीं जितने भी ऋषि मुनि एवं प्रमुख देवगण हैं, उन सबसे भी अधिक पवित्रता मुझमें हो। समस्त त्रैलोक्य में जितने व्यक्ताव्यक्त लिङ्गादि हैं, वे सब तीर्थ रूप धारण कर हमारे शरीर में निवास करें। भूमण्डल के समस्त तीर्थ, नक्षत्रप्रमुख, समस्त देवगण, देवियाँ एवं मुनिगण—सभी निवास करें। शिला पर स्थित उन तीर्थों में स्नान एवं तर्पण कर जो पिण्डादि समेत श्राद्ध कर्म करें वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करें। उस शिला पर दृश्यतीर्थ गदाधर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ हों, वहाँ श्राद्धकर्म सम्पन्न करने से अनेक पितरों को मुक्ति प्राप्त हो। जरायुज, अण्डज, स्वेदज एवं उद्भिद्-सभी प्रकार के जीवनिकाय पवित्र शिला पर प्राण त्याग कर विष्णु की स्वरूपता प्राप्त करें। जिस प्रकार भगवान् विष्णु की पूजा कर देने पर सभी प्रकार यज्ञ पूर्ण हो जाते हैं, उसी प्रकार श्राद्ध, तर्पण एवं स्नान करने से यहाँ अक्षय फल की प्राप्ति हो। मेरे शरीर पर देवेशों के मंत्रों का जो जाप करें, वे थोड़े ही समय में सिद्धि प्राप्त करें। अपने समेत पितरों एवं सहस्रों कुलों का वह मनुष्य उद्धार करनेवाला हो। उस पवित्र शिला पर श्राद्धादि सम्पन्न कर पितरों को प्रसन्न करनेवाला विष्णु लोक को प्राप्त करे। गङ्गा प्रभृति जितनी श्रेष्ठ नदियाँ, मनोहर सरोवर, समुद्रादि पवित्र मानसादि तीर्थ, इन्द्रादि देवगण हों वे श्राद्धकर्त्ता को मुक्ति प्रदान करने के लिए मेरे शरीर पर निवास करें। देवगण, आप लोग अपने मूर्त रूप से यहाँ बने रहें, कहीं अन्यत्र न जायँ। पण्डित लोग तीन स्वरूपों में व्यक्त होनेवाले एक मात्र भगवान् विष्णु का जब तक संकीर्तन करें तब तक शिला पर सभी तीर्थ एवं देवगण निवास करते रहें। मुनियों एवं गन्धर्वों का भी सर्वदा उस पर निवास रहे। जब तक ब्रह्माण्ड का अस्तित्व रहे तब तक इस शिला का अस्तित्व रहे। पत्थर रूपी मेरे शरीर पर स्थित होकर जो लोग जप, तपस्या एवं हवनादि करें, वे अक्षय फल प्राप्त करें। इस पर किया गया श्राद्ध जप, हवन एवं तप—सभी अक्षय फलदायी हों। देवगण! आप लोग शिलाओं एवं पर्वत शिखरों का स्वरूप धारण कर मेरे शरीर पर सर्वदा स्थित रहें। पतिपरायणा धर्मव्रता के वचनों को सुनकर देवताओं ने कहा, धर्मव्रते! तुम्हारी अभिलाषाएँ पूर्ण होंगी—इसमें सन्देह मत करना। गयासुर के शिर पर जब तुम स्थित होगी तब चरणादि स्वरूप से हम लोग तुम्हारे शरीर पर स्थित होंमे इस प्रकार धर्मव्रता को वरदान देने के उपरान्त देवगण अन्तर्धान हो गये। ॥२—५८

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गया माहात्म्य नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ।१०७।

एक सौ आठवाँ अध्याय

सनत्कुमार बोले:—नारदजी! अब इसके उपरान्त उक्त शिला का माहात्म्य वर्णन कर रहा हूँ, जिसका गान बड़े-बड़े मुनिगण एवं देवतागण किया करते हैं, जिसके श्रवण करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है

Funding by IKS-MoE

सुनिये। वह परम पवित्र शिला पृथ्वी पर देव स्वरूप से स्थित थी। वह विचित्र नामक शिला तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात हुई उसके स्पर्श मात्र करने से सभी लोकों के निवासी विष्णुपुर को प्राप्त हुए। इस प्रकार जब तीनों लोक सुनसान हो गया, यमपुरी भी सूनी हो गई तब यमराज इन्द्र प्रभृति प्रमुख देवगणों के साथ अद्भुत कर्मशाली भगवान् ब्रह्मा के पास गये और बोले, पितामह, आप यमदण्ड एवं उसके अधिकारों को अब स्वयं ग्रहण कीजिए। ब्रह्मा ने यमराज से कहा कि उस शिला को तुम अपने घर पर स्थापित करो। ब्रह्मा के आदेशानुसार धर्मराज ने उसे अपने घर स्थापित किया। और पाप कर्मियों के शासनादि की अपनी व्यवस्था पूर्ववत् परिचालित की। इस प्रकार वह महान् गुरु शिला समस्त संसार में विख्यात हुई जिस प्रकार ह्मा, विष्णु एवं महेश्वर का यश समस्त संसार में व्याप्त है, निखिल ब्रह्माण्ड में जिस प्रकार सुमेरु की महिमा प्रसिद्ध है, उसी प्रकार यह देवस्वरुपिणी शिला भी संसार में अपने माहात्म्य से विख्यात थी। अपने भारीपन के कारण यह गयासुर के शिर पर स्थापित की गई थी। इन दोनों परम पवित्र आत्माओं के संयोग पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं, उन दोनों परम पुनीत आत्माओं के संयोग स्थली पर अजन्मा ब्रह्माने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था यज्ञ में अपने भागों को प्राप्त करने के लिए समागत विष्णु प्रभृति प्रमुख देवगणों से शिला ने पुनः कहा कि देववृन्द! इस शिला पर स्थित रहने की प्रतिज्ञा, पितरों की मुक्ति के लिए, आप लोग करें, विष्णु प्रभृति देवताओं ने उसके प्रस्ताव का अनुमोदन किया और यहाँ बराबर बने रहे। पूर्व प्रतिज्ञा वश देवगण शिलारूप में, मूर्तिरूप में, पाद रूप में, अपने साक्षात् स्वरूप में तथा प्रच्छन्न रूप में उस शिला पर स्थित रहे। दैत्य के मुण्ड के पृष्ठ भाग पर यतः वह पवित्र शिला स्थित हैं, अतः वह स्थान मुण्ड पृष्ठाद्रि के नाम से विख्यात है, वह पितरों को ब्रह्मलोक प्रदान करनेवाला है। शिला का चरणप्रान्त प्रभास नामक गिरि से अच्छादित है, सूर्य की किरणों से प्रकाशमान होने के कारण वह गिरि प्रभास नाम से विख्यात है, उस प्रभास गिरि का भेदन करके शिला का अङ्गुष्ठ भाग बाहर निकला हुआ है। उक्त उठे हुए शिलाङ्गुष्ठ के ईश प्रभासेश नाम से पुकारे जाते हैं। शिलाङ्गुष्ठ का एक छोर जो है, वही प्रेतशिला के नाम से प्रसिद्ध है। उस प्रेतशिला पर पिण्डादि दान करने से मनुष्यों के पितरगण प्रेत योनि से छुटकारा पा जाते हैं। महानदी और प्रभास गिरि के संगम स्थल में मनुष्य को स्नान करना चाहिए। उक्त पवित्र स्थल पर रामचन्द्रजी ने अपनी पत्नी जानकी के साथ स्नान किया था, तभी से यह रामतीर्थ के नाम प्रसिद्ध है। इस पवित्र स्थल पर रामचन्द्र जी से महानदी ने स्वयं प्रार्थना की थी कि श्रीरामजी! आप यहाँ स्नान कर लें। इसी कारण से वह पवित्र स्थान रामतीर्थ के नाम से तीनों लोकों में विख्यात है। सैकड़ों जन्म में जो पाप कर्म किये हों वे सब पवित्र रामतीर्थ में अभिषेचन मात्र करने से विनाश को प्राप्त हों। इस मन्त्र का उच्चारण कर रामतीर्थ में जो मनुष्य स्नान करे तथा वहाँ पिण्डदान करे वह भगवान् विष्णु के लोक को प्राप्त करे।' महानदी की उक्त प्रार्थना को सुनकर भरत के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी वहाँ रुक गये थे। महाबाहु, देवताओं को अभय प्रदान करनेवाले राम, हम तुम्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं, देवेश! मेरे पाप कर्मों का नाश हो। इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए जो प्राणी उस रामतीर्थ में स्नान कर, पिण्ड समेत

श्राद्ध कर्म सम्पन्न करते हैं उसके पितर गण प्रेतयोनि से छुटकारा पाकर पितरलोक को प्राप्त करते हैं। हे देवेश ! आप स्वयमेव जलस्वरूप हैं, चन्द्रसूर्यादि ज्योतिः पदार्थों के पालक आप ही हैं, देव ! मेरे मानसिक वाचिक एवं शारीरिक पाप कर्मों का विनाश कीजिये। इस मन्त्र से प्रभासेश को नमस्कार करने के उपरान्त परम ज्योतिर्मय शिव के समीप जाना चाहिये। वहाँ शम्भु को नमस्कार कर यमराज के लिए बलिकर्म करना चाहिये। श्रीरामचन्द्र जी के वन चले जाने पर भरतजी पर्वत पर आकर स्थित हुए थे और वहीं पिता के पिण्डदानादि को सम्पन्न कर श्रीराम सीता, लक्ष्मण एवं अन्यान्य मुनिगणों की मूर्तियों का स्थापन किया था। महात्मा भरत के उस पुनीत आश्रम में सर्वदा पवित्रात्माओं के निवास होते हैं। वहीं पर मतङ्ग का आश्रम भी सभी मनुष्यों को दिखाई पड़ता है। इस लोक में धर्म के निदर्शनार्थ उस परम धार्मिक मङ्गल आश्रम की स्थापना हुई है। उस मतङ्ग पद में श्राद्ध करनेवाला प्राणी अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है। पुनीत रामतीर्थ में स्नानकर मानव राम और सीता की पूजा कर तथा रामेश्वर को प्रणाम कर पुनः शरीर नहीं धारण करता। उस शिला का जघन प्रान्त पर्वत से आक्रान्त है, धर्मराज ने स्वयं उससे कहा था कि तू मत जा, इसी कारण से उसका नाम नग (न जाने वाला) कहा जाता है। उस स्थान पर यमराज और धर्मराज गयासुर को निश्चल करने के लिए व्यवस्थित हैं, पितरों को मुक्ति प्राप्त हो इस अभिलाषा से मैं उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ। दो श्वान, श्यामल और भूरे, भी वहाँ पर स्थित हैं जो वैवस्वत के कुलोत्पन्न हैं। उन दोनों को बलि प्रदान करता हूँ, इससे वे अपनी हिंसकवृत्ति छोड़ दें। पूर्व, पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, नैर्ऋत्य प्रभृति दिशाओं में रहनेवाले काग पृथ्वी पर दिये गये मेरे पिण्ड को अंगीकार करें। शिला के दाहिने हाथ पर कुण्ड नामक पर्वत की स्थापना हुई है, वहाँ तिमिरादित्य, ईशान, भर्ग, महेश्वर अग्नि, दोनों वरुण चारों रुद्र स्थापित हैं जो पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। पुनीत भरत के आश्रम में जाकर मनुष्य को उनकी पूजा एवं नमस्कार करना चाहिए। पातकों एवं उपपातकों से मानव एवं उसके पितरगण सभी मुक्त हो जाते हैं। देवर्षि ! भरत के पुनीत आश्रम में जहाँ कहीं भी स्नान कर मनुष्य श्राद्धादि कर्म सम्पन्न करे, वे श्राद्धादि कल्प पर्यन्त फल देनेवाले होते हैं। यूँ तो सारी गयापुरी में जप, हवन, तपस्या—सभी अक्षय फलदायी कहे जाते हैं। भरत के पुनीत आश्रम में जो कुछ दान किया जाता है वह अनन्त फलदायी कहा जाता है। चारों युगों का स्वरूप धारण कर सूर्य की चार मूर्तियाँ वहाँ प्रतिष्ठित हैं, उनके दर्शन, स्पर्श, पूजन करने से पितरों को मुक्ति की प्राप्ति होती है। मुक्ति और वामन तारक नामक दो वहाँ अन्य मूर्तियाँ हैं, संसार सागर में सन्तप्त प्राणियों के लिये वे दोनों सुरेश्वर नौका स्वरूप हैं। सभी मृत एवं जीवित-प्राणियों के उद्धारक एक मात्र ब्रह्म है। जो पुरुषोत्तम त्रिविक्रम वामन देव का दर्शन करता है, वह धर्मात्मा अपने पितरों समेत परम गति को प्राप्त करता है। शिला के बाएँ चरण पर भी अभ्युद्यन्तक नामक गिरि प्रतिष्ठित है, उक्त स्थान पर पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है। पुनीत नैमिषारण्य के समीप में अन्यान्य देवताओं के साथ ब्रह्मा ने यज्ञ का अनुष्ठान किया था, उसका नाम मुख्यतीर्थ है उसके चरणों में देवगण का निवास है। मुनिसत्तम नारद जी ! उस पुनीत तीर्थ के केवल

तीन चरण भूमि में मनुष्य के जो कुछ भी अशुभ कर्म होते हैं, सभी नष्ट हो जाते हैं। वह पवित्र नैमिषारण्य पुण्य पुरुषों द्वारा सेवित है वहाँ व्यास, शुक, पैल, कण्व, वेधा, शिव, हरि प्रभृति देवगणों का निवास स्थान है उनके केवल दर्शन करने से मनुष्य पाप कर्मों से मुक्ति पा जाता है। शिला के बाएँ हाथ पर उद्यन्तक नामक गिरि प्रतिष्ठित है, महात्मा अगस्त्य ने उस पर्वत को यहाँ लाकर स्थापित किया था। उस पर्वत प्रान्त में स्वयं भगवान् ब्रह्मा एवं शिव ने उग्र तपस्या की थी। वहाँ अगस्त्य का त्रैलोक्य दुर्लभ परम रमणीय कुण्ड है, जिसमें आठ मुनियों ने परम कठोर तपस्या कर सिद्धि एवं शिव की प्राप्ति की थी। उस कुण्ड में उक्त आठों मुनियों को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है। देवर्षि नारद जी! महात्मा अगस्त्य ने शिला के बाएँ हाथ पर उदयाचल पर्वत से लाकर इस पर्वत की स्थापना की थी, जो परम कल्याण प्रदाता है, उस पवित्र शैल पर विविध प्रकार के बाजों एवं संगीत की ध्वनि हुआ करती है। वह सर्वप्रथम वादित्रक गिरि के नाम से विख्यात है। उस पुनीत पर्वत शृङ्ग पर विद्याधर, गन्धर्व, एवं अप्सराओं के समूह आज भी संयुक्त रूप में दिव्य गीत गाया करते हैं। मोहन, सुनीथ, शैलूज, मोहनोत्तम, पर्वत, नारद, ध्यानी, संगीती, पुष्पदन्तक, हाहा, हूहू, प्रभृति गन्धर्वगण वहाँ दिव्य संगीतदान करते हैं। सभी गन्धर्वों समेत चित्ररथ भी वहाँ स्थित रहता है। वे सब गन्धर्वगण इस पुनीत पर्वत शिखरपर मनोहर गीत गा गा कर महान् उत्सव करते हैं। यही कारण है कि वह पुनीत पर्वत राज आज भी देवताओं द्वारा सेवित है। गीतों एवं बाजनों से निनादित इस पवित्र पर्वत शिखर पर देवेश महादेवजी अङ्गों में विभूति लगाये हुए पार्वती के साथ आनन्द का अनुभव करते हैं। इनकी पूजा करने से पितरगण परम गति प्राप्त करते हैं, उन शिवजी का ध्यान वहाँ अवश्यमेव करना चाहिये। इस गया क्षेत्र में परमात्मा गदाधारी अथवा गोपालक भगवान् विराजमान रहते हैं। मुने! रुद्र की पूजा करने से मनुष्य वैष्णवी माया से मुक्त होजाता है। शिला के दाहिने हाथ में भस्मकूट नामक गिरि धारण किया मया है, उस पर अपनी स्त्री समेत महर्षि अगस्त्य तथा धर्मराज विद्यमान् हैं। अगस्त्य के चरण प्रान्त में स्नानकर पिण्डदान करने वाला मनुष्य ब्रह्मलोकगामी होता है। पृथ्वी भर में दुर्लभ वरदान को तथा लोपामुद्रा को महर्षि अगस्त्य ने ब्रह्माजी से यहीं प्राप्त किया था। यह परम पुनीत स्थल पितरों को परमगति देने वाला है। वहाँ अगस्त्येश्वर का दर्शन करने वाला मनुष्य ब्रह्महत्या से मुक्त होजाता है। स्त्री समेत महर्षि अगस्त्य की पूजा करने वाला मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। सीताचल के दाहिने भाग में जो पर्वत है, उस पर दण्डी ने तपस्या की थी। वहाँ वटेश्वर नामक वट वृक्ष है, जिसके नीचे पितामह ब्रह्मा का निवास स्थान है। उसके आगे रुक्मिणीकुण्ड नामक तीर्थ है, पश्चिम में कपिला नामक नदी है। उस नदी के तट पर कपिलेश का स्थान है। सोमवती अमावास्या के संयोग पर कपिला नदी में स्नानकर कपिलेश की विधिवत् पूजाकर पिण्डदान एवं श्राद्धादि करने से पितरगण मोक्षको प्राप्तिकरते हैं। गिरिवर उद्यन्तक के साथ लगी हुई एक अग्निधारा प्रवाहित होती है। वहीं पर एक सरस्वती द्वारा प्रतिष्ठापित सारस्वत नामक कुण्ड है। परमऐश्वर्य शाली षण्डामर्क प्रभृति पुरोहितों के साथ शुक्राचार्य वहाँ स्थित हैं। मुनिसत्तम! उस पवित्र स्थानपर उन मुनिवरों

की पूजा एवं श्राद्ध पिण्ड दानादि करनेवाला मनुष्य अपने पितरों का उद्धार करता है। शिला के बाएँ हाथ में एक अन्य गृध्र-कूट नामक गिरि धारण किया गया है, अनेक महान् ऋषियों ने गृध्र का स्वरूप धारणकर वहाँ पर तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्त की थी। इसी से उस पर्वत का नाम गृध्रकूट पड़ गया, वहीं पर गृध्रेश्वर का निवास स्थान है। मनुष्य वहाँ गृध्रेश्वर का दर्शन पूजनादि कर शम्भु का लोक प्राप्त करता है। खास गृध्र गिरि की गुफा में पिण्डदान करनेवाला भी शिवलोकगामी होता है। उसी गृध्रकूट पर वट को नमस्कार करनेवाला मनुष्य अपनी समस्त अभिलाषाओं की पूर्तिकर स्वर्ग प्राप्त करता है। वहाँ पर स्थित भगवान् शंकर का दर्शन कर प्राणी ऋण एवं पाप से मुक्ति प्राप्त कर शिवलोकगामी होता है। उसी गृध्रकूट पर एक शूलक्षेत्र नामक तीर्थ है, वहाँ पिण्डदान करने वाला अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। उस गयासुर के ऊपर रखी गई शिला का उदर देश आदिपाल नामक गिरि से आक्रान्त है, उस पर विघ्नों के विनाशक विघ्नेश्वर गणेश गजरूप धारण कर अवस्थित हैं। उनका दर्शन करनेवाला विघ्नों से मुक्त होकर अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। मुण्डपृष्ठ के नितम्ब प्रदेश में देवदारु का वन था, मुण्डपृष्ठ एवं अरविन्दादि का दर्शन करनेवाला अपने पाप कर्मों को विनष्ट करता है। गयापुरी की नाभिस्थली, में जो सुषुम्ना नाम से विख्यात है, पिण्ड प्रदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। शिला के बाएँ चरण पर प्रेतगिरि नामक एक पर्वत धर्मराज ने स्थापित किया था, यह प्रेतगिरि पहले पापों के कारण अतिशय मलिन था, इसीकारण इसका नाम प्रेतशिला कहा जाता था। धर्मराज ने अपने पैरों से इसे उठाकर फेंक दिया। उक्तशिला के संसर्ग के कारण यह पवित्रता को प्राप्त हुआ। वहीं पर एक प्रेतकुण्ड नामक कुण्ड है, जिसके कारण प्रान्त में देवताओं का निवास है, वहाँ पिण्डदानादि करनेवाला प्राणी अपने पितरों को प्रेतयोनि से मुक्ति दिलाता है। इस गयातीर्थ में पितरों की मुक्ति के लिए श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाले प्राणियों के कार्यों में विघ्न डालनेवाले बहुत से प्रेत धनुष धारण कर अलग स्थित रहते हैं, और उनका हाथ पकड़ लेते हैं, अर्थात् बहुतेरा विघ्न डालते हैं। महादेव की निवासस्थली मुण्डपृष्ठा नामक एक शिला है, जो उनके चरण चिह्नों से अङ्कित है। उसका दर्शन कर समस्त लोक पापों एवं उपपापों से मुक्त हो जाता है। समस्त पापों से विसर्जित, पुण्यप्रद गयाशिर यतः प्रेतादि से रहित है, अतः उसे सर्वापेक्षा परम पुनीत एवं सुन्दर; कहा जाता है। सारे मगध प्रदेश के तीर्थों में गया नगरी सर्वाधिक पुण्य प्रदायिनी है; राजगृह नामक वन सभी वनों में अधिक पुण्य प्रद है' आश्रमों में च्यवन का आश्रम अधिक पुण्य प्रद है, नदियों में पुनपुना नदी सबसे अधिक पुण्यदायिनी है। इसी प्रकार वैकुण्ठ, लोहदण्ड, गृध्रकूट और शोणक भी पुण्य प्रद हैं; इन स्थानों पर श्राद्धादि द्वारा मनुष्य अपने सभी पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है। मुण्ड पृष्ठ पर मुनि ने क्रौञ्च पक्षी का रूप धारण कर तपस्या की थी, उनके चरणों के चिह्नों से यह चिह्नित भी है, इसी कारण से इसका क्रौञ्चपाद नाम स्मरण किया जाता है। वहाँ जाकर जलाशय में स्नान करनेवाला प्राणी अपने कुल को स्वर्ग पुरी में पहुँचाता है। काकशिला पर कौआ का बलि कर्म ऋण से मुक्ति दिलाने वाला है। मुण्डपृष्ठ की उपत्यका में लोमहर्षण और लोमश इन दोनों ने परम कठोर तपस्या करके परम सिद्धि की प्राप्ति की थी।

लोमश ने इस स्थान पर, नदियों में श्रेष्ठ महानदी, शरावती, होत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, कावेरी सिन्धुवीरा, चन्दना, वाशिष्ठी, सरयू, गंगा, यमुना, गण्डकी, इन्दिरा, स्वर्गवासियों की निक्षरा महावैतरणी, अलकनन्दा, उदीची, कनका, कौशिकी, ब्रह्मदा, जो सभी नदियों में श्रेष्ठ एवं सभी के पापों को विनष्ट करने वाली है, इन सब नदियों का आवाहन किया था। मुक्ति दायिनी कृष्णा वेणी और चर्मवती—इन दोनों नदियों को जो सर्व श्रेष्ठ मानी जाती हैं, लोमहर्षण ने अपने तपोबल से आवाहित किया था। मुनिपुङ्गव ! अपने तपस्या के प्रभाव से नर्मदा का भी आवाहन लोमहर्षण ने किया था। इन सभी नदियों में स्नानकर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। इस गयातीर्थ में अवस्थित ब्रह्म योनि नामक तीर्थ में प्रवेश कर जो मनुष्य बाहर निकल आता है, वह ब्रह्म को प्राप्त करता है और योनि सङ्कटों से सर्वदा के लिए मुक्त हो जाता है। निक्षरा नामक पोखरी में स्नान कर श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य दिव्य क्रौञ्चपद पर नियम पूर्वक तीन दिनों तक निवास करे, ऐसा करनेवाला व्यक्ति पाँच प्रकार के पापों के करने वाले समस्त पितरों को स्वर्ग पहुँचाता है। भस्मकूट पर जनार्दन का निवास स्थल है, उनके हाथ में अपने लिए तथा अन्यान्य लोगों के लिए तिलों के पिण्ड अपसव्य हो दान करना चाहिए, जीवित व्यक्तियों के लिए दधिमिश्रित पिण्डदान करना चाहिए। जो इस तरह करते हैं वे सभी विष्णुलोकगामी होते हैं। पिण्डदान करते समय यह मंत्र उच्चारण करना चाहिए। प्रभो ! जनार्दन ! जो पिण्ड मैं जिस के उद्देश से आप के हाथों में समर्पित कर रहा हूँ; उसके मर जाने पर वह पिण्ड आप उसके लिए पहुँचा देंगे। जनार्दन यह पिण्ड मैं अपने लिये आपके हाथों में समर्पित कर रहा हूँ, मेरा अन्तकाल जब हो जाय तब उसे आप गयाशिर में हमें प्रदान करेंगे। जनार्दन ! आप पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आप को हम नमस्कार करते हैं, आप पितरों के स्वामी हैं, स्वयं पितृस्वरूप हैं, आप को हम नमस्कार करते हैं। गया क्षेत्र में भगवान् जनार्दन स्वयमेव पितृरूप से विराजमान रहते हैं, उन पुण्डरीकाक्ष भगवान् का दर्शन कर मानव अपने तीनों ऋणों से छुटकारा पाता है। तीनों ऋणों से मुक्ति देने वाले पुण्डरीकाक्ष, आप लक्ष्मी के कान्त हैं हमारे पितरों को मोक्ष प्रदान करें आपको हमारा नमस्कार है। भीम ने अपने बाएँ घुटने को मोड़कर भगवान् जनार्दन को नमस्कार एवं पितरों के लिए पिण्डदान आदि करके भाइयों समेत ब्रह्मलोक की प्राप्ति की। यही नहीं उस धर्मात्मा ने पितरों समेत अपने सौ कुलों का भी उद्धार किया। उस पुनीत शिला के ऊपर लक्ष्मी पति भगवान् विष्णु अपने व्यक्ताव्यक्त स्वरूप से देवगणों के साथ स्वयमेव विराजमान् रहते हैं, यही कारण है कि वह शिला देवमयी कही जाती है। ॥१.—६२॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्त गयामाहात्म्य नामाष्टाधिकशततमोऽध्याः॥ १०८

एक सौ नवाँ अध्याय

गया माहात्म्य,

नारदबोले:—सनत्कुमार जी ! आदि गदाधर भगवान् किस प्रकार व्यक्त रूप में अवस्थित हैं ?

व्यक्ताव्यक्त स्वरूप से वे व्यक्त स्वरूप में किस प्रकार अवस्थित हैं ? वह गदा किस प्रकार उत्पन्न हुई जिससे उनकी आदि गदाधर उपाधि हुई ? सभी पापों को विनष्ट करनेवाली उस गदा की चञ्चलता किस प्रकार हुई ? ॥ १—२॥

सनत्कुमार बोले:—प्राचीनकाल में वज्र से भी परमकठोर गद नामक एक घोर असुर था, ब्रह्मा के प्रार्थना करने पर उसने अपनी हड्डियाँ ब्रह्मा को समर्पित की थी, जिनका देना परम कठिन कार्य था। ब्रह्मा के कहने पर विश्वकर्मा ने उन हड्डियों की एक अद्भुत गदा बनाई उस अस्थिखण्ड की वज्र भेदन करने वाले यन्त्रों से गदा बनाकर स्वर्ग लोक में विश्वकर्मा ने स्थापित किया था। बहुत दिन बीत जाने के बाद की बात है कि एक बार स्वायम्भुव मन्वन्तर में ब्रह्मनन्दन हेति नामक राक्षस ने परम कठोर तपस्या की, एक लाख दिव्य वर्षों तक उसने केवल वायु का आहार किया, एक पैर के अंगूठों पर खड़े रहकर मुख और दोनों बाहुओं को ऊपर कर शान्त चित्त से वह तपस्या में लीन था। इस अवधि में पुराने, गिरे हुए पत्ते एवं वायु का आहार करता था। इस परम कठोर तपस्या से सुप्रसन्न वरदायक ब्रह्मा प्रभृति देवगणों से उसने वरदान की याचना की कि मैं समस्त देव, दैत्य विविध प्रकार के शस्त्र, अस्त्र, मनुष्य, कृष्ण, शिव, सुदर्शन चक्रादि से न मारा जाऊँ, मेरे समान महाबलवान् कोई दूसरा न हो। देवगण हेति की प्रार्थना स्वीकार कर अन्तर्हित हो गये। तदुपरान्त उसने देवताओं को पराजित कर इन्द्रका पदछीन लिया, ब्रह्मा महादेव—सभी उसके इस प्रचण्ड कर्म से भयभीत होकर विष्णु भगवान् की शरण में गये और बोले, भगवन् ! हेति का संहार कीजिये। हरि ने देवगणों से कहा, सुरवृन्द ! हेति समस्त देवताओं एवं असुरों द्वारा भी नहीं मारा जा सकता। मुझे कोई महान् अस्त्र दीजिये जिससे हेति का बध कर सकूँ। भगवान् विष्णु के इस प्रकार कहने पर देवताओं ने वही गदा उन्हें समर्पित की। देवताओं के अनुरोध पर हरि ने सर्व प्रथम उस गदा को धारण किया, और उसी से हेति का विनाश कर सुरगणों के साथ स्वर्ग लोक को प्रस्थान किया। गयासुर के निश्चलता करने के लिए ऊपर रखी गई शिला पर भगवान् ने उसी गदा को स्थापित किया था, इसीलिए उसका नाम आदि गदाधर पड़ा। शिलापर्वत स्वरूप से भगवान् आदि गदाधर उस गया क्षेत्र में व्यक्त हुए शिला के अतिरिक्त मुण्डपृष्ठाद्रि, प्रभास, उद्यन्त, गीतनाद, भस्मकूट नामक महागिरि, गृध्रकूट, प्रेतकूट, आदिपाल, अरविन्दक, पञ्चलोक, सप्तलोक, वैकुण्ठ, लोहदण्डक, क्रौञ्चपाद, अक्षयवट, फल्गुतीर्थ, मधुश्रवा, दधिकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी, वैतरणी प्रभृति के रूप में आदि गदाधर भगवान् व्यक्त हैं। विष्णु पद, रुद्रपद. उत्तम ब्रह्म पददिव्य गुण युक्त कश्यप पद जहाँ पर दो हाथ निकले हुए हैं, पंचाग्नियों के पद, इन्द्र एवं अगस्त्य के पद, सूर्य, कार्तिकेय क्रौञ्च, मातङ्ग, एवं अन्यान्य प्रमुख लिङ्ग—ये सभी वहाँ व्यक्ताव्यक्त स्वरूप में उपस्थित हैं, आदि गदाधर भगवान् स्वयमेव इन स्वरूपों से व्यक्तरूप में विराजमान हैं। गायत्री, सावित्री, सन्ध्या, सरस्वती, गयादित्य, उत्तरार्क, दक्षिणार्क, नैमिष, श्वेतार्क, गणनाथ, आठों वसुगण, मुनीन्द्रगण, ग्यारह रुद्रगण, सातों ऋषिगण, सोमनाथ, सिद्धेश, कपर्दीश, विनायक, नारायण, महालक्ष्मी, ब्रह्मा, श्री पुरुषोत्तम, मार्कण्डेयेश कोटीश, अङ्गिरेश, पितामह, जनार्दन, मङ्गला, पुण्डरीकाक्ष,

Funding by IKS-MoE

इत्यादि स्वरूप से आदि गराधर भगवान् विराजमान हैं। वह हेति नामक राक्षस, जिसकी कथा ऊपर कही जा चुकी है, मृत्यु के उपरान्त भगवान् विष्णु के लोक में पहुँचा। गयासुर के निश्चल कर देने पर ब्रह्मा समेत रुद्रादि देवगण परम हर्षित हुए और आदि गदाधर की इस प्रकार सब लोगों ने मिलकर स्तुति की। १२६॥

ब्रह्मा बोले:—गया क्षेत्र में विराजमान, सभी गुणों से परे, प्रशस्त गुणशाली समस्त काल चक्रों एवं पापों से विहीन, गुणों द्वारा सुपूजित, गदाधारण करने वाले, गिरिराज की हिमाच्छादित गुहा में विराजमान वरदायक देव को मैं नमस्कार करता हूँ। दिन की शोभा, देवगणों को विजय श्री प्रदान करने वाले, महादेव जी को यश प्रदान करने वाले, दैत्यों का विनाश कर सुर गुणों को प्रसन्न करने वाले, कलि के घोर पापों को विनष्ट कर यश उपार्जित करने वाले, कलियुग में भी परम शोभा सम्पन्न, शरणागत रक्षक भगवान् गदाधर को नमस्कार करता हूँ। परम पुष्ट भक्ति रखने वाले भक्त जन जिसकी गाढ़ी भक्ति से स्तुति करते हैं, ऐसे परम कठोर से भी कठोर, अद्भुतकर्मशील, परम विक्रम शील, अजन्मा होकर भी शरीर धारण करने वाले, कठोर पाप कर्मों को नष्ट करने वाले, पूज्यों में भी अग्रणी, पापियों को न प्राप्त होने वाले, भगवान् को हमारा नमस्कार है, जो वाक्य एवं मन से अगोचर होकर भी सद्वंशो में उत्पन्न होने वाले हैं, शरीर रहित, करण एवं कलाओं से विहीन, अजन्मा, सूर्य की भाँति परम कान्तिमान, ध्वनि एवं मुख से विहीन, अनादि परम ऐश्वर्यशाली भगवान् को सर्वदा नमस्कार करते हैं। मन से भी परे, बुद्धि की गति से भी अगम्य, परात्पर, द्वैतरहित, जिस भगवान् की पण्डित जन सर्वदा स्तुति करते हैं, उस चित्स्वरूप कलिकाल गत कारण समूहों से परे, हृदय में विराजमान, उस भगवान् गदाधर को नमस्कार करते हैं, —२७—३१—

सनत्कुमार बोले:—देवताओं समेत ब्रह्मा द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त विष्णु ने कहा, वरदान माँगिये। तब ब्रह्मा ने वरदान की याचना की कि देव! इस देवस्वरूपिणी शिला पर आपके बिना हम लोग नहीं रहेंगे, व्यक्तादिस्वरूप सम्पन्न आपके साथ ही हम लोग यहाँ पर सर्वदा स्थित रह सकेंगे! आदि गदाधर ऐसा ही हो—कहकर लक्ष्मी के साथ वहाँ विराजमान हुए। समस्त लोकों की रक्षा, एवं जगत् के जीवों को मुक्ति प्रदान करने के लिए भगवान् आदि गदाधर पुण्डरीकाक्ष जनार्दन नाम से वहाँ व्यक्त स्वरूप धारणकर स्थित हुए—ऐसा सुना जाता है। श्वेत कल्प में वेदों द्वारा अगम्य जो आदि भूत, सनातन, भगवान् की व्यक्त मूर्ति थी, वही भविष्य में वाराह कल्प के आने पर अव्यक्त हो जाती है। प्राचीनकाल में वही व्यक्तता को प्राप्त हुई। लोक का उद्धार एवं देवताओं की रक्षा करने के लिए गया शिर पर वह व्यक्त होगी -इसमें सन्देह का स्थान नहीं है। जो लोग सर्वदा भक्तिपूर्वक भगवान् आदि गदाधर का दर्शन करेंगे, वे कुष्ठ जैसे महान् असाध्य रोगों से मुक्त होकर भगवान् विष्णु के लोक को जायँगे। जो आदि गदाधर भगवान् का भक्ति पूर्वक सर्वदा दर्शन करेंगे वे विपुलधन, धान्य, आयु एवं आरोग्य की प्राप्ति करेंगे। कलत्र, पुत्र, पौत्रादि, गुण, कीर्ति एवं सुख की उन्हें

प्राप्ति होगी। जो लोग भगवान् आदि गदाधर को श्रद्धापूर्वक नमस्कार करेंगे, वे राज्य तथा ब्रह्मपुर की प्राप्ति करेंगे। वे मनुष्य अपने निखिल पुण्यकर्मों का विपुल फल भोगकर अन्त में ब्रह्मपुर को प्राप्त होंगे। सुगन्धित द्रव्यों के दान से विपुल सुगन्धित द्रव्यों की प्राप्ति होगी, पुष्प के दान से सौभाग्य की वृद्धि होगी। धूप-दान से राज्य-प्राप्ति होगी, दीप दान से विपुल कान्ति मिलेगी। ध्वजा के दान से पाप का विनाश होगा, जो यात्रा करेगा वह ब्रह्मलोक का अधिकारी होगा। जो श्राद्ध एवं पिंडदान करेगा वह अपने पितरों को विष्णुलोक में पहुँचाएगा। जो व्यक्ति ऊपर के स्तोत्र द्वारा स्तुतिकर आदि गदाधर को श्रद्धापूर्वक प्रणाम करेगा, पूजन करेगा, वह अपने पितरों को माधव के समीप पहुँचाएगा। शिव ने भी परम भक्तिपूर्वक आदि गदाधर की स्तुति की थी। ॥३२–४२॥

शिव ने कहा:—जो अव्यक्त स्वरूपधारण कर मुण्डपृष्ठपर्वत एवं फल्गुतीर्थ प्रभृति अन्यान्य तीर्थों के स्वरूप में विराजमान है, उस परमदेव आदि गदाधर को हम नमस्कार करते हैं। जो व्यक्ताव्यक्त स्वरूप धारणकर पद, मुखादि चिह्नों के रूप में विराजमान है, उस आदि गदाधरदेव को हम नमस्कार करते हैं। जो अव्यक्त स्वरूप धारण करनेवाला देव मुण्डपृष्ठ पर जनार्दन का स्वरूप धारणकर विराजमान है, उस आदि गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो देव स्वरूपिणी शिला पर ब्रह्मा प्रभृति देवगणों द्वारा पूजित एवं सत्कृत होकर अवस्थित है, उस गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। श्राद्धादि में जिसका दर्शन, स्पर्श, पूजन एवं प्रणाम करके प्राणी ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है; उस आदि गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। महदादि व्यक्त जगत् का जो एकमात्र कारण स्वरूप है, अव्यक्त एवं ज्ञानस्वरूप हैं, उस आदि गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण एवं अहङ्कार से विवर्जित, एवं जागरण, तथा स्वप्न से विहीन है उस आदि गदाधर देव को हम नमस्कार करते हैं। जो नित्य एवं अनित्य के पचड़ों से रहित है, सत्स्वरूप, आनन्दस्वरूप एवं अव्यय है, तुरीय आत्मा एवं ज्योति कहा जाता है उस आदि गदाधर को हम नमस्कार करते हैं। ॥४३–५०॥

सनत्कुमार बोले:—नारद जी! महेश्वर द्वारा इस प्रकार स्तुति किये जाने के उपरान्त भगवान् आदि गदाधर ब्रह्मा प्रभृति देवगणों के साथ उस शिला के ऊपर स्थित हुए। मुण्डपृष्ठ गिरि पर अवस्थित आदि गदाधर देव की जो लोग स्तुति एवं पूजा करते हैं, वे ब्रह्मलोक को प्राप्त करते हैं। धर्म का अभिलाषी धर्म प्राप्त करता है। अर्थ का अभिलाषी अर्थ प्राप्त करता है, काम का अभिलाषी काम प्राप्त करता है, मोक्ष का अभिलाषी मोक्ष की प्राप्ति करता है, बन्ध्या वेद वेदाङ्गपारगामी पुत्र प्राप्त करती है, राजा विजय की प्राप्त करता है, शूद्र सुख की प्राप्त करता है। आदि गदाधर की विधिवत् पूजा कर पुत्र को चाहने वाला अनेक पुत्र प्राप्त करता है। भगवान् विष्णु की पूजा आदि से मनुष्य अपने सभी मानसिक अभिलाषाओं को प्राप्त करता है। ॥५१–५५॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

Funding by IKS-MoE

एक सौ दसवाँ अध्याय

गया माहात्म्य,

सनत्कुमार बोले :—नारद जी ! गया यात्रा की विधि बतला रहा हूँ, जो मुक्ति की देनेवाली है, सुनिये । प्राचीनकाल में ब्रह्मा जी ने यह बतलाया था कि गया में श्राद्ध करनेवालों का इस भवबन्धन से निस्तार हो जाता है । विधिपूर्वक श्राद्धकर्म सम्पन्नकर जो व्यक्ति गया यात्रा के लिए उद्यत हो, उसे चाहिये कि सर्वप्रथम श्राद्धकर कौपीन धारण कर अपने ग्राम की प्रदक्षिणा करे, फिर दूसरे ग्राम में जाकर श्राद्ध से शेष अन्न का भक्षण करे, फिर दानादि न लेते हुए प्रतिदिन यात्रा करे । प्रतिग्रह से बचते हुए, सन्तुष्ट चित्त, इन्द्रियों को वश में कर पवित्र मन एवं शरीर से अहंकारादि को छोड़कर जो गया की यात्रा करता है वह तीर्थ का वास्तविक फल प्राप्त करता है । जिसके हाथ, पैर, एवं मन संयत रहते हैं, विद्या, तप एवं कीर्ति की बहुलता रहती है, वह वास्तविक तीर्थ फल का उपभोग करता है । गया क्षेत्र में प्रविष्ट होने पर पूर्व दिशा से महानदी पड़ती है, उसमें जल हिलोर कर निर्मल जल में स्नान करना चाहिये । फिर विधिपूर्वक देवादिकों का तर्पण एवं श्राद्ध कर अपनी कुल परम्परा में प्रचलित वेदशाखा का उच्चारण करना चाहिये । इस श्राद्धकर्म को अर्घ्य एवं आवाहन के बिना ही सम्पन्न करना चाहिये । फिर दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेतपर्वत की यात्रा करनी चाहिये, फिर ब्रह्मकुण्ड में स्नानकर बुद्धिमान् पुरुष को देवादिकों का तर्पण करना चाहिये । प्रेतपर्वत पर संयत मन हो सपिंडों का श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिये । इस कर्म में बुद्धिमान् पुरुष को प्राचीना[1] वीती और दक्षिणाभिमुख होना चाहिये । 'कव्यवाह अग्नि, चन्द्रमा, यम, अर्यमा, अग्निष्वात्त, बर्हिषद और सोमपान करनेवाले पितृदेवगण ! महाभागयशालियो ! आप लोग यहाँ पधारें । इस तीर्थ में आप लोगों की कृपा से सुरक्षित जो हमारे पितरगण तथा हमारे कुल में उत्पन्न होनेवाले अन्यान्य पितरगण हैं, उन्हीं को पिंडदान करने के लिए मैं गयापुरी में आया हूँ । हमारे इस श्राद्धकर्म से वे चिरन्तन तृप्ति लाभ करें ।' ऐसी प्रार्थना करने के उपरान्त आचमन करके प्रयत्नपूर्वक पाँचों अङ्गों समेत प्राणायाम करके, पुनरागमन से विरहित ब्रह्मलोक की प्राप्ति के लिए विधिपूर्वक क्रमानुसार श्राद्धकर्म सम्पन्न करना चाहिये । उस समय पितरों का आवाहनकर उनकी विधिपूर्वक पूजा और मन्त्रों का उच्चारण कर पिंडदान करना चाहिये । प्रेत शिला आदि तीर्थ स्थानों में घृत समेत चरु से पिंडदान करना चाहिये । पञ्चगव्यों द्वारा उनके मंत्रों से भली प्रकार उस स्थान को पवित्रकर मन्त्रों द्वारा देवताओं का पूजन करना चाहिये । पितृ कर्मों में मनुष्य जितने तिलों को ग्रहण करते हैं, उतने असुरगण सिंह से भयभीत मृगों की भाँति वहाँ से दूर चले जाते हैं । सभी अष्टकाओं में, वृद्धि-श्राद्ध में, गया तीर्थ में तथा मृत्यु के दिन माता का

---

[1] यज्ञोपवीत को दाहिने कंधे पर रखकर बाएँ हाथ को बाहर निकालने की विधि । पितृकर्मों में इसका प्रायः प्रयोग होता है ।

श्राद्ध अलग से करना चाहिए, अन्यत्र पति (पिता) के साथ ही करना चाहिए । वृद्धि श्राद्ध में सर्व प्रथम माता का श्राद्ध करके गया में पिता के श्राद्ध को पहले करना चाहिये । दक्षिणाभिमुख होकर क्रमशः कुशों को बिछाकर पिता आदि के लिए पाद्यादि निवेदन करना चाहिये । शेष विधान अपने-अपने गृह्य सूक्तों के अनुसार करना चाहिये । विधिवत् कुशों को बिछाकर एक बार तिल समेत जल दान करने के उपरान्त दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर सपिण्डों को श्राद्ध प्रदान करना चाहिये । अंजलि में पितृतीर्थों का जल लेकर यत्न पूर्वक उन्हें जल दान करना चाहिये । एक मुट्ठी सत्तू लेकर अक्षय पिण्ड दान करना चाहिये । अन्य सम्बन्धियों को भी आवाहन करके तिल मिश्रित जल का दान कुशों पर करना चाहिये । ''ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब तक जो भी देव, ऋषि, पितर एवं मानव गण हैं, माता मातामह प्रभृति हमारे पितर गण हैं, वे इस जल दान से संतुष्ट हों । सातों द्वीपों में निवास करने वाले, करोड़ों से भी अधिक कुलों में उत्पन्न होने वाले ब्रह्म लोक से इस लोक तक सर्वत्र विद्यमान उन्हीं लोगों की तृप्ति के लिए यह तिल मिश्रित जलाञ्जलि है । पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, मतामही, तथा प्रपितामही, मातामह तथा उनके पिता, प्रमातामह प्रभृति—जो भी हमारे पूर्व पुरुष हैं, उन्हीं लोगों के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, यह अक्षय रूप में उन्हें सन्तुष्ट करे ।" अपनी मुट्ठी भर का अथवा हरे आँवले भर का अथवा शमी के पत्ते जितना बड़ा पिण्ड गयाशिर पर प्रदान करना चाहिये । ऐसे पिण्डों को जो व्यक्ति प्रदान करता है वह अपने सात गोत्रों एवं सौ कुल पुरुषों का उद्धार करता है । पिता, माता, अपनी स्त्री, बहिन, पुत्री, फूआ, और मौसी—ये सात गोत्र कहे जाते हैं । चौबीस, बीस, सोलह, बारह, ग्यारह, सात और आठ—इतने पिण्ड दान क्रमशः करने चाहिये । इनके करने से एक सौ एक कुलों का उद्धार होता है । बुद्धिमान् पुरुषों को तीर्थ श्राद्ध में आवाहन, परदा, तथा शूद्रादिकों के देखने से उत्पन्न होने वाले दोष को न मानना चाहिये, इसी प्रकार किसी प्रकार की कातरता अथवा करुणा भी न करनी चाहिये । तीर्थ श्राद्धों में मुख्यतया इन्हीं विधियों का पालन होना चाहिये, पिण्ड का आसन, पिण्ड दान, प्रत्यवनेजन दक्षिणा तथा अन्न सङ्कल्प । पिण्डदान के पूर्व ऐसा सङ्कल्प करना चाहिए कि अपने कुल में उन सभी मृतकों को, जिनकी कहीं भी गति नहीं हुई, इस कुशासन पर तिलमिश्रित जलदान के द्वारा मैं आवाहित कर रहा हूँ, अपने नाना के कुल में मरे हुए उन सभी लोगों को भी मैं इसी कुशासन पर तिलमिश्रित जल द्वारा आवाहित कर रहा हूँ, जिनकी कहीं भी गति नहीं हुई । इसी प्रकार बन्धुवर्गों के कुलों में भी उन मरे हुए लोगों को इस कुशासन पर तिलमिश्रित जलदान के द्वारा आवाहित कर रहा हूँ, जिनकी कहीं गति नहीं है ।' इन उपर्युक्त मन्त्रों द्वारा तिलमिश्रित जल से कुशों पर उन सभी मृतकों का ध्यान करना चाहिये । आवाहन के उपरान्त भली भाँति पूजन कर उन्हें क्रमानुसार पिण्डदान करना चाहिये । अपने कुल में उन मरे हुए लोगों को, जिनकी कहीं भी गति नहीं है, उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, मातामह के कुल में मरे हुए ऐसे लोगों को उबारने के लिए, जिनकी कहीं भी गति नहीं है, मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । बन्धुवर्गों के कुल में मरे हुए उन लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ, जिनको कहीं भी गति नहीं मिली । अग्नि में जल कर मरे हुए जो कोई

हों, अग्नि में बिना जलाये गये, जो कोई हों, बिजली तथा डाकुओं के मारे जो कोई हों, ऐसे लोगों के लिये मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । जो बिना दाँत जमे ही मर गये थे, गर्भ में ही जिनकी मृत्यु हो गई थी, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । वनाग्नि में जो मर गये थे, सिंहों एवं व्याघ्रों से जिनकी मृत्यु हुई, अथवा अन्यान्य दाढ़ों वाले, सींगों वाले, हिंस्र जानवरों से जिनकी मृत्यु हुई, उनके उद्धार के लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ । स्वयं फाँसी के लगाने से जिनकी मृत्यु हुई, विषों एवं शस्त्रों से जिन्हों ने आत्महत्या करके अपने प्राण गँवा दिये, ऐसे आत्महत्यारों के उद्धार के लिये मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । घोर जंगली मार्गों में जो विवश होकर क्षुधा एवं प्यास से मर गये थे, भूतों प्रेतों एवं पिशाचों से ग्रस्त होने के कारण जिनकी मृत्यु हुई थी, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिण्डप्रदान कर रहा हूँ । अपने घोर पाप कर्मों के कारण जो रौरव, अन्धतामिस्र, एवं कालसूत्र जैसे नरकों में घोर यातनाएँ झेल रहे हैं, उनको उबारने के लिए मैं यह पिंड प्रदान कर रहा हूँ । घोर असिपत्र वन तथा कुम्भीपाक जैसे नरकों में जो अपने पाप कर्मों के फल भोग रहे हैं, उनके उद्धार के लिए मैं यह पिण्डदान कर रहा हूँ । प्रेतलोक में जाकर अन्यान्य यातनाओं से सताये जाने वालों को उबारने लिए मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ । यम दूतों द्वारा अनेक यातनाओं में जो पीसे जा रहे हैं, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिंड प्रदान कर रहा हूँ । समस्त नरकों एवं सभी प्रकार की यातनाओं में अपने पाप कर्मों के कारण दुःख भोगने वालों को उबारने के लिए मैं यह पिंड प्रदान कर रहा हूँ । पशु की योनि में उत्पन्न हो चुके हैं, नीच पक्षी, कीट एवं सरकने वाले सर्प आदि योनियों में जिनका जन्म हो चुका है, अथवा वृक्षों की योनि में जो उत्पन्न हो चुके हैं— उन सब को उबारने के लिए मैं यह पिंड दान कर रहा हूँ । अपने कर्मों के अनुसार अनेक सहस्र जातियों में उत्पन्न हो होकर जो दुःख भोग रहे हैं, जिन्हें मानवयोनि अब दुर्लभ हो चुकी है, ऐसे लोगों को उबारने के लिए मैं यह पिंड प्रदान कर रहा हूँ । दिव्य लोक, अन्तरिक्ष लोक, एवं भूमिलोक, में उपस्थित अपने बन्धुवर्गों एवं अपने पितरों को उबारने के लिए, जो कभी मृत्यु को प्राप्त हुए परन्तु संस्कार नहीं हुए, मैं यह पिंड दान कर रहा हूँ ! जो हमारे पितरगण इस समय प्रेत रूप में वर्तमान हैं, वे हमारे इस पिंडदान से सर्वदा के लिए तृप्ति लाभ करें । जो हमारे इस जन्म के बान्धव अथवा अबान्धव हैं, जो हमारे अन्य जन्मों के बान्धव हैं, उन सबको हमारा दिया हुआ यह पिंड अक्षय तृप्ति करने वाला हो । पिता के वंश में जो मर चुके हैं, माता के वंश में जो मर चुके हैं, हमारे गुरु, श्वसुर एवं बन्धुवर्गों के वंश में जिनकी मृत्यु हो चुकी हैं, जो कोई अन्य बन्धु बान्धव मृत्यु को प्राप्त हुए हों, हमारे कुल में उत्पन्न होने वाले ऐसे लोग, जिनको पिंड दान करने वाला कोई नहीं है, पुत्र स्त्री आदि से जो रहित रहे, जिनकी क्रिया लुप्त हो गई, जन्म से ही जो अन्धे थे, पंगु थे, कुरूप थे, गर्भावस्था में ही जिनकी मृत्यु हो गई जिन्हें कोई जानता है कोई नहीं जानता, उन सबको हमारा दिया हुआ यह पिंड अक्षय तृप्ति प्रदान करने वाला हो । ब्रह्मा से लेकर हमारे पिता के वंश में जो कोई उत्पन्न हुए हों, तथा मेरी माता के वंश में जो उत्पन्न हुए हों, इन दोनों कुलों को जो दासता एवं भृत्यता के बन्धन में बँधे हुये थे, आश्रित एवं सेवकों में जिनकी गणना की जाती थी, मित्र

थे, शिष्य थे, पशु, वृक्ष दृष्ट एवं अदृष्ट रूप से उपकारक थे, अन्य जन्म में जिनके साथ हमारी सङ्गति थी, उन सबको उबारने के लिये मैं यह पिण्ड प्रदान कर रहा हूँ।" इन उपर्युक्त सभी मंत्रों का उच्चारण कर माताओं के लिये क्रमानुसार स्त्रीलिंग विशेषण लगाकर पिण्डप्रदान करना चाहिये। अपने गोत्र के हों अथवा अन्य गोत्र के हों, स्त्री पुरुष के लिये पिण्डदान की विधि पृथक् पृथक् विहित है, जो पृथक रूप में नहीं करता उसका श्राद्ध पिण्डदान एवं तर्पण सभी निरर्थक है। पिण्ड रखने के पात्र में तिल छोड़कर फिर उस को पवित्र जल से पूर्णकर इन मन्त्रों का उच्चारण करते हुए क्रमानुसार प्रदक्षिणा पूर्वक पिण्डदान करना चाहिये। तीन बार सिंचन करने के उपरान्त सब को प्रणाम करके पिण्डदान की विधि को समाप्त करना चाहिये। पितरों को विसर्जित कर आचमन करके साक्षी रूप में उपस्थित देवताओं को यह सुनाना चाहिये। ब्रह्मा, शिव प्रभृति देवगण! आप लोग हमारे इस कार्य के साक्षी रहें कि मैं गया में आकर अपने पितरों के उद्धार का कार्य सम्पन्न कर चुका। देव! गदाधर! केवल पितृकार्य के लिये मैं गया आया हुआ था, भगवान्! आप ही इसके साक्षी हैं, मैं अब अपने तीनों ऋणों से मुक्त हूँ। देवर्षि नारद जी! प्रायः सभी तीर्थ स्थानों में पिण्डदान की यही विधि है, सर्व प्रथम प्रेत पर्वत पर आरम्भ कर क्रमानुसार सभी स्थानों में उक्त क्रम से श्राद्ध करना चाहिये। प्रेत पर्वत पर तिलमिश्रित सत्तू दक्षिणाभि मुख एवं अपसव्य होकर छोड़ना चाहिये। जो कोई हमारे पितरगण प्रेत रूप में कहीं विद्यमान हों, वे इस तिलमिश्रित सत्तू के दान से तृप्ति लाभ करें। ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब पर्यन्त इन चराचर जीव-योनियों में जो भी हमारे पितरगण हों, वे मेरे दिये इस जलदान से सर्वांशतः तृप्ति लाभ करें। नारद जी! इस विधि से श्राद्ध करनेवाले प्राणियों के पितरगण निश्चय ही प्रेत योनि से छुटकारा पा जाते हैं। यही नहीं प्रत्युत उसके इस शुभ कर्म के माहात्म्य से उसके कुल में कोई प्रेतयोनि में नहीं जाता। गया शिर में वह प्रेत-शिला केवल प्रेतों की विमुक्ति के लिये है, तीर्थ मंत्रादि के रूप में आदि गदाधर देव भी वहाँ इसी सदाशय से विराजमान हैं। ॥१—६६

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय;

गया माहात्म्य

सनत्कुमार बोले:—नारद जी! सर्व प्रथम उत्तर मानस में स्थित पाँचों तीर्थों में किस प्रकार श्राद्धादिकर्म सम्पन्न करने चाहिए, इसकी विधि बतला रहा हूँ। आचमन कर हाथ में कुशा लेकर शिर पर जल द्वारा सिंचन करे। फिर उतर मानस की यात्रा करे और वहाँ जाकर इस मंत्र का उच्चारण करते हुए स्नान करे कि आत्मविशुद्धि के लिये मैं उत्तर मानस में स्नान कर रहा हूँ। सूर्य लोक प्रभृति लोकों में प्राप्त होने वाली सिद्धियों को प्राप्त करने के लिए तथा अपने पितरों की मुक्ति के लिए यह स्नान

Funding by IKS-MoE

कर रहा हूँ। स्नान के लिए तर्पण करने के उपरान्त पिण्ड श्राद्ध करे। मानस नामक सरोवर यहाँ वर्तमान है अतः उसका उत्तर मानस नाम पड़ा है। वहाँ सूर्य को नमस्कार एवं पूजन करने वाला अपने पितरों को सूर्य लोक पहुँचाता है। 'परम ऐश्वर्यशाली, पालक, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति शुक्र, शनि, राहु एवं केतु स्वरूप सूर्य देव को हमारा नमस्कार है।' इस प्रकार सूर्य को नमस्कार करने के उपरान्त मौन धारण कर उत्तर मानस से दक्षिण मानस की यात्रा करनी चाहिए। वह उदीची का तीर्थ कहा जाता है, वह औदीच्य तीर्थ विमुक्ति देनेवाला है, इस तीर्थ में स्नान करनेवाला मनुष्य अपने शरीर से स्वर्ग लोक को प्राप्त करता है। तीनों लोकों में विख्यात कनखल नामक तीर्थ मध्यभाग में अवस्थित है, वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य सुवर्ण की तरह कान्तिशाली एवं परम पुनीत होता है। उसके दक्षिण भाग में दक्षिण मानस नामक तीर्थ है, दक्षिण मानस में तीन तीर्थ कहे जाते हैं। इन तीनों तीर्थों में विधिपूर्वक स्नान पृथक् पृथक् श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिये। 'आत्म विशुद्धि के लिए दक्षिण मानस में स्नान कर रहा हूँ। सूर्य लोक प्रभृति लोकों में प्राप्त होने वाली सिद्धियों की प्राप्ति के लिए पितरों की मुक्ति के लिए, ब्रह्म हत्या, घोर पाप कर्मों एवं यातनाओं से छुटकारा प्राप्त करने के लिए, हे दिवाकर देव! मैं इस दक्षिण मानस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ, इस प्रकार सूर्य को नमस्कार एवं पूजित कर मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग लोक पहुँचाता है। 'हे सूर्य देव! मैं आप को तृप्ति एवं पितरों को तारने के लिए नमस्कार कर रहा हूँ, पुत्र, पौत्र, धन, ऐश्वय, आयु एवं आरोग्य की वृद्धि के लिए नमस्कार कर रहा हूँ। तदनन्तर सभी तीर्थों में श्रेष्ठ फल्गुतीर्थ की यात्रा करनी चाहिए, वहाँ पर श्राद्ध करने से करने वालों की एवं उनके पितरों की सर्वदा मुक्ति होती है। ब्रह्मा की प्रार्थना पर प्राचीन काल में भगवान् विष्णु स्वयं फल्गु रूप में प्रतिष्ठित हुए। यज्ञ की दक्षिणाग्नि में आहुति रूप में पड़ा हुआ रज फल्गु तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। निखिल भुवन मण्डल में जितने भी तीर्थ समूह हैं वे देवताओं के साथ इस फल्गुतीर्थ में स्नान करने के लिये आते हैं गङ्गा भगवान् विष्णु की पादोदक स्वरूप हैं, किन्तु फल्गु तो स्वयं आदि गदाधर स्वरूप हैं स्वयं द्रव रूप में वे आदि गदाधर की मूर्ति हैं, यही कारण है कि गङ्गा से अधिक उनका माहात्म्य लोग बतलाते हैं। जो व्यक्ति एक लाख अश्वमेध यज्ञ करता है, वह भी इतना फल नहीं प्राप्त करता, जितना फल्गु में स्नान करनेवाला पाता है फल्गु तीर्थ में स्नान कर मनुष्य को तर्पण एवं सपिण्ड श्राद्ध कर्म अपने गृह्यसूक्त के अनुसार करना चाहिए, पितामह को नमस्कार करना चाहिए। शिव, ईश, पुरुष स्वरूप देव को हमारा नमस्कार है, अघोर वामदेव सद्योजात एवं शम्भु उपाधि धारण करने वाले देव देव को हम नमस्कार करते हैं। फल्गुतीर्थ में स्नान कर आदि गदाधर देव का दर्शन करने वाला मनुष्य अपने को तो तारता ही है, अपने से दस पीढ़ी पूर्व एवं दस पीढ़ी बाद में होनेवालों को भी तुरन्त तारता है। आदि गदाधर देव का इस मंत्र से नमस्कार पूजन करना चाहिये। तदनन्तर प्रणव ॐकार का उच्चारण करके यह कहे कि श्री भगवान् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, श्रीधर विष्णु प्रभृति नामों वाले को हमारा बारम्बार नमस्कार है।' पाँचों तीर्थों में स्नान करनेवाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। जो व्यक्ति पञ्चामृत द्वारा स्नान करा कर

सुन्दर पुष्प वस्त्रादि से अलंकृत करके भगवान् गदाधर की पूजा नहीं करता उसकी सारी श्राद्ध क्रिया निरर्थक है । नागकूट से गृध्रकूट, गृध्रकूट से यूप एवं यूप से उत्तरमानस-येही गयासुर के शिरो भाग कहे जाते हैं, इन्हीं को फल्गुतीर्थ कहते हैं । प्रथम दिन में किये जाने वाले विधानों को बतला चुका । तदनन्तर दूसरे धर्मारण्य की यात्रा करनी चाहिये । इसी धर्मारण्य में भगवान् ब्रह्मा ने उक्त यज्ञ का अनुष्ठान किया था । नारद जी ! इस पुनीत धर्मारण्य में गमन मात्र से मुक्ति की प्राप्ति होती है । ॥१—२३॥

फिर मतङ्ग वापी में स्नान कर तर्पण एवं श्राद्ध करना चाहिये, वहाँ जाकर मतङ्गेश को नमस्कार कर इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये । हे लोकपाल देवगण ! आप हमारे इस कार्य में साक्षी रहें कि मैं इस मतङ्ग तीर्थ में आकर अपने पितरों का निस्तार कर चुका ।' प्रथमतः ब्रह्मतीर्थ में जाकर कूप पर श्राद्धादि करना चाहिये । उस कूप एवं यूप के मध्यभाग में श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाला मनुष्य अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है । वहाँ पर धर्म धर्मेश्वर को नमस्कार कर महाबोधि वृक्ष को नमस्कार करना चाहिये । ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवस्वरूप ! अश्वत्थ राज ! बोधि वृक्ष ! आपको हमारा नमस्कार है । यहाँ पर श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाले एवं उसके पितरों के तारने के लिये मैं यह क्रिया कर रहा हूँ । हमारे पिता के तथा माता के वंश में उत्पन्न होकर जो बान्धवगण दुर्गति भोग रहे हैं, वे तुम्हारे दर्शन एवं स्पर्श के करने से सर्वदा के लिये स्वर्गलोक की प्राप्ति करें । वृक्षराज ! इस गयापुरी में आकर मैं अपने तीनों ऋणों से मुक्त हो गया हूँ, तुम्हारी कृपा से मैं महान् पापों से विमुक्त हो गया हूँ । तीसरे दिन ब्रह्मा सरोवर में स्नान कर सभी प्रकार की विधियों से संयुक्त, मन्त्रोच्चारण करके सपिण्ड श्राद्ध करे । 'तीनों ऋणों की मुक्ति प्राप्त करने की कामना से मैं इस तीर्थ में स्नान कर रहा हूँ, इस प्रकार उस कूप और यूप के मध्य में श्राद्ध सम्पन्न करने वाला व्यक्ति अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है । ब्रह्मा ने यज्ञ समाप्ति के बाद उक्त यूप (यज्ञ समस्त) की प्रतिष्ठा की थी, तभी से उसकी प्रसिद्धि है, ब्रह्मसरोवर में श्राद्ध करके मनुष्य अपने सभी पितरों को तारता है । उक्त यूप की प्रदक्षिणा करके वाजपेय यज्ञ की फल प्राप्ति होती है । ब्रह्मा को नमस्कार करने वाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है । 'अजन्मा, निखिल चराचर जगत् के आदि कर्त्ता भगवान् ब्रह्मा को हमारा नमस्कार है, अपने भक्तों एवं पितरों के उद्धारक ब्रह्माजी को बारम्बार हमारा नमस्कार है । गोत्रचार के समीप में ब्रह्मा द्वारा लगाये गये आम्र के वृक्ष हैं, उनके सींचने मात्र से पितरगण मोक्ष के अधिकारी हो जाते हैं । ब्रह्मसरोवर में उत्पन्न होनेवाले आम्र के वृक्ष ब्रह्मदेव मय हैं, स्वयं विष्णु के स्वरूप हैं, पितरों की मुक्ति की कामना से मैं इनका सिञ्चन कर रहा हूँ । अपने हाथों में घड़ा और कुश लेकर एक मुनि आम्र के मूल में जल देते हुये आम्र को सींचते हैं, और अपने पितरगणों की भी तृप्ति करते हैं, उनकी एक ही क्रिया दो प्रयोजनों की सिद्धि करने में प्रसिद्ध हुई । तदनन्तर इस मन्त्र से स्वस्थ चित्त होकर यमराज को बलि प्रदान करना चाहिये । यमराज और धर्मराज—ये दोनों गयासुर को निश्चल करने के लिये यहाँ विशेष रूप से स्थित हैं, अपने पितरों की मुक्ति की कामना से मैं उन दोनों को बलि प्रदान कर रहा हूँ । नारदजी ! तदनन्तर श्वानों के लिये बलि प्रदान करना चाहिये, वैवस्वत के कुल

में उत्पन्न होनेवाले जो दोनों श्यामल और चितकबरे श्वान हैं, उन्हें मैं बलि दे रहा हूँ, वे मार्ग में सर्वदा हमारी रक्षा करें। नारद जी! तदनन्तर कामों के लिये बलि प्रदान करना चाहिए। पूर्व, पश्चिम, वायव्य, दक्षिण, नैऋर्त कोण एवं दिशाओं में रहनेवाले वायस गण! मैंने आप लोगों के लिये पृथ्वी पर इस पिण्ड को समर्पित किया है, इसे ग्रहण कीजिये। तदनन्तर चौथे दिन फल्गुतीर्थ में स्नानादि करना चाहिये। फिर गया शिर पर स्थित विष्णु पद पर सपिण्ड श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिये। वहीं पर गयासुर का साक्षात् शिरोभाग है, यह फल्गुतीर्थ उसी के शिरोभाग पर अवस्थित है। नाग, जनार्दन ब्रह्मयूप और उत्तर मानस तक यह गया शिर कहा जाता है, उसी को फल्गुतीर्थ भी कहते हैं। ब्रह्मा के स्थान से लेकर उत्तर मानस तक विस्तृत फल्गुतीर्थ को देवताओं के लिये भी दुर्लभ समझना चाहिये। क्रौञ्चपाद से लेकर गयाशिर तक जो फल्गुतीर्थ है, वह गयासुर का मुख भाग है, इसी कारण से वहाँ पर किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायी है। मुण्ड पृष्ठ गिरि का निम्न प्रदेश भी फल्गुतीर्थ है, वहाँ पर आद्य गदाधर भगवान् अपने व्यक्ताव्यक्त स्वरूप में अवस्थित हैं। पितरों को मुक्ति प्रदान करने के लिये वहाँ भगवान् विष्णु आदि देवताओं के चरण चिह्न विद्यमान हैं। वह दिव्य विष्णुपद केवल दर्शन करने से घोर पापों को नाश करने वाला है, स्पर्श एवं पूजन करने से भी पापों का नाश होता है, वहाँ पर पितरों को दिया गया दान अक्षय फल कारक होता है। सपिण्ड श्राद्ध कर्म करनेवाला मनुष्य अपने साथ अपने सहस्र कुल वालों को भी दिव्य, अव्यय, कल्याणप्रद, अनन्त विष्णु पद को पहुँचाता है। रुद्र के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला मनुष्य अपने सौ कुलों का उद्धार करके उन्हें शिवपुर पहुँचाता है। इसी प्रकार ब्रह्मा के चरण प्रदेश में श्राद्ध कर्म सम्पन्न करनेवाला अपने सौ कुल के पितरगणों का उद्धार कर उन्हें ब्रह्मलोक को पहुँचाता है। कश्यप के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है, दक्षिणाग्नि पद प्रदेश में श्राद्ध कर्म करनेवाला मनुष्य पितरों को ब्रह्मपुर पहुँचाता है। गार्हपत्य के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला बाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त करता है। आहवनीय अग्नि प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है। इसी प्रकार सभ्याग्नि चरण प्रदेश में श्राद्ध सम्पन्न करनेवाला व्यक्ति ज्योतिष्टोम नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है, आवसथ्य के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। शुक्र के चरण प्रदेश में श्राद्ध करनेवाला पितरों को इन्द्रलोक पहुँचाता है। अगस्त्य के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक में पहुँचाता है। क्रौञ्च मातङ्ग के चरणों में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। सूर्य के चरण प्रान्त में श्राद्ध करनेवाला अपने पाँच पापों के करनेवाले पितरों को सूर्यपुर को पहुँचाता है, कार्तिकेय के चरणों में श्राद्ध सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों को शिवलोक पहुँचाता है। गणेश के चरणों में श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को शिवलोक पहुँचाता है। गजकर्ण नामक तीर्थ में तर्पण करनेवाला मनुष्य अपने पितरों को स्वर्गलोक पहुँचाता है। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओं के चरणों में श्राद्धकर्म सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। किन्तु सभी चरण प्रान्तों में भगवान् विष्णु, रुद्र, ब्रह्मा एवं कश्यप के चरण प्रान्त श्रेष्ठ कहे जाते हैं। नारद जी! गया यात्रा के प्रारम्भ एवं अवसान काल में

इन सबों में किसी एक में श्राद्ध करने का विधान कहा जाता है, वहाँ पर श्राद्ध करनेवाले को विशेषतया कल्याण-प्राप्ति होती है। प्राचीनकाल में कश्यप जी के दिव्य चरण प्रान्त में भारद्वाज मुनि पितरों के लिये श्राद्धकर्म कर रहे थे, उसी समय जब कि वे पिण्डदान करने को उद्यत हुए थे, चरणों को फोड़कर श्यामल और गौर शुक्ल वर्ण के दो हाथ बाहर निकल पड़े। दोनों हाथों को इस प्रकार एकाएक बाहर निकला देख कर भारद्वाज मुनि बड़े सन्देह में पड़ गये। और अपनी माता शान्ता से उन्होंने पूछा, जननि! कश्यप के दिव्य चरणों में ये शुक्ल एवं कृष्ण वर्ण के जो दो हाथ निकले हुये हैं, उनमें से मुझे किस हाथ में पिण्डदान करना चाहिये। तू पितरों के कार्यों को भलीभाँतिजानती हो, अतः मेरा संशय दूर करो ।॥२४ — ६०॥

शान्ता बोलीं:—भारद्वाज! तुम परम बुद्धिमान् हो, श्यामल हाथ में पिण्डदान करो। माता के आदेशानुसार भारद्वाज श्यामल हाथ में जब पिण्डदान करने को उद्यत हुए तो श्वेत हाथ अदृश्य हो गया, और बोला कि तू तो मेरा औरस पुत्र है। अतः मुझे पिण्डप्रदान करो। कृष्ण हाथ ने कहा, मेरा क्षेत्र है, इस लिए मुझे पिण्ड प्रदान करो। तब स्वैरिणी माता ने कहा पुत्र! क्षेत्राधिकारी एवं बीजाधिकारी दोनों को पिण्ड प्रदान करो। तब भारद्वाज ने कश्यप के चरणों में पिण्ड प्रदान किया। जिसके माहात्म्य से वे दोनों ब्रह्मलोक को प्राप्त हुए। इसी प्रकार रुद्र के चरणों में रामचन्द्र जी पिण्ड दान के लिए जब समुद्यत हुये तो उनके पिता दशरथ स्वर्ग लोक से हाथ फैलाये हुये आ गये। किन्तु राम ने हाथ में पिण्डदान न करके रुद्रपद में ही पिण्डदान किया। शास्त्रीय मर्यादा के भङ्ग होनें के भय से भीत राम से दशरथ ने कहा, पुत्र! मैं तार दिया गया, अब शङ्कर के लोक को जा रहा हूँ। सचमुच हाथ में पिण्डदान करने से हमें स्वर्ग-प्राप्ति न होती। तुम भी चिरकाल तक राज्य करके, समस्त प्रजावर्ग एवं ब्राह्मणों का विधिवत् पालन करके प्रचुर दक्षिणा युक्त अनेक यज्ञों का अनुष्ठान करके विष्णु लोक को प्राप्त करोगे। अयोध्या पुरी में निवास करने वाले लोगों के तथा कृमिकीटादिकों के साथ तुम्हें विष्णुलोक की प्राप्ति होगी। ऐसा कहकर राजा दशरथ परमश्रेष्ठ रुद्रलोक को चले गये। इसी प्रकार भीष्म ने परमश्रेष्ठ विष्णुपद पर अपने पितरों का आवाहन कर श्राद्ध करते समय पिण्डदान के लिए उद्यत हुए तो गया शिर पर उनके पिता राजा शान्तनु के दोनों हाथ बाहर निकल आये। किन्तु उन्होंने हाथों में पिण्डदान न देकर विष्णुपद पर ही पिण्डदान किया। उनके इस निश्चय से शन्तनु को बड़ा सन्तोष हुआ, वे बोले कि आप शास्त्रीय मर्यादा के पालन में निश्चल विचार रखते हैं, आपकी दृष्टि त्रिकाल-दर्शनी हो, अन्त काल में भगवान् विष्णु की गति प्राप्त हो। इच्छा करने पर मृत्यु की प्राप्ति हो, ऐसा कहकर शान्तनु मुक्ति को प्राप्त हुए। उत्तर मार्ग में कनकेश, केदार, नारसिंह और वामन की भली-भाँति पूजा करके मनुष्य अपने समस्त पितरों का उद्धार करता है। गयाशिर में जाकर जिन जिनके नाम से मनुष्य पिण्डदान करता है, यदि वे नरक में हैं तो स्वर्ग पहुँच जाते हैं, स्वर्ग में हैं तो मुक्ति प्राप्त करते हैं। देवताओं के चरणों से मुण्डपृष्ठाद्रि सर्वत्र चिह्नित है, वहाँ पर श्राद्धादि करने से पितरगण विविध ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं। असुर राज हेति का जो शिर था, वह उक्त गदा से दो भागों में विभक्त हो गया था, वहीं पर विष्णु ने गदा को धोया था, यही कारण है कि वह तीर्थ पितरों

की मुक्ति के लिए विशेष ख्यात है। सभी उत्तम तीर्थों में भी वह उत्तम है, उसका नाम गदा लोल कहा जाता है। उस गदालोल नामक महातीर्थ में भगवान् विष्णु की गदा धोने से ही यह माहात्म्य है। वहाँ पर स्नान करते समय यह संकल्प करे—इस परम पुनीत गदालोल तीर्थ में मैं सिद्धि प्राप्ति की कामना से स्नान कर रहा हूँ, मुझे अक्षय पद की प्राप्ति हो। इस प्रकार पाँचवे दिन गदालोल नामक तीर्थ में स्नान कर सपिण्ड श्राद्ध करने वाला अपने साथ अपने समस्त पितरों को भी ब्रह्मलोक पहुँचाता है। श्राद्ध के उपरान्त ब्रह्मकल्पित ब्राह्मणों को हव्य कव्यादि सामग्रियों से सन्तुष्ट करे। क्योंकि उनके सन्तुष्ट होने से ही सब पितर एवं देवगण सन्तुष्ट होते हैं। अक्षयवट तीर्थ में अन्न द्वारा विधिपूर्वक श्राद्ध करने वाला अपने पितर गणों को अक्षय एवं सनातन ब्रह्मलोक को पहुँचाता है। वटवृक्ष के समीप शाक, अथवा जल द्वारा भी यदि एक विप्र को भोजन करा दिया जाय तो उससे कोटि ब्राह्मणों को भोजन किया हुआ समझना चाहिये। गयातीर्थ के पुरोहितों को सोलह प्रकार का दान देना चाहिये, वस्त्र एवं सुगन्धि आदि सामग्रियों द्वारा पुत्रों समेत विधिपूर्वक उनकी पूजा करके दान देना चाहिये। इस चराचर जगत् के एक महा समुद्र के रूप में परिणत हो जाने पर जो बालरूप धारी भगवान् वटवृक्ष के पत्ते पर योग निद्रा धारण कर शयन करते हैं, उन योग शायी को हमारा नमस्कार है। संसार रूपी वृक्ष के लिए शस्त्र स्वरूप, निखिल पापों के हरने वाले, अक्षय ब्रह्म पद प्रदान करने वाले अक्षयवट को हमारा नमस्कार है। कलियुग में लोग शिव के भक्त हैं, उन्हीं के लिए गदाधर देव सर्वत्र लिङ्ग रूप धारण कर विराजमान हैं, उन परम पितामह को हमारा नमस्कार है। ॥६१—८४॥

इति श्री महापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नामैकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

गया माहात्म्य

सनत्कुमार बोले:—नारदजी ! राजा गय ने अपने राजत्व-काल में प्रचुर अन्नों एवं दक्षिणाओं वाले यज्ञों का अनुष्ठान किया था, उनमें व्यय किये गये द्रव्यों की संख्या बतलाना कठिन है। लोक में जितने ठीकरें हैं, अथवा आकाश में जितने तारे हैं, उतने रत्नों एवं सुवर्ण की मुद्राओं की उन यज्ञों में दक्षिणा दी गई थी तो भला उनकी संख्या कौन निश्चित कर सकता है। इस लोक में वैसे यज्ञ न तो हुए हैं और न भविष्य में कभी होंगे। सभी देशों के रहने वाले द्विजगण सन्तुष्ट होकर उसकी यशोगाथा का गान करते हैं। उसके इस महान कार्य से सन्तुष्ट होकर विष्णुप्रभृति देवताओं ने अनुरोध किया कि गय! तुम वरदान माँगो। गय ने उन देवताओं से कहा, सुरगण ! यदि आप लोग सचमुच प्रसन्न हैं

तो हमें यह वरदान दें कि प्राचीन काल में भगवान् ब्रह्मा ने जिन द्विजों को अभिशाप दे दिया था, वे आज से यज्ञों में पूजित होकर पवित्र हो जायँ। यह पुरी मेरे नाम पर ब्रह्म पुरी की तरह पवित्र एवं विख्यात हो जाय। देवगण ऐसा ही हो, कहकर उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर अन्तर्हित हो गये। गय विविध भोगों का उपभोग कर विष्णुलोक को प्राप्त हुआ। कालान्तर में विशाला नगरी में विशाल नाम से एक राजा हुआ। उसे कोई सन्तान नहीं थी। ब्राह्मणों से पूछा कि मुझे पुत्रादि की प्राप्ति किस प्रकार होगी? ब्राह्मणों ने कहाः—राजन्! गया में पिण्डदान करने से आपको सन्तति की प्राप्ति होगी। राजा विशाल भी गयाशिर में पिण्डदान करके पुत्रवान् हुआ। आकाश में उसने रक्तवर्ण, श्वेतवर्ण एवं कृष्णवर्ण के तीन पुरुषों को देखकर उनसे कहा, आपलोग कौन हैं! उनमें से सर्वप्रथम श्वेत पुरुष ने विशाल से कहा, मैं श्वेत पुरुष तुम्हारा पिता हूँ, इन्द्रलोक से यहाँ आया हुआ हूँ, पुत्र! यह रक्त वर्ण वाले हमारे पिता हैं, जो ब्रह्महत्या के कारण महान् पापी माने गये हैं। ये कृष्णवर्ण वाले हमारे पितामह हैं, जिन्होंने बहुतेरे ऋषियों का हनन किया है, ये दोनों अवीची नामक नरक में दुःख भोग रहे थे, किन्तु तुम्हारे पिण्डदान से ये दोनों मुक्त हो गये। शत्रुकुल नाशक! तुमने 'मैं अपने पिता, पितामह, एवं प्रपितामह लोगों को सन्तुष्ट कर रहा हूँ, ऐसा संकल्प कर जो जल दान किया था उसी के प्रभाव से हम तीनों एक साथ ही मुक्त हो गये। मेरे योग्य पुत्र! तुमने हम सबों को दुःख सागर से उबार लिया, अब हम लोग परम सन्तुष्ट होकर उत्तम स्वर्गलोक को जा रहे हैं। सभी पुत्रों को अपने पितरों की इसी प्रकार उत्तम मुक्ति के उपाय करने चाहिये। तुम भी चिरकाल तक राज्य सुख का अनुभव करके परम दुर्लभ भोगों का उपभोग कर, विपुल दक्षिणा वाले अनेक यज्ञों का सदनुष्ठान कर विष्णुपुर को प्राप्त होंगे। इस प्रकार अपने पितरों द्वारा वरदान प्राप्त कर राजा विशाल ने चिरकाल तक राज्य सुख का अनुभव करने के उपरान्त स्वर्ग-प्राप्ति की। प्रेतराज अन्यान्य प्रेतों के साथ गयाश्राद्ध के महात्म्य से स्वर्ग को प्राप्त हुए। किसी प्रेत ने अपनी मुक्ति के लिए एक बनिये से कहा था कि तुम मेरे नाम से गयाशिर पर पिण्डदान करो। इससे हमारी प्रेत योनि छूट जायगी, मेरे धन को तुम ले लो। मेरे सब धन को तुम लेकर गया श्राद्ध करने में व्यय करो। सारी संपत्ति का छठा अंश मैं तुम्हें पारिश्रमिक के रूप में दे रहा हूँ। अपने नाम गोत्रादि भी यथाक्रम तुम्हें बतला रहा हूँ। प्रेत के अनुरोध पर वणिक ने अपने बन्धुवर्गों के साथ गया की यात्रा की और गया शिर में जाकर प्रेतराज के लिए पिण्ड प्रदान किया, और उसके बाद अपने पितरों का भी पिण्दान किया। प्रेत प्रेत-योनि से मुक्त हो गया और पिण्डदान विधिवत सम्पन्न करके वणिक अपने घर आया। गय, शम्भु, विष्णु एवं रवि के क्षेत्रों का माहात्म्य इस प्रकार का है। महानदी के तट पर अवस्थित गायत्री तीर्थ में उपवास कर गायत्री के सामने स्नान कर प्रातः कालीन सन्ध्या का अनुष्ठान करना चाहिये। फिर सपिण्ड श्राद्ध कर्म सम्पन्न करना चाहिये। जो व्यक्ति ऐसा करता है वह अपने कुल को ब्रह्म पद की प्रासि कराता है। तदुपरान्त समुदित तीर्थ में गायत्री के सम्मुख स्नान करने वाला मनुष्य मध्याह्न की संध्या करके अपने सौ कुलों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। मध्याह्न सन्ध्या के बाद पितरों की

मुक्ति की कामना से वहाँ पर भी पितरों के लिए पिण्ड प्रदान करना चाहिये । फिर प्राचीसरस्वती नामक तीर्थ में विधि पूर्वक स्नान कर सायङ्कालीन सन्ध्या करने वाला अपने पितरों को विष्णु लोक प्राप्त कराता है । अनेक जन्म में सन्ध्या न करने के कारण संचित पापों से उक्त तीनों सन्ध्याओं का करने वाला मुक्त हो जाता है ।तदनन्तर मुण्ड पृष्ठ पर्वत पर गदाधर के समीप में उनके चरणों से चिह्नित विशालाक्षेत्र में स्थित लेलिहान नामक पवित्र तीर्थ हैं, जहाँ भरत का आश्रम था, यहीं पर आकाश गङ्गा का प्रवाह प्रवाहित होता है, गिरिकर्ण मुख नामक कई पवित्र तीर्थ भी वहीं पर हैं, वहाँ पर स्नान कर पिण्डदान करने वाला अपने सौ कुलों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है । देवनदी वैतरणी में स्नान करने वाला अपने पितरों को स्वर्गलोक प्राप्त कराता है एवं उसी वैतरणी में स्नान कर गौ दान करने वाला व्यक्ति अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है । नारदजी ! वैतरणी में स्नान करने वालों के लिए जो फल मैं बतला रहा हूँ, वह सत्य है, सत्य है और सत्य है । ऐसा कहा जाता है कि वैतरणी में स्नान करके गोदान करने वाला निस्सन्देह अपने इक्कीस कुलों का उद्धार करता है । तीनों लोकों में अपने अनुपम माहात्म्य के कारण जो परम विख्यात है वह वैतरणी नदी गयाक्षेत्र में पितरों को तारने के लिए अवतरित हुई है । इस पुनीत क्षेत्र की यात्रा करके तीन रात का उपवास करना चाहिये, किन्तु यहाँ आकर सुवर्ण और गौ का जो मनुष्य दान नहीं करता वह दरिद्र होता है । घृतकुल्या, मधुकुल्या, देविका, महानदी तथा शिला के संगम पर स्थित मधुश्रवा—इन सब में स्नान करने वाला दस सहस्र अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । सपिण्डक श्राद्ध एवं पिण्डदान करके मनुष्य अपने सौ कुलों को एवं समस्त पितरगणों को नरकयातना से उबार कर विष्णुलोक प्राप्त कराता है । दशाश्वमेध, हंसतीर्थ, अमरकण्टक, कोटितीर्थ तथा रुक्मकुण्ड में पिण्डदान करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है । वैतरणी, घृतकुल्या, मधुकुल्या, तथा कोटितीर्थ में स्नानकर जो मनुष्य कोटीश्वर का दर्शन करता है, वह एक कोटि जन्म तक वेदपारगामी धनयुक्त ब्राह्मण होता है । मार्कण्डेय एवं कोटीश्वर को नमस्कार करके लोग अपने पितरों के उद्धारक होते हैं । एक बार रुक्मपारिजात नामक वन में बहुत प्राचीनकाल में महादेव जी पार्वती के साथ दस सहस्र युगों तक रहस्यक्रीडा कर रहे थे । संयोगतः फलपुष्पादि चुनने के लिए मरीचि ऋषि उसी पारिजात वन में गये । अपने सुख में विघातक होने के कारण महेश ने मरीचि को शाप दे दिया कि तुम दुःख का अनुभव करो । शापभय से भीत होकर मरीचि ने शङ्कर की स्तुति की, स्तुति से सन्तुष्ट होकर शिवजी ने कहा कि कोई उत्तम वरदान माँगो । मरीचि ने शिव से निवेदन किया कि भगवन् । इस शाप से मेरी मुक्ति हो—यही प्रार्थना है । शिव ने कहा कि जाओ तुम्हारी मुक्ति गयातीर्थ में जाने से होगी । शिव के आदेशानुसार मरीचि गया को प्रस्थित हो गये । और वहाँ जाकर शिला पर स्थित होकर परम कठोर तपस्या करनी शुरू की । उसे सभी लोग कठिनता से कर सकते थे । महादेव के शाप से जो मरीचि पूर्वकाल में कृष्णवर्ण के हो गये थे वे ही अपने इस कठोर तप के माहात्म्य से शुक्लवर्ण हो गये । हरि ने मरीचि से कहा, पुत्र ! कोई वरदान माँगो, मरीचि ने माधव से निवेदन किया, भगवन् ! आप के सन्तुष्ट हो

Funding by IKS-MoE

जाने पर संसार में कौन-सी वस्तु ऐसी है, जो अलभ्य हो। मैं जिस शिला पर तपकर शिव शाप से विमुक्त हुआ हूँ, वह शिला परम पुनीत हो जाय, पितरों की मुक्तिदायिनी बन जाय। मरीचि की प्रार्थना को अङ्गीकार कर भगवान् स्वर्ग को चले गये। स्वर्ग निवासी देवगणों की पुष्करिणी के पास पहुँच कर मनुष्य परम पवित्र हो जाता है। वहाँ पर दान देने से पितरों को अक्षयफल की प्राप्ति होती है वहाँ पर स्नान करनेवाला प्राणी सदेह स्वर्ग प्राप्त करता है, अपने समस्त पाप कर्मों को वह सर्प के केंचुल की भाँति छोड़ देता है। वहाँ मनोहर पंकजवन पुण्यशील जनों से सुसेवित है। वहीं पर पुनीत पाण्डुशिला भी है, जिस पर किया गया श्राद्धकर्म अक्षयफलदायी होता है। मुनि नारद जी! प्राचीनकाल में उस शिला पर जब युधिष्ठिर श्राद्ध करने के लिए गये थे तो उस समय स्वयं पाण्डु ने आकर कहा कि पुत्र! मेरे हाथों पर पिण्ड प्रदान करो। किन्तु उन्होंने हाथ को छोड़कर शिला ही पर पिण्डा प्रदान किया। शिला पर पिण्ड प्रदान करने से व्यासनन्दन पाण्डु को परम हर्ष प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने पुत्र को वरदान दिया कि पुत्र! इस सम्पूर्ण पृथ्वीतल पर तुम निष्कण्टक राज्य करो, तुम मेरे उद्धारक हो। अपने भाइयों के साथ तुम सदेह स्वर्ग जाओ और अपनी दृष्टि मात्र से नरक निवासियों को पवित्र कर स्वर्ग प्राप्त कराओ।' ऐसा कहकर पाण्डु अव्यय शाश्वत् पद को चले गये। मतङ्ग के चरणों पर श्राद्ध करनेवाला अपने पितरों को स्वर्ग लोक प्राप्त कराता है। विष्णुप्रभृति प्रमुख देवगणों के साथ ब्रह्मा जी ने शमी के गर्भ से मथकर यज्ञ के लिए अग्नि प्रकट की, इसीलिए वह तीर्थ तीनों लोकों में परम विख्यात हुआ। पितरों को मुक्ति प्रदान करनेवाला वह पुनीत तीर्थ मखतीर्थ के नाम से ख्यात हुआ, वहाँ पर स्नान कर पिण्डदान करनेवाला मनुष्य मुक्ति प्राप्त करता है। संगम पर स्थित अङ्गारक एवं महादेव को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों को स्वर्ग प्राप्त कराता है। गया कूट में पिण्डदान करने से अश्वमेधयज्ञ का फल प्राप्त होता है। भस्मकूट में भस्मनाथ को नमस्कार कर मनुष्य अपने पितरों का उद्धार करता है। संगम में स्नान करनेवाला अपने पापों से रहित होकर मुक्त हो जाता है। मुनिवर वशिष्ठ ने वहाँ पर एक अश्मेध यज्ञ किया था, उस यज्ञ से शम्भु उत्पन्न होकर वशिष्ठ से बोले कि, वरदान माँगो। वशिष्ठ ने कहा, शम्भु देव! यदि आप सचमुच हमारे ऊपर प्रसन्न हैं, तो आप यहीं पर निवास करें।' 'ऐसा ही होगा' कह कर शिव वहाँ विराजमान हो गये। धेनुकारण्य में कामधेनु के पद चिह्नों पर पिण्डदान करनेवाला वहाँ पर स्नान एवं नमस्कार करके अपने पितरों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। मुण्डपृष्ठ के समीप गयासुर के नाभिप्रदेश में कर्दमाल नामक तीर्थ है, वहाँ पर स्नान करने श्राद्धादि सम्पन्न करनेवाला अपने पितरों के ऋण से मुक्त हो जाता है। वहाँ पर विराजमान फल्गु, चण्डी, श्मशानाक्षी एवं मङ्गला आदि देवियों की पूजा करनी चाहिये। गया में वृषोत्सर्ग करनेवाला इक्कीस कुलों का उद्धार करता है। इस पुनीत गया तीर्थ में जहाँ देवताओं का निवास है, वहीं पर जितेन्द्रिय ऋषिगण भी विराजमान रहते हैं। आदि गदाधर देव का ध्यान करते हुए श्राद्ध एवं पिण्डादि का दान करनेवाला अपने सौ कुलों का उद्धार कर समस्त पितरगणों को ब्रह्मलोक प्राप्त कराता है। गयागय, गयादित्य, गायत्री, गदाधर, गया, एवं गयासुर—ये छः गया मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं। जो मनुष्य इस पुण्यप्रद गयाख्यान

को सर्वदा पढ़ता है, अथवा जो श्राद्धपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह परम गति को प्राप्त होता है। जो पुण्यशाली मनुष्य ब्राह्मणों द्वारा इस पुण्यप्रद गयाख्यान का पाठ करवाता है, वह निश्चितरूप से गया श्राद्ध करता है। जो मनुष्य समाहित चित्त होकर गया की अनुपमेय महिमाओं का चिन्तन करता है, नारद जी! वह अश्वमेध अथवा राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करता है। जो गयाख्यान की पुस्तक को स्वयं लिखता है, अथवा दूसरे से लिखवाता है अथवा पूजन करता है, उसके घर पर लक्ष्मी सुस्थिर एवं सुप्रसन्न रहेंगी। इस पुण्यप्रद गयाख्यान की पुस्तक जिसके घर रहती है, उसके घर सर्प, चोर एवं अग्नि जनित बाधाओं का भय नहीं रहता। श्राद्धकाल में जो मनुष्य इस पुनीत गयामाहात्म्य का पाठ करता है। उसका श्राद्ध विधिवत् न होने पर भी पितरों के लिए गया के समान फलदायी होता है। सारे त्रैलोक्य में जितने भी तीर्थ हैं, वे सभी गयापुरी में देखे गये हैं। नारद जी! इस गयाख्यान के सम्बन्ध में मैं जितना जानता था, जितना सुना था, वह सब आप को बतला चुका। ॥१—६७॥

सूत बोले:—इस प्रकार सनत्कुमार मुनिपुङ्गव नारद जी को भक्तिपूर्वक इस पुण्यकथा को सुना चुकने के उपरान्त उस सङ्गीत गुरु (नारद जी) से विदा लेकर पुण्यवन्य प्रान्त में अवस्थित अपने आश्रम को चले गये। ॥६८॥

वायुकथित महापुराण के उपसंहार नामक चतुर्थचरण में गयामाहात्म्य नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त।

श्रीगुरुचरणाभ्यांनमः

शिवमस्तु

Bhawan's Sri Sankarache ... Vidya Mahavidyalaya
५५५

Funding by IKS-MoE

Funding by IKS-MoE

DATE DUE

Class No. ____________ **Book No.** ____________

Accession No. 846 ____________

This book should be returned to the Library on the date last stamped. A fine of 0.6 nP. will be charged for each day the book is kept over time.

Funding by IKS-MoE

Funding by IKS-MoE